भगवान महावीर स्वामी के २५ सौ वे परिनिर्वाण
महोत्सव के पावन अवसर पर

प्रबोधसार तत्त्व दर्शन

लेखक

आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषण जी महाराज संघस्थ
मुनि श्री १०८ ज्ञानभूषण जी

ब्र० अंगूरी बाई लश्कर

प्रथम सस्करण : १९७५

मूल्य—५.००

मुद्रक
एस० नारायण एण्ड सस (प्रिंटिंग प्रेस)
७११७/१८ पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

श्री १०८ आचार्य रत्न देशभूषण जी महाराज

जन्म संवत् १९६०, मुनिदीक्षा संवत १९८५

ग्रन्थ कर्ता के दो शब्द

श्री १०८ आचार्य रत्न देश भूषण जी महाराज के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ" प्रबोधं-सार तत्त्व दर्शन" लिखा गया है। इसमें सम्यक्त्व के विषय का संकलन किया गया है। यह ग्रन्थ मुझ अल्पज्ञ ने अपनी भक्ति और भावना से श्लोको की रचना कर उनका हिंदी अनुवाद किया है। इस ग्रन्थ में संस्कृत श्लोकों में छन्द और व्याकरण, अलकार, समास आदि लिंग विभक्ति का विवेक न होने के कारण बहुत सी त्रुटिया विद्वानो की दृष्टी में अवश्य ही प्रतीत होगी। इसका भी एक ही मुख्य कारण है कि हम व्याकरण और काव्य व अलकार छन्दो को नही जानते है। सिर्फ हमने तो अपनी भावना की पूर्ति करने की अपेक्षा कर इस ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में जिस प्रकार शब्द नय लिग का विचार नही कर उसके अर्थ को ग्रहण करता है इसी प्रकार इस ग्रन्थ में अविवेक है इसमे स्त्री लिग के स्थान पर पुलिग और नपुंसक लिंग तथा पुलिग के स्थान पर नपुंसक लिग भी अनेकों स्थानो पर आये हुए दिखाई देंगे। यह भूल इसलिए हुई है कि हमको व्याकरण के नियमों का व सन्धियो का पूरा ज्ञान नही है। स्वरान्त और हलतो का भी पूर्णतया ज्ञान नही होने के कारण जगह-जगह पर त्रुटिया परिचय में आवेगी उन त्रुटियो को विशेषज्ञ सुधार लेवें और स्वय पढ़े तथा अन्य जनों को पढ़ावे। पढ़कर अपने हृदय मे यदि उतार लेवेंगे तब तो इस ग्रन्थ का पढ़ना सार्थक होगा। इसमें अक्षर स्वर व्यंजन मात्राओं की त्रुटियां भी विशेष रूप से देखने में आवेगी उनका शोधन कर पढ़े। इस ग्रन्थ के छपाई में सबसे बड़ा हाथ दि० जैन समाज जौलाग्राम जि० मुजफ्फर नगर वासियो का रहा है कि जिन्होंने एक शब्द के कहते ही ३०७२ रुपया की रकम एकत्र करके ड्राफ्टबन वाकर जयपुर हरीचन्द टिकसाली के पास भेज दी। तथा अन्य व्यक्तियों ने भी अपनी इच्छा से ही जो रकमे दी है वे आगे के पेज पर दी जा रही है। इन दातारों को ही इस ग्रन्थ की छपाई का श्रेय है। वैद्य प्रेमचंद्र जी ने इस ग्रन्थ के प्रूफ संशोधन करने में बहुत प्रयत्न किया है। समय-समय पर प्रेस में जाना रात में प्रूफ कापियो का शोधन करना इतना प्रयत्न करने के पीछे हमने भी प्रूफ का कुछ मोटे तौर पर संशोधन किया है फिर भी गलतिया रह सकती है उन गलतियों को सज्जन विद्वान शोधकर पढ़े। यह ग्रन्थ सरल आधुनिक हिंदी व संस्कृत काव्यों से सहित है। इस ग्रन्थ में सप्त व्यसनो की मनोरंजक और धार्मिक कथाये भी दी गई है। समय-समय पर दृष्टान्त देकर शंकाओं का भी समाधान किया गया है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत तीन अध्याय है जिसमें प्रथम अध्याय में सम्यक्त्व की उत्पत्ति विनाश आदि विषयों का विचार

किया गया है दूसरे अध्याय में प्रमाण और नयो का विचार किया गया है और मतिज्ञान के भेद श्रुतज्ञान के भेदो का कथन अवधिज्ञान मन: पर्यय केवल ज्ञानो का कथन किया गया है। तीसरे अध्याय मे चारित्र का कथन किया गया है। इस ग्रन्थ का सार यही है कि पढकर भव्य जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करे। इस ग्रन्थ में पारसदास श्रीपाल जैन मोटर वाले देहली ने १२०१ रुपया देकर महान पुण्य का सचय किया है तथा जिल्द बधाई का खर्च श्री सौभाग्य-वती रेखा जैन धर्म पत्नी नरेश कुमार जैन गाधी नगर वालो नें दिया उनको हमारा धर्म वृद्धि आशीर्वाद है। तथा सब दाताओ को धर्म वद्धि आशीर्वाद।

इति

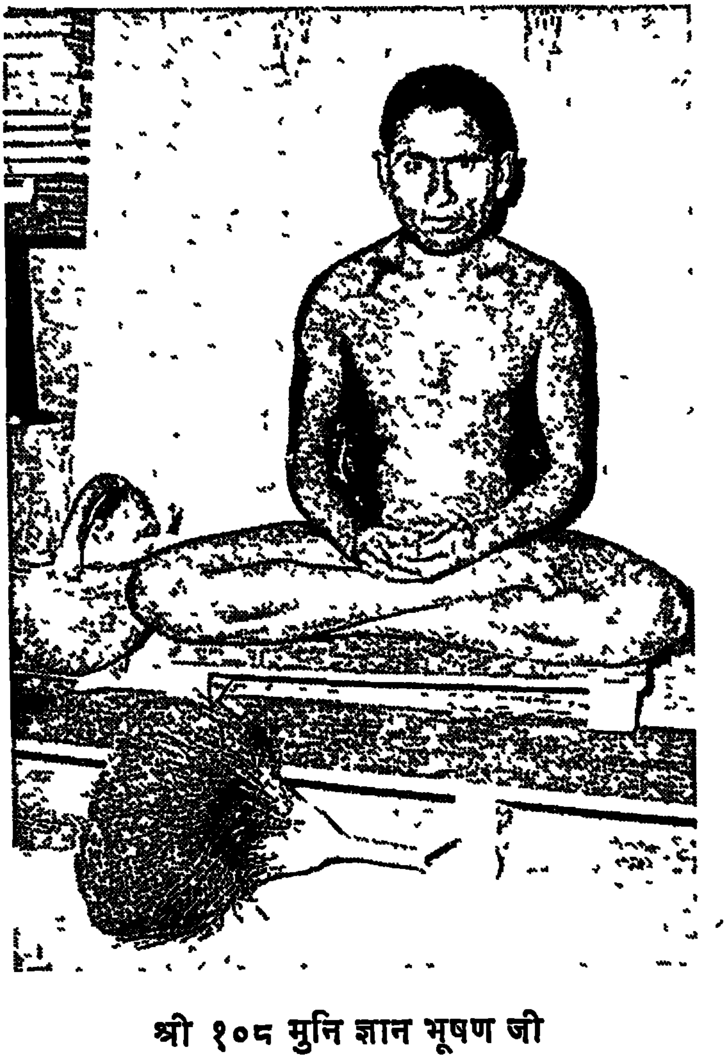

श्री १०८ मुनि ज्ञान भूषण जी

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

मुनि श्री १०८ ज्ञान भूषणजी महाराज का संक्षिप्त परिचय

श्री १०८ परम पूज्य विद्यालंकर, बालब्रह्मचारी, आचार्य-रत्न देशभूषणजी महाराज के परम शिष्य श्री १०८ ज्ञानभूषण जी का जन्म मध्यप्रदेश (मध्य भारत) ग्वालियर स्टेट में जिला मुरेना, परगना अम्बाह, ग्राम ऐसहा मे हुआ था। यह ग्राम चम्बल नदी के किनारे पर बसा हुआ है। यहा पर श्रावक दि० जैन जायसवालो के सात घर थे जो जैनधर्म, परायण, सदाचारी, न्यायनीति व संयम—पूर्वक आहार विहार करते थे। वही पर श्री सेठ प्रेमराजजी तथा विजयसिंहजी दो भाई रहते थे। उन दोनो भाईयों का विवाह एक घर की ही दो बहिनों के साथ हुआ। प्रेमराज के दो पुत्र, दो पुत्री हुई और विजयसिह के एक पुत्र हुआ। प्रेमराज के दो पुत्रो में से बड़े का नाम श्रीलाल तथा छोटे का नाम पंचाराम था। उनकी दो बहिने थी बड़ी बहिन का नाम चिरोंजा बाई और छोटी का नाम चंदनियाँ बाई था। पंचाराम तो बाल ब्रह्मचारी हो गये। उन्होने बाल्यावस्था में ही जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य ले लिया तथा वे घर बार छोड़कर चले गये।

बड़े भाई श्रीलाल की धर्मपत्नी का नाम सरस्वती देवी था। सरस्वती देवी के गर्भ से तीन पुत्र तथा एक पुत्री ने जन्म लिया। बड़े पुत्र का नाम लज्जाराम तथा बहिन का नाम रामदेवी, उनसे छोटे भाई का नाम पोखेराम, उनसे छोटे भाई का नाम कपूरचन्द।

पोखेराम का जन्म आषाढ़ सुदी ७ बुधवार की रात्रि में वि० सं० १९८७ में हुआ था। जब डेढ वर्ष की उम्र थी तब प्रेमराज अपने परिवार सहित ऐसहा ग्राम को छोड़ कर नयापुरा में जाकर रहने लगे। वहा से जाने का कारण यह था कि एक दिन रात्रि में कुछ चोरो ने चोरी की। जिसमे बहुत से पीतल कांसे के बर्तन व सोना चांदी को चोर ले गये, जिसके कारण ऐसाहा ग्राम छोड़कर वे चल दिये और नयापुरा ग्राम में आकर रहने लगे।

ये व्यापार के लिए कलकत्ता आया जाया करते थे तथा घर मे भी घीका व्यापार व गिरवी रखने धरने या अन्य व्यापार भी होता था। पोखेराम का स्कूल में शिक्षण चार साल तक हुआ। उसके पश्चात उनके पिता की कुछ लोभ प्रकृति होने से उन्होने आगे पढ़ने से रोक दिया। कुछ दिन बाद श्रीलालजो ,,कलकत्ता चले गये। उनके ज्येष्ठ पुत्र लज्जाराम का पाणिग्रहण रूअर ग्रामवासी श्री ज्योतिप्रसाद की पुत्रीके साथ हो गया। कर्म योग से कुछ दिन बाद रोग हो गया जिससे पुत्रवधू का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात कलकत्ता

में ही दूसरी जगह से पुन: ज्येष्ठ पुत्र का पाणिग्रहण फूलपुर में हो गया। उसी के बाद पोखेराम को कलकत्ता जानेका प्रथम अवसर मिला, पर कलकत्ता कुछ दिन रहकर पुन नयापुरा वापस आगये। पुन: कुछ दिन के पीछे कलकत्ता जाने का अवसर उपलब्ध हुआ और कलकत्ता मे वहु बाजार मे दुकान पर बैठने लगे कि एक दिन रात्रि में सो रहे थे कि रात्रि के चार बजे एक अजीब स्वप्न देखा। वह स्वप्न बता रहा था कि पोखेराम तुम्हारा यह मार्ग सम्मेद शिखर का है। इस मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग से नही जाना।

यह पहला ही अवसर था कि एक दिन यह स्वप्न हुआ, उसका ध्यान कर बिना विचारे, बिना कहे दुकान से उतर कर सम्मेद शिखर की यात्रा को चल दिये। माघ का महिना था शुक्ल पक्ष पचमी का दिन था। ठण्ड भी मोठी मीठी पड़ रही थी। हबड़ा से गाड़ी मे बैठकर ईसरी स्टेशन पर उतर कर पैदल के मार्ग से चल दिये। उनने जो स्वप्न देखा था स्वप्न के अन्तर्गत जो जो चिन्ह देखे थे वे अब प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते जाते थे। जैसे जैसे ईसरी स्टेशन से 'मधुवन की ओर बढते जा रहे थे कि वैसे वैसे ही स्वप्न की बाते स्मरण होती आ रही थी। स्वप्न मे आम के वृक्ष एक खेत में देखे थे वे भी उपलब्ध हो गए। पीछे एक टीले पर कुछ गाये देखी वे भी टीले पर चरती हुई मिल गईं और आगे चलते गाड़ियो मे लकड़ी लदी हुई स्वप्न मे देखी थी वे भी मिल गई। आगे चले तो स्वप्न मे एक खोटा मार्ग देखा था वह भी सामने आ ही गया और पोखेराम उस मार्ग में मधुवन जाने को उद्यत हुए। जगल मे प्रवेश किया परन्तु मार्ग आगे न मिलने के कारण वापस आना पड़। और मैन रोड से चलने लगे। आगे जाते है तो चौराहा देखा और उसके आगे एक नाला दिखाई दिया। जगल भयानक था, चारो तरफ वृक्ष ही वृक्ष दिखाई दे रहे थे। नाले मे पानी कलकल करता हुआ वह रहा था। उसको पार कर आगे बढे तो पुन एक नाला मिला ही था कि मधुवन के मन्दिर और धर्मशालाये दिखाई देने लगी।

चलते-चलते शाम हो गई। शाम को तेरह पथी कोठी के बाहरी गेट पर बैठे थे कि धर्मशाला का जमादार आकर पूछने लगा कि तुम कहा ठहरे हो? तब पोखेराम ने कहा कि हम कलकत्ता से आये हुए है पर हमारे पास कपड़े विस्तर आदि कुछ भी नही है। इस कारण हम धर्मशाला से बाहर आकर बैठे हैं। क्योकि कोई बिना विस्तर के मुसाफिर को ठहरने देगा नही। यह सुनकर धर्मशाला का कर्मचारी शीघ्र ही धर्मशाला कोठी के मैनेजर के पास पहुंचा और समाचार दिया। समाचार सुनते ही मैनेजर ने पोखेराम को गद्दी मे वुलवाया और सव हकीकत पूछ कर गद्दी मे ही रात्रि मे सोने की पूर्ण व्यवस्था करदी। रात्रि के तीन वजे वहुत से यात्री वदना को जा रहे थे उनके साथ ही पोखेराम भी शुद्ध वस्त्र पहन कर सम्मेद शिखर सिद्ध क्षेत्र की वन्दना को गये। पुन दूसरे दिन वदना करते हुए जब पार्श्वनाथ भगवान की टोक की वन्दना की तो वही पर यह भाव हुआ कि आगे हम अपना विवाह नही करेगे। आज से हमारे सव प्रकार सपूर्ण प्रकार की स्त्रियो का त्याग है। इस समय पोखेराम की उम्र अठारह वर्ष की थी।

कुछ दिन वीत जाने पर पिता ने आग्रह किया कि वेटा! अव तुम्हारा विवाह

करनें का हमारा विचार अमुक् की पुत्री के साथ है। यह सुनकर पोखेराम नें उत्तर दिया कि पिताजी आप विचार करें कि जो लडकी अपने को चाचा कहती है उसके साथ विवाह कैसा ? तब अन्य जगह से सम्बन्ध करने का विचार किया लेकिन पोखेराम नें विवाह करनें को साफ इनकार कर दिया। कुछ दिन बीते ही थे कि पोखेराम के पिता का स्वर्गवास हो गया। उसके पीछे माताजी ने बहुत शोक किया। तब पोखेराम ने माताजी को अनेक प्रकार से समझाकर संतोष व धैर्य बंधाया। उसके कुछ दिन बीत जाने पर दुकान के माल की चोरी हो गई तथा अन्य कारण आ उपस्थित हुए जिस कारण दोनों दूकानें टूट गईं। पोखेराम को लाचार नौकरी करनी पड़ी। साथ में छोटा भाई भी रहता था। घरके व माता के खर्च की सब व्यवस्था पोखेराम को करनी पडी। नोकरी से खर्च तो निभ नहीं पाता था। उधर दुकान का मालिक कहने लगा था कि कल से सुबह सात बजे दुकान पर आना होगा। यह सुनकर पोखेराम ने कहा कि हम भगवान की पूजा किये बिना नहीं आ सकते, हम दुकान पर आठ बजे आ सकते है। यदि आपकी इच्छा हो तो रक्खो नहीं तो मत रक्खो। इतना कहकर दूसरे दिन दुकान पर नहीं गए। और अपना स्वतन्त्र रोजगार करनें का प्रयत्न करनें लगे।

स्वतन्त्र व्यापार से उनको पहले दिन तीन रुपया का लाभ हुआ। दूसरे दिन पांच रुपया का लाभ हुआ। इस प्रकार करते हुए पूर्व में किए हुए कर्ज को चुका दिया तथा कुछ रकम एकत्र करली। वैशाख मास में छोटे भाई कपूरचन्द का विवाह धोलपुर निवासी श्री लीलाधर की पुत्री के साथ होगया। विवाह कर कलकत्ता लौटनें पर श्री १०८ आचार्यरत्न देशभूषण मुनि महाराज सघके दर्शनों का लाभ मिला। आचार्य श्री का चातुर्मास कलकत्ता में हुआ तथा पोखेराम की बहन रामदेवी ने चौका लगाया। उसमें सहयोगी पोखेंराम व कपूरचन्द भी हुए। इस प्रकार चातुर्मास में चौका बेलगछिया में लगता रहा।

जब श्री आचार्य महाराज का चातुर्मास कुशलता पूर्वक हो गया और आचार्य श्री ने विहार सम्मेद शिखर की तरफ किया तब पोखेराम के भी ये भाव हुए कि आचार्य श्री को सम्मेद शिखर तक छोड़ आवें। आचार्य श्री को छोड़ने के लिए साथ चल दिये। पन्द्रह दिन में सम्मेद शिखर जब सघ सकुशल पहुँच गया। संघस्थ श्री १०५ शान्तिमति माताजी ने पोखेराम के प्रति प्रेरण की कि तुम दूसरी प्रतिमा के बारहव्रत धारण करो। तब पोखेराम ने कहा माताजी ! यह व्रत निभ नही सकेगा। तब शान्तिमति माताजी कहने लगी बेटा ! तुम्हारा निभ जायगा। तुम्हारी बहिन भी बारह व्रत की धारी है। तुम्हारा और तुम्हारी बहिन का व्रत अच्छी तरह से निभ जायगा। इतना उन्होने कहा तब पोष सुदी ११ के दिन बारह व्रत धारण कर लिए। उसकें बाद श्री १०८ आचार्य रत्न देश भूषण महाराज नें कहा कि पोखेराम तुम हमारे साथ चलो बाहुबली की यात्रा करनें को। तब पोखेराम नें चलने का बचन दे दिया।

माघ में संघ नें श्रवण बेलगोला की तरफ विहार कर दिया। संघ के संचालक बुनिन्दा निवासी सेठ नथमल पारसमल कासलीवाल और उनकी माता मंगेजबाई और

धर्मपत्नी रत्नबाई, पुत्री गुणमालादि सब सघ के साथ चल दिए। साथ में श्री भागचन्द कालू निवासी, हाल कलकत्ता वाले भी चल दिये। तीन माह मे सघ विहार करता हुआ श्रवण बेलगोला पहुँच गया।

श्रवण गोला में पोखेराम ने सप्तम प्रतिमा के व्रत लिए। अब संघ में ब्र० पोखेराम रहने लगे और आचार्य श्री का संघ सहित चातुर्मास कोल्हापुर में हुआ। कोल्हापुर चातुर्मास के पश्चात नादनी से कलकत्ता जाकर पोखेराम टूंडला में श्री १०८ विमलसागर महाराज के पास तीन माह रहे और कोल्हापुर पचकल्याणक में पुन· आचार्य देश भूषणजी के संघ में चले गए। सघ के साथ विहार कर दिल्ली आये। जयपुर में पार्श्वनाथ चूलगिरी की स्थापना के समय संघ में ही थे। पश्चात सघ के साथ मथुरा पचकल्याक और अयोध्या में ३३ फट ऊँची विशाल प्रतिमा का पंचकल्याणक देखा। निर्वाण कल्याणक बुधवार १३ को आचार्य श्री देशभूषणजी द्वारा क्षुल्लक दीक्षा ली और नाम ज्ञानभूषण रखा गया। तीन वर्ष ९ माह क्षुल्लक अवस्था में रहे। श्री शातिमति माताजी से व्याकरण एव धर्म ग्रन्थ पढे। पं. अजितप्रसादजी से सर्वार्थसिद्धि पढी। इसके वाद संघ दक्षिण की ओर गया, बाहुबलि अभिषेक में सम्मिलित हुए। तीर्थों की यात्रा करते हुए स्तवनिधि में चतुर्मास किया। पुनः बेलगाममें चतुर्मास हुआ। कोथली में पंचकल्याणक हुआ। जयसिंहपुरा में मानस्तम्भ प्रतिष्ठा के अवसर पर माघ शुक्ला ७ शुक्रवार सन् १९६९ मे आ० देशभूषणजी महाराज से मुनि दीक्षा ली। इसके बाद चतुर्मास कोथली कुप्पन बाडी में किया। यात्रा करते हुए कुम्भोज पंचकल्याणक देखा आचार्य श्री की आज्ञा से उत्तर की ओर विहार किया। पावागिर की वन्दनाकर बडवानी आये। वहा से बीकानेर गए। वहां सामाजिक झगडा चल रहा था। मन्दिर एक, वेदियां तीन और तीन वेदियो के अलग अलग पूजा करने वाले, प्रबन्ध करने वाले तथा माली आदि भी भिन्न भिन्न थे। भंडार लडाई के कारण बद था। लोगों में खूब तनाव था। पूज्य मुनि श्री १०८ ज्ञानभूषणजी महाराज के प्रयत्न से ११ वर्ष पुराना झगड़ा शात हुआ और समाज में बैर विरोध समाप्त हो एकता हुई।

सघ वहां से रवाना होकर सिद्धवर कूट की वन्दना को गया। ओंकारेश्वर के पहाड का निरीक्षण किया कि जहा पर अनेक मन्दिर फूटे टूटे पड़े हुए है अनेक चमत्कारमय पत्थर पड़े हुए है। वहा से विहार कर इन्दौर में आये और ऊनकी वन्दना के लिए गए। ऊनकी वन्दना कर लौटे। इन्दौर मे चातुर्मास किया और चातुर्मास के पीछे विहारकर जयपुर में ससघ आये। वहाँ पर श्री १०८ देशभूषण महाराज के दर्शन किए तथा धूलिया से लाई हुई कुमारी शकुन्तला व इन्दोर से साथ में लाई हुई श्रीमती सज्जनबाई को क्षुल्लिका दीक्षा दिलवाई। फिर श्री महावीरजी को यात्रा कर सघ सहित जयपुर मे चातुर्मास किया। चातुर्मास में आ० महावीर कीर्ति सघके दश त्यागी तथा ज्ञनभूषण महाराज संघके १२ त्यागियों ने बडे धूम धाम के साथ राणाजी की नशिया में चातुर्मास किया।

चातुर्मास के पीछे ज्ञानभूषण महाराज ने सब सघ को वही छोडकर सम्मेद शिखर को विहार किया। आगरा होते हुए, सोनागिर सिद्ध क्षेत्र के दर्शन किये और वहा से

बनारस होते हुए सम्मेद शिखर पर पहुँच गये। २२ दिन रहकर वहाँ पर ६ वन्दनायें पर्वत की की। वही पर आचार्य श्री १०८ विमल सागर महाराज का संघ था। उनके दर्शनों का भी लाभ मिला और वहाँ से विहार कर मदारगिरि, भागलपुर, चम्पापुर, नवादा, गुणावा, पावापुरी, पंचगिरि इत्यादि तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करके चतुर्मास के लिए श्री १०८ आचार्य रत्न देशभूषण जी के पास जयपुर में आ गये। चातुर्मास से पूर्व एक पुस्तक लिखी थी। जयपुर मे दशलक्षण धर्म तथा दिल्ली चातुर्मास में सोलहकारण भावनाये लिखी। मुनि महाराज सतत अपने ध्यान अध्ययन में लीन रहते है। एक समयभी इधर उधर ससार सम्वन्धी वातचीत तक भी नही करते है। वे अत्यन्त मधुर एव गम्भीर सरल भाषा में नित्यप्रति दो वार उपदेश देते रहते है। ज्ञान भूषण महाराज श्री महावीर जी क्षेत्र के दर्शन करने को गये। और लौटकर जयपुर में चातुरमॉस किया। और चातुर्मास बीत जाने पर ज्ञान भूषण महाराज सघ को छोड़कर अकेले ही विहार कर सम्मेद शिखर के दर्शन को गए थे और दर्शन किये वही पर श्री १०८ आचार्य विमल सागर जी महाराज संघ के दर्शन किए संघमें २१ मुनि माहाराज तथा अर्यिका क्षुल्लक क्षुल्लिका करीब ४२ त्यागीथे। वहां से विहार कर मन्दार गिरी भागलपुर चम्पापुरी के दर्शन किये और विहार कर नवादा गुणावा पावापुरी और राजगिरी पचपहाडी के दर्शन किये। और विहार कर पटनामें सुदर्शन सेठ के निर्वाण क्षेत्र के दर्शन कर आगरा होते हुए बनारस पहुचे वहाँ पर पार्श्वनाथ व चन्द्रप्रभ देव का जन्म हुआ है वहाँ के मन्दिरो के दर्शन किये। और अयोध्या की तरफ को विहार किया। अयोध्या के मन्दिरो के दर्शन का विहार करते हुए दिल्लो में चातुर्मास के लिये आ पहुंचे।

जहा पर परस्पर के झगड़े के कारण मन्दिर के भण्डार में दो पार्टीयों ने अपने अपने ताले डाल दिये थे। उन तालो को खुलवाने का प्रयत्न श्री १०८ महावीर कीर्ति जी ने किया परन्तु सफलता नही प्राप्त हुई। अब श्री १०८ ज्ञान भूषण जी महाराज आ पहुँचे और तीन पार्टी तीन वेदी बनी हुई है। यह देखकर श्री ज्ञान भूषण जी ने कहा कि हम आहार यहा तव नही करेंगे जव तव तुम सब एक नही हो जाओगी तब सब को वुलवाकर उनका विरोध दूर कर दिया और मन्दिर की व्यवस्था वनवाई। इस प्रकार श्री १०८ ज्ञान भूषण जी महाराज का सक्षिप्त परिचय लिखा गया है।

नि० ब्र० अगूरी वाई लश्कर

श्री १०८ विद्यानन्द जी, श्री १०८ आचार्य रत्न देशभूषण जी, श्री १०८ ज्ञानभूषणजी
१०८ सन्मति भषण जी व अन्य त्यागी गण

दान दाताओं की सूचि

३थ१) पारसदास श्रीपाल जैन मोटर वाले दिल्ली

५०१) आदीश्वर कुमार जी जैन हापुड़

५०१) जयचन्दराय गुणवन्तराय जैन दिल्ली

५०१) भगवानदास जोवा

५०१) मित्र सेन जोवा

५०१) उग्रसेन जैन खेरवड़ा

५०१) हुकमदेवी धर्म पत्नी वाला ऊदमीराम जी जैन दिल्ली

३०१) राजेन्द्र प्रसाद जैन खतोली

२५१) रतीलाल जी पवापुर सूरत

२५१) चौधरी कस्तूर चन्द जैन इन्दौर

३५१) श्रीमती कुन्ती वाई जैन धर्म पत्नी सिंघई सोहनलाल जी वैदवाडा दिल्ली

२५१) महावीर प्रसाद पहाडी धीरज दिल्ली

२५२) पुष्पावाई जैन पहाडी धीरज

२५१) जुगमन्दर दास गुलियान दिल्ली

२०१) लालचन्द जी लुहाड़िया वैद्यवाडा दिल्ली।

२०१) भूपालसिह मुखतार सिह जोला।

२०१) छज्जूमल जी जैन "

२०१) रेलूमल जी जैन "

२०१) कीर्ति प्रसाद जैन "

२०१) कैलाश चन्द जैन "

२०१) कानी गोह जगदीश प्रसाद वागपत

२०१) किरण वाई धर्म पत्नी लाला जयचन्द जैन पहाडी धीरज

२५१) शकुन्तला वाई धर्मपत्नी वाला अजित प्रसाद जौहरी दिल्ली

२०१) त्रिशला वाई जैन पहाडी धीरज "

२०६) विमला वाई जैन गाधी नगर

२५१) पन्ना लाल जी जैन गांधी नगर दिल्ली

२५१) जुगमन्दर दास जैन जौला

१५१) शांतीवाई जैन "

२०१) पसारी साहपुर जैन

१०१) दीपचन्द जैन कवाल

१०१) सुरेन्द्र कुमार जैन खतोली

१०१) भूषण लाल जैन कवाल

१०१) धनपत राय जैन कवाल

१०१) नन्दलाल इन्द्रकुमार जैन साहपुर

१०१) जगमोहन लाल जैन सौरम

१०१) उलफतराय जी जैन "

१०१) शांती वाई जैन पहाड़ी धीरज दिल्ली

१०१) सुरेश चन्द जैन वड़ोत

२०१) हरस्वरूप सिंह जैन "

१०१) घसीटूमल जी जैन जोला

१०१) हेमचन्द जी जैन "

१०१) सजना कमार जी जैन "

१०१) धर्ममित्र केशोराम जी जैन"

१०१) धन लाल पटवारी खेखड़ा

१०१) सब्जीदेवी खेखड़ा

१०१) मलसटराम जी जैन वागपत

१०१) सलेख चन्द जैन वागपत

१०१) खचेरूमल जैन "

१०१) कुसुम कुमारी बड़ौत
१०१) किरण बाई जैन
१०१) प्रेमचन्द जी जैन दिल्ली
५१) देवेन्द्र कुमार जैन जौला
५१) सरमन लाल जैन "
५१) रिखवदास जैन "
५१) राजुल मती पटोरी बारी।
५१) सुखवीर सिंह जौला
५१) गुलशन राय जौला
५१) सुखमाल चन्द "
५१) अत्तर सेन "
५१) रणजीतसिंह प्रवेश कुमार जैन
५१) चेतनलाल मामचन्द जी जौला
५१) विमला देवी सरूरपुर
५१) सोना बाई
५१) सुरेश चन्द्र जैन दरीबा दिल्ली

अनुसूचि

विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण	१
मंगलाचरण	१
चौराशी लाख योनियों का वर्णन	१
कुदेव का स्वरुप और लक्षण	२
कुदेवोकी आराधना का फल	५
कुदेवोंका स्वरुप	६
कुगुरुका लक्षण	८
कुधर्मका स्वरुप	११
अन्य ग्रंथोमें धर्मकी मान्यता	१२
पांच प्रकारके मिथ्यात्वोंका कथन	१४
एकान्त मिथ्यात्व	१४
संशय मिथ्यात्व	२१
विनय मिथ्यात्व	२५
अज्ञान मिथ्यात्व	२८
विपरीत मिथ्यात्व	२८
पंचपरावर्तन द्रव्य परावर्तन	२९
क्षेत्रपरावर्तन	३२
कालपरावर्तन	३३
भवपरावर्तन	३४
भावपरावर्तन	३५
पंचपरावर्तनोंका कारण	३८
सप्त व्यसन और भय	४१
मिथ्यात्व ही विशेष कर्म बंधका कारण	४२
पंचप्रकारके संसारोकी विशेषता	४२
भावों के भेद	४३
बीज वृक्षकी तरह बंधकीगति है	४४
दुर्भावनाओ का त्याग	४६
सम्यकत्वको पात्र	४७
पंचलब्धियोंके नाम क्षयोपशम	४७
देशनालब्धि	४८
विशुद्धिलब्धि	४८
प्रायोगलब्धि	४८
करण लब्धि A अधःकरण	४९

विषय	पृष्ठ
अपूर्वकरणBअनिवृत्त करण	५०
उपशम सम्यकत्व	५०
क्षयोपशम सम्यकत्व	५०
सम्यकत्वके विरोधीकारण	५१
सम्यकत्वके विरोधीकारण	५१
सम्यकत्वके कारण	६०
सम्यकत्वका स्वरुप निश्चय और व्यवहार	६१
अरहंतदेवका स्वरुप	६५
अठारह दोषोंके नाम	६५
शास्त्रका स्वरुप	७०
सिद्धोंका स्वरुप	७१
आचार्य उपाध्यायका स्वरुप	७२
साधुका स्वरुप	७२
जिनबिम्बका स्वरुप	७४
जिनधर्मका स्वरुप	७६
बिना दयाके लोकमें सुख नही	७९
द्रव्योंके सामान्य विशेष गुण	८०
उत्तमक्षमादि दश धर्म	८३
सकल विकल चारित्रका कथन	८६
चैत्यालय का स्वरुप	८८
आठ मदोंके नाम	८९
सम्यकत्व के आठ मळ (दोष)	९३
छह अनायतन का स्वरुप	९८
द्यूत क्रीडाका लक्षण	१००
पांडव कौरवोंकी कथा	१०३
मांस व्यसन का स्वरुप	१०७
मांस व्यसनमे प्रसिद्ध सोरसेन-बबकराजा की कथा	११३
मद्यपान व्यसनका स्वरुप	११६
मद्यपान करनेमें प्रसिद्ध एकपादिव	१२१
वेश्या व्यसनका स्वरुप	१२३
वेश्यार्तव्यसनमें प्रसिद्ध चारुदत्त	१२८
चोरीव्यसनका स्वरुप	१३०

विषय	पृष्ठ
चोरीव्यसनमे प्रसिद्ध शिवभूति	१३७
शिकार व्यसनका स्वरुप	१४२
शिकार व्यसन मे प्रसिद्ध ब्रह्मदत्त राजाकी कथा	१४७
परस्त्री व्यसन का लक्षण	१४८
परस्त्री व्यसनमें प्रसिद्ध कडारपिंगकी कथा	१५६
सप्त व्यसनोंका सामूहिक लक्षण	१६०
जीवाजीव तत्वोका स्वरुप	१६२
संसारी जीवोंका कथन	१६४
उपयोगोके भेद और लक्षण	१६६
आत्मा अरूपी है	१६८
जीवज्ञानावर्णादिके योग्य भावोंका करनेवाला है	१६८
जीवके प्रदेशोंकी संख्या	१६९
व्यवहार सेकर्मोका कर्ता भोक्ता	१७०
कुल योनि मार्गणादि आत्मामें नही	१७१
पुद्गलादि द्रव्योंका स्वरुप	१७६
पुद्गलके भेदोंका स्वरुप	१७७
जीवपुद्गल परिणामी द्रव्ये	१७८
आश्रव तत्वके भेद लक्षण	१७९
कहां कौन सा आश्रव है	१८१
मार्गणा गुणस्थानोमे आस्रवोंकी संख्या	१८६
देवायु और तीर्थ करनामकर्मकाआस्रव	१९२
बंध और बधके भेद	१९३
कर्मोकी मूल प्रकृति व उत्तरप्रकृति	१९६
नरकादि आयुका बधक कौन	१९८
संवर का स्वरुप	२००
निर्जराका स्वरुप	२०४
मिथ्यादृष्टी ससारीकी निर्जरा	२०६
निर्जराकी विशेषता	२०८
सम्यक्दृष्टी सयमीकी निर्जरा	२१०
शुद्धोपयोगकी महिमा	२१६
मोक्ष स्व	२२०

विषय	पृष्ठ
शरीर मात्र सुखाने से मोक्ष नही	२२१
मोक्षका स्वरुप	२२४
सम्यकत्वके निमित्त कारण	२२५
सम्यकत्वका निशकित अग	२२६
निकांक्षित अंग	२३०
निर्विचिकित्सा अग	२३२
अमूढदृष्टी अंग	२३४
उपगूहन अग	२३६
स्थितीकरण अंग	२३७
वात्सल्य अग	२४०
प्रभावना अग	२४३
भवनवासी व्यंतरज्योतिसीमे कल्पवासी कल्पातीतों के कोनसे सम्यकत्व	२४५
त्रियंचगतिमें सम्यकत्व	२४६
मनुष्यगतिमें सम्यकत्व	२४७
सम्यकदृष्टी क्या प्राप्त करता है	२४९
सम्यकदृष्टी जीव संसारके उत्तम भोगो को प्राप्त करता है	२५१
सम्यकत्व जीवका उपकारी	२५३
अविवेक ही अज्ञान मिथ्यात्व	२५४
अरहत सिद्धांके स्वरुप को न जानने वाला अपने त्रिप्रकारके आत्माको नही जानता वह मिथ्यादृष्टि है	२५९
अगहीन सम्यकत्व कार्य करने में असमर्थ	२६०
सम्यकत्वके आठ अगोंमें प्रसिद्ध	२६२
राजकुमार ललितांगकी कथा	२६२
सम्यकदृष्टी मिथ्यादृष्टीको न नमनकरे	२६५
मार्गसेभ्रष्ट स्वस्थानको नही पाता	२६७
सम्यकत्वके दोष	२६९
सम्यकत्वके विना चारित्र तप कार्यकारी नही २७० दृष्टान्तसे समर्थन	२७१
अनतमतीकी कथा निकाक्षित अंगमे	२७३
उद्यायन राजाकोकथा निर्विचिकित्साग	२७७
अमूढदृष्टि अगमें प्रसिद्ध रेवतीरानी	२८०

विषय	पृष्ठ
उपगूहन अंगमें जिनभक्तशेठकी कथा	२८३
सम्यक्त्वके भेद	२८४
गुणस्थानोंमें सम्यकत्व	२८६
भव्य जीवोंके सब अभव्यजीवोंके एक पहला	२८८
स्थितिकरण अंगमें वारिसेन मुनिकी कथा	२८८
किनकिन जीवोंके सम्यकत्व होता हैं	२९१
कहांकोनसे गुणस्थान होते हे	२९१
मार्गणाओंमे कोन कोनसे गुणस्थान होते हैं।	२९३
कोनसा चारित्रकिसगुणस्थानमेंहोताहे	२९४
भावलिंग प्रधान	२९५
वात्सल्य अंगमें प्रसिद्ध विष्णुकुमार	२९८
प्रभावना अंगमें प्रसिद्ध व्रजकुमार मुनि	३०५
मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें जीवोकी गणना	३०९
मार्गणाओंमें सम्कदृष्टोजीवोंकी संख्या	३११
सम्यकदृष्टी जीवोंका क्षेत्र कितना है	३१९
सम्यकदृष्टीकितने क्षेत्रका स्पर्शन करते है	३२६
सम्कदृष्टी जीवोंका काल कितना है	३३६
सम्कदृष्टीका वासनाकाल	३४०
आठो कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति	३५०
ज्ञानकी कालमर्यादा	३५०
संयमोका काल	३५१
दर्शनोका काल	३५२
लेष्याओंका वासना काल	३५३
आहारकादिका काल	३५४
अंतर प्ररुपणा गुणस्थान	३५६
अंतर मार्गणा स्थान	३६०
भाव प्ररुपणा	३७४
कोनसे गुणस्थानमें कितने भाव	३७५

	पृष्ठ
...	३८०
गुणस्थानोंमें अल्पबहुत्व	३८१
मार्गणाओंमें अल्पबहुत्व	३८३
सम्यकत्वकिन जीवोको प्राप्त होता हैं	३८७
बहिरात्मा अंतरात्मा परमात्माके भेद	३८९
बहिरात्माका स्वरुप	३९०
बहिरात्मा ही संसार में भ्रमता है	३९१
बहिरात्मा ही दुःखों पाता है	३९३
आर्तध्यान के भेद	३९६
मिथ्यादृष्टी का सुख	३९७
मिथ्यादृष्टीको शुभ कार्य रुचता नही	३९९
स्वर्गमें देवोंको भी सुख नहीं	३९९
नित्यनिगोद इतरनिगोदके दुःख	४०१
पृथ्वीकायिक जीवोके दुःख	४०२
जलकायिक जीवोंके दुःख	४०२
अग्निकायिक जीवोंके दुःख	४०३
वायुकायिक जीवोंके दुःख	४०३
वनस्पति कायिक जीवोके दुःख	४०४
त्रसकायिक जीवोंके दुःख	४०५
मनुष्यगति मे दुःख	४०६
दुःखोंका कारण मिथ्यात्व	४१३
पचेन्द्रियविषयोंमे आशक्त	४१५
आस्रवोंके भेद	४१७
जीव समास कहां किस गतिमे कितने	४१८
मार्गणाओंमे गुणस्थान	४२०
कोनसे योग कहां कहां हो	४२१
मार्गणास्थानोमे योग	४२३
कहां कितने उपयोग होते है	४२५
जीव समासोंमें योग	४२८
पंच परमेष्ठीयोंको पूजा का उपदेश	४३८
भगवन पूजा का फल	४४३
दर्शनविधि	४४६
पूजाके भेद	४५०
दान वैयावृत्तिके दोष	४५२
दाताके गुण	४५३

इति अनुक्रमण

प्रबोधसार तत्त्व दर्शन

प्रबोध सार ग्रन्थ में पूर्व आचार्य की परिपाटी के अनुसार इस ग्रन्थ के प्रथम में लोकाचार रूप मिथ्यात्व के स्वरूप का सक्षिप्त वर्णन किया गया है। उसके पश्चात द्रव्य परावर्तन का स्वरूप उसके पीछे क्षेत्र परावर्तन का स्वरूप तत्पश्चात काल परावर्तन का स्वरूप कहा गया है। उसके बाद भव परावर्तन का स्वरूप कहा गया है। उसके पीछे भाव परावर्तन का स्वरूप सक्षेप से कहकर पांच प्रकार के मिथ्यात्व का स्वरूप सविस्तार कहा गया है। जिसमें पहले विपरीत मिथ्यात्व एकान्त मिथ्यात्व विनय मिथ्यात्व सशय मिथ्यात्व का स्वरूप कहने के पीछे अज्ञान मिथ्यात्व का लक्षण कहकर यह दिखाया गया है कि पच परार्तन का मुख्य कारण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है कि पचपरावर्तन का कारण पच प्रकार का मिथ्यात्व और अनुबध में रहने वालो काषाये है वे अनतानुबधी हैं। वे शैल के समान पत्थर की रेखा के समान बांस की जड़के समान क्रिमि रग के समान होती है उनका का स्वरूप कहा गया है।

इसके पश्चात् सात भवो का संक्षिप्त कथन किया गया है। तथा सात व्यसनों का सविस्तार वर्णन किया गया है सात व्यसनों में प्रसिद्ध पुरुषों की कथाये भी दी गई है। सात व्यसनों को भी सम्यक्त्व का विराधक या कलक कहकर अनंत ससार का कारण बताकर उनका त्याग का उपदेश दिया गया है। इसके पीछे सम्यक्त्व का महात्म्य व सम्यक्त्व के उत्पत्ति के कारण पाच लब्धियों का कथन अनेक प्रकार आगम के अनुसार कहा गया है। स्वयं ही स्पष्ट कर दिया गया है कि आगे की चार लब्धियां भव्य और अभव्य जीवो के अनेक बार प्राप्त हो जाती है परन्तु कारण लब्धि के अभाव में सम्यक्त्व का लाभ नही होता है। प्रथम में क्षयोपशम लब्धि होती है उसके पीछे विशुद्धि देशना आयोग लब्धि ये लब्धियां जीवों को अनेक बार हो जाया करती है परन्तु सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो पाती ! मिथ्यात्व रूप ससार अवशेष रह गया है ऐसे भव्य जीव विशुद्धि लब्धि काल में कर्मो की स्थिति रह जाने पर अनादि मिथ्यादृष्टी जीव करण करता है वे करण तीन होते है अधः करण अपूर्वकरण अनिवृत्ति करण करके अन्तकरण करता है। अंतकरण के प्राप्त होने पर नियम से सम्यक्त्व की प्राप्ति जीव को प्राप्ति होती है।

करणो का कथन करने के पश्चात छह द्रव्यों की स्वभाव पर्याय विभाव पर्याय स्वभाव व्यजन पर्याय विभाव व्यजन पर्याय स्वभाव अर्थपर्याय विभाव अर्थपर्याय का कथन करके पचास्ति कायो का कथन किया गया है। व द्रव्यों के सामान्य गुणों का कथन करके

विशेप प्रत्येक द्रव्य के गुणों का कथन किया गया है। कोई मतावलम्बी क्षणिक जीवादि द्रव्यो को मानते है व पच भूतो से जीव द्रव्य की उत्पत्ति का निशोध किया गया है तथा द्रव्यो का उत्पाद व्यय ध्रोव्य वताकर द्रव्यो का अस्तित्व सिद्ध किया गया है। तथा जो अज्ञान व गुणो के अभाव होने मे मोक्ष मानते है उसका निराकरण करके द्रव्यों की सत्ता गुण विशेष का प्रकाश व रत्नत्रय से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी। एक एक से मोक्ष की प्राप्ति नही इसका निराकरण कर दिया गया है। सात तत्वो मे प्रथम जीव तत्व का कथन कर अजीव तत्वो का कथन किया गया है इसके पीछे आस्रव तत्व का सविस्तार गुण स्थान व मार्गणा स्थानो व जीव समासो मे कथन किया गया है।

आगे वध यत्व का कथन कहा कौन से गुण स्थाना में बध कितनी और कौन कौन सी आकृतियो का वोध होता है। कौन जीव किस परिणाम वाला विशेष कर्म वधक होता है ओर वह वेध कितने प्रकार का होता है और वेद के कारण क्या क्या होते है इनका कथन सक्षिप्त रूप से किया गया है। प्रथम मे १४६ प्रकृतियो का वेद कह कर मुख्य १२० का कहा गया है यह कथन कर्म काण्ड की अपेक्षा से किया गया है। उसके गाद द्रव्य वेद भाव वेद द्रव्य वेद का कारण भाव वेद का कारण वताने के वाद चार प्रकार का वध वताया गया है। प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश वध का निर्ण. करके पुण्य और पापो का प्रश्न उत्तर रूप काव्य है तधा पुण्य पाप आस्रव और वध के अन्तर भूत हो जाते है ऐसा काव्य है।

इसके पश्चात सवर के कारण रूप काव्य है और कार्य रूप काव्य है सम्वर के विशेप भेदो का प्रति पादन किया गया है। किन किन भावो से कर्मो का आस्रव रूक जाता है इसका कथन करके गुण स्थान और मार्गणा स्थानो में सम्वर का निरूपण किया गया है। कौन सा जीव विशेष सवर करने वाला होता है किन जीवों के सामान्य संवर होता है सवर के योग्य भावो का कथन यथा स्थान किया गया है। आगे निर्जश का स्वरूप कहा है तथा कहा कौन सी गति मे व गुण स्थान मे किन किन कर्मो की निर्जदा होती है। द्रव्य निर्जरा और भाय निर्जरा का स्वरूप कपा गया है और सकाम और अकाय निर्जरा का गुण स्थान मार्गणा स्थानो मे निर्यणय कर दिया गया है। कर्मो का उदय सत्ता और सकाम का कथन गुण स्थानों मे किया गया है तथा सकाय निर्जरा एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर असयत गुण स्थान के पूर्व तक वाले जीवो के होती है। परन्तु वह यथार्थ निर्जरा नहो कही गई है क्योकि विशेष कर्म वध का कारण है एसा स्पष्टी करण करके अकाम निर्जरा का कथन किया गया है।

आगे मोक्ष तत्व का कथन किया गया है मोक्ष तत्व का कथन गुण स्थानों की अपेक्षा से कथन किय गया है कहां किस कर्म प्रकृति की सत्ता का क्षय होता है। किस गुण स्थान के अन्त मे परिणामों की विशेप विशुद्ध होती है और वहा पर होती है उस मोक्ष का उपाय और कारण क्या था कव जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है, मोक्ष का स्वरूप कहा गया है। तथा सिद्ध परमात्मा का स्वरूप व सामान्य विशेष गुणों का कथन करके सात तत्वों

का कथन किया गया हैं।

यथानंतर नव देवताओं का कथन किया गया है वे नव देवता अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु ये पंचपरमेष्टी व जिन वाणी जिन मिम्ब प्रतिमा तथा चैत्य लय और चैत्य ये नव देवताओं का कथन विषय का कथन किया गया है। प्रथम में अरहंत के गुणों का कथन किया गया है। तथा उनके अतिशयों का कथन करने के पश्चात सकल परमात्मा होते है वे ही शेष अघातिया कर्मो का नाश कर सिद्ध बन जाते है। अरहंतों की त्रेसठ प्रकृतियों का कथन किया गया है। उसके पश्चात सिद्धो की अवगाहना का निर्णय कर उनके गुणों का व पुनः संसार अवस्था में आने का निसेध रूप काव्य है। उसके आगे आचार्य परमेष्ठी के गुणों का कथन है उनका स्वरूप का कथन किया गया है कि वे आचार्य कितने गम्भीर व कितने दयालु होते है। वे शिष्य पर शिष्यों को किस प्रकार सन्मार्ग में लगाते है इस व्याख्या रूप काव्य है।

आगे उपाध्याय परमेष्ठी के पच्चीश गुणों का उपदेश का निर्णय कर साधुओं के अट्ठाईश मूल गुणों का व उत्तर गुणों का सक्षिप्त कथन किया गया है। तथा जिन वाणी का स्वरूप कहा गया है वह द्रव्य श्रुत और भाव श्रुत रूप से दो विभागों में विभाजित है ऐसा कथन किया गया है। जिन बिम्ब का लक्षण नाम मुद्रा और आकृति का सक्षिप्त कथन करके जिन चैत्य का कथन किया गया है। जिन मन्दिर का कथन किया गया है कि जिन मन्दिर कितने बड़े विवाल होते है मंदिरो से भव्य जीवों को क्या क्या लाभ होता है यह स्पष्टी करण किया गया है। [अरहंत के आठप्रातिहार्य और आठ मगल द्रव्यों का कथन किया गया है। आगे विस्तार पूर्वक सम्यक्त्वे के विरोधी सात व्यसनों का कथन सविस्तार किया गया है व दृष्घान्तों से ओत पोत भर दिया है। आठ पदो का सविस्तार एक एक के ऊपर काव्य पूर्वक कथन किया गया है। आठ सकादिक दोषों का विस्तार पूर्वक विवेचन कर दिया गया है।

छप छनायतन व तीन मूढ़ताओ का कथन करके निशाकित अंग का विस्तार पूर्वक काव्य व्याख्या द्वारा किया गया है, इसमें प्रसिद्ध अंजन चोर की कथा संक्षिप्त रूप में दी गई है। निकांछित अंग का स्वरुप और अनत मती की कथा भी संक्षेप से दी गई है। निर्विःचिकित्सा अंग का सविस्तार काव्य और अर्थ से किया गया है तथा इस अंग में प्रसिद्ध उद्यायन और प्रभावती रानी की कथा सक्षिप्त रुप से दी गई है। अमूढ दृष्टि अंग का सविस्तार पूर्वक कथन करके रेवती रानी की कथा दी गई है विद्याधर शुक्ल के द्वारा छल विद्या कर रेवती रानी की परीक्षा की कथा है। आगे उपगहन अंग का कथन है और उपगून अंग में प्रसिद्ध जिन दत्त श्रेणी की कथा है। स्थिति करण अंग का दो काव्यों में कथन किया गया है तथा उस स्थिति करण अंग में प्रसिद्ध वारिसेन मुनि राज की कथा प्रसिद्ध है। वात्सल्य अंग का कथन व उससे लाभ औ सुगति अविरोध की प्राप्ति का कथन करके उसमें प्रसिद्ध विष्णु कुमार मुनि महाराज प्रसिद्ध हुए है उनकों कथावली प्रहलाद सुक्र और वहस्पति इनका जैन धर्म स्वीकार करना। इसके पश्चात प्रभाना अंग का कथन संक्षेप से

किया गया है तथा इस अंग में प्रसिद्ध वज्रकुमार नामक मुनि प्रसिद्ध हुए है उनकी कथा है।

आगे जैन धर्म में अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधू जिन चैत्य चैत्यालय जिन प्रतिमा जिनवाणी आदि नव देवताओ का उपदेश दिया गया है कि इन नव देवताओं में भिन्न कोई देव नही है। अन्य कोई गुरु है न अन्य कोई परमेष्ठी ही है। इनसे भिन्न अन्य जितने देव व देविया है वे सब ही कुदेव है और कुगुरु है। इनका कथन सामान्य से इस शास्त्र में दृष्टान्त सहित कथन किया गया है। तथा इन नव देवताओ की पूजा भक्ति करने व अनुमोदन करने पर सम्यक्त्व की यथाकाल प्राप्त होती है। रत्नत्रय का मूलाधार सम्यक्त्व है सम्यक्त्व के होने पर ही जप तथा ध्यान शील समादि कर्मो का सम्वर व निर्जरा के कारण होते है अन्यथा कर्म बध के ही कारण कहे गये है।

इसके पश्चात मिथ्यात्व त्याग करने का उपदेश दिया गया है और सम्यक्त्व का उपार्जन करने का उपदेश दिया है। साथ ही मिथ्यात्व का फल और मिथ्यात्व ही के कारण जीव ससार में नाना प्रकार के दु.खो को प्राप्त कर नीच गतियो मे दु.खो का अनुभव कर भ्रमण करता है। यह मिथ्यात्व जीवो का महा वैरी है जब कि सम्यक्त्व दुर्गतियो के दुःखो से जीवों को छुडा कर शुभ गतियो में ले जाता है। साथ ही नरक गति मे देवगति मे त्रियच गति में मनुष्य गति मे सम्यक्त्व उत्पन्न होने मे साधन कितने और कौन-कौन है यह विवेचन किया गया है। मलो से दूषित सम्यक्त्व ससार बन्धन का छेदक नही होता है और सम्यक्त्व के विना जो ज्ञान होता है व मिथ्या ज्ञान है जो चारित्र होता है वह मिथ्या चारित्र यह बताते हुए स्पष्ट कर दिया गया है कि मोक्ष रूपी महल मे जाने के लिए सम्यक्त्व प्रथम सीढ़ी है। या मोक्ष फल जिस वृक्ष पर लगता है उसकी बुनियाद या जड़ है। बुनियाद के बिना मकान व वृक्ष जिसकी स्थिति नही रह जाती है उसी प्रकार सम्यक्त्व को मूल कहा गया है। वहा कौन सी गति मे कौन से जीव के कौन-सा सम्यक्त्व होता है किन जीव के कौन सा सम्यक्त्व होता है इसका निर्णय भली प्रकार किया गया है। इसके पश्चात् आठ अनुयोग द्वार और निक्षो से सम्यक्त्व का कथन किया गया है। पहले अनुयोग द्वार मे सम्यक्त्व की सत्ता कहाँ किस गति में पाई जाती है यह विवेचन किया गया है।

किस गुणस्थान वाले जीवो के कौन सा सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का उदय सत्व पाया जाता है। गुणस्थानो मे स्पष्ट किया गया है। मिथ्यात्व का व अनन्तानुबन्धी कषायो का क्षपक कौन जीव होता है कब और कहाँ होता है यह भी खुलाषा कर दिया गया है। सम्यक्त्व के दश प्रकार है उनका भी यथा काल कथन सरलता पूर्वक किया गया है। किस सम्यक्त्व में कौन सा सम्यक्त्व व सयम होता है कौन सा ज्ञान किस गुण स्थान में होता है यह स्पष्ट किया गया है। कौन सा ज्ञान किस गुण स्थान वाले जीव को प्राप्त होता है गुण स्थान क्या चीज है उसका विवेचन किया गया है। कौन सी इन्द्रिय वाले जीव व गतियो मे कौन-कौन गुणस्थान पाये जाते हैं यह कथन कर दिया गया है। किस काय वाले जीव के निरन्तर मिथ्यात्व का उदय सत्व विद्यमान रहता है किन काय वालों को कब कैसे परिणामों से सम्यक्त्व प्राप्त होता है इसका विवेचन है। योग तीन प्रकार के कहे गये है पहले दूसरे योग के चार-चार भेद

होते है तीसरे योग के सात भेद हैं। इन पन्द्रह योग वाले जीवों के कौन से गुण स्थान होता है कौन सा सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का सत्व रह जाता है। इसका खुलासा प्रयत्न पूर्वक किया है कौन से योग वाले जीवो के कौन सी गति प्राप्त होती है कौन सा गुण स्थान प्राप्त होता है कौन सी मार्गणा में कौन से योगों की सत्ता रहती है। विग्रह गति में किस योग की सत्ता रहती है यह विवेचन कर आगे वेदों में कौन-कौन वेद वाले जीवों के कौन-कौन गुण स्थान पाये जाते है व कौन सा मिथ्यात्व का सत्व रहता है या सम्वक्त्व का सत्व पाया जाता है। कौन-कौन मार्गणा पाई जाती है इसका निर्णय किया गया है।

यहां विवेचन दो प्रकार किया गया है एक भाव वेद दूसरा द्रव्य वेद का लक्ष्य में रखकर गुणस्थानों में विभाजित किया है। स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंकवेद में कौन सा सम्यक्त्व कहां पर होता है कौन से सम्यक्त्व की सत्ता है। कषायें पच्चीस होती है इन कषाय वाले जीवों के कौन जीव के कौन कषाय वाले जीव के मिथ्यात्व का सत्व उदय पाया जाता है कौन जीव के सम्यक्त्व कौन सी कषाय वाले के कौन से गुण स्थान तक पाया जाता है कौन सी मार्गणा में कौन-कौन कषायों का सत्व रहता है किस जाति की कषाये रहती है ऐसा विवेचन किया गया है।

ज्ञान मार्गणा, ज्ञान के दो भेद हैं मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान इस प्रकार दो है मिथ्या ज्ञान में कौन-कौन से गुण स्थान होते है सम्यग्ज्ञान में कौन-कौन से गुण स्थान मार्गणा स्थान होते है। कौन-कौन ज्ञान में सम्यक्त्व की सत्ता पाई जाती है या मिथ्यात्व का सत्व उदय पाया जाता है। कौन सी इन्द्रिय वाले जीवों को कौन सा मिथ्याज्ञान व कौन सा सम्यग्ज्ञान पाया जाता है यह विवेचन किया गया है। संयम के छह। सात। पांच मुख्य भेद हैं कौन से संयम में कितने गुणस्थान व जीव कषाय व मार्गणाये पाई जाती हैं। कौन सा मिथ्यात्व या सम्यक्त्व का सत्व रहता है यह कथन है। चार भेद वाला है किस दर्शन वाले जीव के कौन-कौन गुण स्थान होते हैं कौन-कौन सी मार्गणाये होती है मिथ्यात्व का सत्व कहां तक रहता है। सम्यक्त्व कौन सा रहता है किस सम्यक्त्व का सत्व पाया जाता है। लेश्यायें छह है तीन अशुभ तीन शुभ। इन छहों लेश्या वाले जीवों के कौन-कौन गुण स्थान व जीव समास मार्गणा स्थान होते हैं कौन सा सम्यक्त्व का सत्व रहता है या मिथ्यात्व का सत्व उदय रहता है। भव्य और अभव्य दो प्रकार के है भव्य जीव के कितने गुण स्थान होते हैं कौन-कौन मार्गणायें पाई जाती है कौन सा सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का सत्व पाया जाता है। अभव्य जीव के कौन सा सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का सत्व उदय रहता है इसका स्पष्टीकरण किया गया है। सम्यक्त्व मार्गणा में कौन सा गुणस्थान व मार्गणा स्थान व जीव समास की सत्ता पाई जाती है कहां कौन सा सम्यक्त्व पाया जाता है। कौन सी संज्ञा वाले जीवों के कौन सा गुण स्थान व मार्गणा स्थान व समास पाया जाता है। कौन सी संज्ञा वाले जीवों के मिथ्यात्व का उदय और सत्व रहता है कौन विराधक होता है व सम्यक्त्व की सत्ता वाला होता है असैनी जीव के कौन सा गुणस्थान व मार्गणा स्थान होता है सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का सत्व होता है।

सत्व कहने के पीछे संख्या अनुयोग से जीवों की संख्या कही गई है। मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर अयोग केवली गुणस्थान तक वाले जीवों की किस गुण स्थान में कितनी संख्या कितनी किस मार्गणा में जीव राशि की संख्या है। प्रत्येक गुण स्थान व मार्गणा स्थान में सख्या का निर्णय सम्यग्दृष्टी और मिथ्यादृष्टी जीवों का किया गया है।

क्षेत्र अनुयोग द्वार की अपेक्षा करके मिथ्यात्वादि से लेकर सामान्य और विशेष क्षत्र कितना है। सम्यग्दृष्टी जीव किस क्षेत्र मे निवास करते है मिथ्यादृष्टी जीव कितने क्षेत्र में निवास करते हैं कौन से गुणस्थान वाले जीव लोक में कहा कहां निवास करते है मार्गणा स्थान वाले जीव कहाँ किस लोक क्षेत्र में निवास करते हैं। सम्यग्दृष्टी जीव कितने लोक में या क्षेत्र मे निवास करते है या सब लोक मे इसका विवेचन किया गया है।

आगे काल अनुयोग द्वार के द्वारा सामान्य और विशेप कर मिथ्यात्व की काल मर्यादा व सम्यक्त्व कौन सा सम्यक्त्व किस गति मे कितने काल तक रहता है। अथवा किस-किस गुण स्थान मे कौन सा सम्यक्त्व कितने काल तक रहता है किस सम्यक्त्व की काल मर्यादा किस गति मे कौन से सम्यक्त्व की होती है इत्यादि प्रत्येक मार्गणा मे कथन किया गया है।

इसके पश्चात अन्तर सामान्य विशेष बताया गया है कि मिथ्यात्व किन जीवों के निरन्तर रहता है किन जीवो के सान्तर मिथ्यात्व होता है। किन जीवो के सामान्य से सासादन कितने काल तक रहता है एकबार छूटने के पीछे पुनः कितने काल के वीत जाने पर सासादन गुणस्थान होगा। इस ही प्रकार मिश्र व उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्व एक बार छूटकर पुन: कब कितने काल के बीत जाने पर वही पहले के समान जीव के परिणाम होंगे। तथा पहले के समान उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होगा यह दिखाया गया है। एक बार सयमासंयम होकर छूट गया पुन वही सयमासयम जीव को कितने उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी काल बीत जाने पर होगा। इसका कथन और गुणस्थान और मार्गणा स्थानो की अपेक्षा कर कथन किया गया है।

इसकी समाप्ति होने के पश्चात अल्प बहुत्व अनुयोग द्वार की अपेक्षा कर सामान्य गुण स्थानो मे कथन करने के पश्चात् मार्गणाओ की अपेक्षा कथन किया गया है। उपशम सम्यक्त्व और क्षायक सम्यक्त्व क्षयोपशम सम्यक्त्व इनकी काल मर्यादा की अपेक्षा कथन किया गया है। स्वामी की अपेक्षा उपशम सम्यक्त्व के स्वामी कम है उससे अधिक क्षायक सम्यक्त्व के उसकी अपेक्षा क्षयोपशम सम्यक्त्व के स्वामी अधिक होते हैं। क्योकि एक के अपेक्षा कर विशुद्धता और स्थिति का कथन किया गया है कि कितने काल तक उपशम सम्यक्त्व का वासना काल है। क्षायक सम्यक्त्व का वासना काल उससे अधिक है उससे भी अधिक क्षयोपशम सम्यक्त्व के वासना काल का निर्णय करने पर अल्प बहुत्व प्राप्त होता है विशुद्धता की अपेक्षा कर देश संयम और सकल सयम और गुण स्थानों में किन गुणस्थानों में किन गुण स्थान वाले जीवों के परिणामों की विशेष विशुद्धता कहां किस काल में किस प्रकार पायी जाती है। इस प्रकार भावों की अपेक्षा संयम सम्यक्त्व को आधार कर अल्प बहुत्व का कथन किया गया है।

आगे चलकर योगों कर आस्रव बध किस मार्गणा में किस प्रकार का आस्रव बंध संवर निर्जरा का हेतु बताया गया है। आगे सम्यक्त्व की वृद्धि के कारणों का कथन किया गया है। मिथ्यात्व ही ससार की मूल है और सम्यक्त्व ही मोक्ष महल की पहली सीढ़ीया लड़ी है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान, चारित्र, तप, दान, शील, यम नियम सब ही अनन्त ससार वृद्धि के कारण है। यदि वे ही भाव सम्यक्त्व सहित होवे तो सवर और निर्जरा के कारण होते है इसका विशेष विवेचन करके सम्यग्दृष्टी जीव मरकर कहां कहां उत्पन्न नही होता है यह स्पष्टीकरण करने के पश्चात सम्यग्दृष्टी कौन-कौन से उच्च-उच्च पदों का स्वामी होता है और लोक में सम्यक्त्व की ही क्यों पूजा की जाती है यह कथन किया गया है। इस ग्रन्थ में श्लोक सख्या करीब ७८५ के करीब है। इसमें ग्रन्थकार की रुचि भाव की प्रधानता कर कथन किया गया है। इस ग्रन्थ मे बिशेष यह है कि सम्यक्त्व के ४४ दोष बताए गये है यह भी बताया गया है कि जहा पर ये चौवालीस दोष विद्यमान रहते है वहां पर सम्यक्त्व की उत्पत्ति नही हो सकती। यदि हो जावे तो सम्यक्त्व ठहर नही सकता है क्योकि यहा पर अनन्तानुबन्धी चारित्र मोह की चोकड़ी का निरन्तर उदय पाया जाता है? किस गुणस्थान व मार्गणा स्थान में सामान्य विशेष से कितने किन-किन जीवो के भाव एक साथ रहते हैं? कहां औदयिक भाव कितने रहते है? क्षयोपशमिक भाव कितने है और वे किन जीव के पाये जाते है? क्षायक भाव कौन-कौन से है? और वे कितने किन किन जीवो के यथा वासना काल में पाये जाते है। पारिणामिक भाव कहा किस मार्गणा व गुणस्थान व गुणस्थानातीन जीवो के कौन कौन से परिणामिक भाव पाये जाते है? औपशमिक भाव किन किन जीवों के किस गुणस्थान वालो के व मार्गणा बालों के पाये जाते है? इसका विशेष कथन किया गया है।

आगे चलकर दान का महात्म्य बताकर भगवान की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए। शास्त्र की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए। गुरुओं की भक्ति पूजा किस प्रकार करनी चाहिए। भक्ति का फल और भक्ति करने वाले भक्त को भगवान क्या-क्या देते हैं? इसका विशेष कथन किया गया है। यथा काल में विनयादिक का कथन किया गया है। साथ मे गुरु ने शिष्य को सन्मार्ग और कुमार्ग का हेयोपदेश का उपदेश दिया है। निश्चय सम्यक्त्व व्यवहार सम्यक्त्व का स्पष्टीकरण कर दिया गया है। तथा सम्यक्त्व के भेदों का कथन किया गया है। देव शास्त्र गुरु की पूजा त्रिकाल करना चाहिए। यह पूजा सम्यक्त्व की वृद्धि का कारण है। दृष्टान्त भी दिये गये है कि भक्त जनों को क्या-क्या वस्तुओं का लाभ निरन्तर होता रहता है। यह पूजा सम्यक्त्व वृद्धि का कारण क्यो है? ऐसा प्रश्न उठने पर उत्तर देकर ग्रन्थ समाप्त किया गया है। यहाँ तक सम्यक्त्वाधिकार पूर्ण कर ज्ञान चारित्राधिकार संक्षेप से कहेगे। कर्म काण्ड में बन्ध से बिच्छुत्ती और बन्ध कितने प्रकृतियों का किस गुणस्थान में होता है उनक यहां इस ग्रन्थ में सक्षिप्त रूप से कह आये है। कौन से गति वाले जीवों का मरण कर कौन-कौन सी गतियो में जन्म होता है? और देव मर कर कहाँ किन-किन स्थानों में जन्म लेते है? नारकी जीव मरण कर कहाॅ कहाॅ जन्म लेते है? त्रियच प्राणी मरण कर कहां किस गति में उत्पन्न होते है? मिथ्यादृष्टी मनुष्य कहा-कहाँ कौन सी गति में उत्पन्न होते है। इनका भी स्पष्ट विवेचन किया गया है।

मंगलाचरण

श्री बृषभादि वीरेभ्यो दोषावारण हीनेभ्यः ।
नमोगतरजेभ्यश्च सतदेवेन्द्र वन्दितेः ॥१॥

मै ग्रन्थ कर्ता मुनि ज्ञान भूषण उन प्रथम तीर्थकर वृषभ देव से लेकर अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर पर्यन्त चोबीस तीर्थंकरो के लिए नमस्कार करता हूं । जिन तीर्थंकरों की पूजा सौइन्द्रों के द्वारा की गई है । अरहत भगवान ने ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय इन चारो दोष और आवरणो का नाश कर दिया है उनके लिए जो बृषभ सेन आदि गणधर जी चौदह सौ बावन है उनको नमस्कार करता हूं ।

व्यपगत कषाय रोषं रागद्वेष दोष मल रहितेभ्यः ।
संयम तपरतेभ्यश्च विगतराग जिनमुनिभ्योनमः ॥२॥

जिनका कषाय नष्ट हो गया है तथा जिनका रोष नाश हो गया है तथा क्रोध, मान, माया लोभ इनका भी नाश हो गया है रागद्वेषादि मल दोष है अथवा अठारह दोषों से रहित जो वीतराग है । और अपने सयम में तप रत है जो जिनों में श्रेष्ठ है उन मुनियों को मस्तक भुकाकर नमस्कार करता हूं । इस श्लोक मे मुनियों के विशेषण दिये गये हैं । प्रथम तो क्रोध कषाय को नाश जिसने कर दिया है दूसरे जिसने मान कषाय का मर्दन कर दिया है । तीसरे माया और लोभ कषाय जो राग रूप है उनको जीत लिया है । चौथे अन्तर बाहर मल दोषों से रहित है तथा अठारह जन्म मरणादि दोषो से रहित हैं परम वीतराग मुद्रा के धारक और अन्तरग वाह्य दोनो प्रकार के तपश्चरणो को कर रहे है जो सयम और ध्यान में स्थित है उन मुनि श्रेष्ठो को ही जिनवर कहते है उन मुनियो को मै नमस्कार करता हूं । आचार्य उपाध्यायं और सर्व साधुओ को नमस्कार किया गया है ।

द्वादशांग भारतीं च वाह्यांग प्रविष्ट श्रुतं नमामि ।
तत्पारगेभ्योहत रज शुद्धोपयोगेभ्यश्च ॥३॥

जो द्वादशांग आचारागदि श्रुत है तथा अगवाह्य श्रुत हैं उस जिनवाणी भारती को नमन करता हूं तथा उस श्रुत के पारगामी केवली श्रुत जो शुद्धोपयोग के धारक है और जिन्होने ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र और दान लाभ भोग उपभोग वीर्यान्तराय इन कर्मो का नाश कर दिया है उन श्रुत पारगामी सिद्ध भगवान का अरहंत आचार्य उपाध्याय और मुनियो को उत्तमाग सिर भुकाकर नमस्कार करता हूं ।

अंग प्रविष्ट और अग वाह्य भारती है अगप्रविष्ट के आचारांग सूत्र कृतांगादि

वारह अंग हैं उन सर्व श्रुत को नमस्कार करता हूं। तथा जिनकी कोष्ठ बुद्धि वीज बुद्धि पादानुसारिणी बुद्धि सभिन्न श्रुत के धारक व भण्डार है अथवा जो शुद्धोपयोग से युक्त वृषभ सेन से लेकर अन्तिम सुधर्माचार्य गणधरो को सिर झुकाकर नमस्कार करता हू। अथवा श्रुत केवली हुए है हो रहे है उन सबको नमस्कार करता हूं।

शुद्धोपयोग भी उन ही मुनियो को प्राप्त होता है जिन्होने अन्तरंग और वहिरग परिग्रह का त्याग कर शरीर से भी राग छोड़ दिया है, जो गुण, श्रेणी, कर्मो को निर्जरा करने वाले वीतराग है शुद्धोपयोग को प्राप्त है वे ही जिन श्रुत के पारगामी व श्रुत के भण्डार हो सकते है वे केवली व श्रुत केवली है उनको हमारा नमोस्तु ।३।।

नमः श्रीधरसेनाय चकारागम षट् खण्डम् ।
श्रीगुणधर पुष्पदत भतवली सूरीभ्यः ।।४।।

मैं आचार्य धरसेन स्वामी को नमस्कार करता हू कि जिन्होने अपने योग्य शिष्यो को षट्खडागम का उपदेश दिया था। उन गुणधराचार्य को नमस्कार करता हूं कि जिन्होने कषाय सुत्त आगम की अकलिपि करी थी। उन पुष्पदन्त और भूतवलि युगल मुनियों को नमस्कार करता हूं कि जिन्होने षड्खडागम की अक लिपि कर अज्ञानियों के अज्ञान रूप अन्धकार को नाश किया उन आचार्य भूतिवलि पुष्पदन्त को नमस्कार करता हू ।।४।।

नमः श्री कुन्दकुन्दाय समंतभद्रभारतीम् ।
जिनेन्द्र बुद्धि पूज्यपाद्देवनदवे नमः ।।५।।

पचम काल मे होने वाले आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी है जिन्होंने चोरासी प्रभृतो का अक लिपिवद्ध कर ससारी जीवो के अज्ञान अन्धकार को नाश किया है तथा श्रमण धर्म का और समाधि मरण का सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र का कथन किया है उनको मे नमस्कार करता हू। स्याद्वाद केशरी भगवत् आचार्य समन्त भद्र के द्वारा रची गई जिनवाणी भारती जो जगत जीवो के अन्तरग मे बैठें हुए अज्ञान अन्धकार को नाश करती है उस श्रुत को मैं नमस्कार करता हू। जिन्होने जैन धर्म की प्रशसा देश देशान्तर में फैलाई थी। जिन्होंने भगवान की स्तुति रूप काव्यो की रचना कर अनेक मत मतान्तरों का खण्डन व दोषो को प्रकट कर दिया था और वादियो का मान मर्दन किया जिनके सुनते ही वादी जनो की हाथ की नाडी उसी प्रकार छूट जाती थी कि जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथियो के मध्य में कण्ठीख आ जाता है तब हाथियो के मद नष्ट हो जाते है। उसी प्रकार आचार्य समन्त भद्र थे, जिन्होंने अनेको स्थानो पर वाद किये थे। उन्हे अनेक मन्त्र सिद्धि भी कहते है। जिनके नमस्कार करने को महादेव की पिण्डी सहन न कर सकी वह फट गई और चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति निकली और इस अतिशय को देखकर शिवकोटि राजा जैन धर्मानुयायी बन गया था। उन समत भद्र स्वामी को मैं नमस्कार करता हू। तथा समन्त भद्र भारती को तथा पूज्यपाद देवनन्दी आचार्य को नमस्कार करता हू जिनको बुद्धि जिनेन्द्र भगवान के समान उपमा से युक्त है। जिन्होने श्रावकाचार, इष्टोपदेश, समाधि तत्र, सर्वार्थ सिद्धि और जैनेन्द्र व्याकरण आदि अनेक ग्रन्थो की रचना की थी।

भट्टाकलंकदेवाय श्री विद्यानन्द वाक्पतिम्।
प्रथमद्वितीयौजिन सेनाभ्यो: वसुनंदये ॥६॥

स्वामी आचार्य भट्ट अकलंदेव व वाग्पति विद्यानन्द देव को मैं नमस्कार करता हूं कि जिन्होंने वाद वादियों के मद को नाश किया था। जिन्होंने श्लोक वार्तिक अष्ट सहस्री आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी उन प्रसिद्ध विद्यानन्द देव को मैं नमस्कार करता हूं। प्रथम जिनसेनाचार्य और दूसरे जिनसेनाचार्य तथा वसुनन्दी आचार्य की मैं मस्तक झुकाकर वन्दना करता हूं।

नमः श्री शांति सिंधवे श्री पायसागरायैवम्।
श्री वीरसागराय च नमः श्री जयकीर्तये ॥७॥

उन पचम काल में अज्ञान अन्धकार को नष्ट करने वाले व चरित्र का प्रकाश करने वाले चरित्र चक्रवर्ती परम पूज्य प्रातः वन्दनीय आचार्य शान्ति सागर को तथा उनके पट्ठ शिष्य पाय सागर, वीर सागर, कुन्थ सागर को मै नमस्कार करता हू तथा पाय सागर के शिष्य जय कीर्ति मुनि राज को नमस्कार करता हूं।

मह्यं विद्यापपाठल स्मरामि शान्तिरर्जिकां।
दीक्षा गुरुवे नमः देशभूषणायैवम् ॥८॥

मैं उन आर्यिका शान्तिमती को स्मरण करता हू कि जिन्होंने अपनी मधुर वाणो का उपदेश देकर मुझे विद्या अध्ययन कराई थी। तथा संसार के मार्ग से निकाल कर सन्मार्ग में लगाया था। अपने दीक्षा गुरु श्री आचार्य देशभूषण महाराज को नमस्कार करता हूं कि जिन्होंने अनेक कन्नड, संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों की हिन्दी भाषा में टीकायें लिखी है। तथा कन्नड़ मे भी अनुवाद किया है।

मैं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र को नमस्कार करता हूं तथा उसी प्रकार

रत्न त्रयं च वन्दे चौवीस जिनानां पंचगुरूणां।
सर्वदा चारण चरणं भारतीं च भक्त्या च वदे ॥९॥

ऋषभादि चौवीस तीर्थंकर परमात्मा हुए है उनको भी नमस्कार करता हूं। पंच गुरु अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्व साधू इन पंच गुरुओ को नमस्कार करता हूं चारण चरण महा ऋधियों के धारक मुनियो को नमस्कार करता हूं। तथा भक्ति से उस जिनवाणी भारती को नमस्कार करता हूं।

ॐ

वीतरागायनमः

प्रबोधसार तत्त्व दर्शन

नमः श्रीजिन चन्द्राय मोहं संज्ञा ज्वरक्षयात् ।।
प्रबोधसार साराध्य प्रवक्ष्ये स्व हितार्थाय ।।१।।

श्रीजिन जिनेन्द्र भगवान आदिनाथ से लेकर महावीर स्वामी तक चतुर्विंशति तीर्थंकर हुए है उन्होने अपने दर्शनमोह और चारित्रमोह का नाश कर दिया है। जिस संज्ञा रूपी ज्वर से सब ससारी जीव दुखी हो रहे थे उन चारों संज्ञाओं (आहार, भय, मैथुन और परिग्रह) का नाश कर दिया है तथा संज्ञाओं के साथ ही ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय कर्मो का नाश करके अतरग लक्ष्मी, क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक चारित्र, केवल ज्ञान और केवल दर्शन तथा अनत दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य रूप अन्तरग लक्ष्मी तथा वाह्य में बारह सभा आठ प्रातिहार्यो सहित विराजमान है उन श्री जिनों मे चन्द्रमा के समान प्रकाश मान हो रहे श्री आदिनाथ भगवान को नमस्कार करता हूं। यह प्रबोधसार नाम का जो ग्रन्थ है उसको मैं अपने हित के लिये कहता हूं। यह प्रबोध सार ग्रन्थ अपने कल्याण के लिये मै रचना कर रहा हूं। इसमें आगम के कुछ आराधने योग्य पदार्थो का लक्षण कहेगे ऐसी ग्रन्थकार ने प्रतिज्ञा की।

संसार भीषणं वह्नि जीवा तपन्ति नित्यैव ।।
प्राप्नुवन्ति च दुःख ये भ्रमेत्पंचपरावर्ते ।।२।।

यह ससार महाभयंकर अग्नि के समान है इसमें जीव अनन्त काल से जन्म मरण जरा बुढापा को प्राप्त कर महाघोर दुःखों को प्राप्त हो दुःखी होते आ रहे है तथा पचेन्द्रिय विषयाशारूपी अग्नि धधक रही है उसमें मिथ्यात्व और अज्ञान रूपी ईधन पड़ा हुआ है जो रागद्वेष रूपी भयकर तूफान चलने के कारण विशेष रूप से जिसकी ज्वाला उठा रही है। जिससे सर्व लोक में रहने वाले प्राणी तप्तायमान हो रहे है। तथा दर्शन मोह और चारित्र मोह के उदय होने के कारण जीव पचपरावर्तन रूप संसार में दुःखो का अनुभव करता हुआ भ्रमण करता चला आ रहा है। वे पच परावर्तन द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव भेद वाले हैं इनका कथन सविस्तार पूर्वक आगे किया जायगा।

चतुरशीति लक्षयोनिषु पावन्ति दुःखं च ।।
विक्रान्तमरणं नित्यं कृत्वा कुदेव धर्मौ च ।।३।।

यह भोला अज्ञानी मिथ्यात्व रूपी अधकार के वीच में फॅसा हुआ कुदेव कुगुरु और

कुधर्म की आराधना करता चला आ रहा है जिससे चौरासी लाख योनियों में जन्म मरण के दु खो का अनुभव कर रहा है। तथा वे योनि इस प्रकार है नित्य निगोद ससार चतुरगति निगोद पृथ्वी जल अग्नि वायु इन छह की प्रत्येक की सात-सात लाख हैं वनस्पति की दश लाख दो तीन चार इन्द्रिय जीवो की दो दो लाख योनि है। देव नारकी पंचेन्द्रिय त्रियचो की चार-चार लक्ष तथा मनुष्यो की चौदह लक्ष योनिहै इन में जीव जन्म मरण रूपी रहट मे झूला करते है ।।३।।

आगे कुदेव का स्वरूप कहते है।

पिप्पल कदली निम्बाः वट केरिकरीराश्च ।।
सुखार्थिनश्च नंदन्ति भूगौ गजाऽस्वकीशानां ।।४।।

यह मोही अज्ञानी जीव अज्ञानता से पीपल नीम बड केला व आवला के वृक्ष करीर तथा नारियल के वृक्षो की पूजा करते है नमस्कार करते है यज्ञोपवीत पहनाते है तथा जल से वृक्षो की पिंडिका को धोते है। तथा दूध दही पूड़ी खीर हलुआ इत्यादि वस्तुओ से तथा भात पूडी पापड़ी इत्यादि अनेक बस्तुओ से पूजते है। पीपल वृक्ष तथा वटके वृक्ष को व केला आँवला के वृक्ष को ब्राह्मण मान पूजते है नमस्कार कर विनती करते है प्रदक्षिणा देकर मस्तक पर धूलि लगाते है। तथा तुलशा के वृक्ष को विष्णु भगवान की औरत मानकर चूडी पहनाते है तथा वस्त्रो से सजाते है और प्रदक्षिणा देकर दीपक से आरती करते है तथा उसके ऊपर पानी डालते हे और उसके पत्तो को तोड़ कर खा जाते है।

सुख की इच्छा से भूमि की तथा गाय की पूजा करते है तथा तैतीस करोड देवताओ का वास एक गाय के सर्वांग में होता है फिर भी वह गाय बिष्टा खाती फिरती है। बैल हाथी घोडा और बदरो की तथा बकरी भेड इत्यादि को देव मानकर पूजा करते कराते है तथा हलदी गुड सिघाडा की लापसी बनाकर हाथी की सूड पर लगाते है और नमस्कार करते है। तथा गाय के पीछे के प्रष्ठ भाग कमर व पूछ के पुट्ठो को स्पर्श कर गाय के पैरों को छूते है। और गाय के मूत्र को पवित्र मानकर पीते हैं। तथा अपने मस्तक पर चढाते है बकरी के मुख की गति पवित्र मानकर उसके मुख से स्पर्श की गई वस्तु को भी पवित्र मानते है और उस झूठन को बड़े आनन्द के साथ सबको बाँट कर खाते है और आनन्द मानते है। बदर को हनुमान का वंशज मानकर उसकी पूजा करते है नमस्कार करते है घोड़ा-घोड़ी को अपना रक्षक मानकर उसकी पूजा करते है पीठ पर घी गुड लगाते है और कुआ बावडी पूजने को ले जाते है और सुख की अभिलाषा करते है।

आगे और भी कहते है ।।४।।

पृथ्वी नीराग्नि वायुश्चाकाशभूतानि नदन्ति ।।
स्तुवन्ति वालुकापु ज पिंडदानादिमूढतः ।।५।।

पृथ्वी को देवी मानकर पूजा करता है जल अक्षत नैवेद्य चढाता है तथा नमस्कार कर बारबार विनती करता है कहता कि हम आप की सेवा मे उपस्थित हुए है। आप हमें तथा सेवको को सुख प्रदान करो दु खो को दूर करो। हम को धन धान्य से परिपूर्ण करो। स्त्री

पुत्र मित्र परिजनों की समृद्धि करो। हे जल देव आप तो अमृत स्वरूप है तथा आपका नाम अमृत है आप हमारे रोग शोक भय वैरी कृत उपद्रवों का नाश करो। हे जल देव हम सव पूजाकी सामग्री व हवन की द्रव्य लाये हैं और आपकी पूजा करते है आप हमारे तथा पूजक यजमानों के दुःखो को दूर करो हम दुःखों से डरकर आपकी शरण में आये हुए है आप हमसव की रक्षा करो दुःखों का नाश करो सुख संपति प्रदान करो। हमारी चिन्ता व आकुल ताओं को तथा व्याधियों को अपनें प्रवाह से बहा दो। हे अग्नि देवता हमारी रक्षा करो हम ससार के ज्वर से घवडाये हुए है। दानव लोग हमारे पीछे लगे हुए है हमारी सब विद्या बल सैन्य राज सपत्ति का अपहरण करने को उद्यत है उनसे हमारी रक्षा करो। सेवक गण आहुति देकर नमस्कार करते है। तथा हमारे सब प्रकार के दुःखो को भस्म करो आपका नाम भी भस्मक है। अविचल वैकुंठ के सुखो को प्रदान करो। यमराज से हमारी तथा यजमान पूजकों की रक्षा कर उनकी इच्छाओं को पूरा करो यह हमारी प्रार्थना है।

हे वायु देवता आप तीनों लोकों में भ्रमण करने वाले एक ही है क्योकि आपकी दया से प्राणी जीवन ज्योति को जला रहे है। आप ही सब जगत का भरण पोषण करते हुए चले आ रहे है। आपसे कुछ भी छिपा नही है कि जिसको आप न जानते हों। आप गर्मी के मौसम में सबको शीतल मंद सुगधित पवन के द्वारा प्रफुल्लित करते है। आपकी दया से सव वृक्ष लताये फूलती है तथा फलती है। शीत काल में आप मंद-मंद गति से चलते है जिससे प्राणी शीत के दुःख से बच जाते है। आप हम सेवकों पर दया करो हमको तथा पूजकों को धन धान्य स्त्री-पुत्र सवसे युक्तकर हमारे दुःखों का नाश करो। हम अपने को अनाथ जानकर आप की शरण को प्राप्त हुए है आप हम पर दया करो। रोग शोक भय आकुलता दूर करो। हमारे पीछे लगे हुए दानवों का निग्रह करो। हम आपकी पूजा आहुतियों से करते हैं।

हे आकाश देव आप सवसे विशाल है आपका अन्त नही है अंतातीत है आपके उदर में तीनों लोक बसे हुए है आप विष्णू तथा ब्रह्म स्वरूप है आप की पूजा ब्रह्मा विष्णु कार्तिकेय तथा धूर्जटी इत्यादि सब करते है। आप महान है इसलिए हम आप की शरण को प्राप्त हुए है। तथा पूजा की सामिग्री भी लाये है आपकी पूजा भी हम भक्ति-भाव से कर रहे है। आप हमारे सब सकटों का विनाश करो धन धान्य सपत्ति पुत्र मित्र और स्त्री इत्यादि से सेवकों की समृद्धि करो, सुख करो, रोग शोक मृत्यु दूर करो इत्यादि प्रकार से आकाश को देव मान पूजा करते है। स्तवन करते है। तथा पानी चढ़ाकर वेर गुड़ पूडी पापड़ी मिष्टान्न चढ़ा कर पूजा करके नमस्कार करते है। तथा नदी में स्नान कर अपने को शुद्ध मानते है। और कहते है कि नदी के पानी में स्नान करने मे सव पाप मल धुल जाते है पीछे को कोई पाप नहीं रह जाता। तथा नदी में रेत का ढेर लगाकर उसकी पूजा करते है कि हे गंगा आप तीर्थो में प्रधान है आप के पानी में स्नान कर अनेक जीव ससार के दुःखो से छूट चुके है। आपका नाम नन्दीश्वरी है क्योकि आपको महादेव जी ने अपने मस्तक पर जटाओं में धारण किया था। और जटाओं में से आप को निकलने के लिये मार्ग नही मिला तव भागीरथ ने तपस्या की

जिसके प्रभाव से आप महादेव की जटाओं से बाहर निकली। अब हम आपकी शरण मे आये है आप रक्षा करो। इस प्रकार नदी को देवी मानकर पूजा करते है। आप के जल मे यह भस्म लाये हुए है कि आप हमारे पुरखा जो मर गए है उनको पवित्र करो और बैकुठ धाम में रहने दो। इस प्रकार नदी की पूजा स्तवन करते है। विचार कियाजाय कि इन मे देवपना कैसा है।

लिंगं योनौ स्थापय सन्मुखे बलीवर्धोविरच्यते ।।
धनुर्बाण कृपाणं दीवलंमल संग्रह मर्चन्ति ।।६।।
कोऽपि पीरं कुणय वेश्मलं लांगलं वापिकां वाल्मीकम् ।।
आपणं वित्तकोश कथं देवत्वभवन्ति येषाम् ।।७।।

कोई मोही अज्ञानी स्त्री की योनि में पुरुष के लिंग को स्थापन कर उसकी पूजा करते है तथा उसको ही परमात्मा मानते है और उसके सामने नादिया रख कर शिव मानकर पूजते है। कोई धनुष और बाण को कोई तलवार को देव मानते है और आहुति देकर पूजा करते है। तथा देहली पूजते है और घूरे की पूजा करते है और मुट्ठी भरकर कूडा ले आते है। कोई अज्ञानी मृतक शरीर को जमीन मे गाड़कर उसको पीर मान कर उसकी पूजा पुष्प चढाकर करते है उनको गर्मी नही लग जावे इसलिये कपड़ा ढकवाकर शीतल सुगधित पानी छिडकवाते है शीत नही लग जावे इसलिये कपड़ा ढकते है और बार-वार धोक देते है। तथा श्मसान की पूजा करते है और उसको अपना रक्षक मान कर दीपक से आरती करते है पुष्पक्षेपण करते है। कोई अज्ञानी हल मूषल की तथा कोई कुआ बावड़ी की पूजा करते है तालावो की पूजा करते है कोई सर्प की वामी की पूजा करते है वामी मे दूध डालते है विचारते है कि इससे नाग देवता प्रसन्न हो जायेगे तो धन पुत्र स्त्री व निरोगता देवेगे। कोई दुकान को देव मानकर पूजते है नमस्कार करते है धूप दीप से पूजा कर नमस्कार करते है। तथा खजाने की पूजा करते है। यह कुदेवो के लक्षण कहे गये है। इन से किन के देवपना है सो कहो ? इनके देव-पना है ही नही। क्योकि कुछ तो वनस्पति कायक तथा पचभूत एकेन्द्रिय है कुछ एकेन्द्रिय भी नही है, जड हैं किसी के आकार रूप भी नही है वे एकइन्द्रिय जीव आप स्वय जन्म-मरण के दु:ख में पडे हुए है फिर भला तुम उनसे सुख मागते हो वे तुमको कैसे दे सकते है।

मन्यते पुण्यमापगा सागरेषु च छालंने।
मननमात्र पाषाण नोकायामुपविश्यं च ।।८।।

कोई अज्ञानी मानता है कि नदी या समुद्र में स्नान करने से पाप मल सब धुल जाते हैं और पुण्य की वृद्धि हो जाती है, तथा अन्तरात्मा शुद्ध हो जाती है। जिससे जीव को ससार में दु:ख नही भोगने पडते है। परन्तु यह भी मान्यता इस प्रकार की है कि जिस प्रकार कोई पत्थर की नाव मे बैठकर समुद्र को पार करने की इच्छा करता है। पत्थर की नाव डूब जाती है बैठने वाला भी डूब जाता है। कहा भी है।

अत्यन्त मलिनो देहो देही चात्यन्त निर्मल:।
उभयोरन्तरं दृष्ट्वा कस्य शौचविधीयते ।।१।।

अन्य स्थान पर कहा है।

आत्मानदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहाशील तटादयोर्मी ।
तथाभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा ॥१॥
चित्तमंतर्गतंदुष्टं तीर्थस्नानैर्नशुध्यति ।
शतशोऽपि जलैर्धोतं मद्यभांडमिवाशुचि ॥१॥
कामराग मदोन्मत्ताः स्त्रीणां ये वसवर्तिनः ।
न ते जलेन शुद्धवन्ति स्नात्वा तीर्थशतैरपि ॥२॥
गगतोयेन सर्वेण भृद्भारै. पर्वतोपमैः ।
आम्लैरप्यचरन् शौच भावदुष्टो न शुद्धयति ॥३॥
मनोविशुद्धं पुरुषस्य तीर्थ वाचांयमश्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि मोक्षस्य मार्ग प्रति दर्शयन्ति ॥४॥
अरण्येनिर्जले देशेऽशुचित्वद्ब्राह्मणोमृतः ।
वेद वेदांगतत्वज्ञः कां गति स गमिष्यति ॥१॥
यद्यसो नरक याति वेदाः सर्वेनिरर्थकाः ।
अथ स्वर्गमवाप्नोति जलशोचं निरर्थकं ॥२॥

यह शरीर अत्यन्त मलीन है तथा इस शरीर मे रहने वाला आत्मा अत्यन्त निर्मल है इन दोनों मे अन्तर देखकर किसकी शौचि कही जाय ।१

आत्मारूपी नदी है जो सयमरूपी पानी से परिपूर्ण भरी हुई है सत्य जिसका प्रवाह है शील जिसके किनारे है ऐसी आत्मारूपी नदी में हे पाण्डु पुत्र तू स्नान कर केवल नदी मात्र में शरीर के ऊपर लगी हुई रज को धोने से तेरी अन्तर आत्मा शुद्ध नही होगी ।१।

यदि अपना अन्तरंग विकार पापमलयुक्त मन है बाह्य मे शरीर को खूब गंगा, यमुना, कावेरी, गोदावरी, कृष्णा इत्यादि हजारों नदियों व तालाबों में अनेक बार धोने पर भी शुद्ध, पवित्र नही हो सकता । जिस प्रकार शराब के घड़े को हजारों बार धोने पर भी दुर्गन्ध रहित नही हो सकता है ॥१॥

जो कामी दुराचारी स्त्रियों में आसक्त काम भोगों में लीन और स्त्रियों के आधीन हो रहे है वे जीव यदि लवणोदधि के सब पानी से अपने शरीर को पवित्र करना चाहें तो भी पवित्र नहीं हो सकता है । हजारो तीर्थो में स्नान करने से भी वह पवित्र नही होता है ।२।

यदि एक गंगा जी के पानी से स्नान किया जाये तो भी जिनका मन क्रूर है उनकी पवित्रता नही हो सकती है । चाहे पर्वत के बराबर माटी से रगड़ २ कर शरीर को धोया जाय, भाव की शुद्धता के बिना पानी में नहाने से कोई लाभ नही है ॥३॥

मन के विकार को जिसने दूर कर दिया है और सयम, नियम और पंचेन्द्रियों के विषयों को रोक देना तप है ऐसे देहधारियों के तीर्थ है इनमें स्नान करने पर मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है ऐसा बताया है । इस प्रकार भगवद्गीता में कहा है ।४॥

कोई वेद वेदान्त का जाननेवाला ब्राह्मण एक जंगल में गया वहाँ पर पानी नहीं था और उसको शौच लग गई और शौच गया उसी समय यदि मरण हो जाय तब कौन गति

होगी। और नरक चला जावे तो वेद का पढ़ना निरर्थक हुआ। यदि नदी मे स्नान करके भी कोई मरण करके नरक चला जावे तो उसका गगा मे स्नान करना भी निरर्थक हुआ। और बिना गगा के स्नान के यदि वह स्वर्ग चला जाये तो गगा का स्नान करना निरर्थक ठहरा। इसलिए जल मे स्नान मात्र से तो शरीर भी पवित्र नही हो सकता है तब अन्तर आत्मा कैसे शुद्ध होगी।

मोहरूपं महारिपु. संसारस्य महामूलम्।
दु ख पावन्ति जीवैकः संसाराब्धेयेभ्रमत्यसौ ॥६॥

इस ससार मे इस जीव का महावैरी तो दर्शन मोह, और चरित्र मोह ही है जो आत्मा के सम्यक्त्वादि गुणो का घात करता है, यह मोह ही ससार रूपी वृक्ष की जड़ है। इस मोह के कारण ही जीव ससार मे भ्रमण करता है तथा जन्म-मरण आदि व्याधियो के दु.खो को प्राप्त करता हुआ ससार रूपी समुद्र मे मग्न होता हुआ भ्रमण करता है और जीव अकेला ही दु.खो का अनुभव करता है।

संसारस्य यथा भेदार्जिनोपदिष्टपचधा।
द्रव्यक्षेत्रश्च कालश्च भवभावौच विख्यातम् ॥१०॥

ससार के पाच भेद है (द्रव्य क्षेत्र) वे जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये है ये द्रव्य परावर्तन क्षेत्र परावर्तन काल परावर्तन भव परावर्तन भाव परावर्तन ये पॉच परावर्तन जगत मे प्रसिद्ध है। ये पाँचो परावर्तन पॉच प्रकार के मिथ्यात्व से सम्बन्ध रखते है। एक विपरीत, दूसरा अज्ञान, तीसरा विनय, चौथा सशय, पॉचवा एकान्त इन पॉचो को प्राप्त जीव ही एक-एक को लेकर ससार मे जन्ममरण के दु खो को पा रहे है। कुदेवो की पूजा स्तवन करने वाले वेदवादी ब्राह्मण है।

आगे कुदेवो का स्वरूप कहते है :—

भैरव प्रेत भूतानां ,यक्ष राक्षस वैतालाः।
शीताशश्वकौ च शीतला शान्ति दुर्गाच गौरी च ॥११॥
पिशाचयोगिनीकाली शनी राहुश्च तारकाः।
बुधशुक्र तथा केतु. चण्डी चामुण्ड केलिकाः ॥१२॥
कालो वम्बा च भैरवो नागाश्चगण देवता.।
कामार्थो खलुचार्चन्ति बहुधा किन्नराणां च ॥१३॥
विप्र नापितकुम्भकार रजकाश्च तैलिकाः।
बाल्मीगुहा च देहली हारा भूषण वस्त्राणा ॥१४॥
नदी सिंधुश्च वापिका शैल विमान मुद्राणाम्।
हितकांक्षिण एतदर्चन्ति कुदेव भूतानाम् ॥१५॥

यह अज्ञानी, मोही अपने हिताहित के विवेक से रहित भोगो की अभिलाषा कर कुदेवों की नित्य पूजा करता है, आराधना करता है। कभी भैरव (भुमिया, नगरसेन) को पूजा करता है, कही यक्ष देव की पूजा, कही क्षेत्रपाल देव की पूजा करता है। कही पर भूत

व्यन्तर देवों की उपासना करता है। कही यक्ष राक्षस वैताल आदि देवताओं को अपने कुल का रक्षक मानकर उनकी आराधना करता है। आराधना कर उनसे पुत्र, धन, स्त्री, परिवार, राज्य, वैभव की याचना करता है। कभी सूर्य की, कभी चन्द्रमा की पूजा करता है, जल की धारा छोड़ता है, कभी आरती उतारता है, चरु अर्पण कर कहता है कि मैने सूर्य व चन्द्रमा को अर्घ चढ़ाया और जल से स्नान कराया। क्योंकि ये दोनो ही ससार को प्रकाश देते है और सुख देते है कल्याण का पथ दिखाते है। उसके बदले मे उनसे निरोग शरीर तथा भोगों की सामग्री हमको दो हम दुखी है, हमारे कष्टों को दूर करो, योग्य पुत्र, स्त्री, मित्र, माता, पिता, धन योवन दो ऐसी प्रार्थना करता है। शीतला, शान्ता, गौरी, गाधारी, दुर्गा, काली, अम्बा देवी इत्यादि देवियो को प्रसन्न करने के लिए बकरा, भंसा, भेड, मेढा इत्यादि अनेक जीवों को मार-मारकर बलि चढ़ाता है और उनको प्रसन्न करता है तथा प्रसन्न कर याचना करता है कि हे देवी मुझे वरदान दो मुझ पर प्रसन्न हो मुझे पुत्र दो, मै मुकद्दमा से वडा दु:खी हूँ, मेरी मुकद्दमा में जीत हो और धन दो धान्य से घर भर दो स्त्री मित्र क्षेत्र दो और सुख-शान्ति दो रोग तथा वैरियो का नाश करो। हे शीतलादेवी आप सब जगत के जीवों को शान्ति प्रदान करती हो हम आपकी शरण में आये हुए है पूजा व हवन की सामग्री भी साथ में लाये है। हम पूजको पर प्रसन्न होकर हमारे ऊपर आये हुए कष्टों को दूर करो। हे शान्ति देवी आप जगत को शान्त करने में भीमसेन से भी बलवान है और पराक्रमशील है आपका वाहन गरुड़ है आप तलवार, त्रिशूल, वज्रायुध सहित रहकर जगत की रक्षा करती हो आप हम पूजकों की रक्षा करो आशा पूर्ण करो। हम नैवेद्य दीप धूप लेकर आपकी सेवा में आये है हम तथा सेवकगण आपका ही कीर्तन व गुणानुवाद करते है हम पर शीघ्र ही प्रसन्न होओ। दुर्गाभवानी, गौरी, गाधारी, पिशाचिनी, योगिनी, काली, चण्डी मुण्डी, केलिका, अम्बा इत्यादि देवियो की भक्ति करता है सुख की कामना करता है तथा देवियो के नाम पर भैसा, बकरा, मेढा आदि जानवरो की वलि चढ़ाता है तथा हस, मुर्गी इत्यादि अनेक पक्षियों की बलि चढ़ाता है यह उसके बदले में यश-कीर्ति सुख-सम्पत्ति की इच्छा करता है तथा पुत्र धन स्त्री राज्य वैभव और निरोग शरीर की याचना करता है। शनी राहू केतू बुध गुरु मगल और शुक्र इन ग्रहो को अपना हितकारी जानकर आराधना करता है स्तवन करता है। यह कुदेव पूजा है। ये सब कुदेव स्वयं ही भिखारी है वे आगे भेट मॉगते है जो पहले भेट मॉगता है वह भेट देनें वाले को पुत्र मित्र सुख-संपदा दे सकता है? यह सब कुदेव पूजा है।

ब्राह्मण व गुसाई, फकीर, साई, नाई, धोबी, तेली आदि के घर पर जाकर नाई की कैंची, छुरा की पूजा करता है तथा भेट में सवा रुपया देता है तथा धोबी के घर जाकर उसकी मोगरी को पूजता है और धोबी को नमस्कार कर भेट देता है। विवाह आदिक में तेली के घर तेल लेने जाते है और उसके कोल्हू व लाट की पूजा करते है, रुपया पैसा पूड़ी पुआ इत्यादि से पूजा करते है तथा नारियल लेकर फोड़ते है। सर्प की वामी को पूजते है, वामी में दूध की धारा छोड़ते है व नाग पूजा करते है। गुहा कंदरा की पूजा करते, घर की देहरी की पूजा करते तथा दीपावली के दिन हार ककण वाजूवंदन आदि की पूजा

करते नमस्कार करते आरती उतारते तथा नदी समुद्र की पूजा व कुआ बावडी की पूजा करते, रामनौमी तथा दीपावली के दिन रुपया पैसा आदि का ढेर लगाकर पूजते आरती उतारकर नमस्कार करते है। अन्न देवता मानकर दुकान मकानादिक की पूजा करते है और उससे अपना हित चाहते है परन्तु हित होता हुआ दिखाई नही देता है। यह सब कुदेव पूजा व अदेव पूजा का सक्षिप्त कथन किया है।

आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे कहा है .—

वरोपलिप्स आसावान् रागद्वेषमलीमसा।
देवतायदुपाशीत देवता मूढमुच्यते ॥२६॥

जो राग द्वेष जन्म-मरण के दुखो से भयभीत है कोई भक्त उन देवताओ की पूजा भक्ति करता है पूजता है और उनसे अपनी इच्छाओ को प्रकट कर मांगता है वर पाने की इच्छा करता है उसी का नाम देव मूढता है।

आगे अगुरु कुगुरु का लक्षण कहते है —

मान्यन्तेविवुधा राग द्वेष युक्ता जनार्गुरून्।
काक हंस वकाश्येनाः पृथ्वीजलतेजानां ।१६॥
वायुगगन सागरा' पामर निशिभोजिनां।
विप्रो गुसायः लाशवा हिंसका सत्य भाषकान् ॥१७॥
ये पररमणीरता. चौर परिग्रहेसक्ता।
कांञ्छारसरता कथं गुरुवरः कि माप्तनुत् ॥१८॥

अज्ञानी भोले-भाले कुगुरुओ से ठगाये गये मोह बस यह मानते है कि ये कौआ हस वगुला चील बाज तथा गृद्ध व पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश और समुद्र तथा पर्वत को अपना गुरु मानकर पूजते है। इनके गुणो को धारण करो ये हमको शिक्षा देते है ये ही महान् है। जो नीच कुलो मे उत्पन्न हुए है रात्रि में भोजन करते है कन्दमूल खाते है और मासाहार करते है तथा मदिरापान कर मत्त मनुष्य के समान रहते है गाजा चर्श भग अफीम आदि अनेक नशीली बस्तुओ का सेवन करते है। जो ब्राह्मण क्षत्रिय वश मे व वैश्य वश मे उत्पन्न हुए हैं और दुराचारी है रागी द्वेषी मोही पचेन्द्रियो के विषयो मे आसक्त है दुराचारी है वे सब अगुरु है। जो पर रमणी को देख उनमे आसक्त हो जाते है तथा रतिदान मॉगने लग जाते है तथा पर स्त्रियो के साथ भोग भोगने लग जाते है दुराचारी जाति कुजाति के विचार से शून्य है वे दुराचारी गुरु नही हो सकते है। आरभ खेती करना मकान बनवाना कुआँ खुदवाना झाड़ना बुहारना लीपना पानी भरना इत्यादि आरम्भ कार्यो मे रत रहते है जो जीवो की हिंसा करने में रत है झूठ बोलकर लोगो को ठगा करते है व चोरी करते है और बाह्य दश प्रकार के परिग्रह तथा आरम्भ में रत रहने वाले है वे सब अगुरु है। गुसाँई जाति विशेष मे उत्पन्न हुए है भीख मागकर पेट भरते है जो चांडालादि जातियो मे उंत्पन्न हुए है वे सब अगुरु है। उनके पास गुरुत्व नही हो सकता। जो आरम्भादि व कषाय क्रोधादि तथा भावों में रत है व पचेन्द्रियाँ के विषय रूप, रस, गध,-शब्द, स्पर्श तथा खट्टा, मीठा, खारा,

चरपरा कड़ुआ और कषोला आदि रसों में आशक्त है वे सब अनंत संसारी हैं वे गुरु नही हो सकते वे सब ही अगुरु है गुरुपने को प्राप्त नही हो सकते । १६।१७।१८ ॥

विषयाशक्तचित्ताश्च रागद्वेष मलीमसा ॥
आरम्भहिंसने लीना कुगुरु मन्यतेमुनिः ॥१९॥

पंचेन्द्रियो विषयो में आसक्त है मन जिनका जो किसी से राग करते है किसी से द्वेष वैर करते हैं तथा जिनका मन रागद्वेष में मगन हैं और आरम्भादि हिंसा कार्यो में लवलीन है जो मित्थात्व के पोषक तथा भोजन के लम्पटी है जो जीवों की विराधना रूप हिसा से युक्त है। जो प्राणियो के विवेक से शून्य है माया मिथ्यात्व और निदान इन तीनों सल्यों से युक्त कृष्ण लेश्या के धारण करने वाले है और समीचीन धर्म से द्वेष करने वाले है ऐसे जो पाखण्डी है वे कुगुरु है। जिनका मन क्रोध, मान, माया, लोभ चारो कषायो से कलुषित रहता है। जो गाजा, भाँग, धतूरा, सुलफा, जरदा, बीड़ी, सिगरेट का पान करते ही रहते है और नशो में डूबे रहते है। नशा के आवेश में आकर खोटे वचन गाली गलोज भी बोलने लग जाते है वे सब कुगुरु है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ॥१९॥

पलं भुंजन्ति मद्यपाः रण्डारमण कारकाः
रात्रौ भुञ्यमगालितं तोयं पिबन्ति कापालाः ॥२०॥

जो रसना इन्द्रिय के लोलुपी विवेक हीन मासभक्षण करते है तथा शहद शराब ताड़ी का पान करते है। परस्त्री राँड विधवा स्त्री को बहलाकर उनके साथ विषय भोग करते है स्त्रियो को देख कर रण्डा रण्डा कहकर खोटा वचन निकालते है और अपने को अवधूत कहते है। अपने पास स्त्रियो को रखते है तथा जगलों में से कद खोदकर लाते हैं और उनको अग्नि में भूनकर खा लेते है। आलू सकरकद, अरबी, गाजर, मूली रतालू इत्यादि कन्दों को खाकर अपनी क्षुधा को शान्त करते है। तथा रात्रि मे भोजन करते है जो रात्रि का भोजन मास के समान तथा पानी रक्त के समान महाभारत शिवपुराण मारकण्डेय पुराण में कहा है। नदी तालाब कुआँ बावड़ी समुद्रादि मे स्नान करते है बिना छाना पानी पीते है जो खेती करते है जग्याओ के गादीदार बने हुए है सर्प बिच्छू आदि जहरीले जानवरो को देखते ही निर्दयतापूर्वक मार डालते है ऐसे कापालिक जटाधारी कुगुरु है।२०॥

आशायुक्ताश्शरीरं च शोषयन्ति च किल्विषाः
आपगासिंधवोः स्नानं जटा शस्त्रादि धारकाः ॥२१॥

जो आशाओं के वशीभूत परिग्रह की प्राप्ति के लिए शरीर को सुखा देते है तथा खोटे बातो की धारक नीच वृत्ति को करते है। अज्ञान तप करते है काँटों की शैया पर शयन करते है काटे चुभने की वेदना को भी सहन करते है। पचाग्नि तप करते है जिससे सारा शरीर अधजले के समान हो जाता है। और वर्षो तक खडगासन से खड़े रहकर अनेक प्रकार के शारीरिक कष्टों को सहन करते है। तथा महीनो तक पानी पीकर लोग व कालीमिरच चबा कर भी रह जाते हैं! दिन में सब प्रकार के अन्न जल का त्याग कर अंधकार में भोजन पान करते है। तथा अपने मस्तक पर जटाये बढाते हैं जिसमें जुआँ पड़ जाते है तब उनको मारने का

प्रयत्न करते है । गगा, गोदावरी, कावेरी, नर्मदा तथा समुद्र मे स्नान करते है जब जटाओ को खोलकर फैलादेते हे तो जल मे विचरने वाली मीनें फंस जाती है और मर जाती है। पुस्कर जी के तालाव मे कूद कर स्नान कर अपनें जटाओ को खोल देते है खाने की लम्पट मछलियॉं आ जाती है और फँसकर मर जाती है। इस प्रकार महत जटाओ के धारक होते हुए अपने पास चिमटा कुल्हाडी फर्सा कुसादि हथियार रखते है वे सब कुगुरु है; कुलिगी हैं।

दम्वीवराकपाखण्डी मायाव्यन्तर सेवका.
परमहंस नागादि सर्व कुगुरुरुच्यते ॥२२॥

जो अपने तप के मद मे डूबे हुए है जो नीच वृत्ति के धारक आर्त्त ध्यान तथा रौद्र ध्यान के धारक है पाखण्डी है मायाचारी जिन के रग-रग मे भरी हुई है कहते कुछ करते कुछ है भावना अतरग से भिन्न होती है। जो लोगो को दिखाते है कि हम सिर्फ पानी पीकर रहते है रात्रि मे परस्त्रियो से छिपाकर भोजन मगाकर खा लेते है पर स्त्री को देखना भी नफरत करते है रात्रि मे स्त्रियो के साथ भोग विलास रति क्रीडा करते है तथा गदे तालाब मे बहता हुआ पानी पी लेते है। जो लोभी परिग्रह सग्रहासक्त होतें है जो हाथी घोडा गाये रखते है तथा चढकर चलते है तथा चर्म मृगछाला को पहनते है। बिछाकर बैठते है तथा मनुष्य की मस्तक की खोपडी को अपने पास रखते है जो चण्डी काली दुर्गा भैरव केला भवानी, चामुण्डी, प्रेत, राक्षस, यक्ष, यमादि अनेक व्यन्तरो की सेवा करते है उनको प्रसन्न करने के लिए बलि चढाते है। सैतान, साकनी, डाकिनी, चुड़ैल, वैताली, आदि व्यन्तरिनियो की सेवा करने मे लवलीन रहते है। तथा देवताओ को प्रसन्न करने के लिए पशुओ की बलि दिया करते है तथा बलि देकर उस मुरदा के मास को देवता का प्रसाद मानकर खा जाते है ऐसा पाखण्डी साधू तथा जो नग्न रहते है लिगी मे छला डाले रहते है शरीर पर भभूति रमाये हुए दिन रात आग से अग्नि से तापते रहते है अग्नि जलानें पानी भरने झाड़ू देनें रूप आरम्भ करते है। भीख मागते है लड़ाई लड़ना लाठी चलाना यह ही उनका परम कर्तव्य है इसीलिए जिस पर क्रोधित हो जाते है उसको मारे बिना चैन नही लेते है वे पाखण्डी मूढ नागा परम हस गुरु नही हो सकते वे तो कुगुरु ही है। और भी सुनिये।

स्वेतवस्त्र मुखे पत्रः दण्ड पात्राणि धारकाः
विहीन सयमोनरा स्तेऽपिगुरु न शसयाः ॥२३॥

जो सफेद वस्त्र के धारक है और अपने को निग्रथ मुनि मान लेते है तथा मुख पर चार अगुल चौड़ी या दो अगुल चौड़ो पट्टी रखते है तथा लाठी कम्बल रखते है घर-घर जाकर माग-माग कर वरतनो के धोवन का पानी मागकर लाते है और एकात मे बैठ कर खा लेते है। जो कहार, काछी, माली, जाट, कुम्हार इत्यादि मासाहारियो के यहाँ से भोजन लाकर अपने उदर की पूर्ति करते हैं। और अपनें को मुनि कहते है। जो स्त्रियो से भीख के टुकड़े मगा करके खा लेते है। उधर यह भी कहते है कि हम स्त्रियो को पास भी नही आने देते है तब उनसे भीख मगवाकर आप खालेना कितना उचित है अपने परिग्रह की प्रशसा करते है तथा अपने को निरग्रन्थ कहते है। मुख पर कपड़े की पट्टी बाँधते है जो पात्र रूप व कम-

डल ७२ गज कपड़ा तथा ९६ गज कपड़ा का परिग्रह धारण करते है और चादर बिछौना आदि रखते है वे कुगुरु है अपने को महाव्रतो का धारक कहते है तथा पानी विना छना पीते है विना छने पानी से बनी हुई वस्तुओं को खाते है। अचार, मुरब्बा, आलू, गोभी, प्याज, सकरकद आदि अनंत कायक वस्तुओ को सुख पूर्वक खाते है जब कि गृहस्थों को ग्रंथकारों ने यह निषेध किया है। महाभारत मे चार नरक के द्वार कहे है पहला रात्रि भोजन दूसरा पर स्त्री के साथ मैथुन करना तीसरा अनत काप आलू गोभी सकरकंद प्याज चौथा मुरब्वा अचार का खाने वाला हिसक है इनमें बहुत अगणित जीवो की उत्पत्ति होतो रहती है वे भी मास खाने के समान ही माने गये है। इनको खाने वाले को नरक जाना पड़ता है इधर अपने को महाव्रती कहते है उधर बिना छना पानी अचार जमीकन्द भक्षण करने वाले कैसे अहिसक बन सकते है। जहाँ भी बैठते है वही पर खाना पानी चालू रखते है वे सयम हीन गुरुत्वपने को नही प्राप्त होते है वे कुगुरु है। इधर तो लोगो को उपदेश देते रहते है कि अणुव्रतो का पालन करो उधर आप स्वयम् अणुव्रतो का पालन नही करते है। रात्रि में शौचादि क्रिया करने को पानी नही रखते है जब रात्रि में शौचादिक क्रिया करते है और वह क्रिया अपने साथ में लाये हुये पात्र मे रख लेते है गुदा स्थान को धोते ही नही क्योकि विना पानी के कैसे धोया जाय कैसे हाथ प्रक्षालन किया जावे। घरों में पात्र लेकर जाते है वहा पर यदि कोई शुद्धता पूर्वक हाथ धोकर भोजन देवे तो वे लेते नही है वे वापस लौट आते है। यदि किसी अपवित्र वस्तु से हाथ दुर्गंधित या अन्य प्रकार का होता है तो वे विना धोये हुए हाथ से भोजन ले लेते है तथा यदि कोई गृहस्थ भोजन कर रहा हो और उसने अपनी थाली में से उच्छिष्ट भोजन देदिया तो उसको सहर्ष ले लेते है और कहते है कि आज शुद्ध आहार मिला शौच जगल मे जाते है वहा शौच होने के पीछे लकड़ी लेकर भिष्ठा को इधर-उधर फेंक देते है उसमे कहते है कि हमारे मल मे कीड़ा उत्पन्न नही होगे जिससे हिसा नही होगी। दूसरी तरफ यह कहते है कि यदि कषाई गाय, भैस, बकरी आदि को मार रहा हो तो उसको मत बचाओ। जो मारता है उसको मारने दो उसका वही कार्य है जिनके यहा पर इतनी निर्दयता है वे गुरु कैसे हो सकते है वे सब कुगुरु ही है।

कुधर्म का स्वरूप

पर्वतात् पतने नद्यामग्नौ मकर शंक्रान्ते ॥
गोदानं तिलदानं च कुम्भार्चने न धर्मोऽस्ति ॥२४

अज्ञानी मोही जीव, मिथ्यादृष्टि जीव याचक जनों के उपदेश को सुन कर पहाड़ से गिर कर मरने पर धर्म होता है सुख मिलता है पुत्र पौत्रादि होते है। विचार करते है कि पर्वत से गिर कर मरता है वह विष्णु भगवान के निश्चित स्थान बैकुण्ठ का वासी होता है। धन धान्य पुत्र स्त्रियों से समृद्ध होता है। जो नदी में डूबकर मरते वे ब्रह्मलोक के वासी होते है उनकी सेवा मे हजारों स्त्री पुरुष होते है तथा धन धान्य स्त्री पुरुष राज्य वैभव का स्वामी होते है यह नदी में डूबकर मरण करने का हो फल होता है यही काशी करवट लेने

का फल है ऐसा ब्रह्मा जी ने धर्म का उपदेश दिया है । यही धर्म का फल है धर्म मान कर मकर की सकरांत के दिन गोदान देना और तिलदान देना तथा कुम्भराज की पूजा करना व सूर्य को सन्मुख कर धान्य की धारा छोडना उसको ब्रह्मण को देना उसमे धर्म मानना इत्यादि प्रकार से धर्म नही होता है यह तो कुधर्म ही है ।

गोऽस्व ब्राह्मणमेधा पशुहोमं च याचका:
धर्मविद्यांग कुर्वन्ति कन्या हेम प्रदानंच ।।२५।।

धर्म और पुण्य मानकर अश्वमेध, गजमेध, ब्राह्मणमेध, गोमेध, नृपालमेध, अजामेध स्थापना कर उसमे अनेक दीन-हीन पशुओ को जीवित ही अग्नि मे होम देते है तथा मार करहोम देते है जबवे बुरी दशा मे मरते है तब कहते है किदेखो वेद मत्र की आहुति देने से मरे हुए तथा यज्ञ मे होमे हुए जीव धर्म के प्रभाव से स्वर्ग मे गये है । इन जीवो को यज्ञ मे होम देने को ही ब्रह्मा ने बनाया है इनके हवन करने मे कोई दोष नही । सब जीवो को यज्ञ करना चाहिए यज्ञ के समान दूसरा कोई धर्म नही है । इस यज्ञ धर्म से ही जीवो को मोक्ष मिलता है (नित्यं होम क्रिया मोक्ष:) इति सूत्र है । इसका अर्थ यह है नित्य हर रोज यज्ञ करो जिससे तुम दुर्गति से बच जाओगे और मोक्ष की प्राप्ति होगी । नित्य होम सवको करना चाहिए यही धर्म मोक्ष और मोक्ष का उपाय है । तथा धर्म के ज़ानने वाले ब्रह्मा विष्णु शकर आदि ने कहा है धर्म मान कर दूसरो की पुत्र-पुत्री का कन्यादान देना तथा ब्राह्मणो को सुवर्ण दान देना मागने वाले को धर्म मान धन देना सुवर्ण देना तथा गाय भेंस इत्यादि पशुओ को धर्म मान कर दान देना भी धर्म नही है यह कुधर्म है ।

मन्यते लौकिका धर्मो सरिता सागरेस्नाने ।
कल्मषानिक्षयार्थ च बालुकापिण्डदानेषु ।।२६।।

अज्ञानी मोही (जीव) लौकिक जन गगा गोदावरी कृष्णा कावेरी और नर्मदा इत्यादि नदियो मे स्नान करने मे धर्म मानते है । तथा समुद्र मे स्नान करने मे ध्रर्ममानते है अथवा धर्म मान कर नदी समुद्र तालाब आदि मे गोता लगाकर स्नान-करते है और विचार करते है कि बस अब हमारे जन्म मे किये गये सब पाप धुल गये और हमारी आत्मा पवित्र हो गई । तब विचार करते है कि हमारे दादे परदादे मर चुके है अब उनको दुर्गति के दुखो से निकालना चाहिये । यहाँ धर्म कर पित्रो को स्वर्ग व मोक्ष में पहुँचाना चाहिये । इस भावना को लेकर बालू का पु जकर विप्रको बुलवाकर पिण्ड दान करवाते है और कहते है कि तुम्हारे इस धर्म के प्रभाव से तुम्हारे पूर्वज़ सब बैकुण्ठ धाम को प्राप्त होगे तथा दुर्गति के दुख से छूट जावेगे ।।२३।।

काक दानं बलीदानं कुक्करदानमाचाहम् ।।
श्येनदानं च तैलिका: सर्व धर्मो निगद्यते ।।२७।।

मैं अपने पूर्वजो-का उद्धार करने के लिये ऐसा दान दूं गा कि जिससे मेरे और मेरे पूर्वजो के पाप नष्ट हो जावेंगे । आ—अनुकपा -कर कौओ को आश्विन महीने में खीर पूड़ी हलुआ खिलाते है -उसको कागोर कहते-है उस कागोर को अपने पूवंज मर गये

हैं उनकी तिथि वार के दिन करते हैं उससे यह कामना करते हैं कि हमारे पूर्वज जो मर गये है यह उन पर दया करते है उनके नाम से कौओं को खिलाते है तथा विचार करता है कि हमारे पूर्वजों के पास यह पुण्य पहुँच जावेगा जिससे वे वैकुण्ठ में पहुँच जावेगे। इसमें धर्म मानता है तथा ब्राह्मणों को मास मछली को खिलाता है व अनेक व्यजन खिलाता है और कहता है इनको खिलाने में ही धर्म है। कोई-कोई मोही अज्ञानी जीव काली चामुण्डी गोरी गाधारी दुर्गा भवानी इत्यादि देवताओं की पूजा में धर्म मान कर भैषा बकरी मुर्गा मुर्गी इत्यादि जीवो की बलि चढाता है और बलि में चढ़ाये हुए जीवों के शरीर के मांस पेशी को आप खाता है तथा दूसरों को खिलाने में धर्म मानता है तथा पापों का नाश करने वाला मानता इत्यादि। यह तो देवता का प्रसाद है इसे खाने में कोई दोष नही है दोष तो उसमें है जिसे यह अपने लिये मारे और खावे। कुत्तो की पूजा करना देव मानना तथा धर्म मान कर कुत्तों को रोटी मिठाई खिलाना व कुत्तो व बिल्ली का पालना इत्यादि में धर्म मानना अथवा धर्म के कारण है श्येन (बाज) चील गिद्ध आदि हिसक पक्षियों को दूसरे भोले प्राणियो के प्राणों का नाश कर उसके शरीर के टुकडे कर उसके मास को खिलाना व पूड़ी पापडी पकोड़ी इत्यादि बनवाकर खिलाना तथा खिलाने में धर्म मानना यह हीनाचारी मनुष्यों को धर्मात्मा मान तथा देवताओं के भक्त मान उनको शराब पिलाना मांस खिलाना उनके बताये हुए मार्ग में धर्म मानकर चलना यह सब कुधर्म ही हैं इनके सेवन करने वाले यदि स्वर्ग जावे तो नरक कौन जायेगा।

भूत धर्मो जीवस्य क्षणे जीव विनश्यति पुरुष लोकैव ॥
शून्यं ब्रह्मैवं वा ब्रह्मधर्मो सदाशिवस्य ॥२८॥

यह चेतना वाला जानने देखने वाला जीवात्मा पाँच भूतों से उत्पन्न हुआ है जब ये पांचों भूत अपने-अपने में मिल जाते है जब जीव नाम की कोई वस्तु नही रह जाती। इस प्रकार जीव का धर्म ही नही है न जीव का कोई अस्तित्व है ऐसे मानने वालों का धर्म है वह कुधर्म है। कोई जीव का धर्म क्षण मे विनाश मानते है। क्षण भर में जीव में विनशता है और एक शरीर में दूसरा जीव क्षण मात्र में बदल जाता है। इस प्रकार से जीव के ध्रौव्य गुण नही ठहरता है। इस प्रकार से धर्म मानने वाले ही कुधर्म के धारक हैं अथवा ये मानते है कि जीव के संपूर्ण विशेष गुणों का नाश होना मोक्ष है। कोई एक पुरुष का धर्म लोक है दूसरी कोई वस्तु है ही नही। जो दिखाई दे रहे है पहले दिखाई देते थे दिखाई देंगे वे सब पुरुष के ही विभाग भेद है अथवा अश है। जिनकी ऐसी धर्म की भावना है वे कुधर्म है। जो धर्म वाले सब जगत को शून्य मानते है वे कहते है कि संसार में कोई द्रव्य ही नही है। सब जगत शून्य मय है जिनके मत में तथा धर्म में कोई पदार्थ की स्थिति नही है वे कुधर्म है। सब जगत ब्रह्म रूप है ब्रह्म की ही यह सब लीला है जीव जितने होते है वे सब ब्रह्म रूप है। ब्रह्म में से उत्पन्न होते है और विनाश होने पर पुनः ब्रह्म में मिल जाते हैं। ऐसी जिनकी धर्ममान्यता है, तथा ब्रह्म धर्म है यह भी कुधर्म है क्योकि इसमें यदि व्यवहार से देखा जाता है कि कोई राजा कोई भिखारी कोई नीच और कोई ऊँच दुःखी कोई सुखी देखे जाते है यह धर्म की मान्यता भी

एक ब्रह्म रूप नही दिखाई देती, इस लिये कुधर्म है। कोई ब्रह्म को धर्म मानते है कोई सदाशिव को धर्म मानते है ये सब ही मिथ्यात्व एकात धर्म है इसीलिये ही कुधर्म है। इन धर्मो मे विशेष और सामान्य गुण धर्म की व्यवस्था नही ठहरती है, क्योकि सभी द्रव्यो मे सामान्य विशेष गुण देखे जाते है। इसमे पुण्य और पाप के फल कर्त्ता और भोक्ता का स्थान नही रहता है। विशेष और सामान्य गुण के सद्भाव में ही पदार्थ की सिद्धि होती है।

पुत्र-स्त्री रक्षणे च जातिकुल वित्तस्य रक्षणे धर्मः।
कापालिकार्धूर्जटी ब्रह्मवाद पुरुषैव धर्मः ॥२९॥
कोऽपि वदन्ति धर्मको द्वितीयं नास्ति वादिनः।
धर्म. शिवैव योगिनः ब्रह्मधर्मैव सांख्यकाः ॥३०॥

कोई लोग पुत्र स्त्री की रक्षा करना और उत्पन्न करने को ही धर्म कहते है। कोई धन का उपार्जन करने मे धर्म मानते है तो कोई धनके रक्षणकरने मे धर्म मानते है कोई अपनी कुल जाति की परम्परा को ही धर्म मानते है। तथा हेय उपादेय के विचार से शून्य जो धर्म है वे कुधर्म है। कापालिका धूर्जटी ब्रह्म आदि, ब्रह्मवादि, शैव, साख्य, बौद्ध, चारवाक, योगी ये सब एकातपक्ष विपरीत पक्ष सासयिक अज्ञान और विनयमिथ्यात्व से सबन्धित है वे सब मिथ्या धर्मही कुधर्म है क्योकि जिसमे वस्तु स्वरूप की यथार्थता नही है वही पर कुधर्म है। हिसा रूप कार्यो को करने मे धर्म मानना असत्य बचन कर उसमे धर्म मानना, चोरी मायाचारी, ठगाई करने मे धर्म मानना, पर रमणियो के साथ मे रमण करने मे तथा स्त्रियो के साथ रासलीला करने मे, उनके साथ मे विषय भोग करने मे धर्म मानना तथा परस्त्री हरण शीलव्रतो का भग करने में धर्म मानना तथा परिग्रह मे धर्म मानना ये सब कुधर्म है। क्योकि जिनमे सारा सार का भेद विवेक नही है, जो कापालिका भिक्षा माग दुर्गंधमय पानी का आचमन कर उसमें धर्म मानते है इस प्रकार कुगुरु कुदेव कुधर्म की व्यवस्था की। इस धर्म का सेवन करने वाले जीव ही ससार में भ्रमण करते है तथा जन्म मरण के दु खो को भोगते है।

आगे पाच प्रकार के मिथ्यात्व का स्वरूप सक्षेप से कहते है।

मुखाग्रे छागा स्पष्टमपर शरीरे वदन्ति गोप्रष्टे।
जले स्नानेन शुद्धयति खलु च वपुषादुष्कृतमलम् ॥३१॥
पलं दाने च पित्री-भवन्ति वटुकेभ्यश्चैव सुखं नित्यम्।
जहोत्यग्नौ धर्मः पशु विकलाल्लादिविसुखं ॥३२॥

ब्राह्मणो ने विपरीत मिथ्यात्व का पोषण अनेक प्रकार से किया है कहते है कि यदि कोई वस्तु अपवित्र हो जावे तो छागा के मुख का स्पर्शन होते ही शुद्ध हो जाती है। तथा गाय की पू छ तथा पीछे के भाग से स्पर्शन हो जाने पर शुद्ध हो जाती है तथा एक गाय के शरीर मे तैंतीस करोड़ देवताओ का निवास स्थान है। गाय की पेशाब को अमृत के समान मानकर उसको पीते है और अपने को मल भक्षण कर शुद्ध मानते है। गाय के पृष्ठ भाग को स्पर्श कर पैर छूते है तथा प्रथम भोजन मे बनाई हुई वस्तुओ को खिलाते है एव गाय जब जगल में जाती है तब विष्टा खाती है और जब शाम हो आती है तब गाय के गले मे रस्सी बाधकर

उसको खूंटा से बांध देते हैं तब उस गाय के शरीर में रहने वाले तेंतीस कोटि देवता भी बांध दिये जाते है। उन तंतीस कोटि देवताओं को वंधन में डालकर भोजन करते है यह कैसी विपरीतता है। जब कि देवताओं की अराधना पूजा करते है उनको ही वधन में डालकर आप आनंद से भोजन करते है तथा सोते है।

तथा गंगा जमुना नर्वदा गोदावरी घाघरा तथा गगासागर इत्यादि तथा पुष्कर इत्यादि के पानी में गोता लगाकर स्नान मात्र से अपना शरीर तथा किये गये पाप मल धुल जाते है। यदि पानी में स्नान मात्र से पापो का नाश हो जाता है तो उसमें रहने वाले जल कायक जीव त्रशकायक मीन मगर मेढ़क इत्यादि जीव भी सब स्वर्ग चले जायगे फिर नरक मे कौन जावेगा। कहते है कि ब्राह्मणो को वकरा व मछली का मांस खिलाने पर पित्र प्रसन्न हो जाते है। जीवित पशुओ को यज्ञ तथा यज्ञ की अग्नि मे आहुति देने से वे सब जीव स्वर्ग में चले जाते है। वे जीव यज्ञ धर्म के प्रभाव से संसार के दुःखों से छूटकर सब स्वर्ग में गये है वहां बहुत सुखो का भोग करते है। तथा जीवित स्त्रियों को उनकी मृतक पति के साथ चिता मे जला देते है और कहते है कि पति के साथ जल जाने पर बैकुण्ठ को प्राप्त होती है।

पर्वतान् पतने सुखं संपत्ति साम्राज्यं पुत्रादि ॥
देवगतौ भवत्यमररजराः काशीकर्वटेवा ॥३३

ओंकारेश्वर के पर्वत पर से गिरकर मरण करने पर धर्म होता है उसके प्रभाव से सुख मिलता है राज्य मिलता है और उसको अपने मन वाछित पुत्र स्त्री भाई माता-पिता कुल जाति व सुमित्र तथा सुगुण सुशीलो की प्राप्ति होती है। जो काशी कर्वट लेता है उसको देव गति की प्राप्ति हाती है तथा देवो का राजा होता है वहां उसको वृद्ध अवस्था की प्राप्ति नही होती है तथा वह विष्णु भगवान के पास पहुच जाता है। यह विपरीत मिथ्यात्व है।

कोऽपि मन्यते क्षणिकः कोऽपि शून्यं कोऽपि जीवो नास्ति।
कोऽपि पंच भूतैश्च पुरुष ब्रह्मकश्च विष्णुः ॥३ ॥

कोई अज्ञानी एकान्त वादी बौद्ध कहते है कि जीव क्षणिक है जो जीव पहले समय मे था वह अव नही वह वदल गया है। दूसरे क्षण में आत्मा बदलती रहती है। एक शरीर मे एक आत्मा नही रहती है वह दूसरे समय में वदल जाती है। कोई एक ग्वाला वौद्ध धर्मावलम्बी के यहा नौकरी करने लगा जब एक दो माह बीत गये तब उसने अपनी वेतन माँगी यह सुनकर वौद्ध मतावलवी कहने लगा कि भाई जिस आत्मा ने तेरे को नौकरी पर रक्खा था वह तो मर चुकी अब तो दूसरी भी शात हो गयी उसके पीछे भी अनेक आत्माये शान्त हो गयी अब तेरे को कौन तनुखा देगा। यह सुनकर वह ग्वाला दूसरे दिन गायों को चराने ले गया और चराकर अपने घर मे सव गाय भैसो को वांध लिया। जब वौद्ध मतावलम्बी आया कि भाई हमारी गाय भैसे कहाँ है तब वह ग्वाला बोला कि गाय भैसो को चराने को ले जाने वाला आत्मा तो चला गया अब तो वहुत से आत्मा वदल गये अब गाय भैस कहाँ यदि नही मानते हो तो देख लो कि तुम्हारे शास्त्र में लिखा है या नही ? यह सुनकर क्षणिकवादी वौद्ध शान्त हो उसकी वेतन चुका कर अपनी गाये घर ले आया। यह भी मान्यता एकान्तमती है

क्योंकि हम आज भी देखते हैं कि जिसको बाल्यावस्था में जो पाठ पढाया गया है वह आज भी स्मरण मे आ रहा है फिर क्षण में कैसे जीव बदल गया यदि क्षण में बदल जाता तो पूर्व की बात याद नही आनी चाहिये। यह कहना नितान्त मिथ्यात्व है इसको एकान्त मिथ्यात्व कहते है। क्योकि द्रव्य के गुणो की पर्यायें बदलती रहती हैं परन्तु द्रव्य का तो ध्रौव्यपना शास्वत है। उत्तर पर्यायो की उत्पत्ति तथा पूर्व पर्यायो का विनाश तथा द्रव्य की सत्ता ध्रौव्यात्मक है न उसका विनाश ही है न उत्पाद ही है। यदि द्रव्य ही बदल जावे तो पदार्थ कहा और किस मे होगा। इस प्रकार क्षणिक बौद्ध एकान्त मिथ्या दृष्टि है। कोई एकान्त वादी कहता है कि जगत शून्य है जगत मे कोई वस्तु है ही नही तब कहते हैं कि जब कोई नही तब तू कहा से आया और तू तो है कि नही। जिनसे तू उत्पन्न हुआ वे तेरे माता माता है या नही। यह भी एकातवाद है परन्तु ससार मे छहो द्रव्य लोक मे देखी जाती है शून्य नही है कोई एकान्त-वादी कहता है कि जगत मे जीव नाम की कोई वस्तु है ही नही यह जीव तो पचभूतो-से उत्पन्न हुआ है और जब नाश होता है तव पाचो भूत अपने-अपने मे मिल जाते है तब जीव नाम की कोई भी वस्तु नही रह जाती है। पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश पाच भूतो से ही जीव की उत्पत्ति होती है इनका नाश होने पर वे अपने-अपने मे मिल जाते है। यह भी एक वडी विडम्बना की बात है कि जब हम देखते है जो गाय का बच्चा होता है वह जन्म लेते ही गाय के स्तनो की ओर उठकर चल देता है इससे यह प्रतीत हो जाता है कि जीव पर पूर्व भव का संस्कार है जिस सस्कार से ही वह मा के स्थनो का दूध पी लेता है। दूसरी बात यह है कि अनेक जीवो को अपने पिछले भवो की बाते याद होती है वे बताते है और सब बाते सत्य निकलती है, तीसरी बात यह भी है कि यदि जीव के ऊपर पूर्व भव का सस्कार न हो तो स्त्री के साथ विषय भोग करना स्त्री से प्रेम करना उसको अपनी मानना यह उसने फिर कैसे जाना ? इससे यह कहना ठीक प्रतीत नही होता है कि जीव पचभूतो से बना है यदि पचभूतो से ही बना हो तो साग की हाडी मे भी जीव उत्पन्न होना चाहिये क्योकि वहाँ पर भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पाँचो ही द्रव्य मौजूद है ऐसा होता हुआ नही देखा जाता है। यदि जीव पाँच भूतो से ही उत्पन्न होता है तो स्त्री के साथ भोग करना सतान के लिए सो भी निरर्थक ठहर जाता है। जब तक योनि मे जीव नही आता है तब तक स्त्री के साथ भोग करने पर गर्भाधान नही होता है, जब जीव पूर्व योनि को छोडकर आता है नये शरीर ग्रहण करने को तव ही गर्भ बढने लग जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीव असख्यात-प्रदेशी और नित्य है अविनाशी है। पाँच भूतों से उत्पन्न नही हुआ है जो ऐसा मानते है कि जीव कुछ भी पदार्थ नही यह मिथ्यात्व है।

कोई मानते है कि सव ससार मे एक पुरुष ही द्रव्य हैं अन्य कोई द्रव्य नही है यह जगत में दिखाई दे रहा है यह सुख एक पुरुष की ही महिमा है। पुरुष की ये सव अवस्थायें है जो सूर्य, चन्द्रमा, विमान दिखाई देते हैं, वे सव एक पुरुष रूप है उसमें ही पृथ्वी जल, अग्नि, वायु वनस्पति आकाश सव पुरुपमय है यह एकान्त पक्ष है जव कि सवको साक्षात् देखा जाता है कि द्रव्यो के गुण, धर्म, भिन्न भिन्न है। एक द्रव्य के गुण दूसरी द्रव्य में

नहीं पाये जाते हैं। यदि एक पुरुष को ही जगत मान लिया जाय तो एक बड़ा विडम्ब खड़ा हो जायेगा कि कोई भी पदार्थ चेतन नहीं ठहरेगा न कोई अचेतन ही ठहरेगा तब पुरुष कहा जायेगा इससे यह सिद्ध होता है कि जगत पुरुष नहीं है, पुरुष जगत नहीं, जगत पुरुष नही, यह भी मान्यता मिथ्यात्व ही है।

कोई ब्रह्मवादी कहता है सब जगत को ब्रह्मा ने बनाया है पहले यहाँ पर जल ही जल था पृथ्वी नही थी तब ब्रह्मा ने इस जगत की रचना की और घास, पौधे, पशुपक्षी, नरनारी आदि को बनाया तथा सबके भोग और उपभोग की वस्तुये बनाई। परन्तु यह भी मान्यता गलत है कि जब ब्रह्माने ये बनाई थी तब उनको राग और द्वेष था ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि राग द्वेष नही था तो किन्ही को राजा महाराजा बनाया सेठ साहूकार बनाया जिनके यहाँ द्रव्य के भण्डार भरे रहते है किन्ही को दरिद्री, भिखारी, कोढ़ी, रोगी, नपुसक, मतिभ्रष्ट और ज्ञानी बनाया। यदि ब्रह्मा के बनाये हुए होते तो वे सुखी-दु:खी नहीं हो सकते, यदि ब्रह्मा ने बनाये तो वह इतनी द्रव्य कहाँ से लाया। कहाँ पर थी जहाँ से लाया यदि कही से लाया तो वहाँ पर उनका स्थान खाली हो गया होगा उसकी पूर्ति फिर कैसे की इससे यह मानना कि ब्रह्मा ने बनाया नितात मिथ्यात्व है, कोई कहता है कि लोक एक ब्रह्ममय है, जितने दिखाई देते है वे सब ब्रह्ममय है, ब्रह्म में से उत्पन्न होते है और पीछे ब्रह्म में विलीन हो जाते है ये सब ब्रह्म के ही अश है। यह भी विचार करने पर मिथ्या ही सिद्ध होता है कि यदि ब्रह्म के अश है तो क्या ब्रह्म के भी टुकड़े हो जाते है। यह भी कोई नारगी और मोसम्मी है कि जिसकी कलियाँ निकाल ली जाये। परन्तु नारगी की कलियों मे सब में रस समान एकसा होता है परन्तु यह बात ब्रह्म मे दिखाई नही देती, इससे वह सन्निष्कर्ष निकला कि ब्रह्मा किसी का कर्ता धर्ता नही है जीव अपने किये हुए कर्मो के फल के अनुसार सुख व दु.खो का भोग करता है पुण्य के उदय से राजा होता है, पाप के उदय से भिखारी होता है। न किसी मे मिलता है न किसी से बिछड़ता ही है, यदि जगत को एक ब्रह्म का ही कार्य मान लिया जावे तो पुण्य फल और पाप फल को न भोगेगा, कौन राज दण्ड भोगेगा। यदि ब्रह्ममय है तो जेलखाने में ब्रह्म को पुलिस व जेलर के डण्डे खाने पड़ते होगे और सूली और फाँसी पर चढ़ना पड़ता होगा तव तो ब्रह्म को दु:ख होना चाहिए परन्तु हम देखते है कि जब फाँसी होती है तब बहुत से लोग हँसते है, कहते है कि जैसा किया वैसा ही फल चखा इससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि जगत ब्रह्ममय या ब्रह्मा का बनाया नही है। पानी पड़ने पर घास आदि उत्पन्न होती है वे ब्रह्मा ने कब बनायी क्योंकि वह तो एक है, वनस्पति अनंत है, एक साथ उत्पन्न होती है वे कैसे बनाई क्योंकि एक व्यक्ति एक साथ सबको नही बना सकता है। दृष्टान्त के लिए कुम्हार जब घड़ा बनाता है तब क्रम से एक-एक को ही बनाता जाता है जब घड़ा बनाता है तब कुण्डा या सुराही हुक्का नही। जब हुक्का सुराही बनाता है तब कुण्डा या घडा नही, इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्मा ने किसी को नही बनाया न ब्रह्ममय ही जगत है यह मान्यता भी एकान्त मिथ्यात्व है।

कोई धर्मावलम्बी कहते है कि विष्णुमय जगत है, जल में विष्णु थल में अग्नि में

विष्णु ज्वाला मे विष्णु पर्वत के मस्तक पर विष्णु है मालाकुल इन सब में विष्णु ही विष्णु है और सब जगत विष्णुमय है। यदि सब जगत विष्णुमय है तो भूमि खोदने, पानी फेकनें, अग्नि बुझाने और अग्नि से पानी गर्म करने पर विष्णु को कष्ट होता होगा या वनस्पति को तोडनें या काटने पर विष्णु कट जाते होगे तब विष्णु के टुकड़े हो गये। यदि आप कहे कि विष्णु भगवान सब जगत की रक्षा करते है तब हम पूछते है कि कौरव और पाडवो मे युद्ध करवाया, आप सारथी बनें, हर द्रोह को चक्र से मारा तथा कौरवो को मरवाया लाखो करोडों का सहार हुआ तब वह विष्णु कैसे रक्षक हुए। जब दधिकुमार ने अपने पुरुषार्थ से ब्रह्मा विष्णु तथा अन्य देवताओ को कैद खाने मे रक्खा तब महादेव जी हिमालय की गुफा में दुवक गये थे पार्वती को लेकर। और वहा विद्या का साधन करनें लगे तब विष्णु और लक्ष्मी दोनो को कैदखाने मे रहना पडा। तथा देवता दुःखी हुए ब्रह्मा और विष्णु को छह महीना तक जेल मे छोड दिया फिर सब देवो की सलाह हुई कि दैत्य बडा बलवान है उससे पार नही बनता तब एक देव ने कहा कि उसकी स्त्री पतिव्रता है उसके पतिव्रत धर्म को भग कर दिया जावे तो वह दधिकुमार दैत्य मारा जा सकता है। यह सुन सबने राय करी कि इस कार्य को कौन करनें मे समर्थ है तब सबने कहा कि हे विष्णु भगवान आप ही इस कार्य को कर सकते है तब विष्णु भगवान ने दधिकुमार की स्त्री के पास जाकर दधि-कुमार का रूप धारण किया और उसके राज महल मे प्रवेश किया जब कि दधिकुमार महादेव जी से युद्ध कर पार्वती को छीनना चाहता था, वह तो युद्ध कर रहा था तथा महादेव जी डर के मारे भागते कभी सामनें आ जाते थे तब विष्णु ने रात्रि मे दधिकुमार की स्त्री के साथ भोग किया और उसके शील को भग किया यह विष्णु कैसा व्यभिचारी जो पर स्त्रियो का शील भग करे तथा वैरियो के द्वारा बाँध लिया जावे यह भी कहनें योग्य नही है कि विष्णुमय जगत है। कहा भी है :—

जले विष्णु स्थले विष्णुर्विष्णु पर्वतमस्तके।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमय जगत् ॥

यदि विष्णु सर्व जगत में व्याप्त है तथा सब देहधारियो में निवास करता है तो वृक्षो के काटने पर विष्णु के ही टुकड़े नियम से हो जायेगे। कहा भी है :—

मत्स्य. कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामन.।
रामोरामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कि च ते दश ॥१॥
मत्स्य कूर्मोवराहश्च विष्णुः सम्पूज्य भक्तिनः।
मत्स्यादीनां कथं मांस भक्षितु कल्प्यते बधैः ॥२॥

विष्णुपुराण में विष्णु भगवान के दस अवतार मानें गये है वे मछली, काक्षप, सूकर, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि ये दस है। इनकी पूजा करने का आदेश दिया गया है कि इनकी पूजा सबको करनी चाहिये फिर मांस के लोलुपी मक्ष काक्षप सूकरो को मार-मारकर उनके मास को कैसे खा जाते है वे अपनें विष्णु भगवान के प्रति भी दया नही करते है। जब विष्णुमय जगत है तब यज्ञो में पशुवधकर कैसे होमते है, कैसे

देवताओं के लिए बलि देते हैं क्योंकि वह बलि तो विष्णु भगवान की ही हो गई ? और मांस भक्षण कैसे करते है ? यदि विष्णुमय जगत है तो वे विष्णु कौन से थे जो गोपिकाओं के साथ गायों के स्थान में जाकर विषय भोग करते थे व दधि माखन चुराकर खाते थे। वे कौन से थे जो दैत्यो से डरकर वैकुण्ठ में जा विराजे थे ? वे विष्णु कौन से थे कि जिन्होंने स्त्री का रूप धारण कर लिया और भस्मासुर को मारा था ? यदि जगत विष्णुमय है तो फिर दैंत्यों से युद्ध क्यों हुआ ? इससे यह सिद्ध हो जाता है कि विष्णु किसी के कर्ता हर्ता व रक्षक विनाशक नही है जगत स्वभाविक अनादि निधन है, जीव और पुद्गलों के सयोग सम्बन्ध से ससार में उत्पत्ति विनाश और ध्रौव्यता कायम रहती है न विष्णुमय जगत है न कोई विष्णु नाम का ही द्रव्य है। महाभारत में यज्ञ का स्वरूप इस प्रकार कहा है।

यज्ञं कृत्वा पशून् हत्वा कृत्वारुधिर कर्दमम्।
यद्येव गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥१॥
ध्रुवं प्राणिवधो यज्ञोनास्ति यज्ञहिंसक ।
सर्वं सत्वेष्वहिंसेव सदा यज्ञो युधिष्ठिरः॥२॥

यज्ञ का स्वरूप :—

इन्द्रियाणि पशूनकृत्वा वेदीकृत्वा तपोमयीम्।
अहिंसा माहुति कुर्याच्चात्म यज्ञ यजामहे ॥१॥
अहिंसा सर्वभूताना सर्वज्ञैः प्रतिभाषिता।
इद हि मूलधर्मस्य शेष तस्य च विस्तारः॥२॥

ब्रह्म का स्वरूप

सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म पंचेन्द्रिय निग्रह
सर्वभूतदया ब्रह्म एतद् ब्रह्मस्य लक्षणं ॥१॥
यो दद्यात् कांचनं मेरू कृत्स्नां चापि वसुंधरां॥
एकोऽपि जीवितं दद्यात् न च तुल्यं युधिष्ठिरः॥२॥
नाभिस्थाने वशेद् ब्रह्माविष्णु-कण्ठे समाश्रितः॥
तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे च महेश्वरः॥३॥
नासाग्रे च शिवं विद्यात्तस्यान्ते च परोपरः॥
परात्परतं नास्ति इति शास्त्रस्य निश्चयः॥४॥
चत्वारोनरकद्वारं प्रथमं रात्रि भोजनं
परस्त्री गमनं चैव संधानानंतकायके॥५॥
रक्ता भवन्ति तोयानि अन्नानि पिशितानि च।
रात्रि भोजनशक्तस्य ग्रासेण मांसभक्षण॥६॥
मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंद भक्षणं॥
कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः॥७॥

जब पशुओ को मार कर यज्ञ में हवन करते है और उनका रक्त बहा देते है वे जीव ही स्वर्ग जाने लगेंगे तो दया पालन करने वाले सयमी फिर क्या नरक जायेंगे ? पशुओं को नाश करने वाले खून बहाने वाले ही नरक जाते हैं ।१।। श्रीकृष्ण जी कहते है कि प्राणियो का नाश कर उनके कलेवर का हवन करते हैं यह यज्ञ नही है यह तो हिंसा ही है। परन्तु सब जीवो पर दया करना ही हे युधिष्ठिर यज्ञ है ।२।।

इन्द्रिय रूपी पशुओ का नाश करना तप रूपी वेदी बनाना उसमें अहिसा रूपी आहुति देना इस आत्म यज्ञ की मै पूजा करता हूं ।।३।।

सब जीवो पर दया करना, किसी भी जीव को मारना नही पीडा देना नही यही धर्म का लक्षण सर्वज्ञ का कहा हुआ है। शेष जो विस्तार है इसी एक का है। अहिसा ही धर्म की जड है ।४।।

सत्य ब्रह्म है तप करके पापमलो का नाश करना ब्रह्म है पचेन्द्रियो के विषयो का निग्रह करना ब्रह्म है संपूर्ण प्राणियो पर दया करना ब्रह्म है ये सब ब्रह्म के लक्षण हैं अथवा ब्राह्मण के लक्षण है ।५।। हे युधिष्ठिर जो मेरु पर्वत के बराबर सोना दान देवे और सर्व पृथ्वी का दान देवे तो भी उतना पुण्य धर्म नही होता कि जितना एक जीव को अभयदान देनें पर होता है अभय दान ही सब दानो मे श्रेष्ठदान है ।६।।

नाभि स्थान मे ब्रह्मा निवास करता है और विष्णु कण्ठ में रहते है तालु में मुख में रुद्र महादेवजी रहते हैं ललाट मस्तक मे निवास महेश्वर का है। नासिका के आगे के भाग में शिव निवास करते है। विद्या अन्त स्थानों में रहती है पर से पर नही होते है ऐसा शास्त्र का निश्चय है ।।७।।

नरक जाने के चार दरवाजे है पहला दरवाजा रात्रि में भोजन करना है दूसरा दरवाजा पर रमणी के साथ रमण करना है। तीसरा द्वार अचार मुरब्बा का खाना है चौथा द्वार अनत काय आलू घुहिया (अरवी) रतालू रतरुआ साखाआलू सकर कन्द इत्यादि अनेक प्रकार के कद है वे सब ही अनत काय है ।।८।।

रातमे पानी रक्त के समान कहा है रात्रिमें अन्न से बनी हुई वस्तु ये है वे सब माँसके समान है जो एक ग्रास भी रात्रि मे भोजन करता है वह मास भक्षण करता है। जो रात्रिमे भोजन करते है तथा मास मद्य और शहदका सेवन करते हैं तथा जमीकद खाते है उनके द्वारा किये गये जप तप उपवास तीर्थ यात्रा हवन गंगास्नान व पुस्करी यात्रा चद्रायण व्रत ये सब निष्फल हो जाते है। एकादशी व्रत सब ही निष्फल हो जाते है।

कोऽपि भव्यते यागं ब्रह्म वेदवादिनः क्रियावादी ।।
साख्या ज्ञानेन तथा सर्वगुणक्षणे मोक्षमेव·।।३५

कोई कहते है कि योग हवन क्रिया करने पर अग्नि में आहुति देनें से मोक्ष होता है। ब्रह्मवादी कहते है कि वेदोका पठनपाठन मनन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है दूसरा मोक्ष प्राप्ति का उपाय नही है। क्रियावादी कहते हैं नित्य क्रिया करने से मोक्ष होता है यही धर्म है। तथा आचरण अपना अच्छा करो अपना आचरण श्रेष्ठ रक्खो यही मोक्ष है। तथा

साँख्य बौद्ध मतावलम्बी कहते है कि ज्ञान मात्र से ही मोक्ष हो जाता है श्रद्धान व चारित्र की कोई आवश्यकता नही है जीव के सब विशेष गुणो का जब अभाव हो जाता है तब मुक्ति होती है इस प्रकार एकान्त वादियों का एकान्त मिथ्यात्व जानना चाहिये विशेष आगम से जान लेना चाहिये।

इति एकान्त मिथ्यात्व।

सशय मिथ्यात्व का स्वरूप

स्वेतवस्त्र धारणिका: सशपयुक्तानं विशेष वस्तूनाम्।
बहुविकल्पेन युक्ताः सत्यमसत्यं यान्तिर्णयम् ॥३६॥
किं शीपिका हिरण्यं किकुलिशं वा मनुष्यो द्वन्द्वेयुः।
नास्ति अपो: एकस्य निश्चय भवतः शॉसयके च ॥३७॥
किं सवस्त्रे निर्ग्रन्थलिंगेन भर्वात मोक्षोजीवस्य।
संशयमिथ्यात्वमेव वा मन्यतेश्वेत पद ग्राही ॥३८॥

श्वेत वस्त्र के धारण करने वाले श्वेताम्बर सशय मिथ्या दृष्टि है। उनके मत में वस्तु का यथार्थ निर्णय नही हो सकता है। उनके मन मे अनेक कोटि के विकल्प उत्पन्न होते रहते है जिससे (कितजिय किंभजिय) उनके यहा यथार्थ वस्तु स्वभाव का निश्चय नही हो पाता है जिसमें सत्य और असत्य का निर्णय होना असम्भव होता है। जिस प्रकार मार्ग से कुछ दूरी पर पड़ी हुई शीप है उसको दूरसे देखा तब मन मे यह विकल्प पैदा हुआ कि यह चादी है या शीप है। कभी कहता है कि यह तो चादी होना चाहिये कभी कहता है कि शीप होगी बहुत देर तक उसके तरफ देखता रहा परन्तु निर्णय को कोटी में नही पहुँचा। अथवा निर्णय न होने के कारण रात्रि में भी विचारता रहा कि वह चांदी होना चाहिये कभी कहता कि नही जी वह तो शीप होगी इस प्रकार सशय में ही पड़ा रहा।

दूसरा दृष्टान्त कोई एक मनुष्य अधेरी रात्रि में शौचको ग्राम से बाहर गया वहा उसने देखा कि कोई खड़ा हुआ है। वह विचार करता है कियह मनुष्य है या भूत है कभी विचारता है कि यहआदमी है या ठूठ है। इधर ये भयभीत भी होता है उधर ये धैर्य भी बांधता है परन्तु कभी कहता है कि मनुष्य है कभी कहता है कि भूत दिखाई दे रहा है। या ठूठ दिखाई दे रहा है। श्राद्धानपूर्वक यथार्थ निर्णय नही हो पाता है। क्या वस्त्र सहित मोक्ष की प्राप्ति होती है या निर्ग्रन्थ दिगम्बर लिग से मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा शसय उक्त है। उनको कभी भी मोक्ष होने की (सम्भावना) वास्तविक सामर्थ्य नही हो सकती यह कैसे कहा जा सकता है। इस प्रकार शंसय में व्यस्त रहने वालों के एक भी वस्तु का निर्णय नही। इस प्रकार शसय मिथ्यात्व तथा भ्रम में पड़े हुए श्वेताम्बर है।

स्त्रीणां च भवति मुक्तिः सवस्त्रे भवति निग्रन्थीऽचेलकः ॥
कवलाहारेन सदा केवली जीवन्लि व्रजन्ति ॥३९॥

वे श्वेताम्बर स्त्रियों को मोक्ष होता है ऐसा कहते है मानते हैं कि मरुदेवी भगवान

आदिनाथ भगवान की माता जब हाथी पर चढ़ी हुई मुनिराज के दर्शन को निकली तब उनको हाथी पर बैठे बैठे ही केवल ज्ञान हो गया और मोक्ष चली गई। कपड़ा रूपी परिग्रह के धारक भी निर्ग्रन्थ होते है वे भी अचेलक कहलाते है। कि जिस प्रकार एक गरीब के कपडे फट गये वह बजाज के यहाँ से कपडा खरीद कर लाया और दरजी के पास गया और कहने लगा कि भाई मैं नगा हो गया मुझे वस्त्र जल्दी सिलाई करके दो ? वस्त्र सहित होते हुए भी नग्न कहलाता है। उसी प्रकार हमारे पास भी नये पुराने वस्त्र होने पर भी हम नग्न नही है। हम तो उपसर्ग रूप मे धारण किये हुए है स्वभाव से हमने वस्त्र नही धारण कर लिये है। आगे कहते है कि कल्पसूत्र भद्रबाहु श्रुत केवली ने बनाया है उसमें अनेक कोटि के मिथ्याकल्पित विषयो का कथन किया है कि भगवान जब स्वर्ग से माता के गर्भ मे आये थे तब त्रिशला देवी ने प्रभात के समय, चौदह स्वप्न देखे और श्वेत बैल मुख मे से प्रवेश करते देखा। उधर ये कहते है कि श्रमण भगवान महावीर ब्राह्मणी के गर्भ मे आ गये तब इन्द्र ने विचार किया कि श्रमण भगवान महवीर का इस नीच कुल मे जन्म लेना ठीक नही है तब वासुक देव को इन्द्र ने आज्ञा करी कि शीघ्र तुम जाओ और श्रमण भगवान महावीर को ब्राह्मणी के गर्भ से निकाल कर त्रिशला रानी जो कुण्ड ग्राम के अधिपति सिद्धार्थ राजा की पटरानी है उसके गर्भ में रख आओ। यह आज्ञा पाकर वासुक देव श्रमण भगवान महावीर को ब्राह्मणी के गर्भ के अशुभ परमाणुओ को छोडकर त्रिशलादेवी के गर्भ में स्थापन कर आया और शुद्ध परमाणुओ को इकट्ठा करके वासुक देव अपने इन्द्र के पास चला गया यह कहना कहा तक सम्भव हो सकता है क्योकि किसी के गर्भ में से जीव को निकालना असम्भव है क्योकि जिस योनि में या गर्भ मे जीव जाता है वहा की योनि से उसका सम्बन्ध होता है वह सम्बन्ध नाभि से होता है। नाभि से ही बच्चा मा के द्वारा खाये हुए रस का पान करता है फिर उस देव ने गर्भ मे प्रवेश कर कैसे नरा काटा और कैसे उसके शरीर को ले गया ? कैसे माता के गर्भ मे से ले जाकर दूसरे के गर्भ में धरा व नरा जोड़ा ? जब भगवान ब्राह्मणी के ही गर्भ में आये तब सिद्धार्थ के यहा पद्रह महीना रत्नो की वर्षा कैसे हुई ? कैसे त्रिशला ने सोलह स्वप्न देखे ? कैसे इन्द्र ने नगरी की रचना की ? क्योकि ज़ब जीव माता के गर्भ मे आता है तब वह माता की रज और पिता के वीर्य को ग्रहण कर आहारक हो जाता है फिर एक गर्भ से ले जाकर दूसरे गर्भ मे कैसे रखा गया ? श्रमण भगवान महावीर को आयु तीस वर्ष हो गई तब भगवान ने दीक्षा धारण की थी उसके पहले भगवान का विवाह एक राजकुमारी के साथ हो गया था यह भी कोई शसय की बात नही परन्तु श्रमण भगवान महावीर के एक पुत्री हुई वह भी यौवन युक्त हुई और उसकी भी शादी एक राजकुमार के साथ हो गई उसके भी एक पुत्री हो गई तब हम पूछते है कि श्रमण महावीर का विवाह कितनी उम्र मे हुआ और कितनी उम्र मे लडकी हुई और लडकी की शादी कितनी उम्र में हुई ? इस प्रकार उनके यहाँ अनेक प्रकार के शंसयात्मक प्रश्न खडे हो जाते है। एक तरफ लिखते है कि भगवान महावीर स्वामी ने अपना विवाह नही किया व बालब्रह्मचारी थे दूसरी ओर कहते है कि भगवान महावीर ने विवाह किया उनके एक पुत्री हुई पुत्री के भी पुत्री हो गई तब दीक्षा ग्रहण

करी इन दोनो में से कौन सी बात सत्य है कौन सी बात असत्य है सो इसका निर्णय करते नही बनता है ? एक बात और है कि तीर्थंकर स्त्री रूप से जन्म लेते है और श्वेताम्बर उसको पुरुषाकार बनाकर पूजा अभिषेक करते है तथा मल्लिनाथ को मल्लिका देवी कहते है वह जन्म से स्त्री थी जब दीक्षा ली तब इन्द्र ने सोचा कि यह दीक्षा दिगम्बर पुरुष को ही हो सकती है स्त्री को नही तब इन्द्र ने अपने वैभव से मल्लिका देवी को मल्लिनाथ पुरुषाकार बना दिया कहना कहाँ तक सम्भव हो सकता है कि प्राकृतिक स्वभाव को कौन बदल सकता है। क्या उसके रज को व मासिक धर्म को इन्द्र बदल कर वीर्य की रचना कर सकता है ? जिनका संहनन कीलक है क्या उनका सहनन वज्रवृषभनाराच हो सकता है ? यदि सूर्य ठण्डा हो जावे और चन्द्रमा अग्नि बरसानें लगे तो भी स्त्री को पुरुष व पुरुष को स्त्री नही बनाया जा सकता है। जो पुरुष का कूर्म ऊपर को मुख किये हुए होता है तथा स्त्री का कूर्म अधोमुख होता है उस कूर्म को बदला जाता है क्या ? यदि बदला तो कैसे बदला सो कहो ?

आचार्य कहते हैं कि स्त्रियों के मासिक धर्म के साथ रक्त योनि में से झरता है उनके योनि के काख प्रदेशों में सम्मूर्छन जीवो की उत्पत्ति होती रहती है तथा संहनन भी पहले के तीन होते है तथा धैर्यता नही होती है कलाई स्वभाव से कोमल होती है स्वभाव में भी ढीलापन व माया कषाय सतत विद्यमान रहती है फिर उनको तो बिना दीक्षा किये ही केवल ज्ञान हो गया। अब आप दीक्षा ले पात्री हाथ में लेकर क्यों भीख माग कर खाते हैं आप लोगो के साधु होनें से क्या प्रयोजन जब बुहारी देते हुए महतरानी को भी केवल ज्ञान हो सकता है तब अन्य मुनियों को भी हो जाना चाहिये। सो तो होता हुआ देखा नहीं जाता है ? जब भगवान महावीर स्वामी ने दीक्षा धारण करी उन्होंनें सब वस्त्र उतार दिये तब इन्द्र नें एक रत्न (कम्बल) वस्त्र भगवान के कांधे पर रख दिया जब भगवान जंगल के मार्ग से जा रहे थे तब एक ब्राह्मण उनके पास कुछ मागने के लिये आया भगवान वोले नही परन्तु उनके कन्धे पर रखा हुआ वस्त्र एक झाड़ी में उलझ गया और आधा फट गया उसको ब्राह्मण नें उठा लिया। यहा यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि क्या वह वस्त्र भगवान महावीर नें हाथ में पकड़ लिया था कि जिससे आधा फट गया था। बचा हुआ भगवान वीर प्रभु के पास रह गया ? या इन्द्र नें श्रमण महावीर के कन्धे से चिपका दिया था ? जब आधा फटा हुआ वस्त्र था वह भी गिर जाता है तब भगवान महावीर दिगम्बर ही रहे। जब भगवान को केवल ज्ञान हो गया और इन्द्र नें भगवान के समवशरण की रचना की तब भगवान को क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक चारित्र तथा अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान अनन्त सुख अनन्त भोग उपभोग दान लाभ और अनन्त वीर्य ये नव लब्धियां प्राप्त हो गई। मन का व्यापार शान्त हो गया व भगवान सर्वज्ञ हो गये तब भगवान नें कवलाहार किया यह कहाँ से लाकर या पात्री में मांग कर लाये और खाया सो कहो ? यदि भगवान को कवलाहार है तो अनन्त भोग किस काम का ? यदि भगवान के क्षुधा कर्म वाकी रह गया जब कि मोह कर्म के सम्बन्ध से भूख लगती है वह मोह तो वहा है ही नही ? फिर कैसे आहार किया ? इत्यादि जिनके मन में शंसय ही शंसय दिखाई देते है ॥३६॥

गृहस्थास्त्रीणां भवंति गृह यार्जने समये केवलज्ञानम् ।
क्षेत्रात् गत्वानत्वा गुरुवें: पदानुगच्छति सः ॥४०॥
गुरोरुपदेशं श्रुत्वा मनस्यचिन्त्योद्भूवति केवल ज्ञानम्
मल्लिका देवीं वा मन्यते पूज्यते पुरूषये ॥४१

यह कहते है कि घर में बुहारी देते हुए स्त्री को केवल ज्ञान हो गया । कहा जाता है कि एक महतरानी एक जमीदार के दरवाजे पर बुहारी दे रही थी उसी समय बुहारी देते देते केवल ज्ञान हो गया ऐसा कहा जाता है । और देव लोग उसके केवल ज्ञान की पूजा करने को आये और वह मोक्ष चली गई । एक जाट खेत मे काम कर रहा था उसनें मुनि महाराज को आता हुआ देखकर हल को खेत मे बैल जुते हुए छोड़ दिये और मुनियो के दर्शन के लिये पीछे वापस आने लगा तब गुरु के मुख का एक शब्द सुनूँ इस विचार से बोला महाराज कुछ कल्याण का उपदेश दो ? यह सुनकर गुरु ने कहा कि जो मन में आवे वह नही करना इतना उपदेश देकर गुरु तो विहार कर गये जाट वही चौराहे पर खडा रह कर खेत में जाने को हुआ तो विचारनें लगा कि यह तो मेरे मन में आ गई अब नही जाऊगा । फिर घर की तरफ जाने को तैयार हुआ मन में विचार किया तब कहने लगा कि यह भी मेरे मन मे आ गई इस प्रकार वह जाट चौराहे पर खड़ा रह गया और मन का विचारा नही किया तब उसको केवल ज्ञान हो गया । इसके लिये हम उनको कहते है कि जब हाथी पर चढे हुए मरुदेवी को केवल ज्ञान हो गया । बुहारी (झाडू) देते हुए महतरानी को केवल ज्ञान हो गया तब ७२ गज कपड़ा और पाच पात्री दण्ड कमण्डल और ऊनी वस्त्र धारण करना उनकी मुञ्छालनी (पीछी) का धारण करना व पात्री लेकर घर-घर से कौरा (टुकडा) माग माग कर लाना और खाना घर के बाल बच्चो का त्याग कर व्रतो को धारण करना अणुव्रत महाव्रत पालन करना पैदल चलना इन कार्यो की क्या आवश्यकता क्या प्रव्रज्या धारण करने का प्रयोजन ? जब कि जाट महतरानी मरुदेवी को गृहस्थी की अवस्था को बिना त्यागे ही केवल ज्ञान हो गया । हम जितनो को देख रहे है उन मुनियो मे किसी को भी केवल ज्ञान नही हुआ ?

श्री मल्लिनाथ भगवान को जन्म से स्त्री उत्पन्न हुई कहते हैं जो मल्लिका देवी के नाम से प्रसिद्ध हुई थी पुण्यवान थी सुन्दर शरीर व आकृति की धारक थी । देव भी देख मोहित होते थे । उस मल्लिका देवी को इन्द्र नें पुरुष बना दिया पूजाकरी और प्रव्रज्या धारण करी तब इन्द्र नें विचारा कि दिगम्बर स्री का होना उचित नही है तब उसनें उनको मल्लिनाथ बना दिया और स्त्री रूप पर्याय को बदल दिया तब से मल्लिनाथ की पूजा पुरुष रूप से हुई यह किस प्रकार सम्भव है ? कि स्त्री पुरुष बन जावे यह तो एक श्वेताम्बर ही बना सकते है उनके मत में असम्भव हेत्वाभाष से भी नही डरे । इस प्रकार की असभवता अन्य मतावलम्बियो के मतों मे भी नही सुनी जाती हैं कि स्त्री होकर पुरुष बना कर पूजा जाय । अथवा पुरुषाकार मूर्ति बनाई जाये जन्म के सस्कारो को छुडा दिया जाय ।

सग्रन्थे सति मोक्षः तीर्थंकराः किमत्यजन् राज्यैंव ॥
जीर्णः व्रणवद् रत्नान् निवसंति निर्जीणेऽरण्ये ॥४२॥

भगवान जिनेन्द्र के मार्ग में यह प्रसिद्ध है कि वस्त्रधारी-परिग्रह के धारण करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति नही होती है तब हम उनको पूछते है कि भाई यह कहो भगवान तीर्थंकर अपने सब राज्य सार्वभोम व चौदह रत्न अनेक स्त्री रत्नो व सारी सम्पत्ति को सड़े हुए तिनके के समान त्याग कर निर्जन वन मे जाकर एकान्त मे दीक्षा लेकर रहने लगे और आत्म ध्यान में लीन हो गये थे। उन्होने अतरग परिग्रह एव वाह्य परिग्रह तथा शरीर से भी ममत्व का त्याग कर इच्छाओ का त्याग कर समाधि का साधन किया तब कठोर तपस्या और अविचल शुक्ल ध्यान कर कर्म रूपी ईंधन को जलाया जब सर्व घातिया कर्म जल गये तब भगवान को केवल ज्ञान हुआ। परन्तु श्वेताम्बर बिना प्रव्रज्या धारण किये बिना परिग्रह के त्याग किये पांच पापोक्त तथा आरम्भ तथा समारम्भ और हिसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह में अशक्त तथा मासिक में जिनके शरीर से दुर्गन्धमय रक्त बहता है उन स्त्रियों को केवल ज्ञान कहते है यह कितना बड़ा असम्भव दोष हो जाता है। तथा मोक्ष हो जाता है, तब घर त्यागने से क्या प्रयोजन पात्री दण्ड कमण्डल लेना व घर-घर टुकड़ा मागना मुख पर पट्टी बाँधना और पात्रों रूपी परिग्रह का धारण करना रक्षा करना तथा वस्त्रों की रक्षा करने मे ही लक्ष्य रहेगा धर्म पालन भी नही बन सकता है तब निराकुल शुक्ल ध्यान परिग्रह के धारियो मे कैसे हो सकता है।

गृहीत्वा पात्रण्य सो वहुगृहेषु भ्रमति कि भिक्षार्थम् ॥
कथ सतिरत्नवृष्टिः निपतता तत्रैव गृहेगृहे ॥४३॥

जब तीर्थंकर प्रव्रज्या धारण कर या साधु मुनि बनकर प्रथम भिक्षा के लिए जाते है तब वहाँ पर देवो के द्वारा रत्नो की वर्षा की जाती है। परन्तु हम उन श्वेताम्बरों से पूछते है कि जब भगवान दीक्षा लेकर आहार की पात्री लेकर जाते है और सात या नौ घर से माँग कर टुकड़ा लाते है तो फिर कहो कि किन-किन के घरों में रत्नो की वर्षा हुई ?

आहारोऽपि षड्विधो नोकर्म कर्म लोपौजाहाराः।
इच्छाहारो वितथा कवलाहारोऽपि निर्दिष्टः ॥४४॥

आहार छह प्रकार का है। प्रथम नौकर्मा-हार, दूसरा कर्मा-हार, तीसरा लेप कर्माहार, चौथा औजाहार, पाचवा इच्छाहार, और छठवा कवलाहार। ऐसे आहार के छः प्रकार बतलाये है। नौकर्मा-हार-केवली के कर्माहार सासारिक पृथ्वी जल अग्नि वायु कायक प्राणियों के होता है। लेपाहार वनस्पति, पृथ्वी जल, अग्नि, वायु इनके लिये होते है और कवलाहार मनुष्य तथा पशुओ को होता है और औजाहार पक्षियो के होता है। ये छः ही शरीर की वृद्धि के कारण है क्योकि पक्षी के अंडा देने के पश्चात् उस पर पखो की गर्मी देने के लिए उसकी माँ बैठ जाती है, अंडे में गर्मी देती है, वही उसका आहार है। वनस्पति का लेप आहार है क्योंकि खाद, मिट्टी, जल के लेप होने पर ही वृक्षो की वृद्धि होती है। मनुष्य त्रियच का कवलाहार है तथा देवो का इच्छाहार है। इसलिए केवलियो के नौकर्म आहार होता है उनके कवलाहार नही।

इति शंसय मिथ्यात्व।

देवासादृश भैरवा शिवसदा काली भवानी नदी
वा शंखेस्वर शाकिनी हरिहराऽर्हतास्तथाप्तेश्वराः।

माभेदा च भवन्ति विष्णु शिव एते देवताषु वा ,साधितुः
मन्यन्ते खलु मूढयो गिनियते मिथ्यात्व वैनायिक ।।४५।।

योगियो के मत मे जितने देव है वे सब समान है सब ही की समान भाव से पूजा करते है। तथा वे सदोष व निर्दोष का विचार नही करते है। जहा गये वहा पर ही कोई भी देवता मिल जावे उसकी वदना व पूजा करते ही करते है। नमस्कार करते है उन्ही के गुण गान कर आरती आदि उतारते है। बार-बार विनय पूर्वक धोक देते है। भैरव नाम के जो क्षेत्र पाल है उनमे तथा शिव मे काली और भवानी तथा नदी में कोई अन्तर नही मानते है। सखेश्वर श्री कृष्ण मे तथा शाकिनी तथा डाकिनी मे अतर नही मानते है हरिहर तथा अरहत मे कोई अन्तर नही मानते है तथा आप्त और विष्णु व ईश्वर मे कोई अन्तर नही मानते है वे विष्णु और महादेव मे भी अन्तर नही मानकर समान रूप से देखते है वे अज्ञानी योगी मतवाले वैनायिक मिथ्यादृष्टि है। यह विनय मिथ्यात्व योगियो के मत मे है।

योगियो के मत मे भेदाभेद नही माना गया है वे जिस प्रकार से सर्वज्ञ बीतराग अरहत देव की पूजा वदना करते है उसी प्रकार अन्य पृथ्वी जल वायु अग्नि इनको भी देव मानकर पूजा करते है। क्षेत्रपाल देवी देवता इत्यादिको की पूजा विनय.करते है। गर्दभ व घोड़ा की भी पूजा करते हैं उनको भी देव मानते है इस प्रकार सब स्थानो मे सब तीर्थो मे जाते है स्नान करते है यात्रा करते है वे वैंर्नायक मिथ्यादृष्टि है, वे कौन देव है कौन गुरु है क्या धर्म है क्या अधर्म है क्या उपादेय है इस विवेक से शून्य मूढ अज्ञानी है ।।४५।।

पुत्रार्थ वित्तार्थ सुख समृद्धयार्थ विजयार्थ तथा।
देवार्चानस्मै बलि देह कूल रक्षणार्थमेव ।।४६।।

कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए बकरा-बकरी मुर्गी, मुर्गा, की बलि देवताओ को देता है कोई धन पाने के लिए बलि देता है कोई सुख को वृद्धि के लिये बलि देता है कोई मुकदमा जीतने के लिए बलि देता है कोई कुल जाति और शरीर की रक्षा करने के लिए पशुओ की बलि चढ़ाता है और देवो के लिए बलि देकर अपना स्वारथ पूर्ण करना चाहता है। परन्तु यह बात कदापि हो नही सकती कि दूसरे जीवो का विनाश कर अपने को सुख मिलेगा या सुख की वृद्धि हो जायेगी। या दूसरे हीन दीन जीवो की बलि देने से क्या पुत्र हो जायेगा ? यदि हो जावे तो स्त्री के साथ मैथुन करने की कोई जरूरत ही नही रह जाती। यदि देवो देवता पुत्र ही दे देवे तो बन्ध्या के भी पुत्र हो जाय परन्तु ऐसा होता हुआ कही देखा नही जाता है। जब स्त्री के साथ ऋतुकाल मे विषय मैथुन किया जाता है तब स्त्री गर्भवती हो जाती है और पुत्र या पुत्री होते है। जब कुछ पुण्य का उदय हो साथ मे अपना पुरुषार्थ हो तब तो धन की प्राप्ति हो सकती है परन्तु जब तक पुण्य का उदय नही है तब तक एक बकरा नही हजारो बकरे देवी या भैरव के मन्दिर मे मार-मार कर रक्त बहाते रहो परन्तु धन की प्राप्ति नही हो सकती है। दूसरे जीवो को दुःख देने से यदि सुख (मिले) अथवा प्राण घात करने से सुख की प्राप्ति होतो हो तो कषाई शिकारी भील इत्यादि अनेक जीवो को मार-मार कर देव देवियो के मन्दिरो मे ढेर लगा देते है फिर भी वे दु.खी एक-एक अन्न के दाने को

तरसते फिरते है। अपने सुख की वृद्धि के लिए जीवों की वलि नही देना चाहिए सुख तो धर्म से मिलता है जीवों के अभयदान देने दया करने रक्षा करने से मिलता है। कोई अज्ञानी मुकदमा में मेरी जीत हो जावे इसलिए देवी देवताओ के मन्दिरो में दीन हीन पशु पक्षियो की वलि चढाकर देवताओ को प्रसन्न कर मुकदमा जीतना चाहते है। परन्तु वलि देने वाले, मुकदमा व लडाई मे तथा वाद जीतते हुए नही देखे जाते है क्योकि जो सत्य अहिसा के आधार पर खड़ा हुआ है वही मुकदमा व युद्ध मे विजयी हो जाता है। परन्तु हिसक तो पापो में फंस जाता है जिससे दुर्गति में चला जाता है। विजय नहीं पाता है और निर्दयी कहलाता है। अपने शरीर व कुल की रक्षा करने के लिए देवी देवताओं की पूजा करता हुआ कुक्कट छागा भेड इत्यादि जीवों की हिसा करके अपनी रक्षा करना चाहता है उन देव देवियो से व भूत प्रेतो से अपनी रक्षा करने में समर्थ होवे तो आप मरण को क्यो प्राप्त होवे। पुत्र प्राप्ति के लिए तथा पुत्र की रक्षा करने के लिए पुत्र की शादी करने के लिए अनेक दीन हीन मृगादि जीवों को मार कर देवी की भेट मे दे देते है दूसरे का रक्त बहाने पर अपनी रक्षा कैसे हो सकती है कदापि नही हो सकती दूसरों के प्राण नाश का पाप ही लगता है। दृष्टान्त एक ग्राम में एक चमार रहता था उसके कोई पुत्र नही था तब किसी ने कहा कि देवी तुम पर रुष्ट हो गई है इसलिए तुम्हारे पुत्र नही है। तव उसने देवी की भेट में अनेक जीवों का रक्त बहा दिया कुछ कर्म योग हुआ जिससे पुत्र हो गया तव सब कहने लगे कि देवी के प्रसाद से तुम्हारे पुत्र हो गया। वह पुत्र अल्पायु वाला था, दो चार वर्ष बीते ही थे कि उस ग्राम में राक्षस रहता था उस वालक का भी नम्बर आ उपस्थित हुआ तव वह दौड़ा दौड़ा गया और देवी की आहुति दी दो चार जीवो का खून खच्चर कर दिया तब देवी की आभा प्रकट हो कहने लगी क्यों मुझे याद किया? तब भक्त कहने लगा कि हे देवी जो तूने पुत्र दिया है उसको कल यमराज राक्षस खा लेगा उससे उसकी रक्षा करो। तव देवी ने कहा कि लेआ अपनें पुत्र को वह भक्त शीघ्र ही गया और पुत्र को ले आया और देवी के कहे अनुसार उसकी मंडिया मे वच्चे को छोड़ दिया। देवी भी दरवाजे पर तलवार निकाले खड़ी थी कि राक्षस आया और देवी से कहा कि हमारा आहार तुमने क्यो रोक रक्खा है हमको दो? तव देवी का और राक्षस का युद्ध हुआ और वच्चे को भीतर अजगर निगल गया राक्षस भी भाग गया देवी की जीत हो गई। देवी भक्त से वोली कि जा ले जा अपने पुत्र को, जव वह किवाड़ खोल कर देखता है तो वहा पुत्र नही है उसको तो अजगर पूरा ही निगल गया। विचार करो कि देवी देवता हमारी और हमारी संतान की रक्षा कैसे कर सकते है। देव भी निर्वल की ही वलि चाहते हैं क्या?

गजं नेवाऽश्वनैवच सिंह नैव च नैव च।
अजासुतं वलिदयात हा देव दुर्वल घातकः ॥४७॥

देव हाथी की वलि नहीं चाहते घोड़ा की भी वलि नही चाहते सिंह और वघर्रा की वलि नही चाहते। अन्य वकरी के वच्चे की वलि ही देव चाहते है देखो देव भी दुर्वल के ही घातक है।

विनय करने मात्र से अज्ञानी जीव मोक्ष की प्राप्ति मानते है वे गधा घोड़ा बैल गाय सर्प सिंह सब की विनय करते है। कि विनय करना ही धर्म है सब की विनय करना ही हमारा कर्तव्य है। विनय मात्र से मोक्ष नही होता मोक्ष तो सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र के पालन करने पर होता है। एक विनय गुण से सब देव कुदेव धर्म अधर्म के विवेक सून्य होने पर सबको ही सत्य मानना यह तो अज्ञानता है। यदि देव व यन्त्र मन्त्र की विनय करनें से रक्षा होगी तव यह कहना भी एक मिथ्या ज्ञानी का विषय है क्योंकि रावण के पास हजार विद्याये थी तथा चक्र आयुध था। उसको भी वे मरण से नही बचा सके। इसलिए हमको चाहिये कि सच्चे धर्म देव जो अठारह दोषो से रहित सर्वज्ञ वीतराग है निग्रन्थ गुरु हैं वे ही हमारे लिए शरण भूत है वे ही हमारे रक्षक है तथा अन्य देवी देवता हैं, वे हमारे रक्षक नही है वे स्वयम ही दुःखो से पीड़ित है वे दूसरो की क्या रक्षा कर सकते है ? इस प्रकार विनय मिथ्यात्व का स्वरूप सक्षेप से कहा गया है ॥४७॥

अज्ञान मिथ्यात्व का स्वरूप मस्करी

अज्ञानतो भवतिमोक्षरशेष एव
माप्तनकोऽपि सति किंचिदपायम्
लोकान प्रकाशयन शून्य मिहोपदिष्यं
यत्कर्म कर्तृ न च भुंजति भिन्न जीवः ॥४८॥

कोई अपने विषय व ज्ञान मद मे मस्त होकर कहता है कि सर्वज्ञ कोई है ही नही सब झूठ है। जीवो को उपदेश देता हुआ कहने लगा कि अज्ञान से ही मोक्ष होता है, यह जगत सब शून्य है, जो कर्मो का कर्ता है वह उन कर्मो के फल को नही भोगता है। क्योंकि सब शून्य हो है तब भोग किस में होगा और कौन भोगने वाला होगा। इससे ससार में विराग होनें का कुछ भी विचार करने का नही है।

नित्यकर्मानि विरचति हिंसादिभिः युक्त धर्मः
राज्ञावश्यं तदपि च मया यत्कृत दुष्कृतानि ॥
किभुञ्जन्तीति विविधफल कीदृश शून्य लोकः
मिथ्याज्ञानेभरतिचिरकाल च लोकेषु दुःखं ॥४६॥

कोई अज्ञानी हिंसा झूठ चोरी, परस्त्रीगमन तथा परिग्रह में आसक्त हो कर्म कर पापो का उपार्जन करते हैं। तथा मैंने तो स्वयम् नही किये है जैसी प्रकृति की आज्ञा थी वही किया है मेरे द्वारा तो उसी प्रकार किये गये है इन का फल मैं नही भोगता क्योंकि जगत शून्य है। आप कहते है कि ससार मे भगवान या ईश्वर ब्रह्मा महादेव या अरहत सिद्ध विद्यमान है वे तो हमारी दृष्टि में ही नही आते है वे किसने देखे है। किसने देखा है कि कर्म फल देते हैं। क्या भोगते हुए देखे है इस प्रकार अज्ञानी जीव पापों को कर सात प्रकार के लोको मे भ्रमण कर जन्म मरण के दुःखो का अनुभव अनत काल तक करते रहेगे ॥४६॥

स्वच्छन्दे न करोति वहुदुष्कृत हिंसारम्भेऽसक्तः
आक्षिपन्ति कर्ताकृतं अक्षविषये लम्पट जनाः ॥५०॥

यह अज्ञानता से भगवान की ऐसी ही मर्जी थी और वही मैंने किया। पचेन्द्रियों के विषयों में आशक्त होकर अनेक भेड़ बकरा मुर्गा कबूतर हिरण गाय भैंस इत्यादि जीवों का गला काट काट कर मारता है जिससे मरने वाले जीवों को कितनी वेदना होती है इसका क्या विचार निर्दयी हत्यारे के दिल में आसकता है क्या ? ऐसी ही भगवान की मरजी कह कर बड़ी स्वच्छदता से पाप कर कर्ता के माथे लगा देते है।

दृष्टान्त—आज मुसलमान स्वयं पापाचार करते हैं यदि वे मुहर्रम के दिन विचारे कि दीन हीन मुर्गा मुर्गी तथा बकरा बकरी भेड़ा भेड़ गाय इत्यादि जानवरों के करुआ (गला) काट देते है जिससे वे जीव बहुत देर तक लोट पोट होते हुए तड़फड़ाते है तड़फड़ा तड़पड़ा कर प्राण छोड़ते है। तब कहते है कि अल्लाह इस पर बहुत प्रसन्न है। हिसा करके कहते है कि खुदा नें इनको इसीलिए पैदा किया है। मुरदा को जमीन में गाड़ कर कहते है कि शहीद है वे जब इसलाम धर्म के पालन करने वालों पर सकट आवेगा तब ये सब कबर में से उठ कर युद्ध लड़ेगे इसलिए उस कबर की पूजा करते है दीपक चढाते है कपड़ा माला फूल चढ़ाते है। तथा दिन में तो भूखे रहते है और रात्रि के अंधेरी में बिना दीपक के भी सारी रात्रि में भोजन करते हैं जिससे असंख्यात जीवों को अपना भोजन-बना लेते है। सारे दिन पुण्य कमाते और उसको रात्रि में भोजन कर नष्ट करके पापकी गठरी शिर पर लाद लेते है। हिसा करने में ही धर्म मानते हैं। कहते है कि प्याज खाने में पाप होता है इधर खुदा के नाम पर पशुओं को मार मार कर रक्त बहा देते है और उनका मास निकाल कर आप मिलकर खा जाया करते है। उसका पाप दोष सब खुदा के ऊपर रख देते है इस प्रकार आप स्वच्छन्दता पूर्वक (पाप करते) हिसा करते है और हिसा कर सुख चाहते है यह विपरीत अज्ञान मिथ्यात्व है क्योकि इसमें हेय उपादेय की विधि नही है ॥५०॥

इति अज्ञान विपरीत मिथ्यात्व।

यत्परावर्तन् पच द्रव्य क्षेत्र कालश्चभव सहभावैः।
संसरंति च जीवाः चिरकाल दुःखमनुभवन्ति ॥५१॥

परावर्तन पाँच होते है जिनमें जीव मिथ्यात्व दर्शन मोह के वशीभूत होकर तथा अपनें निज भाव व स्वरूप को भूलकर भ्रमण करते रहते है। तथा जन्म मरण रोग शोक संयोग वियोग रूप दुःखों का अनुभव करते रहते है वे पंच परावर्तन इस प्रकार है द्रव्य परावर्तन क्षेत्र परावर्तन काल परावर्तन और भव तथा भाव परावर्तन ये सब दर्शन मोह की मिथ्यात्व प्रकृति के साथ ही होते है उसको छोड़कर नही। इन परावर्तनों का कारण जीव के मिथ्या भाव ही है यही संसार है।

पुदगल परावर्तन का स्वरूप और भेद।

ततो द्रव्य परावर्तन् द्रव्यनोकर्म भेदतः।
षट्पर्याप्ति शरीराणि योग्यं लाति च नोकर्मणा ॥५२॥

यहां पुद्गल परावर्तन के दो भेद कहे गये है एक तो नोकर्म परावर्तन दूसरा द्रव्य कर्म परावर्तन है। इसमें नौकर्म परावर्तन इसप्रकार है। जब जीव द्रव्य परावर्तन को प्रारम्भ करता है उस समय अपने औदारिक वैक्रियक और आहारक इन तीन शरीरो तथा छह पर्याप्तियो के योग्य नौ कर्म वर्गणाओ को ग्रहण करता है वे वर्गणाये जिस जाति गुण धर्म व वीर्य शक्ति वाली होती है वर्गणाये २३ प्रकार की होती है भाषावर्गणा मनोवर्गणा, इत्यादि है वे अन्य ग्रन्थो से जान लेना चाहिये ।५२।

प्रथमसमये लभ्यते वर्ण गंध रस स्पर्श शक्तिश्च ॥
यद् ग्रहीतानिमुञ्चति द्वितीय समय औदारिकादीन् ॥५३॥
मध्यमध्येऽन्योऽन्यं सचित्ताचित्तानि. द्रव्यानि च।
यत्प्राग्वत् गृण्हाति भवति नो कर्म परावर्त ॥५४॥

जिन नौकर्म वर्गणाओ को प्रथम समय मे जैसी वर्ण गन्ध रस तथा स्पर्श व शक्ति को ग्रहण किया था वे वर्गणाये औदारिक वैक्रियक आहारक इन तीन शरीरो के योग्य तथा इन्द्रिय भाषा और मन श्वास्वोच्छ्वास आहार बल और आयु ये छह पर्याप्तियो के योग्य ग्रहण की और दूसरे समय में छोड दी। उसके पीछे अनेक बार अग्रहीतोको ग्रहण किया। अनेकबार ग्रहीत अग्रहीत मिश्रो को ग्रहण कर मध्य में छोड दिया। कभी सचित्त मिश्र कभी अचित्त मिश्रों को ग्रहण किया। तथा हीन शक्ति वाली ग्रहण की और छोड़ दी कभी अधिक शक्ति वाली नौकर्म वर्गणाओ को ग्रहण कर छोड दिया। वे वर्गणाये सचित्त अचित्त सचित्ताचित्त अचित्त सचित्त तथा दोनो प्रकार की हीनाधिक शक्तिवाली मिली हुई ग्रहण कर छोड़ दी।

पुद्गल द्रव्य में परमाणु तथा सख्यात असख्यात आदि अणुओ के जितने स्कन्ध है वे सभी चल है किन्तु एक अन्तिम महास्कन्ध चलाचल है क्योंकि उसमें कोई परमाणु चल है कोई अचल पुद्गल परमाणु के तेईस भेद हैं १ अणुवर्गणा २ सख्याताणुवर्गणा ३ असख्याताणुवर्गणा ४ अनताणु वर्गणा ५ आहारवर्गणा ६ अग्राह्य वर्गणा ७ तैजस वर्गणा ८ अग्राह्यवर्गणा ९ भाषा वर्गणा १० अग्राह्य वर्गणा ११ मनोवर्गणा १२ अग्राह्य वर्गणा १३ कार्माण वर्गणा १४ ध्रुव वर्गणा १५ सान्तर निरन्तवर्गणा १६ शून्य वर्गणा १७ प्रत्येकशरीरवर्गणा १८ ध्रुव.शून्य वर्गणा १९ वादर निगोदवर्गणा २० शून्यवर्गणा २१ सूक्ष्मनिगोदवर्गणा २२ नभोवर्गणा २३ महा-स्कन्ध वर्गणा। तेईस प्रकार की वर्गणाओ मे से अणुवर्गणा मे जघन्य और उत्कृष्ट भेद नही है। शेष बाईस जाति की वर्गणाओ मे उत्कृष्ट मध्यम और जघन्य भेद है। तथा इन बाईस जाति की वर्गणाओ में भी आहार वर्गणा भाषा वर्गणा मनोवर्गणा तैजस वर्गणा और कार्माण वर्गणा ये पाच ग्राह्य वर्गणाये है एक महास्कन्ध वर्गणा इन छह वर्गणाओ को इन जघन्य और उत्कृष्ट भेद प्रतिभाग की अपेक्षा कृत है। किन्तु सोलह जाति वर्गणाओ के जघन्य उत्कृष्ट भेद गुणकार की अपेक्षसे हैं ये वर्गणाये वर्गो के समूह से बनी हुई एक एक वर्गणा मे सख्यात वर्ग असख्यात वर्ग अनत वर्ग के समूह को वर्गणा कहते हैं। सख्यात वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते है। यह सब लोकाकाश मे भरे हुए है ॥५२

इस प्रकार अनन्त बार छोड़दी परन्तु जिनको पहले समय मे ग्रहण किया था उनको

सचित्त कहते है जिनको ग्रहण नहीं किया उनको अचित्त कहते है। ऐसी वर्गणाये अनन्त है कि जिसको जीव ने ग्रहण नहीं किया है। दोनों प्रकार की वर्गणाओं को मिश्र कहते है जब जीव के पहले के समान भाव हों और पहले के समान ही वर्ण रस गंध स्पर्श शक्ति मिले जिसमे न हीनता हो न अधिकता हो ऐसी वर्गणाओं को जिस समय में अपने तीन शरीर व छह पर्याप्तियों के योग्य ग्रहण करे तब नोकर्म द्रव्य परावर्तन होता है।

कर्माष्टविधोबन्धो ज्ञानावर्णादीनां योग्यं लभते ॥
द्वितीये मुक्ताकाले सचित्ताचित्त प्राग्वल्ला ॥५५॥
द्रव्य रस गंध स्पर्श वर्णाभिर्भावमापद्यं यथा काके ॥
द्रव्यपरावर्तनमुक्तं च ससारिणां साधिकदुःखं ॥५६॥

कर्म द्रव्य परावर्तन—जब यह जीव अपने भावों कर आठ कर्मो के योग्य द्रव्य कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता है। वे कर्म वर्गणाये स्पर्श रस गंध वर्ण शक्ति की धारक ग्रहण की और दूसरे समय में छोड़ दी। जब पहले के समान आठों कर्मो के योग्य ग्रहण करे तब द्रव्य कर्म परावर्तन होता है। वे आठ कर्म ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन द्रव्य कर्मो का वंध आयु कर्म को छोड़ कर शेष का निरंतर होता है आयु कर्म का वध जीवन मे एक बार होता है। मध्य में सचित्त अचित्त व सचित्ताचित्त को अनत बार ग्रहण किया और छोड़ा उनका यहां ग्रहण नही किया गया है। विशेष इतना है कि ज्ञानावर्णादि आठों कर्मो में से एक आयु कर्म को छोड़कर सात कर्मो का आस्रव और वध निरतर चलता रहता है। परन्तु आयुकर्म का वध आयु के त्रिभाग मे एक बार ही होता है ऐसे त्रि भाग (अपकर्षणकाल) जीव के मुक्तायु मे मनुष्य व त्रिर्यञ्चों में आठ बार अपकर्षण काल कहलाता है। उसमें ही आयु का वंध होता है देव और नारकियो के छह महीना आयु के शेष रह जाते है तब आयु का वध होता है। बीच में आयु का वध नही होता है बीच में अनेक ग्रहीत अग्रहीत ग्रहीताग्रहीत द्रव्य कर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर छोड़ दिया। परन्तु पहले के समान भाव और वर्ण, रस, गंध, स्पर्श और शक्ति की प्राप्ति नहीं हुई। जब पहले के समान जीव के भाव हों और पहले के समान शक्ति और द्रव्य कर्म वर्गणाये पर्याप्त हों और द्रव्य कर्म वर्गणाये आठों कर्मो के योग्य प्राप्त हो तब द्रव्य परावर्तन हो जाता है इस परावर्तन को पूरा करता हुआ प्राणी मिथ्यात्व के कारण बहुत दुखों का भोग करता है।

विशेष—पुद्‌गल परावर्तन दो प्रकार का है एक नौकर्म द्रव्य संसरण द्रव्य कर्म संसरण, उसमें नोकर्म परावर्तन नाम तीन शरीर (तथा भाषा) औदारिक वैक्रियक, आहारक शरीर। तथा आहार शरीर भाषा इन्द्रिय मन और श्वास्वोच्छ्वास ये छह पर्याप्तियों के योग्य नौकर्म वर्गणाये एक जीव के द्वारा ग्रहण किये स्पर्श, रस, गध, आदिक तीव्र मंद मध्यम भावो से ग्रहण किये यथा दूसरे समय में छोड़ दिये। बिना ग्रहण की हुई नौकर्म वर्गणाओ को अनेकबार ग्रहण किये और छोड़ दिये। मिश्र वर्गणाओं को भी ग्रहण किया। और छोड़ दिया कुछ पहले ग्रहण की कुछ नही भी उनका भी अनन्त बार ग्रहण कर छोड़ दिया बीच में अग्रहीत वर्गणाओ का त्याग कर जो पहले समय में जिनको ग्रहण कर आहारक हुआ था वे

ही पुनः तीव्र, मद, मध्यम, रस शक्ति की धारक स्पर्श रस गध वर्णमय नो कर्म वर्गणाओ को ग्रहण करे तथा समय प्रवृद्ध को ग्रहण करे तब नो कर्म द्रव्य परावर्तन होता है।

एक जीव ने अपने भावों कर आठकर्मो के योग्य समय प्रवृद्ध द्रव्य कर्म वर्गणाओ को ग्रहण किया वे वर्गणाये पहले के समान ही तीव्र मन्द या मध्यम रसादि युक्त ग्रहण किये। इनको दूसरे समय मे भोग कर छोड दिए। पुन· पहले के समान अगृहीत और गृहीत अगृहीताग्रहीतों को बीच मे अनत बार ग्रहण कर छोडता रहा तथा फल भोग निर्जरा की। जब पहले के समान वे ही मन्द तीव्र मध्यम शक्ति वालो भावों सहित ग्रहण करने मे आवे तब द्रव्य कर्म परावर्तन होता है। ५६। कुन्द-कुन्दाचार्य नें ससारानुप्रेक्षामे कहा है।

सव्वेसिं पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्भिया य जीवेण ।।
असइ अणत खुत्तो पुग्गल परिपट्ट संसारे ।।१।।

इस जीव ने निश्चय से लोक मे जितने कर्म नोकर्म पुद्गल थे उन सव को अपना आहार बना-बना कर भोग कर छोड दिया। ऐसा कोई पुद्गल द्रव्य वाकी नही रहा कि जिसको जीव ने आहार नही बनाया हो अनन्त काल व्यतीत कर दिया पुद्गलो का पर्वत पूरा किया। और ससार में भ्रमण करता आ रहा है।

- आगे क्षेत्र परावर्तन का स्वरूप कहते है।

प्रागाकश्यं क्षेत्र : शंलस्यमध्याष्टौ प्रदेशानि ।
सूक्ष्म निगोद शरीरं एकैक वृद्धि सर्वलोकः ।।५७।।

जब यह जीव क्षेत्र परावर्तन को प्रारम्भ करता है लोक के मध्य मेरु पर्वत है उसके मध्य आठ प्रदेशो को एक सूक्ष्म निगोदिया जीव ग्रहण कर श्वास के अठारहवे भाग मात्र आयु का भोग कर मरण को प्राप्त हुआ पुन· दूसरी बार आशा करके एक प्रदेश वृद्धि कर जन्म लिया और यहा इसी क्रम से ग्रहण किये और छोड़े मध्य में अनेक अग्रहीत और ग्रहीत अग्रहीत दोनो मिले हुए प्रदेशो को ग्रहण किया और मरण कर छोड़ा ऐसे अनत बार किये उनका यहाँ क्रम नही। जिस प्रकार कोई जीव मध्य लोक मनुष्य पर्याय में जन्म लेकर अपनी आयु पूर्ण कर जम्बूद्वीप से बाहर त्रियंकलोक में त्रियंच हो गया फिर नरक गया फिर तिर्यंचो मे उत्पन्न हुआ फिर देव पर्याय को भी पाया और छोड़ा परन्तु मनुष्य पर्याय नही पाई ऐसी मध्य की पर्यायो की यहा पर गिनती नही की गई। जगत मे भ्रमण कर जब उन मेरु के मध्य के आठ प्रदेशो की सबसे छोटी अवगाहना को धारण कर एक प्रदेश क्रम से वृद्धि कर जन्मा और मरण किया। पुन· एक आकाश प्रदेश की वृद्धिकर जन्मा और अपनी आयु को पूर्ण कर मरा इस प्रकार क्रम से आकाश प्रदेशो को अपना जन्म क्षेत्र वनालेता है कोई लोक मे ऐसा आकाश का क्षेत्र वाकी नही रहा कि जहा इस जीव का जन्म क्षेत्र बनना हो। जव ससार मे भ्रमण कर फिर उन्ही आठ प्रदेशो को अपना पहले के समान जन्म स्थान बना लेवे तब एक क्षेत्र परावर्तन होता है। विशेष यह है कि निगोदिया सूक्ष्म लब्धपर्याप्तक जघन्य अवगाहना वाले शरीर का धारक लोक के मध्य आकाश प्रदेशो को अपने शरीर के आठ प्रदेशो को ग्रहण कर (श्वास के अठारहवे भाग में) जन्मा और क्षुद्रभव धारण कर श्वास के अठारहवे भाग

में आयु को पूर्ण कर मरण किया। उसकी अवगाहना को धारण कर घनांगुल के असख्यातवे भाग सूक्ष्म शरीर का धारक हुआ। पुन एक प्रदेश वृद्धि कर जन्मा इसी प्रकार दूसरी बार तीसरी बार चौथी बार क्रम से प्रदेशो का ग्रहण करता रहा। जब लोकाकाश के सब प्रदेशों को अपना क्रम से जन्म क्षेत्र बना लिया अन्तराल में क्रम को छोड़कर अन्य प्रदेशो को जन्म क्षेत्र अनतबार बनाया पर वह क्षेत्र यहा ग्रहण नही किया गया है यहा पर तो क्रम ग्रहण किया गया है। जब क्रम के अनुसार एक-एक प्रदेश की वृद्धि कर के असख्यात प्रदेश वाले लोक के प्रदेशों को अपना जन्म स्थान बना लेता है तब एक क्षेत्र परावर्तन होता है। वीच मे सचित्त अचित्त सचित्ताचित्त प्रदेशो को ग्रहण किया उनकी कोई गिनती नही है।

आगम में भी कुन्द-कुन्दाचार्य कहते है।

सव्वं हि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि ज ण उप्पण्णं ॥
ओगा हणेण वहुसो परिभमिदो खेत्त संसारे ॥२॥

काल परावर्तन :

कालोद्विविधो भवति उत्सर्पिण्य व सर्पिणी विभागतः
जीवो जातोत्सर्पिण्यां प्राक् समये भुक्तायुर्निर्जीर्णः ॥५८॥
विशंति कोटा-कोटी स्थितिः सागरः काल संसारस्य
समयैकैक वृद्धिश्च सर्व काल प्रदेशान्यायुषम् ॥५९॥

काल के दो भेद है एक उत्सर्पिणी और दूसरा अवसर्पिणी है। कोई जीव उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय में उत्पन्न हुआ और आयु का भोग कर मरण किया। पुनः द्वितोय उत्सर्पिणी के दूसरे समय में जन्म लिया और आयु का भोगकर मरण किया। पुनः उत्सर्पिणी के तीसरे समय में जन्म लिया इसी क्रम से दश कोडा कोडी सागर उत्सर्पिणी के जितने समय हुए उन सब को क्रम से ग्रहण किया और भोगकर छोड़ दिया जब उत्सर्पिणी काल शान्त हो जाय और अवसर्पिणी काल का प्रथम समय जोव को प्राप्त हो और पहले क्रम के अनुसार अवसर्पिणी के दश कोडा कोडो सागर के जितने प्रदेश होते है उन सब को अपनी आयु समाप्त करे तब काल परावर्तन होता है। मध्य में उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी के क्रम को उलंघन कर अनेक कालाणुओं को प्राप्त करता रहा वे काल प्रदेश सचित्त और अचित्त तथा सचित्ताचित्त मिले हुए ग्रहण कर भुक्तायु को त्याग कर अनत भव धारण किए वे भव यहा पर ग्रहण नही किये गये है।

विशेष—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों दश-दश कोडा-कोडी सागर की स्थिति वाले होते है। इन दोनों की समाप्ति होने को एक कल्पकाल कहते है। कोई जीव उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय में उत्पन्न हुआ और अपनी भुक्तायु को परिसमाप्त कर मरा और दूसरी उत्सर्पिणी के दूसरे समय मे जन्म लेकर वहा की आयु को भोगकर मरण किया। और तीसरी उत्सर्पिणी के तीसरे समय मे जन्म लिया और वहा की आयु का भोगकर मरा। इसी प्रकार क्रम से दश कोडा-कोडी सागर के जितने समय होते हैं उन सबको अपनी आयु बना ली और क्रम से पूर्णकर अवसर्पिणी को भी पहले क्रम के अनुसार भोग मध्य की गिनती नहीं की इस प्रकार काल परावर्तन समाप्त किया ५८।५९॥

कुन्द-कुन्दाचार्य ने भी कहा है ।

उवसर्प्पिणी अवसर्प्पिणी समयावलियासु णिरवसेसासु ।।
जादो मुदो य बहुसो भमणेण दु काल ससारे ।।३।।

आगे भवपरावर्तन को दो श्लोको मे कहते है ।

दस सहस्र वर्षायुः स्त्रायस्त्रिंशत्सिधूत्कृष्ट नारके ।।
तिरश्चां जघन्योत्कृष्टान्तर्मुहूर्तं त्रिपल्योयम् ।।६०।।
तिर्यङ्त्वैव मनुष्ये नारकवत्तैवदेव देवेषु विशेषः ।।
मिथ्यात्वे भवत्यायुः एकत्रिंशत सागरोपमः ।।६१।।

नारकी जीवो की प्रथम नरक के प्रथम इन्द्रक विल में जघन्य आयु दश हजार वर्ष की और उत्कृष्टायु सातवे नरक के रौरव नाम के नरक मे तेतीस सागर की है । तथा तिर्यंचो की जघन्य आयु एक अन्तर्मुहूर्त से लेकर उत्कृष्ट भोगभूमि को त्रियंचो की आयु तीन पल्य की होती है तिर्यंचो के समान ही मनुष्यो की आयु होती है । देवो को आयु नारकियो के समान दश हजार वर्ष से लेकर तेतीस सागर की होती है परन्तु इतना विशेष है कि मिथ्यात्व के उदय मे रहते हुए देवो की आयु इकतीस सागर की होती है क्योकि कोई द्रव्य लिंगी जिनकल्पी मुनि घोर तपस्या करके अन्तिम ग्रीवक में उत्पन्न होता है जिससे वहा की आयु इकतीस सागर की प्राप्त करता है । उससे आगे देवो में मिथ्यादृष्टि जीव उत्पन्न नही होते । नव अनुदिश और पाच अनुत्तर विमानो में नियम से सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते है वे मनुष्य भव से ही अपने साथ लेकर जाते हैं । और च्युत होकर एक भव कोई दो भव मनुष्य के धारण कर अत मे मुक्ति को प्राप्त होते है । इसलिए उनकी आयु को यहा ग्रहण नही की है ।

किसी जीव ने नरक गति की व नरक भव की प्रथम समय में दश हजार वर्ष की आयु बाध कर जन्म लिया और वहा की आयु का भोगकर नरक गति को छोड़कर अन्य क्षेत्र अन्य पर्याय मे उत्पन्न हुआ पुन मर कर उसी नरक मे अन्तरमुहूर्त की वृद्धि करके दश हजार वर्ष की आयु भोगी इसी क्रम से अन्तर्मुहूर्त की प्रत्येक बार वृद्धि कर जन्म लेता रहा बीच बीच मे क्रम वदल कर अन्य नरको मे भी गया उसका ग्रहण यहा नही किया । जितने दस हजार वर्ष के समय थे उनको क्रम से अपनी आयु वना लिया और वृद्धि करता हुआ सातवे नरक की तेतीश सागर के समय प्रवृद्ध कर आयु को भोगा । बीच-बीच मे अन्य भव धारण किये उनका यहा ग्रहण नही किया । क्रम कर सब नरकायु का भोग कर छोड़ा तब त्रियंचगति में पहुचा वहा की आयु जघन्य अन्तरमुहूर्त की आयु को बाधकर जन्म लिया और आयु का भोगकर मरण किया पुन· त्रियंच गति को प्राप्त होकर अन्तर मुहूर्त के जितने समय होते है उतने बार जन्मा और मरा पुन: एक-एक समय की वृद्धि कर त्रियंच आयु का बंध कर समय प्रवृद्ध करते हुए तीन पल्य की आयु तक क्रम से भोग किया और मध्य मे अन्य गति व अन्य आयु का भोग किया उसका यहा ग्रहण नही करना यहा तो क्रम के अनुसार ही ग्रहण करना बीच मे अन्य भवो मे वा अन्य त्रियंचो की आयु को प्राप्त कर भोगा उनका यहा क्रम नही गृहीत, अग्रहीत, ग्रहीताग्रहीत तीनो आयु का भोग किया जिसमे अनत बार जन्मा और

मरा और भव धारण किये वे यहाँ गिने नही गये है।

पुन: मनुष्य गति को प्राप्त हुआ और मनुष्यगति की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त को लेकर जन्मा (तथा भोगकर छोड़ा) तथा अन्तर्मुहूर्त की स्थिति मात्र भुक्तायु को भोगकर मरण को प्राप्त हुआ पुन: एक समय की आयु की वृद्धि करके मनुष्य भव को धारण किया और आयु को भोगा मरण को प्राप्त हो अन्य योनियो में व गति मे उत्पन्न हुआ वहा की स्थिति को पूर्णकर पुन: मनुष्य भव में समय की वृद्धि कर जन्म लिया इस प्रकार एक-एक समय प्रवृद्धि करते हुए मनुष्य की तीन पल्य आयु तक क्रम से प्राप्त करता गया जब तोन पल्य में जितने समय होते है उन सव को क्रम से पूर्ण कर देव गति को प्राप्त किया ओर नरक के समान क्रम से देव आयु का भोग किया। यहा पर इतना विशेप है कि नरक मे जघन्य पहले इन्द्रक की नारकी जीवो की आयु १० हजार वर्ष की है वैसे ही देवो मे व्यन्तर भवनवासी तथा ज्योतिपी देवो की भी आयु १० हजार वर्ष की जघन्य होती है। नरकों में तो सातवें रौरव की उत्कृप्ट आयु का भोग करते है परन्तु देव मिथ्यादृप्टि इकतीश सागर की स्थिति का ही भोग करते है। इस प्रकार चारो गतियो मे भ्रमण कर पुन· वंसे ही भाव हो जिससे पहले के समान नरक गति को प्राप्त हो तब एक भव परावर्तन होता है।

विशेप—प्रथम नरक मे सवसे जघन्य आयु दश हजार वर्ष प्रमाण है कोई मिथ्या-दृप्टि जीव नरक के पहले पाथड़े में दश हजार वर्प की आयु लेकर उत्पन्न हुआ और आयु की परिसमाप्ति कर मरण किया। पुन: अन्यगति मे गया वहाँ का आयु को भोगकर मरा और वहा पर पहले नरक की जघन्यस्थिति के दूसरे समय का वध कर उत्पन्न हुआ जिसमें दश हजार वर्प के समय होते हैं उन सवको क्रम से एक-एक समय की वृद्धि कर सब समयो को भोगकर क्रम से एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दश सागर, सत्रह सागर वोस सागर और तेतीस सागर के जितने समय होते है उनको अपनी आयु वनाकर भोगता है इस प्रकार नरक भव को पूर्ण करता है। वीच-वीच में अन्य-अन्य भव धारण करता रहता है इसका भी एक कारण है कि नारको मरकर नारकी नही होता देव मर कर देव व नारकी नही होता नारकी मरने के पीछे देव नही होता है। देव और नारकी दोनो ही त्रियंच व मनुष्यो मे ही नियम से मर कर उत्पन्न होते है। इसलिए वीच मे अन्य भव धारण किये थे वे गिनती में नही लिए गये है। मनुष्य और त्रियंचो मे एक विशेपता यह है कि मनुष्य मरकर भी मनुष्य भव को धारण कर सकता है उसो प्रकार त्रियंच भी मरण कर त्रियंच हो सकता है इस कारण मनुष्य के भी क्रम से लेकर तीन पल्य तक की आयु का भोग करता है। अनुदिश ओर अनुत्तर विमान वासो जीव सव सम्यक्त्व लेकर उत्पन्न होते है। उनका एक या दो वार मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर कर्मो का नाश कर अविनाशी अविचल ध्रौव्य अविकलक निरंजन टकोत्कीर्ण पद को प्राप्त होते है। इसलिए इन चौदह विमानों का भव परावर्तन में ग्रहण नही किया गया है।६०-६१॥

इति भव परावर्तन

कहा भी है—णिरयादि जहण्णादिसु जावदुदुनुवरिल्लिपादु गेवेज्जा॥
मिच्छत्त संसिदेण दु वहुसो विभवट्ठिरी भमिदो॥४॥

आगे भाव परावर्तन का स्वरूप कहते हैं।

संज्ञी पर्याप्तकश्च सानिराकारोपयोगयुक्तश्च।
बंधं करोति चतुर्थाः योग कषाय मिथ्यात्वैः सह ॥६२॥
षट् स्थाने पतितानि ऐधन्ते कषायानिसलोक परिसमाप्यते।
जघन्योत्कृष्टान्तकोटाकोटी त्रिशत्सागरः ॥६३॥
ज्ञानावर्णादीनां प्रकृतिस्थित्यनुभाग प्रदेशानि।
बंधित्वा ससारेऽनंतभाव परावर्तने च ॥६४॥

कोई मिथ्यादृष्टि सज्ञी पर्याप्तक पचेन्द्रिय दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोगवाला प्रकृति स्थिति वध को कषाय और योगों कर वाधता है वे योग स्थान क्रम से छह स्थानों को प्राप्त होते है। सख्यातगुण वृद्धि, असख्यात गुण वृद्धि, अनत गुण वृद्धि, अनत गुणहानि, असख्यात गुण हानि, सख्यात गुण हानि। तथा सख्यात भाग वृद्धि, असख्यात भाग वृद्धि, अनत भाग वृद्धि, अनत भाग हानि, असख्यात भाग, हानि सख्यात भाग हानि इस प्रकार योगो की वृद्धि प्राप्ति होती है। जव योग स्थान वृद्धि को प्राप्त होते हुए सव लोक परिसमाप्त होते है तव एक क्रोध कषाय स्थान होता है जव क्रोध कषाय वृद्धि को समाप्त होता है सव सर्वलोक परिसमाप्ति करता है। उसी क्रम से मान कषाय, माया कषाय और लोभ कषायो की वृद्धि भी जानना चाहिये। जव कषायों की वृद्धि योग स्थानो सहित हो तव स्थिति वध होता है। जव अनन्त कोटा कोटी सागर प्रमाण जघन्य स्थिति ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मों की रह जाती है तव योगस्थान होता है। योग और कषायो की जैसी वृद्धि होती जाती है तथा सक्लिष्ट परिणाम होते जाते है वे परिणाम असख्यात लोक के (प्रमाण) वरावर होते है तव ज्ञानावरण की स्थिति वध ३० कोटा कोटी सागर की होती है। यह चार प्रकार का वध प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश वध कोई एक मिथ्यादृष्टि पचेन्द्रि पर्याप्तक दर्शन ज्ञानोपयोग सहित जीव अपने योग मद सक्लिष्ट परिणामो वाला अन्त कोटा कोटी सागर की जघन्य स्थिति वाधता है। करोड़ से करोड़ का गुणा करने पर जितनी सख्या हो उसको अन्त कोटा कोटी कहते है जिस जीव के कषाय स्थान असख्यात लोक प्रमाण छह स्थान पतित उस स्थिति के योग्य होते हैं। अर्थात् उस अन्त कोटा कोटी सागर को जघन्य स्थिति वांधने का कारण कषाय भाव ही है। वे भाव जितने लोक में प्रदेश है उतने है।

उस एक स्थानमे अनंतानत अविभाग परिच्छेद है जिनमें अनन्त भाग हानि, असख्यात भाग हानि, सख्यात भाग हानि सख्यात गुण हानि, असख्यात गुण हानि, अनत गुण हानि। अनत भाग वृद्धि, असख्यात भाग वृद्धि, सख्यात भाग वृद्धि, अनत गुण वृद्धि, असख्यात गुण वृद्धि, सख्यात गुण वृद्धि, इस प्रकार छह हानि छह प्रकार वृद्धि रूप प्राप्त होते है। वहा पर सम्पूर्ण जघन्य कषाय है अध्यवसाय स्थान है निमित्त कारण है और अनुभाग वध अध्यवसाय स्थान असख्यात लोक के प्रदेशो के प्रमाण होते है इस प्रकार कषाय मोहनीय का स्थान सर्व जघन्य है अनुभाग स्थानो का दूसरा असंख्यात भाग वृद्धि सहित योग स्थान होता है इस प्रकार त्रयादिक योग स्थानो चौथे स्थान को प्राप्त हुए जगच्छ्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण योग

स्थान होते है। तो भी पहले के समान स्थितऔरपहले के समान कषाय अध्यवसाय स्थान को प्राप्त हुए द्वितीय अनुभाग अध्यवसाय स्थान होता है और उसके योग स्थानो को पहले के समान ही जानना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे आदि मे भी अनुभाग अध्यवसाय स्थान होते हैं। वे भी सर्वलोक बराबर होते है वास्तविक ये ही स्थित स्थान को प्राप्त करने वाले जीव के द्वारा किये गये कषाय अध्यवसाय स्थान होते है। इस प्रकार उस ही स्थिति को ग्रहण करने वाले के द्वितीय कषाय अध्यवसाय स्थान होता है उसका भी होना अनुभव अध्यवसाय स्थानों को तथा योग स्थानो को पहले के समान ही जानना चाहिये। कही हुई जघन्य स्थिति के एक समय अधिक कषायादि स्थानों को पहले के समान क्रम से एक समय अधिक उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटा कोटी सागर प्रमाण कषाय स्थान जानना चाहिये।

भावार्थ—इस प्रकार (असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थानो में एक से एक में योग-स्थान जगत् श्रेणी के असख्यात वे भाग असख्यात प्रमाणगणनाम से अनुक्रम से होते जावे और अनुभाग स्थान असख्यात लोक प्रमाण अनुक्रम से हो चुके तब एक कषाय स्थान बदलता है और दूसरा कषाय स्थान होता है। इसी प्रकार तीन आदिक भी कषाय अध्यवसाय स्थान होते होते असख्यात लोक परिपूर्ण होने तक क्रम से वृद्धि जानना चाहिये।

अर्थात्—तीसरे कषाय स्थानो मे असख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थान क्रम से होते हैं। अनुभाग स्थानो के एक एक में जगत् श्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण अनुक्रम से योग स्थान होते जाते है। इसी प्रकार चौथा कषाय स्थान पलटे और पाँच आदिक कषाय स्थान क्रमानुसार होते-होते असख्यात लोक प्रमाण हो जावे तब पहले कही गई अत:कोटा कोटी सागर की स्थिति से एक-एक समय अधिकज्ञानावरण कर्म दर्शनावरण की स्थिति बधती हैं कही गई जघन्य स्थिति से समय अधिक के कषाय भाव स्थान अनुभाग अध्यवसाय स्थान योग स्थान क्रमानुसार पहले के समान होते हुए एक समय अधिक क्रम से उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त तीस कोडा कोडी सागर प्रमाण तक अनुक्रम से कषाय स्थान अनुभाग अध्यवसाय स्थान योग स्थान पहले की तरह जानना चाहिये। अर्थात् जगत श्रेणी के असख्यात वे भाग प्रमाण असंख्यात गणना में जब योग स्थान क्रम से पलट जावे तब एक अनुभाग स्थान पलटता है और असख्यात लोक प्रमाण जब अनुभाग स्थान एक कर क्रमानुसार बटवारा हो जाय तब एक कषाय स्थान पलटता है। जब असख्यात लोक प्रमाण कषाय स्थान क्रम के अनुसार पलट जावे तब एक समाधिक होकर स्थिति बदलती है। अनत भाग वृद्धि, असख्यात भाग वृद्धि, सख्यात भाग वृद्धि, सख्यात गुण वृद्धि, असख्यात गुण वृद्धि, अनत गुण वृद्धि, इस प्रकार छह स्थान गुण वृद्धि हैं। छह स्थान हानि है पहले कह आये है उसी प्रकार यहा भी हानि छह प्रकार जाननी चाहिए। अनंत भाव वृद्धि अनत गुण हानि को छोड़ कर शेष चार को यहा पर ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार सब कर्मो की मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियो का परिवर्तन क्रम जानना चाहिये। इस प्रकार के समूह का नाम भाव परावर्तन है। प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश बध होता है।

भाव ससार मे विशेष जानने की बात यह है कि कषाय और योगों से ही कर्मो को

तीव्र, मद, मदतर, तीव्रतर, तीव्रतम इस प्रकार की स्थिति पड़ती है। वंध के मूलकारण मिथ्या-कपाय और योग है तथा अविरत और प्रमादो को भी ग्रहण किया गया है परन्तु प्रमाद और अविरतिं दोनो का कपायो मे समावेश हो जाता है। क्योकि कपायों से ही असंयम होता है प्रमाद भी कपायो से ही होता है। मिथ्यात्व दर्शन मोह तथा कपाय मोह का उदय ही ससार है। जव कपायो से युक्त जीव होता है तव कपायें वाह्य निमित्त पाकर अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होती है तव लोक मे असख्यात प्रदेशो के वरावर कर्म वर्गणाओं को अपनी तरफ खीच लेता है। क्रोध का स्वभाव शैल के समान है, मान का स्वभाव पत्थर के समान है, माया का स्वभाव वास की जड के समान है, लोभ का स्वभाव किरिमी के रग के समान है। जैसे जैसे कपायें वढती जाती है तैसे-तैसे आत्मप्रदेशो में परिस्पन्द होता जाता है और योग रूप परिणति होती है तव कपायो की वृद्धि अधिक हो जाती है। जैसे कपायें वढती है तैसे ही परिणामो मे सक्लिष्टता वढती जाती है जिससे तीव्र, मद, मध्यम और उत्कृष्ट, जघन्य जैसे कपाये होती है वैसे ही परिणाम होते है। जिस जाति की कपायें होती है उसी जाती की द्रव्य कर्म वर्गणाओ के स्कन्ध समय प्रवद्ध को प्राप्त होते है अनतानुवधी कपाय युक्त जीव ही लोक प्रमाण असख्यात कर्म वर्गणाओ को आकर्पित करता है। तथा जब कपायो का निमित्त मिलने पर मन रूप, वचन रूप, काय रूप जो आत्म प्रदेशो में परिस्पन्द (हलन चलन) होता है उनको क्रम से मनोयोग, वचन योग, काय योग कहते हैं। कपायों के मिले हुए भावो की चच-लता का या आत्म प्रदेशो का होना योग है मनोयोग चार प्रकार वचन योग चार प्रकार काय योग सात प्रकार का होता है इनका कथन आस्रव प्रकरण मे करेंगे। इन कपाय और योगो के द्वारा आकर्पित द्रव्य कर्म वर्गणायें आती हे और स्वय कर्म रूप परिणमन कर जाती है वर्गणाओ का सख्यात, असख्यात, अनन्त तोन प्रकार से आस्रव होता है। एक समय मे जीव सिद्धराशि के अनतवे भाग तथा अभव्य राशि के अनत गुण (वर्गणा) वर्ग समूह को ग्रहण करता है। उनका वँटवारा आठ कर्मो मे समानता से होता है वचा वहुभाग वेदनीय को दिया जाता है। उसमे से वचा वहुभाग मोहनीय को उसमें से वचा भाग ज्ञानावर्ण दर्शनावरण और अंतराय इन तीन को नाम और गोत्र को वहु भाग दिया शेप वचा वह आयु कर्म को दिया क्योंकि उसकी स्थिति तेतीस सागर उत्कृष्ट है। विशेप यह है कि सात कर्मो का निर-तर वध चलता रहता है परन्तु आयु कर्म का वध भुक्तायु के त्रिभाग मे ही पड़ता है ऐसे त्रिभाग को अपकर्पण काल कहते हैं। उनमे ही आयु वध होता है। अथवा अत काल मे या छह महीना शेप रहने पर। देव तथा नारकियो के समान आयु का वध होता है। तीव्र सक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि ही नरकायु का उत्कृष्ट वध करता है। मद कपाई सम्यग्दृष्टि श्रेणी चढने वाला सक्लिष्ट परिणामी देव आयु का उत्कृष्ट वध करता है। और ससार मे भ्रमण कर भाव परावर्तन करता है। समय प्रवद्ध किसको कहते है? समय प्रवद्ध जितनी कर्म वर्गणाओ को जीव एक समय में ग्रहण करता है उनको समय प्रवद्ध कहते है। इन परा-वर्तनो का स्वरूप विशेप आगम में जानना चाहिये।

इति भाव परावर्तन।

सव्वा पयडिट्ठिदिश्रो श्रणुभाग पदेश वंध ठाणाणि ।
मिच्छत्त संसिदेण यभमिदा पुणभाव संसारे ।।४।।

सव प्रकृति वध स्थान, स्थित वंध स्थान, श्रनुभाग वंध स्थान, प्रदेश वध स्थान को प्राप्त कर मिथ्यात्व के कारण ही जीव ने भाव संसार में भ्रमण किया ।

मिथ्यात्वमोहोदेये जीव पावति च दारुणं दुःखं ।।
षट्षष्टि सहस्र साधिक षट् त्रिशत् त्रिशत् क्षुद्र भवः ।।६५।।

मिथ्यात्व दर्शन मोह के उदय होने के कारण ही जीव ससार मे चिरकाल भ्रमण करता हुश्रा यहाँ घोर दीर्घ काल से जन्म मरण के दुःखों को प्राप्त कर भोगता हुश्रा संसार में दुःखी हो रहा है । मिथ्यात्व के ही कारण यह जीव लब्ध पर्याप्तक श्रवस्था में क्षुद्रभव धारण करता हुश्रा श्रन्तरमुहूर्त में ६६३३६ बार जन्म मरण करता है एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल वायु, श्रग्नि व वनस्पति इनमें क्षुद्र भव साधारण व प्रत्येक इनमें क्रम से प्रत्येक-प्रत्येक के ग्यारह हजार २२ भव धारण करता है सव के मिल कर ६६१३२ बार होते है । तथा दो इन्द्रिय के ८० तीन इन्द्रिय के ६० चार इन्द्रिय के ४० पांच इन्द्रिय के २४ भव एक जीव क्षुद्र भव धारण करता है । कुल जन्म मरण ६६३३६ बार होते है ।

लब्ध्वादुःखं चतुरगतिषु, सकलगतिषु भ्राम्य मानाश्शरीरी
इष्टाऽष्टौ शुभमशुभमिच्छा च योगे वियोगे ।।
लाभालाभेस्वपरिजन पुत्रादि वित्तं क्षयेवा
मिथ्यामोह न सह इह नाना कुयोनीषु नित्यम् ।।६६।।

हे भव्य जीव तू दर्शन मोहनीय की मिथ्यात्व प्रकृति के उदय में रहने के कारण चौरासी लाख योनियों में जन्म श्रौर मरण के दुःखो का भोग करता श्रा रहा है । चारो गतियों में तथा चौरासी लाख योनियो में वे योनि नित्य निगोद, संसार चतुंगति निगोद पृथ्वी कायक, जल कायक, श्रग्नि कायक, वायु कायक और इन सबकी सात-सात लाख तथा वनस्पति की दश लाख विकलेन्द्रिय जीवों की प्रत्येक की दो दो लाख देव नारकी तथा पंचेन्द्रिय त्रिर्यचो की चार-चार लाख तथा मनुष्यो की १४ लाख योनियो में भ्रमण करते हुए तथा जन्म-मरण करते हुए नाना प्रकार से दुख भोगने में श्रनेक बार श्राये है । कभी इष्ट सम्बन्धी का वियोग रूप दु.ख कभी श्रनिष्ट वस्तु का संयोग रूप दु.ख भोगा । कभी निर्धनता के कारण कभी धन के क्षय होने के कारण दुख का श्रनुभव किया । कभी इष्ट पुत्र के व स्त्री भाई माता पिता इत्यादि इष्ट वस्तुश्रो के वियोग होने के कारण से दुःख प्राप्त किया । कभी स्त्री कर्कसा तथा पुत्र दुराचारी व्यसनी कलहकारी मिलने के कारण । कभी शरीर में रोग हो जाने के कारण व पुत्र न होने के कारण कभी पुत्र होकर मर जाने के कारण दुःख पाया कभी धन हानि कभी मान हानि के कारणों के मिलने से दुःख पाया । नरक में पृथ्वी के स्पर्श करने मात्र से जो दुःख होता है उसकी उपमा देना ही सम्भवः नही । क्योंकि कहते हैं कि चित्रा पृथ्वी में उत्पन्न हुए एक हजार बिच्छू एक साथ डंक मारे तो भी इतना दुःख नही होता कि जितना नरक की भूमि स्पर्शन मात्र से दुःख होता है ऐसा दु.ख पाया । श्रापस में

नारकी जो लडते है तब वे वैक्रियक शरीर के भी टुकडे कर डालते है तथा बांधते है और अग्नि की जलती हुई ज्वाला में झोक देते है ऊपरी नरको में उष्णता की वेदना का दु ख प्राप्त किया तथा भूख-प्यास की अत्यन्त तीव्र वेदना भूख इस प्रकार की लगती है कि यदि जितना अन्न तीनो लोक मे होता है उस सबको खाजाऊँ। पर एक दाना भी नही मिलता है प्यास ऐसी लगती है कि तीन लोक के सब पानी को पी जाऊंगा परन्तु पानी की एक भी बूँद नही प्राप्त होने के कारण ही बहुत दु ख और वे दु:ख दश हजार वर्ष से लेकर क्रम से तेंतीस सागर प्रमाण आयुका भोग करते हुए सहन किए। तिर्यंच गति में भी अनेक प्रकार के कारणो से दुःख पाये कही पर छेदनें रूप कही पर भेदन विदारण व मारनें व पीसनें के कारण से दु.ख पाये। चर्म पकड कर खीचने व जीवते हुए अग्नि मे झोंक देनें व पैर बाधकर जलती हुई ज्वाला मे डाल कर मारने व जलानें रूप दु ख तथा शरीर के मास पेसियो के निकालनें रूप महा घोर दु ख त्रियंच गति में पाये। तथा कही पर छेदनें कूटने पीटनें बुझावनें रोकने व तोडने व छेदनें कूटने काटनें मरोडनें चबाने रूप दु ख पाये। देव गति मे मानसिक दु:ख हीन ऋद्धि व आज्ञा माननें व इन्द्रो की सभा मे न जानें रूप दुख सहे। जब मरण काल आ प्राप्त हुआ तब हाय-हाय कर सक्लिष्ट परिणामो कर मरण किया और दु खो का भोग किया और पुन. नये-नये कर्मो को बाध कर दर्शन मोह का तीव्र बधकर स्थावर एकेन्द्रिय में जा उत्पन्न हुआ इस प्रकार चारो गतियो मे दु ख का भोग किया।

मिथ्योपदिष्टं यथा श्रद्ध धत्युक्ताउक्ताततत्वानां ॥
मारुच्यते क्षीरं (पित्तज्वर) जिनोपदिष्टमेव पित्तज्वरे ॥६७॥

मिथ्या मार्ग मे चलनें वाले गुरुओ के द्वारा कहे गये तत्व पर विश्वास करता है श्रद्धान करता है। परन्तु जिनेन्द्र भगवान के यथार्थ समीचीन धर्म के स्वरूप व तत्वो के उपदेश को नही सुनता है नही मानता है न श्रद्धान ही करता है। जिस प्रकार मीठा दूध यदि किसो पित्त ज्वर वाले को पीनें को दे दिया जाय तो वह दूध उसको रुचिकर नही लगता है वह मीठा दूध भी कडुआ लगता है मुख मे लेकर भी कडुआ कहकर उसको मुख से बाहर निकाल कर फेक देता है या कुल्ला कर देता है। इसी प्रकार जिनकी सत्ता मे दर्शन मोह की मिथ्यात्व प्रकृति विद्यमान है उनको जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ समीचीन धर्म नही रुचता है।"

मिथ्वत्वैवं निगदित मरिर्वा त्रिलोकेषुनित्यं
जीवानां किंचिदपि न सुखं कोऽपि काले विभाति ॥
वर्धन्ते राग सुलभ करद्वेष मेवं विभावः ॥
भ्रमत्यात्मा स्वगुणविमुखं पंचभेदैव युक्तः ॥६८॥

मिथ्यात्व पाच प्रकार का कहा गया है सशय, विपरीत, अज्ञान, विनय और एकात भेद वाला है इन मे भी दो भेद है एक गृहीत और दूसरा अगृहीत। मिथ्यात्व ही लोक ससार मे जीवो का महावैरी है ऐसा भगवान ने कहा है जिस मिथ्यात्व के कारण जीवो मे राग द्वेष माया ईर्षा प्रमाद बढ़ जाते है। जीवो को कोई भी समय में नाम मात्र भी सुख नही दिखाई

देता है। परन्तु फिर भी राग की वृद्धि होती है राग ही इस जीव को सरलता से प्राप्त है तथा उससे द्वेष की वृद्धि होती रहती है। जिससे अपना आत्मा विकारी बनकर तथा विभावों को प्राप्त कर अपने दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोग से विमुख अथवा तिरोभाव हो रहा है। तथा निज स्वभावगुणों को परित्याग कर विभाव भाव विभाव गुणों विभाव रूप श्रद्धान ज्ञान में लीन हो रहा है। इसी कारण संसार में किसी काल में भी सुख को प्राप्त नही होता है। क्योकि यह तो क्रोध मान, माया, लोभ, मिथ्यादर्शन राग, द्वेष, मोह, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, इनके विषयों में तथा इष्ट अनिष्ट निद्रा स्नेह में रत हो रहा है।

द्यूत क्रीडा पलं सुरा च वेश्या पररमणी शेव्यमानश्च।
आखेटं स्तेयं वा ऽकस्मिको लोकालोकभयं ॥६९॥
अगुप्ति वेदनाऽवनिपालश्च मरणादि च विद्यन्ते।
अमत्यशरणैकं वा मद्यप जांत निर्दयम् ॥७०॥
किंचिदपि न रोचन्ते समीचीनं सुधर्मो यत्।
कुकर्मानि च कुर्वन्ति देवतार्थ वधं प्राणीन् ॥७१॥

अज्ञानी मिथ्या दृष्टी मोही द्यूत क्रीड़ा करता है (जुआ खेलना) मांस खाता है, सुरा पान करता है, वेश्या के साथ भोग करता है तथा पर स्त्री के साथ रमण करने की चेष्टा करता है तथा पर स्त्री में आशक्त होता है तथा चोरी करता है पशु पक्षी व जल चर थल चर जीवों को गिलोल बंदूक रायफल तीर कमान से मारता है इन सात व्यसनो का सेवन् कर पापों का सग्रह करता है जरा भी हिचकता नही वह निर्दय हो जाता है। और इसलोक भय, परलोक भय, अगुप्ति भय, अनरक्षक भय, मरण भय, वेदना रोग भय, और आकस्मिक भय इस प्रकार इन सातों भयों से संयुक्त होता है। तथा मरण प्राप्त करने के लिए हीना चारी दुष्ट पापासक्त कुदेवो की पूजा करता है तथा चण्डी चामुण्डी गौरी दुर्गा भवानी व यक्ष क्षेत्र पाल भूमिया आदि देवताओ की पूजा करता है तथा भेड़ बकरी के बच्चे व मुर्गी के बच्चों के जोड़ों की बलि देकर उनको प्रसन्न करने की चेष्टा करता है। तथा उनसे कहता है कि हे देव, हे देवी, तुम हमारी रक्षा करो हम आप की शरण को प्राप्त हुए है हम बड़े दु:खी हैं हमारे पीछे दुस्मन (वैरी) पडे हुए है। तथा चढ़ाई हुई बकरी व अन्य जीवों के मांस को देवी का या देवता का प्रसाद मान कर खा लेता है और कहता है कि देवो प्रसन्न और तृप्त हो गई। उस निर्दयी मद्यपान करने वाला व्यसनी व्यभिचारी को भयो से बचाने वाला जो सन्मार्ग रूप समीचीन धर्म है उसको वह रुचिकर नही होता है। अपने तथा अपने परिवार की रक्षा वृद्धि व सुख की कामना कर दीन हीन पशुओं को मार कर देवताओं को भेंट देता है कहता है यह तो देवी का भोखन है। जिसकी विवेक बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और कर्तव्य से ऐसा विमूढ हो गया है। इन सब का कारण मोह युक्त मिथ्याज्ञान ही है। दर्शन मोह के उदय मे ही व्यसन और भय रहते हैं। भय के ही कारण जीव अन्य राजा हाकिम देव देवो आदि को खोज करता है। भय के ही कारण कोट किला खाई इत्यादि बनाता है तथा भय के ही कारण लाठी बंदूक तलवार फर्सा कुल्हाड़ी त्रिशूल इत्यादि अस्त्र-शस्त्र धारण करता है। तथा भय

के कारणे ही आर्त्तध्यान रौद्रध्यानजीव के उत्पन्न होते है। भयभीत प्राणी ही एकान्त, गुप्त स्थान में छिपकर बैठ जाता है। भयभीत ही दूसरे नीच कुल वालो की चाकरी करता है। मरण से भयभीत मानव हो वैद्य हकीम डाक्टर आदि की खोज करता है तथा औषधियो का सेवन करता है व्यसन और भयो की व्याख्या विरनारपूर्वक आगे की जायेगी। यहा पर नामों का उल्लेख मात्र किया है।

आगे मिथ्यात्व ही विशेप कर्म वध का कारण है, उन कारणो को कहते है।

मिथ्यात्वाविरतिं च योग कषायश्च प्रमादैर्बन्धः
पंच द्वादश पंचदश, पंचविंशति पचदश विधः ॥७२॥

वध के कारण मिथ्यात्व, अविरति योग कषाय और प्रमाद कहे गये है इनके द्वारा ही जीव कर्मो को बध करता है। एकान्त, विपरीत, विनय, अज्ञान और सशय ये पाच मिथ्यात्व तथा अविरति छह काय के जीवो का सयम नही पचइन्द्रिय और एक मन सयम नही। पचस्थावर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पच स्थावर काय की विराधना रूप असयम है। इसका नाम अविरति है। योग के पद्रह भेद है वे इस प्रकार है सत्य मनोयोग असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग। सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग, औदारिक काय योग, वैक्रियक काय योग, आहारक काय योग, तथा औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र योग, आहारक मिश्र काय योग और कार्माण योग। कषाय दो प्रकार की है कषाय और नोकपाय। कषाय-अनंतानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानी क्रौध, मान, माया लोभ। नोकपाय हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुष वेद नपुसक वेद। प्रमाद के भी पद्रह भेद होते है चार काषाये तथा चार विकथा पाच इन्द्रिय निद्रा और प्रीति। ये बध के कारण है। मिथ्यात्व के सम्वन्ध करने पर सब वध के कारण है। उत्कृष्ट प्रकृतिवध, स्थितिवध, अनुभाग वंध और प्रदेश वध इन चारो वंधो को करने वाला मिथ्यादृष्टि सक्लिष्ट परिणामी जीव ही करता है जव मिथ्यात्व साथ मे नही रहजाता है तब जीव के वध होता है वह अल्पस्थिति को लेकर होता है। जिस प्रकार बिना फार का हल खेत जोतने मे कार्यकारी नही होता है उसी प्रकार यहा जान लेना चाहिए। अन्य वध के कारण बने रहे वे बध के कारण कार्य करने मे समर्थ नही होते है। जिस सेना का सेनापति मर गया हो वह सेना कहाँ तक युद्ध कर सकती है ? नही कर सकती।

आगे पाच प्रकार के ससार की विशेषताये बताने मे श्लोक कहते है।

द्रव्यात्क्षेत्रविशेषः कालादभव वहु विशेषप्रमाणम् ॥
भावस्तदनंत मूलं सर्वेषां योग मिथ्यात्वम् ॥७३॥

योग और मिथ्यात्व को मूल कहते है मिथ्यात्व के कारण सहकारी अनतानुवधी कषायें तथा योग होते हैं। इनसे ही जीव द्रव्य परावर्तन करता है द्रव्य परावर्तन करने में सबसे स्तोक काल लगता है द्रव्य परावर्तन से असंख्यात गुणा क्षेत्र परावर्तन का काल है क्षेत्र परावर्तन से असंख्यात गुणा काल परावर्तन है काल परावर्तन से असख्यात गुणा भव परावर्तन है भव परावर्तन से असख्यात गुणा भाव परावर्तन का काल है।

(दुष्कृतास्रवस्य हेतुः)

पापास्रवैश्च कारण मूले जीवस्य भावैवं ।
न कोपिपर इत्यस्य किंचितोऽशुभ संक्लिष्टैः ॥७४॥

मूल में पापों के आस्रव के कारण जीव के अशुभ सक्लिष्ट भाव ही होते है अन्य पापास्रवो का दूसरा द्रव्य कारण हेतु नहो है।

जो पाच वध के कारण बताये गये है वे निश्चय करके वध के कारण नही है क्योकि एक द्रव्य पर द्रव्य रूप होती नही है क्योकि छहो द्रव्य स्वभाव से एक आकाश के प्रदेश में निवास करती हुई एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप से परिणमन नही करती। न दूसरे द्रव्य में ही मिलती है क्योकि एक द्रव्य मे दूसरी द्रव्य का अत्यन्ताभाव है। जो कषाय मिथ्यात्व असयम योग से पुद्गल द्रव्य के विकारी भाव है। स्वभाव भाव नही है न जीव के ही स्वभाव भाव हैं वे जीव के भावो के अनुसार ही होते है जब जीव के भाव सक्लिष्टता युक्त होने से ही अशुभ रूप आर्त ध्यान और रौद्रध्यान ये कषायो से युक्त अपने भाव होते हैं तथा विपरीतता को लिये हुए मिथ्यात्व रूप जो भाव होते है उनके होने पर आत्मा मे मन रूप से जो परिस्पद होता है वह चार प्रकार का होता है तथा वचन रूप से जो परिस्पन्द होता है वह वचन योग है काय रूप से जो आत्म प्रदेशो मे हलन चलन होता है वही काम योग है वे भाव ही अपने काय योग रूप होते है। कषायो के योग से आर्तध्यान व रौद्र ध्यान होते है उनका ही नाम सक्लिष्ट परिणाम है। जिससे परिस्पन्द हो वे हो योग मन वचन काय है ये योग मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद रूप होते है जिससे जीव कर्मो का आस्रव और वध करता है। आगम मे भी कहा है काय वाङ्गमनः कर्म योगा. स आस्रवः ।७४॥

आगे भावों के भेदो को कहते है।

भावो भवन्ति त्रिविधः अशुभेन अशुभ शुभेन तथा शुभः ।
शुद्धेन तथाशुद्धः सह मिथ्यत्वेन अशुभमभावः ॥७५॥

भाव तीन प्रकार के होते है जब जीव के परिणाम मिथ्यात्व और कषायों से युक्त होते है तब अशुभभाव होते है जब जीव के भाव मिथ्यात्व से रहित कषायो के क्षयोपशम होने पर जो शुभ रूप परिणाम होते है तथा सम्यक्त्व सयम सहित होते हैं तब शुभ भाव होते है जब मिथ्यात्व असंयम और कषायो के अभाव होने से जो भाव होते हैं उन्हे शुद्ध भाव कहते है।

विशेष यह है जो कि अशुभ शुभ और शुभ भाव है वे अपने ही परिणामो के अधीन है जैसे अपने परिणाम होगे वैसे ही अपने भाव होगे। अपनी शुभ सम्यक्त्व और संयम रूप भावनाओं के होने पर अपने भाव शुभ होते है। जो मिथ्यात्व अविरति कषाय रूप अपने परिणामों के द्वारा ही अपने भाव होते हैं वे अशुभ भाव होते है। कषायो के क्षय तथा असयम और मिथ्यात्व के क्षय होने से जो भाव होते है वे भाव शुद्ध कहे जाते है ऐसा निश्चय है। जो भाव मिथ्यात्व और कषायों को लिये हुए होते है वे भाव अशुभ कहलाते है अशुभ भावों वाले जीवों के ही आर्त रौद्र रूप अशुभ ध्यान होते हैं ये ही भाव युक्त जीव ससार में भ्रमण करता है ॥७५॥

जब जीव मिथ्यात्व युक्त होता हुआ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह तथा सरम्भ, समारम्भ, आरम्भ इन तीन तथा क्रोध मान, माया लोभ इन कषाय रूप पाच प्रकार के अनर्थ दण्डो में प्रवृत करता है तव उससे होने वाले अशुभ परिणामो से अशुभ भाव होते हैं। तथा जब देव पूजा सयम स्वाध्याय दान और वैयावृत्ति करने व ध्यान कायोत्सर्ग करने मे प्रवृत्त होता है तथा अणुव्रत महाव्रत आदि भावो से पराजित होने पर जो भाव होते हैं वे शुभ भाव होते है। तथा जब मिथ्यात्व और अविरति प्रमाद कषायो का नाश होने पर जो वीतराग भावो के द्वारा ही जो भाव होता है वे शुद्ध भाव होते हैं इस प्रकार जीव के तीन भाव होते है ।७५।।

मिथ्यात्वेन सह ध्यानं वर्धते आर्तं रौद्रं च ।।
समयवालि हिं बंधं खलु समय प्रवद्ध ।।७६।।

मिथ्यात्व के साथ जीव के आर्तरौद्र ध्यानो की वृद्धि होने लग जाती है। जिस कारण जीव के प्रति समय कर्मवर्गणाये तथा (नो कर्म वर्गणाये) वध के योग एक समय मे ग्रहण करता है उनको समय प्रवद्ध कहते है समय प्रवद्ध जितने कर्मो की कर्म वर्गणाओ को जीव अपने अशुभ भाव या शुभाशुभ भाव व शुभ भावो से अपनी तरफ खीचता है वे अभव्य जीवो से अनत गुणी तथा सिद्ध राशि के अनतवे भाग मात्र द्रव्य कर्म वर्गणाओ को ग्रहण करता है उनको समय प्रवद्ध कहते हैं। जैसे जीव के आर्त ध्यान व रौद्र ध्यान विशेष मोह के कारण बढते जाते है तो वैसे ही कर्मास्रव की गति तीव्रता से वढती जाती है जव रौद्र ध्यान छूटता है तब आर्तध्यान होता है उसके होने पर भावो मे कलुशता कम होती जाती है तव कर्म वर्गणायें मन्द रूप से अशुभ हो जाती है जब ये दोनो छूट जावे धर्म ध्यान मे जीव की प्रवृत्ति हो तव देव पूजा विनय स्वाध्याय जिन भक्ति तथा दान वैयावृति सयम पालने के भाव का होना ससार शरीर भोगो से विरक्त चित्त होना व सबसे राग द्वेष का त्याग कर समभाव धारण करना तथा मैत्री भाव करुणा भाव का धारण करने पर शुभ भाव होते हैं वहाँ अशुभ कर्म वर्गणाये आती थी वे रुक जाती हैं और शुभ वर्गणाये आने लग जाती है तब शुभ बध होता है यह भाव अपने कृत है। जब शुभ ध्यान भी छूट जाता है और शुद्ध ध्यान होता है तब शुभ पुण्य कर्म वर्गणाये भी रुक जाती है और वहाँ पर आने वाली वर्गणाये अपने कार्य रूप मे परिणमन न करती हुई निकल जाती है इसलिये अपने कर्मो के आस्रव बध का कारण अपना अशुभ ध्यान व सक्लिष्ट भाव ही है।

वंश परम्परावंधः कालमनन्त वव्रजुः ।
दु.खं भरति जीवैकः पंचोदधौषु भग्नेषु ।।७७।।

यह ससार की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है कि जीव आप स्वय कर्मो को कर्ता है और आप ही वध जाता है। यह कहा नही जा सकता कि कर्मो का और जीव का सबध कितने काल से चला आ रहा है। इन कर्मो का और जीव का सम्बन्ध कव से भाई चारा रूप चला आ रहा है कितना काल निकल गया ? इनकी परम्परा अनत काल से चली आ रही है इसी कारण से वधा हुआ एक जीव पचपरावर्तन रूप ससार में भ्रमण करता हुआ जन्म मरण व रोग शोक आदि से होने वाले असख्यात भवो से व अनन्त भावो से दुखो

का अनुभव करता चला आ रहा है। जिस प्रकार वंश की परम्परा चला करती है जिसमें पूर्वजो का विनाश तथा पुत्र पौत्रादि की उत्पत्ति और वृद्धि होती रहती है। उसी प्रकार बध की व्यवस्था अनादि काल से चली आ रही है। पूर्व बध का फल देकर या बिना फल दिये ही खिरजाना और नवीन कर्मो की उत्पत्ति का होना और भविष्य मे फल देकर निर्जीर्ण होना यही परम्परा चली आ रही है। यह सब परम्परा अपने भाव के अनुसार ही है। जिस समय तीव्र या मन्द या मध्यम फल देने की शक्ति को किये हुए कर्मों का विपाक होता है तब कर्मो का फल जीव भोग कर छोड़ देता है। उस कर्म फल को भोगता हुआ अपने भावो में सक्लिष्टता रूप आर्त ध्यान व रौद्र ध्यान हो जाता है तब उस काल में निर्बुद्धि विवेक शून्य होकर दूसरो के प्रति कुभाव करता है। दूसरो को पीड़ा देने व प्राण घात करने रूप रौद्र ध्यानी हो निर्दयता पूर्वक हिसा करता है झूठ वोलता है चोरी करता है परस्त्री का अपहरण करता है या परिग्रह में आशक्त होकर नवीन नवीन कर्मो का आस्रव बध कर लेता है। जीव के कुभाव मिथ्यात्व असयम कषाय योग प्रमाद ये सब बध के कारण उपचार से ही कहे गये है। निश्चय दृष्टी से विचार कर देखा जावे तो अपनी गलती अपने को आप महसूस होने लग जायेगी कि मैने ही अपने अशुभ भावों के द्वारा ही कर्मो को आकर्षित किया है जिस समय अपने भावो मे सक्लिष्टता होती है उस संक्लिष्टता का नाम कषाय है जब अपने आत्म प्रदेशो में हलन चलन होता है या परिस्पन्द होता है उसका ही नाम योग है। जब अपने भाव कषाय युक्त होकर दूसरे जीवो के विनाश करने रूप होवे तब वे अपने भाव ही असमय कहे जाते है। जब नष्ट करने रूप भाव होते है वे भाव ही हमारे कपाय है तथा भावो में सक्लिष्टता उत्पन्न होती है अपने भाव के सयोग से शरीर की आकृति भी विकारमय बन जाती है वही हमारे भाव ही कषाय है। जव भावो में सक्लिष्टता अधिक मात्रा में बढ़ जाती है तव विचार करने की शक्ति नष्ट हो जाती है जिससे दूसरे अन्य प्राणियों के जीवन व जीविका नष्ट करने व अपहरण करने के भाव होते है तब रौद्र ध्यान अशुभ होते है हिसानन्दी असत्यानन्दी चौर्यानन्दी परिग्रहानन्दी होते है। जब भावो में से कषायें निकल जाती है तव अपने भाव सरल कलुसिता रहित होने पर विवेक वृद्धि होती है तब आर्त ध्यान होता है इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग वेदनानुभव और निदान बध रूप अपने भाव जो होते है वे भाव ही मिथ्यात्व असयम कषाय योग और प्रमाद रूप से पाँच भेदो से युक्त होते है। आर्त ध्यान या रौद्र ध्यान कहो या अशुभ और अशुभतर भाव जो है इन अशुभतर भावो में जीव अनादि काल से स्थित हो रहा है एक क्षण मात्र को नही छोड़ता है। वे भाव ही कर्म ससार है अपने भावो के अनुसार ही गति अगति कही गई है यह निश्चय दृष्टि है। इनसे भिन्न जो कुछ प्राप्त होता है वह तो निमित्त मात्र ही है जिस प्रकार चुगलखोर चुगली कर आप दूर भाग जाता है परन्तु चुगलखोर किसी से तलवार लेकर लड़ते हुए नही देखा जाता है वह तो चुगली कर आपस में भिड़ाकर निकल जाता है पर मुद्दई मुद्दायत दोनो मेदान में आ अपने सामने खड़े होकर युद्ध करने लगते है उसी प्रकार यहा वाह्य निमित्तों को समझना चाहिये। यदि चुगल ने चुगली को और सुनने वाले की लड़ने की शक्ति नही हो तव निमित्त क्या करेगा। यह निमित्त तो एक व्यव-

हार मात्र है। निश्चय दृष्टि से देखा जाय तो शरीर बध का कारण नही वचन भी वध का कारण नही पचेन्द्रियो के विषय भी वध के कारण नहीं द्रव्यमन भी वध का कारण नही प्रमाद भी बध के कारण नही बध के कारण मुख्य अपने भाव है तथा भावकर्म द्रव्य वर्गणा रूप पुद्गल स्कन्धो को अपनी तरफ खीचते तव वे पुद्गल स्कन्ध वर्गणाये स्वय परिणमन कर कर्म रूप हो जाती है तव द्रव्य कर्म का कारण अपना भाव कर्म है द्रव्य कर्मो का आना और बध का होना ही कार्य है इसलिये हे आत्मन ज्यादा कहने से कुछ भी लाभ नही अपने भावो को देखो और दुर्भाव है उन को निकाल कर शुभ भाव जो सम्यक्त्व सयम तथा कषाय प्रमादो का त्याग कर दुष्ट योगो व दुष्ट इन्द्रियो के विषयो का त्याग कर हिंसादि पापो का त्याग कर शुभ तथा शुद्ध भावो मे प्रवृत्ति करने से ही पंचपरावर्तन रूप ससार के दुखो से छूट जाओगे। दुर्भाव ही पाप है और शुभ भाव ही पुण्य है। इन दोनो मे पाप का फल तो नरक त्रियंच गति मे तथा मनुष्य गति मे वेदना व इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग वेदना रूप दुखो का भोग करना पडता है शुभ पुण्य रूप हे उनसे देव गति के सुख व तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिक उच्च पदो के सुख की प्राप्ति होती है। इन पचपरावर्तन के कारण आत्मा के भाव ही है अन्य दूसरे कोई कारण नही है। मुख्य मे अपना मिथ्यात्व भाव है वही ससार है वही दुख है वही जन्म मरण है वही आर्तरौद्र ध्यान हे वही अज्ञान व असयम है वही योग व प्रमाद हे इसलिये मिथ्या भाव का त्याग करना ही चाहिये।

> निर्मग्नश्चाशुभे भावेऽनंतकालोव्यतीतश्च।
> न गतः शुभभावेन किं वदामि सांप्रतम् ॥७८॥

यह ससारी प्राणी अनादि काल से अशुभ भावो मे मग्न हो रहा है। अथवा कुभावो मे ही रत है तथा शुभ भावना व शुभ भावो को कभी भी प्राप्त नही हुआ। इस समय इस पचम काल मे तो हम क्या कहे इस पचम काल मे निरतर अशुभ भाव ही दिखाई देते है। क्योकि इस काल मे धर्म ध्यान से लोगो को नफरत व ग्लानि हो गई है परन्तु आर्तध्यान व रौद्रध्यान तो अधिक मात्रा मे बढ रहा है जीवो के अन्दर कुटिलता निर्दयता वढती हुई चली जा रही है। और अशुभ भावो की वृद्धि हो रही है। यहाँ ग्रन्थकार खेद कर प्रकट करते है। कि शुभ भावो मे रुचि ही नही रह गई है ॥७८॥

आचार्य कहते है कि दुर्भावनाओ का त्याग कर शुभ भावना कर।

> दुर्भाव मुञ्च भावना याहि शुभश्च भावना।
> ग्राह्यं सम्यक्त्व मामुक्तिः संयमादिषु भावना ॥७९॥

हे भव्यात्मन्! तू अब अशुभ भावना और भावो का त्याग कर। अशुभ भाव मिथ्यात्व असयम और कषाय तथा अशुभ योग तथा प्रमादों को छोडकर एव शुभ भाव जो सम्यक्त्व सयम तथा समिति गुप्ति दश धर्म और बारह अनुप्रेक्षा तथा ,वावीश परीषहों पर विजय प्राप्त करना ही शुभ भाव है तथा- समता भाव को धारण करना व विनय पूर्वक दानादिक मे प्रवृत्ति का होना तथा मैत्री प्रमोद करुणा भाव तथा देव पूजा स्वाध्याय और अनेक प्रकार से चारित्र का पालन करने रूप शुभ भाव है तथा अणुव्रत व महाव्रतो का धारण

कर परिग्रह से मूर्छा भाव का त्याग करना ये सब शुभ भाव है इन शुभ भावों से ही कालान्तर मे मुक्ति अवश्य होगी इसलिए इन शुभ भावो को मत छोड़ो क्योकि शुभ भावो से ही शुद्ध भावो की प्राप्ति होती है। इसलिए संयमादि अपने स्वभावो का त्याग मोक्ष के इच्छुक को कभी नहीं करना चाहिए। इस प्रकार अशुभ का त्याग शुभ में प्रवृत्ति का उपदेश दिया गया है।

सम्यक्त्व के प्राप्त करने की शक्ति किसको होतो है सो कहते है।

अनादि सादि मिथ्यात्वः पर्याप्त को विशेषश्च।
उपयोगी संयुक्तश्च पचाक्षः प्रथमोपशमः ।।८०।।

कोई भव्य अनादि मिथ्यादृष्टि व सादि मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक पचेन्द्रिय दर्शनोपयोग सहित भी प्रथमोपशम के योग्य होता है जिसका ससार थोड़ा बाकी रह गया है तथा कर्मो की स्थिति का अंत हो चुका हो और कर्मो की स्थिति घटकर अत कोटा कोटी सागर प्रमाण रह गई हो ऐसा भव्य जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के योग्य होता है।

आगे पाच लब्धियो के नाम व स्वरूप कहते है।

प्राग्लब्धिपंच विद्धातं क्षयोपशम देशना।
प्रायोग्यैव विशुद्धिश्च लब्धिः करण भावैव ।।८१।।
ज्ञानावर्णादि घाति कर्मणामुदयाभावे क्षयं च।
सद्वस्तोपशमे वा देश घातिनामुदये च ।।८२।।

सम्यक्त्व होने के पूर्व में पाँच लब्धिया होती है। लब्धि का अर्थ प्राप्त होता है। वे लब्धियां प्रथम क्षयोपशम लब्धि, देशना लब्धि, प्रायोग लब्धि, विशुद्ध लब्धि तथा करण लब्धि या भाव लब्धि यह लब्धि आत्मा स्वभाव की विशुद्धिरूप है तथा करण लब्धि सब के पीछे प्राप्त होती है।८१।।

ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय इन चार घातियाँ कर्मो की सर्व घातिया प्रकृतियो का उदयाभावी क्षय तथा सदवस्थारूप उपशम और देश घातिया कर्मो का उदय मे आना इस को क्षयोपशम लब्धि कहते है।

द्वितीय प्रकार—सादि मिथ्यादृष्टि तथा अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने वहुत कालसे नित्य निगोद तथा चतुर्गतिनिगोद स्थान में निवास किया उसका निगोद स्थावर नाम कर्म का उदयाभावी क्षयोपशम होना तथा त्रस नाम कर्म तथा स्थावर नाम कर्म का सदवस्थारूप उपशम हुआ एव देशघातिया पंचेन्द्रिय नाम कर्म उदय में आवे तब पर्याप्तक मनुष्य भव पावे तथा पचेन्द्रिय सैनी मनुष्यो में व अन्य स्थानों में पंचेन्द्रियो में उत्पन्न हो इसका नाम क्षयोपशम लब्धि कहते है।

आत्म विशुद्धि के लिए जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप तथा संसार मोक्ष आराध्य देव, गुरु, शास्त्र, मिथ्यात्व सम्यक्त्व, आदि बातों को समझने योग्य ज्ञानावरण अन्तराय आदि कर्मो का क्षयोपशम हो सो क्षयोपशम लब्धि है। उदय मे आने वाले कर्मो के सर्वघाती अंशो का सत्व मे रहे आना तथा फल देने की शक्ति का क्षय होना और

सदवस्था रूप अंशो का उपशमन होना एव देश घातिया कर्मो का उदय इस प्रकार कर्मो की
तीन अवस्थाओ का मिला रहना सो ही क्षयोपशम (लब्धि) है उस क्षयोपशम अवस्था
में आत्मा के सब गुणो का विकास व विनाश नही होता है। सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक होना
क्षयोपशम लब्धि है।८२।।

विहाअशुभभावं शुभभावना वर्धन्तेऽच करुणा।
मैत्री प्रमोद समता पाति विशुद्धि लब्धिः जीवान् ।।८३।।

अशुभ भावो का त्याग करने पर तथा मैत्री भाव, प्रमोद भाव, समता
भावो का होना। तथा ससार शरीर भोगो के स्वरूप को जान कर त्याग करने पर शुभ
भाव होते है इन शुभ भावो का होना यह विशुद्धि लब्धि है। हिसादि पापो से विरक्त भाव
होना यह विशुद्ध लब्धी है।

विशेष—जो अशुभ भाव हिसा, झूठ, चोरो, कुशील, तथा आहार, भय, मैथुन और
परिग्रह ये चार सज्ञा तथा माया, मिथ्यात्व, निदान, बध तथा आर्त्तध्यान रौद्रध्यान क्रोध मान
माया, लोभ, कषायरूप सक्लिष्ट परिणामो का तथा राग द्वष मोह और पचेन्द्रियो का असक्यता
व अन्य अशुभ भाव को त्याग कर जब शुभ भावो मे प्रवृत्ति हो। देव, पूजा, सयम, दान
मुनियो की वैयावृत्ति व स्वाध्याय करना अणुव्रत महाव्रतो की प्राप्ति सद्भावना का होना
तथा सब जीवो से मैत्री भाव का होना सब जोवो पर दया भाव का होना तथा अपने से बडे
व विद्वान चारित्रवान मुनियो की सगत का योग मिलने पर हर्षित होना और कषायो का
मद मद उदयावली मे आना तथा सक्लिष्ट परिणामो का बदलकर सरल पारिणाम का होना
धर्म ध्यान मे चित्त की रुचि होना इन भावो के होने को विशुद्धि लब्धि कहते हैं।

आगे देशनालब्धि का स्वरूप कहते है।

देशना ग्राह्ययोग्यं चित्तकरणेन्द्रियोद्भवति योग्यता।
यासि देशना लब्धि भव्याऽभव्यानां कदापि ।।८४।।

जब जिसकाल मे ज्ञानावरण मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय
इन तीनो का क्षयोपशम प्राप्त हो और सैनी पचेन्द्रिय सागोपाग पर्याप्तक सैनी मनुष्य या
देव त्रियंच जीव के उपदेश ग्रहण करने की शक्ति का प्रकट होना तथा धारणा करने को शक्ति
का होना, अरहन केवली व आचार्य उपाध्याय या साधू व पडित विद्वान् का उपदेश मिले
और वह अपने अन्दर रम जावे इसको देशना लब्धि कहते है। विशेष यह है अशुभ भावो का
त्याग करने के भावो का होना और शुभ भावो के प्रति सन्मुख होने को देशना लब्धि कहते
हैं। आत्मा के प्रति रुचि करने वाले बाहरी साधनो का मिलना केवली आचार्य उपाध्याय
तथा साधू व विशेष विद्वान का उपदेश मिलना जिनवाणी का मनन करना सुने हुए
को धारण करने की शक्ति विशेष का प्राप्त होना ही देशना लब्धि है। यह भव्यात्मा को
कभी भी प्राप्त हो सकती है। तथा अभव्य को भी प्राप्त होती है।

यदा याति कर्मणा च कोटा कोटी स्थितिं काण्डं च।
प्रायोग्य लब्धि भाति परम भाव शुभ कारणैव ।।८५।।

जब जीव के ज्ञानावरण दर्शनावरण मोह चारित्र मोह तथा अन्तराय कर्म की स्थिति घट कर अन्त· कोडा-कोडी सागर प्रमाण रह जाती है तव जोव की कषाये मद उदय मे आती है तथा आगामी बंध अन्तः कोडा-कोडी की स्थिति से होनता को लिए हुए वधता है तव किन्ही पापास्रवो के कारणो का तथा प्रकृतियों की बन्ध विच्छुत्ती का होना प्रयोग लब्धि है ।८५॥

त्रिधा करण लब्धिश्च अधोऽपूर्वोऽनि वृत्तिश्च
भवन्तिप्राक्चतुः भव्या भव्ययोः संज्ञिनां नित्यः ॥८६॥

पहले कही गई चार लब्धिया ससारी भव्य तथा अभव्य दोनों प्रकार के जीवों को प्राप्त हो जाती है परन्तु अन्तिम जो करण लब्धि है वह भव्य जीव को हो प्राप्त होती है। वह भी कि जिसको सम्यक्त्व प्राप्त अवश्य होगा उसको ही होती है वह करण लब्धि तीन भेद वाली है। अधःकरण, अपूर्वकरण अनिवृत्ति करण जिन जीवो का ससार पर्यटन थोड़ा सावाकी रहगया है अथवा अर्ध पुद्गल परावर्तन शेष रहगया है ऐसा निकट भव्य ही इन तीन करण लब्धियों को करने वाला होता है।

आत्मा के परिणामों को ही करण लब्धि कहते है जिन परिणामों के होनें पर जीव के सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है उन परिणामों को करण कहते है। करण आत्मा के स्वभाव को कहते है। उस आत्मा के वैभव को जाननें रूप रुचि का होना करण लब्धि है वह अधःकरण अपूर्व करण, अनिवृत्त करण है।

जब अन्य परिणामों में समय-समय विशुद्धत्ता बढती है तथा एक समय पीछे अधःकरण करने वाले या दो तीन चार समय पीछे अधःकरण करने वाले जीवों के परिणाम ऊपर तथा नीचे के परिणामों में विषमता लिए हुए भी हों तथा नीचे और ऊपर के समानता को लिए हुए परिणाम पाये जाते है। परन्तु प्रथम समय के परिणाम नोचे सादृश नही मध्य या ऊपर मे सादृश होते हैं। असादृश भी होते हैं। जो प्रति समय सख्या-तासंख्यातगुणी कर्मों की दशा को निर्जीर्ण करते है। इन परिणामों का विशेष कथन गोमट्ट सार से जान लेना चाहिए। क्योकि यहा पर विशेष कथन नही किया गया है। इन तीनों लब्धियो का काल अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। अध·करण लब्धि होने के पीछे अपूर्वकरण लब्धि होती है। अधःकरण का काल भी अन्तर मुहूर्त है। नीचे तथा ऊपर के परिणामों में विशुद्धता अधिक से अधिक प्रतिसमय वढ़ती जाती है एक समय से दूसरे समय मे अपूर्व करण करने वाले जीव के परिणाम के समानता नही होती है। एक समय दो समय या तीन चार पांच समय में अपूर्व करण करने वालो के परिणाम समान नही होते जैसे किसी नें एक सेवक रक्खा उसकी वेतन १० रु-दूसरे को दूसरे समय में रक्खा तव पहले वाले की वेतन बीस रुपया कर दी और दूसरे की १० रुपया अब तीसरे को रक्खा तव पहले वाले की २० रुपया तथा दूसरे वाले का बोस रुपया तीसरे वाले को दश। जव चौथा रक्खा तव उसके ४०।३०।२०। अन्तिम के दश।१०! इस प्रकार अपूर्व करण वाले जीवों के परिणाम अपूर्व ही रहते है उन परि-णामों के होने पर विशेष-विशेष संवर व निर्जरा व उदीरणा और सक्रमण होता है। तथा वे

सब एक एक से अनत गुणी विशुद्धि को लिए हुए होते है। इन परिणामो के होने का नाम अपूर्ण करण लब्धि है।

अनिवृत्ति करण—प्रथम समय दूसरे समय तीसरे चौथे समय मे अनिवृत्तक करण करने वाले जीवो के परिणाम समानता रूप ो विशुद्धता लिये हुये होते हैं। उस विशुद्धि से अनादि काल का पीछे लगा हुआ उस मिथ्यात्व दर्शन मोह के तीन विभाग हो जाते हैं। तथा अनिवृत्त करण करने वाला मिथ्यात्व के अन्दर फूट डालकर उसके तीन टुकडा कर डालता है। मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति तथा चरित्र मोह की अनतानुवधी क्रोध मान माया लोभ द्रव्य चारो को मिला कर सात का उपशम करता है। तथा कोई पाँच का मिथ्यात्व और चार कषायो का उपशामक होता है। इन सातो के तथा पाँचो के दब जाने पर उपशम सम्यक्त्व प्रगट ने होता है। उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते है। ८६॥

आगे उपशम सम्यक्त्व का काल अन्य कारणो से कहने के लिये श्लोक कहते है।

> सम्यक्त्वौपशमियकस्य जघन्योत्कृष्टान्तर्मुहूर्तस्थितिः
> क्षायकस्योत्कृष्टं व त्रार्यत्रिंशत्सागरोपमं ॥८७॥

उपशम सम्यक्त्व की स्थिति अन्तर मुहूर्त की है यही स्थिति उत्कृष्ट तथा जघन्य समझना चाहिये। जिस किसी भव्य जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त किया है उस के उपशम सम्यक्त्व अधिक दो घडी रहेगा। इसका कारण यह है कि अन्तर्मुहूर्त के पीछे नियम से अनतानुवंधी कोई कषाय उदय मे आ जाती है जिससे वह सम्यक्त्व की विराधना कर पुन मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है। क्षायक सम्यक्त्व की स्थिति तेतीस सागर से कुछ अधिक कोटि पूर्व है तथा अनत काल भी है ससारी जीवो की अपेक्षा से कही गई है कि क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव अधिक तेतीस सागर तथा कोटि पूर्व से कुछ अधिक आठ वर्ष कुछ महीना होती है। उसके पीछे मोक्ष हो जाता है। इसका कारण यह है कि किसी जीव ने केवली के वाद मूल मे क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त कर सयम धारण कर उपशम श्रेणी से चढा और बीच मे ही मरण हो गया मरण कर सर्वार्थ सिद्धी मे जाकर उत्पन्न हुआ। वहा की आयु को पूर्ण कर पूर्व कोटि की आयु वाले कर्म भूमिया मनुष्यो मे उत्पन्न हुआ और ८ वर्ष तक तथा साढे तीन महीना की उम्र मे जिन दीक्षा धारण कर कुछ ही समय मे ध्यान वल के कर्म रूप राजा की सेना को नाश कर केवल ज्ञानी वन गया और वहुत काल तक केवल ज्ञान अवस्था मे रहा और अन्त में योग निरोध कर अघातिया कर्मो को नाश कर अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्न करता है तब वही क्षायक सम्यक्त्व अनतकाल तक जैसा का तैसा ही रह जाता है ॥८७॥

आगे क्षमोपशम सम्यक्त्व की स्थिति को कहते है।

> क्षायोपशमकस्यैव षट् षष्टि सागरोऽतर्मुहूर्तंच
> सम्यक्त्वं द्वित्रिदशधा जिनवरशासने ऽसंख्यात ॥८८॥

क्षयोपशम सम्यक्त्व की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की तथा उत्कृष्ट ६६ छयासठ सागर प्रमाण होती है उसके पीछे यदि मुनि हो श्रेणा चढने के आरूढ़ हो वे तो सातवे गुणस्थान में चढ कर सातिशय होता है तव क्षमोपशम सम्यक्त्व की जो सम्यक्त्व प्रकृति होतो है उसको क्षय कर क्षायक सम्यग्दृष्टि वन जाते है। तथा उपशम श्रेणी से चढ़ने के सन्मुख होता है तव सम्यक्त्व प्रकृति का भी उपशम होता हुआ द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है तव उपशम श्रेणी से चढ़ता है। सम्यक्त्व के भेद वहुत जिनागम में कहे गये है प्रथम सम्यक्त्व के दो भेद है निसर्गज दूसरा अधिकगमज। तीन भेद भी है उपशम सम्यक्त्व क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायक सम्यक्त्व। सम्यक्त्व के दश भेद भी है। आज्ञासम्यक्त्व, वीजसम्यक्त्व मार्गसमुद्भव, उपदेशसमुद्भव, सूत्रसमुद्भव, सक्षेपसमुद्भव, विस्तारसमुद्भव, अर्थसमुद्भव, अवगाढ़ परमावगाढ़ इस प्रकार सम्यक्त्व के भेद कहे गये हैं। तथा श्रद्धान की अपेक्षा से असंख्यात भेद सम्यग्दर्शन के होते है ॥८८॥

सम्यक्त्व के वाह्य चिह्न व लक्षण

संवेगं निर्वेग अस्तिक्यानुकम्पाश्च मैत्री वा।
भक्ति निन्दागर्हा वात्सल्य मुपशमश्च वाह्यम् ॥८९॥

सम्यग्दृष्टि के वाह्य मे देखे जाने वाले चिह्न व सवेग—ससार परिभ्रमण रूप दुःखों से तथा जन्म मरण और नरकादिक दुःखो से भय भीत रहना तथा नित्य पापक्रियाओ से विरक्त भाव रहना। तथा धर्म और धर्म के साधनो मे अनुरक्त रहना। निर्वेग—संसार शरीर और पचेद्रियो के विपय भोगो से विरक्त भाव होना। आस्तिक्य—धर्म तथा धर्म के साधन व सात तत्व नव पदार्थो मे तथा देव शास्त्र गुरुओ में आस्थारखना, जीवो के प्रति दया भाव करना तथा झूठ, चोरी, हिसा, कुशीलादि पापो से भयभीत होना। जिन कार्यो के करने मात्र से जीवों की विराधना रूप हिसा होती हो उनसे दूर रहना यह अनुकम्पा गुण है। सव जीवों के प्रति मैत्री भाव का होना द्वेप कपायो का निराकरण होना तथा वैर भाव का त्याग करना मैत्री भाव है। भक्ति—देव, शास्त्र, गुरु, धर्म की भक्ति। अपने किये हुए पापो की व दुष्ट कर्मो की निन्दा करना देव व गुरु के सन्मुख बैठ कर व खड़े होकर निन्दा आलोचना करना गर्हा पापो से मन में ग्लानि का होना तथा गुरु के सन्मुख अपने दोपो की आलोचना करना तथा प्रकट करके निन्दा करना। धर्मात्मा जनो के प्रति प्रेम भाव रखना तथा वैर विग्रह का त्याग करना यह वात्सल्य भाव है। वाह्य अनेक कारणों के मिलने पर भी कषायों का आवेश नहीं आने देना उनको दवा देना यह उपशम है। इतने सम्यग्दृष्टि के वाह्य चिह्न हैं। वाशब्द से यहां पर प्रशम सवेग आस्तिक्य और अनुकम्पा ये चार भी वाह्य सम्यग्दृष्टि के चिह्न है ॥८९॥

विहायव्यन भया निसप्त पंचविशति सम्यग्मलानि
अष्टांगं सयुक्तं जगत् शरीर भोगेभ्योनिर्वेगं ॥९०॥

व्यसन सात होते है उनके नाम द्यूत (जुआ) खेलना, मास खाना, शराव पीना, चोरी करना, शिकार खेलना, वेश्या के साथ रमण, करना पर स्त्री में रमना ये सात है। तथा भय भी सात हैं इसलोक भय, मरण भय, वेदना भय, आकस्मिक भय, राजभय, अनरक्षक भय। मल सम्यक्त्व के पच्चीस भेद होते हैं। तीन मूढता, देव मूढता, धर्म गुरु मूढता, छह अनायतन, कुदेव

विम्ब और उसके पूजक कुदेव मदिर उसके पूजक कुतप कुतप के करने वाले के पूजक कुशास्त्र और उनके पूजक कुधर्म और कुधर्म के धारक और उनके उपासक ये छह् अनायतन है, आठ मद है ज्ञान मद, बल मद, तप मद, धन मद, जाति मद, कुल मद, बल मद, ऋद्धि मद, रूप मद, इस प्रकार मद के आठ भेद है। शका काच्छा र्चिकित्सा अन्य दृष्टि प्रशसा अनस्थिति करण अनुप गूहन, अवात्सल्य, अप्रभावना, आठ सम्यक्त्व के मल तथा इन दोपो का त्याग करना चाहिए तथा ससार शरीर और भोगो से विरक्त भाव का होना निशाकित, निकांञ्छित निर्विचिकित्सा, स्थिति करण, उपहगून अमूढदृष्टि वात्सल्य और प्रभावना इन आठों अग सहित सम्यक्त्व का पालन करना चाहिए।

विशेष—जुआ खेलना-जिन खेलो में बाजी लगाकर व दाव लगाकर हार जीत मानी जाती है तथा रुपया पैसा का देन लेन होता है उसको जुआ कहते हैं। अथवा द्यूत क्रीडा कहते है। पासा फेकना कोडी फेकना व पत्तो से व रेश के घोड़ो पर दाव लगाकर रेस खेलना ये सब जुआ के ही प्रकार हैं। तथा फीचर हृडिया लगाना भी एक प्रकार का गुप्त जुआ है। जुआरी मनुष्य अपने धन को बर्वाद कर भिखारी बन जाता है जुआरी मनुष्य धन, घर, खेत, जेवर, हाट, बाजार, मकान, दुकान तथा सब मालो को दाब पर लगा देता है। तथा यहा तक देखा जाता है कि जुआरी लोग अपने पुत्र, स्त्री को भी दाब पर लगा देते हैं, तथा अपने व बच्चो व स्त्री के वस्त्रो को शरीर के कपड़ो को भी दाब पर लगा देते है। वे अपने कुल जाति के वैभव व कीर्ति की परवाह नही करते है। जुआरी मनुष्य अपने माता पिता पुत्र स्त्री व भाईयो को मार डालते है। जब जुआरी के माता, पिता, भाई व स्त्री धन देने से इनकार कर देते है तब वह ज्वारी अपने माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि को तलवार बदूक लेकर मार डालता है और कहता है कि ला धन दे इन कार्यो के करने मे जरा भी हिचकता नही है। और घर की द्रव्य को ले जा कर पुनः जुआ खेलने मे लग जाता है इस जुआ खेलने में प्रसिद्ध कौरव तथा पाडव हुए है जिन्होने अपना सारा राज पाट व सब परिवार को जुआ के दाब घर लगा दिया था, तथा अपनी रानियो को भी दाब पर लगा दिया था। कौरव ने छलकर जीत लिया था। और अब द्रोपदी हमारी हो गई अब पाडवो की नहो इस प्रकार आग्रह वचन कहकर द्रोपदी जी की साड़ो का पल्ला पकड़ कर दुर्योधन ने द्रापदी जी से कहा कि अब ये जेवर और वस्त्र हमको दे दो क्योकि ये सब हमारे हे हमने जुआ मे जीत लिये है। तव यह सुनकर द्रोपदी जी जहा पर पाचो पाँडव बैठे थे वहा राज सभा मे आई और सारा समाचार जान कर अपने अग पर से सारा जेवर दुराग्रही दुर्योधन को दे दिया। अब कहने लगा कि ये कपड़े भी तो हमने जीत लिये है ये सव निकाल कर दे दो। यह सुनकर द्रोपदी जी स्त्री पर्याय बिना वस्त्र नही रह सकती तब देने से सकुची तो दुस्साशन ने उनको साड़ी का पल्ला शीघ्र ही पकड़ लिया और खीचने लगा। तब धर्म के प्रभाव से चीर बढने लगा दुस्सशान भयभीत हो गया यह क्या मामला है कि चीर बढ़ता ही जाता है दुस्साशन खीचता जाता है चीर का ढेर लग गया। उसके पीछे यह विषय समाप्त कर दिया गया। इसको विस्तार पूर्वक कहेगे। इस जुआ के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ था कि जिसमे लाखो करोड़ो जन की धन क्षति हुई।

मांस व्यसन—मास प्रथम तो पचेन्द्रिय प्राणी का शरीर या कलेवर है अथवा टुकड़ा है अपवित्र दुर्गन्ध भय अशुचि अभक्ष्य है'। वह मास वृक्ष तथा तला की डाली पर नही लगता है। जव दूसरे प्राणी के प्राणो का नाश किया जायगा और उसके शरीर का विदारण करने पर मास की प्राप्ति होगी विना उसके मास की उत्पत्ति नही हो सकती। दूसरी बात यह है कि मास जव दूसरे के शरीर को छेदन भेदन कर ही निकाला जाता है तव उस प्राणी को कितना दुःख होता है कितनी बेदना होती होगी कि जिसके शरीर का मांस निकाला जा रहा है तीसरी बात यह है कि जितने प्राणी है उनको अपने प्राण प्यारे है और वे प्राणी कोई भी मरण को नही चाहते है वे सब अपने जीवन की इच्छा करते है माँस तो गाय, भैंस, बकरी, शावक, हिरण, रोज, वैल, मछली, मकर, सूकर, मुर्गी, कबूतर आदि पक्षियो के मारने पर ही प्राप्त होता है। संसार मे कोई भी ऐसा प्राणी नही है जो मरण की इच्छा करता हो। सबको अपने-अपने प्राण प्यारे होते है। जब सामने वधिक को सिह देख लेता है तब वह भी अपने प्राणो को बचाने के लिए घनघोर जंगल मे प्रवेश कर छिप जाता है। तथा सर्प जब कभो आदमी को आता देखकर बिचार करता है कि यह मनुष्य मुझे मार डालेगा इस भय के कारण अपनी वामी मे प्रवेश कर जाता है तथा असैनी चीटी मक्खी मच्छर जब उनको पता लग जाता है तब वे भी वड़े वेग से भागने लग जाते हैं क्योकि उनको भी अपने प्राण प्यारे है। मांसाहारी गोह, सर्प, नोवला, बिल्ली आदि को देख कर वृक्षो पर रहने वाले पक्षी भी भय भीत होकर इधर उधर दौड़ने लग जाते है व बोलने लग जाते है। इससे यह सिद्ध होता है कि कोई भी प्राणी अपने जीवन को नाश करने को तैयार नही है। हम अपने शरीर को पुष्ट बनाने के लिए मास खाते है और अपने पैरो की रक्षा करने व काटे आदि की वेदना से बचाने को जूता चप्पल पहनते है। तब विचार कर देखाजाय तो जैसे काटा चुभने पर हमारे वेदना होती है उसी प्रकार सब प्राणियो के वेदना अवश्य ही होती है। यदि अपने प्राण,हमको प्यारे नही होते तो वैद्य हकीम और डाक्टरो के पास जाना कड़वी दवाइयो का सेवन करना किस काम का ? यह बात सिद्ध हुई कि हमारे समान ही सबको प्राण प्यारे है।

दृष्टान्त— एक दिन की याद आ जाती है कि एक अग्रेज एक वैरिस्टरसाहब के यहाँ मिलने के लिये गये थे वकील साहब ने अग्रेज का यथा योग्य आदर किया। वकील साहब क बंगला मे एक चिड़ियो का घोसला था। जब घर मे अग्रेज ने प्रवेश किया तब सव चिड़ियाँ एक दम घोसले से बाहर निकल आई और इधर-उधर उड़ने लगी और बोलने लगी। यह देख अग्रेज बोला वैरिष्टर साहब आप यहाँ पर कैसे रहते होगे ये चिड़ियाँ इतना शोर मचाती है। तव कुछ इन चिड़ियो के वोलने का कारण होना चाहिये विचार कर बोला कि आप मास का भोजन करते है क्या ? तव अग्रेज बोला जी हा। तब वकील साहव बोले कि इसका अर्थ यही है कि आप मासहारी हैं इसलिए चिड़ियाँ घवड़ाकर बाहर निकल पड़ी है कि यह कही मार नही डाले क्योकि यह हिसक प्राणी है। हिसक को देखकर ये बोलने लगी तथा इधर उधर को उड़ने लगी जब वह अग्रेज उस वगला मे स निकल गया तव चिड़ियाँ वापस आ कर वैठ जाती है बोलना भी वद हो जाता है इसका कहने का तात्पर्य यह है कि मांसाहारी

को देखकर चिड़ियाँ भी भयभीत हो जाती है क्योंकि मासाहारी को दया नही रह जाती है।

कहा भी है—मासाहारी कुतोदया सुरापाने कुतः सत्य। जो मास भोजी होते है उनके दया नही जो शराव पीते है उनको सत्यता कैसी ? ये नही होती। वह तो निर्दयी होता है। इस लिये मास खाने वाला निर्दयी होता है हिंसानन्दी रौद्र ध्यान को करके नरक मे चला जाता है तथा नरक को पाता है।

मद्यपान व्यसन शराब प्रथम त्रश जीवो का कलेवर है अपवित्र दुर्गंधमय है यह मन की विवेक बुद्धि को नष्ट कर देती है तथा इसके सेवन करने वाले को कामवासनाये अधिक बढ जाती है स्वभाव में क्रोध की तीव्रता हो जाती है। तथा भय भी अधिक मात्रा में बढ़ जाती है। जिसके पीने से अपने शरीर का होश नही रह जाता है पीने वाला वेहोश होकर जमीन पर व नाले या रास्ता मे कही भी पड जाता है तथा मुख मे से कुछ का कुछ वोलने लग जाता है गाली गलौज व गलत वचन वोलने लग जाता है। मद्य मे सूक्ष्म जीव की सख्या नही गिनाई जा सकती इसमे एक वूद मे असख्यात जीवो की उत्पत्ति प्रति समय होती रहती है इसके एकवूंद के जीवो को यदि कबूतर वना कर उड़ाये जावे तो तीनो लोको मे न समावे वे सव जीव शराब के पीने पर एक दम मर जाते है मद्यपान करने से मानव शरीर मे एक प्रकार की विपरीत उत्तेजना प्राप्त होती है तथा गर्मी अधिक वढ जाती है जिससे स्मरण शक्ति व विचार नष्ट हो जाती विचार के साथ विवेक भी नष्ट हो जाता है। उत्तेजना में भय बढ जाता है तथा अभक्ष्य भोजन खाने लग जाता है तथा अनेक खोटे कार्यो को करने लग जाता है अथवा माता पुत्री वहन व वूआ भौजाई इत्यादि का विवेक शून्य होकर एक दृष्टि से देखने लग जाता है तथा अपनी माता वहन इत्यादि के साथ जवरन विषय सेवन करने लग जाता है वह विवेक शून्य अपनी कुल जाति व धर्म की मर्यादा को भग कर डालता है। अपने माता पिता दादा गुरु इत्यादि से द्वेष करता है। अपनी वश परम्परा से चली आई धर्म प्रवृत्ति को नाश कर डालता है। मद्यपाने कुत सत्य। मद्य पान करने वाले यदि सत्य वोलने लग जावे तो बाकी सव झूठे ठहर जावे परन्तु मद्यपाई कभी भी सत्य नही बोल सकता है इसलिये मद्य के कहने से अन्य नशाओ का भी निषेध किया गया है जैसे भाग घोटकर पीना धतूरा पीना सखिया, अफीम, तम्वाकू, सिगरेट, कोकीन व बीड़ी इत्यादि को भी नही खाना पीना चाहिये। ये अमल है ये मल नही है मलो का निषेध नही है इनके सेवन करने पर अनेक कोटि के रोग शरीर मे उत्पन्न हो जाते है कामोदीपन तथा क्षुधा का अधिक लगना व रोग की वृद्धि होती है तथा शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है तथा स्मरण शक्ति भी क्षय हो जाती है। इसके सेवन करने वाले के हृदय से जीव दया, मय धर्म नष्ट हो जाता है जिससे नरकगामी वन जाता है इसलिये मद्यपान व्यसन का भव्य जीवो को त्याग कर देना ही योग्य है।३॥

वेश्या व्यसन—यह वेश्या का नाम पण्यका व सर्व वल्लभा है इसका अर्थ इसको बाजारू स्त्री कहते है जिस प्रकार बनिये के दुकान पर दुष्ट सज्जन साधू सब ही वस्तुये खरीदने को आते है खरीदते है उसी प्रकार वेश्या व्यसनासक्त सब ही नीच कुल वाले तथा उच्च कुल वाले सब के सब ही आते जाते है वह वेश्या भी पैसा लेकर सबके साथ भोग करती है।

यह वेश्या जब तक तुम्हारी है कि जब तक तुम्हारे पास उसके लिये देने को पैसा है जब पैसा नही रह जाता है तब वह भी तुम्हारी नही। यह धन को हरण कर मनुष्य की नंगा बना देती है उसके अलावा वीर्य को भी अपहरण कर लेती है तथा नीच पुरुषों की सगत करती है तथा नीच अकुलीन पुरुषों के साथ भी भोग करती है तथा मास खाती है शराब पीती है व कोकीन का नशा करती है। यह स्वभाव से ही बड़ी निर्दय होती है। यह जीवों के प्राणघात करने में जरा भी नही डरती है यह सम्पत्ति के साथ जीवों की कीर्ति यश धर्म को मर्यादा को भी क्षय कर देती है। वे वेश्या के सहवास में रहने वाले लोग जैसे वेश्या खान पान करती वैसे वे भी खान पान करने लग जाते है। वेश्या मास खाती शराब पीती है तब साथियो को मास खिलाती है शराब पिलाती है वे भी मास खाने व शराब पीने लग जाते है तथा वेश्या सेवन करने वालों के सुजाक गर्मी खुजली दमा आदि भयकर रोग हो जाते है। वेश्या जब देखती है कि अब इसके पास धन नही रहा तव वह उनके ऊपर मुख की पीक डाल देती है यहा तक देखा जाता है कि जूते मारती है और जूते लगाकर अपने स्थान से निकाल देती है यहाँ तक भी देखा जाता है वेश्या उसको पिटवाकर अन्त में पाखाने में डलवा देती है और जीते जी नरक यही दिखा देती है इस लिये भव्य जीवों को वेश्या का त्याग व कुमारी राड़ का भी सहवास नही करना चाहिये क्योंकि ये भी यश कीर्ति धन मान मर्यादा धर्म की घातक है।

चोरी व्यसन—पर धन का अपहरण करना यह चोरी है चोरी करने में रत रहने को चोरी व्यसन कहते है। चोरी करने वाले चोर डाकुओं का कोई विश्वास नहीं करता है न कोई भी आदर की दृष्टि से देखता है जहां कही भी जाते है वहां निन्दा व तिरस्कार ही होता है तथा राजा चोरो को पकड़वा लेता है तब सजा देता है किसी को फाँसी किसी को सूली किसी को गोली से भी मरवा डालता है। माता पिता भी उसका विश्वास नहीं करते हैं। जिस धन को चोर डाकू लूट खसोटकर ले जाते है वह धन सब प्राणियो का प्राण है जीवित मनुष्य के दश प्राण होते है ग्यारहवा प्राण धन को माना गया है जब धन चोरी चला जाता है तब वह कहता है कि हाय वैरी मार गये हाय मै मर गया इस प्रकार हाय-हाय कर दुःखित हो मूर्छित होकर जमीन पर मरे हुए के समान पड जाते है। चोरी करने वाले पुरुष के धर्म कर्म व यश सब कीर्ति व गुण सब नष्ट हो जाते है। तथा चोर बिना मौत के ही मारा जाता है और दुर्गति का स्वामी बन जाता है। यदि कही चोरी करते हुए पकड़ लिया जाता है तो वहाँ के लोग उसको लाठी फरसा लात चाबुक आदि से मार लगाते है। जब वे लोग चोर को पकड़ कर राजा के सिपाहियों को सौप देते है तब वे राजकर्मचारी भी उसको बहुत प्रकार से वेदना देते हुए कहते हैं कि वहां कितना माल चुराया बताओ वह कहां है इस प्रकार कह कर बड़ी डण्डों की मार लगाते है तथा हाथो को रस्सी से बांधकर लटका देते हैं और नंगाकर मार लगाते है तब चोर हाय हाय कर रोता है तब भी उसको छोडते नहीं है मार ही मार लगाते है। तथा यह भी देखा जाता है राजा उनको फासी व सूली तथा कुत्तों से खिचवाने की भी सजा दे देते हैं। चोर डाकुओं को भी सज्जन आदर की दृष्टि से नहीं देखते है, वास्तविक

कटाक्ष व बुरी दृष्टि से देखते है। इस लोक में अपयश और परलोक मे वेदना भोगनी पड़ती है इस लिये भव्य जीवो को इस चौर्यव्यसन को अवश्य त्याग कर देना चाहिये। यह धन यदि चोरी करने से वृद्धि को प्राप्त हो जावे तो चोर लखपती बन जावे परन्तु यह चोरी को जैसा आता है वैसा ही चला जाता है वह किसी के भोग उपयोग मे नही आता है तथा अपने घर के धन को भी साथ मे ले जाता है। किसी कवि ने कहा है कि 'चोरी कर होरी रची वही छिनक मे राख' इसलिए इस चोरी व्यसन का सज्जनो को त्याग कर देना ही चाहिये क्योकि यह चोरी अकुलन्ता की जड़ है चोर मनुष्य अच्छी तरह बैठकर खाना नही खा सकता है पानी भी नही पी सकता है उसको भय इतनी मात्रा मे लगी रहती है कि कही कैसी भी आवाज आ जावे तो सामने की रोटी को छोड कर भाग खड़ा होता है तथा रात में भी नीद नही आती है तथा उसको अपने मरण का ही दिन रात भय लगा रहता है वह रोटी भी निराकुल होकर नही खा पी सकता है। रोग हो जाने पर दवाई भी नही ले सकता है तब विचार करो कि चोरी करने वालो को कितना सुख है। अपने बाल बच्चो के पास भी नही आ सकता है न अपनी स्त्री से बात ही कर सकता है तब विचार करो कि कितना चोरी करने मे आराम है। जेब काटना मकान को तोड़कर धन को ले जाना जबरन कर छीन लेना तथा कई प्रकार से जान छिपा कर ठग लेना यह भी चोरी है। तथा खेत मे से धान्य ले जाना व तोड़ना इत्यादि चोरी के अनेक प्रकार है इन सब को छोड देना ही सज्जनो की परम कीर्ति का कारण है। विशेष आगे पुनः प्रकरण पर कहेगे।

आखेट—शिकार खेलना पशु पक्षियो को तीर मारकर व बंदूक व लाठी से जीवो का बध करना इसको शिकार कहते है। तथा वासुरी डालकर जाल डालकर व जाल बिछा कर उडने वाले पक्षियों को व पशुओ को तथा मगर मीन व हिरण, सावर, बारहसिहा इत्यादि जानवरो को फँसा कर मार डालना इनको शिकार कहते है। यह शिकार महानिंद्य अदयायुक्त पाप बीज है नरक गति का कारण है तथा वैर द्वेष का कारण है जीवो के विराधना रूप हिंसा है इसलिये दयावान को चाहिए कि वे किसी जीव को प्रयोजन या बिना प्रयोजन कैसे भी विराधना नही करनी चाहिए। शिकारी जन ही रोरव नाम के सातवें नरक मे जाते है। जहाँ पर यह सुना जाता है कि जो कोई राजा दूसरे राजा के पास जाता और अपने मुख मे तृण दबा लेता तो राजा लोग उसको अभय दान देकर विदा कर देते थे। परन्तु आज शिकारी जन नित प्रति जगलो में तृण खाकर तथा पत्ते खाकर झरने का पानी पीकर सुख से विचरते है तथा जो इतने भयभीत रहते है कि किसी को जरा सी आवाज होने पर भागने लगते है तथा वे जीव किसी की कोई भी प्रकार से हानि भी नही करते है फिर भी उन अनाथो को भी शिकारी दुष्ट पापचारी जन वीणा बजाकर व जाल मे फंसा लेते है और उन तृण चारियो को मार डालते है। जब अधिक लोग वासूरी अलगोजा या बीन महुअर की ध्वनि करते है तब वे हरिण सर्फ एक चित्त होकर सुनने में आसक्त हो जाते है तब दुष्ट वधिक लोग उनको बंदूक तलवार या लाठी का प्रहार कर मार डालते है। आचाय कहते है कि उन जनो को धिक्कार हो जो तृण चारी निर्दोष प्राणियो को नष्ट करते है। आखेट महानिंद्य तथा वैर

उठाने वाली है जिनको आज तुम मार रहे हो वह शरीर ही मर जाता है परन्तु उसका आत्मा नही मरता है। यह जीव मरने के बाद भी वैर अवश्यमेव ले लेता है। हे भव्य, तुम उस निंद्य और वैर बढ़ने वाली शिकार का त्याग करो।६

परस्त्री गमन रूप व्यसन—जब कोई अपनी माता बहन पुत्री व स्त्री को कुदृष्टि से देखता है तब हम उसको बदकार निर्लज्ज कह कर उसका तिरस्कार करते है। उसका विरोध कर तलाक देते है। जब हमको अपनी माता बहन बेटी व स्त्री का शील व इज्जत प्यारी है उसी प्रकार अन्य जनो को भी अपनी माता बहन पुत्री व स्त्री आदि का शील इज्जत प्यारी है उस शील की रक्षा करने में सब ही कटिबद्ध होते है। जब कोई किसी की माता या स्त्री आदि पर दृष्टि डालता है तब कुपित होकर लोग सहसा तिरस्कार व मार पीट करने का उतारू हो जाते है तथा व्यभिचारी मनुष्य को यहाँ तक देखा जाता है कि मार भी डालते है अपमान भी करते है कामी पुरुषो को जब कभी किसी के घर मे पकड़ लिया जाता है तब उसको लाठी बेत चाबुक आदि से मारते है तथा उसके अग उपागो को छेदन भेदन कर डालते है। व्यभिचारी भाई को भाई भी मार डालते है एक समय की बात है कि जिला भिन्ड में गढ़िया ग्राम था उसमें एक जागीदार रहते थे उनके तीन पुत्र थे बड़े का नाम मानसिंह था दूसरे का नाम सूबेदार था तथा तीसरे का नाम तहसीलदार था जिनमें सूबेदार बड़ा दुराचारी था एक दिन उसकी दृष्टि पास में रहने वाले ब्राह्मणों की पुत्रवधू पर पडी वह उसको प्राप्त करना ही चाहता था। कि यह बात घर वालों को मालूम हो गई कि सूबेदार यहाँ पर हमारी औरतों के पीछे पड़ता है तब उन्होंने उसके पिता के पास जाकर कहा कि जागीरदार जो आप का लड़का हमारी बहू बेटियो को मार्ग में चलने पर छेडता है तब उसके पिता ने बहुत डाटा परन्तु वह परस्त्री लम्पटी कब मानने वाला था। जब पुनः उसने वही कार्य किया तब पुनः वे जागीरदार साहब के घर आये और कहने लगे कि ठाकुर साहब आप नही रोकेंगे तो फिर हमें जैसा सूझेगा वैसा करेंगे। फिर हमें तुम दोष नही देना। तब जागीरदार बोले जैसा तुमको दीखे वैसा करो हम तुम्हारे से कुछ भी नही कहेंगे। इतनी बात सुनकर ब्राह्मणों को अपनी स्त्रियो के शील की अवहेलना करना कहाँ तक सहन हो सकता था। एक दिन रात्रि का समय था कि सूबेदार एक दिन रात्रि में एक अबला के पास आया और अबला उसको देखकर घर से बाहर को भागी तब उसके पति ने व जेठ ससुर ने बैटरी डालकर देखा और गोली चला दी जिससे वह मर गया। मर जाने के पीछे जगल में फिकवा दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि सबको अपना शील धर्म प्यारा है। पर स्त्री में आसक्त पुरुष की विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है तथा धर्म की मर्यादा और वैभव सद्‌गुण विलय हो जाते है। पर स्त्री लम्पट जन सदा दुःखी और भयातुर ही रहता है वह जिस मार्ग से निकलता है वहाँ के निवासी लोग कहने लग जाते है कि यह दुष्ट दुराचारी इस मार्ग से क्यों आया ? इसको तलाक देना चाहिए ताकी यह पुनः कभी मुहल्ले में न आवे। पर स्त्री लम्पटी मनुष्य जाति कुल का कुछ भी विचार नही करता है कि यह स्त्री किस कुल की है किस ज़ाति की है यह मेरी कौन है मैं इसका कौन हूं इसके विवेक से रहित होता हुआ चाँडाल

चमार नाई धोबी इत्यादि नीच जाति व ऊच जाति ब्राह्मणी है या मेरी माँ बहन बेटी का भी विचार नही करता हूँ वह तो सबको समान मान विषय भोग मे आसक्त होता है। किसी कवि ने कहा है।

यथा माता तथा पुत्री यथा भगिनी तथा स्त्री ॥
कामलुब्धक एकेन रूपण पश्यति स्त्रीणां ॥१॥

कामी पुरुष माता पुत्री बहन व स्त्री मे विवेक न करता हुआ जिस स्त्री को देखता है उस ही रूप से बहन का देखता हं तथा उस ही रूप से माता व पुत्री को भी देखता हं तथा उनके साथ भी विपय सेवन करने लग जाता है तथा धर्म भ्रष्ट होकर तथा कुकर्म करके तथा पाप का भार मस्तक पर लादकर ले जाता है जिसके भार से नरक गति मे चला जाता है। वहाँ पर सागरो की आयुपर्यन्त दु ख भोगता है पर स्त्री लम्पटी जीवो को स्त्रियो के अपवित्र दुर्गंधमय शरीर को देखकर घृणा भी नही होती है। जिसकी योनि से पेशाव रूप मल निकलता है तथा रक्त पात होता है वह योनि स्थान अपवित्र व जहा पर योनि स्थान मे असख्यात जीवो की उत्पत्ति होती है उस पर कैसे भोग करेगा कैसे सुख मिलेगा ? अपितु सुख नही दुःख ही दु.ख मिलेगा। इस लिए भव्य जीवो को पर स्त्री व्यसन का त्याग करके पापो से बचना चाहिए। ये सान व्यसन ही महापाप कहे गये है साथ ही यह भी है कि सात ही नरक है सात ही महापाप रूप व्यसन है। ये सात व्यसन आत्मा के सम्यक्त्व गुण व चरित्र गुण का घात करते है मिथ्यात्व असयम अथवा दर्शन मोह और चारित्र मोह के साथ वेदनीय कर्म के तीव्र बध के कारण है। जहा पर व्यसन रह जाते है वहाँ पर सम्यक्त्व गुण नही रह जाता है। तथा अनतानुबंधी क्रोध मान माया और लोभ मे ये चारो कषाये तथा सात भय और भी अधिक बढ जाती है। वैर द्वेष भी बढ जाते है जिससे जन्म जन्मान्तर मे वैर की परिपाटी चला करती है। पर स्त्री व्यसन की कथाये अनेक शास्त्रो मे पायी जाती है ग्रन्थकार स्वयम् ही आगे करेंगे।

आगे सात भय है इस लोक, परलोक भय, मरण भय, अगुप्तिभय, रोग भय, अवनपाल भय, आकस्मिक भय। इन सातो भयो से ससारी जीव भिन्न नही है सभी प्राणियो के लगी हुई है। जब तक ये भय लगी रहती है तब तक सम्यक्त्व गुण प्रकट नही हो सकता है। क्योकि भयातुर जीव ही अपनी रक्षा के लिये कुदेव व कुगुरुओ की सेवा पूजा करता है। भय रहित जीव निशकित होता है अथवा निशक होता है। इसलिए निशक उसका नाम है। भय रहित मनुष्य कही भी जावे वह जगल या पहाड या परदेश मे जावे वहा पर भी निर्भय ही रहता है।

इहलोक भय—इस गाँव व नगर मे कोई मेरा सरक्षक नही है कहाँ जाऊँ किसके पास जाऊँ कहा छिपकर रहूं किस देश मे जाऊँ जितने ही यहाँ पर है वे सब ही लुटेरे है मुझको मार डालेगे मेरा धन छीन लेगे तथा मुझे मार डालेगे। यहा तो मुझे अपना मरण ही मरण दिखाई देता है। हाय मेरा घर मेरे बाल बच्चे व सव परिवार का विनाश हुआ जाता है फिर मैं क्या करूगा इस प्रकार का मन मे भयातुर रहना इह लोक भय है।

परलोक भय—हाय मेरे मरने के पीछे मुझे कहा दूध मिलेगा कहाँ दही ऐसी सुन्दर

अज्ञाकारिणी स्त्री मिलेगी। अब न जाने कहाँ किस कुल योनि में जन्म लेना पडेगा। न जाने कैसे दुःख भोगने पड़ेगे हे भगवान मेरे घर को मत छुड़ावे मरने के पीछे जहाँ जन्म लूँगा वहां के लोग न जाने क्या क्या दुःख देवेंगे तो मुझे कौन बचावेगा। फिर क्या करूंगा वहां तो कोई मेरी पहचान का भी न होगा तब किसके पास जाऊँगा कौन मेरी रक्षा करेगा मै वहां क्या करूगा ? वे मेरी इज्जत को भी नष्ट कर डालेंगे तथा पीडा देवेंगे। हमारा जर माल वहां के लोग छीन लेवेगे। न जाने कैसी स्त्री पुत्र बाधव जन मिलेंगे, वे मेरे को दुख देवेंगे। या सुख देवेंगे। हाय अब क्या करूं मै मरा हाय कहां जाऊँगा इस प्रकार के अनेक विकल्पो से भय का होना यह परलोक भय है।

मरण भय—अरे वैद्यो बचाओ मेरा मरण हो जायेगा। हाय भगवान अब मेरे ऊपर दया नही रही जिससे मेरा मरण आ गया। मेरे धन स्त्री परिवार का विछोह हो जायेगा। हाय अब मेरा मरण होगा अब किस वैद्य व हकीम डाक्टर की शरण में जाऊ जो मुझे मरने से बचावेगा किस देवी देवता की शरण लूँ जो मुझको मरण से बचा सकेगा। मरण से बचने के लिये दूसरे जीवो को मूर्ख लोग देवो देवताओ के लिये बकरा भैसा इत्यादि जीवों को मार कर बलि चढा देते है। मरण के भय से मनुष्य अनेक बलवान राजाओ की शरण खोजता है तथा मरण के भय से जगलो में कंदरा गुफा में छिपने का प्रयत्न करता है तथा अनेक औषधियो का प्रयोग करता है। अनेक अभक्षों को भी खालेता है इस प्रकार के भय को मरण भय कहते है।

अनरक्षक (अगुप्ति) भय—इस क्षेत्र में नगर ग्राम मे तो मेरा सरक्षक कोई नही है सब लोग मेरे से विरुद्ध व पीड़ा देने वाले है यहॉ पर मेरी जान पहचान का भी नही है। मेरे नगर के चारो ओर कॉटे व खाई भी नही है जिसमे छुपकर अपनी जान बचाई जा सके तब अपने धन माल की रक्षा की जा सके। इस मार्ग मे तो चोर डाकू बहुत है वह मेरे धन को चुरा लेवेंगे और मुझे भी पीट देवेंगे। हाय कोई धनकी चोर न ले जायेगा मेरे को मार डालेंगे बाध लेवेंगे ऐसी मन में धारणा कर भयभीत होकर इधर उधर छिपने की कोशिश करना यह अनरक्षक भय है।

रोग भय—मेरे को रोग न हो जावे यदि मै रोगी हो गया तो कहा से वैद्य आवेगा कौन लावेगा कौन मेरी देख भाल करेगा तथा मेरी सेवा वैयावृति करेगा। रोग हो जाने पर शरीर मे वेदना होगी। रोग हो जाने पर मूर्ख अज्ञानी दिन रात रोता है और कहता है कि हे वैद्य जी तुम ये रुपया ले लो मै पैर छूता हू मुझे इस रोग से बचा लो मैं आपका अहसान नही भूलूंगा इस प्रकार अनेक विकल्पो कर रोग से भयभीत हो रोता है कापता है तथा मूर्छा खाकर गिर जाता है यह रोग भय है। यह क्षेत्र अच्छा नही, वह क्षेत्र अच्छा है यह वैद्य अच्छा नही, वह डाक्टर अच्छा है वही चलना चाहिए इत्यादि प्रकार रोग भय के है।

अवनिपाल भय—इस नगर में कोट किला कुछ भी नही है जहाँ पर छिपकर बैठ कर अपने जान माल की रक्षा कर सकूँ। यहा पर तो मेरे शत्रु बहुत है मेरे कर्मचारी ही मेरे शत्रु है वे मुझे नीचा दिखाने के लिये तुले हुए है। तथा लुटवाने मरवाने के लिए तुले हुए हैं

इस क्षेत्र का राजा बड़ा भारी निर्दयी है वह टैक्स ही टैक्स लगाता रहता है वह जरा भी नही हिचकता है यदि राजा को हमारे माल धन का पता लग जायेगा तो वह अवश्य ही छुडा लेगा इस प्रकार भयभीत होना ; तथा इस जगह मे तो चोर बाजारी है ये सब ही चोरो के सरदार है हाय मै कहाँ आफसा ये सब मेरे माल को चुरा लेवेंगे अथवा जबरन छीन लेवेंगे और मार डालेंगे। अब इस नगर में रहना ठीक नही क्योकि यहा का राजा भी चोर है और प्रजा जन भी चोर है चोरो का ही बोल बाला है। यदि किसी के यहा पर अपना सामान माल रख दू तो हडफ जायेगे तब क्या करूगा इस प्रकार भयभीत रहना यह अवनि पाल भय है।

आकस्मिक भय—आकाश में बादलो के हो जाने व गर्जने पर भय भीत होना इधर उधर दौडना विजली के तड तड करने पर कापना कि यह मेरे ही ऊपर न पड जावे इस प्रकार मन मे शका उत्पन्न कर भयभीत होता है। अकस्मात् मे सुन लिया कि ग्राम मे आज डाका पड गया और चोरी हो गई यह सुनकर अधीर होकर अपने घर परिवार को छोडकर भागने का विचार करना कि यहा भी इस ग्राम में न आजाव। उनको रोग है मेरे को न हो जावे। मेरे ऊपर विजली न पड़ जावे। मकान न गिरजावे और भी अनेक प्रकार के विकल्पो के उठने से भयभीत होता है। ये सात भय है इनका संक्षिप्त कथन किया हैं। मूल मे भय कषाय भय सज्ञा का तो अन्तरग मे उदय तथा बाह्य मे वैसे हो कारणो के मिलने पर मन चलायमान होता है वही भय है। ये भय सम्यक्त्व के घातक है तथा निशाकित अग भी नही हो सकता है। सम्यक्त्व के आठ विपरीताग हैं शका कान्छा चिकित्सा अन्य दृष्टि प्रशसा (मूढ दृष्टि) अस्थिति करण व अनुपगूहन, अवात्सल्य, अप्रभावना ये तथा देव धर्म गुरु मूढ़ता कुदेव मन्दिर और विम्ब और उनके पूजक। कुतप-कुतप के उपासक तथा कुधर्म के धारक ये छह अनायतन है। ज्ञान, पूजा, तप, बल, जाति, कुल, रूप, एश्वर्य इन आठ मदो से रहित होना तथा निशाकित निर्विचिकित्सा नि स्कान्छित, स्थित कारण, अमूढ दृष्टि, उपगूहन, वात्सल्य तथा प्रभावना ये सम्यक्त्व के आठ अग सही बताते हुए ससार शरीर भोगो में विरक्त भाव होना ही सम्यक्त्व का लक्षण है। गुणो का ग्रहण करना तथा दोषो का त्याग करना ही सम्यक्त्व हे।

भक्तिः पंचगुरुणा आप्तागमैव धर्मस्यभावना।
सम्यक्त्व धर्मव तन्मूल मोक्षपादपस्य ॥६१॥

सम्यक्त्व की भावना सहित अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और जगत मे सब साधुओ की भक्ति करना उनके गुणो मे अनुराग होना तथा भावना का होना इनको ही अपना इष्ट मानना और उपासना करना तथा इनके द्वारा कहा हुआ ही शास्त्र है अन्य कुलिगियो के द्वारा कहा हुआ शास्त्र नही हो सकता है इस प्रकार देव, शास्त्र और गुरु तथा धर्म मे रुचि पूर्वक श्रद्धान का होना सो ही सम्यक्त्व है वह सम्यक्त्व ही मोक्ष रूपी वृक्ष की मूल जड़ हैं। जिस प्रकार विना जड़ के पेड़ बढ़ नही सकता न फल फूल सकता है न उसकी काई स्थिति ही रह जाती है। जिस वृक्ष मे जड़ होती है वही वक्ष वाद्ध को प्राप्त

होता है । जड़ के विना नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार सम्यक्त्व ही मोक्ष रूपी तथा चारित्र रूप वृक्ष की जड है चारित्र रूप वृक्ष में ही मोक्ष रूपी फल लगते है अथवा सर्व प्रथम धर्म तो सम्यक्त्व ही है पहले पद्य मे कहे गये सात भय, सात व्यसन, आठ मद, छह अनायतन, तीन मूढता तथा आठ शंकादिको का जब तक पूर्ण रूप से अभाव नही होता है तब तक सम्यक्त्व नही होता है यही सम्यक्त्व के होने में बाधक है ।

आगे सम्यक्त्व का स्वरूप व्यवहार और परमार्थ से कहेगे ।

भूतार्थेन च भणितं जीवाजीवास्रव बंधपुण्यैवं
पापसंवरनिर्जरा मोक्षपदार्थेषु श्रद्धानम् ।।६२।।

निश्चय नय से कहे गये नव पदार्थ है वे जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष तथा पुण्य और पाप ये है । इनमे श्रद्धान का होना ही सम्यक्त्व है ।

जीव पदार्थ—जीव दो प्रकार के है एक जीव ससारी कर्म सहित दूसरे जीव कर्म मल कलक से रहित है ऐसे मुक्त जीव है । ससारी जीव वे है जो नाना रूप धारण करते हुए भ्रमण करते है जो चारों प्राणों से पहले जोते थे जी रहे है व जीवेंगे वे सब ससारी है । जिन के इन्द्रिय, आयु, बल, श्वासोच्छवास ये चार प्राण होते है । वे सब जोव है । जिनमें पदार्थों के जानने व देखने की शक्ति है वे सब जीव है । वे जीव अनेक भेद वाले है इनको देह धारी भी कहते है स्थावर कन्धक जीव व त्रसकायक जीव इस प्रकार दो भेद संसारी जीवों के है । स्थावर पाँच प्रकार के होते है जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कायक होते है । इनमें भी एक एक के दो दो भेद होते है एक सूक्ष्म दूसरे वादर उनमे भी दो भेद तथा तीन भेद होते है । एक पर्याप्तक दूसरे निवृत्त पर्याप्त तीसरे लब्ध पर्याप्तक भेद वाले होते है। सूक्ष्म पर्याप्तक सूक्ष्म निवृत्त पर्याप्तक सूक्ष्म लब्धि पर्याप्तिक उसी प्रकार वादर भी तीन प्रकार के होते है । वनस्पति काय के दो भेद है एक साधारण दूसरे प्रत्येक । प्रत्येक के दो भेद होते है एक सप्रतिष्ठित दूसरा अप्रतिष्ठित सबके सब पर्याप्तक निवृत्त पर्याप्तक लब्ध पर्याप्तक इन के आश्रित निगोद राशि भी है । त्रस राशिके दो भेद हैं एक विकलेन्द्रिय दो इन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक जीवो को विकलेन्द्रिय कहते है तथा पचेन्द्रिय जीवो को सकलेन्द्रिय जीव कहते है । विकले-न्द्रिय जीव शख दोइन्द्रिय चीटी, तीन इन्द्रिय भोरा, मक्खी चार इन्द्रिय । सकलेन्द्रिय, देव नारकी मनुष्य तथा गाय, भैंस, हाथी, मछली, मगर, सर्प इत्यादि होते है । पचेन्द्रिय मे दोभेद होते है कुछ तो सैनी होते हैं कुछ असैनी । मन सहित जीवो को सैनी तथा मनरहित जीवो को असेनी कहते है । जीव स्थूल ही होते है तथा अपर्याप्त निवृत्तक पर्याप्त और पर्याप्तक होते हैं । जो देव गति व नरक गति व त्रियंच गति और मनुष्य गति मे गमन करते है उनको गति कहते है । अथवा जो गुणस्थानो में निवास करते है वे सब जीव है । मार्गणा में खोजे जाते हैं, देखे जाते है वे सब ससारी जीव है । इनसे विपरीत रूप को धारण करने वाले अचेतन द्रव्य है वे सब रूपी और अरूपी मिलकर पाँच प्रकार के है । पुद्गल द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य आकाश द्रव्य, काल द्रव्य इन मे एक पुद्गल द्रव्य तो रूप, रस, गध, स्पर्श, वाला है शेष चार द्रव्य अरूपी है । रूपी द्रव्य सख्यात, असख्यात, अनत परमाणु, वाला है परन्तु अरूपी धर्म, अधर्म जीव ये तीन द्रव्य

असख्यात प्रदेश वाले है आकाश अनत प्रदेश वाला है काल द्रव्य एक प्रदेशी है वे प्रदेश असख्यात लोक प्रमाण है वे आकाश मे रत्नो की राशि के समान भरे हुए हैं। तथा धर्म अधर्म और जीव द्रव्य असख्यात प्रदेशी अखड एक द्रव्यो है। पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पांचो द्रव्यो में से एक पुद्गल द्रव्य स्वभाव और विभाव रूप से परिणमन करता है परन्तु चार द्रव्य अपने स्वभाव मे ही परिणमन करते है। वे विभाव रूप से परिणमन नही करते हैं। तथा जीव द्रव्य स्वभाव और विभावो मे परिणमन करता है इन जीव और पुद्गलो के सम्बन्ध से होने वाले कार्य के द्वारा जो द्रव्य कर्म वर्गणाये आश्रव आस्रव को प्राप्य होती है, उनको आस्रव कहते है। जब जीव और अजीव के सम्बन्ध से जीव के विकृत परिणामों से जो आश्रव होता है वह भावाश्रव है तथा भावाश्रवो से जो कर्म वर्गणाये आई है वे ही कर्म रूप होकर परिणमन करती है वही द्रव्याश्रव है। जो कर्म वर्गणायें शुभ भावो से आई है वे पुण्य है तथा जो अशुद्ध भावो से आई है वे पापाश्रव है। जो द्रव्य वर्गणाये आश्रवित हुई है उनका जीव प्रदेशो मे दूध पानी की तरह मिल जाना वध है। परिणामो के अनेक भेद है उनमे सक्लिष्ट परिणामो के पाँच भेदो को लिए हुए होते हैं। सक्लिष्ट परिणाम तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर इस प्रकार के होते है। मिथ्यात्व का सहयोगी अनतानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो कषायो सहित जो परिणाम होते है उनको तीव्रतम सक्लिष्ट परिणाम कहते है। अप्रत्याख्यान कषायो युक्त जो सक्लिष्ट परिणाम होते है उनको भी सक्लिष्ट तीव्र तर कहते है प्रत्याख्यान की चौकडी उदय मे होने वाले परिणामो को तीव्र कहते है तथा सन्वलन कषाय के उदय मे होने वाले परिणामो को मद कहते है तथा नव कषायो के उदय मे जो मदतर सक्लिष्ट परिणाम होते है। इन पाँचो के भी उत्तम मध्यम और जघन्य के भेद से तीन तीन प्रकार होते है। इन परिणामो मे से तीव्रतर, तीव्रतम ये दोनो सक्लिष्ट परिणाम पाप मूलक है तथा पापाश्रव के कारण है। तीव्र मे पुण्य पापाश्रव तथा मध्य मे जघन्य मे पुण्याश्रव होता है क्योकि परिणामो की ही विचित्रता है अपने परिणाम ही तो बध के कारण हैं। इसलिए आश्रव बध के पीछे पुण्य और पाप का कथन किया गया है। कर्माश्रव के कारणो को रोक देना ही संवर है। सक्लिष्ट परिणामो मे प्रवृत्ति का न होना यह सवर है। मिथ्यात्व का सवर सम्यक्त्व से तथा असयम का सवर संयम से कषायो का सवर दश धर्मो से तथा प्रमादो का सवर शीलो से तथा समितियो से योगो का सवर गुप्तियो के पालने से तथा परीषहो के जीतने से सवर होता है। जिस प्रकार मोरियो मे होकर तालाब मे पानी आता था तव उन मोरियो मे डाट लगा देने पर पानी रुकता जाता है। पानी का रुकना ही सवर है। जिनके द्वारा कर्मो का आश्रव होता था उनको रोक देना ही सवर है। एक देश सचित कर्मो का क्षय होना ही निर्जरा है निर्जरा भी दो प्रकार की होती है सविपाक; अविपाक। जो कर्म अपना तीव्र तीव्रतर तथा मद मन्दतर फल देकर खिर जाते है उनको सकाम निर्जरा कहते है। जिन कर्मो के उदय का काल नही आया है उनको उदय मे लाकर नष्ट कर देना यह अकाम निर्जरा है इसको अविपाक निर्जरा कहते है यह निर्जरा प्राय: करके योगी ध्यानी सयमी साधुओ के ही होती है क्योकि वे तप के व ध्यान के प्रभाव

से कर्मो को शीघ्र ही उदय में लाकर नष्ट कर देते है तथा उदीरणा करके क्षय कर देते है। जव सव कर्म द्रव्य कर्म भाव कर्म तथा नो कर्मो का क्षय हो जाता है तथा चार प्रकार के वन्धन से मुक्तात्मा हो जाता है तब मोक्ष होता है। इस प्रकार पदार्थो का जैसा स्वरूप है वह सक्षेप से कहा गया है इनको निश्चय कर श्रद्धान कर ना ही सम्यक्त्व है। ६२॥

सप्तत्त्व नवपदार्थं षट् द्रव्यास्ति काय पंच सास्वत्
आगमोपदिष्टैव विहाय मलानि श्रद्धानं ॥६३॥

पहले श्लोक में नव पदार्थ कहे जा चुके सात तत्व जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा, मोक्ष सात तत्व है। छह द्रव्य है जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल इन छहो द्रव्यों में से काल द्रव्य को छोडकर शेष पांच अस्तिकाय है। ये पाचों द्रव्य शरीर के समान बहुप्रदेशी है इसलिए इनको अस्तिकाय कहते है इनका स्वभाव जानकर जैसा कहा गया है वैसा ही श्रद्धान का होना सो सम्यक्त्व है अथवा आत्मा में जो रुचि होती है वह ही सम्यक्त्व है। पहले कहे गये है उनका यथार्थ रूप जानकर श्रद्धान का होना सो सम्यक्त्व है आगे कहे गये है मलो का त्याग होना आवश्यक है आठ मद, आठ शकादिक दोष, तीन मूढता छह अनायतन तथा सात व्यसन और भय ये सम्यक्त्व के मल दोष है जहां ये मल दोष होते है वहाँ अन्य को तो बात क्या सम्यक्त्व की स्थिति नही रहने देते हैं न इनके रहते सम्यक्त्व होता हो है। इसलिए मलों का त्यागकर श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व है।६३॥

निश्चय नय से अपने आत्मा में जो रुचि होती है वह ही सम्यक्त्व है।

श्रद्धानं खलु आत्मनि भूत भविष्य संयुक्त ॥
साप्रतंन विनश्यति ज्ञानदर्शने भा नित्यम् ॥६४॥

यह मेरा आत्मा अनादि निधन है न कभी पहले ही मरा था न अब ही विनाश हो रहा है न आगमी काल में विनाश होगा वह सव द्रव्यों से भिन्न दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग सहित है और शाश्वत हूं। अविनाशी हूं। जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम गोत्र और अतराय ये द्रव्य कर्म मेरी आत्मा मे नही रहते है न मेरी आत्म रूप ही कदापि हो सकते है। वे कर्म जड़ द्रव्य है। वे चेतना से रहित तथा मेरे आत्मा से अत्यन्त भिन्न है। मेरे आत्मा में इनका अत्यन्ताभाव है भय तथा अन्य प्राणास्पद वस्तुओ का तथा अन्य कोई हास्यापद मिलने पर भी जिसमें चलमल नही होता है तथा दुखमल उपसर्ग आने पर भी आत्म श्रद्धान से चलायमान नही होना यह सम्यग्दर्शन है। यह दर्शन मोह की तीन व चरित्र मोह की चार इन सात प्रकृतियो का अत्यन्ताभाव होकर पर होता है। ये सब प्रकृतियां कर्म जनित है उनका ही विनाश है यह शरीर और शरीर की वालावस्था यौवनावस्था वृद्धावस्थाये है वे सब शरीर के साथ है मेरे आत्म स्वभाव से भिन्न है। मेरे आत्मा का मरण नही है ये विनाश होने वाली तो विकारी पर्याये है तथा पर्यायो की उत्पत्ति और विनाश नियम से होता ही रहता है। ये राग द्वेष भी मेरे आत्म स्वभाव नही है ये सब जड़ और चेतन के सयोग से उत्पन्न है ऐसा गाढ़ श्रद्धान का होना निश्चय सम्यक्त्व है। जो विकारी सव द्रव्यो के सयोग से रहित आत्मानुभूति रूप जो श्रद्धान है वह निश्चय सम्यक्त्व है। अथवा वीतराग क्षायक सम्यक्त्व

कहते है ।९४।।

देवानां च स्वरूपैव श्रद्धानं भक्ति ऐघते ।
त्रिमूढा पोढमष्टाग सम्यग्दर्शनमस्मयम् ।।९५।।

जैन धर्म मे नव देवता प्रसिद्ध है वे इस प्रकार हैं अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और मुनि जिन चैत्य चैत्यालय जिन धर्म जिनगय ये नव देवता है इनमे भक्ति का होना तथा भक्ति सहित रुचि का होना तीन मूढता रहित अष्टसकादिक दोप रहित श्रद्धान का होना ही सम्यक्त्व है । इन नव देवताओ का यथार्थ स्वरूप जानना व जानी हुये हैं उसी प्रकार से श्रद्धान का होना सो ही सम्यक्त्व है । जब आप्त देव के स्वरूप व गुणो को ज्ञान उन गुणो में जो अनुराग हो तथा उसी रूप से अपने स्वभाव में अनुभव अथवा अनुभूति का होना । अपने आत्मा को तीन प्रकार जानेगा और जानकर उस आत्मा के स्वरूप का श्रद्धान होगा तव सम्यक्त्व अपने आत्मा मे ही प्रकट होगा । आत्मा तीन प्रकार का है परमात्मा अतरात्मा और वहिरात्मा इनमे बहिरात्मा को जान जव त्याग करेगा और अन्तरात्मा वनकर निरतर अरहत सिद्ध स्वरूप का अपने मे (देखेगा) परमात्मा बनने की चेष्टा करेगा व उधर परमात्मा को लक्ष्य वनावेगा तव यथार्थ श्रद्धान की प्राप्ति होगी वही सम्यग्दर्शन है ।

आप्तागम सिद्धाश्च आचार्योपाध्याय सर्व साधव ।
जिनधर्मश्चैत्यश्च चैत्यालयञ्च नव देवता ।।९६ ।।

अरहत भगवान तथा उसके द्वारा कहा गया आगम जिनवाणी है जिसका कोई उलघन नही कर सकता है परस्पर विरोध से रहित है । सिद्ध भगवान जिन्होनें अपने घातियाँ और अघातिया कर्मो का नाश कर जो निकल परमात्मा बन गये हैं वे सिद्ध भगवान कहलाते है । तथा जो लोकाग्र मे निवास करते है । वे सिद्ध परमात्मा आठ कर्मो के क्षय होने पर जिनमे आठ गुण प्रकट हुए है वे आत्मा सिद्ध कही जाती है । आचार्य जो मुनियो को व श्रावको को शिक्षा और दीक्षा देते है तथा दश धर्म बारह तप के तपने वाले होते है छह आवश्यक तीन गुप्तियो के पालन करने वाले होते है तथा पचाचार इन गुणो से युक्त होते हैं वे आचार्य परमेष्ठी है । तथा जो आगम का उपदेश शिष्य वर्ग को देते है वे उपाध्याय परमेष्ठी होते है वे उपाध्याय परमेष्ठी एकादश अग तथा चौदह पूर्व के शास्त्र के पारगामी होते है । जो मौन सहित रहते है वे मुनि है मुनिराज एकाग्रचित के धारक मोक्ष के साधन मे लवलीन रहते हे तथा आगम परिग्रह से रहित होते हे तथा वे पचमहाव्रत पाच समिति पंचेन्द्रिय निरोध छह आवश्यक तथा केशलु चन सात शेष गुणो सहित होते है वे साधु परमेष्ठी है । जिन धर्म समीचीन है जो सब प्राणियो का हित करनें वाले है जीवो को दु खो में से निकालकर सतत सुख मे रखता है अथवा पहुँचाता है । यह धर्म आप्त का कहा हुआ है । जिन चैत्य जो वीतराग सर्वज्ञहितोपदेशी अरहत भगवान समवसरण मे विराजमान एक हजार आठ चिन्हो से युक्त होते है । उनकी मूर्ति तदनुरूप वनवाकर स्थापना करना । जहाँ जिस भवन मे वह स्थापित कराई जाय उसको चैत्यालय कहते है । जो आठ प्रातिहार्यो से युक्त प्रतिमा के आलय को कहिये मन्दिर जिसको मिथ्यादृष्टि लोग दूर से देख मिथ्यात्व रूप भावना को छोड़कर सम्य-

क्त्व को प्राप्त हो जावे वे नव देवता है ये कहे हुए ही आराधने योग्य है इनसे भिन्न देव आराधनें योग्य नही है ॥९६॥

आगे अरहंत का स्वरूप कहते है ।

आप्तेनोऽष्टादशदो वीतराग: सर्वज्ञो हितकरा: ।
धर्मोपदिष्टासैव नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥९७॥

जिन्होने कर्मो की ६३ प्रकृतियों को नाशकर दिया है। वे प्रकृतियां ज्ञानावरण की पाच दर्शनावरण की ९ मोहनीय की २८ अंतराय की पांच तथा देव नरक त्रियंच ये तीन आयु कर्म की शेष तेरह नाम कर्म की। इनका नाश होते ही भगवान अरहंत परमेष्ठी लोक तथा अलोकाकाश सहित सब पदार्थो को अपने ज्ञान से जानते है और देखते है वे ही सर्वज्ञ है दर्शन मोह क्षय हो जाने के कारण ही वे वीतराग है वे ही जीवों को सन्मार्ग कुमार्ग के यथार्थ स्वरूप का उपदेश देकर कुमार्ग से बचाकर सुमार्ग का ही प्ररूपण करते है इसलिये सब प्राणियों का हित करने वाले है वे ही अठारह दोषों से मुक्त है। यदि इससे भिन्न कोई होगा वह कदापि आप्त नही हो सकता जिन कर्मो के उदय रूप जन्म मरण भूख, प्यासादि दोष हों और अपने को सर्वज्ञ मानने का दावा रखते है वे मिथ्या, दृष्टि है। मिथ्यादृष्टि मनुष्य पागल के समान कभी कुछ कहता है कभी कुछ व अपने वचन से आप स्वयम् ही वाधित हो जाता है पूर्व में कहे हुए का उत्तर में आप ही विरुद्ध बोलनें लग जाता है यह वीतरागी सर्वज्ञ न होने के कारण ही उसका ज्ञान यह नही जान सकता है कि मैने कल क्या कहा था आज क्या कह रहा हूं। इसी कारण से बुद्ध महात्मा ने आत्मा को क्षणिक मान लिया कि जो आत्मा सुबह बोली थी वह बदल गई वह दूसरे क्षण में अन्य प्रकार से बोल रही है उनके बचन से स्वयम ही वाधित होते हुए भी देखे जाते है इस लिए वे सर्वज्ञ नही। परन्तु सर्वज्ञ के मत में पूर्व अन्य हो उत्तर में अन्य हो ऐसा विरोध उत्पन्न नही होता है ॥९७॥

अठारह दोषों को कहते है

क्षुत्तृट् भयश्च रोग रागमोहश्चिन्ता जरारूजा ।
स्वेदं खेदो मदोरति र्जन्मोद्वेगौ विस्मय निद्रा: ॥९८॥

भूख का लगना, आहार की प्राप्ति के लिए यत्र तत्र भ्रमण करना, कवलाहार करना, प्यास के लगने की आकुलता से पानो की खोज करना, भय का लगना, जिस भय के कारण लाठी त्रिशूल तलबार इत्यादि आयुधों का धारण करना, तथा दूसरों की शरण खोजना तथा किला कोर्ट खाई सुरग गुफा इत्यादि मे छुपने का प्रयत्न होना, शरीर में मूल व्याधि भगंदर अतिसार कुष्ठ सुजाक इत्यादि रोगो के हो जानें पर वेद्य की खोज कर उसके पास जाना और इलाज करवाना औषधि करवाना, परवस्तु में प्रेमकरना राग से अपनी मानना और उनके संरक्षण का चितवन करना। अशुभ वस्तुओं के मिलने पर उनका परिहार करने का विचार करना चिन्ता है। वृद्धा अवस्था को प्राप्त होना जरा है। क्रोधमान कषाय आना तथा वैर विरोध करना व नीचा दिखाना व हानि पहुंचाने का प्रयत्न जारी रखना। स्वेद शरीर से पानी का निकलना जिससे मानव के शरीर में आकुलता बढ़ जाती है। इष्ट

वियोग अनिष्ट संयोग होने पर जो दुख होता है वह खेद है। जो दूसरों को अपने से हीन समझते हैं अपने को ज्ञाता ष्टा समझते हैं बलवान विवेक और रुपवान, धनवान, कुलवान मानते है यह मद है। पर वस्तुओ को अपनी मान प्रेम करना यह प्रीति है। पूर्व पर्याय के वनाश होकर नयी पर्याय का धारण करना यह जन्म है तथा वर्तमान शरीर का विनाश होना मरण है। जन्म मरण मे आश्चर्य मानना अथवा इष्ट वस्तु के प्रति अभाव में खेद तथा शोक करना कि हाय मेरी वस्तु विनष्ट गई अब क्या करू कैसे पाऊं यह विस्मय है। निद्रा का आना बिछौना पलग चारपाई अथवा भूमि पर सो जाना यह निद्रा है। ये सब मोहनीय कार्य व ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम और अतराय कर्मो के उदय में ही होते है। परन्तु आप के इन सव दोषो का अभाव हो गया है।

विशेषार्थ – असाता वेदनीय कर्म के साथ मे मोहनीय कर्म का उदय होने पर पेट खाली होने पर या इष्ट भोजन दिखाई देने पर भूख लगती है व शरीर मे निर्बलता सी आती है वह क्षुधा है क्षुधा से होने वाली पीडा सो क्षुधा है केवली भगवान के मोहनीय कर्म का पूर्ण रूप से नाश हो गया है। इसलिए वेदनीय कर्म क्षुधा उत्पन्न करने में समर्थ नही है। वेदनीय कर्म तथा मोहनीय कर्म की प्रकृति रति और अरति के साथ ही परद्रव्य जनित सुख व दु.ख देने की सामर्थ्य होती है। जब अरहत केवली के मोह कर्म का पूर्ण क्षय हो गया है तब रति और अरति किस आधार से रह गई? नही वे तो क्षय हो गई इस लिये प्रभु वीतरागी अपने आनन्दमय निज स्वार्थ मे लीन हो गये। तथा अनन्त सुख रूप रस का आस्वादन करने लग गये। तब उस निजात्म अलौकिक अनुभव स्वादी को अविनाशी सुख की तरफ से हटाकर क्षुधा की वेदना करना और फिर क्षुधा का दुख मिटाकर साता का होना यह बात न्याय सगत नही है अन्तराय कर्म के नाश होने से अनन्त बल के धारी के निर्वलता कैसे हो सकती है। यहा पर कोई मतावलम्बी कहते है कि केवली भगवान के कवलाहारी होते हैं। इसका उत्तर देते हुए कहते है जब केवली सर्वज्ञ है उनके ज्ञान मे तो सब वस्तुये दिखाई देती है व जानी जाती है वे जब भिक्षा के निमित्त किसी गृहस्थ के यहाँ जावेंगे तो गृहस्थ के द्वारा किये गये सब आरम्भ ज्ञात हो जावेंगे तब अन्तराय कर लौट जावेंगे। दूसरी बात यह है मोहनीय कर्म का सर्वथा अभाव हो गया है तब भोगान्तराय और लाभान्तराय का भी क्षय हो गया है जिससे अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त वीर्य का प्राप्त होना किस कामका कि भूख प्यास लगे और निर्बलता दिखाई जाय। जब साधु आहार के लिये ग्राम नगर में जाते है तब वे श्रावक के घर जाकर अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान तथा निमित्त ज्ञान का प्रयोग नही करते है तब विचारो कि केवली भगवान कवलाहार कैसे करते हैं जब कि आगतुक उत्पादन आरम्भिक दोष तो प्रत्यक्ष होगे इसलिए केवली भगवान के भूख की वेदना नही होती है।

साधारण मनुष्यो के समान आहार अर्थात् चार प्रकार के भोजन में से किसी का भी ग्रहण केवली भगवान के नही है। उनका शरीर परम औदारिक होता है जिसकी स्थिति नोकर्म वर्गणाओ के ग्रहण से हो जाती है। अनत चतुष्टय के (धारी) अधिपति को क्षुधा से दोष लगाना उनके अनत चतुष्ट्य में बाधा डालना है। इसलिए केवली स्वाभाविक केवल

ज्ञान ही सुख रूप मे परिणमन करता है वह ही उनकी अनादि काल की गभीर क्षुधा को समय समय मेटरहा है। असातावेदनीय कर्म के उदय रूप तीव्र तीव्रतर तीव्रतम उदय के बस से पीडा का होना सो प्यास है वह भी केवली के नही है इसके पान करने वाले को क्षणिक प्यास को बुझाने वाले जल की इच्छा कैसे हो सकती है। इसलोक भय, परलोक, भय अनरक्षक भय, अगुप्ति भय, मरण भय, वेदना भय, आकस्मिक भय ऐसे सात प्रकार के भय है। सो भी अरहत के शरीर भोग इन्द्रिय जनित सुख तथा धन, धान्य कुटम्ब, घर, जमीन, सोना चाँदी आदि के प्रति किसी प्रकार की मूर्छा नही है। क्योकि केवली भगवान ने दोनो प्रकार के मोहनीयकर्म को नाश कर दिया है इसलिए जिनेन्द्र भगवान सब प्रकार के भयो से रहित है और निर्भय है। क्रोधकषाय के तीव्रउदय मे रहने पर ही जो परिणाम होते है उनको रोष कहते है। अर्थात् क्रोध है वह भी क्षमाशील प्रभु के नही हो सकता है क्योकि प्रभु ने अपनी पूर्व अवस्था अनिवृत करण गुणस्थान के पहले भाग मे पूर्ण रूप से क्षय कर दिया है। राग भी दो प्रकार एक प्रशस्त राग दूसरा अप्रशस्त राग, शुभ अशुभ। दान देना पूजा करना गुरुओं की सेवा वैयावृत्ति करना देश सयम सकल सयम का धारण करना तथा गुप्ति समितियो का पालन करना तीर्थ वंदना स्तवन करना इत्यादि शुभ कर्मो में प्रवृतिका होना प्रशस्त राग है। अप्रशस्तराग स्त्री कथा राज कथा भो जन कथा हिसादान अपध्यान पापोपदेश दु.श्रुति पढना सुनने मे कौतूहल रूप परिणामो का होना अथवा उनकी कथा वार्ता करने . के लिए चित्त मे कौतूहल रूप हो उसमे आनद मानना सो अप्रशस्त राग है। सो वे दोनो ही प्रकार के राग अरहत भगवान के नही है क्योकि प्रभु का राग मोक्ष प्राप्त करने मे उपयुक्त है। जो चार प्रकार का सघ ऋषि मुनि यति अनगार इनकी तरफ वात्सल्य भाव का होना सो मोह है। सो आत्मा के मोह के परसघ कृत मोह का सभव पना नही हो संकता। शुभ विचार करना सो प्रशस्त चिन्ता है वह धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान रूप है अशुभ विचार करना सो अशुभ चिन्ता आर्त्त रौद्र ध्यान रूप है सो भगवान के स्वरूप का निश्चलता के होने से इस चिन्ता का प्रवेश नही है। यद्यपि शुक्ल ध्यान कहा जाता है परन्तु यह कथन मात्र उपचार से है। श्रीवीतरागी अनत सुखी के चिन्ता होने से विक्षेप पड़ सकता है। सो प्रभु के चिन्ता नही है। इसलिए उनके सुख मे विघ्न नही है। निर्भय व मनुष्यो के औदारिक शरीरो का आयुकर्म के झरने के निमित्त से निजरा हो जाना अर्थात् बूढ़ा हो जाना सो जरा है अनतबल के धारी कोटि सूर्य की प्रभा से अधिक प्रभा के धारी के शरीर में जराका स्वप्न में भी प्रवेश नही हो सकता।अरहत केवली के नख केश बढते ही नही है वायु कफ पित्त की विषमता से पैदा हुई शरीर में बाधा का होना ही रोग है सो जिनको परम औदारिक महासुन्दर निश्चलशान्त शुक्ल ध्यानाकार गात्र में किसी तरह से भी उत्पन्न नही हो सकता। यदि अन्तसहित मूर्तिक इन्द्रियों कर चिहित है आत्मक जाति से विलक्षण विजातीय नर नारकत्रियञ्च देवगति सम्बन्धी विभाव व्यञ्जन पर्याय अर्थात् औदारिक वैक्रियक और आहारक शरीर का ही नाश अर्थात् आत्मा के सूक्ष्म कार्माण शरीर से अलग हो जाए सो मरण है। सो प्रभु के परम औदारिक देहका छूटना कार्माण देह के साथ-साथ हो जाता है। इसलिए उनके संसारी जीवों

की भाँति परवा नही है। संसारी जीवों की पर्यायो का छूटना है सो ही मरण है। उत्तर पर्याय की अथवा विभाव व्यन्जन पर्याय को उत्साहित होना सो ही जन्म है। मरण जन्म कर सहित है तथा स्वाधीन आत्मा का अब किसी भी देह मे उपजना नही है इसलिए भगवान केवली के जन्म मरण की वेदना व्यापती नही। अशुभ कर्म के उदय मे आने से शरीर में परिश्रम के होने से दुर्गंधमय जलविन्दुओ का प्रकट होना सो स्वेद है अर्थात् पसीना है सो स्वरूपानदी परम शुद्ध शरीर धारी के सभव नही है। जो वस्तु अपने को प्रिय है उसके अलाभ में जो रज करना सो खेद है सो परिग्रह तथा मूर्छा रहित स्वरूपानदी स्मरणी के खेद का प्रकाश कभी भी सम्भव नही हो सकता है। सहजकविता की चतुराई सपूर्ण मनुष्यो को सुनने मे आनद हो ऐसी वचन की चतुराई पटुता तथा मनोज्ञशरीर उत्तमकुल अतुलवल अनुपम ऐश्वर्य आदि के होने से आत्मा के भाव मे अहकार का होना सो मद है ऐसा क्षायक सम्यक्त्व धारी शरीरादि पर द्रव्य परिग्रह त्यागी तथा निजात्मा के उत्कृष्ट मार्दव गुण में आसक्त किसी भी प्रकार से नही हो सकता है मनको प्यारी वस्तुओं मे गाढ़ प्रीति का होना सो रति है शिवनारी मे रति करने वाले परम वीतरागी सकल्प विकल्प के धारक मन के अभाव को रखने वाले भगवान को अपनी अनुभूति मे रति है। परन्तु इससे भिन्न किसी भी द्रव्य व पर गुण व पर पर्याय से प्रीति नही है। परम समरसी भावना से दूरवर्ती पुरुषो के कभी किसी अपूर्ववस्तु को जिसको कभी नही देखा है उसके देखने पर विस्मय अर्थात् आश्चर्य का होना सो विस्मय है अर्थात् आश्चर्य है। तीन लोक तथा आलोक की त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्यो की सर्व अवस्थाओ मे होने वाली क्रियाओ को केवल दर्शन और केवल ज्ञान से एक ही समय मे रखते हैं और जानते है ऐसा कोई पदार्थ और पदार्थ की होने वाली पर्याय शेष नही रह जाती कि जिसको अपूर्व कहा जाय प्रभु के अपूर्व वस्तु ही नही तब प्रभु के विस्मय नामका दाष भी नहो हो सकता है। केवल शुभ कर्मो के उदय मे आने से देवगति में केवल अशुभ कर्मो को उदय मे आने पर नरक गति मे मायाचार के करने से त्रियंच गति मे पुण्य और पाप समान होने पर मनुष्य गति मे जीवो को शरीर की प्राप्ति का होना सो जन्म है, सो प्रभु ने चारो गति नाम कर्म को पहले ही क्षय कर दिया अथवा कारणो का अभाव हो जाने पर कार्य का भी अभाव हो जाना है इसलिए केवली भगवान के देव आयु नरक आयु त्रियंच आयु मनुष्य आयु का बध नही है। प्रत्येक देव आयु वंध के कारण से राग सयम सयमा सयम अकामनिर्जरा व वालतप आदि के भाव ही है न जिनेन्द्र श्रेणी के नीचे स्थित है जहा ही देव आयुका वध होता है न स्वामी के मोह कर्म का अत्यन्ताभाव होने के कारण नरक आयु वध के कारण बहु आरम्भ और परिग्रह सवन्धी भाव है वीतरागी होने से त्रियंच आयु वध का कारण भाव नही है अटल सुख स्वादक के अन्य आरम्भ अन्य परिग्रह के भाव भी नही उनके न साधारण मार्दव साधारण सम्यक्त्व। इसलिए प्रभु जन्म व अवतार सम्वन्धी दोष से रहित है। दर्शनावरण कर्म के उदय से ज्ञान ज्योति का अचेतन सा हो जाना ही निद्रा है श्री अरहत परमात्मा ने दर्शनावरण कर्म का पहले ही क्षयकर दिया है इसलिए निरतर निजस्वरूपावलोकन मे जाग्रत है। एक समय भी अचेतन के समान होते हो नही है। इष्ट

चेतन अचेतन अथवा मिश्र पदार्थो क वियोग प्राप्त होने पर घबराहट -भाव का होना सो उद्वेग है अर्थात् आकुलता है सो अरहत परमात्मा ने समस्त पदार्थो में समरसी भाव का आलम्बन किया है इससे यह सम्भव नही है इत्यादि अठारह दोष हैं। इन दोषों से समस्त ससारी तीनो लोको मे जन्ममरण करने वाले जीव जकड़े हुए है। अथवा ससारी इन दोषों युक्त हैं। जितने राजा, राणा, बलभद्र, चक्रवर्ती, नारायण, इन्द्र, घरमेन्द्र गौरी गोधारी यक्ष यक्षिणी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गुहा दत्यादि। जितने देवदेवी मनुष्य त्रियंच नारकी है वे सब इन दोषो से युक्त है इन कहे गये अठारह दोषो में से एक भी दोष हो तो सब ही दोष है जब तक ये दोप जीवो के साथ रहते है तब तक ही ससार में जन्म मरण रह जाता है तथा सब प्राणी ही इन अठारह दोपों से पीड़ित किये जा रहे है। ये कहे गये दोष अरहत प्रभु के नही है।

आगे पुन· अरहत का विशेप रूप कहते है।

घाति कर्मभ्योविमुक्तः केवल दर्शन ज्ञानवीर्यमयाः।
स क्षायक सम्यक्त्वं श्रीपत्यरहंता भवन्ति ॥६९॥

जिन्होने अपने विरोधी (वैरी) जो अनत ससार को बढाने वाले बीज वृक्ष की परपरा चलाने वाले सर्व घातिया कर्मो को अपने स्वरूप से जुदा कर दिये है। (अथवा क्षय कर दिये है) जिस प्रकार बीज के जल जाने पर वृक्ष की परपरा बद हो जाती है। उसी प्रकार कर्मो क क्षय हो जाने पर ससार के परिभ्रमण का बीज क्षय हो गया है सो क्षायक सम्यकत्व क्षायकज्ञान, क्षायक दर्शन, क्षायक लाभ, क्षायक भोग, क्षायक उपभोग, क्षायकवीर्य इन अनत गुणो से युक्त होते है। यह ही अरहत भगवान की अतरग लक्ष्मी है अथवा जो मोक्ष लक्ष्मी के साथ विवाह करने को सन्मुख है अथवा जिनके विवाह मडप कैसा है देवो ने रचा है वह मडप कैसा है आगे प्रथम कोट और चार तोरण दरवाजे बने हुए है तथा आगे चलत ही प्रत्येक दरवाजे के सामने विशालकाय एक-एक मानस्तम्भ है। जिस प्रकार विवाह मडप मे चार खम्भा होते है उसी प्रकार मान स्तम्भ बने हुए है जो मानी पुरुषो के मान को भग कर देते है अथवा जिनके दर्शन करने से मान नष्ट हो जाता है। उनके आगे कोट कोट के भीतर चैत्यालय बनें हुए है उनके आगे पुन. कोट बना हुआ है उसमे नाट्यशालाये बनी हुई है उसके आगे कोट है जिसमे वेदिकायें मणियो से मण्डित है अथवा रत्नो की बनी हुई है उससे आगे कोट है उसमें नाना प्रकार की फुलवाड़ी फुव्वारे लगे हुए है। उसके बाद कोट है उसमे अनेक बाग बावड़िया स्वच्छ निर्मल जल से भरी है और तालाब है उससे आगे कोट है जिसमें ध्वजाये विराजमान है अनेक चिन्होवाली व अनेक रंगवाली है। उनके बाद पुन. कोट है उसमे फूल के बगीचे बने हुए है जहा पर भ्रमरगुजार कर रहे है वे ऐसे लगते है कि मानो भगवान के विवाह महोत्सव के गीत गा रहे हो यह प्रतीत सूचना कर रहे हो कि अब विवाह की शुभ लगन आ चुकी हो उसके बाद कोट है और उस कोट मे बारह सभाये है उनमें भवन वासी देव दूसरी मे व्यन्तर तीसरी मे ज्योतिषी देव चौथी मे कल्पवासी देव पाचवी मे व्यतरणी देविया ये भवन वासी देविया ज्योतिपी देविया तथा कल्पवासी देवियां। एक मे मुनिराज एक में आर्यका और श्राविकाये तथा एक मे

मनुष्य तथा एक में त्रिर्यंच प्राणी बैठे हुए है उनके मध्य मे तीन कटनी की वेदी वनी होती है जो अनेक, सुवर्ण रत्नो से मण्डित कमलाकार होती है।

अथवा कमलाशन वना हुआ होता है उस पर उससे चार अगुल अतराल से आकाश में अरहत भगवान विराजमान होते हैं। गधर्व देव मण्डप मे बाजे बजाते हैं इन्द्र इन्द्राणी ताडव नृत्य करते है। तथा गधर्व भगवान के विवाह मण्डप के विषय मे अनेक प्रकार से गुण गान करते हैं। तथा भगवान के सर्वाग से दिव्य ध्वनि निकलती है बारह सभाओ में उपस्थित देव मनुष्य और त्रिर्यंच प्राणी अपनी-अपनी भाषा मे सुनते रहते हैं। सौ-सौ योजन तक दुर्भिक्ष का अभाव होता है। परस्पर विरुद्ध प्रकृति के धारक उस विरोधता व क्रूरता को छोड कर एक साथ प्रेम से बैठते हैं। सब ऋतुओ के फल फूल वृक्षो की शोभा बढाते हैं। आकाश मे से देव पुष्पो की (फूलो की) वर्षा करते है। मेघ कुमार जाति के देव सुगधित जल से सिचन कर (वर्षा करते हैं) पवन कुमार देव सभा मण्डप व विहार करते समय मार्ग की सफाई करने मे लगे रहत हैं। तथा कुछ देव भगवान के विहार काल मे कमलो की रचना आगे-आगे करते जाते है (इस प्रकार वाह्य लक्ष्मी के) भगवान के पीछे जो भमडल होता है वह इतना प्रकाशमान रहता है कि जिसके प्रकाश को देख कर करोडो सूर्य भी लज्जित हो जाते हैं। दुन्दुभी बाजे बजाते हैं। इस प्रकार बाह्यलक्ष्मी तथा अतरग लक्ष्मी के स्वामी श्री अरहत भगवान दुलहा बनकर परमऔदारिक शरीर से सुसज्जित हैं। भगवान का जो ज्ञान है वह लोकालोक को जानने वाला है अथवा श्रेयस्कर बना रहता है। जितने ज्ञेय पदार्थ है उन सबको भगवान का ज्ञान जानता है तथा दर्शनोपयोग से देखते है और जानते है। वही सर्वज्ञ सर्व व्यापी है। तथा मोह कर्म के सर्वथा अभाव हो जाने के कारण ही वे वीतराग है। तथा इच्छाओ का अभाव हो जाने से वे ही यथार्थ उपदेष्टा है तथा सब जीवो का कल्याण करने वाले अरहत है अथवा पहले कहे गये अठारह दोषो से रहित है वही अरहत हो सकते है अथवा तीर्थंकर हो सकते है इससे भिन्न नही हो सकते। उनके दोनो तरफ दाईं बाईं तरफ बत्तीस-बत्तीस चामर यक्ष कुमार देवों के द्वारा ढोरे जा रहे हैं तथा मस्तक के ऊपर तीन छत्र शोभा दे रहे है जिनका प्रकाश अथवा वे कह रहे हैं कि ये भगवान तो तीन लोक के स्वामी हैं। अब वे विवाह मण्डप मे ही विराजमान है और विवाह मडप मे श्री नामकी कन्या पाणिग्रहण के लिए आ खड़ी हुई तव सब लोग सभा के कहने लगे कि हे सुन्दरी अभी कुछ दिन और ठहर जाओ हमे कुछ और लाभ लेने दो परन्तु वह नही मानी तब बर माला डाल दी भगवान ने योग निरोध किया जिससे शेष बचे हुए अघातिया कर्मों का नाश कर दिया इधर मण्डप भी शात हो गया और भगवान तो अरहत अवस्था को छोड़कर निकल परमात्मा बन गये।

णमो अरहंताण इत्यादि ॥९९॥

आवापराविरोध मनुलध्य माप्तैः प्रक्षिप्तैः मूल ॥
प्रमाणनय विलसितेऽदृष्टेष्टानेकान्तात्मकम् ॥१००॥

जो श्रुत आगम शास्त्र सर्वज्ञ के मुख से कहा हुआ अनेकान्तात्मक है जिसमें पूर्व

और उत्तर में विरोध उत्पन्न नहीं होता है। वादी प्रतिवादी भी जिसका उलंघन नहीं कर सकते। जो अन्य मिथ्या दृष्टियों के द्वारा रचे गये एकान्त का नाश करने वाली है। जिसका वादी प्रतिवादी भी आगम अनुमान प्रमाण नयों से जिसका खण्डन कभी नहीं कर सकते हैं जो प्रमाण रूप है और प्रमाणाभाष का संधारक है जो एकान्त पक्ष रूप नयों से रहित है और अनेकान्त रूप नयों से युक्त है। जो परस्पर एक नय दूसरे नय से सम्बन्धित है जो संशय अनध्यवसाय विपरीतरूप भ्रम से रहित है तथा इन तीनों को नाश करने वाली हो वही शास्त्र श्रेष्ठ है। जो पूर्वपर के विरोध का मंथन करने वाला है जो अनेकान्त रूप तत्वों का कथन करता है जिसमें परस्पर विरोधी धर्मो का व गुणों के रहते हुए भी विरोध को नही प्राप्त होता हो वही सच्चा श्रुत है पूर्वापर स्ववचन से जिसमें बाधा उत्पन्न नहीं होती है अथवा विरोध नहीं पाया जाता है वही आगम शास्त्र है। जैसा अन्य मतावलम्बियों के मतों में पूर्वापर विरोध पाया जाता है वह विरोध सर्वज्ञप्रणीत श्रुत में नही पाया जाता है इसलिए पूर्वापर दोषों से रहित जो आगम है वही प्रमाणाश और नय है वे नय प्रमाण को छोड कर नही रह जाती है प्रमाण तो एक समुद्र है और उसमें तरगे उठने वाली है वे नय है। अथवा प्रमाण समुद्र है नदियां नय है जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिल कर एक समुद्र के रूप हो जाती है उसी प्रकार अनेक नय मिलकर ही प्रमाण होता है। वे नय सब सापेक्षता को लिये हुए है वे परस्पर विरोध से रहित है यद्यपि परस्पर विरोध भी दिखाई देती हो तो भी एक दूसरे की पोषक हो वही यथार्थ है इससे विपरीत निरापेक्ष नय ही मिथ्यात्व कहलाती है। जो अविरोध रूप सत्यार्थ का प्रकाश करने वाला बीतराग का कहा हुआ आगमश्रुत ही सत्यागम है ॥१००॥

आगे सिद्ध भगवान का स्वरूप कहते हैं।

नष्टाष्ट कर्मनोकर्मान् सम्यक्त्वं ज्ञानं दर्शनं वीर्यं।
लब्ध्वा गुरुलघु क गुणाः लोकाग्र वाशिनश्चसिद्धाः ॥१०१॥

जिन्होने अपने (ध्यान) आत्मध्यान के बल से व यथाख्यातचरित्र के बल से ज्ञानावरणादि आठों कर्मो को नाश कर दिया है तथा औदारिक वैक्रियक और आहारक इन तीनों शरीरो का नाश कर दिया है। तथा प्रकृतिवंध, स्थित बध, अनुभाग वध और प्रदेश वध इन चारो का क्षय कर दिया है अथवा सब बधो से रहित हो गये है। जिन्होने क्षायक सम्यक्त्व क्षायक अनंतज्ञान, क्षायक अनतदर्शन, क्षायक अनत वीर्य, अगुरुलघु, अव्यावाध, सूक्ष्मत्व और अवगाहनत्व इन आठ गुणों को प्राप्त किया है वे सिद्ध भगवान लोक के अग्रभाग में निश्चल, अचल, विमल, अनुपम गुणों—सहित विराज रहे है। जो पंचपरावर्तनरूप मिथ्यात्व ज्ञान था उसका पहले ही नाशकर चौथे गुण स्थानवर्ती हुये और क्षायक सम्यकत्व के धारक हो गये चारित्र मोह जो चारों गतियो में बंध का कारण था ऐसे मिथ्यात्व असंयम का भी भगवान नें बारहवे गुण स्थान के पूर्व ही नाश कर दिया है। दशवे गुण स्थान के अन्त में नाश कर दिया है जो निर्मल ज्ञान में बाधा डालने वाला केवल ज्ञानावरण था। उसको (तथा केवल दर्शनावरण और अ तराय कर्मो का नाश) तथा आत्मा के केवल दर्शन को होने में बाधा डालने वाला जो केवल दर्शनावरण था तथा आत्मा को अनंत शक्ति को प्रकट होने में बाधक

कर्म था वीर्यान्तराय इनका बारहवे क्षीणमोह नाम के गुणस्थान के अन्त समय में नाश कर दिया इसलिये भगवान के अनत दर्शन, अनत ज्ञान, अनत सुख प्रकट हुआ। जो आत्मा के अगुरु व लघु गुण का विरोधी नाम कर्म था उसको भगवान ने क्षय कर दिया वेदनीय, गोत्र और आयु ये सूक्ष्मत्व अवगाहनत्व अव्यावाधकत्व गुणों के घात करने वाले थे उनको भगवान ने चौदहवे गुण स्थान के अन्त मे नष्ट कर दिया है इसलिए भगवान के सूक्ष्मत्व अवगाहनत्व अव्यावाधकत्व अगुरुलघु गुण प्रकट हुआ है। इसलिए अरूपी है। इस प्रकार अनत गुणो के धारक वे भगवान सिद्ध हैं ॥१०१॥

षट् त्रिशतिगुणयुक्ताः धीरार्ग् णगंभीरा ध्यानयागे।
सम्यक्त्व चारित्रेपरिस्थिताऽऽचार्यमां पान्तु सदा ॥१०२॥

जिन्होने मुनिव्रत कोधारण कर अनेक प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन किया तथा प्रायश्चितग्रन्थो का अध्ययन कर लिया है जो शिष्यो के दोपो को समुद्र की तरह दोष रूपी पानी को पीजाते है वाहर नही निकलने देते है। तथा जो सघ के सचालक होते हैं स्वय पचाचारों को पालन करते है तथा दशधर्म बारह प्रकार के तपो को करते हुए तीन गुप्तियो का पालन परिपूर्ण रूप से करते है तथा छह आवश्यक क्रियाओ को पालन करते है। जो सम्यक् चारित्र मे स्थित हैं। तथा जो धीर हैं गुणो मे जो अत्यन्त गंभीर होते है। और जो नित्य ध्यान मे स्थित रहते हैं तथा अतरग आत्मयोग मे नित्य स्थित रहते है वे आचार्य परमेष्ठी हमारी रक्षा करे।

विशेष सम्क्यत्वाचार, ज्ञानाचार, तपाचार, वीर्याचार, उपचाराचार, तथा उत्तम क्षमा, उत्तम आर्जव, उत्तम मार्दव, उत्तमशौच, उत्तम सत्य, उत्तम सयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य, ये दस धर्म है प्रोषघोपवास ओमोदर्य रसपरित्याग व्यविक्त, शंयाशन, काय क्लेश, व्रत परि सख्यान ये बाह्य और अतरग आलोचना प्रतिक्रमण तदुभय विवेक व्युतसर्ग और ध्यान कायोत्सर्ग ये अतरग तप है छह आवश्यक समता स्तुति वदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग ध्यान ये छह आवश्यक क्रियाये इनका नाम कृतकर्म भी है। मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति इनके धारक होते है उनको आचार्य परममेष्ठी कहते है। जो शिष्यो की शिक्षा दीक्षा प्रायश्चित देते है।

अध्ययन करोति च कारयन्ति च शिष्यानां।
एकादशांग पूर्वा न सूत्राण्युपदेशका. ॥१०३॥
अज्ञानतिमिर व्याप्तं निराकुर्वन्ति भव्यानां।
पूर्वाचार्य कृमज्ज्ञात्वोपाध्याय परमेष्ठिनः ॥१०४॥

जो ग्यारह अग और चौदह पूर्वो का नित्य अध्ययन करते हैं तथा अपने शिष्यवर्ग को वढाते है तथा सूत्रो का अर्थ भली प्रकार से उपदेश करते है। जहा मिथ्यात्व अज्ञान का अधकार फैला हुआ है उन तत्वो का यथार्थ उपदेश कर दूर करते है। तथा भव्य जीवो के मन मे मिथ्यात्वाधकार व्याप्त हो रहा है उसके निराकरण कर सन्मार्ग का उपदेश देकर उसमें स्थिर करते हैं। जो अरहत भगवान की दिव्य ध्वनि मे जिनका जैसा व्याख्यान किया गया है उसका ही अर्थ गणधर देवो ने सूत्र रूप मे रचना कर विस्तार किया है उसका उपदेश आचार्य परपरा से जैसा प्रवाह रूप चला आ रहा है उस ही उसी प्रकार कहते हैं वे

उपाध्याय परमेष्ठो है। वे उपाध्याय अनेक ऋद्धियों के धारक बहुश्रुत कहे जाते है। इनका पाठक भी नाम है। १०३। १०४।

ये बाह्याभ्यान्तर ग्रन्थमविरहितमारम्भमाशावशाती—
ज्ञानध्याने तपोरक्त ररति विषयेच्छा न येषां ॥
नित्यं साध्यन्ति रत्नत्रय निजगुण युक्तं षडावश्यकानां।
शुद्धात्मानश्च सेवन्ति निशदिनसु भूतार्थ भावेन साधु: ॥१०५॥

जिन्होंने अ तरग परिग्रह चौदह प्रकार का है तथा बाह्य परिग्रह दशप्रकार का है ऐसे दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करदिया है। मन, वचन, काय से तथा जो मिथ्यात्व क्रोध मान माया, लोभ चार कषाय रूप परिग्रह तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा स्त्री वेद नपुसक वेद, पुरुष वेद ये अतरग तथा बाह्यक्षेत्र (खेत)मकान दुकान चादी सोना धन गाय भैस हाथी घोड़ा इत्यादि धान्य गेहूं, जौ, ज्वार, बाजरा, चना इत्यादि नौकर नौकरानी स्त्री पुत्र पुत्री माता पिता इत्यादि वस्त्र आभूषण तथा लोटा थाली बटलोई कलश इत्यादि ये दश प्रकार तथा सेज उपसेज भुक्त पानादि अनेक प्रकार का बाह्य परिग्रह है उससे रहित है सरम्भ समारम्भ और आरम्भ का भी मन, बचन, काय से त्याग कर दिया है तथा कृत कारित अनुमोदना से त्याग किया है जो ससार सम्बन्धी व परिग्रह सम्बन्धी इच्छाओं से दूर रहते है अथवा छोड़ दिया है जो ऐसे निरन्तर ध्यान और अध्ययन में मग्नरहते है। जो सम्यग्दर्शन सम्ग्ज्ञान सम्यग्चरित्र है उनको अपने में ही अनुभव करते है। तथा अपने पंचमहाव्रत, पंच समिति, पंच इन्द्रिय निरोध छह आवश्यक केशलोंच करना खडे आहार लेना, एकबार लेना, भूमि पर शयन करना दातोन नहीं करना तथा नग्न रहना इन अण्टाविशति मूलगुण तथा चोरासीलाख उत्तर गुणो का भी यथायोग्य पालन करते है। तथा मूल गुण उत्तर गुणों से युक्त परम वीतराग भाव रूप समाधि साधन में स्थित हैं। तथा सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमाण, प्रत्याख्यान, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग इन छहो आवश्यक क्रियाओ का निर्दोष रूप से पालन करते है। जो अपने शुद्धात्माका अनुभव करने में दिन-रात तन्मय रहते हैं वे साधु परमेष्ठी है।

जो पंचेन्द्रियो के विषय खट्टा, मीठा, कडुवा, कषायला और खारा ये पांच रसनाइन्द्रिय के विषय है। स्पर्शन इन्द्रिय के विषय कोमल, कठोर, हल्का, भारी, शीत, उष्ण, स्निग्ध रूक्ष ये आठ है तथा चक्षुइन्द्रिय के नीला, पीला, काला, लाल और सफेद ये पॉच है घ्राण इन्द्रिय के सुगन्ध और दुर्गगन्ध दो हैं कर्ण इन्द्रिय के विषय षडज वृषभ गांधार मध्यम पचम धैतव और निषाद ये सात स्वर तथा अनेक विकल्प रूप एक मन का विषय इस प्रकार अट्टाईश पंचेन्द्रियों के विषय है। इन इन्द्रियों के विषयों का जिन्होंने त्याग कर दिया है तथा सब इच्छाओ को रोक दिया है विषय वासनाओं से रहित है। आरम्भ-खेती करना पानी खीचना हल जोतना, अग्नि जलाना, जमीन खोदना, अग्नि बुझावना, पानी फेकना, आटा पीसना, बुहारी देना, कूटना तथा व्यापार करना पेडों को तोड़ना, काटना, विदारण करना, इत्यादि सब आरम्भ ही है और भी आरम्भ के भेद जैसे मकान बनवाना, मन्दिर बनवाना बाग

बगीचा घास का खोदना फसल का काटना तोडना ये सब आरम्भ के प्रकार है। इनके साधनो के जुटाने (सरम्भ है) के भाव होना सो समारम्भ उनके जुटाने में लग जाना समारम्भ है उनके तथा उनसे कार्य करने लग जाना ये आररम्भ है जैसे खेत का जोतना मशीनरी चलाना इत्यादि इनका जिन्होने मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना पूर्वक त्याग कर दिया है। कषायो से होने वाले आरम्भ का भी त्याग कर दिया है। जो नित्य ही ससार के दुःखो से भय-भीत हैं तथा ध्यान, अध्ययन, स्वाध्याय में निस्प्रमाद रत रहते है तथा छह आवश्यको का का पालन करते है जो शुद्धात्मा की अनुभूति मे स्थित होने से जिनको दिन-रात का कुछ भी मालूम नही पडता है। वे वैराग्य भावनाओ से युक्त होते है तथा अठारह हजार शीलो का पालन करते है। जो ससार के दु:खो से भय-भीत हैं तथा सबसे बड़ा नरक गति का दु:ख है उसको जान कर जो जगल के वासी बन गये हैं वे साधु परमेष्ठी है।१०५॥

ध्यायन्ति शुद्ध निश्चय रत्नत्रयैव संयुक्तः ॥
अशारागपिशाचः मा प्रशश्यते च निर्ग्रन्था ॥१०६॥
मूलोत्तर गुणैर्युक्ताश्च विषयविरताः साधुः।
भवन्ति वन्दनीयाः खे ऋद्धीश्वरार्महाभट्टाः ॥१०७॥

जो सदा निश्चय रत्नत्रय का ही ध्यान करते है रत्नत्रय रूप अपने आत्मा मे आत्मा को देखते है जिनके पास मे आशा रूपी पिशाच नही है वही निर्ग्रन्थ मुनिराज ही प्रशसनीय है। जो अनेक ऋद्धियो के स्वामी होते है परन्तु वे उनसे कोई काम नही लेते है। जो उपसर्ग और परीषह जीतने मे समर्थ हैं तथा कर्मो का नाश करने मे महासूर वीर है वे कायरता से रहित होते हैं। जो मूल गुण व उत्तर गुणों से युक्त है और पचेन्द्रियों के विषयो तथा आरम्भ से रहित है वही साधू तीनों लोकों के द्वारा वन्दनीय है। तथा आषा और राग ही संसार में दु.ख व वैर का कारण है ऐसा जानकर त्याग कर दिया है वे साधु परमेष्ठी लोक मे पूज्यनीय हैं। कर्मरूपी वैरियो को नाश करने को योघा की भाति सन्मुख खड़े हुए हैं तथा कर्मो को नाश कर रहे है। जिन योगीश्वरो को देखकर कामदेव दूर से ही भाग गया अथवा कामदेव को मार कर भगा दिया है वे साधुवदनीय है इस प्रकार साधु परमेष्ठी का सक्षेप से स्वरूप कहा है। १०६ । १०७ ॥

आगे जिनविम्व का स्वरूप कहते है।

सहस्राष्टौ विभान्ति नख शिखान्त सर्वांगे प्रातिहार्याः
समचतुर सस्थान वज्र वृषभनाराच संहननं ॥ १०८॥
विकषितमुख वीतराग मुद्रा हरतिचित्तं सकाश च।
अष्ट द्रव्यैर्युक्तैश्च चैत्यप्रतिमा विशालम् ॥ १०९॥

जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा आलौकिक सुन्दरता को लिये हुए होती है जिनेन्द्र भगवान व अरहत भगवान का जो बिम्व है वह समचतुर सस्थान तथा ऐसी होना चाहिए कि मानो वज्रवृषभनाराचसंहनन ही प्रत्यक्ष हो। आठ प्रातिहार्य सहित हो तथा जिनके पैरो से लेकर शिर की चोटी पर्यन्त १००८ एक हजार आठ लक्षण चिन्हो से अलकृत हो जिनमे

एक सौ आठ महा चिन्ह तथा ९०० नौ सौ व्यंजन लाँछन होते है। जिस प्रतिभा का मुख खिले हुए कमल की भाँति होता है अथवा जिसके चेहरे को देख मन अत्यन्त प्रसन्न और आकुलता से रहित हो जावे ऐसी हसमुख जिन प्रतिमा होना चाहिए। जो प्रतिमा साक्षात् रूप ले वीतराग भाव को प्रकट कर रही हो अथवा वोतराग मुद्रा को धारण कर रही हो। जो भव्य जीवों के मन को आकर्षण करती हो। जिसके पास मे आठ प्रतिहार्य तथा आठ मंगल द्रव्यें विद्यमान हों। ऐसी जिन प्रतिमा यक्ष यक्षिणी सहित हो वह जिन प्रतिमा कहलाती है तथा जिसकी दृष्टि नासिका के ऊपर गिरती हो। यह पर्यकाशन या खड़गासन से विराजमान हो। जिसको देख दुःखी जीवों का दुःख नाश हो जावे मन प्रफुल्लित हो जावे जिसके दर्शन करने मात्र से वीतराग भाव जाग्रत हो जावे ऐसी जिन प्रतिमा ही श्रेष्ठ है। अथवा विशाल है इन कहे गये गुण व लाँछनो से रहित जिन विम्ब न चेत्य नहीं कहलाते है।

विशेष:—जिन प्रतिमायें एक हजार चिन्ह अथवा लक्षणों से जो दैदीप्यमान हो रही है तथा जिसका आकार समचतुर संस्थान रूप है जो साक्षात् यह बताती है कि अरहंत भगवान समवशरण में ही विराज रहे है। जिसके अशोक वृक्ष प्रतिहार्य जिसके ऊपर पुष्प वृष्टि देवों कृत हो रहे हों दोनों तरफ चमर शोभायमान हो भगवान के पीछे भामण्डल विराजमान हो दुदुभिनाद अथवा नगाडा या मृदंग हो तथा सिहासन तथा रातपत्र (दर्पण) ये आठ प्रातिहार्यो से संपन्न होनी चाहिए। तथा आठ मगल द्रव्य झारी, कलश दर्पण, चामर, ध्वजा, ताल, व्यंजन, (पखा) छत्र, जिन धूपदान ये आठ मंगल द्रव्य है। जिन प्रतिमा का मुख ऐसा होना चाहिए कि मानो प्रतिमा जी दर्शनार्थी को देखकर हसने लग गई हों। तथा जो अपनी बीतराग छवि के द्वारा सब भव्य जीवों के मनको आकर्षित करती हो। ऐसी जिन प्रतिमा ही गुणो से युक्त विषाल और श्रेष्ठ कही गयी है। वह तदाकार सब गुणो से सहित है जिसकी वदना देव दानव मानव त्रियच सब ही करते है तथा अपने भावो की कलुषता को छोड़ देते है और प्रफुल्लित मन हो जाता है। तथा जिसके दर्शन कर भव्य प्राणी पुण्योपार्जन कर लेते है। मूर्ति के निर्माण करने में एक वात का लक्ष्य रखने योग्य है प्रथम तो मूर्ति का समचतुर सस्थान हो दूसरे मूर्ति का मुख खिले हुए कमल के समान हो तीसरे मूर्ति ऊन अगुल के प्रमाण हो समागुल की मूर्ति आगम मे अच्छा नही कही गई है। मूर्ति एक अगुल तीन पाँच सात नौ ग्यारह इत्यादि ऊन होना चाहिए वही शुभ आगम में कही गई। मूर्ति एक सौ आठ महा चिन्हो से अलकृत होनी चाहिए मूर्ति के सर्वांग मे वीतरागता ही दिखाई देती हो। जिसकी आकृति को देख कर कुभावो से रहित होकर वैराग्य मय वन जावे। तथा निर्ग्रन्थ नासिका दृष्टि नेत्र खुले भी न हों वद भी न हो मानो ध्यान अवस्था मे ही विराजमान है। जिसको देख ऐसा प्रतीत हो कि साक्षात् केवली भगवान ही समवशरण में विराज रहे है एसी मूर्ति की भक्ति करने में पापों की छूट हो जाते है और विशेष पुण्य बध होता है। तथा सम्यक्त्व गुण की वृद्धि होती है। इस मूर्ति की वदना स्तवन करना ही चैत्य वंदना है।१०८।१०९॥

आगे जिन धर्म का स्वरूप कहते है।

जीवानॉरक्षणार्थं भगवदुपदिशं साम्यभावं दया च।
चरित्रैवं च धर्मः निलय परम कारूण्य भाव सदैव,
सम्यक्त्वं सार धर्मेषु गुण उदधि एवं स्वभावात्मनश्च ॥
मालभन्तेविरोध क्वचिदपि सति षट्काय हिंसादि पाप ॥ ११० ॥

यह धर्म जिनेन्द्र सर्वज्ञ वीतराग का कहा हुआ सब जोवो की रक्षा के लिए है। धर्म वही है जो समीचीन हो ससारी प्राणियो को सब प्रकार से सरक्षण करता हो। तथा दयामय धर्म है साम्यभाव रूप जो चरित्र है वह धर्म परस्पर के बैर भाव द्वेष कषायो का नाश करने वाला है और परस्पर में प्रीति का बर्धक है तथा सुख स्वरूप है सम्यक्चारित्र निश्चय नय कर धर्म है क्योकि यह धर्म एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय प्राणियो की विराधना पीड़ा से तथा मोह क्षोभ से रहित है वह निश्चय व्यवहार के भेद से दो प्रकार का है। व्यवहार से सम्यक् ज्ञान पूर्वक पचमहाव्रत अहिंसा महाव्रत सत्य महाव्रत आचौर्य महाव्रत ब्रह्मचर्य महाव्रत परिग्रह त्याग व्रत तथा ईर्या समिति, भाषा, समिति, ऐसणा समिति आदान निक्षेपण समिति, उच्चार समिति तथा मन गुप्ति, वचन गुप्ति, इस प्रकार का है। तथा अशुभ भावो का त्याग कर शुभ भावो मे प्रवृत्ति करना यह चरित्र है वह चरित्र अणुव्रत और महाव्रतो के भेद से दो प्रकार का है। एक देश सयम दूसरा सकल सयम रूप है तथा निश्चय नय से ज्ञान का सम्यक्त्व रूप होना जिनका श्रद्धान हुआ है उनका ही ज्ञान होना तथा राग द्वेष कषाय भावो को जिस क्रिया से दूर किया जाय ऐसे क्रिया रूप ज्ञान का परिणमन् होना सो निश्चय चारित्र धर्म है। यह चरित्र धर्म समभाव रूप अपना ज्ञान मय स्वभाव है अथवा धर्म है जिन्होने पृथ्वी काय, जल काय, वायुकाय, अग्नि काय, वनस्पति काय तथा इतर निगोद और नित्यनिगोद की सात सात लक्षयोनियो को जान लिया है तथा वनस्पति काय की १० लक्ष तथा देव नारकी त्रियचादि की चार-चार लक्ष योनि तथा मनुष्यो की १४ लाख योनियो को जान लिया है तथा सूक्ष्म वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त दो इन्द्रियो तीन चार इन्द्रियो सैनी असैनी पचेन्द्रिय पर्याप्त, अपर्याप्त रूप चौदह जीव समासो को जानकर विराधना भाव का त्याग कर दिया है तथा करुणाभाव से हृदय भीगा हुआ है वे अहिंसा महाव्रत के धारी होते है। जिन्होने बारह प्रकार के असत्य बचन का मन, वचन, काय, कृत कारित, अनुमोदन, से त्याग कर दिया है व सत्य महाव्रत के धारी है। वे असत्य बचन अम्य-ख्यान, वचन, कलहवचन, पैशून्य वचन, असबन्धप्रलाप वचन रति उत्पादक वचन उपधि वचन, निकृति, वचन, अप्रति वंचन, मोष वचन, सम्यक्दर्शन वचन, मिथ्यादर्शन वचन ये हैं। इनकी विशेष व्याख्या चरित्राकिधार मे की जायगी। सत्य वचन के दश भेद है। नाम सत्य, रूप, सत्य, प्रतीति सत्य, स्थापना सत्य, सस्कृति सत्य, सयोजना सत्य, जनपद सत्य, देश सत्य, भाव सत्य, समय सत्य ये दश सत्य के भेद है। बारह प्रकार के असत्य का जो त्याग करता है उसके दूसरा महाव्रत होता है। जो भूली विसरी पडी विना दी हुई वस्तु को कृत कारित अनुमोदना से ग्रहण नही करता है न करने का आदेश देता है। न लेते हुए ही

अच्छा कहता है वह आचौर्य महाव्रत का धारी भव्य है। तथा मन वचन काय से भोग्रहण भाव नही करता है उसके तीसरा महाव्रत होता है। जो देवांगना तथा त्रियंच स्त्री मनुष्यों स्त्रियों का रूप वर्ण्य भोग उपयोग गीत नृत्य तथा ध्वनि भी नही सुनता है न पूर्व में भोगे गये भोगों को ही याद करता है न काष्ठ स्त्री शिला स्त्री चित्र स्त्री इत्यादि स्त्रियों में दृष्टि डालता है। न उनके हाव भाव को ही देखता उनका मन वचन काय व कृत कारित अनुमोदना से त्याग करता है उसके चौथा महाव्रत होता है। तथा जिसने अन्तरंग व परिग्रह वाह्य परिग्रहों का मन वचन कार्य से तथा कृत कारित अनुमोदनापूर्वक सब परिग्रह का त्याग कर दिया है उसके ही पाँचवाँ महाव्रत होता है। तथा इष्ट अनिष्ट पदार्थों से मूर्छा भाव का त्याग करना ही पाँचवाँ महाव्रत है। पाँच समिति ईर्या समिति भाषा समिति, ऐसणा समिति, आदावल निक्षेपर्ण समिति व्यत्सर्ग समिति ये पाँच समितिया है। जो दिन में प्राशुक मार्ग से गमन करता हुआ एकेन्द्रियादि पचेन्द्रिय जीवों की विराधना नही करता हुआ सावधानी से अपने सामने की चार हाथ प्रमाण भूमि को देख कर चलता है उसके ईर्या पथ होता है यह इर्या समिति है। भाषा कटुक कठोर निष्ठुर क्रोध, मान, माया लोभ, रूप अशुभ वचन नही बोलता है और हित मित प्रिय वचन बोलता है उसके भाषा समिति होती है। जो आहार के ४६ अन्तरायो को टाल कर ग्रहण करता है तथा आहार शुद्ध प्रासुक तथा उत्पादन दोष उद्‌गम दोष रहित मल दोष रहित जो किसी देवी या यक्ष को पूजा के लिए न बना हुआ हो किसी मिथ्यादृष्टि के लिये न बना हो जोकि सचित्त अचित्त मिला हुआ न हो। जो दासी नौकरो के हाथ का न बना हो देने वाला दास न हो ज मुनिराज के निमित्त सेन बनाया गया हो जो परिवर्तन सचित्तन हो जो यचित्र सचित्ताो चित्त मिश्रण न हो तथा त्याग किया हुआ न हो ऐसे दोपो से रहित आहार को शोधकर देख कर लेना व लालसा और प्रमाद को छोड़ कर भोजन ग्रहण करना। जिसमें त्रस व स्थावर जीवों को कोई प्रकार की बाधा नही पहुँचती हो ऐसे प्राशुक आहार का ग्रहण करना ऐषणा समिति है।

आदान निक्षेपण समिति पुस्तक कमण्डल चटाई पाटा तथा स्वशरोर को उठते समय बैठते समय व लेटते समय कोमल पिच्छि से मार्जन कर उठाना और रखना और मार्जन करके ही अच्छी तरह से देखकर उठाना चाहिए ताकि किसी प्रकार से जीवों को विराधना व बाधा न हो। उत्सर्ग समिति बलगम मूत्रमल ,व विष्टा मल जहाँ क्षेपण करना हो तथा निघाण नाक का मल जहाँ डालना हो वहा की जमीन को भली प्रकार देख सोध कर ही क्षेपण करना ताकि त्रश और स्थवरों को वाधा उत्पन्न न हो। यदि रात्रि में मल क्षेपण का मौका आवे तो प्रथम पीक्षी से बोध करे पीछे अपने हाथ को उल्टाकर उस स्थान को स्पर्श करो कि यदि कोई त्रशकायक जीव होंगे तो सचार करते हुए मालूम पड़ जाये जब ज्ञात हो जावे कि निर्जन्तु स्थान है ऐसा जान कर मलादि क्षेपण करना। यह उत्सर्ग समिति होती है।

मनोगुप्ति, वचनोगुप्ति, काय, गुप्ति, मनोगुप्ति आर्तध्यान रौद्रध्यान इसलोक सल्य

परलोक सल्य तथा आहार भय मैथुन और परिग्रह सज्ञा इनके प्रति जो चार प्रकार का इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग वेदना अनुभव और निदान वध ये चार प्रकार के आर्तध्यान क्रोध, मान माया लोभ कषायो का रोकना तथा रागद्वेष रूप मन की प्रवृत्ति को रोक कर धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान में लगाना यह मन गुप्ति है। इष्ट वियोग नाम का आर्तध्यान स्त्री पुत्र माता पिता जमाई इत्यादि का मरण हो जाने पर या असयम धारण करने पर जो ध्यान होता वह इष्ट वियोग नाम का आर्तध्यान है। तथा इष्ट वस्तु के न मिलने पर अपमान होने पर जो ध्यान होता है उससे कषाये बढ जाती है सक्लिष्ट परिणाम हो जाते है। यह इष्ट वियोग नाम का आर्त ध्यान है। अनिष्ट संयोग अपने मन के मुताविक पुत्र व स्त्री का न मिलना तथा अपने मन के मुताविक भोग उपभोग की वस्तुओ की प्राप्ति न होना। तथा वैरी अनिष्ट वस्तुओ का सयोग हो जाना तथा उसका बहिष्कार करने का प्रयत्न किया जाता है वह अनिष्ट सयोग नाम का आर्तध्यान है। उद्वेग आकुलता का कारण है जिससे वैर द्वेष की वृद्धि होने लग जाती है परिणामो मे सक्लिप्टता बढ जाती है। यह अनिष्ट सयोग नाम का आर्तध्यान है।

वेदना नाम का आर्तध्यान अपने व अन्य सम्बन्धियो के शरीर में रोग हो जानें पर उसके दूर करनें रूप प्रयत्न करना वैद्य हकीम डाक्टर आदि को बुलाना तथा खोज करनें का प्रयत्न करना प्रयत्न करने पर भी जब प्राप्त न हो अथवा रोग दूर न हो हाय मेरे वेदना है अरे मेरी सुनो अरे मेरा कोई देखने वाला भी नही अरे मरा अरे मरा इत्यादि अशुभ वेदना युक्त परिणामो से सक्लिष्टता का होना ही वेदना नाम का आर्त ध्यान है। जिसमें रोता है चिल्लाता है कुछ-कुछ अपशब्दो का भी ध्यान आ जाता इन भावों के होने पर जो होता है वह वेदना नाम का ध्यान आर्तध्यान है। अथवा चोट लग जाने कोढ हो जानें जल जाने इत्यादि कारणो से वेदना होती है। भगवान की सेवा पूजा दान व भक्ति और सयम तप का फल मुझे ऐसा मिलेगा कि मैं दीर्घ जीवी होऊँ राजा होऊँ तथा देव होऊँ देवो के वैभव को पाऊँ या विद्याधर बन जाऊँ ऐसे भावो व भावनाओ का होना यह निदान वध नाम का आर्त ध्यान है। ये सब ही ध्यान अशुभ भाव और अशुभ भावनाओ के कारण है। हिसा मे आनन्द असत्य में आनन्द चोरी करनें में आनन्द परिग्रह मे आनन्द मान ये चार रौद्रध्यान है इन सवको जानकर त्याग करना मनगुप्ति है तथा कृष्ण नील कपोत इन तीनो लेश्याओ का त्याग करना इत्यादि।

वचन गुप्ति—स्त्री कथा, राष्ट्र कथा, भोजन कथा, राज कथा चोर कथा, वैर कथा पर पाखंडियो की कथा. देश कथा, भाषा कथा, अकथा, विकथा पर पैसून्य कथा, निष्ठुर कथा, कदर्प कथा, कुकृत्य कथा, मुख से वकवाद करने रूप कथाओ का त्याग कर मौन धारण करना कुवचनो का प्रयोग नही करना अपने वचनो को सकुचित करना यह वचन गुप्ति है। तथा राग द्वेष व उद्वेग बढने के कारण हो ऐसे वचनो का त्याग कर मौन धारण कर वहा के वही रोक देना यह वचन गुप्ति है। परके प्रति जो वचन विन्यास हो गया है उसको द्रव्य वचन का तो मौन से तथा भाव वचन को ध्यान से रोक देना यह वचन गुप्ति है।

काय गुप्ति जो शरीर और मन के सम्बन्ध से होने वाली संकोच विस्तार रूप जो क्रिया चलती है जो दुष्कर्म का कारण है उसका त्याग कर आत्म ध्यान में लीन होना तथा काय को हलन चलन क्रिया का रोक देना यह काय गुप्ति है। अथवा शरीर से ममत्व त्याग कर निज आत्म स्वभाव में चित्त का स्थिर करना यह काय गुप्ति है यह तेरह प्रकार या चारित्र धर्म है। समता का धारण करना धर्म है यह समता व करुणा रूप ही है अहिंसा मय ही है तथा जहाँ समता भाव नहीं वहां दया व चरित्र धर्म नही दया रूप धर्म का अलकार ही चरित्र है सदा करुणा भाव ही पहला है सर्व धर्मों में श्रेष्ठ है वह सम्यक्त्वादि सब गुणों का समुद्र है तथा आत्मा का भी स्वाभाविक धर्म है यह अन्य हीन स्थानों में नही रह जाता। धर्म के दश भेद उत्तमक्षमादि कहे है तप को भी धर्म कहा है इस प्रकार अनेक नाम लेकर कहे गये सब धर्म एक है भगवान के कहे हुए धर्मों में कोई वाधा उत्पन्न नही होती है जितने धर्म है वे सब दया स्वरूप है। जिस धर्म में छह काय के जीवों की विराधना रूप हिंसा होती है वह धर्म जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ नही हो सकता है। जिनेन्द्र भगवान के मार्ग में धर्म में दया ही प्रधान है। प्रथम अपने ऊपर दया पीछे दूसरे जीवो पर दया। पृथ्वी काय, जल काय, अग्नि काय, वायु काय, वनस्पति काय तथा (दो इन्द्रिय) त्रशकायक जीव दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय ये सब पर्याप्त अपर्याप्तक होते है पचेन्द्रिय असैनी और सेनी दो प्रकार के होते है। एक इन्द्रिय के चार प्राण होते है दो इन्द्रिय के छह प्राण तीन इन्द्रिय के सात चार इन्द्रिय के आठ असैनी पचेन्द्रिय के नौ सेनी पचन्द्रिय के दश प्राण होते हैं। वे प्राण एकेन्द्रिय के आयुवल कायवल, स्वास्वोच्छ् और एक स्पर्श इन्द्रिय। दो इन्द्रिय के छह प्राण एक भाषा स्पर्श रसना इन्द्रिय बढ़ जाती है अन्य के एक-एक वृद्धि होती जाती है। इन जीवों को जानकर विराधना नही करना यह जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ अनेक नाम वाला धर्म है। जहाँ जीवों को विराधना रूप हिसा होती है वहाँ धर्म नही है वहाँ कुधर्म अथवा आर्त रौद्र ध्यान रूप पाप का कारण है वह दुष्कर्म पाप ही है धर्म तो वहीं सत्य जो समीचीन है वही धर्म जिनेन्द्र का कहा हुआ है। वह अनेकान्त मय धर्म है। जिनके हृदय कमल मे दया नही है तथा जिनके पास दया रूपी वैभव नही है उनके तो दु.ख ही दुख है। ११०।

सुखं स्वोच्छा प्राणी नक्वचिदपि न वांच्छन्ति मनुजाः।
अशर्मोद्योतं किंचिदपि न तु भाव्यन्तु समये।
दयायाविद्यन्ते स्वहृदय सरोजे व विभवं।
कथं सौख्यंलोके सुकृतमविना भाविकरुणा ।।१११।।

जितने एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय प्राणी हैं वे सब दुखों से डरते है और वे सुख की कामना करते हैं। इससे भिन्न कुछ भी नहीं चाहते। परन्तु सुख की प्राप्ति नही होती और दुःख प्राप्त हो जाता है। जब पाप कर्म रूप हिंसा प्राणिवध करता है तब विचार नहीं करता है कि ये पाप कर्म कर रहा हूं उसका ही फल मुझे भोगना पडेगा जब फल काल आ जाता है तब भोगते रोता है। कभी भी अपने परके प्राणों का रक्षण करने का भाव ही नही (आता) करता है जहाँ दया नही वहाँ पुण्य कैसे हो सकता है जहाँ पुण्य नही वहां सुख कैसे हो सकता

है। जिनके हृदय कमल मे, दया नही है। और दया का वैभव भी नही है उनको सुख की प्राप्ति नही हो सकती क्योकि दया ही पुण्य का कारण है पुण्य से लक्ष्मी व भोग उपभोग की वस्तुये प्राप्त होती है करुणा भाव हृदय मे नही है पुण्य का अविनाभावी सम्बन्ध करुणा से है।

विशेष—विषयाध हिंसा भूठ चोरी कुशील और परिग्रह व कुलेश्याओ में आसक्त मोही अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव धर्म के निमित्त धर्म की इच्छा कर व सुख की इच्छा करके तथा धन धान्य की प्राप्ति के लिए व रोग ग्रहो की शान्ति के लिए देवी देवभूमिया आदि को भेंट मे भेड बकरी कबूतर मुर्गा इत्यादि जानवरो का मार-मार कर रक्त बहा देता है तथा जीवित भी जलती हुई अग्नि मे डाल देता है तथा बलि चढा देता है। जीवो का नाश कर के निर्दय हृदय वाला सुख की अभिलाषा करता है जिस पाप से पुन. अत्यन्त दुःखो के सागर मे पड जाता है। कोई निर्दयी अनेक प्रकार से पुत्र स्त्री की प्राप्ति करने के लिए देवी देवता व कुल देवी की व भूमिया भैरव न नाहर सिंह आदि देवो की पूजा करता है। उनकी पूजा कर अन्त मे जीव हिंसा करता है और सुख की कामना करता है। आचार्य कहते है कि दया रहित प्राणी को सुख की प्राप्ति नही।

इसलिए दया धर्म ही जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ अनेकान्त मय धर्म है वही सुख देने वाला है और दुखो को नाश करने वाला है।१११॥

धर्मो द्रव्यस्वभावैव विना धर्मो न द्रव्याणि
धर्मैवस्वगुणाः खलु भणन्ति मुनि पुंगवैः ॥११२॥
सामान्य खलु धर्मो वा अनेकान्तात्मकं नित्यम्
परिणमन्ति माऽन्योन्ये उत्पाद् व्यय ध्रुवात्मकम् ॥११३॥

द्रव्यो के स्वभाव को धर्म कहते है धर्म के बिना कोई ऐसा द्रव्य नही है कि जिसमे धर्म न हो धर्म द्रव्य का स्वगुण है क्योकि गुणो को छोडकर द्रव्य नही और द्रव्य को छोड़कर गुण धर्म नही रहते है गुणो के समूह का नाम ही द्रव्य है। द्रव्य अपने अपने सामान्य और विशेष गुण धर्मो युक्त होती है। और द्रव्ये अनेकान्त मय धर्म की धारक है तथा अनन्त गुण धर्मो का पिण्ड ही द्रव्य है वे अनेक धर्मो से युक्त अनादि काल से स्थित है और अनंत काल तक स्थित अपनी-अपनी सत्ता को लिए हुए विद्यमान रहेगी। वे द्रव्ये अपने अपने गुणो मे ही परिणमन करती रहती हैं। परन्तु वे द्रव्य एक दूसरी द्रव्य के रूप मे व गुणो में परिणमन नही करती है न अपने गुणो को ही छोड़ती है वे द्रव्ये आकाश प्रदेश में एक क्षेत्रावगाही होते हुए भी तथा एक प्रदेश मे रहती हुई भी अविरोध रूप से अपने अपने स्वभाव मे स्थित रहती हैं। वे द्रव्ये उत्पाद व्यय और ध्रौव्यात्मक है ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। जिनमे अनेकान्ता-त्मक भाव पाया जाता है वे ही द्रव्ये हो सकतो है उनका ही प्रमाण और नयो मे सिद्धी होती है। तथा वे सब द्रव्ये सामान्य गुण तथा विशेष गुणो को धारण करती हुई लोक में विद्यमान रहती है जहा ये द्रव्ये देखने में आती है उसका ही नाम लोक है। जो गुण एक द्रव्य को छोड़ कर दूसरे द्रव्य में न पाये जाये उनको विशेष गुण ऐसी सज्ञा है। जो गुण सामान्य से सब

द्रव्यो मे पाये जाते है वे गुण सामान्य कहलाते है। जितनी द्रव्य है वे सव सामान्य और विशेष गुणो से प्रतिष्ठित है। तथा ये द्रव्य कोई भी अवस्था विशेष होने पर भी एक सामान्य गुण वाली ही रह जावें तो विशेष गुणों के अभाव से द्रव्यत्वपना वन नही सकता है, यदि विशेष गुणों से युक्त रह जावे और सामान्य गुण नहीं रह जावे तो भी द्रव्यत्वपना वन नही सकता। यदि हम यह मान लेते है कि विशेष गुणो वाली द्रव्य है तो बिना सामान्य के विशेष गुण कैसे जाने जा सकते है कि जीव द्रव्य के ये विशेष गुण है तथा पुद्गल द्रव्य के ये विशेष है उसी प्रकार धर्म अधर्म और आकाश तथा काल ये कैसे जाने जावेगे। यदि हम यह मान लेते है कि सामान्य गुण वाली द्रव्य है परन्तु बिना विशेष के जाने बिना सामान्य गुण भी नही जाने जा सकते है। इसलिए द्रव्ये सामान्य और विशेषात्म मानने में कोई विरोध नही प्राप्त होता है। यदि सामान्य या विशेषदोनों प्रकार के गुणों में एक को भी छोड़ दिया जायेगा तो द्रव्य की सत्ता को सिद्धि नहीं होगी। और वे सब एक हो जावेंगी तब शकर नाम का महादोष उत्पन्न होगा। तथा जीव व अजीव सव द्रव्यों का एक पिण्ड बध जायेगा और जड़ वस्तुये चेतन हो जायेंगी और चेतन वस्तुये अचेतन जड़ बन जायेगी। यहां कोई प्रश्न करता है कि जो आपने उत्पाद व्यय और ध्रौव्य कहा है सो कहना भी ठीक नही ? क्योकि उत्पाद और व्यय कहने से ध्रौव्यपना आप ही बन जाता है ? इसका समाधान यह कि जो पूर्व पर्याय का विनाश हुआ और उत्तर पर्याय की उत्पत्ति नही बन सकती जब कोई हमारे सामने धौव्य रूप होगी तभी उसमें उत्पाद और व्यय दोनों बन जायेंगे। यदि ध्रौव्य नहीं है तब व्यय किसमे और उत्पाद किसमें होगा ? ऐसा प्रश्न उपस्थिन होगा। तब हमको ध्रौव्य द्रव्यपना मानना ही होगा। यदि ध्रौव्य ही आप मानते है तो हमें कोई शंका नही परन्तु उत्पाद की क्या आवश्यकता हागी ? यदि उसमें उत्पाद नही माना जाय और व्यय भी न माना जाय तब द्रव्य एक पिण्ड रूप होगी यह भी कहना ठीक नहीं। यदि व्यय भी माने तो बिना उत्पाद के व्यय किसका होगा। यदि व्यय भी ही होता रहे तो द्रव्य कहाँ से आवेगा। यदि उत्पाद ही होता रहे तो वह कहां समावेगा और द्रव्य की स्थिति कैसे रह जायेगी ? इस लिये द्रव्य उत्पाद व्यय और ध्रौव्यात्मक कही है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का प्रवचन है।११२।११३॥

सम्यक्त्वं ज्ञानमेव दर्शनं चारित्रं चेतनासुखं।
स्पर्श रसं गंधं च वर्ण गति स्थित्यिवगहनं ॥११४॥
वर्तना 'लक्षणं कालं गुण धर्मश्च सद्भावं।
धर्माधर्मौच जीवाऽसंख्यात प्रदेश रूपित्रि ॥११५॥

जीव के विशेष गुण सम्यक्त्व दर्शन, ज्ञान, चारित्र, चेतना, और सुख ये छह है तथा पुद्गल के इन को छोडकर ८ प्रकार के स्पर्श एक, रस ५, वर्ण ५, गंध दो ये विशेष गुण पुद्गल द्रव्य के है। अधर्म द्रव्य के स्थिति करण धर्म द्रव्य का गमन में सहायक होना आकाश का अवगाहन गुण है तथा काल का परिवर्तन करना ये विशेष गुण सव द्रव्यों के है। जीव व धर्म अधर्म इनके प्रदेश असंख्यात और अखण्ड है तथा कहे गये विशेष गुण अपने अपने द्रव्यों को

छोड़कर नही रहते है वे गुण सब ही अपनी पर्यायों से युक्त है अथवा गुणों में भी पर्यायें होती रहती है वे पर्यायें अनेक प्रकार होती है। एक अर्थ पर्याय दूसरी व्यजन पर्याय ये पर्यायें भी दो-दो भेद वाली होती हैं एक स्वभाव अर्थ पर्याय, एक विभाव अर्थ पर्याय, एक स्वभाव व्यजन पर्याय, एक विभाव व्यजन पर्याय के भेद से कही गयी है। जो रूपी पुद्गल द्रव्य है वह तीन भेद वाला है संख्यात असख्यात और अनत परमाणू वाला है। दो अणु से लेकर सख्यात अणुओं का एक स्कध असख्यात परमाणुओं का एक स्कध तथा अनन्त पुद्गलो का एक स्कध इस प्रकार तीन भेद वाला पुद्गल द्रव्य है। गति स्थिति हेतत्व वर्तना हेतत्व ये सब धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य और काल द्रव्य के गुण जानना चाहिये। ११४। ११५॥

आकाशस्यानंता अनतानंता ऽ सख्याताः प्रदेशाः।
कालस्याणुरिव सदा रत्नराशिवल्लोके स्थिताः ॥११६॥

आकाश द्रव्य के असख्यात तथा अनतानत प्रदेश है वे लोक तथा अलोकाकाश में स्थित है। काल द्रव्य एक-एक अणु रूप है वे अणु लोकाकाश के जितने प्रदेश है उतने है वे कालाणु आकाश के एक-एक प्रदेश पर स्थित हैं वे काल द्रव्य के अणु एक दूसरे से मिलते नही है भिन्न भिन्न ही रहते है जिस प्रकार रत्नों की राशि एक में एक मिलतीन ही है उसी प्रकार काल द्रव्य असख्यात प्रदेश लोकाकाश में सर्वत्र विद्यमान रहता है। इस प्रकार सब द्रव्यो की स्थिति कही गई है। ये द्रव्य सब ही अपने अपने गुणो से युक्त लोक में देखी जाती है। तथा लोक का बनाने वाला या बिगाडने वाला कोई भी उत्पन्न नही हुआ न होगा यह लोक अनिधन है। ये सब द्रव्य परिणमन शील है तथा अनेकान्तमय है इन मे परस्पर एक में ही दो विरोधी धर्म रहते हुए भी विरोध को नही प्राप्त होते है। अनेकान्तमय तथा नित्य ये पहले कह आये है ११३ श्लोक मे इन द्रव्यो में अपने अपने गुणो में गुण से गुणान्तर तथा पर्याय से पर्यान्तर होते रहते है। इन मे गुण सक्रमण होता है वह छह गुण हानि तथा छह गुण वृद्धि होती रहती है यह गुण हानि वृद्धि सतत निरतर चलती रहती है यही द्रव्यो का स्वभाव है ॥११६॥

आगे द्रव्यो के सामान्य गुण कहते है।

अस्तित्वं वस्तुत्व अगुरु लघु द्रव्य प्रमेत्व च।
चेतनाचेतन गुणाः मूर्ता मूर्तित्वं द्रव्येषु ॥११७॥

अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यतत्व, प्रमेयत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तित्व, अमूर्तित्व ऐसे अनन्त गुण है। वे सब गुण सामान्य से द्रव्यो मे कहे गये है वे प्रत्येक द्रव्य मे होते है। जैसे जीव द्रव्य में, अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, चेतनत्व, अमूर्तित्व, प्रदेशत्व ये सामान्य गुण है। पुद्गल द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व प्रमेयत्व, अचेतनत्व, अमूर्तितत्व प्रदेशत्व ये आठ है। धर्म द्रव्य मे अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व, अचेतनत्व, अमूर्तित्व ये आठ है। अधर्म द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशत्व, प्रमेत्व, अचेतनत्व तथा अमूर्तित्व और द्रव्यत्व सब आठ है। आकाश द्रव्य मे भी अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व, अचेतनत्व, अमूर्तित्व, द्रव्यत्व ये आठ है, तथाकाल द्रव्य मे भीजानना चाहिए।

जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी भी नाश न हो उस गुण को अस्तित्व

गुण कहते हैं। जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में क्रिया अर्थ क्रिया होती रहती है उसको वस्तुत्व गुण कहते है। जैसे घड़ा का कार्य जल धारण है। चेतनत्व सामान्य से सिद्ध तथा सब ससारी जीवो में पाया जाता है इसलिए चेतनत्व सामान्य गुण है। रूपित्व गुण पुद्गल द्रव्य में पाया जाता है वे पुद्गल सख्यात असख्यात और अनत है वह सबो में ही पाया जाता है इसलिए रूपित्व गुण सामान्य स्व द्रव्य की अपेक्षा है। अमूर्तित्व यह गुण सामान्य से जीव, धर्म, अधर्म आकाश तथा काल में पाया जाता है यह भी सामान्य गुण है। जिसके निमित्त से द्रव्य एक साथ रह जावे और उत्पाद व्यय होता रहे। और प्रति समय पर्याये वदलती रहे उसको द्रव्यत्व गुण कहते है। जिसमें हमेशा ही अर्थ पर्याय, व्यंजन, पर्याय, गुण पर्याय, वदलती रहती है वही द्रव्यत्व द्रव्य गुण है जिसमें द्रव्य का कोई न कोई रूप से अस्तित्व रह जाता है वह द्रव्यत्व गुण सामान्य है प्रमेयत्व गुण जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय बनी रहे उस गुण को प्रमेत्व गुण कहते है। जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्यों की व्यवस्था ज्यों की त्यों कायम रहे अथवा द्रव्यता कायम बनी रहे। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप न परिणमे। अथवा एक द्रव्य के गुणों का समूह विखर न सके तथा हीना-अधिकता को प्राप्त न हो सके, एक गुण दूसरे रूप न परिण मे एक द्रव्य के अनन्त गुण विखर न जांय अथवा भिन्न-भिन्न न हो जावे उसको अगुरुलघुत्व गुण कहते है। जिस शक्ति को निमित्त से द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य बना रहे उसको प्रदेशत्व गुण कहते है। इस प्रकार द्रव्यों के गुण धर्मो का स्वरूप जिनेन्द्र भगवान के आगम में जैसा कहा गया है उसका संक्षिप्त कथन किया है। ये सामान्य विशेष धर्म द्रव्यों की सभी अवस्थाओं में विद्यमान रहते है वे द्रव्यों को छोड़ कर नही रहते हें। आगे दश धर्मो की व्याख्या की जाती है।

क्षमाऽऽर्जव मार्दवाश्च सत्यशौच संयमस्तपस्त्यागः
आकिञ्चिन्योब्रह्मोत्तम धर्मश्च दशधाः (विकल्पाः) ।। (भवन्ति) ११८ ।।

उत्तम क्षमा, आर्जव, मार्दव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य, और ब्रह्मचर्य ये दश भेद धर्म के है। ये दश विकल्प होते है।

उत्तम क्षमा—अनेक वाह्य कारणों के मिलने पर भी क्रोध कषाय का वेग नही आने देना अथवा क्रोध का न आना यही उत्तम क्षमा धर्म है। जहाँ कोई अनायाश ही लड़ने व ताड़ने व मारने व गाली गलोज करने को व मारपीट करने तथा अगादि को छेदन करने को सम्मुख आगया हो तथा द्रव्य क्षेत्र को अपहरण करने को सन्मुख हो ऐसी अवस्था विशेष मिलने पर भी क्रोध कषाय का आवेश न होना तथा तिरस्कार व बदला आदि लेने व परस्पर लड़ने भाव रूप क्रोध का न होना ही उत्तम क्षमा है। उत्तम क्षमा सब जीवों पर दया करना और मित्रता का भाव रखना तथा द्वेष भाव का त्याग करना व दूसरों के गुणों में अनुराग करना अपने अवगुण दोषों की आलोचना करना तथा दूसरों के गुणों की प्रशंसा करना तथा अन्य के द्वारा दी गई वेदना को कर्म जनित मान कर समभाव धारण करना ही उत्तम क्षमा है। अपने से चाहे निर्वल हो अथवा वलवान हो परन्तु अपने आत्म स्वभाव में क्रोध रूप संक्लिष्टता तक का न होना ही उत्तम क्षमा धर्म है।

उत्तम आर्जव धर्म—अनेक प्रकार के अपमान होने के कारणो के मिल जाने व अनेक प्रकार के बल वैभव ऋद्धि धन इत्यादि के होने पर भी मद अर्थात् घमण्ड नही आने देना अथवा मान कषाय का न आना ही उत्तम आर्जव धर्म कहलाता है। कोई छोटे व बड़े व बुद्धि विशेष का व धन बल तथा रूप वैभव का अहकार न होना तथा अपने से कम वलवान व कुरूप धन हीन ऋद्धि हीन है उनका भी तिरस्कार करने का भाव नही करना। तथा जहाँ कोई अपना अपमान या तिरस्कार करे तो भी अपने मन में खेद का नही होना आर्जव धर्म है (जहा पर किसी का अपमान होता हो या) यदि कोई अपना तिरस्कार करे तो भी मन मे उसका तिरस्कार करने के भावो का नही लाना उसका यथा योग्य आदर सत्कार विनय करना यह आर्जव धर्म है।

मार्दव धर्म—जब कोई वस्तु वस्तुविकार व कोई प्रकार अपवाद मार्ग को प्राप्त हो जाने पर उसको दबाना या कुछ का कुछ कहना कुछ का कुछ वताना कुछ का कुछ करने लगना यह तो माया है सो इस माया का त्याग कर जो गुण वे दोष उनको जैसा का तैसा कहना तथा क्रिया रूप से आचरण मे लाना ही मार्दव धर्म है। जो गुण व दोष हुए हो उन गुण व दोषो का हीन अथवा अधिक या बिलकुल ही नही कहना यह तो माया कषाय परन्तु जैसा का तैसा उच्चारण करना ही सरल भाव है ऋजु भाव है उसका नाम ही उत्तम मार्दव धर्म है।

उत्तम शौच—जिस लोभ कषाय के उदय मे आने पर प्राणी अनेक प्रकार के सचित्त अचित्त सचित्ताचित्त परिग्रहो को एकत्र करता ही रहता है तथा प्रयत्न करता ही रहता है। तथा उसे परिग्रह को प्राप्त करने व उसकी रक्षा करने के लिये हिंसा करता है आरम्भ करता है व नीच दुराचारी व अकुलीन जनो की सेवा करता है। भयानक वीयावान जगल व पहाड़ो की कदराओ मे लोभ कषाय के वशी भूत होकर प्रवेश करता है तथा सिह बाघिरा आदि क्रूर भयानक जीवो से भी भय नही खाता है तथा समुद्र मे प्रवेश कर गोता लगाता है तथा शख शीप मोती इत्यादि निकालता है मरण के भय से भी डरता नही। सिह बघिरा को भी पकड़ खिलाता है। कितना भी परिग्रह प्राप्त हो जावे पर सतोष तो नही होता है। जब वस्तु मिले अथवा न मिले या मिल जाय परन्तु आकुलता रहित जब सतोष हो लोभ कषाय नही होवे तब ही जीव के आत्मा मे शौच धर्म की प्राप्ति होती है। परिग्रह से ममत्व भाव का छूटना व लोभ कषाय से होने वाली आकुलता को संतोष से दूर करना व निराकुलता की प्राप्ति का होना ही उत्तम शौच धर्म है। थोड़ा सा भी परिग्रह होता है वह भी आकुलता पैदा कर देता है तब अन्य की बाते तो दूर रही। जितना परिग्रह अधिक होगा उतनी ही आकुलता बढती जाएगी इसलिए निस्परिग्रह ही सुख का कारण जान कर सतोष करना यह उत्तम शौच धर्म है।

उत्तम सत्य—विपत्ती आने पर व धन धान्य के क्षय होने पर, अपमान होने की संभावना होने पर या अन्य कोई कारण मिल जाने पर अथवा भय के कारण मिलने पर भी जो ज्यो का त्यो वोलता है यह सत्य धर्म है। जो पीडा देने पर व मान की इच्छा व कीर्ति की इच्छा से भी असत्य भाषण नही करता है उसके ही सत्य धर्म होता है।

संयम धर्म—जिन्होंने एकेन्द्रिय पृथ्वी, पानी, आग, हवा, वनस्पति, इनके स्वरूप को जान लिया है तथा दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पांच इन्द्रिय जीवों की व्यवस्था को भली प्रकार जान लिया है उस जानी हुई प्रकार से उन त्रस स्थावर जीवों की विराधना नही करना न करने के भाव ही करना तथा द्रव्य प्राण व भाव प्राणों को जान लिया है कुल कोटि व गुण स्थान योनिस्थान, मार्गणा स्थान, और जीव समासो को जान लिया है उनके द्रव्य प्राण व भाव प्राणो की विराधना नही करना यह उत्तम सयम धम है। यह संयम दो प्रकार का है एक प्राणसयम अथवा इन्द्रिय सयम तथा दूसरा काय सयम। पचेन्द्रिय और मन के विकारी भाव रूप क्रियाओ का रोक देना सो इन्द्रिय सयम है। पंचन्द्रियो के विपय भी भिन्न-भिन्न है उनके विषयो को रोकना तथा मन के द्वारा होने वाले कषाय राग द्वेष रूप आर्तध्यान व रौद्रध्यान का रोकना तथा पचास्थावर एक त्रस कायक जीवो के प्राणो कीविराधना का त्याग करना ही उत्तम सयम है। पृथ्वी कायक, जल कायक, अग्नि कायक, वायु कायक और वनस्पति कायक एक त्रश के भेद दो इन्द्रिय लट शख शीप जोक इत्यादि तीन इन्द्रिय खटमल चीटी मकोड़ा विच्छू खान खजूरा इत्यादि चार इन्द्रिय माखी पतिग भौरा वरं इत्यादि पचेन्द्रिय देवनारकी गाय भेंस सिह इत्यादि व मनुष्य ये सब छह काय के प्राणियो की विराधना का त्याग तथा पचेन्द्रियो और मन की क्रियाये और विषयो का रोकना ही सयम है तथा अपने भाव प्राण व द्रव्य प्राणो की विराधना न होने देना सयम है अथवा अपने भाव प्राणो की विराधना करने वाले अपने कषाय और मिथ्यात्व है इनको ही असयम कहते है इनको निकाल कर दूर कर देना ही उत्तम संयम है।

उत्तम तप—सब पंचेन्द्रिय की भोग और उपभोग की इच्छायो का रोक देना तथा दुर्भावनाओं को रोक देना व कषायो का रोक देना योगो की कुटिलता को रोक देना ही तप है। इच्छाओ का रोक देना ही उत्तम तप है। जहा पर असयम भाव थे उन असयम भावों को रोककर मन, बचन, काय की होने वाली कुक्रियाओ को रोक देना तथा अशुभ भाव और भावनाओ का रोक देना उत्तम तप है। तथा विभावो को रोक कर स्वभाव मे स्थिर होना ही उत्तम तप है।

लोभ कषाय का त्याग करना तथा रागद्वेष का त्याग करना व सतोष पूर्वक आहार दान, औषध दान, ज्ञान दान, अभय दान करना या त्याग तथा असयम को कारण कषाय हैं तथा मिथ्यात्व है इनका त्याग कर सम्यक्त्व व सयम को प्राप्त करना। तथा अशुभ भाव और भावनाओ का त्याग करना तथा दान, पूजा, सेवा, आदि क्रियाये करना तथा उनमें प्रवृत्ति का होना ही उत्तम त्याग धर्म है। हिंसादि पाप तथा आहारादि सज्ञायो व पचेन्द्रियो के विषयों का त्याग करना भी दान है। तथा उपदेश देना व विद्या अध्ययन कराना भी दान है यह भी उत्तम त्याग है तथा सब पर वस्तुओ से राग भाव का त्याग कर निज स्वभाव में स्थिर होना यही उत्तम त्याग है। चचल प्रवृत्तियो का रोकना ही श्रेष्ठ दान है।

आकिंचन्—ससार मे जितनी वस्तुये दिखाई दे रही है वे सब अपनी अपनी स्थिति पूर्णकर विनाश को अवश्य ही प्राप्त होंगी। जिनको मै मोह राग वश अपनी मान रहा था वे स्त्री पुत्र भाई बेटा माता पिता घोड़ा हाथी मोटर बग्गो इत्यादि; सोना चादी हीरा पन्ना

नीलम पुखराज इत्यादि रत्न व घर मकान हाट,हवेली व वैभव सेना सपत्ति है वे एक भी मेरी नही हो सकती है इन पर वस्तुओ की तो बात ही क्या जब कि शरीर माता के गर्भ में से ले कर आया था जिसके ऊपर मै गर्व करता था कि यह तो मेरा ही है परन्तु मैं देख रहा हूँ कि यह शरीर भी समय पाकर अपनी स्थिति पूर्ण भये पीछे नही रह जायेगा तब अन्य की तो कथा ही क्या है। इस प्रकार विचार कर ससार शरीर भोगो से विरक्त भाव होना तथा आत्मा की तरफ दृष्टि का होना कि मेरा चेतन स्वरूप आत्मा ही शाश्वत है अन्य किंचित भी मेरा नही है यह उत्तम आकिंचन् धर्म है। तथा अन्य द्रव्य के प्रति जो राग द्वेष भाव था उसका त्याग करना आत्म स्वभाव मे प्रवृति का होना ही उत्तम आकिंचन् धर्म है।

उत्तम ब्रह्मचर्य—देवागना त्रियंचनी व मनुष्यनी इत्यादि स्त्रियों के साथ रमण भाव का त्याग करना तथा उनके साथ सहवास व ससर्ग का त्याग करना। तथा गुण धर्म को जानकर स्त्री मात्र का त्याग करना यह ब्रह्मचर्य है। तथा स्पर्श, रसना, घ्राण, कर्ण और चक्षु इन इन्द्रियो के विषय रूप वासनाओ का त्याग करना तथा पराधीनता का त्याग करना व स्वाधीनता में प्रवृति करना ही उत्तम ब्रह्मचर्य है। तथा अपने आप रूप में लवलीन हो जाना व स्वात्मा में स्थिर हो भोग उपभोग करना ही ब्रह्मचर्य धर्म होता है। जो निज मे ध्यान ध्येय ध्याता के विकल्प रूप जाल को तोडकर एक चित्त ब्रह्म मे रमण करता है यह उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है यह ब्रह्मचर्य धर्म सब प्रकार से कर्म मल कलंकों का नाश कर अनन्त क्षायक सम्यक्त्व क्षायक ज्ञान क्षायक दर्शन क्षायक वीर्य और सुख दान, लाभ, भोग, उपभोग, रूप को प्राप्त होता है वह एक ब्रह्म आत्मा है उसमे रमण करना ही परभाव भावसे रहित ब्रह्म है यही उत्तम ब्रह्मचर्य है।११८॥

विकल और सकल चारित्र धर्म का स्वरूप

सकलं विकलं धर्मोऽनगाराणां सागाराणां नित्यम् ॥
द्वादश व्रत मूलाष्ट गुणाष्टाविंशति प्रज्ञानं ॥११९॥

धर्म दो प्रकार का है एक अनागार मुख्य धर्म और सागार (उपचार) धर्म तथा सकल चारित्र व विकल चारित्र के भेद से है। गृहस्थ धर्म तो आठ मूल गुण व बारह उत्तर गुण व्रत रूप है। मुनि धर्म सकल चारित्र अट्ठाईश मूल गुण रूप है। आठ मूल गुण जो गृहस्थ महाव्रतो से भय भीत है उसके लिये प्रथम ही पाच पापो का त्याग तथा मद्य मास मधु का त्याग रूप आठ मूल गुण है। अथवा मद्य मास शहद का त्याग व पानी छानकर पीना रात्रि भोजन नही करना देव दर्शन करना किसी जीव को संकल्प कर नही मारना तथा क्षीर फल व उदम्बर फलो का त्याग करना ऐसे श्रावक के आठ मूल गुण कहे गये है। वड़फल पीपल फल अजीर, गुलर (ऊमर) पाकर फल जिनके अन्तर्गत त्रस जीव रहते है उन फलों का त्याग करना ये श्रावक के आठ मूल गुण कहे है। इनका धारक देव शास्त्र गुरु के पक्ष को स्वीकार कर उनकी अवहेलना नही देख सकता है वह पाक्षिक श्रावक होता है तथा संकल्पी हिंसा का सर्वथा त्याग करता है परन्तु विरोधी उद्योगी और आरम्भी हिंसा से बच नही सकता है। इस प्रकार संकल्प का त्याग करने वाला श्रावक हिंसा अणुव्रत का धारक श्रावक होता है। ऐसा स्थूल झूठ नही बोलता है कि जिसके बोलने से किसी जीव के प्राण घात हो जावे

या पर द्रव्य का विनाश हो ऐसा श्रावक सत्याणुव्रत का धारक होता है जो स्थूल रूप से चोरी का त्याग करता है वह बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने के भाव नही करता है तथा माटी पानी को छोड़कर यदि माटी पानी पर भी किसी का प्रतिबध हो तो उसको भी ग्रहण नहीं करता है ऐसा श्रावक अचौर्याणुव्रत का धारक होता है। जो पर स्त्रियो से तो विरक्त भाव है परन्तु अपनी विवाहिता स्त्री का त्यागी नही होता है जो पर महिला के रूप, रस, रग वा वाणी नृत्य का भी आस्वादन नही करता है वह ब्रह्मचर्याणुव्रत का धारी श्रावक होता है। जिसने क्षेत्र वस्तु धन धान्य इत्यादि प्रकार के परिग्रह की मर्यादा का प्रमाण किया है वह श्रावक अपरिग्रहाणुव्रत का धारी है। जिसने दशों दिशाओं में आजन्म की जाने की मर्यादा करली है वह श्रावक दिग्व्रत का धारी है। जिसने रात दिन पक्ष मास की गमनागमन की मर्यादा बांधली है वह देश व्रत धारी श्रावक है। जिन्होने हिंसा दान दुश्रुति अपध्यान पापोपदेश और प्रमाद चर्या का त्याग किया है वह श्रावक अनर्थ दण्ड व्रत का धारी है। जो श्रावक अपनी शक्ति के प्रमाण कषायों व दुर्भावनाओं को रोककर समता भाव का धारक होता है वह सामयिक व्रत का धारक श्रावक व्रती होता है। तथा पर्व तिथियों में अपनी शक्ति के अनुसार उपवास करता है वह प्रोशधोप वास व्रत का धारी श्रावक है। जो भोग उपभोग की वस्तुओं की मर्यादा कर स्थिर होता है उसके भोगोपभोग नाम का व्रत होता है। तथा जो मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इस प्रकार के चार सघों को दान देता है और दान देने की वाञ्छा रखता है वह अतिथि सविभाग नामक व्रत का धारी श्रावक है ये श्रावक के आठ मूल गुण तथा बारह उत्तर गुणो का सक्षेप से कथन किया गया है। इन बारह व्रतों को सम्यक्त्व पूर्वक धारण करने पर ही व्रती कहलाता है।

आगम वचन है निःशल्योव्रती। माया मिथ्या निदान रहित हो जो व्रताचरण करता है वही सच्चा व्रती है। ऐसा विकल संयम धर्म है।

जिन्होंने सम्पूर्ण आरम्भ और परिग्रह का त्याग कर दिया है तथा हिसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह का मन वचन काय कृत कारित अनुमोदन से त्याग कर दिया है वे अनगार होते है तथा पच समितियों का पालन करते है तथा पचेन्द्रियों की विषय वासनाओ का मन, वचन, काय से त्याग कर छह आवश्यक क्रियाओं का निरतीचार पालन करते है तथा मनो गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति इन तीन गुप्तियों का सम्यक्त्व पूर्ण पालन करते है तथा अनेक प्रकार से तपो का तपना व अठारह हजार प्रकार के शीलों का पालन व गुणो का पालन व ८४ लक्ष उत्तर गुणों का पालन करने वाले सकल चरित्र के धारी साक्षात मोक्ष का कारण सकल संयम धर्म है।

इस प्रकार धर्मो की व्याख्या सक्षेप में की गई है। यह भगवान अरहंत देव के द्वारा कहा गया धर्म ही मगल रूप है तथा वही धर्म सब लोक में उत्तम है उसी धर्म को धारण कर अनन्त जीव अक्षय अविनाशी सुख को पा चुके है। जो जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ धर्म है वही धर्म समीचीन है तथा मलों पापो का नाश करने वाला है। वही धर्म स्मरण ग्रहण करने के योग्य है इस प्रकार धर्म की व्याख्या की गई है। जैसे जिन धर्म और धर्मो के नाम पर

हिंसा होती है यह धर्म नही है वह तो पाप ही है। और अनंत ससार रूपी वृक्ष की मजबूत जड़ के समान है।

आगे चैत्यालय का स्वरूप कहने को श्लोक कहते हैं।

धवलोज्वल कूटकोटि ध्वजराजि शोभते ॥
विराज मान मृद्धिर्वद्धित सुकृत मुञ्जुलिं ॥१२०

मन्दिर के ऊपर शिखर है वह बडी विशाल है और शिखर के कंगूरो पर ध्वजाओ की पक्ति लगी है वे सब ध्वजाये फहराती हुई है वे सब श्वेत और उज्वल स्फटिक मणि समान हैं। यह जिन मन्दिर अनेक ऋद्धियो का स्थान प्रतीत होता है तथा मन्दिर से ऐसा मालूम होता है कि भव्यो को अजुलि भर कर पुण्य बाँट रहा हो तब मन्दिर को देख कर ही भव्य प्राणियो को अशुभ भाव दूर हो जाता है तथा शुभ भावो को प्रदान कर रहा हो जो शुभ भाव है वे ही पुण्य वध के कारण है। अथवा यह मन्दिर अनेक गुणो की वृद्धि का ही कारण है ॥१२०॥

प्राकार शोभितं भूमि भागं नानामणि प्रचयम् ।
ये व्यालीढ गवाच्छ जाल निर्मलं विशालैव ।१२१॥

मन्दिर के चारो ओर कोट खीचा हुआ शोभा को प्राप्त हो रहा है जहाँ पर जिस भूमि मे मन्दिर का कोट खिचा हुआ है वह भी अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहा है। जहाँ की भूमि अनेक मणियो से खचित है अथवा जहाँ कि भूमि रत्नो से विभूषित है अथवा रत्न जडे हुए है। तथा कोट मे रत्न जडे हुए है जिस कोट मे अनेक खिडकिया बनी हुई है जिनमे हो कर प्रकाश हो रहा है व खिडकिया बडी बडी बनी हुई है उन खिडकिया मे मन्दिर वेष्ठित हो शोभा को प्राप्त हो रहा है खिडकियो से कोट की शोभा है कोट से खिडकिया को शोभा है तथा इन दोनो से मन्दिर को शोभा है ॥१२१॥

घंटा ध्वजा तोरण कूट कोटि कलशादण्ड सुप्रतीकम् ॥
मणिहेमरत्न समोज्ज्वले कलश चामरदर्पणाद्यैः ॥१२२॥

जिस मन्दिर के तोरण द्वार अत्यन्त शोभायमान सोना व चादी के बने हुए है तथा उनके भीतरी भाग मे अत्यन्त विशाल घटा लगा हुआ है जिसकी ध्वनिविस्तारता को प्राप्त हो रही है तथा आगे मन्दिर के कगूरो पर प्रति कगूरो पर ध्वजाये फहरा रही है तथा जिस मन्दिर के ऊपर कलश चढे हुए है जो आकाश को स्पर्श कर रहे है तथा पास मे ही ध्वजायें भी स्थित है जिससे यह प्रतीत होता है कि यहा पर मगल ही मगल हो रहे हैं जिन ध्वजाओ को देखते ही सब अमगल नष्ट हो जाते है। यह ध्वजदण्ड सुवर्ण तथा चांदी व अनेक रत्नो का बना हुआ है तथा ध्वजा उज्ज्वल है वे कह रही है कि भगवान का उज्ज्वल यश तीनो लोको मे फैल रहा है यह प्रत्यक्ष रूप से दिखा रही है। उस मन्दिर मे आठ महामगल द्रव्ये भी विराजमान है वे आठ मगल द्रव्ये कलश, चामर, छत्र, दर्पण, पखा, ध्वजा, धूपदान और ठोना झारी इन मगल द्रव्यो से विभूषित है ॥१२२॥

मेघायमानं गगने पवन विधातचञ्चच्चलविमलं ॥
ध्वज सुप्रतीकं यथा सराज्वलदिगंतरालैः ।१२३॥

वे ध्वजाये भगवान के समवसरण के मन्दिर मे एक सौआठ होती है वे ध्वजाये

हवा के चलने से चचल होती है अथवा फहराती हुई आकाश को स्पर्शन कर रही है। वे ध्वजाये इतनी ऊँची है कि मेघो से घिरी हुई है। तथा आश्विन मासमें जिस प्रकार पानी एकदम स्वच्छ हो धवलता को प्राप्त होता है उसो प्रकार ध्वजाये भो धवलता का प्राप्त है। तथा जो दूर से दिखाई देती है। मन्दिर की दीवारे अनेक प्रकार के रंगवालो मणियों से विभूषित है तथा सिहासन अनेक मणियों से निर्मित हुआ है। वह वेदिका के अन्दर ही है। वेदिका के शिखर के ऊपर सुवर्ण के कलश चढे हुए हैं तथा वेदिका अनेक चित्र-विचित्र मणियों की बनी है। उनमें जो चित्र बनें हुए है वे ऐसे प्रतीत होते है कि मानो साक्षात् नाग कुमारी देविया गा रही हों, वीणा बजा रही हों, गंधर्वदेव ही गान कर रहे हों अथवा वोणा बासुरी सारंगी मुजर ढोलक मजीरा तथा घुंघुरू इत्यादि अनेक रत्नों के बने हुए है। मन्दिर का कोट भी अनेक रत्नों से शोभायमान है तथा मन्दिर का फर्श सुन्दर-सुन्दर रत्न-पत्थरो से बना हुआ है। तथा जिसमें अनेक प्रकार के चित्र व फूल-पत्ते लगे हुए हैं। मन्दिर का दरवाजा लघु है जिसमें प्रवेश करने के लिए कुछ नीचे झुकना पड़ता है। इस प्रकार जिन चैत्यालय का कथन किया। इन नव देवताओं की पूजा भक्ति जो मन, वचन, काय से करते है उनको ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

आगे आठ मदों के नाम उल्लेख करते हैं।

ज्ञानं पूजा कुलं जातिः बलमृद्धि तपोवपुः
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयाहुर्गतस्मया ।।२५।। रत्न करण्ड श्रावकाचार।

ज्ञान मद, पूजा मद, कुल मद, जाति मद, बल मद, ऋद्धि मद, तप मद, वपु मद— ये आठ मदों को नाश करने वाले अरहत देव ने कहे है। इन आठों का आश्रय लेकर मान करने को मद कहते है।

जानामि मया स्वशक्त्या कोऽपि किंचिदपि च सर्वे नरोऽज्ञः।
नवदामि क्वचिदपि च तत् सर्वे जनाममाश्रयन्ति ।।१२४।।
सर्वे यजन्ति ममाज्ञा नोल्लंघयन्ति कदापि च सास्वतम्।
यत्र व्रजामि तत्र इच्छन्ति जना सुभक्त्या माम् ।। १२५।।

इस लोक में अथवा परदेश नगर शहर में व ग्राम में मेरे समान विद्वान कोई नहीं है जितना मैं शास्त्रों को जानता हूं उतना कोई नही जानता है मैं एक अपूर्व विद्वान हूं। मैंने किसी के पास विद्या अध्ययन नही किया है मैंने तो स्वयम् ही सब पढ लिया है। मेरे समान पुरुषार्थ करने वाला कोई नही है। यहा पर ऐसा कोई नहीं है जो मेरे समान ज्ञानवान हो व नीतिवान हो। अपने को विद्वान मानकर मान करते हैं वे क्या मेरे समान है। उनको तो कुछ भी ज्ञान नही है वे हमारे को क्या पढा सकते है वे तो स्वयम् हो अविज्ञ है। वे सब के सब निरे मूर्ख ही मूर्ख है क्या मैं मूर्खो से वाद करूँ। मैं तो उनसे कुछ भी नही कहूंगा। क्योंकि उनको क्रिया का कुछ भी विवेक नही। वह तो महा मूर्ख है। सब जन तो हमको ही बुलाते हैं और हमारे पास ही आते जाते हैं। उनके विषय में क्या कहूं मैं उनसे कम विद्या नही पढा हूं मै तो उनसे भी अधिक मात्रा में पढा हूं उनको क्या विचारूँ वे तो स्वयं अज्ञ हैं।

यदि मैं अपनी विद्या को दूसरो को बता हू तो सब विद्वान बन जायेंगे फिर मेरा कौन आदर करेगा। इस प्रकार अपने ज्ञान मद मे मत्त होकर विद्वानो का तिरस्कार करना ही ज्ञान मद है। अथवा अपने अध्ययन करने वाले गुरु का नाम नही बताना यह ज्ञान मद है। सब जगह मेरी लोग प्रतीक्षा करते है जैसी मेरी पूजा व सत्कार होता है वैसा अन्य विद्वान का नही होता है। तथा मेरी आज्ञा का कोई भी उलघन नही करता है। जहा मैं जाता हूं वहा सब लोग मुझको ही चाहते है तथा मेरा आदर करते है। मैं ही जगत में एक पूज्य विद्वान हू मैं ही पूजनें योग्य विद्वान श्रोमणि हू। मैं ही आदर करने योग्य हूँ इस प्रकार अपनी कीर्ति का व गुणो का गान करना यह ज्ञानमद है जो दूसरे विद्वानो के गुणो को व यश को सहन नही करता है न विद्वानो का आदर सत्कार ही करता है वह मूढ ज्ञान मद का धारी है। मेरे को ही राजा बुलाता है आदर करता है व धार्मिक चर्चा करता है इस प्रकार अपनें ज्ञान मद मे मत्त रहना यह ज्ञान मद है।।१२४।।

मेरी आज्ञा का कोई भी उलंघन नही कर सकता है मेरी बात को राजा भी मानता है और राजा मुझको अपनें बराबर ही बैठाता है। मैं जो आज्ञा देता हूं उसको राजा भी स्वीकार करता है। जहा मैं जाता हूं वही के लोग सब एकत्र हो मेरा विनय सत्कार करते है। तथा वे मेरी आज्ञा का कभी भी उलघन नही करते है। मैं कही भी जाऊँ पर वहा बड़ा ही आदर करते है। जहा मैं जाऊँ वहाँ सब ही मेरी पूजा करते है मुझको अपने देवता के समान मानते है और जिस प्रकार देवता की पूजा करते है उसी प्रकार मेरी पूजा करते है। जहाँ कही भी मैं जाता हूँ वही के लोग मुझको चाहते है। मैं ही एक महापुरुष हू और मैं ही गुरु हू मैं ही आदर करने योग्य हूँ इस प्रकार अपनी कीर्ति का गुणगान करना यह पूजा मद है। तथा पूज्य पुरुषो का निरादर करना व गुरुओ के प्रति विनय नही करना आदर बुद्धि न होना ही पूजा मद है। मुझको राजा भी मानता है मैं तो राज्यमान्य हूं पर मैं उन दीन हीन पुरुषो का क्या आदर विनय करू सब हसेंगे इस प्रकार की मन में भावना का होना ही पूजा मद है ।।१२५।।

उज्वल मम प्रधानमपिपरं परोच्चयादार्धिकारः।
सर्वेषां कुलर्मकि आध्यक्ष चिराल्लोकेऽन्यः। १२६ ।।

मेरा कुल सब कुलो में श्रेष्ठ व पूजनीय है, मेरे कुल मे परपरा से राजा अधिराज महाराजा होते आये है। हमारे तो कुल की परिपाटी ही ऐसी है कि जिसमे कोई न कोई राजा अवश्य होता ही आया है। अभी भी राजा है हम किसी से कम नही है। हमारा भाई प्रधान मन्त्री है, सेनापति है, कलक्टर है। अन्य दीगर कुलो में कोई भी ऐसा मानव नही है जैसाकि हमारे कुल में है। कहो किस के कुल मे प्रधान मन्त्री तथा सभा का अध्यक्ष है वह तो कुलोज्वल ही नही है। यदि आप कहेंगे तो मै उनसे कह दू गा तब तुम्हारा यहाँ रहना ही मुश्किल हो जायेगा। देखो अमुक के कुल मे कैसा कलक लगा हुआ है वह कुल इस प्रकार का है उन्होने ऐसा व्यवाहर उसके साथ किया है ऐसा मेरे साथ करते तो आज ही उनको जेल का दरवाजा दिखवा देता। यदि तुम कुछ मेरे से कहोगे मैं तुम्हारी

शिकायत कर दूंगा इत्यादि प्रकार अपने कुल का गर्व करना यह कुल मद है। इस प्रकार अन्य कुलो को नीचा बताने का भाव होना तथा उच्चपद का मान होना यह कुल मद है सो अनेक कोटि में वैर और द्वेष बढ़ाने वाला है तथा ससार का ही कारण है। १२६॥

मम मातुलो नृपोच्च पदाधिकार स्वभावान्नित्यं ॥
कोऽपि च भाग्यवान ममासादृशं जाति मद ॥१२७॥

मेरे मामा के वश में कोई न कोई राजा व सेनापति अवश्य ही होता रहा है। पहले नाना था अब मेरा मामा राजा है तथा मेरा भाई सेनापति है। मेरा मामा प्रधान मंत्री है मेरा नाना कलक्टर है तथा मेरा ममेरा भाई कलक्टर है यदि तुमने मुझसे कुछ कहा तो मै तुम्हे बहुत दण्ड दिलाऊगा। मेरे मामा की कीर्ति सब जगह फैली हुई है तथा मेरे मामा को ऐसा कौन है जो नही जानता हो क्योंकि वे तो प्रसिद्ध पुरुष है मेरे मामा का कुल तो उच्च कुल है मेरा नाना ही तो इस ग्राम वा नगर का प्रधान है सब लोग उसकी आज्ञा का पालन करते है मेरे नाना बड़े विद्वान है जिनकी राय बड़े-बडे लोग लेने के लिए आया करते हैं तुम जानते नही हो वे तो बहुत ही प्रसिद्ध है। यदि मेरे को छेड़ा तो समझ लेना नही तो लेना का देना पड़ जायेगा ऐसा अहकार कर अन्य का तिरस्कार करना जाति मद है। यह भी बैर और द्वेष का कारण है।

घोराति घोरमतयरिन मादृश् लोके तपश्विनः पश्य॥
मयाकृतवान् शार्दूल विक्रीडितं च मेघ माला॥ १२८॥

मैने अपने जीवन मे महान् घोर तपस्या की है। पक्षोपवास मासोपवास व प्रथम रत्न पंक्ति तप किया, रत्नावली तप किया चद्रायण तप किया शार्दूल विक्रीडित व रोहिणी व्रत किया तथा पचमेरु व श्रेणी बंधित व्रत किया इस प्रकार व्रत करने की आज कौन की हिम्मत है। मेघमाला कनकावली व्रत के उपवास अनेक बार किये, तथा दशलक्षण व रत्नत्रय अष्टाह्निका के उपवास किये मेरे समान कोई भी तपस्वी नही है एक दो उपवास कर लिये और कहने लगे कि हमने उपवास किये। हम तो तब जाते कि हमारे समान व्रत करे? जब हमारे समान तपस्या करोगे तब तुमको पता चलेगा। यह तप ऐसे ही नहीं हो जाता है। मेरे समान तपस्या करने वाला कोई जन्मा ही नही है इस प्रकार का मद होना कि मेरे समान उत्कृट तप करने वाले हो नही सकते यह तप मद है। किये हुए तप को सरसों की खल के समान बना देता है। अथवा सार रहित कर देता है॥१२८॥

पश्यत्वं मम सदृशं वं परम धैर्यं बलं गम्भीरं किं।
निग्रहे वीरान मही तले पातमनेक वाराम्। १२९॥
यामि गगने च भूमौ पुण्पहारंश्रु गारं मा पातं।
सर्पिरस सरसं मनोज्ञ ममर्द्धि समृद्धितः प्रभा। १३०।

आप तो जानते ही नही कि मेरे में कितनी धैर्यता है, मैं बड़ा बलवान हूं, मेरे समान कोई बलवान नही है, मैने अनेक बार अखाड़ों में जा जा कर कुस्तियां लड़ी और देखते देखते अच्छे अच्छो को धराशाही बना दिया अथवा कुस्तियां जीतीं। इस प्रकार

मान करना यह बल मद है। तुम मेरी भुजाओं की तरफ देखो कि मेरी भुजाये वल से स्फुराय मान हो रही है मैं बड़ा ही गंम्भीर हूं किसी के हिलाये हिलता नही हूं अपने पुरुषार्थ से सब युद्धो मे विजय की मेरी पताका फहराई थी, मैंने अनेक राजाओ के दल बल को क्षीण कर दिया है और बाघ लिया। कभी कहता है मेरा फरसा या तलवार ऐसी है।, जिसके सामने किसी का पार नही बसाता है अपने बल के मद मे देह को अकडा कर चलता है वह जगत को अपने से निर्बल व धैर्यतारहित गम्भीरता रहित समझता है। अब अपनी ही बढाई और बल का अहकार करता है। तथा बडे व छोटे का तिरस्कार करता है ऐसा बल मत्त पुरुष अपनी ही मैं करता है यह बल मद भी दुर्गति का कारण है ॥ १२६ ॥

मुझे मेरी तपस्या के प्रभाव से अनेक ऋद्धि प्राप्त हो गई है, जिनका प्रभाव तुम क्या जान सकते हो, मेरे में बहुत ताकत है, मैं आकाश और जमीन को पलट दूं। मेरे हाथ मे आते ही पानी घी के समान मधुर स्वादिष्ट बन जाता है, तथा मैं अपनी ऋद्धि के प्रभाव के बल से कही भी जा सकता हूं, मेरे चलने पर मेरा शरीर फूलो की माला के समान सुन्दर शृगार सहित दिखाई देता है अथवा अँधेरे में भी चमकता है। तथा मेरे शरीर से फूलहार भी विनाश को प्राप्त नही होया है तथा वृक्ष और लताये अपने खिले हुए फूलो से ऐसी दिखाई देती है कि मानो शृगार करके नव वधू अपने ससुराल को ही जा रही हो ऐसे वृक्षो पर व लताओ पर चलने पर भी मेरे शरीर से उनको बाधा नही आ सकती है ये सब मेरे ऋद्धि का ही प्रभाव है मेरे मे ऋद्धियो की समृद्धि है, इसका ही महात्म्य विशेष है आप जानते नही कि मैं कितना ऋद्धि वाला हूं इस प्रकार ऋद्धि मद है, यह सम्यक्त्व गुण का विरोधी दूषण है ॥१३०॥

मम रूपं दृष्ट्वा कोऽपि नवयुवतयौमने तृप्ति न पिवान् ॥
पुनस्ताः पश्यन्ति मॉं किं लावण्य स्व प्रशंसा ॥ १३१ ॥
यत्करोत्यहकारं वाचालो मन्यते स्व श्रेष्ठ ।
व्यक्ताव्यक्त चित्त विनय विहीनमधमो नराः । १३२ ॥

मेरे रूप और सुन्दरता को देख कर सब यौवन से युक्त स्त्रिया मोहित हो जाती है, और मुझको ही बार-बार देखती है, तो भी उनका मन तृप्त नही होता है। मेरी सुन्दरता व मेरे शरीर के समान सुन्दर समचतुर सस्थान किसी के नही है। मेरा रग गोरा व सुन्दर है मै अपने रूप से कामदेव को भी तिरस्कार करता हूं। अपने रूप के पीछे सबसे घृणा करता है यह रूप मद है। १३१ ॥

जो कोई अहकार करता है तथा अपने सगुण गुरु तप ऋद्धि और ज्ञान गुरुओ का तिरस्कार करता है, विनय रहित होता है, वह ससार मे अत्यन्त निन्दा का पात्र वन जाता है। जो मान करता है उसका तिरस्कार अवश्य होता है, उससे सब लोग घृणा करने लग जाते है, जो मनुष्य अहकार करता है, तथा बकवाद करता है, वह दुष्टाचरणो का धारक कहा जाता है। व्यक्त, अव्यक्त, मान, कषाय दोनो ही प्रकार का मान कषाय जीवो को नीचा

दिखाता है तथा नीच गति व वैर का कारण है। जो मदोन्मत्त है वे ही अपनें गुणों का गान किया करते है तथा अपनें को ही श्रेष्ठ और उच्च विवेकवान, कुलवान, जातिवान; और धर्मात्मा व दयालू व धनवान मानते रहते है, तथा ऋद्धि व रस गौरव सात गाख से युक्त श्रेष्ठ मानते है—परन्तु वे सज्जनो की दृष्टि में अविनयी अधम गिने जाते है। जिनके ये मदविद्यमान रहते है। उनको सम्यक्त्व की प्राप्ति और वृद्धि भी नही हो सकती है। न वे संक्लिष्टता से ही दूर जा सकते है। जब संक्लिष्टता दूर होगी तब ही सम्यक्त्व की प्राप्ति और उज्ज्वलता होगी। यदि किसी को सम्यक्त्व उपशम हो जाय तो मान कषाय के उदय में आते ही सम्यक्त्व रूप शिखर से उसी समय गिर जाता है और मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है। अथवा मान संज्वलन उदय मे आ जाने पर उपशम श्रेणी से चढने वाला जीव गिर जाता है; क्रम से गिरता हुआ मिथ्यात्व में भी आ सकता है, इसलिए मान कषाय सब गुणों का नाश करने वाला है। आत्मा के सम्यक्त्व गुण व चरित्र गुण के साथ ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, वेदनीय मोहनीय और अतराय इन कर्मो की दीर्घ स्थिति बध का भी साथ ही कारण है। जो प्राणी उपशम व क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर चुका है, जिस काल मे अनतानुबधी मान कषाय व अन्य मान की सयोगिनी कषायों के उदय में आने पर सम्यक्त्व ज्ञान चरित्र से जीव भ्रष्ट हो जाता है तथा मिथ्यादृष्टि बन जाता है यह मान कषाय के आठ भेद है, परन्तु और भी अनेक भेद है, वे भी इन मे गर्भित हो जाते है इन सब मान कषायों को छोड़ देने पर सब गुणों की प्राप्ति और वृद्धि होती है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है, तब ही आत्मा का सम्यक्त्व स्थिर रह सकता है। अन्यथा नही रह सकता है। इसलिए इन मदों को सम्यक्त्व का मूल घातक कहा गया है ॥ १३२ ॥

आगे सम्यक्त्व के आठ दोषो को कहते है जिन में पहला शका दोष है।

कोऽपि भ्रान्ते मंन्यते हिरण्यं किं शीपं निर्णयं मा।
तथा जिनोक्तं मोक्षः निर्ग्रंथेन च स ग्रन्थेन ॥१३३॥

कोई मोही भ्रम बुद्धि से दूर से देख रहा था कि एक कोई वस्तु पड़ी है उस पर उसकी दृष्टि एकाएक पड गई तब विचार करने लगा कि यह चांदी है अथवा शीप है। कभी कहता है शीप है कभी कहता है कि यह चांदी दोनो का निर्णय करने में समर्थ नही हो सका न उसके समीप तक ही गया। उसी प्रकार अज्ञानी जीव विचार करता है कि भगवान ने सग्रन्थ लिग से अथवा निर्ग्रंथ लिग से मोक्ष कहा है। परन्तु अनेक कोटि में संशय रूपी जाल में फँस जाता है इसमे सत्य कौन असत्य कौन है। इस वस्तु अवस्तु के विषय में सशययुक्त रहना, यह शका रूप नाम का सम्यक्त्व का दोष है। कोई अज्ञानी यह सशय उत्पन्न करते है, कि अन्य मतो मे यह कहा गया है, कि पृथ्वी को ब्रह्मा ने बनाया और शेषनाग के ऊपर स्थित है। तथा जैन धर्म यह कहता है कि सृष्टि स्वयं सिद्ध अनादि निधन है इसका कोई कर्ता व हरता नही है यह बातवलयो के आधार से रुकी हुई इस प्रकार के विकल्पो के करते हुए यथार्थ वस्तु का निर्णय नही करना यह शंकित नाम का मल है ॥१३३॥

ये निरता विषय सुखे दानं शीलंतपश्चरणं व्रतम् ।
इच्छन्ति मल लोलुपः विष्णुप्रति विष्णुरिन्द्रादि ॥१३४॥

कोई अज्ञानी पचेन्द्रियो के भोगों में आशक्त किये गये आहार दान, औषधी दान, विद्या दान व अभय दान व उपकरण दान देकर उसके फल की इच्छा करता है कि मैं राजा वन जाऊँ व शीलो का पालन कर मैं शील के प्रभाव से इन्द्र बन जाऊँ तब तो अच्छा हो। इस तपश्चरण के प्रभाव से मरणकर चक्रवर्ती होऊँ व नारायण, प्रति नारायण, बलदेव या कामदेव हो जाऊं ऐसी इच्छा का होना ही काछा है। यह अज्ञानी पचेन्द्रिय विषय लंपटो मनुष्य जिस व्रत, तप, दान का फल मोक्ष था उसको छोड़कर पत्ते बटोर कर फल की इच्छा करता है। यह काञ्छा नाम का सम्यक्त्व का अति चार है। सम्यक्त्व का मल है, जिस तप से मोक्ष की प्राप्ति होती है क्या उससे ससार के उत्तम पद नही मिल सकते है ? अवश्य ही मिल सकते है। जिस किसान के धान्य आता है उसको पुआल भूसा कभी नही मिलती है ? ॥१३४॥

अवलोक्य निर्ग्रन्थान्, मलामाच्छादितंगात्रं दन्तमलम् ।
दुराशाः निदन्ति तत् पश्यति न तेषां गुणानाम् ॥१३५॥

दुराग्रही अज्ञानी मनुष्य सुतप करनें वाले योगीश्वरों के अनेक प्रकार के गुणों को नही देखते हुए उनके ऊपरी शरीर के मलो को ही देखते हैं, तथा दातों के ऊपर मैल लगा हुआ है उसकी ओर दृष्टि डालते हैं, एवं उनके कृश शरीर को देखकर घृणा करते है।

बड़े ही धूर्त है कितने गदे व दुर्गन्धमय है इनके सब शरीर मे से पसीना निकल रहा है दुर्गन्ध आ रही है, जिनके पास भी बैठने का जी नही चाहता है, बैठने पर दुर्गन्ध आती है मुख में से भी दुर्गन्ध आती है। और दातो के ऊपर कितना मैल लगा हुआ है। देखो ये दातों को स्वच्छ नही करते हैं। ये तो वडे मूर्ख है कि अपने शरीर पर इतना मैल लगा हुआ होने पर भी पानी से नही धोते है क्या इनको पानी भी नही मिलता है, जिससे ये इतने गदे है। ये तो बडे ही धूर्त व हठी मानवो मे से है। ये काम धाम तो कुछ भी करते नही है गृहस्थो के घर जाकर माल खा पीकर मस्त हो जाते है, परन्तु ये तो नहाते व मुख की व दातो की सफाई भी नही करते है। चाहे जहा तहाँ जाते है वहाँ नगे ही जाया करते है, न इनको शर्म लगती है, न इनको कुछ सोच विचार ही होता है। कि बाल वृद्ध युवतीयो के बीच में जावें। देखो ये बड ही निर्दयी हैं कि धूप मे बैठे ही है खड़ है तो खड़ ही रहते है ये शीत व उष्णता को नही देखते है। इस प्रकार करने से क्या लाभ है। तथा कोई कहता है कि मुनिराज पंखा के नीचे बैठे थे वे सिगड़ी से ताप कर सकते है क्या ? वे तो शास्त्र के छपाने के लिए रुपया इकट्ठा करने में लगे हुए है। इनको शास्त्रों से क्या प्रयोजन है शास्त्र तो श्रावक अपनें आप ही छपवालेगे। हमने देखा था कि उनके पास रसीद कट्टा रक्खा था। वे तो यहाँ ऊपर ही दिन रात रहते है वे तो नगर में भी नही आते, क्या उनको पहाड़ पर ही रहना ठीक है ? साधुओ को नृत्यकार का नृत्य देखना व गाना सुनना कितना और कहां तक ठीक है वे रात्रिमे पढते है लिखते है क्या उनको ऐसा करना

चाहिए। सब शास्त्रों के विरुद्ध है। वे कलम व पेन से लिखते है क्या तोलिये से हाथ पोछना या पुछवाना ठीक है उनको तो शरीर से कपड़ा लगने देने ही नहीं था वे तो स्त्रियो से पैर धुलवाते है तथा स्त्रियों से आहार लेते है क्या यह ठीक है ? जब कि स्त्रियों को सात हाथ दूरी पर मुनियों से रहने का शास्त्र में लिखा है।

आचार्य कहते है कि अज्ञानी मोही जीव उन गुणों के भण्डार साधुओं के दुर्गुणों को देखते है परन्तु अपने दुर्गुणों के ऊपर जरा भी दृष्टि नही डालते। जिसका वस्त्र सफेद है उसपर यदि नील का दाग लग जावे उस दाग को देखकर निरादर करते है, कहते है कि देखना कितना दोष है परन्तु अपने वस्त्रो की तरफ नही देखता है कि मेरा सारा कपड़ा ही काला है। कोई अज्ञानी कहता है कि हम तो परीक्षा करके ही आहार दान देवेंगे। ये साधु द्रव्य लिंग के धारण करने वाले है ये भाव लिंगी होवेंगे तो हम दान देवेंगे। इस प्रकार गुणों पर दृष्टि नही डालते परन्तु ऊपर के आडंम्बर को ही देखकर घृणा करते है। आडम्बर को देख निंदा करते है। दोषारोपण करते है, कभी कोढी भी कह देते है इस प्रकार संयमी योगियों की निंदा करना यह सम्यक्त्व गुण का महान दूषण है। यथार्थ वस्तु स्वरूप का विराधक तथा अवस्तु के पोषकपना ही दीर्घ काल तक संसार में भ्रमण का कारण है। इसलिए भव्य जीवों को दोष नही देखना चाहिए न घृणा ही करना चाहिए। हमेशा गुणों के ग्राहक बनना चाहिए जो गुणों पर दृष्टि नही डालते है वे छुद्रनीच कहलाते है। तथा उनके चिकित्सा नाम का सम्यक्त्व का दूषण होता है ।।१३५।।

मायापि पश्यं विभूतिं संस्तव मनुजाश्च निर्विवेकाः।
कुदानंतपोव्रतानि मन्यते श्रेष्ठं कुदृष्टिभिः ।।१३६।।

लौकिक साधुओं की मायाचारी को न जानता हुआ उनके माया जाल में फँस जाते है। वे साधु अपनी विद्याबल को अनेक प्रकार से लोगो को दिखाकर रिझाने का प्रयत्न करते है। और अज्ञानी जब उनके चक्कर में आ जाया करते है तथा अपनी चेटक विद्याओं का प्रयोग कर अनेक प्रकार का वैभव दिखाते हैं। एक गांव में एक जटाधारी साधु आया था उसने कहा कि मैं एक लवंग लेकर पानी पीकर रहता हूं। मै अन्न फल फूल दूध दही कुछ भी नही खाता हूं। यह कहानी सुनकर सब लोग बड़े ही आश्चर्य में पड़ गये। तथा यह चर्चा धीरे-धीरे सारे ग्राम में फैल गई सब लोग साधु के दर्शन कर आनद मानते थे। कुछ दिन बीत गये साधु महात्मा के पास भीड़ बढ़ने लगी और बाबा जी के पास एक युवक आने लगा बाबा जी रुपयों को एकत्र कर रखते जाते थे। कहते थे कि यहाँ एक जगह बनवानी है। अब बाबा जी को छह महीना हो गये थे। एक दिन सब लोग आपस में विचार करने लगे कि बाबा तो बडे महान है देखो बिना अन्न के एक लौंग पर रहते हुए छह महीना हो गये हमसे तो एक दिन भी नही रहा जाता है। और बाबाजी का शरीर भी दुबला नही होता है। एक दिन एक युवक रात के मध्य में उसकी परीक्षार्थ निकल पडा और बाबा जी की सारी रात्रि देख-रेख की, जब रात्रि के एक बज रहा था कि बाबा जी ने धूनी को छोड़ कर कमण्डल उठाया और शौच गये और शौच से आकर हाथ पाॅव

धोए और कमण्डल में पानी भरा और आसन के नीचे रक्खे हुए लड्डू निकाले और खाकर पानी भी पी लिया एव वही पैर फैला कर सो गये। दूसरे दिन वही समय था कि बाबा जी ने देखा कि अबतो यहाँ कोई नही है वे उठकर शौच गये थे कि युवको ने आसन के नीचे से मय वर्तन के लाडू निकाल लिये थे। इस प्रकार के मायावी लोगो की चमत्कारियो को न जानते हुए उनकी मायाचारी को भी सत्य मानना व उनके चक्कर मे फँस जाना पूजा करना दान देना परम गुरु मानना व स्तुति करना यह सव मूढ दृष्टि है। अन्य मिथ्यादृष्टि के तप को देख कर प्रशसा करना कि वे देखो कितने तपस्वी है, वे पचाग्नि तप तापसी है, वे बहुत गुणवान है, इत्यादि के प्रशसा करना यह मूढ दृष्टि दोष है। जो कुल कुदान कुव्रत कुध्यानो को ही श्रेष्ठ मानते है वे उनके धारण करने वाले सब मूढ कुदृष्टि हैं वे अनत काल तक मिथ्मात्व को धारण कर ससार में भ्रमण करेंगे। तथा नरकादि कुगतियो मे परिभ्रमण करेंगे ।।१३६।।

हिंसाऽऽरम्भेषु ये स्थिताः जटाऽऽयुद्धाऽवलादिषु।
कंदमूलादि सेवन्ते माद्यकादि प्रशंसनम् ।।१३७।।

जो हिसा आरम्भ में तल्लीन है वे खेती करते है व कराते है मकान मठ कुटी वनाने रूप आरम्भ मे लगे हुए रहते हैं, तथा खेतो में चरस जोतकर पानी की सिंचाई करते है, जो जमीन के खोदने मे अग्नि के जलाने मे पानी भरने में तथा विना छना पानी पीने और स्नान करने मे ही रत रहते है। जो हाथी घोडा रखते है, पालन करते है, उनके ऊपर चढकर गमन करते है। तथा गाय भैंस वकरी रखते हैं और उसका दूध निकाल-निकाल कर पीते हुए उन गायो के लिए चारा पानी लाने मे रत रहते है। गाय बैल को वेचते है। जो रात्रि मे हाथो से वनाते है और आप भी खालेते है तथा बना कर दूसरो को खिलाते है। जो नदी, तालाब, कुआँ, वावडी और समुद्र मे कूद गोता मार-मार कर स्नान करते है। तथा वस्त्रो को सोडा सावुन इत्यादि लगाकर धोते है। सर्प विच्छू खानखजूरा आदि उनको दिख जावे तो वे तुरन्त ही मार डालते है वे निर्दयता से युक्त होते हैं; उनके हृदय में दया का अश भी नही होता है, तथा महन्त बनने की अभिलाषा से वे वहा के निवासियों को मरवा डालते है वे निर्दयी पाखण्डी है।

जो मस्तक पर लम्बे लम्बे जटा धारण करते है, दाढी मूँछ रखते है तथा हाथ मे चीमटा कुशा फर्शा लाठी और नारियल का खप्पर रखते है, एवं चर्म की चादर को बिछाते है और पहनते है ओढते भी हैं तथा उसको मृगछाला कहते है वे सब कुलिगी है। जो पीताम्बर व रक्ताम्बर मृगछाला व श्वेताम्बर व ऊनी वस्त्र धारण करते है, तथा जो मुख पट्टी पात्री व लाठी रखते हैं वे कुदृष्टि है। जो काच माटी व रुद्राक्ष की मालाये व अन्नत पत्थर की मालाये धारण करते है, गुहेरा सर्पो को अपने गले में लटकाये रहते है डमरु और त्रिशूल धारण करते है, जो बैल पर बैठते है, तथा स्त्री को साथ में रखते है, दिन रात प्यारी प्यारी रटते है, तथा स्त्रियो मे आशक्त जिनका चित्त रहता है, या जो स्त्रियो में आशक्त रहते है तथा भोगो की अभिलाषा करते हैं, शरीर पर भस्म रमाते है, अग्नि जला कर पंचाग्नि

तप करते है बबूल के कांटों पर सोते है वे पैसा के लालची होते है तथा परिग्रह में आशक्त होते है वे कुदृष्टि है।

जो खुदा, आदिम व अल्लाह के नाम पर विचारे दीन हीन पशुओं के गले को काट-काट कर डाल देते है जिससे वे अत्यन्त दु.खी होते हुए बिलबलाट करते हुए तड़प-तड़प कर मरते है उसमें होने वाली हिसाको कहते है कि हमने कुर्वानी की थी खुदा व आदिम रहीम की यही आज्ञा थी इसमें कुछ दोप नही है। जब वे जानवर मुर्गी, मुर्गा, गाय, बैल, बकरा, बकरी, भेड, मैढा, इत्यादि मर जाते है तब वे मुल्ला काजी फकीर पेगम्बर सब उनके शरीर से मांस निकालकर आप खा जाते है और उसको खाने में आनद मानते है। ये सब कुदृष्टि है। जो जगलों में रह कर वहाँ की वनस्पतियों को जड कांटों को खोद कर लाते है और उन कन्दों (खोद) को कच्चा व पका कर खाते है। व कोमल वृक्षों की छाल व पत्तों को निकाल कर खाते है। तथा जगलों के वृक्षों के फूल पत्ते व फलो को तोड़कर खाते है। वृक्षों के पत्तों को तोड़कर खाते है, ओढते है, बिछाते है व झोपड़ी बनाकर निवास करते है कुत्ता और बिल्लियों को पालते है। तथा कुत्ता बिल्लियो के साथ खाते है। वे कुलिगी मिथ्यादृष्टि है। जो शराब भाग धतूरा व अन्य वनस्पतियों को घोट-घोट कर पोते है व खाते है तथा नशा अफोम कोकोन खाते है व गांजा धतूरा व शंखिया सुलफा इत्यादि अमलों को चिलम हुक्का आदि में रखकर दम लगाते है वे कुदृष्टि है। तथा जो नशवार सूंघते है सिगरेट बीड़ी तम्बाकू खाते है पीते है व हुक्का में रख उसकी स्वास के द्वारा अपने पेट में धुआं ले जाते है जिससे नशायुक्त हो जाते हैं व नशे में चकना चूर हो जाते है और कहते है यह महादेव की बूटी है इनका सेवन करना ही परमार्थ है तथा जब नशा अधिक हो जाता है और वे कुछ का कुछ कहने लग जाते हैं आपस में नाना प्रकार की खोटी बाते कहा करते है जब कोई स्त्री दीख जावे तो उसको रण्डा-रण्डा कह कर पुकारते है तथा गालिया देने लगते है और पर रमणियों के साथ विषय भोग भी करने लग जाते है वे कुदृष्टि पाखण्डी हैं। उनकी प्रशंसा करना कीर्ति गुणगान करना और उनको भलामान आदर सत्कार विनय करना यह अन्य दृष्टि प्रशंसा नाम का सम्यकत्व का दूषण है। जो अपने को नागा कहते है दिगम्बर रहते है ध्वजा दण्ड चीमटा फर्सा कुसा रखते हुए अपनी लिगी में छल्ला पहने रहते है। तथा जिन्होंने अपने कान फाड़ लिये हे और उनमें वाला पहन लिये है भगवा वस्त्र धारण कर लिये हैं। हाथ में खप्पर सिर पर जटा बगल में मृगछाला गले में रूद्राक्ष की माला तथा हाथी की सवारी तथा बाई तरफ स्त्री है वे कहते हैं कि जगत कोई वस्तु नही है जगत शून्य है। कुछ भी नही किंचित् भी नही है वे कुदृष्टि है। पीत रक्त वस्त्र के धारक कहते है कि संसार में जीव क्षण-क्षण में बदल जाता है ऐसे कहने वाले कुदृष्टि है जो हिंसा करके यज्ञ की गई है उसको ही मोक्ष देने वालो मानते है यही मोक्ष का साधन है तथा अन्य प्रकार से भी कुदृष्टियो का स्वरूप जानकर इनकी प्रशंसा स्तवन व कीर्ति का गान नही करना चाहिये, यदि करे तो महापापास्रव होगा जिससे अनंत संसार मे भ्रमण करना होगा तथा प्रशंसा करने वाला इस प्रकार डूब जायेगा जैसे पत्थर की नौका डूब जाती है और बैठने वाला भी डूब जाता है। जिनका स्तवन गुणगान

किया गया है वे तथा गुणगान करनें वाले दोनो ही दुर्गति गामी होते है यह कुदृष्टि स्तवन नाम का सम्यक्त्व का दूषण है ।।१३७।।

कुदेवपूजका: बिम्बं कुतपः धरकाश्चयत् ।।
कुचैत्यालय पूजकाएषां शे शेवाचकारका ।।१३८।।

कुदेव और कुदेव की मूर्ति की पूजा वदना व स्तवन नही करना चाहिये। कुतप के धारक व कुतप की पूजा प्रशसा नही करनी चाहिये। कुचैत्यालयो की पूजा नही करना न उनकी सेवा ही करनी चाहिये। पूजा आरती व निर्माण कार्यो मे सहायता नही करनी चाहिये यदि करे तो सम्यक्त्व का दूषण है। ये छह अनायतन है।

ये दोषानि च दृष्ट्वा विकंरन्ति सम्यक्संयमेऽपकृतं ।।
म्मोहोदयेषु जीवाश्चलमलं प्रयुक्त विरूद्धं।।१३९।।

जिन्होने दर्शन मोह का दीर्घ वध कर लिया है तथा मिथ्यात्व प्रकृति का उदय है उनको सम्यक्त्व तथा चरित्र की बात अच्छी नही लगती है। तब वह सम्यक्त्व और चरित्र के दोषो की क्या देख भाल करता है। देखे गये दोषो को इधर उधर फैलाता है तथा स्वय भी उनकी निन्दा करता है उनकी अवहेलना करता है उनकी हसी मजाक उडाता है। देखो वे बडे धर्मात्मा है जितने धर्मात्मा होते वे पापों से नही डरते है। तुम क्या क्या व्रत करने बैठे हो, चलो देख लिये इन व्रतो से तो हम ही अच्छे हैं इन्द्रप्रस्थ से निर्मंत्रण आया है वहाँ बडे-बडे सुन्दर पकवान मिष्टान्न बनेंगे वहा सब लोग आवेगे और जीमेंगे। यहां पर तो तुमको पूजा दान करते कितना समय हो गया परन्तु तुमको कुछ मिला है क्या ? देखो अमुक ने अम्बिका देवी की पूजा करी सो पुत्र हो गया और धनवान भी बन गया। देखो उन्होने पूजा की तो मुकद्दमा जीत गया और स्त्री बीमार थी वह भी देवी के प्रसाद से ठीक हो गई। यह देवी की पूजा करने वाले का महात्म्य है क्या तुमसे कुछ दुराव है ? देखो यह देवी का मन्दिर अमुक सेठ ने बनवाया था वह कितना विशाल है। पहले उसके सन्तान नही थी जब किसी भक्त ने कहा कि सेठ जी यदि आप सन्तान की इच्छा करते हो तो चामुण्डी देवी की पूजा करो, तब श्रेष्ठी ने पूजा करना चालू किया कि उसके पुत्र भी हो गया और धन लाभ भी। देखो ये हमुमान बदर है, वे राम चन्द्र भगवान के भक्त हैं, यदि उनकी भक्ति कोई करे रोट चढावे तथा सिन्दूर चढावे तो पूजा करने वाले को सन्तान होगी ? यह सुनकर उसने वैसा हीं किया जिससे उसके एक वर्ष में ही सन्तान हो गई। जिससे उसने शिखर बन्दमन्दिर बनवाया है जिनको तुम तपस्वी मानकर पूजा करते हो दान देते हो सेवा वैयावृत्ति में लगे रहते हो वह फिजूल मे पैसा बर्वाद कर देते हो। उनकी सेवा वैयावृत्ति करते हो उससे तुमको क्या मिला यह बताओ ? देखो उन बाबा जी व महात्मा की तपस्या का फल अनेको को धनवान बना दिया, तथा अमुक के पास मकान नही था उसने बाबा की सेवा मन लगा कर की तो चन्द दिन मे हीं मकान बन गया। व आज धनवान बन गया। तुम भी वहाँ जाकर तपस्या करो तुम भी महान वन जाओगे। बाबा जी को दूध पिलाओ मेवा खिलाओ वे बडे तपस्वी है दिगम्बर साधुओ की सेवा करना छोडो उसमे क्या रक्खा है। उन व्रतो को भी छोडो कि जिनसे कुछ

खा-पी नही सकते न भोग ही भोग सकते हो। कही पार्टी मे जाओ तो वहां बिना खाये अच्छा लगता है यह अनुपगूहन नाम का दूषण है। आचार्य कहते है जब कुछ पूर्व पुण्य का उदय आ जावे तव देव पूजा करने पर न करने पर भी पुण्य का फल अवश्य मिलता है। जो मिथ्यादेव मिथ्यात्व देव की प्रतिमा तथा मन्दिर की पूजा तथा मिथ्या तप तथा मिथ्यात्व को धारकों की व उनके सेवको की पूजा करने से महापाप वंध ही होता है जिससे जीव को अनत काल तक ससार मे ही भ्रमन करना पड़ता है। यह अनुपगूहन नाम का सम्यक्त्व का दूषण है।

धर्मात्मा मीरणं पश्यति विनिवशतां मा समीपे कदाप्य-
विज्ञोमिथ्यापथेच्छा व्रजति सह हटग्राहिनासाद्य विद्या ।।
यद्विघ्नोद्योदयं साधु मधुरममृतं वाक् त्वपूजाव दाने,
स्त्री पुत्रौ बांधवाना कलहमतिथि धर्मर्न वात्सल्यमेवं ।।१४०।।

यह अज्ञानी मोही दुराग्रही पापिष्ठ धर्मात्मा जनो के प्रति झगडा करता है। दान व पूजा करने मे विघ्न उत्पन्न करता है। मन्दिर में भी जब जाता है तब यही विग्रह उत्पन्न करता है कि यहा पर तो मैं पूजा करूँगा तुम यहां कहाँ से आये हो हटो जो नोकरों के साथ झगड़ा करता है। तथा सज्जन साधु जनो के व अतिथियो के प्रति दुर्भावना करता है तथा उनकी निन्दा करता है उनके धर्म कार्यो मे विघ्न डालता है। तथा अपने घर मे भी स्त्री पुत्र मित्रों से भी झगड़ा करता है। तथा धार्मिक कार्यो में झगड़ा कर विघ्न उत्पन्न करता है सभी के साथ द्वेष करता है। धर्मात्मा जीवो को खोटी दृष्टि से देखता है उनके साथ दुर्व्यहार करता है। जो कोई उसके पास रहता है उससे वह बैर विरोध ही करता है मिथ्यामार्ग का पोषण करता हुआ बिना सम्यग्ज्ञान के कुमार्ग में गमन करता है यह मिथ्यात्व का धारक समीचीन धर्म जो जैन धर्म है उससे भी विपरीत आचरण करता है यह सब सम्यक्त्व का अवात्सल्य नाम का दूषण है।

विशेष—यह अज्ञानी मोही बहिरात्मा कुधर्म में प्रीति कर कुधर्म को ही धर्म मानता है कुशास्त्रो को शास्त्र कुगुरुओ को गुरु मानकर सच्चे समीचीन धर्म और धर्म के धारक जीवों के प्रति द्वेष करता हुआ गमन करता है और हठग्राही अपनी इच्छा अधर्म में तथा मिथ्यात्वी लौकिक जनो की आज्ञा का पालन करता है धर्मात्मा जीवो के प्रति खोटी भावना ही करता है परन्तु सद्भावना नही करता है। वह तो आप अपनी स्त्री, पुत्र, मित्र, माता-पिता अन्य श्रावक श्राविका व मुनि आर्यिका आदि सबसे वैर विरोध करने के प्रति सन्मुख होता है। तथा मिथ्यादृष्टि लौकिक जनो की स्तुति करता है यह सम्यक्त्व का अवात्सल्य-दूषण है।

येषां रुचिनसद्धर्मे विकरतिन सन्मार्ग।
क्षिपति खलु बालुकायां रत्नमविवेकोऽपि ।।१४१।।

यह अविवेकी प्राणी जिनको सच्चे धर्म की प्राप्ति है उस धर्म की इधर-उधर प्रभावना नहीं करते है जिस प्रकार कोई मूर्ख अपने हाथ में रक्खे हुए रत्न को दूसरे जौहरी को न दिखाता हुआ वालुका के ढेर में फेंक देता है। इसी प्रकार अविवेकी मनुष्य

अपने सद्धर्म की महिमा को अन्य लोगों के पास नही जाने देता है। अज्ञानी मोही जीव विचारता है कि यदि ये लोग धर्म और अधर्म फल को सुन लेवेंगे तब ग्रहण कर अपने हृदय मे उतार लेवेंगे और हमारी निन्दा करेगे ऐसी मन मे भावना करता हुआ सन्मार्ग की प्रभावना नही करता है। मिथ्यात्व और अज्ञान मय धर्म की रामलीला कृष्णलीला इत्यादि करके प्रभावना करता है। कहता कि यही उनके योग्य है यह सन्मार्ग व समीचीन धर्म उनके योग्य नही है यह सम्यक्त्व का आठवा दूषण अप्रभावना है।

आगे जुआ व्यसन को कहते है।

(कुर्वान्तद्यूत) द्यूतं क्रीडन्ति पासुलाः स्वर्धा दावं च दत्त्वैवम्
विंत्तं क्षेत्रं ददति क्षित् ग्राम राज्यं तथैवं ते ॥ १४२॥

पापी धर्म विमुख मानव होड लगाकर जुआ खेलतं है। तथा दाव डालते हुए अपने धन माल का दुरुपयोग करते है जुआरी मनुप्य पासा व कोडी पत्ते तासो से जुआ खेलते है तथा रेश खेलते है कि यदि यह घोडा आगे निकल गया तो हम तुम को इतनी रकम देवेगे यदि नही निकला तो हम तुमसे ले लेवेगे तथा यदि बादल आज बरस जावेगे तो हम इतना रुपया तुमको देवेंगे नही वर्षा तो हम तुम से ले लेवेगे। इस प्रकार और भी अनेक प्रकार जुआ खेलने के तरीके है जिन मे मग्न हुए जुआरी अपने धन खेत पृथ्वी राज्य आदि को दाव पर लगा देते है। तथा स्त्री पुत्र माता पिता आदिको को भी दाव पर लगा देते है।

वाजी मर्धुजिजीविषु ह्रासैवमधु सादृशं।
कोऽपि न त्यजतांमनीश इच्छा वर्धनीय वा ॥१४३॥

जुआरी जब जुआ खेलते-खेलते हार जाता है तब विचार करता है कि मैं अबके दाव पर जीत जाऊँगा मेरी विजय अवश्य होगी। यह जुआ खेलने वाला यदि हार रहा हो तो भी मीठा लगता है उसको बद नही करना चाहता है। एक बार चालू होने पर वह बद नही होता है, बढता ही जाता है। जब जुआ खेलने वाले की इच्छाये अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होती है। हे मनीश! तुम इस जुआ को खेल कर पार नही पा सकते। देखो बैल के कधे पर रक्खा गया जुआ उसके सब शरीर को नाकाम बना देता है। तथा बैल को जमीन पर पटक देता है। इस जुआ के खेलने वाले का हौसला बढता जाता है और इच्छायें भी बढती जाती है वह विचारता है कि अब दाव मेरा हो तो अवेगा अभी मैं जीत जाऊँगा ॥ १४३ ॥

लज्जा धर्मो विवेकान् क्षित् कीर्तिर्यशोधनानि च।
विग्रहं भूत मादण्डः सर्वत्रभयमादानं ॥१४४॥

इस जुआ खेलने वाले पापी के हृदय मे दया और धर्म नही रह जाता है उसको अपने पूर्वजो वृद्ध पुरुषो की भी लज्जा (शर्म) नही रह जाती है विवेक नष्ट हो जाता है कीर्ति यश भी नष्ट हो जाते है। तथा जुआरी निर्धन भिखारी हो जाता है उसके पास धन नही होता है। यदि जुआरियो मे कोई दाव के पीछे मन चाल हो जावे तो वे आपस मे मारपीट करने में तुल जाते हैं तथा भयानक झगडा होने से मर भी जाते हैं। जुआरियों की राजा भी खोज करता है जब जुआरी खेलते हुए पकड़ लिये जाते है तब राजा भी उनको

कठोर दण्ड देता है। तथा धन माल जेवर को भी छीन लेता है। जुआरी लोग एकान्त गुप्त स्थान में ही छुपकर जुआ खेलते है। जुआरी जहाँ कही भी जुआ खेलते है वहाँ उनको भय अवश्य ही लगा रहता है वे चौकन्ने रहते है कि किसी को पता न लग जाये। यदि पता लग गया तो पकड़ कर ले जावेंगे और मारेंगे तथा कैद खाने में वंद कर देवेंगे। तथा छडी बैंत चाबुक आदि से मार भी लगावेंगे हाथ पैर बाँधकर काल कोठरी में डाल देवेंगे। पड़ोसी मुहल्ला वाले व ग्राम के लोग देख लेवेंगे तो निकाल देवेंगे इस भय से जुआरी लोग छिप कर ही जुआ खेलते है इस प्रकार यह जुआ भयों का देने वाला है।

दयासत्यं न विश्वास चिन्ताहिताहितेऽशेषं ॥
जातंक्रूरं च कौटिल्यमकीर्तिः खलु कौरवाः ॥१४५॥

जुआरी जन के हृदय मे क्रूरता निवास करने लग जाती है उसके हृदय में दया भाव नही रह जाता है। वह अपने पराये प्यारे से प्यारे मित्र भाई माता पिता पुत्र के साथ भी कभी सत्य नही बोलता है वह जुआरी वोलता कुछ करता कुछ है। क्रिया व भावना उसकी अन्य प्रकार की ही होती है। जुआरी मनुष्य हमेशा चिन्तातुर ही रहा करता है और अपना अतरंग भेद किसी को नही देता है। तथा वह हित किसमे है अहित किस में है। यह भी खोज नही करता है न विचार ही करता है। वह अपकीर्ति का पात्र बन जाता है। जैसे कि कौरव अपकीर्ति के पात्र वन गये थे। जिनकी अपकीर्ति का प्रभाव आज तक विद्यमान है। मायाचारी करते-करते दुर्योधन ने पाडवो के साथ जुआ खेला और राजपाट सब ही जीत लिया। राजपाट जीतने पर भी कौरवो को शान्ति नही आई।

भजत नित्यमादुर्ध्यानं गमिष्यति भी दुःखं ॥
भरतेऽनंत नारकेइत्थं तन्मुञ्च मानव ॥१४६॥

जो इस द्यूत क्रीडा में मग्न रहते है वे नित्य ही दुर्ध्यान से युक्त रहते है अथवा उनके दुर्ध्यान की वृद्धि हमेशा अवश्य ही होती रहती है एक समय भी ऐसा नही आता कि जिस समय दुर्ध्यान और भय नही रहता हो। प्रथम तो वहुत भय लगा हुआ रहता है दूसरे धन की क्षति का दुःख तोसरे निंदा के पात्र चौथे कीर्ति का विनाश पाँचवे अविश्वास का पात्र छठवे झगडे का भय व राज भय जिससे आकुलतायें वढ़ती जाती है। और भय के साथ चिन्ता भी बढती रहती है। इस प्रकार अशुभ ध्यान सहित मरण कर नरक में जाना पड़ता है अथवा दुर्ध्यान का फल तो नरक में ले जाने वाला है। जिससे दीर्घकाल तक नरकों के दुःख भोगने पड़ेगे। इसलिए हे मानव ! इस जुआ खेलने का तुम शीघ्र ही त्याग करके शुभाचरण करो। यह जुआ महा पापो का समुद्र है।

पश्यत्वं नारके किं भवति च नियमेन क्षमायां लभन्ते
भूस्पष्टे वेदनासन्ति कतितदपि वा वृश्छकैः दंश प्राग्।
जन्मे दुखैः सहस्रै रपि विविध विधं सारमेया इवालो-
क्यतत्प्रष्ठेःऽनु धावन्ति खलु निज गृहेरान्ति ताप तथापि ॥१४७॥

जिस नरक मे नारकी पृथ्वी को स्पर्शन करने पर जितना दुःख होता है उतना यहाँ

पर हजारो विच्छुश्रो के डक मारने पर भी नही होता है जितना कि भूमि के स्पर्श करने मात्र से नारकी जीवों को नरको मे होती है। जहाँ पर जिस पृथ्वी के स्पर्शन करने से इतनी वेदना होती है कि चित्रा पृथ्वी पर विचरने वाले जहरीले काले विच्छुओ के द्वारा एक साथ डक मारने पर भी नही होती। जितनी कि नरक की पृथ्वी के छूने मात्र से होती है। इतना ही नही जब उपपादस्थान से नीचे गिरता है जहाँ पर ३६ आयुध प्राकृतिक बने हुए है जिनके ऊपर गिरता है तत्काल की वेदना से घबडाकर पाँच सौ धनुप ऊपर को छलांग मार कर विचार करता है कि मैं इस नरक से निकल जाऊँ परन्तु श्रायुकर्म वडा ही वलवान है वह उसको वहाँ से नही निकलने देता है। पुन' जब वही भूमिपर श्रा जाता है तब पुराने नारकी उस नवीन नारकी के पीछे पड जाते है श्रौर कितनी प्रकार से वे उस नव नारकी को दुःख देते है यह कहा जासकता है कि जिस प्रकार नये कुत्ता को श्राता देखकर घर-ग्राम मे रहने वाले कुत्ते उस कुत्ता के पीछे लग जाते है श्रौर उसको नोच काट खाते है। तथा चारो श्रोर से चीथने लग जाते है जिससे नया कुत्ता काय-काय चिल्लाता है पर वे उस कुत्ते को शीघ्र ही छोड़ने को तैयार नही होते हैं। इस प्रकार नरक मे एक नारकी जीव को अनेक नारकी वेदना देते है। वह नारकी वुरी तरह चिल्लाता है रोता है तो भी वे निर्दयी नारकी कृष्ण नील, कापोत, लेश्या के धारक उसको नही छोड़ते वे तो दुःख ही दु.ख देते हैं। उस नरक मे वेदना के श्रलावा और कुछ एक क्षण के लिए नही मिलता है।

सारपासेन श्रक्षैश्च वदनी वाजधावनात्।
कुक्कटौ तीतरौ युद्धे द्यूतं बहुविधं प्रोक्तम् ॥१४८॥
शर्तिरोपण माकार्यं महामनाः कृतोद्यूतं ॥
बहिष्कारं च पावन्ति सर्वत्र इह लोकेषु ॥१४९॥

यह (जुश्रा) द्यूत श्रनेक प्रकार से खेला जाता है कोई पासो पर वदनी लगाकर कोई गोटो से कोई पत्तो से व चौपड से जुश्रा खेलते है। कोई वैलो को युद्ध व भैसाश्रो का व कुक्कट व तीतर को लड़ाकर शर्त करते है कि यदि मेरा वैल हार जायगा तो मैं तुम को इतना रुपया दूँगा नही तो तुमको इतना रुपया देना पडेगा।

रेश करके भी जुश्रा खेलते है जहाँ रेश होती है (घुडदौड) वहाँ श्रनेक लोग देखने को जाया करते है श्रौर वहाँ वदन वदते है कि श्रमुक नम्बर का घोडा श्रभी दौडेगा उसके बरावरी मे श्रमुक नम्बर का घोडा दौडेगा यह सुनकर जुश्रारी लोग उन घोडो वर वदन लगाते है कि यदि यह घोडा श्रागे निकल जायेगा तो तुम को १०) रु० देने होगे यदि यह श्रागे निकल गया तो हम तुम को देवेंगे। यहाँ तक देखा जाता है कि लोग मुर्गाश्रो की लड़ाई मे भी शर्त करते है कि यदि तेरा मुर्गा हार जाएगा तो हम श्रपने लड़के की शादी तुम्हारे लड़की के साथ कर लूगा यदि मेरा हार गया तो मै श्रपनी लड़की तुम्हारे लडका के साथ व्याह कर दू गा। या तोतरो का युद्ध करवाना जो जीतेगा सो ही पायेगा ये हमारे रुपया जमा है तुम भी जमा करो इस प्रकार आपस मे वदन वद-करके हार जीत करते है यह जुश्रा है। फीचर खेलना दड़ा लगाना हुण्डी इत्यादि ये सब जुआ के प्रकार है। पत्तो मे जुश्रा खेलते है यदि नहला पहले

निकल आयेगा तब हम जीत गये और नहला न आकर पहले दूसरा अंक साँत आगया तब हम तुमको दे देंगे नहीं तो यह ले लेवेंगे। जुआरियो को हार भी मीठी लगती है तथा जीत भी अच्छी लगती है। जिसमे स्पर्धा की जाती है वह सब ही जुआ है। जो जुआ खेलता है वह इस लोक में तो साक्षात् रूप से वहिष्कार पाता है। ग्राम से घर से निकाला जाता है। घर वाले घर मे घुसने तक नही देते है। तथा रोटी पानी भी नही देते है। यहाँ तक देखा जाता है कि माता पिता भी जुआरी पुत्र को मरवा डालते है व जुआरी पुरुष अपने पुत्र पौत्रादिक को भी मार डालते है तथा उनके मारने मे जरा भी नही हिचकते है। इस व्यसन में कौरव पांडव प्रसिद्ध हुए है ॥१४८॥ ॥१४९॥

कौरव पांडवों की कथा

इस जम्बू द्वीप भरत क्षेत्र के मध्य एक कुरुजांगल देश है उस में एक हस्तनापुर नामका प्रधान नगर था जहाँ पर पारासर राजा के पुत्र धृतराष्ट्र व पाडु दोनों राज्य किया करते थे। धृतराष्ट्र जन्म से ही अंधे थे जिससे राज्य का कार्य पाण्डु किया करते थे। पाण्डु का रग सफेद था वे सूर्यमुखी थे, पाण्डु के दो रानियाँ थी एक का नाम कुन्ती दूसरी का नाम माद्री था। धृतराष्ट्र का एक गाँधारी नाम की कन्या के साथ पाणिग्रहण हुआ था। गाधारी के गर्भ से दुर्योधनादि सौ पुत्र हुए तथा कुन्ती के गर्भ से कर्ण युधिष्ठर भीम और अर्जुन तथा माद्री के गर्भ से नकुल और सहदेव नाम के दो पुत्र हुए। ये सब राज पुत्र गुरु द्रोणाचार्य के पास पढने लगे थे उन्होने अनेक धर्म शास्त्र, न्याय, व्याकरण, छन्द अलंकार पढे तथा धनुर्विद्याये भी पढ़ी थी। विद्या अध्ययन करने में पांडु के पाचों पुत्र निपुण थे जो विद्या गुरु पढाते थे उसको वे शीघ्र ही पढ लेते थे। जब गुरु उनको पूछते तो वे उसका उत्तर देने में विलम्ब नही करते थे। परन्तु जब दुर्योधनादि को पूछते थे तब वे बैल जैसे देखते हुए खड़े रह जाते थे। इसलिए दुर्योधन पाण्डु पुत्रों से द्वेष करते थे।

जब पढ़ लिख कर सब पाडव और कौरव निपुण हो गये। उन सब में अनेक गुण सम्पन्न विद्याओ के भण्डार युधिष्ठर थे बल और विद्याओं में प्रवीण भीम थे। अनेक विद्या कलाओ में तथा युद्ध बाण विद्या मे निपुण श्री अर्जुन थे। दया दान और शास्त्र नीति न्याय विद्याओ मे श्रेष्ठ ऐसे बलशाली नकुल और सहदेव थे। वे सब ही बड़े गभीर विद्वान विचार वाले थे। परन्तु कौरव दुर्योधनादि धृतराष्ट्र के सौ पुत्र पापाचारी कुविचार व दूसरो से वैर विरोध करने जुआ खेलने में चतुर थे। मन्दबुद्धि थे उनको अनेक बार विद्यागुरु के पढाने पर भी पाठ याद नही होता था। जब पाडव और कौरव दुर्योधनादि खेलते थे तो दुर्योधन का क्रूर स्वभाव होने से सब पांडवों व अन्य राजकुमारों को मारता था पीटता था। तथा निर्दयता का व्यवहार करता था। परन्तु पांडव लोग किसी के साथ क्रूरता का व्यवहार नही करते थे वे सब के साथ प्रेम का व्यवहार करते थे। एकदम अचानक पाण्डु का स्वर्गवास हो गया जिससे राज्य का कार्य धृतराष्ट्र नें अपने हाथों में ले लिया और अपने पुत्रो को राज्य कार्य करने की आज्ञा दी परन्तु पाण्डु पुत्रों को कुछ नही दिया। यह चरित्र देख पाचों भाई दग रह गये दुर्योधन अब राजा बन बैठा था यह देख

पाडव सब हताश हो गये थे। तत्पश्चात् उन्होनें अपने काका विदुर तथा द्रोणाचार्य व भीष्म पितामह कर्ण शकुनी इत्यादि से सारी हकीकत कही तव उन्होने धृतराष्ट्र से कह कर राज्य को दो हिस्सों मे वटवारा करा दिया। अव कौरव और पाडव अपने अपने राज्य मे सुख पूर्वक राज्य करने लगे थे। पाडवो की कीर्ति चन्द दिन में ही चारो ओर फैल गई और सब लोग पाडवो के व्यवहार को देख कर प्रसन्न होते थे तथा उनको आदर की दृष्टि से देखते थे। वे प्रजा का पालन अपने पुत्र के समान करते थे जिससे वे सबके हृदय मे निवास करने लगे थे। सब प्रजाजन परिजन पाडवो को ही चाहते थे। परन्तु दुर्योधनादि सौ कौरवो को कोई नही चाहता था। यह देखकर दुर्योधन का पाण्डवो के प्रति द्वेष वढने लग गया। एक दिन दुर्योधन विचार करने लगा कि इन पाडवो को किसी प्रकार मारडालना चाहिए ताकि अपना काटा मिट जावे। ऐसा विचार कर उसने एक अद्भुत लाख का महल बनवाया और पाडवो को अपने यहाँ निमत्रण देकर बुलवाया जब पांडव आ गये तव दुर्योधन ने उस महल मे ही ठहरा दिया और सारी व्यवस्था करवा दी महल की देखभाल विदुर ने की थी उसमें से वाहर जाने के लिए एक गुफा द्वार गुप्त वनवा दिया था (अथवा सुरग) पाडवो को इस मायाचारी का कुछ भी पता नही था जिससे वे सरलता पूर्वक उस महल मे ही ठहर गये। एक दिन अर्धरात्रि का समय था पाचों पाडव तथा उनकी माता कुन्ती व माद्री सव सो रहे थे कि दुर्योधन ने आग लगवा दी। जिससे थोडे ही समय मे सारा मकान जलने लग गया। पाडव जाग्रत हुए परन्तु इधर उधर कही मार्ग नही दिखाई दिया। लपटे आकाश को स्पर्श कर रही थी पाँडव उसके भीतर ही थे कि अकस्मात् उनकी दष्टि एक शिला पर गई और भीमसेन ने तुरन्त उस शिला को उठाकर देखा तो उसके अन्तर एक वडी सुरग निकली वह मकान के दक्षिण भाग मे थी उसमे होकर पाडव निकल गये। तथा उनकी सेवा में रक्खे गये दास दासी सब जलकर भस्म हो गये। यह देख पाँडव विचार करने लगे देखो यह दुष्ट दुर्योधन का नीच कर्म हमको मायाचारी करके जीते जी जलाने में कमी नही रक्खी। इसने हमको नष्ट करने की भावना से ही यह कुकृत्य किया है। जब पाडवो को ठहराया गया था तब विदुर को खबर मिल चुकी थी की यदि कोई आपत्ति काल आ जावे तो यहाँ पर यह पत्थर लगा हुआ है उसको खोलकर वाहर निकलने का रास्ता है। जब वाहर चारो ओर से आग लग गयी तव वे सव पाडव व कुन्ती माद्री सहित सातो प्राणी उस सुरग के मार्ग से चल कर हस्तिनापुर से कुछ दूरी पर निकल गये। जब सवेरा हुआ और लाख के महल को जलता हुआ देखा तव सव लोग हाहाकार शब्द करते हुए रो रहे थे कि हाय पाडव व उनकी माता जल गये यह समाचार दुर्योधन ने भी सुना तव दिखावटी खेद प्रकट करने लगा। कहने लगा कि कैसे महल मे आग लग गयी। मन मे तो आनद परन्तु लोग दिखाई के लिये मुर्छा खाकर जमीन पर पड़ गया। और रोने लगा हाय पाडव हाय माता कुन्ती हाय माता माद्री इत्यादि। तथा सब कौरव दुख करने लगे। तत्पश्चात दुर्योधन विचार करने लगा कि चलो अब तो हमारा कांटा निकल गया अब तो सौ भाईयो सहित राज्य करूंगा क्योकि वैरी पाडव तो महल मे

जल ही गये। दुर्योधन ने पांडवो का राज्य भी अपने राज्य में मिला लिया और राज्य करने लगा। प्रजाजन पांडवों के वियोग व मरण के विषय में अत्यन्त अधीर व्याकुल हो गये थे। मानो बिना मणि का सर्प व्याकुल हो जाता है। बिना पानी कमल का तालाब, बिना चन्द्रमा के रात्रि, बिना मेघों के वर्षाकाल, बिना पानी के जलद इस प्रकार शोकातुर हो इस प्रकार तड़फडा रहे थे कि जिस प्रकार बिना पानी के मीन, तड़फडाती है उसी प्रकार सब जनता में पांडवों के वियोग में तड़फडाहट व कोलाहल मच रहा था, स्त्रियां उनके वियोग में अपने गोद के बच्चों को दूध पिलाना भी भूल गई थीं। उधर पाचों पांडव जोगियों का रूप धारण कर भ्रमण करते हुए राजा द्रुपद की पुत्री द्रोपती के स्वयंबर में जा पहुंचे वहाँ उनकी वेशभूषा सब तपस्वियों जैसी थी। जब वे स्वयंवर मंडप में जाने लगे तब पहरेदारों ने रोका कि यहाँ पर राजकुमारो का कार्य है यहाँ योगियों का क्या कार्य तब वे समझाकर भीतर गये। सभा मण्डप में बड़े-बड़े धीर वीर राजे महाराजे विराज रहे थे। वहाँ पर एक तेल का भरा हुआ कढाव रक्खा था उसके कुछ दूरी पर मीनाकार का यंत्र रक्खा था उसकी परछाई उस कढाई के तेल पर पड़ती थी। राजा द्रुपद की प्रतिज्ञा थी कि जो राजकुमार इस कढाही में पडती हुई छाया को देख कर मीन पत्र को बेधेगा उसके साथ मै अपनी सुन्दर कन्या का विवाह कर दूंगा। द्रौपदी भी वर माला लिये हुए खड़ी थी अनेक राजा लोग क्रम-क्रम से अपनी हुंकार करते हुए आते थे तथा उस परछाई को देख कर उस मीन पत्र मे वाण मारते थे परन्तु कामयाब नही होते थे। कोई कहता था मैं अभी इस पत्र का भेदन करे देता हू कोई कहता मैं करूगा कोई कहता था कि मेरे समान धनुषधारी दूसरा कोई नही है। इस प्रकार मन में अहंकार करते हुए धनुष बाण हाथ में ले ले कर उठते थे और मीन पत्र को भेदन न करते हुए-निराश होकर अपने अपने स्थान पर जा बैठते थे दुर्योधनादि सब भाईयों ने तथा कर्ण आदि योद्धाओं ने मीन पत्र को भेदन नही कर पाया। तब द्रुपद राजा कहने लगा कि अब सब राजा हताश हो गये क्या कोई राजा नहीं रहा क्या नि:क्षत्रिय देश हो गया जिससे यह मीन यत्र भेदा नही गया इस क्षत्रिय पन को धिक्कार हो। ऐसे कठोर वचन युधिष्ठर आदि पाडवों ने भी सुने तब युधिष्ठिर महाराज कहने लगे कि आप हताश मत होइए। हम जोगियों के बालको का तो वैभव देखिये हम इस मीन पत्र को चन्द मिनट में भेदन कर नीचे गिरा देवेंगे। इतना कह कर अर्जुन हाथ में धनुप बाण उठाकर खडा हुआ और कढाव के तेल में से परछाई देखते हुए वाण का निशाना लगाया और मीन पत्र को भेदन कर दिया। यह देख द्रौपदी जी ने सोचा कि यह योगी पुत्र ही मुझे पसद था वही मेरे को मिल गया यह विचार करती हुई जहाँ पर पाँचों भाई बैठे थे वही माला गले मे डाली तब माला टूट गई जिससे उसके फूल पाँचों पाण्डवों पर पड़े तो लोग कहने लगे कि द्रौपदी जी ने तो पाचों भाइयों को अपना वर चुना है। द्रौपदी जी को पंच भरतारी कहते थे। इस प्रकार द्रौपदी जी का विवाह अर्जुन के साथ हो गया। यह देख दुर्योधन को सहन नही हुआ और कहने लगा कि यह जोगियो का पुत्र राजकुमारी को व्याह कर ले जावे। तुम सरीखे क्षत्रियो को धिक्कार हो। ऐसा सुनते ही राजा लोग

अपने-अपने युद्ध के साज बाजे सम्हारने लग गये। तथा कौरवों की सेनाये भी युद्ध भूमि मे आगई। यह देख द्रुपद घबडाने लगे अब क्या करना यह देखकर युधिष्ठर महाराज बोले राजन् आप अधैर्य मत होइये हम को एक रथ और सारथी दीजिये यह सुनकर राजा ने रथ सारथी व सेना दे दी सेना को साथ लेकर अर्जुन रथ मे बैठकर युद्ध में जा उतरा। युद्ध का नगाडा बजने लगा तथा युद्ध होना चालू हो गया जिसमें पाडवों की जीत हुई तथा राजा लोग अपने-अपने प्राण लेकर भागने लग गये। तथा कौरव भी पीछे को हटने लग गये तब अर्जुन नें विचार किया कि अपने सब बांधव है इन से क्यो व्यर्थ लडना यह विचार कर एक बाण में पत्र लिख कर भीष्म पिता के रथ मे चला दिया उसको देख भीष्म पिता ने पढा और शंख फूक दिया युद्ध बन्द हो गया पाडवो की विजय हुई। अब कौरवो को पाडवो के जीवित रहने का पता लग गया था। कौरव पाडवो को अनेक प्रकार से सबोधन करके हस्तिनापुर ले आये और उनका आधा राज्य वापस दे दिया पाडव तथा कौरव अपना-अपना राज्य कार्य सम्हालने लग गये। एक दिन दुर्योधन नें मायाचारी पूर्वक पाडवो को हस्तिनापुर बुलाया और कहा पासा लेकर दिल बहलाने के लिए जुआ खेले। इस प्रकार दुर्योधन व युधिष्ठिर दोनो जुआ खेलने लगे।

यद्यपि दुर्योधन जुआ बडी चतुरता पूर्वक खेलता था परन्तु भीमसेन जब वह पासा फेकता तब हुकार कर देता था जिससे पासा उलटा पड जाता था। यह देखकर दुर्योधन विचार करने लगा कि इस प्रकार यह काम नही बनेगा। तब उसनें किसी काम के बहाने से भीम को बाहर भेज दिया, भीम को बाहर गये बहुत देर हो गई इधर दुर्योधन की बन पड़ी और जीत का पासा पडने लगा। युधिष्ठिर ने पहले अपना खजाना दाव पर लगाया उसको हार गये फिर देश को, राज्य को हार गये, फिर क्या था उन्होने हाथी, घोडा, वाहन, गाय भैस आदि दाव पर लगाये वे सब हार गये। तथा अतपुर का सब सामान हार गये और स्त्रियो के आभूषण भी हार गये। इतने मे हुकार करता हुआ भीम वहा पर आ पहुँचा तब उसनें युधिष्ठिर को अपनी सारी सम्पत्ति को हारा हुआ देखा। तब वह दुर्योधन की सारी चालबाजी समझ गया और जान लिया कि दुर्योधन ने मुझे बडा धोखा दिया इससे भीम बहुत दु:खी हुआ। और अपने स्थान पर चले गये। जब दूसरा दिन हुआ तब दुर्योधन ने कहलवाया कि अब तुम यहा से चले जाओ यह राजपाट सब हमारा है। सब आभूषण हमारे है इतना कह कर दूत चला गया। तत्पश्चात दुस्सासन द्रोपती जी के वस्त्राभूपण लेनें के लिये गया और सब के सामने द्रोपती जी का चीर खीचने लगा यह बात पाडवो को अच्छी नही लगी। द्रोपती का चीर शील के प्रभाव से बढ गया और दुस्साशन द्रोपती को नगी करनें में समर्थ नही हुआ और असफल ही रहा। दुर्योधन की आज्ञा प्रमाण पाँडव तेरह वर्ष के लिए जंगल में चले गये और छुपकर रहनें लगें जब बारह वर्ष और एक वर्ष पूर्ण हो गई तब पाडव वापस हस्तनापुर आये और अपना राज्य वापस मागा तब दुर्योधन ने एक ही उत्तर दिया कि यदि तुमको राज्य लेना है तो राज्य युद्ध करके ही मिलेगा बिना युद्ध के एक सुई की नोक के बराबर भी राज्य नही दिया जायेगा। यदि तुम्हारी भुजाओ मे ताकत है तो ले लो। नही

तो राज्य की आशा छोड़कर जंगल में ही लकडी बेचकर खाओ।

इस प्रकार दुर्योधन का कठोर वचन सुनकर युधिष्ठिर आदि सब पांडवों को बुरा लगा जिससे दोनो तरफ से युद्ध की तैयारियां होने लगी पानीपत के मैदान में अठारह दिन तक घमासान युद्ध हुआ जिसमें दुर्योधन आदि सौ कौरव तथा भीष्मपितामह द्रोणाचार्य कर्ण विदुर इत्यादि महा योद्धा मारे गये तथा अन्य अनेक सहायक राजा व सेना मारी गई। पाडवों की जीत हुई। यह कथा एक जुआ खेलने के कारण ही हुई यदि कौरव तथा पाडव जुआ नही खेलते तो युद्ध नही होता न पाडव को जंगल मे भ्रमण करने के दुःख ही भोगने पड़ते। न छिपकर ही बारह वर्ष रहना पड़ता न युद्ध ही होता था। यह द्यूत व्यसन में प्रसिद्ध पॉडवों की कथा समाप्त हुई।

आगे मॉस भक्षण और उत्पत्ति का कथन करते है।

भूमौनोद्भूवाऽन्विषे किमपि चाग्नौमारुते मापलम्।
आकाशे पृथ्वीधरेऽवनितले पृथ्वीरुहे वल्लियां
पुष्पे वा कमले तथा व्यशनिपत्रे वारिधे वागदे
गोधूमे प्रमुखा च धान्यफलके नित्यं वने मन्दिरे ॥१५०॥

यह मास पृथ्वी के ऊपर या भीतर उत्पन्न नही होता है तथा खेत में उत्पन्न नही होता है। पानी में नदी सरोवरो में उत्पन्न नही होता है। यह मांस अग्नि की सिखा में या अंगार में व तिलगा व अग्नि की लौ में उत्पन्न नही होता तथा अगार में भी मांस की उत्पत्ति नहीं होती है तथा भाड़ भट्टी इत्यादिक में भी उसकी उत्पत्ति नही। यह मास पंखा की हवा में या स्वाभाविक हवा मे व अकालिकी हवा में मेघों की पानी मिश्रित हवा में उत्पन्न नही होता है। भोर पड़ती हुई हवा मे भी उत्पन्न नही होता है। आकाश में भी कही उत्पन्न होता होगा सो भी नही है, पहाड में या पहाड के मध्य मे या पहाड़ की चोटी पर कही भी मास की उत्पत्ति नही होती है। वृक्षों की जड़ के अन्दर या नीचे व वृक्षों की डालियो टहनियों मे पोइयों व पर्वो में उत्पन्न नही होता है। वेलों मे बेल के फूल व पत्तो में व पेड़ की जड़ों में भी मास की उत्पत्ति नही होती है। फूलो में कमलो में भी नही कमल की पखुड़ियों व केवड़ा मोंगरा गुलाब गेंदा, रातरानी, इत्यादि के सुगधित फूलो में भी मास उत्पन्न नही होता है। कमलिनी के पत्तो में, वेल मे, जड़ो मे भी नही। समुद्र व औषधियो में मास उत्पन्न नही है। गेहूं, जौ, ज्वार, चना, बाजरा, मटर, मूंग, इत्यादि धान्यों में मास की उत्पत्ति नहीं। तथा मोसम्मी, सतरा, अनार, नारियल, आम इत्यादि में भी मांस की उत्पत्ति नही तथा बन व मन्दिरों मे भी मास का उत्पत्ति नही है ॥१५०॥

त्रसजीवानां गात्रे रक्तं मासं नान्यत्रं प्राप्तं।
प्राणभ्रष्टे च तथा तच्छरीरसकलंमांसम् ॥१५१॥

लट, चींटी, भोंरा, मनुष्य, गाय, भैस, घोड़ा, वैल, वकरी, मुर्गा, कबूतर, गोह, चूहा, सिह, इत्यादि त्रस जीवों के प्राणों का नाश करने पर ही मांस की उत्पत्ति होती है। इससे भिन्न दूध, दही, घी इत्यादि में व खांड़ मिश्री इत्यादि में कभी उत्पन्न नहीं होता है। यह

मांस तो बकरी आदि प्राणी के शरीर का टुकड़ा है। रक्त और मास ये पचेन्द्रिय प्राणी का कलेवर है और अत्यन्त दुर्गंधमय है।

गौ वृषभश्छागा मृगा पाठीन मकर कुक्कुट गात्रेषु।
कापोतादि खगानां वा प्राणक्षये जात पलम्॥१५२॥

यह मास गाय, वैल, भैस, भैसा, व बकरी, बकरा, मेष, भेडा, सांवर, नील, रोज, सूकर, बानर, हरिण, तथा मछली, मगर, कच्छप, केकड़ा, तथा मुर्गा, मुर्गी, कबूतर, तीतर, हस, इत्यादि अनेक पशु-पक्षियो के शरीर का मल है और उनके प्राणो का नाश करने पर उत्पन्न होता है। अथवा प्राणो के नाश होने पर उनके शरीर को छेदकर टुकड़े करने पर ही मास मिल सकता है अन्यथा मास की प्राप्ति नही हो सकती है। इसलिये दयावान जीव इस मास को कैसे ग्रहण करेंगे ?

स्पर्श मात्रेणमृयन्ते मांसपेशीमनत सुतोभूतं॥
तज्जाति तत्सादृशं त्रसकायका जांतप्राणिनः॥१५३॥

जिस देहधारी के शरीर का मास है उसके आकार के धारक क्षुद्रभव के धारक सम्मूर्छन निगोदिया जीव प्रति समय उत्पन्न होने लगते है। उस जाति के जीव उत्पन्न हो जाते है वे सब मास के छूने मात्र से नष्ट हो जाते है (मर जाते है)। पुनः और वैसे ही जीव उत्पन्न होने लग जाते है। व पकाते समय मर जाते है जब पक जाता है तब भी उस मास के टुकड़े में उत्पन्न हो जाते है। वे सब जीव त्रसकायक दो इन्द्रियादि ही होते है। यह प्रथमतः पचेन्द्रिय प्राणी के शरीर का मल है और उसकी उत्पत्ति भी त्रस जीवो के अशुद्ध मलों के द्वारा हुई है। जीवो के घात करने पर ही मास की प्राप्ति होती है वह मास अशुद्ध मलों का पिण्ड होने के कारण ही दुर्गंधमय होता है। जब तक हिसामय व दयाहीन क्रूर परिणाम नही होगे तब तक जीवो का रक्त पात कौन करने को समर्थ होगा ? जहा दया, अहिसा, क्षान्ती होगी वहा क्या जीवो के प्राणो का विनाश किया जा सकता है ? नही किया जा सकता है।

अस्यस्पर्शो न मास नोच्चकुलोद्भूवो कथंमस्नुते॥
अन्तिभील चांडालास्तेऽपि दुष्कर्मण वध्यते॥१५४॥

जो उच्च कुलों में उत्पन्न हुए है जो अपने कुल जाति धर्म को श्रेष्ठ मानते है वे मास को कैसे स्पर्श करते है। जब स्पर्श करने मे ही दोष उत्पन्न होता है तब मांस खाने में क्या दोष उत्पन्न नहीं होगा ? अवश्य ही होगा। यदि भील चाण्डालादि नीच कुल जाति वाले खाते है तो वे भी पाप बध से बच नही जाते है उनके भी पापो का बंध अवश्य ही होता है।

- मांस खाने वाले के भावो में से दया क्षमा दूर भाग जाती है।

मातिष्ठेयुर्मनसि मृदुता क्रूरता शासनैवं
कामक्रोधोद्भूवममित माशक्तता मांसरक्ते॥

अन्तारी मासिक सरजसार्कि च दृष्टं सुदूरं,
मृत्युं जातं जनकससुतौ पातकं द्वादशंयौ ॥१५५॥

मांस भक्षण करने वालों के हृदय में से दया निकल जाती है उनके हृदय में मृदुता नही रह जाती है। क्रूरता और कठोरता अपना पूर्णरूप से अधिकार जमा लेती है। क्रोध मान, माया और लोभ कषाये बढने लग जाती है। मास के खाने से व रक्त के खाने से आसक्तता बढ़ जाती है और काम क्रीडा करने की इच्छाये अधिक मात्रा में बढती जाती है। तथा शरीर में रक्त की वृद्धि अधिक हो जाने से रक्तचाप रोग उत्पन्न हो जाता है। जिससे बेहोशी बढ़ने लग जाती है। इसी प्रकार अण्डा भी एक मास का ही पिण्ड है वह भी बिना रज वीर्य के उत्पन्न नही हो सकता है। जब उसमें जीव उत्पन्न हो जाता है तब ही वह माता के गर्भ गृह से बाहर आता है और उसको नर या मादा दोनो ही क्रम से अपने पखों की गर्मी देते है तब वह अण्डा के भीतर रहने वाला जीव वृद्धि को प्राप्त होता है। और अण्डा की मर्यादा पूर्ण होते ही अण्डा फूट जाता है उसमें से एक जीव उत्पन्न होता है वह भी मास के समान ही है। उसके फोड़ने पर उस अण्डे के अन्तर मे रहने वाले जीव के प्राणी का नाश हो जाता है। यदि यह कहते है कि आज अण्डा तो बिना वीर्य के ही उत्पन्न होने लगे है उनके लिये हम कहते है कि बिना वीर्य के अण्डा उत्पन्न होते है तो पत्थर या माटी में क्यो नही उत्पन्न किये जाते है। दूसरी बात यह है कि वीर्य दो प्रकार का होता है एक स्वजातीय पुरुष का एक क्रित्रिम जो सूई या नली के द्वारा उनकी योनिस्थान मे पहुंचाया जाता है जब तक उनके दोनों प्रकार के वीर्य में से एक प्रकार का वीर्य नही पहुचेगा तब तक मुर्गी या कबूतर हस इत्यादि पक्षी गर्भाधान नही कर सकते है। यदि अण्डे और मास खाने की भावना है तो तुम्हारे घर मे वृद्ध माता-पिता भाई-बेटा मर जाने पर उनका सूतक क्यो बारह दिन तक मानते हो क्योकि वह जो तुम दूसरे का शरीर काट कर तथा उसको पकाकर खाते हो वहक्या सबनही है वहभी तो एकजीवका मुर्दा ही है फिर उस मुर्दा को घरमे लाकर आप स्वय नही खाते है यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। दूसरी बात यह भी है कि जब तुम्हारे घर में माता, बहन, स्त्री, पुत्री, इत्यादि मासिक धर्म से रजस्वला हो जाती है तब उनको देखना भी स्वीकार नही करते हो उनको दूर-दूर कहते हो और उसको छूत मानते हो। अशुद्धता मानते हो ? जब घर मे कोई मर जाता है या सूर्य चन्द्र ग्रहण पड़ जाता है तब आप सूतक मानते हो तथा धर्म कार्यो का पालन करना बंद कर देते हो कहते हो कि अब हम मन्दिर व वेद को स्पर्श करने के योग्य नही है हमारे सूतक या पातक हो गया है। तब दूसरे देहधारी के शरीर को शव नही मानते हो क्या ? वह भी तो शव ही है क्या उसका पातक नही लगता है और उसको अपने मुख में या पेट में उतार लेते हो इसका तात्पर्य यह हुआ कि आपने अपने पेट को स्मशान बना लिया है। इस अविवेक की दशा को धिक्कार हो ॥१५५॥

भ्रष्टं वा अभ्रष्टयं वा हिंसा सर्वत्र सति रक्तास्रवे
कथं स्वाद्यं न पलं दुराशय च मरणान्ते वा ॥१५६॥

जो प्राणी अपनी आयु को पूर्ण कर मरा हो अथवा दूसरों के द्वारा मारा गया हो

उसके मांस को छूने व खाने पर सब जगह सब काल मे हिसा तो अवश्य ही होती है। उस मास मे तो हमेशा रक्त बहता ही रहता है बिना रक्त मास का नही रह सकता है रक्त और मास में कोई अन्तर नही है एक ही है भिन्न नही है। वह मास स्वादिष्ट नही हो सकता है। जो मास खाते है उनका अत समय मे उनके भावो मे आर्त रौद्र ध्यान की वृद्धि होती जाती है तथा आर्तरूप खोटे परिणाम हो जाते है जिसके कारण जीव दुर्गति को प्राप्त होते है। इसलिये भव्य जीवो के योग्य यह मास खाना नही है। मास भक्षण करने पर द्रव्य और भाव दोनो तरह की हिसा होती है। और सकल्पी हिंसा होती है।

मात्र स्थूलं व्याधिविभव क्रूरता सततं प्राप्तं।
मांस भक्षका. यान्ति नरकद्वारं किं धार्मिकाः ॥१५७॥
वक सौरसेनौ नृपौ मांसभक्षणे जातं सुप्रसिद्धौ।
तेऽपि पातं नारके तव गति किं न मांस भक्षणात् ॥१५८॥

मास खाने वाले का शरीर मोटा स्थूल हो जाता है तथा शरीर लाल हो जाता है परन्तु उसकी उष्णता शरीर को निर्बल बना देती है। जिससे वह खाने वाला निर्बलहो जाता और मास खाने वाले के शरीर मे अनेक प्रकार के रोग का निवास स्थान बन जाता है। एक तो शरीर कमजोर होता है दूसरे क्रूरता बढ जाती है तीसरे कामवासनाये बढ जाती है मास खाने वाला नरक गामी होता है। हे भव्यो मास को धार्मिक जनो को क्या खाना योग्य है? नही है। इस मास के खाने के कारण वक राजा तथा सौर सेन राजा मास खाने मे प्रसिद्ध हुए थे वे मरण कर सातवे रौरव नामक नरक वासी बन गये तथा तैंतीस सागर की आयु को प्राप्त हुए थे। तो तुम भी विचार करो कि तुमको मास खाने से क्या स्वर्ग मिलेगा? नही मिलेगा नरक ही मिलेगा यह आगम प्रसिद्ध है। इसलिये अपवित्र मांस को किसी के कहने पर या सोवत मे आकरके भी कभी नही खाना चाहिये। अन्य वेद पुराणो में भी कहे गये श्लोक दिये है। १५७।१५८।

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वत मस्तके।
ज्वाला माला कुले विष्णुः सर्वे विष्णुमय जगत् ॥ १ ॥
मत्स्य कूर्मो बराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ॥ २ ॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च विष्णुः सम्पूज्य भक्तितः।
मत्स्यादीना कथं मांसं भक्षितुं कल्प्यते बुधै ॥ ३ ॥
अल्पायुषो दरिद्राश्च नीचकर्मोऽपि जीविनः।
दुष्कुलेषु प्रसयन्ते ये नरा मांस भोजिनः ॥ ४ ॥
योत्ति मनुष्यो मांसं निर्दयवेतता. स्वदेह पुष्टयर्थं।
याति स नरकं सततं हिंसा प्रवृत्त चित्तत्वात् ॥ ५ ॥
नाभिस्थाने वसेद् ब्रह्मा विष्णुः कण्ठे समाश्रितः।
तालु मध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे च महेश्वरः ॥ ६ ॥

नासाग्रे च शिवं विद्यात्तस्यान्ते च परोपुर:।
परात्परतरं नास्ति इति शास्त्रस्य निश्चय: ।।
अन्ये चैवं वदन्त्येके यज्ञार्थ योनिहन्यते (भावसंगृह)
तस्य मांसाक्षिन: सोऽपि सर्वे यान्ति सुरालयं ।। १ ।।
यत्कि न क्रियते यज्ञ शास्त्रज्ञैस्तस्यनिश्चयात् ।
पुत्रवध्वादिभि: सर्वैं प्रगच्छन्ति दिवं यथा ।। २ ।।
नाह् स्वर्ग फलोपभोग तृपितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया, (यशस्तिलक चंपू)
संतुष्टात्रण भक्षणेन सततं हंतु न युक्तं तव ।।
स्वर्गेयांति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो,
यज्ञं किं न करोषि मातृ-पितृभि: पुत्रैस्तथाबांधवै:।। १ ।।
नहि हिंसाकृते धर्म: सारम्भे नास्ति मोक्षता ।
स्त्री संपर्के कुत: शौचं मांसभक्षे कुतो दया ।। १ ।।
तिल सर्पय मात्रंवा यो मांस भक्षयेद्द्विज: ।
स नरकान्न निवर्तेत यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।। २ ।।
आकाश गामिनो विप्रा: पतिता मांसभक्षणात् ।
विप्राणां पतिन दृष्टवा तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ।। ३ ।।
आगोपालादि यत्सिद्धं धान्यं मांसं प्रथक् प्रथक् ।
मांस मानये इत्युक्ते न कश्चिद्धान्य मानयेत् ।। ४ ।।
स्थावराजगमाश्चैव द्विधाजीवा: प्रकीर्तिता: ।
जंगमेषुभवेन्मांसं फलं तु स्थावरेषु च ।। ५ ।।
मांसं तु इन्द्रियं पूर्णे सप्त धातु समन्वितं ।
यो नरो भक्षते मासं स भ्रमेत्सागरान्तकं ।। ६ ।।
न कर्दमे भवेन्मांसं न काष्ठेषु त्रणेषु च ।
जीवशरीराद्भवेन्मांसं तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ।। ७ ।।
सर्व शुक्रं भवेद् ब्रह्मा विष्णु मांसं प्रवर्तते ।
ईश्वरोऽप्यस्ति संघाते तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ।। ८ ।।
मासं जीव शरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मासं ।
यद्वन्निम्वो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न व निम्म: ।। १ ।।
कश्चिदाहेति यत्सर्व धान्य पुष्पं फलादिकं ।
मासात्मकं न तत्कि स्याज्जीवांगत्व प्रसंगत: ।। १ ।।
स्थानेऽन्तु पलेहेतो: स्वतश्चाशुचि कश्मला ।
स्वादि लाला वदप्यधु: शुचिमन्या: कथंनुतत् ।। ६ ।।

मांस की उत्पत्ति सात कुधातुओं से निर्मित अपवित्र शरीर के विनाश करने पर ही होती है तथा शिकारी कुत्ते वगैरह की लार भी जिसमें मिल जाती है इस प्रकार के

कारणो से तथा स्वभाव से अपवित्र मांस को आचार विचार हीन नीच व्यक्ति ही खाते हैं तो उसके विषय मे कुछ कहना व्यर्थ है। परन्तु अपने को श्रेष्ठ और पवित्र मानने वाले उच्च वर्ग के व्यक्ति उस मास को खाते है यह बडा ही आश्चर्य है।

हिंसा स्वयं मृतास्यापि स्यादश्नन् वा स्पृशनं पलं।
पक्वापक्वा हि ततो पेश्यो निगोदौघसुतः सदा ॥७॥

मास पेशी के टुकडे में अनन्त निगोदिया जीवों की हमेशा उत्पत्ति होती रहती है। यह मास कच्चा हो अथवा पकाया हुआ हो सभी अवस्थाओं में वनस्पतियो की तरह प्रासुक नही हो सकता है क्योकि उसमें भी निगोदिया जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। इसलिये अपने आप मरे हुए अथवा दूसरे के द्वारा मारे गये प्राणी के मांस के भक्षण और स्पर्शन से भी द्रव्य हिंसा होती है तथा खाने से भावो में क्रूरता उत्पन्न होती है इसलिये भाव हिंसा भी होती है ॥७॥

प्राणिहिंसार्पितं दर्पमर्पयेन्तरसंतराम् ।
ररयित्वा नृशंसः स्वः विवर्तयति संसृतौ ॥८॥

मांस की प्राप्ति प्राणियो के घात करने पर होती है और उसमें हर समय जीवो की उत्पत्ति होती रहती है। और मरते भी रहते है। इसलिये मास भक्षण करने व कराने वाले का हृदय दयाहीन हो जाता है इसमे इसके द्वारा सदैव क्रूर कर्म किये जाते है इसलिये भक्षण में भाव हिंसा भी होती है मास खाने वाले धर्म रहित होकर ससार में परिभ्रमण करते है।८॥

राजा सौरसेन की कथा

भगवान पुष्पदन्त के जन्मोत्सव से पवित्र काकदी नगरी में श्रावककुलोत्पन्न सौरसेन नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा विद्वान नीति न्याय व धर्म और कुल मर्यादा का जानने वाला था उसने मास त्याग नाम का व्रत धारण कर लिया था पुनः वेद वादी वेदान्तियो के बहकावे में आ गया और मास त्याग व्रत को छोड दिया परन्तु लोकापवाद के कारण जैसा का तैसा रहता था। वह लोकोपवाद से डरता था राज्य कर्मो मे जिसका मन लगा रहता था यह भी कारण होने से। उसके रसोइया का नाम कर्मप्रिय था। एकान्त मे विलो मे रहने वाले तथा जमीन पर विचरने वाले व आकाश में उडने वाले प्राणियों को मारकर लाता था और उसका मास पकाकर रख देता था परन्तु राज्य कार्य से समय न मिलने के कारण वह मास को नही खा पाता था।

वह रसोईया राजा की आज्ञा के अनुसार रोज मांस पकाता था जब राजा नही खाता तो वह स्वय ही उसको खा जाता था। एक दिन वह रसोईया जगल में गया वहाँ हिरण आदि कोई जानवर तो मिला नही परन्तु एक सर्प दौडता हुआ दिखाई दिया और उस सर्प को रसोईया ने मारकर उसका मांस बनाया और राजा सौरसेन को रसोई घर तक अवकाश नही मिल पाया परन्तु उस मांस को रसोईया ने पकाकर खा लिया जिससे मरण को प्राप्त हुआ और मरकर स्वयभूरमण नाम के समुद्र में महाकायका धारण करने वाला महामत्स्य

हुआ जिसका शरीर एक हजार योजन लम्बा तथा पाँच सौ योजन मोटा था। कुछ दिन के पीछे राजा सौरसेन भी मरण कर स्वयंभूरमण समुद्र में निमिंगल मत्स्य के कान में तडुल नाम का मत्स्य मांस खाने के सकल्प मात्र से पैदा हुआ। उसका शरीर शालि चावल के समान था महामत्स्य जब अपने मुख को फारकर सोया करता था तब छोटे बड़े सब मत्स्य उसके मुख में प्रवेश करते और बाहर निकल जाते थे। वह तदुल मच्छ कान में से देखा करता था। अरे यह कैसा मूर्ख है जो इसके मुख में आये हुए को भी नही खाता है। जितने जलचर आते है वे पहाड़ की कदरा के समान निकल कर चले जाते है। यदि मै इतने बड़े शरीर का धारी होता तो सब जीवो को खालेता। ऐसा अपने मन में विचार करता था कि मै सब को ही खालेता एक को भी नहीं बचने देता। यह सालिशिक्थ मच्छ उस विशाल काय मच्छ के कान के मैल को ही खाया करता था। विचार करता रहता था कि दैव वश मेरा इतना बड़ा शरीर नही हुआ। यदि इतना बड़ा शरीर हो जावे तो मै सब समुद्र को सूना कर देता।

इस सकल्प को करके वह तदुल मच्छ अल्पकाय सब मगर मच्छों की खाने की भावना के कारण मर कर सातवे नरक मे तैंतीससागर को आयु का धारक नारको हुआ। और समस्त मछलियो के खाने के कारण बड़ा मच्छ भी सातवे नरक की तेतीश सागर की उत्कृष्ट आयु को बाधकर मरा और सातवे नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ उन दोनों को जाति स्मरण व भव प्रत्यय अवधि ज्ञान हुआ जिससे अपने पूर्व भवों का ज्ञान हो गया। वे दोनों आपस में कहने लगे कि तन्दुल मच्छ मैंने पूर्व भव में बड़ा भारी पाप उपार्जन किया। जिसके कारण में इस सातवे नरक में आया हूं। यह तो ठीक हो था परन्तु तुमतो मेरे कांनका मैल खा कर गुजर करने वाले थे फिर तुम यहाँ कैसे आगये। यह सुनकर तन्दुलमच्छ कहने लगा कि भाई मैंने खोटी भावनाये की तुम सोते थे मैं जगता था तब मैं विचार करता रहता था यह बड़ा ही मूर्ख है कि कितने ही जीव आये और निकल कर चले गये यदि मै ऐसा होता तो सब मीनों को खा जाता ऐसी मेरी खोटी भावना करने के कारण मै नरक में आया हुआ हूँ। इस कथा का तात्पर्य यह है कि मास खाने वाला तथा मांस खाने को भावना करने वाला उससे पहले नरक में चला जाता है इसलिए न मास खाना चाहिए न खिलाना ही चाहिए खाने वाले तथा खिलाने वाले दोनों ही नरकवासी होते है जिससे अनंत ससार के दुःखों को प्राप्त होते है। न मास खाने का संकल्प करना चाहिए। सकल्प करने वाला सौरसेन राजा सातव नरक गया।

आगे वक राजा की कथा कहते हैं

श्रुतपुर नगर में वक नामक राजा रहता था। वह बड़ा ही चतुर प्रशासक था परन्तु धर्म हीन था। वह किसी कारण से मांस खाने लग गया था। वह अपना अधिकांश समय मांस खाने में ही लगा दिया करता था। तथा उसका रसोइया उसकी इच्छा के अनुसार हो मास पका-पका कर खिलाया करता था। वह निर्दयी रसोइया नित्यप्रति जीवों का घात कर उनका मास निकाल कर पकाता था और उस मांस को वक राजा बड़े प्रेम से खाया करता था। एक दिन रसोइया बाजार में से मांस लाया और उसको रसोई घर में रख गया और कार्य वश कहीं

दूसरी जगह गया था कि एक बिल्ली वहाँ आगयी और उस मास को खा गई। जब रसोइया रसोई घर में आया तो देखता है कि वहाँ रसोई घर में मांस नही है। यह देखकर वह बहुत हैरान हो गया अब क्या करना चाहिये ऐसा विचार करने लगा कि यदि राजा वक को मास खाने को नही दिया तो वह नाराज होगा और दण्ड देवेगा तथा नौकरो से भी निकाल देगा। यह मन मे विचार कर वहाँ से मास की खोज मे निकल पड़ा और इधर-उधर चारो ओर देखता जाता था कि कही कोई जीव का मास मिल जावे परन्तु कुछ भी दिखाई नही दिया। जब वह श्मशान भूमि में पहुचा तो क्या देखता है कि कुछ आदमी मृतक बच्चे के शव को भूमि में गाड रहे है। मुर्दे को जमीन में गाड़ते हुए देखा। जब वे बच्चे के शव को गाड़ कर चले गये तब उसने उस बच्चे के शव को भूगर्भ से वाहर निकाला और कपड़ा के अन्दर लपेट कर राजमहल में पहुच गया। उस रसोइया ने उस बालक के शव के टुकड़े कर मास निकाला और उसको पकाया और राजा वक को खाने के लिये दे दिया। वह मास खाने में वक को बहुत स्वादिष्ट लगा। वह विचार करने लगा कि ऐसा मास तो मैंने कभी भी नही खाया है यह तो बड़ा ही स्वादिष्ट है। वक रसोई जीम कर चला गया और कुछ समय के पीछे वक ने रसोइया को बुलवाया तब रसोइया अत्यन्त भयभीत हुआ कांपता-कापता वक के पास गया और नमस्कार करके रसोइया कहने लगा कि मेरा कसूर माफ हो आज जो पशु का मास लाया था उसको बिल्ली खा गई तब मैने हतास होकर श्मशान की ओर गया कि एक किसी का बच्चा मर गया था लोग उसको दबा कर चले गये तब मैं उसको उखाड़ कर ले आया और उसके मास को पकाकर आज आपको खिला दिया यह नर मास था। तब वक राजा बोला कि आज से मुझको रोज नर मास ही खिलाया करो। राजा को आज्ञा पाकर रसोइया निर्भय हो गया। अब तो वह शाम के समय जहाँ तहाँ गलियो में जाता था और बच्चो को लड्डू बाँटा करता था जब कोई एक बच्चा रह जाता था तब उसको ले आता था और राजा को उस बच्चे के मास को निकाल कर खिला दिया करता था। इस प्रकार वह पापाचारी रसोइया नित्यप्रति यही कार्य करने लग गया। तब सारे शहर के बच्चे कम होने लग गये। यह देख नगर वासियो ने वक राजा से शिशु चोरो का पता लगाने के लिए कहा तब उसने कहा कि हम इसकी खोज शीघ्र ही लगावेंगे। इधर नगर वासियों ने शिशु चोर का पता लगाने के लिए कुछ गुप्तचर आदमियो को नियुक्त किया। एक दिन शाम का समय था कि वक राजा का रसोइया बच्चो को लड्डू बाँटता हुआ मार्ग से गुजरा। बच्चे भी उससे लड्डू ले लेकर खा रहे थे जब अंधेरा हो गया तब उस रसोइया ने एक बच्चे को घसीट लिया तब उन गुप्त लोगो ने रगे हाथ उस रसोइया को पकड़ लिया तब सब लोग एकत्र हो गये और रसोइया की खूब मरम्मत की तब रसोइया बोला कि इसमे मेरा कोई दोष नही क्यो कि यह काम करते हुए मुझे बहुत दिन हो गये। यह कार्य मैंने स्वयम् की प्रेरणा से नही किया यह वक राजा की आज्ञा से ही किया गया है राजा की ऐसी दुष्टता पूर्वक वृत्ति जान कर सब लोग असतुष्ट हुए वे विचार करने लगे कि यह दुष्ट राजा प्रजा का क्या हित करेगा जो प्रजा की होने वाली पीढ़ी को

आप ही खाये जाता है। जिस संतान के लिए हम अपना देश छोड़ कर परदेश गमन कर जाते तथा हजारो आपत्तियों का सामना करते है और धन अर्जन कर लाते हैं तथा धन धान्य सग्रह कर लाते हैं सव अपने वंश व बच्चों के लिए ही करते है ऐसी दशा में हम लोगों का यहाँ पर रहना ठीक नहीं यदि रहे तो सर्वनाश हो जायेगा।

सव जनता ने आपस मे विचार. विमर्श किया और निश्चय किया कि इस दुष्ट पापाचारी को अव शीघ्र ही राजधानी से निकाल देना चाहिए। हम इस पापाचारी राजा को कैसे रख सकते है और क्या सेवा कर सकते है। अगले दिन सब लोग एकत्र होकर वक राजा के दरवार में गये राज सिहासन पर आरूढ वक राजा को प्रजाजनों ने गद्दी से नीचे उतार दिया और उसके पुत्र को राज सिहासन पर वैठाया। राजा वक भी यत्र तत्र नर मांस की खोज में भ्रमण करने लगा। जव कही कोई मनुष्य उस वक को मिल जाता था तो वह नर मांस भक्षी एकान्त में पकड़ कर उसको मार कर खा जाता था। श्मशान भूमि में जहाँ कही मुर्दा मिल जाता था तो उसके वह कच्चे और पक्के मांस को खा जाता था।

इस प्रकार उसकी क्रिया देखकर लोग उसको राक्षस कहने लगे थे। वह यहाँ तक क्रूर हो गया कि कोई आदमी उसके सामने आ जाता था तो उसको जीवित नही छोड़ता था। ठीक ही है ऐसे खोटे विचार और भावनाये वैसो ही हो जाया करती है। एक दिन देशान्तर में भ्रमण करते हुए पाचों पाण्डव उस ही नगरी में जा पहुचे वहाँ एक गरीव वृद्धा के घर पर रात्रि में ठहरे ही थे कि वृद्धा रो रही थी यह वात कुन्ती ने सुन पायी तव कुन्ती ने वृद्धा से पूछा माता जी आप रोती क्यों है यह सुनकर उसने अपनी दुखद कहानी कह सुनाई। उसकी सारी कथा भीमसेन से कह सुनाई भीमसेन कुन्ती माताकी बात सुन कर वह भीम वक के पास जाने को तैयार हो गया और कुन्ती ने वृद्धा से कहा माँ जी मेरे पांच पुत्र है मैं अपने पुत्र को तुम्हारे पुत्र के एवज मे भेज दूगी मेरे चार पुत्र रह जायेंगे तो कोई हर्ज नही प्रभात होते ही भीमसेन वक के पास गया और वक के सामने जा खड़ा हुआ वक ने रोज प्रमाण आज भी समझा और दांत किटकिटा कर सामने मारने को दौड़ा। भीम और वक का घोर युद्ध हुआ अन्त में भीमसेन ने अपने गदा का प्रहार किया जिससे वक धरणी पर लोट पोट हो गया तव एक लात और मारी लात मारने पर हाय-२ कर रोने लगा तव भीमसेन ने उसकी छाती पर पैर रख कर वहुत धमकाया और मांस खाने का त्याग करवाया फिर भी पाप कर्म के कारण दुर्गतिगामी वन गया। इसलिये सज्जनों को मास कभी भी नही खाना चाहिए। हे भव्यो तुम्हारे दांत भी मांस खाने के योग्य नही है। मांस खाने वाले सिह वाघादि मासहारी जीवों के दात नुकीले नीचे-ऊँचे होते हैं। मांस स्वय खाना खिलाना खाने वाले को अच्छा मानना ये सव ही समान पाप के भागीदार होते हैं।

इति मांस भक्षण करने की कथा समाप्त

मद्यपान व्यसन को कहते हैं

कुम्भेनीरेन परिभरित जौ च गोधूममाशा-
वं मुक्तान्नं गलित समलं खाण्ड संयुक्त मद्यम् ।।
मासं पक्ष प्रविशत मलं भूमिगर्भे च तस्य
जीवोद्भूतं प्रभूत इति तद् द्रव्यमग्नौ क्षिपित्वा ।।१५९।।
मृयन्ते ते सर्वे क्षणेऽपि प्रज्वलितं तेषां गात्रं ।।
व्यषेन जलकणाः या नालिका द्वारेण प्रश्रवः ।।१६०।।
तस्मिन्नेवोद्भूताःबहु जीव राशि एकस्मिन् जलकणे ।।
पीते सर्वे रसांगा जीवा खिलाः मृयन्तेऽतदा ।।१६१।।

जब मद्य बनाने वाले एक घडा मे पानी भरकर उसमे जौ और गेहूं ज्वार उड़दादि को उसमे गला देते है तथा उसमे शक्कर या गुडभी डालदेते है एव भूमि में गाड़ देते हैं और मास पक्ष दिन गाड़ कर रखते है तब वे वस्तुये उसमे सड जाती है जिससे उसमें असख्यात जीवो की उत्पत्ति हो जाती है वे सब त्रस दोइन्द्रियादि जीव होते है उसमें चलते फिरते है। उस पानी मे से अत्यन्त दुर्गंध आने लग जाती है क्योकि उस पानी मे पडे हुए धान्य सड़जाने के कारण से जब भूर्गभ से निकाल लेते है और उस घड़े को अग्नि के ऊपर चढ़ा देते है और उसका मुख बद कर देते है। उसमे एक नली लगा देते है जिससे अब अग्नि जलती है तब उसमें से भाप निकलने लग जाती है उस भाप के साथ जो पानी की अश बाहर निकलता है उनको बोतल या अन्य वर्तन मे एकत्र कर लेते है। और जब वह पूर्ण-रूप से जल जाते तथा अग्नि की गर्मी से जो जीव उत्पन्न हुए थे वे सब मर जाते है और अधिक अग्नि जलने से सब जीव उस वर्तन के अदर ही जलकर भस्म भी हो जाते है। इस प्रकार यह शराब की एक बू द मे भी असख्यात त्रस जीवो की राशि उत्पन्न हो जाती है वे जीव उस शराब के पीने से मर जाते है।

विशेष—जब शराब बनाई जाती है तब उसमे मादक वस्तुये डाल दी जाती है जो चना गेहूं ज्वार बाजरा तथा महुआ मुनक्का किसमिस इत्यादि वस्तुओ को एकत्र करके एक घडा मे पानी भरते है उसमे सब वस्तुये भरकर जमीन के अदर गाड़ देते है जब १० दिन पद्रह दिन या महीना होने पर्यन्त वह सब एकत्र की गई पानी मे डाली हुए वस्तुये जमीन मे गाड़ दी जाती है, तब अन्न का अश होने से सब वस्तुये गल जाती है जिससे उस घडा के अन्तर असख्यात जीव विलबिलाने लग जाते है। वे जीव इधर उधर पानी के अन्दर दौड़ लगाने लग जाते है। जब उसकी पचन की मर्यादा चूर्ण हो जाती है तब उस घड़े को जमीन मे से निकाल लेते है और दूसरे वर्तन मे परिवर्तन कर अग्नि पर चढा देते है। और अग्नि की गर्मी लगने व उसमे उबाल आने से सब जीव एकदम मर जाते है। उस वर्तन को चारों तरफ से मुख बन्द करके एक नली लगा देते है। जिसमें हो करके भाप निकलने लग जाती है उसमे होकर भाप के साथ पानी की बूदे आती है जैसी-जैसी अग्नि अधिक जलाई जाती है तैसी-तैसी भाप अधिक बनती जाती है जिससे अधिक मात्रा में पानी अथवा

जीवो के शरीर का पसीना उस भाप के साथ आने लग जाता है उसको एक बंद मुख के वरतन मे लेते जाते है इस प्रकार यह शराब त्रस राशि के जीवों के शरीर का ही पसीना है जिसके पीने मात्र से व स्पर्शन मात्र से भी दोष उत्पन्न होता है अथवा उस शराब में भी असंख्यात जीवो की उत्पत्ति प्रति समय मे होने लग जाती है। तथा वे जीव पीने व स्पर्शन मात्र में ही उसी समय मर जाते है तथा सूक्ष्म न दिखने वाले दोनों प्रकार के जीव उत्पन्न हो जाया करते है। यहाँ तक देखा जाता है कि जीवों का कलेवर होने से ही उसमें जीवों की उत्पत्ति होती है यह शराब भी मांस पिण्ड के समान ही है। १५९। १६०। १६१।

जीवानां यद्वुक्कं मृतगात्राणां च श्वेदमशुद्धम्।
मादकं चित्तंभ्राम्यं शठतार्विक्रान्तं गात्रे वा ॥१६२॥

यह शराव जीवो का कलेवर है जिसके पीने से मन में भ्रम उत्पन्न हो जाता है और बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है और अविवेकता (शठता) बढ़ जाती है। विचार करने की शक्ति नष्ट हो जाने के कारण वह मूर्ख बन जाता है। जब शराब को पी लेता है तब उससे मस्तक मे गर्मी बढ जाती है। गर्मी के बढ़ जाने व नशा के आने से वह अपने तन की भी सुध भूल जाता है तथा नशा हो जाने पर नालियो में गिरता पड़ता जाता है तथा कुछ वड़-बड़ करता है तथा कुछ गाली गलौज भी करता है। नशा में कुछ का कुछ चिल्लाने लग जाता है पैर कही रखता है और कही पड़ते हैं अथवा नाली या मार्ग या जमीन पर कही भी पड़ जाता है। तव कुत्ते मुख को चाटने लग जाते हैं तथा पेशाब भी कर देते हैं नालियों के दुर्गंध मय पानी को भी स्वाद से पी जाता है। शराब के पीने से गला खुस्क हो जाता है पानी की प्यास और खाने की भूख भी बहुत लगती है तब शरीर की आकृति विचित्र रूप सी हो जाती है। वह नीच ऊँच स्थान को विवेक से शून्य हो जाता है। यह दशा मद्य पान करने वालों की होती हुई देखी जाती है। १६२ ॥ पुनः इसी बात का स्पष्टीकरण कहते हैं।

ऐरेयं पिबन्ति ये तनु धराः भृष्टं रसाँगास्तदा।
कामक्रोध भयंप्रभूतमखिलाः सावद्यमुद्यन्ति वा ॥
वर्धन्ते भ्रमराग मोहमनसि क्रूरं विभावं तदा।
वैदुष्य खलु सत्यकाम विषदमानुष्य विनश्यन्ति ये ॥१६३॥

जो प्राणी शराव पीते हैं उनके पीने में जो शराब आती है उसमें उत्पन्न होने वाले सव जीव एक दम मर जाते है। जिनके पीते ही मन मोहित हो जाता है मूर्छा खाकर जमीन पर गिर जाता है तथा गिड़गिड़ाने लग जाता है पुनः पैरों को फैलाता हुआ गिर जाता है तथा नालियो मे भी पड़ जाता है। तथा उसके कामवासनाये अधिक मात्रा में वढ़ जाती है कि वह अपनी मां वेटी बहन स्त्री के विवेक से शून्य होकर चाहे जिसको पकड़ने को दौड़ने लग जाता है तथा उसके साथ व्यभिचार करने लग जाता है। तथा क्रोध भी अधिक मात्रा मे वढ जाता है जिससे नशा में ही दूसरे जीवों को गालियाँ भी देने लग जाता है तथा मार-पीट भी करने लग जाता है। तथा भयातुर हो जाता है और बुद्धि काम नही करती है कहां जाऊं कहा वैठूं खाना पानी करूं ऐसा बुद्धि मे भ्रम हो जाता है। ये सब वाते उस मद्यपायी

के अन्दर में उत्पन्न हो जाती हैं। भ्रम से अपनें घर द्वार को भी भूल जाता है घर व परिवार परिजनो पर भी वह विश्वास नही करता है। अब क्या करूं, कैसे करू, अब क्या होगा ये मेरा क्या करेंगे, मैं कैसे रहूंगा, मेरी बुद्धि कैसी हो गई है, इस प्रकार भ्रमात्मक चिन्तवन चलता रहता है, नशा के आवेश मे हसता है, नाचता है, कूदता है, तथा कपड़ा भी उतार कर फेंक देता है, अपनी पेशाब को आप ही स्वादिष्ट मानकर पी जाता है, उसके राग की वृद्धि होने लग जाती है।

शराब के पीनें से परिणामो मे क्रूरता बढ जाती है विचार धाराये खोटी हो जाती है। शुभ भावनाये एक क्षण मात्र के लिये भी नही होती है। निश्चय से उनके विद्वत्ता व मर्यादा भी नही रह जाती है वचन भी सत्य नही बोल सकता है उकको यह सुध बुध नही रह जाती है कि मैं क्या बोल रहा हू किसके साथ बोल रहा हूँ। मनुष्य को अपने का भी ध्यान नही रहता है। इस प्रकार दुर्गुणो की वृद्धि होती जाती है ॥१६३॥

निन्दासर्वत्रस्याद् वित्तक्षतिर्नाभिजात दैन्यात् तदा ॥
मद्यपाहंटग्राही चाण्डाल सादृशः शोभते ॥१६४॥

शराब पीनें वाले की सब जगह निन्दा होती है उसका कोई भी विश्वास नही करता है। तथा धन का नाश हो जाता है वह निर्धन भिखारी बन जाता है और दूसरों की तरफ दृष्टि डालता है। अपनी दीनता दिखाता है व जाति कुल की व धर्म की मान मर्यादा नही रह जाती अपने पूर्वजों की कीर्ति को नाश कर देता है यह भी कहलवाता है कि अरे कुल मे कडेवा उत्पन्न हो गया कैसा उज्ज्वल धर्मात्मा कुल था कैसे बाप-दादे धर्मात्मा थे उनकी सारी इज्जत को धूल मे मिला दिया। पहले कितना मान था अब मारा मारा फिरता है। यह बड़ा ही हठग्राही है और इसका स्वभाव भी चाण्डाल के समान है अथवा चाण्डाल के समान शोभा को प्राप्त होता है इस मद्यपायी के दुर्गुणो को कहा तक कहा जाय उसके तो सब गुण ही नष्ट हो जाते है और दुर्बुद्धि अपना शासन जमा लेती है जिससे पापाचार की वृत्ति बढ़ने लग जाती है। राजा भी शराब पीने वाले को दण्ड देता है कैद खाने मे बन्द करवा देता है। जब शराबी मनुष्य शराब पीकर शहर की गलियो मे फुट पाथ पर गिर जाते है तब पुलिस की गाडी आती है और उनके दोनो हाथ पैर पकड़ कर लारी मे पटककर थाने मे ले जाकर दण्ड देते है और जुर्माना करते है यदि अधिक मात्रा में पी ली जाय तो यह हलाहल का भी काम करती है मरण भी हो जाता है। दिमाग फैल जाता है। आगे पुन. कहते है ॥१६४॥

उन्मादक द्रव्याणि बहुविधानि दीव्यन्ति न सेव्येयुः।
यद्गुणापहारेयुः उद्घाटयति नरक द्वार ॥१६५॥
यदुकुमारोऽदीव्यत् ऐरेयमपिवन मत्तमव्रजन्।
सा सदग्धं द्वारिका कोपेन द्वीपायन मुनिना ॥१६६॥

उन्माद उत्पन्न करने वाली बहुत सी द्रव्ये हैं जैसे गांजा, भाँग, चर्स, सुलफा, कोकीन, अफीम सब ही शराब के समान ही है ये सब उन्माद को बढ़ाती है और शरीर को

नाकामयाब बना देती है। और मिष्ठान खाने की लालसा बढ जाती है तथा काम सेवन करने की इच्छाये बढ़ जाती है। तथा अफीम यह भी अधिक मात्रा में नशा करती है इसका दूसरा नाम अमल भी है इसका सेवन करने वाला इतना आसक्त हो जाता है कि अपनी धर्म पत्नी को भी बेच देता है तथा अपनी पुत्री से भी यह कह देता है कि बेटा मुझे अफीम लाकर दे वह कहती है कि पिता जी अफीम अमुक व्यक्ति के पास है उसके पास में गई तो वह कहने लगा कि मेरे साथ भोग करो तो मै दे देता हू नही तो नही दूंगा। यह सुन कर वह कहने लगा बेटी कुछ कर मेरे को अफीम लाकर दे ? तब वह लड़की उस जमीदार के पास जाकर बोली अच्छा जो आप की इच्छा होय सो करो यह सुनकर जमींदार बड़ा ही लज्जित हो गया और उसने उसको अफीम दे दी और कहने लगा कि इस नशा को धिक्कार हो जो अपनी बेटी व धर्मपत्नी के शील धर्म की भी परवाह नही करता है। बींड़ी, तम्बाकू, सिगरेट व नीरा सेघू इत्यादि सब नशा करने वाली वस्तुये है। जिनके खाने पीने व धुआँ के लेने से नशा उत्पन्न हो जाता है वे सब वस्तुये भव्य जीवो को नही सेवन करना चाहिये। क्योकि इनके सेवन करने पर लाभ तो रच मात्र भी नही है परन्तु हानि कितनी है इसकी कोई मर्यादा नही रह जाती है। बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है नशा जितने है वे सब ही दुष्परिणामों के ही कारण है और नरक को खोलने वाले है अथवा नरक के द्वार को खोलने वाले है। अथवा इनका सेवन करके दुर्गति का पात्र बनना पड़ता है। नरकों में ले जाने वाले मित्र के समान है ॥१६५॥

इस मद्यपान में यादव कुमार प्रसिद्ध हुए थे कि जिन्होने मदिरा पान किया था और नशे में अतिविह्वल हो गये थे उनको यह होस-हवास नही रहा था कि हम कौन है किसके पुत्र है हम क्या कर रहै है। शराब के नशा मे उन्मत्त हो गये थे और द्वीपायन मुनि को देखकर यह द्वीपायन मुनि रोहिणी का भाई है इसको मारो भगाओ यह द्वारिका नगरी को भस्म करेगा। इस प्रकार चिल्लाते हुए वे सब के सब द्वीपायन मुनि के ऊपर पत्थरो की वर्षा करने लग गये। जब बहुत चोट लग चुकी थी कि द्वीपायन मुनि को एकदम क्रोधरूपी ज्वाला धधकउठी। उनसे कोप दबाया नही गया न उनसे उपसर्ग ही सहनहुआ वह क्रोधाग्नि बढ़ गई जिससे उनके वाये कंधे की तरफ से एक रत्नि प्रमाण लाल सिदूर के रग का पुतला निकला जो नौ योजन चौड़ी तथा १२ योजन लम्बी द्वारिका नगरी को जलाकर अत में द्वीपायन-मुनि को भी जला दिया यह मद्यपान करने का ही दुष्परिणाम है ॥१६६॥

आगे-किसी कवि ने भी कहा है-।

वैरूप्यं व्याधिपिण्डः स्वजन परिभवः कार्य कालातिपातो।
विद्वेषो ज्ञाननाश स्मृति मति हरणं विप्रयोगश्चसङ्गः
पौरुष्य नीचसेवा कुलबल तुलना धर्म कामार्थहा
कष्ठं भोषोडशैते निरुपचय करा मद्यपानस्य दोषाः ॥१॥

मद्यपान करने वाले को शरीर की आकृति बदल जाती है यह एक दोष है। शराबी का शरीर रोगो का समूह बन जाता है। स्वजन का तिरस्कार करने लग जाता है। अपने घर सम्बन्धी व धर्म सम्बन्धी कार्यो को ठीक समय पर नही कर पाता है। अपने स्वजनों से

वैर द्वेष करने लग जाता है ज्ञान का नाश हो जाता है दुर्बुद्धि वढ जाती है, स्मरण शक्ति नही रह जाती है सद्गुणो का भी नाश हो जाता है। पुरुषपना भी नही रहता है नीच दुराचारियो की सेवा करनी पडती है। कुल की मर्यादा व वल की शोभा नष्ट हो जाती है वड़े ही दुःख की बात यह है कि ये सोलह दोष शराव पीने वाले के ही पाये जाते है।

सागारधर्मामृते उक्तम्

यदेकर्विदोः प्रचरन्ति जीवाश्चेतत् त्रिलोकमपिपूरयन्ति।
याद्विविक्ल वाश्चेमम मुचलोक पस्यन्ति तत्कश्य मवश्यमश्येत् ॥४॥
पीते यत्र रसांग जीव निवहा क्षिप्रं म्रियन्ते खिला
काम क्रोध भय भ्रम प्रभृतयः सावद्य मुद्यन्ति च॥
तन्यद्यंव्रतयन्न धूर्तिल परा स्कन्दीव यात्यापद
तत्पायी पुनरेक यादिव दुराचारं चरन्मज्जति ॥५॥

यदि एक वूंद शराव मे रहने वाले जीवों को उड़ाया जावे तो वे तीनो लोको मे न समायें। अथवा तीनो लोको मे जगह नही रहे। विंदुमात्र मद्यपीने से इतने प्राणियो के प्राण घात का दोष लगता है मद्य से मोहित प्राणी इस लोक और परलोक में दु.ख पाता है। इस कारण आत्म कल्याण की इच्छा रखने वालो को इस मद्य का त्याग दूर से ही कर देना चाहिये।

मद्य के रस में असख्यात जीव उत्पन्न होते है उनके पीने से सवका मरण हो जाता है। मद्यपान करने से शरीर व मन मे एक प्रकार की अनुचित उत्तेजना होती है। इस उत्तेजना से मनुष्य अविचारी होकर गम्यागमन अभक्ष्य भक्षण अपेयपान आदि नाना प्रकार के अनुचित कार्यो में प्रवृत्त होता है। माता वहन आदि को भूल जाता है। गुरुजनो के प्रति कोप करता है भयातुर होता है तथा मूर्छित हो जाता है उस मद्य का त्यागी धूर्तिल नाम का चोर शुभगति को प्राप्त हुआ और एक यादव व्राह्मण ऋषि शराव को पीकर दुराचार को प्राप्त हुआ, अन्त मे मरण को प्राप्त कर दुर्गति को प्राप्त हुआ।

आगे कथा कहते है

एक समय श्री नेमिनाथ भगवान का समवशरण गिरनार पर्वत पर विराज रहा था उस समय द्वारिका पुरी निवासी लोग भगवान नेमिनाथ के दर्शन के लिये गिरनार पर्वत पर गये। वहाँ भगवान नेमिनाथ की तीन प्रदक्षिणा देकर समवशरण में प्रवेश किया और भगवानके दर्शन कर पूजा भक्ति करी तथा जल चन्दन पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल लेकर पूजा कर और पूजा करके भगवान के समवसरण में बनी हुई बारह सभाओ जहा मनुष्यो की सभा थी उसमें जाकर बैठ गये तथा स्त्रिओं की सभा मे स्त्रीया बैठ गई। तव श्री बलभद्र ने अपने पूर्वभवो का तथा श्री कृष्ण रूक्मिणी इत्यादि का भवान्तर पूछा। उनके पूछने के पीछे बलभद्र कहने लगे कि महाराज यह द्वारिका नगरी देवोपुनीत बनी हुई है यह कब तक रहेगी कब इसका विनाश होगा? और कृष्ण की मृत्यु कब और किस प्रकार से होगी? यह प्रश्न किये जाने पर श्री नेमिनाथ प्रभु की दिव्यध्वनि खिरने लगी कि हे बलभद्र यह द्वारिका नगरी रोहिणी के भाई

द्वीपायन के द्वारा भस्म होगी। वह भी जब यादव कुमार शराब के नशा में मस्त होंगे वे द्वीपायन मुनि के ऊपर कंकड पत्थरो की वर्षा करेंगे ककड पत्थरों की चोट से घायल हो जाने पर द्वीपायन को क्रोध उत्पन्न हो जायेगा जिससे उनके बाये अग से एक अग्नि का पुतला निकलेगा और वह सारे नगर को भस्म कर अन्त मे द्वीपायन मुनि को भी भस्म कर डालेगा। तथा यह घटना आज के बारह वर्ष बाद होवेगी। और श्रीकृष्ण यादव कुमार जरद कुमार के इसी बाण से जिस बाण को अभी अपने हाथ में लिये हुए बैठा है। मृत्यु को प्राप्त होंगे एक नारायण दूसरा बलभद्र दो ही प्राणी उस अग्नि से बचेंगे।

यह सुनकर रोहिणी का भाई द्वीपायन अपनी द्वारिकापुरी को छोड पूर्व बगाल व बिहार देश की तरफ चला गया और मुनिव्रत धारण कर लिया। तथा अब उस ही देश में तपस्या करते रहे विचार करते रहे कि देखे द्वारिका कैसे जल जायगी। मै नेमिनाथ भगवान की बात को भी झूठी करके बताऊँगा। जब ग्यारह वर्ष बीत चुके थे कि द्वीपायन मुनिराज भ्रमण करते हुए द्वारिका की ओर चले जा रहे थे। उधर श्रीकृष्ण ने जितने मादक पदार्थ थे उनको पहाड़ों मे फिकवा दिया था तथा महुओं के वृक्ष भी बहुत थे जिसके पास में जो गड्ढे थे उनमें पानी भर गया था। मादक वस्तुये मिल जाने व सड़ जाने के कारण वहाँ पर रुका हुआ पानी भी नशीला बन गया था। द्वीपायन मुनि ने जान लिया कि अब तो बारह वर्ष पूर्ण हो गये अब कोई बात का भय नही नेमिनाथ की बात निश्चय ही मैंने झूठी कर दी। परन्तु उस वर्ष में दो वैसाख मास थे जिसको वे भूल गये अब भी मर्यादा बाकी है है यह उनको ज्ञात नही हो पाया था। वे द्वीपायन मुनिराज एक छोटी-सी टेकरी पर ध्यान में नगर के बाहर बैठे थे। उधर यादव कुमार उस जगल में क्रीड़ा करने के लिये गये हुए थे उन सब राजकुमारो को एकदम प्यास लगी जिससे सब ने वह खण्डों में भरा हुआ पानी पी लिया जिससे वे सब यादव कुमार शराब के नशा में मस्त हो गये नशा में आ जाने के कारण वे आपस में धूल फेकते व नाचते-गाते हुए आ रहे थे कि एक टीले पर द्वीपापन को ध्यानस्थ बैठे हुए देखा और कहने लगे कि वही द्वीपायन आ गया जो हमारी नगरी को जलावेगा। इस प्रकार कहते हुए वे यादव कुमार द्वीपायन मुनि के ऊपर उपसर्ग करने लग गये उन राजकुमारों ने ककण-पत्थर मारना चालू कर दिया जिससे द्वीपायन को बहुत चोट लगी जब बेहोश होने लगे तब द्वीपायन की क्रोधाग्नि भड़क उठी और राजकुमारो ने नारायण बलभद्र को भी समाचार दे दिया वे शीघ्र ही दौड़कर आये बहुत विनय की परन्तु उनकी क्रोधाग्नि इतनी बढ़ती चली गई कि जिससे उनके बाये हाथ की तरफ से तेजस पुतला निकला और सारे द्वारिका नगर को जलाकर अन्त में द्वीपायन मुनि के शरीर में प्रवेश करते हुए द्वीपायन को भी जला दिया यह मद्यपान के दोष के कारण ही द्वारिका नगरी भस्म हुई विशेष हरिवश पुराण या पाडव पुराण से जान लेना चाहिये।

मद्यपान करने में एक पादिव सन्यासी की कथा

एक समय एक पादप नामक सन्यासी था वह जाति का ब्राह्मण तथा विद्वान भी था एक दिन वह गगा स्नान करने के लिये निकला, चलते-चलते वह विन्ध्यातटी में जा पहुंचा।

वहा पर कुछ नीच लोग मदिरापान करके नाच-कूद और गा रहे थे और अनेक प्रकार की कुचेष्टाये कर रहे थे। अभागा संन्यासी इस टोली के हाथो में पड गया। चाण्डालो ने सन्यासी का बडा आदर किया और कहने लगे आइये महाराज आज हमारे बड़े खुशी की बात है और आजका दिन उत्तम है जो आप हमारे घर पर पधारे है आप सरीखे पूज्य महात्माजन के दर्शन मिले है। आप मास खाइये शराव पीजिये और स्त्रीयो के साथ भोग क्रीडा कीजिये और हम लोगो के साथ मे खेल-कूद क्रीडा कीजिये हमारे कार्य में शामिल होइये और नाच-कूद का मजा लूटिये। चाण्डाल भीलों की ऐसी वाते सुनकर बेचारे सन्यासी के तो होस उड गये। विचार करने लगा कि इन शरावियों से क्या कहे, कैसे समझावे, बेचारा बडे ही सकट मे पड़ गया। फिर कुछ सोच-समझकर वोला भाइयो एक तो मैं जाति का ब्राह्मण हू दूसरे उत्तम सन्यासी हूँ भला तुम ही कहो कि मैं शराव पीऊ या मांस खाऊ पर-स्त्री के साथ रमण करूँ यह कैसे हो सकता है। कृपा करके मुझे जाने दीजिये।

यह सुनकर वे चाण्डाल कहने लगे महाराज आप कुछ भी कहो परन्तु हम तो तुमको बिना परसाद पाये नही छोडेगे ? यदि आप अपनी राजी से खा ले तो अच्छा है नही तो हम जैसे वनेगा तैसे तुमको खिला पिलाकर छोड देंवेगे। हमारी प्रार्थना स्वीकार किये विना आप जीते-जी गगाजी नही जा सकते है ? अव तो सन्यासी जी और भी घवरा गये और मन ही मन में सोचने लगे कि यदि मैं मास खाता हूं या पर-स्त्री के साथ विषय सेवन करता हू तो बडा भारी पाप लगेगा और इसका दण्ड भी बडा भोगना पडेगा। पर जो साधारण जौ गुड आवले आदि से बनी हुई शराव पीते है वह शराव पीना नही कहा जा सकता है। इसलिये जैसी शराब मुझे पिलाते है उसके पीने में न कुछ दोष है न उससे मेरा सन्यास ही बिगड़ता है।

यह विचार कर उस मूर्ख ने शराव पी ली शराब पीने के थोड़ी देर बाद नशा चढने लगा। बेचारे ने कभी शराब नही पी थी इसलिये उस पर शराव का और भी अधिक नशा चढा। शराब के नशा में चूर हो गया और अपनी सारी सुध-बुध भूल गया। उसको अपने-पराये का भी कुछ ध्यान नही रहा अब वह बेहूदी बकवादे करने लगा। लगोटी फेंक कर वह भी उनके साथ उन लोगो के समान नाचने लगा। सच है खोटी सगति कुल धर्म और पवित्रता आदि सब बातो को भूला देती है। बहुत देर तक तो सन्यासी नाचता-कूदता फादता रहा पर जब थोडा-सा थक गया तो उसको बडी जोर से भूख लगी वहा एक मास-ही खाने के लिये था दूसरी कोई वस्तु नही थी तब उसने मास को खा लिया। संन्यासी नशे मे तो था ही। पेट भर मास खाते ही उसको काम विकार ने सताया। उसने एक चाण्डाल की स्त्री को बुरी दृष्टि से देखा और उसके प्रति अपनी बुरी वासना प्रकट की चाण्डाल लोग अपनी स्त्री का तिरस्कार देख कर उसको सहन न कर सके।

चण्डालो ने सन्यासी को पकड कर उन्होने भुजाओं के बीच मे रखकर इतना जोर से दबाया कि जिससे सन्यासी के प्राण पखेरू उड गये इस प्रकार आर्तध्यान कर मरकर वह दुर्गति में चला गया।

देखो यह सन्यासी कैसा विद्वान था और धर्मात्मा भी था परन्तु मदिरा पान करने से उसकी कैसी गति हुई। उसका सब धर्म कर्म नष्ट हो गया, विवेक जाता रहा अन्त में मदिरा पान करने के ही कारण अपने प्राण देने पड़े। शराब पीने वाले का विवेक जाता रहता है तथा सदाचार को भूल जाता है हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पाप करने मे लग जाता है। मदिरा पीने के कारण से कुछ भी लाभ नही होता किन्तु बहुत से शारीरिक और मानसिक कष्ट सहन करने पड़ जाते हैं और अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है। नशा हर तरह का बुरा है। नरक गति का कराण है।

आगे वेश्या व्यसन का स्वरूप कहते हैं।

पण्पका सारमेयसदृश रजकपट्टिका।
सकलजनवल्लभा दुकर्मभिः स्तितानित्यम् ॥१६७॥

यह वेश्या धोबी को कपड़ा धोने की पटिया के समान है जिस प्रकार धोबी नीच-ऊँच जाति कुल वाले लोगों के कपड़े पटिया के ऊपर धोता है। उसी प्रकार वेश्या के यहां पर भी चाण्डाल, कसाई, मुसलमान, नाई, धोवी, चर्मकार इत्यादि नीच व क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण भी जाते है उनके द्वारा उसका सेवन किया जाता है। तथा जिनका आचरण कुत्ते के समान है। वह वेश्या संपूर्ण पुरुषो की स्त्री कही जाती है यह वेश्या दुष्कर्मो में हमेशा विद्यमान रहती है।

विशेष—जिस प्रकार धोबी की पटिया पर अच्छे व बुरे सब प्रकार के कपड़े धोये जाते है तथा एक ही हड्डी के टुकड़े को अनेक कुत्ते खीचते है उसी प्रकार वाजारू स्त्रिया उच्चनीच कुल वाले सभी पुरुषों से सम्वन्ध रखती है। यह वेश्या एक की कभी नहीं होती है वह सब की लार चाटा करती है यह खोटे कर्म करने में सदा रत रहती है।

पण्यस्त्री विलाशिनी वीर्य वित्तं मानषित्वं चधीम्
चित्तं मदमोहिनी च हरति कीर्ति ददाति विषादम् ॥१६८॥

पण्य कहते है वाजार मे दुकान को जिस प्रकार दुकान पर माल खरीदने के लिये क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्या, चान्डाल, मुसलमान, नाई, धोवी इत्यादि सब नीच उच्च जाति के लोग आते-जाते है। उसी प्रकार वेश्या के घर पर वेश्या के पास क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य व चाण्डाल मुसलमान, चमार, चूड़ा इत्यादि सब ही आते-जाते है और उसके साथ विषय भोग करते हैं इसलिये इसको पण्यका स्त्री अथवा वाजारू स्त्री कहते है। सव नीच ऊंच कुल वाले लोगों के साथ रमण करने की इच्छा रखती है इसलिये इसका दूसरा नाम विलासिनी भी है। तथा वह धोवी की शिला के समान होने से तथा सव लोगो के द्वारा सेवित होने के कारण इसका नाम सकल जन वल्लभा भी कहते है। यह वेश्या मनुष्य के वीर्य को हरण कर लेती है जिससे पुरुष नपुंसक के समान तथा लटे हुए घोड़े के समान नामर्द हो जाता है। अथवा नामर्द वना देती है। और धन को भी हरण कर लेती है जिससे मनुष्य निर्धन वन जाता है तथा मनुष्य के मनुष्यत्व को भी नाश कर देती है अथवा उत्साह को नाश कर देती है। इसकी संगति करने पर वुद्धि व विचार शक्ति नष्ट हो जाती है। यह वुद्धि को हरण कर लेती है। तथा मन

के ऊपर मोहनी माला डाल देती है तथा दूसरे के मन को हरण कर लेती है जिससे मनुष्य अपनी विवाहिता स्त्री को भी भूल जाता है। इसका नाम मनमोहिनी भी है। यह बडे-बडो का मान मर्दन करने को सन्मुख होती हुई मन को मोहित करती है जो एक बार वेश्या के फन्दे में फस जाता है उसका फिर निकलना ही दुष्प्राप्य हो जाता है तथा यह मनुष्य की कीर्ति का नाश करती है अथवा मानव की कीर्ति नष्ट हो जाती है। तथा विपदाओ के समुद्र में पटक देती है। अथवा नरको के दुःखो मे भेज देती है ॥१६॥

ऐरेयं पिवति पलं भक्षयति निवशति धूर्त चित्ते च
रशिकाणां प्राण या दुष्कृतानांमूल वेश्या ॥१६९॥

यह वेश्या शराब का पान करती है मास का भोजन करती है और दुष्ट पापाचारी नीच दुरात्माओ के हृदय में निवास करती है। वेश्या व्यसन में आशक्त जीवो की प्राणप्यारी है तथा जितने प्रकार के ससार मे दुष्कर्म है उन सब पापो की जड़ भी एक वेश्या है। वेश्या व्यसनासक्त मनुष्यो से धन लेकर शराब मगवाकर आप पीती है और दूसरे व्यभिचारीजनो को भी पिलाती है तथा जब नशा मे चकनाचूर हो विषय योग करती है तथा उनसे ही माँस मगवाकर स्वय खाती है तथा अपने यार-दोस्तो को खिलाती है। जब कभी देन-लेन में ही नाधिकता हो जाती है या धन नही मिलता है तब प्रसग पाकर अन्य विषयाशक्तो के द्वारा मरवा भी डालती है। और पिटवा भी देती है वस्त्र और धन को छिनवा लेती है, तथा धक्का देकर निकाल देती है, तथा आप स्वय भी चप्पल मारने लग जाती है और पान खाकर उसकी पीक उस निर्धन के ऊपर डालकर अपशब्द अथवा गालिया भी देती है अपने कपड़े भी धुलाती है चप्पले भी साफ करवाती है। तथा व्याहिता धर्मपत्नी के जर-जेवर आदि को भी मगवा लेती है। हिसा करती और अपने सहवासियो से भी करवाती है तथा स्वय मिथ्याभाषण करती है और करवाती है। तथा चोरी करवाती है और चोरी मे लाये हुए माल को आप स्वय ले लेती है तथा छिपाकर रख लेती है तथा व्याहिता स्त्री से पुरुष को विपरीत बना देती है। तथा व्यभिचारी पण्य स्त्री लम्पटी जन उस वेश्या की सगत से वैसे ही बन जाते है तथा शराबी मास भोजी भी बन जाते है कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई खोटा कार्य दुनिया मे नही रह जाता है कि जिसको वेश्या की सगत करने वाले न कर सके इसलिये वेश्या सब प्रकार के पाप रूपी वृक्ष की जड ही है ऐसा ग्रथकार कहते है।

नष्टेतु सुकृतानां च समूल क्षपयति यश दु.ख राति ॥
नारके धरति दासी स्वर्ग द्वारेऽर्गला साह्म ॥१७०॥

यह वेश्या पुण्यकार्यो को व धर्म को समूल नष्ट कर देती है अथवा पुण्य का नाश करने मे कारण होती है और दुःख देती है यह वेश्या जीवो को नरक मे ले जाती है तथा नरक के दरवाजे को खोल देती है और स्वर्ग और मोक्ष के दरवाजे के लिये अर्गला अथवा बैडा के समान है। जिस प्रकार किवाड बन्द कर उसके भीतर अर्गला बैडा लगा देने पर दरवाजे के किवाड़ खुल नही सकते है तथा स्वर्ग सुख वेश्या के साथ रमण करने वाले को नही मिल सकते है। तब मोक्ष सुख कैसे वेश्या सेवन करने वाले को मिल सकता है ॥१७०॥

सेवन्ति वराकानां चरतिवीर्यं च पौरुष्यं तथा।
इच्छन्ति धनिकानां सा हिंसति च तनूधराणां प्राणान्॥

यह वेश्या नीच दुराचारी, पापी, व्यभिचारी जनों के साथ विषय भोग करती है तथा नीच मनुष्यो के द्वारा सेवन की जाती है और मनुष्यों के वीर्य को हरण कर लेती है तथा पुरुषार्थ को नष्ट कर देती है। तथा वीर्य के नष्ट हो जाने पर मनुष्य नपुसक के समान हो जाते है। तथा वह वेश्या धनिक जनों को ही चाहती है यह विचारा करती है कि कोई धनिक जन फसे तो अच्छा होगा। जब धन नही रह जाता है तब वह जीते जी निकाल देती है यह कहा ही नही जाता यहां तक देखा जाता है कि वह निर्दयता पूर्वक दुष्टो से पिटवाती है तथा मरवा भी डालती है। निर्दयता का व्यवहार शीघ्र ही करने लग जाती है और सज्जनो की इज्जत को धूल मे मिला देती है जब तक पैसा रहता है और वेश्या को पैसा आता दिखाई देता है तब तक वह वेश्या बड़ा ही प्रेम दिखाती है और पैर दबाती है तथा आगे-आगे कार्य करने को दौड़ती है जब पैसा नही आता दिखता है तब उसका प्रेम-प्यार सब टूट जाता है वह एक क्षण भी उसकी तरफ नही देखती वह उसका बुरी तरह से तिरस्कार कर निकाल देती है। उसकी सभा में दुष्ट क्रूर कामी मासाहारी शराबी जुआरी व पर-स्त्रियो के साथ रमण करने वाले चोर डाकू जन तथा नितात असत्य भाषण करने वाले रहते है। तथा मनुष्यों की शारीरिक शक्ति को नाश कर देती है। जिसके ससर्ग से सुजाक, गर्मी, दमा, तपेदिक, भगंदर इत्यादि अनेक रोग होते हुए देखे जाते है जिनके कारण मरण पर्यन्त महादुःख भोगना पड़ता है जिनसे पिण्ड छूटना ही दुस्तर हो जाता है। रोग के हो जाने पर घर वाले भी नही चाहते वे कहने लग जाते हैं कि अब यहा क्या रक्खा है जिसके लिये यहा पर तुम आये हो ? जाओ उस वेश्या अम्मा के पास जाओ कि जिसको सारे जन्म की कमाई खिला दी ? हमारे से तुम्हारी टहल नही होती है ? तब नही सोचा था कि जब तेरी जवानी थी। तब तो काम के मद में झूमता रहा अब हम क्या करे वही जाओ।

दुर्ध्याने विलसति सा अहोरात्रि पिशाचिनी सज्जनेभ्यः॥
रत वेश्याभिलाषिकाः निर्वृन्तं यद्धन्ति पादुकाः॥१७२॥

यह वेश्या दिन-रात इसी ध्यान मे रहती है कि कोई धनी हो कोई नव यौवन से युक्त बलशाली पुरुष मिले और उसके माल असबाब पर मेरा अधिकार हो तथा उसके स्त्री बच्चे भूखे मरे और मै देखू। तथा दूसरो का घात करने में वह नित्यप्रति लगी रहती है वह सज्जनो के लिये पिशाचिनी के समान हैं। वह हमेशा ही खोटे ध्यान मे रत रहती है तथा अन्य प्राणियो व निर्धन मनुष्यों का तिरस्कार करती है और तिरस्कार करने का ही भाव रखती है। उसका भाव पिशाचिनी के सदृश दिखाई देता है जिस प्रकार किसी के पीछे पिशाचिनी लग जाती है तब सब धन का नाश कर देती है व दाने-दाने को मोहताज कर देती है। उसी प्रकार यह वेश्या भी सज्जनो को एक-एक दाने को मोहताज कर देती है। तथा दुःख देती है शरीर मे पीड़ा पहुँचाती है तथा वेहोश बना देती है। जो वेश्या के साथ में वैठते है तथा जब धन

रहित हो जाते है तब वह वेश्या गालियां देती है निर्लज्ज पापी दुरात्मा कहती है तथा अपने मुख की पीक तक उसके ऊपर डाल देती है कहती है कि तूने ऐसा वायदा किया अव क्यो नही करता है इतना कह करके रोस मे आकर वेश्या व्यसनी के वह चप्पल मारने लग जाती है तब भी वह वहा पर उसकी चप्पले खाता है । १७२

येषां जातिर्न कुलं यशं धर्म्मं मर्यादा कारुण्यम् ॥
वित्तं कीर्ति विद्या विलासिनिया सहवासे ॥ १७३

जो रति क्रीडा मे मग्न रहने वाली है वह दिन-रात का भेद नही करती हुई विषय भोगो मे लीन रहती है उसकी सगति करने से जीवो के परिणाम कलुषित निर्दयता से युक्त हो जाते है भय बढ जाता है निर्लज्ज हो जाता है और जाति को मर्यादा व कुल की मर्यादा यश व धर्म की मर्यादा तथा दया कीर्ति तथा धन का नाश हो जाता है तथा विद्वान होकर भी मूर्ख बन जाता है ।

जो वेश्या-व्यसन मे आसक्त हो जाया करते है उनके किन-किन गुणों का नाश नही हो जाता है अर्थात सब गुण नष्ट हो जाते है। धनवान होकर भी निर्धन बन जाता है और उच्च जाति का होने पर भी नीच के समान आचरण करने लग जाता है । तथा उच्च कुल का होकर भी नीचाचरण करने लग जाता है अपना यश तथा पूर्वजो का यश नष्ट हो जाता है धर्म मर्यादा को भग करके कुधर्म करने लग जाता है अथवा धैर्य शून्य हो जाता है यह सब वेश्या के ससर्ग का ही दोष है इसलिये भव्य जीवो को ऐसी नीच दुराचारिणी बाजारू स्त्रीयो के सहवास का दूर ही से त्याग कर देना चाहिये । १७३

शृंगारे सारम्भा प्रियवादने च भामिनी सादृशा ॥
उर्वसी संध्याकाले मध्ये च प्रभाते भट्टिका ॥१७४॥
उदरात्प्रबहति रक्तं मुखे भक्षणे रक्तं लाली तत् ॥
दुर्गंधं नि.सरति च ऐरेयं पान च सततम् ॥१७५॥
मायाधामं भृकुटि कुटिल कटाक्षं वक्रता सत्यंगे ॥
पूतराशिजन्मस्थलं योनिमध्ये जाते मृते बहुः ॥१७६॥
चित्त हारिणी मधुर भाषिनी कामदा भाग्ये खला ॥
किं सेवन्त्य सेव्य धिग् तान् खेदोऽस्मान् दुर्गतौ याः १७७॥

जब सध्या के समय वेश्या अपने शरीर का शृगार करती है । तब वह स्वर्ग लोककी देवागना रम्भा को भी मात करती है तथा कामी जन उसके शृंगार को देखकर मुग्ध हो जाते है वे अपनी व्याहिता स्त्री को भूल जाते है । जब वह बचन बोलती है तब ऐसी भाषती है कि मानो इसके समान दूसरा प्रियवचन बोलने वाला कोई संसार मे है ही नही। तथा अपनी प्रियतमा से भी अधिक प्रिय वचन बोलती है कि हे स्वामी, हे मालिक, हे पतिदेव, कह कर पुकारती है और आपसेविका बनजाती है जब पैसा समाप्त हो जाता है तब सिंहनी बनकर उसको पीटने को सम्मुख हो जाती है । धन होनें पर अपनी विवाहिता के समान आदर करती है तथा प्रिय मधुर बचन बोलकर रिझा लेती है तथा सेविका बन जाती है। शाम के समय वह अपने

बालों को कंघी करके मस्तक में सिंदूर (कुंकुम) भर लेती है तथा आंखों में काजल लगा लेती है होठों पर लाली लगा लेती है तथा अपने माथे पर बेंदी लगा लेती है तेल लगाकर व पान सुपाडी खा लेती है हाथो में मेहदी लगा लेती है गले में हार, हाथों में चूडियां पहन लेती है श्रृंगार कर स्वच्छ साडी पहन लेती है और घर के दरवाजे के पास बैठ जाती है तव ऐसी लगती है कि मानों श्रृंगार कर इन्द्र की सभा मे जाने के लिये तैयार रम्भा ही है। सध्या के समय में श्रृगार कर बैठ जाती है तब रम्भा के समान दिखाई देती है रात्रि के मध्य में व्यभिचारिणी के समान दिखाई देती है तथा सुबह को रात्रि में राक्षसी के समान दिखाई देती है। जब रात्रि के अन्त में उसका सारा श्रृंगार पुरुषों के साथ रमण करने से नष्ट हो जाता है तब भट्टिनी के समान दिखाई देती है मुख की कान्ति व मस्तक की माँग तिलक सब नष्ट हो जाने के कारण ऐसी मालूम पड़ती है कि मानो जगल मे विचरने वाली भिल्लनी भटियारी हो जिसका मुख लार से भरा हुआ होने व दुर्गंध आने से अत्यन्त मलिन होती है।

उसके शरीर व योनि द्वार से हमेशा रक्त बहता रहता है तथा मास खाने से उसका मुख भी लाल रहता है उसका मुख लाल लाल होता है तथा लाली लगाने से भी तथा पान खाने से यह प्रतीत होता है कि मानों राक्षसी है। मास खाने और शराब पीने के कारण से उसके मुख से दुर्गन्ध आती है। अथवा उसके मुख से दुर्गन्ध निकलती रहती है। यह वेश्या निरतर शराब पीती रहती है तथा छलकपट मायाचारी करने में व दूसरे जीवों को ठगने मे प्रवीण होती है उसकी आखो की भौहे अत्यन्त कुटिल होती है तथा कामी जनों को कटाक्ष मार कर आशक्त बना लेती है तथा कामी जन उस पर आशक्त हो जाते है। तथा अपने अग उपागो की भी कुचेष्टा करती है। तथा योनी-स्थान मे उसके असख्यात जीव उत्पन्न होते हैं और मरण को प्राप्त होते है। तथा इन क्षुद्र भवके धारक सम्मूर्छन लब्ध पर्याप्तक जीवो की उत्पत्ति का एक मात्र स्थान है जिसमें असख्यात जीव उत्पन्न होते है और स्पर्शन व मैथुन करने पर सब ही मर जाते है। तथा वेश्या सब काल में अपवित्र रहती है। तथा कामी पुरुषो के मन को मधुर वचन बोलकर हरण कर लेती है तथा काम को उत्पन्न कर देती है तथा कोई भी अवस्था में वह पवित्र नही होती है। ऐसी वेश्या की संगति सज्जन जन करते है यह बड़े ही खेद की बात है। पर सज्जनों व उच्च कुलोत्पन्न पुरुषो के सेवन करने योग्य नही जो इस वेश्या को सगत्ति करते है वे स्वय जान कर नरक कूप में कूदने के समान है। यह वेश्या की सगति नरक ले जाती है व्यवहार में लोग वेश्या व्यसनी को ऋण भी नही देते है न विश्वास ही करते है पास मे बैठने भी नही देते है। उसके साथ खान पान भी नही करते यहाँ तक देखा जाता है कि गांव गली मुहल्ले में भी नही आने देते है उसको वदकार करते है। कहने का तात्पर्य यह है कि वेश्या व्यसन सेवन करके नरक तथा त्रियचों मे मरकर जीव उत्पन्न होता है। वहा सागरो की आयु पर्यन्त दुख भोगते है तथा अनन्तकाल तक ससार रूपी समुद्र में गोता खाते रहते है ॥१७४—१७७॥

प्रसिद्धचारूदत्तश्च श्रेष्ठीसुतश्च वेश्यायां।
किंनाभवद्‌गतिः विज्ञः विष्टागृहे धृतं तस्य ॥१७८॥

(इस वेश्या की संगत) श्रेष्ठ पुत्र चारूदत्त वेश्या की सगत मे पड गया था जिसके कारण उसकी क्या गति हुई। यह चारुदत्त वेश्या व्यसन मे प्रसिद्ध आगम में हुआ है। चम्पापुर मे कलिग सेना नाम की एक वेश्या थी उसकी लडकी का नाम वसत सेना था वह रूप रग व हाव भाव मे रम्भा के समान थी उसको देखकर वह उसमें आसक्त हो गया और वह अपनी माता और अपनी धर्म पत्नी आदि सबको भूल गया। जब सारा धन वेश्या के घर आ गया तब उस वेश्या ने एक बोरी में बंद कर अपने शौचालय मे डलवा दिया यह सब वेश्या सगत का ही असर है ॥१७८॥

इसकी कथा

चम्पापुर नगरी में श्रेष्ठी भानुदत्त रहता था, उसकी धर्म पत्नी का नाम सुभद्रा था पुण्योदय से एक पुत्र हुआ। उसका नाम चारूदत्त रक्खा गया चारूदत्त विद्या अध्ययन में बहुत प्रवीण था थोडे ही काल में उसने गुरु के पास सब विद्या पढ ली। चारूदत्त स्वभाव से ही दयावान सुशील बुद्धिमान तथा परिश्रमी था तथा थोडे ही दिनो मे अनेक विद्याये पढ ली चारुदत्त दयालु और परोपकारी बालकथा, एक समय वह अपने मित्रो के साथ बगीचा में खेल रहे थे कि उनके कानों में कही से रोने की आवाज आई आवाज आते ही चारुदत्त का हृदय दया से उमड आया जिस ओर से आवाज आ रही थी वह उसी तरफ को चल पडा थोड़ी दूर जाकर उसने देखा कि कोई पुरुष कीलित होकर बाधा हुआ एक वृक्ष की डाली पर लटक रहा है। वह बडे ही कष्ट मे है। चारुदत्त उसके पास गया और उसी समय अपनी चतुराई से उसको बन्धन से मुक्त कर दिया। उसको धैर्य बधाया और योग्य औषध तथा आहार पानी देकर सन्तुष्ट किया।

निज सुख की परवाह न कर पर दुख करते दूर।
जन्म सफल करते सदा वे दयालु वे सूर ॥

जब चारूदत्त पढ लिखकर निपुण हो गया तो उसके पिता ने उसका विवाह सिद्धार्थ सेठ की पुत्री मित्रवती नाम की कन्या के साथ कर दिया। मित्रवती भी बडी ही सुशिक्षिता तथा सुशीला धर्मपरायणा तथा सदाचारिणी थी। अर्थात् चारुदत्त का विवाह हो गया परन्तु विवाह का रहस्य चारुदत्त को अभी तक समझ मे नही आया था इसे विषय-वासना छू भी नही सकी थी वह तो दिन रात पुस्तको के पढने मे ही लगा रहता था। वह पुस्तको के पढने अभ्यास करने विचार व मनन करने इत्यादि मे ही सदा रमा रहता था। इस ही चम्पापुरी नगरी में एक कलिग सेना नाम की वेश्या रहा करती थी उसकी पुत्री का नाम वसत सेना था, वह वसंत सेना अपने रूप सौन्दर्य या गुणो मे अद्वितीय रूपवान थी। एक दिन चारुदत्त अपने चाचा रुद्रदत्त के साथ घूमने गया था। दोनो जब कलिग सेना के मकान के पीछे पहुचे ही थे कि राजा का हाथी बिगडा हुआ वही पर आ पहुँचा उसके आने से सारा रास्ता बद हो गया, तब रुद्रदत्त चारूदत्त का हाथ पकड कर कलिग सेना के मकान में जा चढे। वह वेश्या रुद्रदत्त को तो पहले से ही जानती थी सड़क खुलने तक रुद्रदत्त कलिग सेना के घर पर कलिग सेना के साथ सार पासा खेलने लगे तथा चारुदत्त वही बैठा हुआ देखता रहा। शतरज खेलने मे रुद्रदत्त कई

वार हारा चरुदत्त अपने चाचा को हारता हुआ देखकर स्वयं खेलने को उत्सुक हुआ। सतरंज खेलते हुए कलिंग सेना कहने लगी कि सेठ साहव मैं तो खेलते २ वृद्ध हो गई मेरी पुत्री नवयौवन मे युक्त वसंत सेना है और आप भी नवयौवन संयुक्त है इसलिये मेरे साथ आपका सतरंज खेलना उचित नही मालूम होता। एक मेरी परम सुंदरी पुत्री वसंत सेना है आप उसके साथ खेलें मैं उसको अभी वुलवाये देती हूं, चारुदत्त वोला जैसा आप उचित समझे मुझे कुछ भी इनकार नहीं है। वसंत सेना को वुलवा लिया और चारुदत्त भी उसके साथ शतरंज खेलने लगे और उसके साथ खेलते २ चारुदत्त उस वसंत सेना में आसक्त हो गया, अथवा मोहित हो गया। चारुदत्त तो वसंत सेना के घर ही रह गया परन्तु रुद्रदत्त निकल गया चारुदत्त ने अपना वहुत धन माल वेश्या को दे दिया और वह उस वेश्या के मकान पर ही रहने लग गया। उसको काम वासना के सिवा और कुछ नहीं दिखता था। वह वसंत सेना के यहां वारह वर्ष पर्यन्त रहा। वसंत सेना में अत्यन्त आसक्त होने के कारण ही चारुदत्त को अपनी माता व स्त्री कीभी याद नही आती थी तव दूसरा कर्तव्य क्या स्मरण आवेगा। इस बीच में कलिंग सेना के यहां चारुदत्त के घर से सोलह करोड़ दीनारें आ चुकीं थी, तत्पश्चात जब कलिंग सेना ने मित्रावती के आभूषणों को आते देखा तो समझ गई कि अब चारुदत्त के घर पर कुछ नही वचा, सारा धन माल मेरे घर आ पहुँचा है। तव उसने अपनी लड़की वसंत सेना से कहा कि तू इस निर्धन चारुदत्त को छोड़ दे माता की वात सुनकर बसंत सेना को अत्यन्त दुःख हुआ, उसने कहा कि मैंने चारुदत्त को ही अपना जीवन का स्वामी बना लिया है मैं इसको छोड़कर इन्द्र कुबेर चक्रवर्ती हो उसको नही चाहती हूँ मेरा पति है तो चारुदत्त ही है अन्य पुरुष मेरे लिये भाई वाप के समान है। कलिंग सेना ने अपनी पुत्री वसंत सेना के दुराग्रह को देखकर अन्य उपाय से चारुदत्त को घर से निकालने का प्रयत्न किया। एक दिन कुछ लोगों को शराव पिला कर वसंत सेना को न कहते हुए दुष्टता पूर्वक चारुदत्त को एक वोरी मे बँधवा कर रात्रि में अपने शौचालय में डलवा दिया। प्रभात होते ही भंगी शौचालय को स्वच्छ करने को आता है तो देखता है कि एक वोरी में से कराहने की आवाज आ रही है उसने उस वोरी के मुख को खोल कर देखा तो उसमे चारुदत्त वेहोश पड़ा था उस वोरी को निकाल कर उसमें से चारुदत्त को पहचान लिया। चारुदत्त वहा से उठ कर अपनी माता व स्त्री के पास पहुँचा। माता तथा धर्म पत्नी चरखा कात कर तथा पीसना पीस कर अपनी गुजर करती थी। उनके पास पहुँच कर स्नान किया और रोटी खाई कुछ दिन के पश्चात माता तथा धर्म पत्नी से आज्ञा लेकर परदेश को धन कमाने के लिये निकला। परदेश में भी वहुत दुःखमय दिन वीत रहे थे अव कुछ पूर्व पुण्य का पुनः उदय आता है जिससे चारुदत्त को धन लाभ हुआ। इस प्रकार यह वेश्या व्यसन अन्त में दुर्गति देने वाला है। अथवा यों कहना चाहिये कि यह वेश्या साक्षात रूप से दुःखो के कूप में डालने वाली है अथवा वेश्या के साथ जो व्यवहार करते हैं उनको भी कलंकी वना देती है। जो वेश्या के घर जाते हैं व लेन-देन व्यापार आदि करते हैं वे भी दुर्गति व निन्दा के पात्र अवश्य वन जाते हैं। वेश्या व्यसन के सेवन करने वालो की सगत भी दुर्गति में ले जाने वाली है। साक्षात् उस वेश्या के साथ रमण

करते है उनकी कीर्ति बढ़ेगी या अपकीर्ति बढ़ेगी ? नही अपकीर्ति ही बढेगी। इसलिये वेश्या की तो सगत करना ही नही चाहिये परन्तु वेश्या व्यसनी मनुष्यो की सगत भी नही करनी चाहिए। उन व्यसनियों के साथ खान-पान लेन-देन करने से सज्जनो की भी अपकीर्ति हो जाती है। जिस प्रकार कलारन बोतल में दूध लेकर चले तो भी उस दूध से भरी हुई बोतल को भी संगत दोष से शराब कहते हैं उसी प्रकार खोटी संगत से खोटी बुद्धि होती है। इसलिए वेश्या व्यसन को त्याग कर देना ही आनन्द का कारण है।

इस प्रकार वेश्या व्यसन मे प्रसिद्ध चारुदत्त की कथा समाप्त हुई।

आगे चोरी व्यसन का स्वरूप कहते हैं।

वित्तं श्रेयं जगति वपुषानां भ्रमन्त्यन्य देशे ।।
तस्यार्थं यान्ति खलु विपने निर्भयंप्राविसंत्ये ।।
को मृत्युं चिंतयति न तदा किं मृगेन्द्रस्य लाभं ।।
तद्वित्तं यैश्च विहरति चौर. न किं प्राणघातम् ।।१७६।।

सब देह धारियों को जगत मे धन श्रेयस्कर है। जिस धन को प्राप्त करने व उपार्जन करने के लिये मनुष्य अपने ग्राम नगर देश को त्याग कर परदेश मे जाता है जहा पर जिस जगल मे भयंकर क्रूर परिणाम वाले तथा मार कर खाने वाले सिंह बाघ तेंदुआ आदि दहाड रहे है तथा बाघ बोल रहे है तथा दोड़ रहे हैं ऐसे भयानक जंगल व पहाड़ो मे प्रवेश करता है उस समय अपने जीवन की भी किंचित मात्र विचार नही करता हुआ निडर हो कर प्रवेश करता है। अपनो मृत्यु का भी विचार नहो करता कि इसमे विचरने वाले सिंह, बाघ, तेंदुआ, भालू आदि मेरे को खा जावेंगे तो यह धन किसके काम आवेगा ? परन्तु यह धन का इच्छुक क्या भय करता है ? अथवा भय नहो करता है जिस धन को अपने प्राणो की बाजी लगा कर उपार्जन किया जाता है उस धन को यदि चोर लोग ले जाने को आवे तो क्या उस धन को ले जाने देगा ? नही ले जाने देगा। जब जबरन कर ले जाते हैं तब उनके धन को ही नही ले जाते है परन्तु वे उनके प्राणो को ले ही जाते है। क्यो कि धन मनुष्य का ग्यारहवां प्राण है अथवा धनिक पुरुष के प्राण धन को हरण कर ले जाते है।

कोऽपि न राति वित्तं स्वेच्छा प्राणक्षये बिना कदापि ।।
तं वित्तं ये हरन्ति प्राणानां क्षति कृतं तदा ।।१८०।।

इस धन को अपनी इच्छासे कोई भी किसी को नही देता है परन्तु चोर लुटेरे धन के मालिक को पीट कर तथा हाथ पैरों को बांध कर डाल देते है या उसके प्राणों का नाश करके पीछे ही ले जाने देते है। क्यो कि धन प्राणों से भी मनुष्यों को प्यारा होता है परन्तु प्राणों से भी प्यारे धन को यदि चोरी कर ले जाते है या लूट कर ले जाते है तब वह धन के मालिक हाय-हाय कर चिल्लाते हैं कि वैरी मुझे मार गये हाय मैं मर गया इत्यादि करुणा जनक शब्द कहता है तथा चोर लुटेरो का पूर्ण रूप से सामना कर तिरस्कार करने को सन्मुख हो दौड़ता है। तब वे दुष्ट पापात्मा उस धन के मालिक को बदूक तलवार या लाठी से मार कर उसके धन को ले जाते है तथा घर मालिक को घर मे बाध कर डाल जाते है ।।१८०।।

स्तेयं कुर्वन्त्यधमाः तेऽपि यान्ति भूरिदु:खं तद्भवे ।
दण्डयन्ति च नृपालाः कारागृहे पातयन्ति तान् ।।१८१।।

नीच दुराचारी चोर लोग जब चोरी करने को आते हैं वहा जब चोरी करते हुए घर मालिको के द्वारा पकड़ लिये जाते है तब ग्रामवाले मिलकर धिक्कार देते हुए इस प्रकार से मार लगाते है कि जिसकी कुछ सीमा नही रह जाती है तथा कोई चाबुक वेंत लाठी, डण्डा इत्यादि व घूसा, थप्पड़, लात देकर मारते है। जब राजा को सौप देते है तब हथकड़ी पहनाकर व पैरो मे बेड़िया डलवा देते है। जब थाने में व एकान्त स्थान मे ले जाकर दोनो हाथो को रस्सी से बाध करके छत में लगे हुए कड़े में रस्सी बाँध कर बेंत या सोंटी लेकर मार लगाते है और कहते है बताओ इससे पहले कहा-कहा चोरीयाँ की है ? तब वह चोर कुछ-का-कुछ गिड़गिड़ाता हुआ भय से बोलता है तब पुनः उसके पीठ या चूतड़ों मे बेंत, चाबुक, हटर की मार लगाते है। तथा नगा उघारा कर देते है और चाबुक की मार लगाते है जिससे हाय-हाय चिल्लाता है, रोता है और हाथ जोड़ता तथा पैर छूता है कहता है कि मैं आइन्दा चोरी कदापि नही करूंगा। तत्पश्चात् उसको हत्यारा कह करके काल कोठरी मे डाल देते है। काल कोठरी मे जब डाल देते है तब वही पर खाना, वही पर सोना, वही पर शौच जाना व पेशाब करना इत्यादि सब क्रियाये करते है वह काल कोठरी नही है अपितु नरकवास ही है कि जहां पर शौच व पेशाब की बदबू, वही पर भोजन करना, पानी पीना तथा मनुष्य का मुख भी देखने को नही मिलता है। तथा शौच के स्थान मे ही पड़े रहते है उनको एक छिद्र में होकर रोटी-पानी दे दिया जाता है। इस प्रकार वे इस भव में भी कारागृह में पडे हुए दु:खो का भोग करते हैं। इस प्रकार से चोरों को इस भव में सकटों का सामना करना पड़ता है। कई स्थानो पर चोर, डाकूओ व जेबकतरो को बदूक की गोली से भी मार डालते है कई स्थानो पर राजा हत्यारा कहकर फासी की सजा भी देता है। है इस प्रकार चोरो का जीवन ही बरबाद हो जाता है। तथा जिनके पास चोरी का धन रक्खा गया है या वेचा गया है खरीदने वाले का पता लग जाने पर उसको भी चोर साबित करके उसके धन माल जमीन जायदाद को जब्त करवा लेता है और उसको कारावास की सजा देता है। तथा देश निकाला भी दिया जाता है। जो चोरों के पास आते-जाते या बैठते-उठते है या जिनके पास चोर आते-जाते हैं व खाना-पीना करते है उनको भी उनमें सम्मिलित हुआ जानकर राजा दण्ड देता है और कैदखाने में डाल देता है। उनपर अन्य लोग भी सुबह करते है इत्यादि ।।१८१।।

न कश्चद्धानं कुर्यात् तस्कराणां भीमं दारुणं च ।
क्षिपति च सून्यागारे मृगयन्ति नृपारक्षकाः तान् ।।१८२।।

वे चोर लोग अत्यन्त भयभीत होकर जंगलों में सून्य स्थान मकान में गुफा व कोट कन्दरा आदि में छिपकर रहते है उनका कोई भी विश्वास नहीं करता है। यहां तक देखा जाता है कि माता-पिता, भाई, स्त्री व रिश्तेदार या ग्रामवासी भी उस चोर का भरोसा नही करते हैं। और उन चोरों का पता लगाकर जहां पर जगल में मकान व गुफा वीहड़

मे रहते हैं वहा खोज लगाते हुए राजा के सैनिक जगलों मे प्रवेश कर चोरों को पकड़ने के लिए जाते है तव वे चोर लोग पता लगते ही उस स्थान को छोडकर भाग जाते है। भय के कारण अनेक सून्य स्थानो मे छिपते है। और रूप बदल कर जहाँ तहा रहते है ॥१८२॥

स्वयार्थ ग्रामे वा तस्करा गंच्छन्ति तमरात्रौ वा ॥
दृश्यते यत्र-तत्र कि ध्वनित तत्रैव मानवा: ॥१८३॥

चोर लोग रात्रि के अ धकार मे चोरी करने के लिये ग्राम शहर राजधानी व कस्बा मटबरण द्रोण मुख मे जाते है। वे चोर चौकन्ने रहते, विचरते रहते है वे चारो ओर को कान लगाकर सुनते है कि यहा कोई जागता तो नही है। देखो उधर से आवाज कैसी आ रही है। जब चोर ग्राम मे प्रवेश करते हैं तब चारो ओर कान लगाकर सुनते है कि कोई जाग तो नही रहा है। आपस मे भी कहते है कि देखो आस्ते से प्रवेश करो कोई जानने न पावे। यदि ग्रामवालो को पता लग जाय तो वे सब सावधान हो जायेंगे और तुम्हारे को पकड़ लेगे और मारेंगे तथा पीड़ा देवेंगे।

तान् तस्करान् धरन्ति ग्रामवासिनै ताडयन्ति मुहुश्च।
कि कथयामि तत्कालं कथा मृत्यु ं यातितान् व्याधि ॥१८४॥

जब ग्रामवासी लोग उन चोरो को अपने ग्राम व घर मे या घर के बाहर पकड़ लेते है तब ग्रामवासी लोगो के द्वारा पीटा जाता है वे इतनी बुरी तरह से मारते है कि चोरो की वही पर ही मृत्यु हो जाती है तथा जो देखता है वही बार-बार मारता है। जब वे लोग मारते है तब उस काल की व्याधि की क्या कथा कहू। वह बेहोश होकर जमीन पर गिड़-गिडाता हुआ पड जाता है इस प्रकार पीड़ा देते हैं, और मसक बाध लेते है।

छेदन्ति हस्तपादौ कुर्व्वन्ति कृष्ण मुखं सूप वाद्यं।
निस्सारयन्ति ग्रामात् घनधान्यापकर्षयन्ति ॥१८५॥

जब ग्रामवासी लोग हाथ पैर तोड़ देते है तथा हाथ पैरो को छेदन करते है; और चोरो का मुख काला करके तथा गधे के ऊपर सवारी कराकर जूतो की माला पहनाकर सूप बजाते हुए ग्राम से बाहर निकाल देते है। तथा धन-धान्य को भी जबरन करके छीन डालते है तथा राजा के हवाले कर देते है ऐसी चोरो की गति होती है ॥१८५॥

पाप भारेणैव ये गच्छन्ति क्रूरा: सप्तमनारके ॥
पावन्ति घोर दु:खं जन्मजन्मान्तरे तस्करा: ॥१८६॥
मातापिता बांधवास्तेऽपि न इच्छन्तिजालं तस्करान्
तिरस्कार दृश्यते तदपि न मुञ्चन्ति त्रिलोकेषु ॥१८७॥

जब चोर लोगो का पाप का घडा भर जाता है और सब लोगों में जहाँ कही जाता है वही पर उसकी निन्दा होती है। तथा घरवाले माता-पिता भाई सब कहनें लग जाते है कि ऐसा कपूत तो हमारे घर जन्म लेते ही मर जाता तो हमको किसी प्रकार का दु,ख नही होता। आज यह कुल में कपूत उत्पन्न हो गया इसके कारण ही हमारी अपकीर्ति व अपयश चारो तरफ फैल रहा है। वें सब उसका तिरस्कार करते है। वे दुष्ट पापात्मा

मरण करके सातों नरकों में जहां कही भी उत्पन्न होते है। वहां पर घोर दुःख पाते है। तथा वहाँ से भी निकलकर त्रियचगति में जन्म लेकर दुःख पाते हैं इस तरह जन्म जन्म में दुखों का अनुभव करते है। इतना जानते व देखते हुए भी वे मूढात्मा चोरी करना नही छोड़ते है। राजा लोग भी उनके अंग उपांगो का छेदन भेदन करते है तथा फाँसी व सूली की मौत से तथा शिकारी कुत्तों से चिथवा-चिथवाकर मरवा डालते है। इस प्रकार चोरी करने से दुस्सह दु खो का भोग भोगना पड़ता है। इन दुःखो से व पापो से बचने के लिये आचार्य कहते है कि सज्जनों को चोरी करने का त्याग कर देना ही उचित है।

चोरी कर लाया गया धन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है चोरी के धन की उपमा देते हुए कहते है कि चोरी का धन इस प्रकार नष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार फागुन महीने में रची गई होली। होली रचने वाले लोग चोरियाँ करके होली रचते है जब पूर्णिमा का दिन आ जाता है तब वहाँ आग लगा दी जाती है वह चोरी का सामान सब एक क्षण में जलकर भस्म हो जाता है उसी प्रकार जानना चाहिये।

शिखरणी—सहस्तेयैः द्वेषोऽपि सतिनियमैनेह बहुधा।
न इच्छन्ते तेषां भवन वहिवासी बहुखलान्॥
पृतान्तेवैरंजायत पितरयोः लभ्यति सदा।
तदा कोरक्षिष्यंति नरकगतौ याष्यति दुःखम्॥१८८॥

चोरी करने वालो के साथ में सब लोग द्वेष करते है व चोर भी परस्पर में द्वेष करते है तब वे एक-दूसरे को भी बैर बाधकर मार डालते है। और जिनके यहा से चोरी की गई है वे भी द्वेष करते है तथा बैर बाँधकर चोरो को मारने का स्वय प्रयत्न करते है व अन्य जनो से मरवाने का प्रयत्न करते है। जिससे इस (लोक) व इस जन्म मे तो बैर और द्वेष बढ़ ही जाता है मरण के पीछे भी जन्म-जन्मान्तर मे भी बैर चला करता है इसलिए उन चोरो का मुख देखने को कोई सज्जन तैयार नही होता है, सज्जन तो दूर से बहिष्कार करने लग जाते है। यह बड़ा ही कमबख्त नीच दुराचारी है इसको निकालो यहाँ से यह इस घर में रहने के योग्य नही है। तथा पड़ोसी भी कहने लग जाते है कि इसको यहा से शीघ्र ही निकालो नही तो हमारे सब के ऊपर भी आपत्ति-विपदा आ जायेगी तथा चोर के धोखे में साहूकार मारा जायगा। इन दुष्टो को जल्द ही निकालो। दूसरे लोग भी वैर-द्वेष करने लग जात है उनको कोई भी अच्छा नही कहता है बाहर वाले तो करेगे ही क्या जबकि जन्म देने वाली माता भी उसका बहिष्कार कर देती है। ग्रथकार कहते है कि हे भव्य जब इस नर पर्याय को छोड़कर नरक गति में जायेगा वहाँ पर तेरे को नारकियों द्वारा वेदना दी जायगी वहा तेरी कौन रक्षा करेगा जब तू जन्म-मरण व वेदना, रोग, शोक, वियोग छेदन-भेदन व तापन इत्यादि दुःखो को पावेगा ?

विशेषार्थ—जहा कही चोर लोग चोरी करने जाते है वहां पर यदि वहां के निवासी जनो को पता लग जाता है तब वे बदूक लाठी लेकर उनका बहिष्कार करते है। जब कभी ज्ञात नही हुआ और चोरी कर माल को ले आते है तब भी धन माल के स्वामी द्वेष करते हुए

वैर पूर्वक उनकी खोज लगाते है जब पता लग जाता है तब उनका तिरस्कार कर मरवाने का या मारने का प्रयत्न करते हुए देखे जाते है। कही कही यह भी दखा जाता है कि चोर आपस मे बटवारा करते है जब कोई अधिक या हीन ले लेता है तब वे आपस मे बैर बाँध कर मौका लगने पर स्वय मारने का प्रयत्न करते है अथवा दूसरो के द्वारा मरवाने का प्रयत्न करते है। इस लोक और घर ग्राम नगर मे उनकी रक्षा करने को कोई भी तंयार नही होता है यदि रक्षा हो जावे तो लोग रक्षा करने वाले का चोरो के समान ही बहिष्कार करते हुए देखे जाते है। चोरी करता है उसकी हृदय की गति बढ जाती है जिससे उसको रात्रि में व दिन मे नीद भी नही आती है वह चिन्तातुर रहता है तथा उसका दिल घबडाहट मे पड़ जाता है। चोरी करते समय आकुल रहता है और चोरी करने के पीछे भी भयभीत होकर इधर-उधर छिपते हुए रहता है। कभी कभी बिना मौत के भी मार दिया जाता है। जहा कही जाता है वहीं लोग कहते है कि हमारे ग्राम या मुहल्ला मे यह चोर कैसे आया, और कहने लग जाते है कि सब ग्राम वालो सावधान रहो यहा आज चोर फिर रहा है। जब किसी को पता लग जाता है तब उसको बधवा कर पुलिस के सुपुर्द कर देते है। इसलिए भव्य जीवो को किसी का धन अपहरण नही करना चाहिए। जितनी वस्तुये बिना दी हुई हो उनको चोरी कहते है। किसी की जेब या थैला मे से या भूल से मार्ग मे गिर जावे उसका भी लेना या दूसरे को देना चोरी है। या कोई व्यक्ति अपनी वस्तु को भूल गया हो उसको लेना भी चोरी है। तथा किसी के खेत बाग बगीचा आदि मे से फसल का तोड़ लेना काट लेना यह भी चोरी है। तथा किसी के द्रव्य को उठा कर लेना यह चोरी है तथा जिसके लेने से दूसरो से बैर विरोध उत्पन्न हो और लोग चोर कहे उसको भी चोरी कहते है। तथा माया जाल बिछा कर किसी के द्रव्य को अपहरण कर लेना यह भी चोरी है जेब काट लेना व धोखा देकर रूपया पैमा छीन लेना यह भी एक प्रकार की चोरी है। डाका डालना व दूसरे के घर मकान दुकान की दीवार को तोड़ फोड कर जर माल को ले भागना यह भी चोरी है। किसी की गाय भैंस बैल घोड़ा इत्यादि को अपहरण कर ले जाना यह भी चोरी है इस प्रकार चोरी के और भी भेद कहते है। वे इस प्रकार कम दाम की वस्तु को अधिक दाम को वस्तुओ में मिश्रण कर देना यह भी चोरी है। तथा बस या रेल गाड़ी मे बिना टिकट के यात्रा करना व हीनाधिक किराया देना भी चोरी है। व इनकम टैक्स सेल टैक्स का चुरा लेना या लाकर उसको वापस नही देना व धरोहर को दबा लेना इस प्रकार चोरी के भेद है। अथवा जिसके अपहरण मात्र से जीवो के प्राणो की विराधना होती है उसको चोरी कहते है। इसको कभी भी नही करना चाहिये।

अर्थादौ प्रचुर प्रपञ्च रचनैर्ये वञ्चयन्ते परान्,
नूनं ते नरकं व्रजंति पुरतः पाप व्रजादन्यतः ॥
प्राणाः प्राणिषु तन्निबधनतया तिष्ठन्ति नष्टे धने,
यावन् दुःख भरो नरे न मरणे तावानिह प्रायश ॥२८॥

पद्म नदी पंच विंशतिका

जो मनुष्य धन आदि के कमाने मे अनेक प्रपंचो को रच कर दूसरो को ठगा करते है

वे निश्चय से उस पाप के प्रभाव से दूसरों के सामने ही नरक में जाते है। कारण यह कि प्राणियों में प्राण धन के निमित्त ही ठहरते है धन के नष्ट हो जाने पर मनुष्य को इतना अधिक दुःख होता है कि जितना प्रायः उसे मरते समय भी नही होता ॥२८॥

बभूवुः प्रसिद्धास्तेत् स्तेये व्यसने सत्यघोष विप्रः ।
श्रेष्ठी धनपालश्च धन मान धाम वेशात् ह्रासः ॥१८६॥

चोरी व्यसन में अनेक मनुष्य प्रसिद्ध हुए है परन्तु दृष्टान्त के लिए यहां पर सत्य घोस ब्राह्मण तथा सेठ धनपाल की कथा है। वे चोरी के कारण ही अपयश को प्राप्त हुए है। तथा अपने धन धान्य माल घर मकान व दुकान से भी हाथ धोने पड़े। चोरी के कारण ही राजा ने धन माल लुटवा लिया और कलक लगा कर नगर व देश से निकलवा दिया।

उज्जयिनी नगरी मे पद्दुपाल नाम के सेठ रहते थे उनकी पुत्री का नाम मनोरमा था बाल अवस्था में ही अनेक प्रकार के न्याय काव्य व्याकरण इत्यादि अध्यापक के पास पढी थी जब वह सोलह वर्ष की हो गई तब माता पिता को चिन्ता हुई कि पुत्री अब ब्याह के योग्य हो गई अब इसका विवाह सयोग करना चाहिये। इस प्रकार इस पुत्री के अनुरूप सुन्दर वर देखकर दे देना चाहिये इस प्रकार मन में विचार कर पदुपाल सेठ ने सुन्दर रत्लो का एक करोड दीनार लगाकर एक हार बनवाया और अपने पुरोहित (ब्राह्मण) को बुलाकर उस पुरोहित को समझाकर कहा कि इस हार की जो कीमत करे उससे कीमत मत लेना यदि उसके अपनी पुत्री मनोरमा के योग्य वर होय तो उसके टीका में दे देना। यह सुनकर पुरोहित हार को लेकर चल दिया प्रथम ही वह मालवा को छोड़कर हस्तनापुर में पहुँचा पर वहां भी कोई सेठ नही मिला तव वह काशी देश में बनारस नगरी में पहुँचा फिर पटना (पाटली पुत्र) से चलकर पहुचा वहा पर बड़े-वड़े जौहरी थे उन सबको हार दिखाया और कीमत कही तो वे सुनकर बहरे सरीखे हो गये।

उस हार की कीमत जो सुन लेता है वह बहरा सरीखा हो जाता जब वहां भी उसकी कीमत नही हुई तब भ्रमण करता हुआ चम्पापुरी में जा पहुंचा उस नगरी में एक सेठ धनपाल रहता था, उसकी दुकान पर पहुचा और उस कीमती हार को बेचने के लिये दिखाया। हार को देखते ही उसके मन में बेईमानी आ गई वह ब्राह्मण से बोला कि अभी आप यही पर बैठिये मैं हार को दिखाकर ले आता हूँ, पुरोहित जी ने उसके मन के छल को नही समझा, वह हार को लेकर अपने घर गया और उस असली हार को अपने घर में अलमारी तिजोरी में रख दिया, अपने स्त्री से बोला प्रिये विधाता ने लक्ष्मी घर बैठे भेजी है तब वह बोली कि हे देव पर धन से धन नही होता है जब अपने भाग्य का उदय होगा तव धन बहुत हो जायेगा। परन्तु उसके समझाने पर भी सेठ ने नही सुनी फिर वह बोली यह आपका कर्त्तव्य ठीक नहीं जिसकी जैसी वस्तु है उसको वैसी ही दे देनी चाहिये क्योंकि पर धन से धन नही हो सकता है।

सेठानी ने वहुत समझाया लेकिन उसने एक बात नही सुनी और बनावटी खोटे रत्नों से निर्मित हार को ले जाकर पुरोहित को दे दिया और कहने लगा कि अरे ब्राह्मण

तुझको कोई और ठगने को नही मिला जो दो कोडी के हार की कीमत एक करोड दीनार मांगता है। जा भाग जा मै तो तुझको छोड देता हूं यदि तू अन्य के पास इसको ले गया होता तो तेरे को आज राजा के हवाले कर दिया होता, इस प्रकार बोलते हुए पुरोहित को डाट फटकार कर निकाल दिया, पुरोहित ने देखा कि यह हार तो मेरा नही है यह तो हार खोटे रत्नो का है परन्तु मेरा हार तो सच्चे रत्नो का है तथा वडे-बडे कीमती रत्नों से बना हुआ है। वह बोला कि श्रेष्ठी जी यह हार मेरा नही है यह हार तो खोटा दिखाई देता है यह सुनकर धनपाल सेठ बोला कि झूठा हार लिये फिरता है और साहुकार को सरेयाम चोर बनाता है यह कहते हुए उस पुरोहित को वहा से निकाल दिया। वह पुरोहित रोता-रोता राजदरबार मे गया। और राजा से फर्याद की तब राजा विचार करने लगा कि साहूकार को चोर कैसे कहा जा सकता है और ब्राह्मण को भी झूठा नही कहा जा सकता है। राजा नें मन्त्रियो से बुलाकर कहा कि इस ब्राह्मण का न्याय करो, यह ब्राह्मण कहता है कि आप के नगर मे धनपाल नाम का सेठ है उसने मेरा असली रत्नो का हार रख लिया और नकली रत्नो से बना हुआ हार मुझको अनभिज्ञ जान कर दे दिया है। यह सब सुनकर मन्त्री भी बहुत देर तक विचार करता रहा और बोला कि महाराज यह न्याय हमसे नही बन सकता है परन्तु सागर दत्त का पुत्र सुखानन्द इसका सच्चा फैसला कर सकता है उसमें इतनी बुद्धि है। राजा नें भी सुखानन्द को बुलवाने के लिये चार घोड़ो की बग्गी भेज दी सुखानन्द कुमार को आदर सहित बुलाकर ले आओ ? दूत सुखानन्द के पास उनके मकान पर पहुँचा और हाथ जोडकर विनय पूर्वक बोला कि कुमार आप को राजा ने याद किया है सो दयाकर आप राजदरबार मे चले सो आप के लिये रथ दरवाजे पर खडा हुआ है आप उसमे बैठकर चलें।

सेवक की बात सुनकर तुरन्त ही सुखानन्द रथ में बैठकर राजदरबार में जा पहुँचा और राजा को यथायोग्य नमस्कार किया तब राजा नें भी कुमार का सन्मान किया और उसके योग्य आसन दिया और सुखानन्द कुमार उस चौकी पर जा कर बैठ गया। राजा नें सुखानन्द कुमार को अपने पास मे बिठलाया और उस विप्र की बीती हुई सब कहानी कह सुनाई। उसको सुनकर सुखानन्द कहने लगा कि आप धनपाल सेठ को अपने पास बुलवा लीजिये, राजा ने भी शीघ्र ही धनपाल सेठ को बुलवाने के लिये राजदूत भेज दिया, राजदूत भी शीघ्र ही धनपाल के घर जा पहुँचा और जा कर कहा कि महाराज नें आपको याद किया है सो आप इसी समय चलिये। धनपाल राजकर्मचारी की वात सुनकर शीघ्र ही घर से चल दिया और राजदरबार जा पहुँचा राजा को प्रणाम किया राजा ने भी उसका आदर किया और कुर्सी बैठनें को दी। तथा राजा नें सेठ से खुश खबरी पूछी। उधर सुखानन्द उस ब्राह्मण के नकली हार को लेकर अपने घर गया और धाय को बुलाकर कहा कि धनपाल की स्त्री के पास जाओ और कहो कि यह हार ले लो जो ब्राह्मण का हार है उसको मुझे निकाल दो मुझे सेठ ने भेजा है। वह दासी चतुर प्रवीण शीघ्र ही चल पडी और धनपाल के घर पहुँची और सेठानी से बोली कि यह हार ले लो और ब्राह्मण का हार मेरे को दे दो, सेठने मुझे भेजा है यह सुनकर सेठानी बोली कि वह हार तो उनके आने पर ही मिल सकता है यह सुनकर दूती वापस चली

गई। और सुखानन्द को सारा समाचार कह सुनाया।

जब दासी वापस आ गई तब सुखानन्द कुमार ने दासी को समझाकर कहा कि कहना धनपाल सेठ को तो राजानेबांध रक्खा है वो नही आ सकते यदि उनके प्राणों को बचाने की इच्छा होय तो उस हार को दे दो नही तो राजा न जाने क्या दण्ड देगा। इस प्रकार कहकर दासी को भेज दिया। दासी धनपाल के घर जाकर धनपाल की सेठानी से कहने लगी हे सेठानी जी सेठ तो नही आ सकते हैं उनको तो राजा ने बाध रक्खा है यदि तुम उनका जीवन कुशल चाहती हो तो उस ब्राह्मण के हार को मुझे दे दो और इस हार को ले लो। नही तो न जाने राजा क्या करेंगे। इस बात को सुनकर सेठानी का हृदय कांप गया उसने ब्राह्मण के हार को निकाल कर उसे दासी को सौप दिया और अपने नकली हार को ले कर रख लिया। दासी उस हार को लेकर शीघ्र ही सुखानन्द कुमार के पास पहुँची और उस हार को सुखानन्द कुमार को दे दिया। कुमार भी उसको लेकर रथ में बैठ दरबार में पहुंचा और राजा को एकान्त में बुलाकर हार के प्राप्त होने का सारा समाचार कह दिया और हार राजा को सौंप दिया। राजा ने हार को देखकर अपने पास रख लिया। राजा धनपाल सेठ से पूछने लगा कि यदि कोई किसी के द्रव्य को अपहरण कर लेवे तो क्या दण्ड देना चाहिये। यह श्रवण कर धनपाल बोला कि महाराज उसको देश से निकाल देना चाहिये, उसकी सब सपत्ति को लुटवा लेना चाहिये, काला मुख करवा कर खरारूढ़ करते हुए काला मुख कर सूप का बाजा बजाते हुए नगर में घुमाकर सबको शिक्षा देते हुए निकाल देना चाहिये। ग्रन्थकार कहते है कि अपने घर का हो अपने को पता नही कि मेरे पीछे मेरे ही घर में क्या हो गया मैं क्या कर रहा हूं। इतना सुनकर राजा ने ब्राह्मण का असली हार सबको दिखाया। ब्राह्मण देखकर अत्यन्त आनंदित हुआ। यह देखकर धनपाल के होस उड़ गये। राजा ने भी एक काला गधा मगवाया और उस पर धनपाल को बिठाकर काला मुख करवाकर गले मे जुतो की माला पहनाकर सूप का बाजा बजाते हुए सारे नगर में घुमाया और नगर मे बाहर निकाल दिया। और उसका माल असबाब सब लुटवा लिया और मकान दुकान पर राजा ने कब्जा कर लिया। एक हार की चोरी के ही कारण से धनपाल को देश निकाला दिया गया। इसलिये चोरी करना सो महापाप का करना है चोर पापियों को सुख कहा मिल सकता है। अति दुःख ही दुःख मिलता है।

शिवभूति ब्राह्मण की कथा

प्रयाग नाम के देश में अनेक भोग और वैभव से समृद्ध सिंह के समान पराक्रमधारी राजा सिंहसेन राज्य करता था उस नगरी का नाम सिंह पुरी था। उस राजा सिंहरथ की अपने शरीरकी सुन्दरता से सब जनो के रूप को मात करने वाली राम दत्ता नाम की पटरानी थी। उस राजा के दो पुत्र थे जो अपनी सुन्दरता और धैर्यता पराक्रम में देवो के समान सिंह चन्द्र और पूर्णचन्द्र नाम के थे। अनेक विद्याओं मे पारंगत शिवभूति पुरोहित था उसका दूसरा नाम सत्यघोष था, उसकी धर्म पत्नी का नाम श्री दत्ता था. वह सदा पति का हित

चाहती थी। उसने एक बाजार बनवाया था उसमें अनेक गलियाँ तथा चौपड़ के आकार के बाजार बने हुए थे। उसमें जो भी दुकानें थी वे माल से भरी रहती थी, उस बाजार में गोशालायें बनी हुई थी। पानी, घास व ईंधन बहुत सहुलियत से मिलता था, लड़ने में तत्पर ऐसे योधा लोग इस बाजार की रक्षा करते थे, दो कोष का उसका विस्तार था खाई कोटें कुआं वावड़ी व कूचा गली आदि से सुरक्षित था मार्ग में प्याऊ सदाव्रत शालाये बनी हुई थी। धूर्तजार और विलासी पुरुषों से रहित था, उस बाजार में नाना देशों से आकर व्यापारी व्यापार करते थे उनसे बहुत थोड़ा टैक्स लिया जाता था, एक दिन पद्मनीपुर का निवासी सुदत्ता नाम की सती का पति सुमित्र के पुत्र भद्रमित्र ने मन में धन और चरित्र में अपने समान जन्मे वणिक पुत्रों के साथ समुद्र की यात्रा करने का विचार किया।

पदमायां नभिकुर्यात् पादं वित्ताय कल्पयेत् ।।
धर्मोणभोगयो पादं पादं भर्तव्य पोषणे ।।

अपनी आमदनी का चौथाई भाग तो जमाकर लेना चाहिए एक चोथाई से व्यापार करना चाहिए एक चौथाई से धर्म कार्य करना चाहिए एक चौथाई से अपने आश्रित स्त्री पुत्र माता-पिता आदि का भरण पोषण करना चाहिये।

इस नीति का विचार कर भद्रमित्र ने अपने संचित धन को किसी एक सुरक्षित स्थान में रखने का विचार किया। सोचकर सब लोगों में विश्वसनोय माने जाने वाले उसपुरोहित शिवभूति के हाथों में उसकी धर्म पत्नी के सामने अत्यन्त सुन्दर बहुमूल्यवान सात रत्न सौंप कर जल यात्रा करने को चला गया। वहां जाकर व्यापार किया बहुत सा धन कमा कर और वहा से अपने मन पसन्द सामान खरीद कर जहाजों मे लदवाकर चला जब चलते-चलते समुद्र का किनारा थोड़ी ही दूर रह गया था तब बड़े जोर का तूफान आया। जिससे उसका जहाज उलट गया। दैव वश आयुवाकी होने के कारण से वह बच गया वह जहाज के टूटे हुए एक लकड़ी के तख्ते की सहायता से समुद्र से किसी प्रकार से वाहर निकल आया समुद्र की लहरे सारी रात खाते खाते किनारा दिखाई दिया।

एक तो वणिक पुत्र जन्म से ही सुख में रहा दूसरे अपार समुद्र के खारे पानी ने उसे धन सून्य ही नही बनाया उसको विचार सून्य भी बना दिया, अतः किनारे पर पहुँचने पर वह बहुत देर तक बेहोश मूर्छित के समान पड़ा रहा। जब सूर्योदय हुआ तो उसकी आँख खुली-बधु जन के मर जाने तथा धन क्षय हो जाने से अत्यत दुःखी था उसका मुख भी पोला पड़ चुका था, किसी प्रकार से फटे हुए कपड़ों से अपने शरीर को ढककर वह वहाँ से उठा। वहाँ से थोड़ी दूरी पर नगर था वहाँ पर किसी वणिक के यहाँ नौकरी करते-करते कुछ समय बीत गया तब उसका मन थक गया। अन्त में आजीविका के न होने के कारण जहाँ तहाँ घूमता हुआ वह सिहपुर में पहुँचा और शिवभूति पुरोहित से अपने रखे हुए सात रत्न मागे। वह समय था कि उसको दशा बिगड़ी हुई थी उसके पास कुछ भी उसको देने के लिए कोई सबूत नही था। वह दशा उसके स्वभाव से ही जानी जाती थी।

दूसरों को ठगने में प्रवीण शिवभूति ने सोचा कि यदि अच्छी तरह से छल का प्रयोग

किया जावे तो ब्रह्मा को भी वञ्चित किया जा सकता है और यदि दूसरे मनुष्यों में बड़ा ही परिवर्तन हो गया हो तो फिर कहना ही क्या। इस प्रकार शिवभूति मन में विचार कर वह लोलुपी वणिक पुत्र से इस प्रकार बोला कि अरे दुराग्रही नीच बनिये क्या तुझको किसी पिशाच ने तो नही छला है ? या मन को मोहित करने वाली किसी औषधि ने तेरी मति भ्रष्ट तो नही कर दी है। या जुआ में अपनी चित्तवृत्ति तो नही हार गया है ? या दूसरों के मन को ठगने वाली किसी दुराचारिणी ने तेरी दुर्गति कर दी है। फलवान वृक्ष की तरह किसी श्रीमान के विरुद्ध लगाया अभियोग बिना फल दिये बिना नही रहता है, इस विचार से किसी दुर्बुद्धि ने तुझको ठगा है। जिससे वे सिर पैर की बाते करता है। तू कहाँ मैं कहाँ हमारा तुम्हारा सम्बन्ध ही क्या है ? छल करने में कुशल नगर चोर निदनीय वणिक पुत्र सर्वत्र देशों में मेरी विश्वसनीयता की ख्याति है इस तरह असमय से मुझ से पूछते हुए तेरे को लाज नही आती है।

तत्पश्चात उस पिशाच शिवभूति से अपने रत्न प्राप्त करने के लिये चिल्लाते फिरते उस वणिक पुत्र को जबरदस्ती नौकरो के द्वारा राजमन्दिर में बुलवाकर राजा से कहा महाराज यह वणिक व्यर्थ ही सर्वत्र हमारा अपवाद करता हुआ फिरता है। बिना नाथ के बैल की तरह सुख से बैठने ही नही देता है, इत्यादि बातों के द्वारा राजा का हृदय भी उसकी ओर से उत्तेजित कर दिया और राजा के द्वारा भी उसको महल से बहिष्कार कर निकलवा दिया।

यह देखकर भद्रमित्र विचारने लगा मेरे घर में वशपरंपरा से लक्ष्मी का निवास चला आया है मै असाधारण साहसी भी हूँ फिर भी आश्चर्य है कि वह पक्का ठग नगरो के बीच में ही मेरा माल हड़प लेना चाहता है। यह विचार कर उसको बड़ा क्रोध आया, उसे निश्चय हो गया कि शिवभूति मेरी धरोहर को कभी नही देगा तथा समझदारों और धर्माधिकारियों के सामने उसके अन्याय से कुछ लाभ नहो होगा। तब उस सुबुद्धिशाली ने एक दूसरा उपाय सोचा।

राजा की पटरानी के महल के समीप एक इमली का वृक्ष था, रात के समय वह उसकी चोटी पर चढ जाता है और जैसे सारसी के वियोग में सारस चिल्लाता है उस तरह रात्रि के प्रथम पहर में और रात्रि के अन्तिम पहर में हाथ को ऊँचाकर बडे जोर से चिल्लाता है कि मेरे पूर्व मित्र अव शत्रु शिवभूति पुरोहित मेरी अमुक रंग की पेटी में रखे हुए अमुक आकार ओर अमुक रग के तथा अमुक सख्या वाले मेरे रत्नों को नही देता है। ये रत्न मैंने उसके पास धरोहर के रूप मे रक्खे थे उसकी साक्षी उसकी धर्म पत्नी है। यदि मेरा कथन रच मात्र भी गलत हो तो मुझे मरवा दिया जावे।

इस प्रकार चिल्लाते-चिल्लाते उसको छह महीना वीत गये, एकबार अनाथ लोगों के लोचन रूपी चकोर के लिए चाँदनी के समान आचरण वाली दयावती राजमहिषी रामदत्ता कौमुदी महोत्सव देख रही थी। उसके पास मे उसकी धाय निपुणिका बैठी थी। उस समय रामदत्ता ने उस वणिक पुत्र की आवाज सुनी और दया पूर्ण भाव से अपनी धाय से बोली हे धाय न तो यह मनुष्य पागल है, न पिशाच ही है, न ये पिशाच से ठगाया गया है, न ये पागल

ही जैसा है। उस दिन से लेकर आज दिन तक एक ही शब्द बोलता है। अतः सत्यघोष जो द्यूत क्रीडा का रसिक है उसके साथ द्यूत क्रीडा के बहाने से उसके मन की बात शीघ्र ही जाननी चाहिए। जुआ खेलते समय मे उस अनाचारी बगुला भगत से जो जो (बात पूछूं और जो उसके ककण अँगूठी वस्त्र जुआ खेलने में) जीतू उन सबको प्रमाण रूप से उपस्थित करके तुम्हे उस मृगी के समान मुख किन्तु सिंहनी के समान आचरण वाली श्री दत्ता से इमली के वृक्ष पर चढे हुए इस वणिक के सात रत्न मँगवा लेना चाहिए।

इस प्रकार निपुणिका को समझाकर दूसरे दिन रानी नें हे मेरे हृदय को आनन्द देनें वाले पास देवता ? यदि उस इमली के वृक्ष वाला मनुष्य सत्य है तो तुम्हें भी उसकी सहायता करनी चाहिए ऐसी प्रार्थना करके वैसा ही किया और बार-बार जुए मे जीते हुए पदार्थो को प्रमाण रूप से उपस्थित करके शिवभूति की धर्मपत्नी से रत्न मँगवाने को भेज दिया, परन्तु उसने नही दिये कहा कि रत्न तो वे ही दे सकते है। जैसा सुना वैसा ही सब समाचार दासी ने रानी से कह दिया कि रत्न तो सत्यघोष ही दे सकते है।

तब पुन. जुआ खेलना जारी कर दिया रानी ने जनेऊ व कैंची को तथा हाथ की मुद्रिका को भी जीत लिया और एकान्त मे जाकर दासी से कहा कि तू तुरन्त ही शिवभूति की धर्मपत्नी के पास जा और उसको ये सब वस्तुये प्रमाण भूत देना और कहना कि बनिये के सात रत्न मगाये है यह उन्होने अपनी निशानी दी है सो तुम ले लो शिवभूति ने मुझको दी है वे अब नही आ सकते वे राज दरबार में बैठे हुए हैं। इतना सुनकर उसको विश्वास आ गया और उसनें तिजोरी मे रक्खे हुए बनिये के सातों रत्न उस दासी के हाथ मे सौंप दिये। दासी शीघ्र ही रानी के पास राज महल मे आई और बनिये के सातो ही रत्न रानी को सौप दिये। रानी नें दासी को भेजकर राजा को राजमहल मे बुलवा लिया और राजा भी राजमहल में आ गया तब रानी ने वे बनिये के सातो ही रत्न राजा को दे दिये। राजा उन रत्नो को देखकर चकित हो गया। राजा नें सभा मे जाकर अपनें भण्डारी को बुलाकर कहा कि अपने खजाने में से एक थाल भरकर रत्न लाओ राजाज्ञा पाकर भडारी गया और एक थाल में बहुत से रत्न भरकर ले आया और राजा के पास रख दिये, राजा नें थाल को उठाकर बनिये के सात रत्न उसमे मिला दिये सब की जगमग ज्योति होने लगी। राजा नें बनिये को बुलवाकर कहा कि तुम्हारे कितने रत्न थे और कैसे थे तुम उनको पहचान सकते हो क्या। यदि पहचान सकते हो तो पहचान लो। राजा ने रत्नो से भरा हुआ थाल वणिक पुत्र के सामनें रख दिया वणिक पुत्र ने सब बहुमूल्य रत्नो को छोड़कर अपने जो रत्न थे वे ही चुने अन्य सबको ज्यो का त्यो छोड़ दिया। उनसे अपना हाथ भी नही लगाया। वह बोला श्री महाराज मेरे ये सात रत्न है, यह देखकर राजा को बडा ही आश्चर्य हुआ और बोला कि आप ही सच्चे सत्यघोष है। वह बोला कि तुम ही निस्पृही हो क्योकि तुम्हारे मन में वचन मे और करने मे एक ही भाव हैं उसकी राजा ने अपनें वचनो से बहुत प्रशसा की। तथा राज दरबार मे रहने वालो ने व रानी ने भी प्रशसा की मत्री विश्वमित्र नें

बहुत-बहुत प्रकार से आदर रूप वचन कहे। मेरे घर में मेरे पीछे क्या हुआ है और राजदरबार में क्या-क्या हुआ है उसका सत्यघोष को पता न चला। राजा ने शिवभूति को बुलाकर कहा कि पुरोहित जी यदि कोई किसी की धरोहर को हड़प लेवे और उसका पता लग जावे तो क्या दण्ड देना चाहिये। सत्यघोष बोलने लगा कि प्रथम तो गाय का ताजी गोबर भर पेट खिलाना चाहिये दूसरा पहलवान के सौ मुक्का तीसरे उसकी सब सपत्ति को लुटवा लेना चाहिये और देश निकाला दे देना चाहिए, चौथा काला मुख कर गधे पर बैठा कर सूप का बाजा बजाते हुए शहर से निकलवा देना चाहिए या प्राण दण्ड देना चाहिए। इस प्रकार वह दण्ड बता रहा था तब नीतिकार कहते है कि जिसको यह पता नही कि यह गति मेरी ही होगी।

नीतिकार कहते है कि (विनाश काले विपरीत बुद्धिः) जब विनाश काल आ उपस्थित होता है तब बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है।

अब क्या था कि शिवभूति ब्राह्मण के सामने वे सातो रत्न दिखाये और कहा कि ये सात रत्न तुम्हारे है या इस वणिक पुत्र के ? यह देखकर सत्यघोष अत्यन्त घबड़ा गया और काँपने लगा और सारा शरीर काला पड़ गया मारे शरीर में से पसीना बहने लगा वह बेचैन हो गया और उसके शरीर की कान्ति फीकी हो गई वह तो लोहे की पुतली की तरह से काला पड़ गया तथा सुन्न खडा रह गया। जिसकी नेत्रो की दृष्टि जमीन को स्पर्श कर रही थी। उसके मुख पर अत्यन्त लज्जा बोल रही थी। अथवा वह अत्यन्त लज्जित हो रहा था। भय के मारे अत्यन्त काँप रहा था, उसको देखकर राजा तिरस्कार करता हुआ बोला हे ब्राह्मण कुल कलक मूर्ख विश्वासघाती जुआ के द्वारा नये-नये रत्नो को अपहरण करने वाले बगुला भगत तुम्हारे यज्ञो-पवीत सज्जन पुरुषो के मन रूपी पक्षियों के फ़साने के लिये बड़े भारी जाल के समान है, अरे दुराचारी वेदो के भार वाहक समीचीन धर्म रूप मन्दिर को मलिन करने वाले कुकर्म करने वाले दुष्ट पुरोहित क्या तुम वृद्धता के कारण भोज वृक्ष की छाल के समान शिथिल हुए और तेज हवा के झकोरो से बुझने के सन्मुख प्रातःकालीन दीपक की तरह अथवा अस्त होने के सन्मुख सूर्य की तरह अपने शरीर की दशा का विचार नही करते हो जिससे इस अवस्था मे भी ऐसी चेष्टाये करते हो मानो तुम युवा हो। यदि अब तुमको जलती हुई अग्नि मे डाल दिया जावे तो,तुम्हारे जैसे पापियों पर कौन अनुग्राही होगा क्योकि उससे तुम थोड़ी सी देर दुख उठा सकोगे। हे नीच कुकर्मी ब्राह्मण ! जो तुम तुम्हारे द्वारा निर्णीत किये गये चार दण्डो मे से कौन-सा दण्ड अच्छा है उसको कहो वही दण्ड दिया जायेगा ? यह सुनकर वह बोला कि पेट भर गाय का गोबर खाऊँगा। जब गोबर का ग्रास मुख में दिया तो पेट की तरफ नही उतरा तब बोला कि यह मुझसे नही हो सकता है मुझे तो मुक्का खाना स्वीकार है तब राजा ने एक पहलवान को आज्ञा दी कि इनके सौ मुक्का लगाओ ? तब पहलवान ने एक मुक्का लगाया था कि वह घबड़ा गया और बोला कि यह मुक्का का दण्ड मुझसे सहा नही जाता। तब राजा ने उसका सारा जर माल मकान दूकानों पर अधिकार कर लिया और उसको उसके कथनानुसार ही काले गधे पर बिठाकर काला मुख करके जूतों की माला पहना कर फूटे ढोल को बजाते हुए सब नगरी मे घुमाते हुए राज्य से बाहर निकाल दिया। तत्पश्चात उसके शरीर में

कोढ का रोग हो गया जिससे मर कर दुर्गति को प्राप्त हुआ। चोरी मे प्रसिद्ध शिवभूति की कथा समाप्त हुई। चोरी करने के ही कारण ससार मे जन्म मरण के दु ख सहने पडेगे।

आगे शिकार व्यसन का स्वरूप संक्षप से कहते है।

घ्नन्ति छलेन पांशुलाः वीणादिभिश्च वाद्यभिः ॥
ध्वंसं मोहित चित्तानां बहुविधः कुरंगाणाम् ॥१६१॥

पापी शिकारी जन बांसुरी अलगोजा व बीन महुअर तथा हरमोनियम बाजा बजाते है तथा उनके द्वारा बजाई गई वासुरी की आवाज को सुनकर हिरण व सर्प व मोर इत्यादि अनेक जानवर उनकी ध्वनि सुनकर जिनका चित्त मोहित हो जाता है अथवा मुग्ध हो जाता है वे कीलित की तरह खडे रह जाते है तब बहेलिया (शिकारी) लोग उनको अनेक प्रकार के आयुधो का प्रहार कर मार डालते है। अथवा जगल मे विचरने वाले दीन हीन बिना वैर द्वेष व जो किसी को कोई भी हानि नही पहुँचाने वाले जो जंगल की हरी घास व झरना का पानी पीकर रहने वाले ऐसे हरिण, साबर, नील, रोज पाढ तथा जगली सूकर आदि को मार डालते है। जो दूसरो की आवाज सुनते ही भय के कारण चौकन्ने होते है आवाज आने पर ही भागने लग जाते है उनको भी बिना खता के ही मार डालते है। जो सर्प अपनी बामी में बैठा हुआ है वह जब महुअर या बाँसुरी की ध्वनि सुनता है तब महुअर बासुरी बजाने वाले के पास आकर खेलने लग जाता है मोर नाचने लग जाते है तब शिकारी लोग बन्दूक लाठी या गिलोल व धनुष बाण से उनको धोखे मे डालकर मार डालते है।१६१॥

धृतवान् बांसुरी जाल पाठीन मकराद्येवं ।
मृगया व्याधकैव कृत करुणाद् भ्रष्ट हिंसकाः ॥१६२॥

व्याध लोग एक पतली लकडी में डोरी बाध कर उसमें एक लोहे की बसी बाध कर उसकी तीक्ष्ण नुकीली बसी मे आटा लगाकर तालाब नदी वावडी इत्यादि मे डाल देते है। जिस आटा को खाने के लिये मछलियाँ दौडती है और उसको खा जाती है तथा निगल जाती है तब दुष्ट पापाचारी उस डोरी मे लगे हुए उस काँटे को झटका देकर खीच लेता है तब वह काटा मछली के गले मे चूभ जाता है जिससे मछली उसके साथ मे ही खीची चली आती है। तब बधिक जन उस मछली को जमीन पर जोर से पटक देते है जिससे वह मर जाती है। कही-कही मगर केकड़ा व काक्षप आदि जानवरो को जाल मे फसा कर दुष्ट निर्दयी उनकी शिकार करते है।१६२॥

अमेयुः त्रण चारिणः विपने भक्षयन्ति निर्झरम् ।
मावाधयन्ति केषां तान् बहुधार्घ्नन्ति आरण्ये ॥१६३॥

जो मृग आदि खरगोश तथा अन्य जीव जगल मे भ्रमण करते है अथवा निवास करते है जो जगल मे रहते हुए हरे सूखे घास, पत्तो को चरकर पानी पीते है जो दूसरो की आवाज से ही भयभीत हाते है तथा भागने लग जाते है व जगल मे छुप जाने का प्रयत्न करते है वे किसी भी अवस्था मे किसो का कुछ भी विगाड़ नही करते हैं उनको भी मास के लोलुपी शिकारी लोग वहुधा जगल मे ही मार डालते हैं।१६३॥

ये च सततं व्योमे च भ्राम्यमाणाः कापोदादि वहुखगाः।
खादन्ति पत्र पुष्पानि बीजांकुरान् विविध फलानि ये ॥१९४॥
व्यामोहितं च चित्तं मांसपेसीं नित्य भक्षकेषु।
ते दयाविहीना नरा. किं न हन्ति स्वात्मजानां ॥१९५॥

जो कवूतर चील, चिड़िया, वत्तक, वटेर, मयूर, तीतर, मैना, वाज, तोता, मुर्गा, मुर्गी, इत्यादि अनेक प्रकार के पक्षियों का आवागमन अथवा विचरना आकाश में होता रहता है। वे एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में जाते है और दूसरे स्थान से आते रहते है। वे पक्षी जगलो व खेतों मे कोपल फूल पत्तों व फलो को तथा घास के पत्तों को खाकर अपने जीवन का निर्वाह करते हैं तथा धान्य कणों को खा लेते है। खट्टे मीठे खारे कड़वे फलो को खाकर वृक्षो की डालियो पर वैठ कर अपना समय व्यतीत करते हैं। तथा किसी प्रकार की आवाज आने पर उड़ने लग जाते है उन पक्षियो को भी मास पेशी के भक्षण करने वाले मांस आहारी जन उन पक्षियों को जाल मे फंसाकर तथा गिलोल तीर कंकड़ गोली मारकर उनको मार डालते है। वे निर्दयी मनुष्य अपने पुत्रादि को क्यो नही मारते जैसे दूसरो के वच्चों के ऊपर वंदूक या तीर कमान से वार करते है और उनके वच्चो का वियोग करते हैं अथवा माता-पिता का वियोग करते है तथा उनका विनाश करते है।

किं निःस्वामिनामधिपत्यं युस्माकं वध वधकादिनां।
सूलं शालयथ चैव यदा गात्रे किं न वेदना ॥१९६॥

जिस समय तुम उन पशु पक्षियों को मारते हो जिनका कोई स्वामी नही है अथवा उन पशु पक्षियो को मारने का क्या तुम्हारा अधिकार है जो उनको मारते हो ? उनको मारने का कोई तुमको अधिकार नही है। क्या उनके माता-पिता को वच्चो से वियोग नही होता है ? क्या वे मरना चाहते हैं कि जिनको तुम मार रहे हो ? जैसे तुम अनाथ पशु पक्षियो को दुःख पूर्वक नाश करते हो उसी प्रकार तुम्हारे ऊपर यदि कोई प्रहार करे तो तुम्हारी क्या गति होगी। जव जिस समय तुम्हारे शरीर मे काटा चुभ जाता है तव क्या तुम्हारे शरीर में वेदना होती है या नही ? वेदना होती है। उसी प्रकार उन जीवो के भी वेदना होती है कि जिन जीवो को तुम मार रहे हो या मारने का प्रयत्न कर रहे हो ? जिस प्रकार आप अपने शरीर को व अपने जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करना चाहते हो उसी प्रकार सब जीव अपने जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करना चाहते है। जिस प्रकार तुम वेदना नही चाहते हो वैसे ही अन्य जीव भी वेदना नही चाहते हैं। जव तुम्हारे शरीर मे सूई चुभ जाती है तव नींद नही आती है उसी प्रकार अन्य जीवो को भी नीद नही आती है। जिस प्रकार तुम रोते हो वैसे ही वे भी रोते है ॥१९६॥

विरोधं परस्परे जन्मजन्मान्तरे रिपुत्वं तथा।
यानि हंसित्वं तेऽपि च सहोदराः किं न जातः ॥१९७॥

हे भव्य जिन प्राणियों का तू वध कररहा है वे प्राणी भी तुझको उसी प्रकार मारेंगे कि जिस प्रकार तू मार रहा है। वे जन्म जन्मान्तर में अपना वैर अवश्य ही चुकायेंगे जिससे

वैर की परपरा चलती रहेगी । वे जीव है जिनको तू मार रहा है वे भी तेरे पूर्व भव के माता पिता चाचा चाची स्त्री पुत्री भाई अनेक बार हो चुके हैं । तथा तू भी उनका अनेक बार माता पिता चाचा चाची भाई बहन मामा मामी अनेक बार हो चुका है इसमें सदेह नही है । परन्तु जिन जीवो को तुम मार रहेहो वे जीव इस समय तुमसे इस भव में कुछ भी कहने मे समर्थ नही है परन्तु भवान्तर मे वे तुमसे अवश्य ही बदला चुका लेने का प्रयत्न करेगे । जिस से वैर की परपरा चलती रहेगी । हे भद्र सुन जिन जीवो को बाण या रायफल को गोली का निशाना बना रहा है वे जीव तेरे सम्बधी हैं क्या अपने सम्बधियो पर ही गोली चला रही हो । तुझे धिक्कार हो ।

आज हम एक सर्प के काटे हुए मनुष्य को देखने जाते है तो वहा पर एक विषवैद्य मत्राधीश बैठा हुआ है । वहा पर बहुत से लोग एक मटका के ऊपर कासे की थाली को रख कर बजा रहे थे तथा कुछ गारहे थे । हम भी उनके समीप पहुच गये तमासा देखने का कौतूहल था । जब वे बजा रहे थे तब वह जिसको सर्प ने काटा था वह बोलने लगा कि मैंने इस दुष्ट पापचारी का क्या नुक्सान किया था कि इसने मेरे वदूक की गोली मारी । मैं जिसके पासमे खडा था वह मुझ से अपने रुपया माग रहा था मैं उसको कहरहा था कि कुछ ही दिनो में तेरे रुपया देदूगा । तू मेरा बोहरा है मैं तेरी आसामी हू कुछ समय की और छूट मागता हू इतना बोलने के पीछे वह बोलने लगा कि मैं इसको जिन्दा नही छोड़ सकता इतना कहने के पीछे चुप हो गया । ढाग बजाई गई मत्र का उच्चारण किया सर्प उसके शरीर में भर आता है और बोलता है पुन कि मुझ पर उस बच्चे के पाचसौ रुपया तो नगद है और पाचसौ रुपया ब्याज के हो गये है उनको यदि यह चुका देवे तो मैं छोड सकता हू । तब मत्र घोस ने उस बालक के पिता व बालक को बुलाकर एक हजार रुपया दिलवाये । रुपया देते ही विष की वेदना क्षण मात्र में ही दूर हो गयी । यह कथा या दृष्टान्त नही परन्तु सत्य है । इस लिये किसी के ऊपर गोली चला कर शिकार खेलना उचित नही है ।।१९७।।

कि विश्वासं हन्सि मृगया दीर्घ दुःख भवार्णवे ।
तस्यान्मु च तां च कि मृगयाया. सुखतु बदत्वम् ।।१९८

हे भव्य तू अपने विश्वास का आप कुठाराघात क्यो करता है जो शिकार खेलते है उनका कोई भी प्राणी विश्वास नही करता है । क्योकि यह हिसक हमारा विनाश कर सकता है । जब बिल्ली निकलती है तब सब पक्षी उडने लग जाते है इसका कारण यह है कि बिल्ली उन पक्षियो की शिकार करती है । परन्तु जो दयावान होते है वे जीवो से प्रेम करते है उनका सब प्राणी विश्वास करते है यह साक्षात भी देखते है कि जहा कही धर्मात्मा रहते हैं उन ग्रामो मे मुहल्लो मे तथा मकानो मे कबूतर बैठे रहते है, तथा वे निर्भय होकर बिचरते है । परन्तु निर्दयी हिसक मुसलमानो के घर पर एक भी कबूतर नही बैठता है चुगा डालने पर चुगने नही आते है । इस शिकार खेलने वाले को ससार रूपी महाभयानक समुद्र के मध्य मे भ्रमण करना पडता है । और उस भ्रमण काल में अनेक प्रकार के जन्म मरण करते हुए दु ख भोगने पड़ते है । इसलिए ग्रन्थकार कहते है कि उस शिकार खेलने का शीघ्र ही त्याग

कर क्योंकि शिकारी प्राणी को कही भी सुख प्राप्ति होने की संभावना ही नहीं। यदि सुख किसी शिकारी को हुआ हो तो बताओ। यह सुख कब और कहा पर होता है ? यह शिकार खेलना है सो भविष्य के लिये वैर बांधना है दूसरे हिंसा होने से नरक आयु बधती है और अपयश की खान वैर रूपी वृक्ष की जड़ है। दुर्गति रूपी पिशाच की सहेली है इसलिए भव्य जीवों को कभी भी जीवों का घातनहीं करना चाहिये ॥ १९८॥

अघानांमूल स्यात् भ्रमण भव बीजं च मृगया
अहिंसाभावानांक्षति विभव कीर्तिश्च समताः।
विरोध प्राण-ह्रास कटुक रसायेऽन्य न रसा
ददाति प्राग्दुःखं मरणमपि वैर च वधिकान् ॥ १९९॥

शिकार खेलना महापाप है और महापापो की जड़ है, ससार में भ्रमण करने वाल तथा ससार रूपी वृक्ष का बोज या अकुर है। तथा शिकार करने वाले के हृदय में से अहिसा दयामय भावो का, यश, कीर्ति, उपकार, मित्रता, समतादि भावों की क्षति हो जाती है। प्रथम में तो वैर व विरोध उत्पन्न हो जाता है तथा बढने लग जाता है शिकार खेलने का अन्त मे नतीजा खोटा ही निकलता है। जब इसका रस भोग किया जाता तब महाकडुआ लगता है इस तरह दूसरा कोई कडुआ रस नही। यह जीवों को दुःख रूपी समुद्र नरक मे ले जाती है, जहा पर पुराने अनेक प्रकार के दुख तेतीस सागर पर्यन्त आयु प्रमाण दुःख भोगने पड़ते हैं। जहा पर पुराने नारकी नये नारकी को देख कर पूर्व भव की याद दिलाते हुए चील, बाज, सिंह, भेडिया का रूप धारण कर चचुओ से शरीर को रक्तमय कर देते हैं इतना ही नही वे उसके शरीर के टुकड़े तिल-तिल के बराबर कर देते है और कहते है कि चलो शिकार करो ! यह जो शिकार की थी उसका ही नतीजा है।

तूने भी इसी तरह से अनेक प्राणियो के शरीर के टुकडे किये थे इस प्रकार कहते हुए तपाये हुए लोहे को मुख मे जबरन पिला देते है कहते है कि ले मास खा इतना कहकर जले हुए पर नमक डाल देते हैं और कहते हैं कि तूने भी इसी प्रकार से जीवित या मरे हुए प्राणी के शरीर को अग्नि पर पकाते समय नमक मिर्चा डाली थी, उससे उसको वेदना हुई थी उसका अब तू स्वय भी अनुभव कर इत्यादि हजारो प्रकार के दुःख देते है। तथा शिकारी को उस नरक मे अनेक दुख भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार यह शिकार अत्यंत दुःख देती है। तथा परस्पर में वैर की परपरा चलने लग जाती है। जिन जीवो का शिकारियो ने निशाना बनाया है वे जीव उनके वैरी बनकर अपना बदला चुकाने का प्रयत्न करते हैं। दु खों का अनुभव कर मरण को प्राप्त करते हैं ।१९९॥

आखेटं वा जगति मनुजैः वासवानां चक्रवर्तिः
चित्ते जाते खल निरपराधे नृप ब्रह्मदत्तः ॥
यावज्जीव भरति खलु येदुर्गतौ दुःखमास्वाद्
घोरोत्पात कृत जगमतुर्नारके स्याति भव्य ॥२००॥

हे भव्य राजा ब्रह्मदत्त बड़ा ही शासन प्रिय प्रतापी धर्मात्मा राजा था किसी कारण से

शिकार खेलने की आदत पड गई थी। वह इतना वक्र परिणामी बन गया था कि जिसके हृदय में दया का अश भी नही बचा था। वह जगल मे जहाँ कही जाता वहा पर विचरने वाले हिरण, सावर, रोझ, खरगोस, इत्यादि निरपराधी पशु पक्षियो को मार कर लाता था। और उन जानवरो के मासको पकाकर खाजाता था। निरपराध होने पर भी विचारे जीवो को सताता था उसका मन इतना कठोर हो गया था कि दया धर्म का निशान भी नही रह गया था। उसके परिणामो मे क्रूरता ही क्रूरता भर रही थी जिस कारण से उसने अशुभ कर्मो का पूर्ण रूप से सचय कर लिया था। एक दिन ब्रह्मदत्त शिकार खेलने को जगल की तरफ जा रहा था कि उसकी दृष्टि एक मुनिराज पर पड़ी। मुनिराज को देखता हुआ आगे चला गया और जगल मे इधर उधर भ्रमण किया, परन्तु शिकार उपलब्ध नही हुई। शाम हो जाने के कारण वह खाली हाथो ही घर वापस आगया। पुनः दूसरे दिन गया सो वे ही मुनिराज उसको वही पर बैठे पुन. दिखाई दिये दूसरे दिन भी जगल मे शिकार खोजी परन्तु नही पायी, तीसरे दिन भी नही पायी, तब वह विचारने लगा कि इस समय शिकार न मिलने का कारण हो न हो ये मुनिराज ही है। इस प्रकार मन मे विचार कर जिस शिला पर मुनि ध्यान करते थे उसके नीचे अग्नि जलाने का निश्चय किया। जब मुनिराज आहार के निमित्त ग्राम मे चले गये तब ब्रह्मदत्त ने उस शिला को अग्नि से तपाकर एकदम लाल कर दिया जब मुनिराज आहार करके आये और शिला पर बैठ गये तब उनका सारा शरीर नीचे से जल गया। इस प्रकार उपसर्ग कर उसने और भी पाप सचय कर लिया जिससे मर कर दुर्गतियो अथवा नरक गति में दु:खो का आस्वादन करने लगा इस प्रकार राजा ब्रह्मदत्त शिकार खेलने में प्रसिद्ध हुआ है जो नरको के दुखो को बहुत काल तक भोगेगा।२००॥

पद्मनदी पंचविशतिकामे भी कहा है।

> या दुर्देक वित्ता वनमधि वसति त्रातृ संबधहीना
> भीतिर्यस्यां स्वभावाद्दशनधृततृणा नापराधं करोति।।
> वध्यालंसापि यस्मिन् ननु मृगवनिता मास पिण्ड प्रवोभा
> दाखेटेऽस्मिन् रतानामिह किमुन किमन्यत्रनो यद्विरूपम्।।

जो जगल में विचरने वाली हिरणी दु खदायक शरीर मात्र धन को धारण करती और रक्षण के सबध से रहित है अर्थात् जिसका कोई भी रक्षक नही है। जिसके स्वभाव से ही भय लगा रहता है तथा जो दातों के मध्य में तृण को धारण करती हुई अर्थात् घास को खाती हुई किसी भी प्रकार का अपराध नही करती है। आश्चर्य तो इस बात का है कि वह मृगकी स्त्री अर्थात् हिरणी मांसके लोभ से जिस मृगया व्यसन मे शिकारियो के द्वारा मारी जाती है उस शिकार में अनुरक्त हुए जनोके इसलोक में तथा मरण के पीछे परलोक मे कौन सा पाप नही होता है ? सब ही पाप होते है।

विशेषार्थ—यह एक प्राचीन परपरा रही है कि जो शत्रु दातो के मध्य त्रण दबाकर सन्मुख आता था उसे वीर पुरुष क्षमाकर छोड देते थे उसके ऊपर अस्त्र शत्र का प्रहार नही करते थे। किंतु खेद तो इस बात का है कि शिकारी जन ऐसे भो निरपराधी दीन मृग आदि

प्राणियों का घात करते है जो घास का भक्षण करते है तथा जिनके मुख में त्रण लगा ही रहता है। यही भाव ग्रथकार ने (दशन धृत तृणा) इस पद से प्रकट किया है ।।२०१।।

तनुरपि यदि लग्ना कीटिका स्याच्छरीरे
भवति तरलचक्षुर्व्याकुलो यः स लोकः ।।
कथमिह मृगया प्तानंद मुत्खात शस्त्रो
मृगमकृतविकारं ज्ञात दुःखोपहन्ति ।।२६।।

जब अपने शरीर में छोटीसी चीटी काट लेती है या लगजाती है तब मनुष्य व्याकुल होकर चपल होने से उसे इधर उधर ढूढ़ता है फिर वही मनुष्य अपने समान दूसरे प्राणियो के दु खो का अनुभव करके भी शिकार से प्राप्त होने वाले आनद की खोज में क्रोधादि विकारों से रहित निरपराध मृग आदि प्राणियो के ऊपर शस्त्र कैसे चलाता है और कैसे वध करता है।

यो येनैव हतः स तं हि बहुसो हन्त्येव पैर्वञ्चितो
नून वञ्चयते य तानपि भृशं जन्मान्तरे ऽप्यत्रच
स्त्रीवालादि जानदपि स्फुटमिदं शास्त्रादपि श्रूयते
नित्यं वञ्चर्नाहिंसनोज्झन विधौ लोकाः कुतो मुह्यत. ।।२७।।

जो मनुष्य जिसके द्वारा मारा गया है वह मनुष्य अपने मारने वाले उस मनुष्य को भी अनेकों बार मारता है। इसी प्रकार जो प्राणी जिन दूसरे लोगो के द्वारा ठगे गये है वे निश्चय से उन लोगों को भी जन्मान्तर में और इसी जन्म में भी अवश्य ठगते है यह बात स्त्री एव बालक आदि जन से तथा शास्त्र से भी स्पष्टतया सुनी जाती है। फिर लोग हमेशा धोखा देहो और हिंसा के छोड़ने में क्यों मोह को प्राप्त होते है। अर्थात् उन्हे मोह को छोड़ कर हिसा और पर वचन का परित्याग सदा के लिए कर देना चाहिये ।।२७।।

राजा ब्रह्मदत्त की कथा

इस भरत क्षेत्र में मालव देश था वह अनेक प्रकार के धन धान्य से परिपूर्ण समृद्धशाली देश था। वहाँ पर प्रजाजनो में अत्यन्त वात्सल्य भाव था किसी प्रकार की ईति भीति नही थी। उस नगरी मे राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था वह अनेक विद्याओ का भण्डार था राजाओ में शिरोमणि गिना जाता था। सब लोग उसकी आज्ञा का पालन करते थे, एक दिन ऐसा आया कि किन्ही नीच दुराचारियों की संगत के कारण उसको शिकार खेलने की आदत पड़ गई अब क्या था नित्य प्रति जगलो में जाकर दीन हीन शक्ति के धारक हिरण सावर खरगोश तथा अन्य जीवो को मार मार कर लाने लगा था। कुछ समय शिकार करते हुए बीत चुका था, एक दिन वह शिकार खेलने को निकला, मार्ग मे एक शिला पर एक मुनिराज ध्यान कर रहे थे। वे मुनिराज उसकी दृष्टि में पड़े उनको देखता हुआ जंगल की ओर चला गया और जंगल में जाकर चारों ओर शिकार की खोज की परन्तु कहीं पर शिकार नही मिली। कोई भी जीव सामने दिखाई नही दिया इस प्रकार सुवह से शाम हो गयी तो निराश होकर राजधानी मे लौट कर वापस आगया। दूसरे दिन प्रभात होते ही वह

ब्रह्मदत्त राजा शिकार के लिए निकला तो पुन. मुनिराज के दर्शन हो गये वे मुनिराज एक पत्थर की शिला पर ध्यानस्थ बैठे थे राजा उसी जगल मे पुन. गया वहाँ पर पुन उन ध्यानस्थ मुनिराज को एक पत्थर पर बैठे देखा और शिकार करने के लिए उस वन मे चारो तरफ भ्रमण किया परन्तु कोई भी पशु पक्षी सामने दिखाई नही दिया जिससे सारे दिन भ्रमण करते २ थक गया और हताश होकर घर चला आया। इस प्रकार उसको कई एक दिन बीत गये उस जगल मे उसको शिकार नही मिली, तब विचार करने लगा कि इस साधु के दर्शन हो जाने के कारण मुझे शिकार नही मिला है। इस प्रकार विचार कर धारणा की कि हो न हो इस साधु की ही वह करामात है। यह विचार कर एक दिन वह जगल में गया और जहाँ जिस शिला पर मुनिराज ध्यान किया करते थे वहाँ गया और मुनिराज जब चर्या के लिए नगर मे चले गये थे कि उसने उस शिला को अग्नि जलाकर गरम कर दिया। मुनिराज सदा की भाति आज भी शिला पर ध्यान लगा कर बैठ गये जिससे उनके नीचे का भाग दग्ध होने लग गया परन्तु मुनिराज ध्यानस्थ हो गये द्वितीय शुक्ल ध्यान तथा क्षपक श्रेणी में चढने लग गये जिससे घातिया कर्मो को क्षय करके केवली बन गये। उनको केवल ज्ञान हो गया।

इन्द्रादिक देवो से उनके केवल ज्ञान की पूजा हुई तथा मुनिराज अब तीसरे व चौथे शुक्ल ध्यान मे चढ गये जिससे अघातिया कर्मो का नाश कर अयोग केवली होनें के साथ ही सिद्ध भगवान बन गये। वह ब्रह्मदत्त राजा शिकार व्यसन के कारण मरकर सातवे नरक गया, वहाँ वह तेतीस सागर की उत्कृष्ट आयु को बाधकर उत्पन्न हुआ। इस कथा का तात्पर्य यह है कि शिकार करना महानिंद्य है। परघात के साथ अपना भी घातक है इसलिए भव्य समीचीन धर्म के धारको को तो कभी भी इस व्यसन का सेवन नही करना चाहिये। दूर से ही त्याग कर देना चाहिए।

इति मृगया व्यसन

आगे परस्त्री व्यसन का स्वरूप कहते है।

रागद्वेष विवर्धिनी शिवसुखात्सुदूरमाकर्षति:।
स्वाधीनेऽपि पिशाचिनी च सदृशा यशं धन हन्यते॥
सेव्यन्ते ऽपरभामिनीं च मनुजो भयस्य वृद्धिस्तदा:
ऐधन्तेऽऽकुलता सुकर्म विनतां सुख कथं दायिनी॥२०१॥

पर स्त्री का जो सेवन करते है अथवा सहवास करते है व उनका हाव भाव देखते है व रमण करते हैं उनका और अपर महिला के घरवालो का बैर बढ जाता है उसके पति पुत्र देवर सास स्वसुर इत्यादि लोग द्वेष करने लग जाते है। और जिससे विशेष वैर भी बढ जाता है उस कामी पुरुष को मारने का उपाय सोचने लग जाते है। यह परस्त्री स्वाधीन होने पर भी धन और यश का नाश कर डालती है। यह पर महिला पिशाचिनी के समान है जिस प्रकार पिशाचिनी किसी के पीछे लग जाती है तब उसके शान्ति को दूर भगा

देती है उसी प्रकार यह स्त्री भी मुक्ति के मार्ग से अथवा समीचीन धर्म से मनुष्य को बहुत दूर ले जाती है। अथवा मोक्ष सुख से बहुत दूर ले जाती है। जब पर स्त्री के साथ रमण करता है तब उनका हृदय भय से कांपता रहता है कि किसी को पता न लग जावे कोई देख न लेवे वह छुपकर आता जाता है। आकुलता भी बढ़ जाती है जो परस्त्री में आशक्त व्यक्ति होते है उनके धर्म की भावनायें नही रह जाती है तब यह पर रामा कैसे सुख देती है ? सो कहो।

विशेषार्थ—जहाँ जिस पर रामा की सगत करने पर तथा पर स्त्री की तरफ दृष्टि डाल कर रुचिपूर्वक देखने पर भी सज्जन जन उसको दुराचारी कह कर पुकारते है। तथा परस्त्री के साथ में रमण करने वाले के तो भय अधिक मात्रा में बढ जाता है, यो कि इसका पति यदि देख लेगा या पकड़ लेगा तो मेरी इज्जत खाक मे मिल जाएगी। तथा मारने भी लग जाएगा धिक्कारता भी देवेंगे। इसलिए यहाँ से शीघ्र ही निकल जाना चाहिए इस प्रकार भय रहता है। जिससे उस काम के अन्तरंग मे व्याकुलता और अधीरता सदा बनी रह जाती है। कामी जन परस्त्री के साथ रमण करने में आनद मानते है उनको हम पूछते है कि जहाँ पर भय लगा हुआ है और धैर्यता सग छोड़ चुकी है मन की शान्ति नष्ट हो चुकी है और चिन्ता की वृद्धि हो रही है तथा आकुलता अपना शासन जमा रही है, वहाँ पर कहो कि सुख कैसे हो सकता है ? सुख तो भय रहित आकुलता रहित शान्ति पूर्वक निराकुलता में ही हो सकता है यह कहना तो कुछ ठीक भी है। परन्तु हम देखते है कि जो परस्त्री लम्पटी लोग है, अथवा कामी पुरुष है, उनके शील कीर्ति यश और लज्जा विद्या धन तो नष्ट हो जाते है जिस प्रकार किसी को भूत व्यन्तर लग जाता है तब वह धर्म, कर्म, यश, कीर्ति को नष्ट कर देता है, बस उसी प्रकार यह पर रामा है उसके साथ सहवास करने वाले के सब उत्तम गुण नष्ट हो जाते है। अपकीर्ति अपना अधिकार जमा लेती है तथा शान्ति भग हो जाती है मोक्ष सुख व मोक्ष मार्ग की तो बात ही दूर रह जाती है। इसलिए परस्त्री की संगत कभी भी नही करना चाहिए ॥२०१॥

बराकोऽपध्याने सततमभिलाषासनियमं
तिरस्कारंपादे नगरसपदे याति बहुधा ॥
कुलस्त्रीणां पश्यन्ति मदन मनाशक्तं च सभय
न कोऽपीच्छन्ति स्वात्मजमपितु निस्सारणगृहात् ॥२०२॥

जो परस्त्री के साथ सहवास करते है उनके अपध्यान की वृद्धि होती रहती है। वे पर महिलाओ का अपहरण करने व पर पुरुष की हानि का चिन्तवन करते है तथा मारने का प्रयत्न करते हैं मरवा भी डालते है। कामी पुरुषो की इच्छाये बढती जाती हैं। जब कभी किसी भी घर, ग्राम, गली, बाजारो में जाता है, वहाँ पर उसका बहिष्कार ही होता है नियम से होता है। तथा जनता उसका तिरस्कार करती हुई लानत देती है। जिनका मन मदन्मत्त हो रहा है। वे नर जब कभी कुल स्त्रीयो पर दृष्टि डाल कर देखते है तब भी तिरस्कार ही पाते है। उनको देखने पर भय अधिक बढ़ जाता है तथा अपने घर वाले

अपने माता, पिता, मामा, दादा, दादी, भी उसको नही चाहते है यहाँ तक देखा जाता है कि पर स्त्री मे आशक्त पुरुष को अपनी विवाहिता स्त्री भी नही चाहती है वह भी उसको घर में प्रवेश नही करने देती है इस प्रकार पर स्त्री के साथ सहवास करने वाले की दुर्दशा होती है।

विशेष यह है कि कामी पर स्त्री लम्पटी पुरुष सब जगह तिरस्कार को ही पाते है उनको कोई भी भला नही कहता है, उनको सब ही बुरा कहते है। जब पर स्त्री पर दृष्टि डाल कर देखता है तब मदन ज्वर चढ आता है, अपने हित और अहित के विचार से शून्य हो जाता है। तब वह पर स्त्री को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है उस स्त्री के प्राप्त करने के लिए आर्त ध्यान करता है, तथा रौद्रध्यान भी करता है, कि इसका पति मर जावे या मारा जावे तो मुझे यह महिला प्राप्त हो इस प्रकार रौद्रध्यान भी हो जाया करता है। उसकी सगत को भी कोई पसद नही करता है खोटे पुत्र को माता पिता भी घर से निकाल देते है। कामी पुरुष यह नही देखता है कि यह किस जाति की या किस कुल की है या मेरी यह कौन है मैं इसका कौन हूँ। यह मेरी बहन है, या भतीजी है या पुत्री है या दादी है। जिस प्रकार एक कोई व्यापारी अपनी स्त्री की गोद में एक पुत्री को छोडकर परदेश गया और वहाँ बहुत दिन तक रहा। जब उसकी लड़की युवा हो गई तो स्त्री ने अपनी लडकी की शादी करदी थी परन्तु उसको यह पता नही था कि मेरी पुत्री किस ग्राम मे विवाही गई है।

वह परदेश से वहाँ आया जहाँ पर उसकी लडकी ब्याही थी। अपनी लड़की के घर मे ही वह आकर ठहरा, उसकी लडकी नें उसके लिये भोजन बनाया और जिमाया उसकी दृष्टि उस लडकी पर पडी वह कामासक्त हो गया। विचार करने लगा कि जो मै अपने साथ अपनी पुत्री के लिये जेवर लाया हूँ उनको इस स्त्री को दे दूं यदि यह मेरे साथ भोग करे तो ? एकान्त मे बैठी हुई उस स्त्री को लालच दिया कि देख ये जेवर मेरे पास है ये तेरे योग्य है यदि तू मेरे साथ रमण करे तो तेरे को दे सकता हू उसके अन्दर लालच आ गया और हा कह दिया रात्रि मे रमण किया और प्रभात होते ही वहाँ से अपने घर को रवाना हो गया। मार्ग में चलते कुछ दिन बीत गये अपने घर पहुचा तब अपनी पुत्री को बुलानें के लिए एक पुत्र व सेवक को पुत्री की ससुराल भेज दिया। पुत्री भी बडी प्रसन्न होती हुई आई कि मेरा पिता बहुत दिन का परदेश गया था सो अब लौट कर आया है सो मेरे लिए बढिया बस्तुये लाया होगा। जब लड़की घर पहुच गई तब उसके पिता ने उस जेवर को पहचान लिया कि यह तो वही जेवर है कि जिसको मैं ही बनवा कर अपनी पुत्री के लिए लाया था। इसका साराश यह है कि पिता भी पुत्री के साथ रमण करता है यह पर स्त्री व्यसन की कथा है वह विचार सून्य हो जाता है ॥२०२॥

विशयासक्त चित्तानां को गुणो न विनश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभि जाति न सत्यवाक् ॥१॥
परराधन जात्दैन्यात् पैशून्यात् पर वादतः।
पर भावात्किमन्यश्यो न विभेति हि कामुकः ॥२

पाक त्यागं विवेकंच वैभाव मान्यता मयि।
कामार्ताखलु मुञ्चन्ति किमन्यैःस्वञ्च जीवनम् ॥३॥

जिनका मन पचेन्द्रियों के विषयो में आशक्त है उनके कौन-कौन से गुणों का नाश नही होता है अपितु सब गुणों का नाश हो जाता है। विद्वान पण्डित होकर के भी वह विवेक सून्य होता है विचार सून्य होने के कारण वह मूर्ख है। मनुष्य होकर के भी वह पशु के समान है उच्चकुल में पैदा होने पर भी वह नीच कुल वाला ही है सत्य बोलने पर भी असत्य भाषी कहा जाता है सगुण नही रह जाते है, जो मनुष्य कामान्ध हुआ विषयो में आशक्त होता है वह उसके कारण होने वाली अपनी दीनता, चुगली व बदनामी और अपमान होने पर भी उसकी परवाह नही करता है: वह तो दिनोदिन विषयो में आशक्त होता जाता है। कामासक्त प्राणी भोजन को भी छोड देते है, विवेक भी नष्ट हो जाता है, धन दौलत भी नष्ट हो जाती है बड़प्पन का भी विचार नही रहता है, और की तो बात क्या कहे वे अपने जीवन को भी नष्ट करने को सन्मुख होते है।

कामुकाः विचरन्तियत् किं सर्वालोकितं जनाः
आगच्छन्ति कु मानवः कुलकलंकमुद्भूतः ॥ २०३ ॥

कामी पुरुष जिस रास्ते से गमन करते है तब वहां के रहने वाले मनुष्य उसको देख विचार करने लग जाते है, कि यह दुष्ट दुराचारी हमारे मुहल्ले में क्यो आता है। इसका क्या कारण ? ऐसे मनुष्यों को यहां असमय और अकारण से नही आना चाहिए। यह कहते है, कि कुल में कपूत उपज गया जिसने सारे कुल की इज्जत को राख मे मिला दिया यह तो कुल का कलकी है।

सर्वेजनाः बहिष्कार कुर्वन्तियत् दिवारात्रौ ॥
तन्मुख न दृशं कदा कुकर्मे संस्तितनृणां ॥ २०४ ॥

जो कुकर्म में स्थित है अथवा परस्त्रीयों मे जिन का मन स्थित है, उन मनुष्यों का कोई मुख देखने को भी तैयार नही होता है, परन्तु उनको लानत देते है बहिष्कार करते हैं। और कहते है कि ऐसे पापी का हम मुख नही देखना चाहते है, यहाँ से चले जाओ या अन्यत्र जाकर मर जाओ या कुछ करो इस प्रकार दिन रात उनको गालियां भी देते है।

ये पश्यन्ति खलानुद्भूतो विश्मयं च हारौत्वत् किम्।
अस्माक पुनरप्यागच्छेत् न इह प्रयत्नैवम् ॥ २०४ ॥
आगारेंधरन्ति यदा बहुविधस्ताड्यं क्रोडादि ग्रहीत्वा ॥
अवयवच्छेदयन्ति नृपाकर्ष्यं तद्धस्ते रात् ॥ २०५ ॥

जब कभी व्यभिचारी गलियों मे होकर विचरते है तब मुहल्ला वाले चिन्ता में पड़ जाते है कि यह क्यों और किसलिए हमारे मुहल्ला में आये है। आइन्दा नही आवे ऐसा प्रयत्न कर देना चाहिए तथा उसको हमारे मुहल्ले में कभी भी नही आना चाहिये। जब कभी ये कामी पर स्त्री लम्पटी किसी के घर पर जाते है तब वहाँ के लोग उसको पकड़ लेते हैऔर अनेक प्रकार की गालिया व कुवचन कहते है तथा चाबुक बेंत आदि लेकर

उनको मार लगाते है तथा लोहे के सरिये गरम करके भी लगाते हुए देखे जाते है। उनके मुख मे भिष्टा व पेशाब भी भर देते है, खिला पिला देते हैं, अंग उपागों का भी छेदन भेदन कर डालते है, यहाँ तक भी देखा जाता है कि पर स्त्री लम्पटो को बदूक की गोली से मार दिया जाता है, तलवार से मार दिया जाता है, कत्ल कर दिया जाता है। तथा जब वेहोश कर देते है और राज कर्मचारियो को बुलाकर उसको उनके सुपुर्द कर देते हैं।

स्वतालुरक्त किल कुक्कराधमैः प्रमीयते यद्वदिहास्थि चर्वणात् ॥
तथा विर्टबिद्धि वपुर्विडवनै निषेव्यते मैथुनसभवं दुःखम् ॥२०६॥

जिस प्रकार नीच कुत्ता हड्डी को चबाता है, और चबाने मात्र से उसके गले मसूड़े फूल कर फूट जाते है और उनमें से रक्त बहने लग जाता है उस रक्त को चाट कर विचार करता है कि इस हड्डी में कितना रक्त भरा हुआ है पुनः पुन. उसका आस्वादन करता हुआ अपने को आनदित मानता है। जब चबा लेता है पीछे मसूडे-जबड़े मे तथा होठो मे दर्द होता है तव कॉय कॉय चिल्लाता है और मुख मे कुछ आराम हुआ पुनः हड्डी चबाने लग जाता है। जिस प्रकार सूकर भिष्टा को खा कर आनद मानता है उसी प्रकार कामी पुरुष भी सूकर की तरह भिष्टा और मूत्र से भरे हुए पर स्त्री के शरीर का आलिगन करता है। तथा जहाँ से रक्त भरता है वह स्थान कैसे पवित्र हो सकता है, फिर भी कामीपुरुष उसका सम्बन्ध कर आनद मानता है यह बडे आश्चर्य की बात है। कुत्ते के जिस प्रकार अत्यन्त वेदना होती है उसी प्रकार पर स्त्री के साथ रमण करने के पीछे दु.ख होता है॥ २०६॥

राजपुरुषानिरोधं काराग्रहे पातयमन्नपानं।
ताडयति निरोधं तत् धनधान्यादिहरित्वा वहिः ॥२०७॥

कामी पुरुष को जब राज कर्मचारी बलपूर्वक पकडकर ले जाते है उसको मार लगाते है और जेलखाने मे बद कर देते है। बाँधकर काष्ट मे फसा देते है जिससे महा सकट भोगना पडता है। यह भी देखा जाता है कि कामी पुरुष व स्त्री को राजा लोग बहुत कठोर दण्ड देते है साथ मे उनके परिवार के लोगो को भी दण्ड देते है, व सारा घर माल जब्त करके देश निकाला भी देते है। और भी अनेक प्रकार के राजा उनको दण्ड देता है। इसलिए भव्य जीवो को पर स्त्री की ओर दृष्टि नही डालना चाहिए। कामी पुरुषो के साथ मे अन्य सज्जन जनो को भी दुःख उठाना पड जाता है ॥२०७॥

येषांगात्रात् च मूले निसरति रुधिरं किं पवित्रं कुधातु
भिष्टापात्रं पुरीशं भरित दूरभिगंधैः पल श्रोणितैर्वा।
योनिस्थाने च जीवोऽगणितमिति सूक्ष्मद्रुवन्त्यकाले ॥
सर्वागात् स्वेद निर्घाण कफ निवाश च गात्रेतथापि ॥२०७॥

जिन स्त्रियो पर यह कामी पुरुष मोहित होता है वह स्त्री प्रथम तो कौन है। जिनका गात्र तेरे को सुन्दर दिखाई दे रहा है वह देखने मात्र का ही सुन्दर है, जिसका तू आलिंगन व

जिनके साथ भोग करने की इच्छा कर रहा है उन स्त्रियों का अपवित्र जो शरीर है उसमें से हर समय पसीना निकलता रहता है। उनकी योनि द्वार में से महीने-महीने में रक्त स्राव होता है, अथवा रक्त बहता रहता है। जिनकी योनि स्थान में असंख्यात जीवों की उत्पत्ति होती ही रहती है। जिनके सर्वांग से दुर्गन्ध आती रहती है। परन्तु यदि तू उस स्त्री के साथ भोगकर देखेगा तब तेरे को उसके साथ भोगे गये भोग से घृणा आप ही उत्पन्न हो जायेगी। वह योनि भी पेशाब रूप मल के निकलने का द्वार है। जिसका शरीर एक मात्र भिष्टा का ही घर है, तथा जिसके नाक से निग्घाण निकलती है, तथा कफ, वात, पित्त झरते रहते हैं मास का ही पिण्ड है भिष्टा का भरा हुआ घड़ा है। इतना होने पर भी यह कामी पर स्त्री की ही इच्छा करता है ॥२॥

आचार्य स्त्री के शरीर की कथा कहते हुए कहते है कि हे भद्र जिस स्त्री का सहवास तू करके आनन्द की अभिलाषा कर रहा है, उस स्त्री के शरीर में कोई ऐसी वस्तु नही है, जो अपवित्र न हो ? जिसमें से दुर्गन्ध न आती हो ? ऐसी कोई भी स्त्री नही है कि जिसके शरीर व योनि स्थान में क्षुद्रभव के धारक लब्ध पर्याप्तक पचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति न होती हो ? जिसके स्पर्शन व मैथुन करते समय सब जीव मर जाते है जिनका शरीर लार रूप होकर तेरे उस अंक के साथ ही योनि द्वार में से निकल आता है। जिसका शरीर रक्त मास हड्डियों से बना हुआ है जिसमें भिष्टा, मूत्र, कफ और पित्त भरा हुआ है वह ही सब शरीर के द्वारों मे होकर बाहर निकलता है। जिसके संसर्ग से अनेक प्रकार आपत्तियां उत्पन्न होती है ॥२०८॥

सुता दारादीनां स्वगुणगणशीलं प्रियतव।
तदा कोप्यालोकं भवसि नच कोपंयदभयम् ॥
यथात्वां शीलं श्रेय ततदपिपरा छ्रेयमपि च।
परान् कोप मा याति जननिसुताऽलोक बहुधा ॥ २०९॥

जब तुम्हारी पुत्री, स्त्री व माता व बडी बहन या छोटी बहन अथवा पुत्र-वधू के ऊपर कोई कुदृष्टि डालता है, या बुरी निगाह से देखता है, तब तुमको क्रोध क्यो आता है। जिस प्रकार आपको अपनी माता, बहन, भौजाई या माता, पुत्र-वधू का शील प्यारा है, प्रिय है उसी प्रकार सबको अपनी-अपनी माता, बहन, बेटी, वधू का शील प्यारा है। जब तुम उनकी स्त्रीयो को बुरी दृष्टि से देखोगे तो क्या तुमको क्रोध नही आवेगा ? अवश्य ही आवेगा। बहुधा करके जो पर स्त्रियों के ऊपर दृष्टि डालते है तब जिनकी स्त्रीयो को देखा गया है या छेड़ा गया है, या स्पर्श किया गया है, उनके स्वामी या रक्षक उसी प्रकार क्रोध करते है, कि जिस प्रकार तुमको तुम्हारी मातादि के छेड़ने, देखने व स्पर्श करने पर क्रोध आता है। उसी प्रकार अन्यो को भी क्रोध आता है, वे भी दुष्ट निगाह से देखने वाले को मारते है तथा धिक्कार देते है। इसलिए पर स्त्री को कभी भी बुरी दृष्टि से देखना नही चाहिए न छेड़ना चाहिए न स्पर्श करना चाहिए। क्योकि जिस प्रकार तुम अपनी माता, बहन, पुत्री का शील कायम रखना चाहते हो उसी प्रकार सब लोग अपनी-अपनी माता, सुता आदि

का शील कायम रखना चाहते है।

साक्षात् नरकद्वारं दुष्कर्म वर्धिनी रामा।
धन वलं च वीर्यं च विनश्यन्ति तदा कीर्तिम् ॥२१०॥

यह पर स्त्री साक्षात् रूप से नरक का द्वार ही है। जो पर नारी पर आशक्त हो जाते है उनके हमेशा ही आर्त ध्यान रह जाता है भय वढ जाता है जिससे मन में आकुलता वनी रहती है। तथा यह पर स्त्री हिंसा, झूठ, चोरी इत्यादि व क्रोध, मान, माया लोभ व राग-द्वेष, मोह, ईर्षा को वढाने वाली है अथवा पर स्त्री के साथ सहवास से परस्पर मे वैर वढ जाते है। यह धन को भी नष्ट करती है बल को भी नष्ट करती है तथा वीर्यं को भी क्षय कर देती है यह मर्द को नामर्द वना देती है। तथा कीर्ति का नाश कर देती है, सव जगह अपवाद फैल जाता है जिससे चारो तरफ निन्दा होने लग जाती है इसलिए भव्य जीव यदि आपको अपना धन वल वीर्य और कीर्ति को कायम रखना है तो पर स्त्री की तरफ को दृष्टि नही डालना। यह पर स्त्री तीक्ष्ण धारवाली छुरी के समान है इसकी कोई भी सगत मत करो। छुरी के पडते ही तरवूज के खण्ड हो जाते है वैसे पर स्त्री के सहवास से घर वाहर में विग्रह फैल जाता है, वैर-विरोध वढ जाता है, मान-मर्यादा सव नष्ट हो जाती है।२१०
किसी ग्रथकार ने भी कहा है :

स्त्री या सा नरकद्वारं दुःखानां खानि रेव च।
पापवीजं कले मूलं कमालिगनादिकम् ॥१॥
वरमालिगताक्रुध्वा चलल्लोलाऽत्र सर्पिणी।
न पुन: कौतिकेनापि नारी नरक पद्धतिः ॥२॥
किंपाक फल संभोग सनिभ वृद्धि मैथुनं।
आधातमात्र रम्यंस्यात् विपाकेऽत्यन्त भीतिदं ॥३॥
अनंत दुःख संतान निदान तद्धि मैथुनं।
तत्कथ सेवनीयं स्यान्महानारक कारणम् ॥४॥

पर स्त्री नरक का द्वार ही है और दुखो की खान है मूल मे यह पाप का वीज है कलह की जड है फिर ऐसी स्त्री के साथ आलिगन करना कैसे संभव हो सकता है ? अपितु नही हो सकता है। आचार्य कहते है यदि कोई क्रोधित हुई सर्पिणी को पकड लिया जावे ता वह एक बार ही काटेगी यदि मृत्यु होगी तो एक बार ही होगी। यदि उस पर विषवैद्य का इलाज करवाया जावे तो वह ठीक भी हो सकता है, परन्तु पर स्त्री के द्वारा डंसा गया जन्म-जन्म मे नरक मे दु ख भोगने पड़ते है यह पर नारी ही नरक की पद्धति है उसका सेव न करना उचित नही है।

यह मैथुन पर स्त्री के साथ कामसेवन करना जिस प्रकार है किंपाकफल देखने में सुन्दर खाने में मीठा और कोमल होता है परन्तु उसमे विष भरा होता है जो खाता है उसके प्राणों का नाशक होता है। यह भोग भी भोगते समय तो अच्छा प्रतीत होता है, अन्त में इसका परिणाम अत्यन्त भयकर होता है। अनत दुःख परपरा का मूल है, नरक का कारण है

इसलिए सज्जन जन इन विषयो को दूर ही से छोड देते है। मैथुन भयो का कारण है। उस मैथुन का सेवन कैसे करना चाहिए ? अथवा नही करना चाहिए।

येषां च भामिनी ये कामुकाः पश्यन्ति च यदाकाले।
तत्कोप वर्धन्ते कामुकानां भ्रष्ट्यन्ते तदा ।।२११।।

जब किन्ही की स्त्री को कोई कामी जन देखते है या इच्छा करते है व जिस समय उस स्त्री से मिलने की चेष्टा करते है उस समय उसके पति या पुत्र को ज्ञात हो जाता है तब उनको उस समय इतना क्रोध बढ़ जाता है कि जिसकी सीमा नही रह जाती है। तब वे उन दुराचारी कामी जन को तलवार बन्दूक या लाठी का प्रहार कर मार डालते है। यहाँ तक देखा जाता है कि बड़े भाई को स्त्री के साथ छोटा भाई कुदृष्टि से व्यवहार करता था जब तक भाई को पता न लगा तब तक कुछ नही एक दिन पता लग गया तब भाई ने समझाया कि तू अपनी भाभी को मत छेड़ा कर पर वह कामी कहाँ सुननेवाला था, तब बड़े भाई को क्रोध आया और बडे भाई ने छोटे भाई को तलवार से कत्ल कर दिया। जब अपना निज भाई भी यह बात स्वीकार नही कर सकता है तब अन्य की स्त्री छेडने पर वह कैसे सहन कर सकता है। व्यभिचारी पुरुष को माता पिता भी कह देते है, कि यदि कोई इसको मार डालेगा तो हम इसका पक्ष नही लेवेंगे। एक जागीरदार का लड़का व्यभिचारी हो गया था तब गांव वालों ने उसके माता पिता से कहा कि तुम्हारा पुत्र हमारी माता वहिनो को छेड़ता है तब माता पिता बोले कि वह हमारे से नही रुक सकता है जो तुम सबको अच्छा लगे सो करो ? तब ग्राम वालो ने एक दिन उस कामी को बन्दूक की गोली का निशाना बना दिया अथवा मरवा डाला। इसलिए भव्य जीवो को पर स्त्री का स्मरण स्वप्न में भी नही करना चाहिए।

पद्म नन्दी पचं विशतिका मे कहा है—

चिन्ताव्याकुलता भयारति मतिभ्रंसा तिदहभ्रम।
क्षुत्तृष्णा हति रोग दुःख मरणान्येतान्य हो शासताम्।।
यान्यत्रैव परागनाहित मन्ते तस्तद्भूरि दुःखं चिरं।
श्वभ्रे भावि यदग्नि दीपित बपुर्लो हागना लिङ्गनात् ।।२६।।

परस्त्रीयो मे अनुराग बुद्धि रखने वाले व्यक्ति को जो इस जन्म में चिंता, आकुलता, भय, द्वेष भाव बुद्धि का विनाश अत्यन्त सताप भ्रान्ति भूख प्यास आपत्ति, रोग बेदना और मरण रूप दुःख प्राप्त होते है ये तो दूर रहे। किन्तु परस्त्री सेवन जनित पाप के प्रभाव से जन्मान्तर मे नरक गति के प्राप्त होने अग्नि में तपायी हुई लोहमय स्त्रीयो के अलिगन से जो चिरकाल तक बहुत दुःख प्राप्त होने वाला है, उसकी ओर भी उसका ध्यान नही जाता है यह कितने आश्चर्य की बात है। २६

धिकतत्पौरुष मासता मनुचितास्ता बुद्धयस्तेगुणाः ।।
माभून्मित्र सहाय संपदपि सा तज्जन्म यातुक्षय ।।
लोकानामिह येषु सत्सु भवति व्यामोह मुद्राकितं ।।
स्वप्नेऽपि स्थिति लंघनात्परधन स्त्रीषु प्रशक्तं मनः ।।३०।।

जिस पौरुष आदि के होने पर लोगो का व्यामोह को प्राप्त हुआ मन मर्यादा का उलघन करके स्वप्न मे भी पर धन एवं पर स्त्रीयो में आशक्त होता है उस पौरुष को धिक्कार है। वे अयोग्य विचार और वे अयोग्य गुण दूर ही रहे, ऐसे मित्रो की सहायता रूप सम्पत्ति भी न प्राप्त हो तथा वह जन्म भी नाश को प्राप्त हो जाय। अभिप्राय यह है कि यदि ऊपर की सामग्री के न होने पर लोगो का मन लोक मर्यादा को छोड़कर पर धन, पर स्त्री मे आशक्त होता है तो वह सब सामग्री धिक्कार के योग्य है ॥

आगमेद्रव्यतकण्डारः गतिर्बभूव किं तस्य ॥
धन धान्यं यश क्षयात् नारके लभते दुःखम् ॥२१२

इस पर स्त्री व्यसन मे प्रसिद्ध आगम मे कण्डार पिंग मन्त्री का पुत्र हुआ है। उसकी कौन सी गति हुई थी। धन धान्य यश का नाश हो गया और मरकर नरक गति में दुःखों को प्राप्त हुआ।

आख्यान

इस भरत क्षेत्र के काशी देश में वाराणसी नाम की नगरी थी उसमें धरसेण नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सुमजरी नाम की पटरानो थी और उग्रसेन नाम का मंत्री था उसकी धर्म पत्नी का नाम सुभद्रा था तथा पुत्र का नाम कण्डार पिंग था। वह बडा दुरभिलाषी था। तथा जो निर्दोष विद्या का अध्ययन कराने वाला राजा का पुरोहित पुष्पक था उसकी अत्यन्त रूप कला गुण सम्पन्न धर्म पत्नी का नाम पद्मावती था। मन्त्री पुत्र कडारपिंग कुलीन पुरुषो के न करने योग्य काम करता था। एक दिन धन और जवानी के मद से मस्त होकर भिन्न वचन बोलते हुए कामी जनो के साथ उन गलियों मे घूमता था जहाँ स्त्रियो के निवास से आमंत्रित होकर विलासी जन आतिथ्य ग्रहण करते है। उसने महल के ऊपर अपने नयनो से कमलो को तिरस्कार करने वाली ऐसी सुन्दर पद्मावती के ऊपर कण्डार पिंग की दृष्टि पड़ी।

उसके सौन्दर्य को देख कण्डार पिंग विचार करने लगा कि यह स्त्री कौन है क्या यह इन्द्रानी तो नही है यह इन्द्रिय रूपी वृक्ष की वृद्धि के लिये पानी की वर्षा है। अथवा मृग रूपी मन के विनोद के लिये क्रीडा भूमि ही है काम रूपी हाथी को बाधने के लिये साकल के समान यह कौन है। यह विद्याधर की पुत्री है क्या यह देवागना है।

क्या यह कामदेव की प्रियकारिणी रति है, ऐसा मन में विचार करते हुए काम के वशीभूत होकर उसने मन में दुष्ट सकल्प किया कि बलात्कार से अपने कार्य की सिद्धि नही होगी, अथवा मनोरथ को सिद्धि नही होगी। यह जानकर उसने दूसरे के अभिप्राय रूपी पर्वत को भेदने मे बिजली की तरह कुशल तडिल्लता नाम की धाय को उसके पास भेजने का विचार किया। और एकान्त घर में नीतिवानों का मार्ग भ्रष्ट करने वाले पैरो में गिरना आदि दुर्जनो के द्वारा आश्रय की जाने वाली विनय के द्वारा अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिएतैयार किया। उसके आग्रह से उस का भार लेकर धाय सोचने लगी कि प्रथम तो पर नारो

है किसी के प्रेम को जोडना अत्यन्त मुश्किल का कार्य है अथवा यह कार्य सरल ही हो सकता है क्योकि तपे हुए और बिना तपे हुए लोहे के समान दो चित्तो को मिलाने के लिए पण्डित जन जो कुछ प्रलाप करते है वही तो वास्तव मे दैत्व है अथवा वेग से बहने वाले दो जलों की तरह दो तरल हृदयों को मिलाने मे क्या बुद्धिमत्ता है। तथा वह दूती वचन पटुता से दूसरे के मन मे तिष्ठे हुए पदार्थ को भी बाहर निकाल लेती है अथवा चुम्बक पत्थर जिस प्रकार कचडे मे छिपे हुए लोहे को बाहर निकाल लेता है वही चतुर दूती कहलाती है जो चुम्बक का कार्य करे।

अतः इस कार्य में अब देर नही करना चाहिये जैसे समय बीत जाने पर पका फल भी सरस नही रह जाता वैसे ही समय बीत जाने पर सरलता पूर्वक होने वाला कार्य समय निकल जाने पर दुस्तर हो जाता है। किन्तु यह कार्य बड़ ही साहस का है भाग्यवश यह कार्य हो या न हो किन्तु दूसरे के अभिप्राय को जानने में सर्वज्ञ विद्वान भी यदि ऐसे कार्य को बहुत से मनुष्यो के करे तो दूत निन्दा का पात्र तो बना ही है साथ में मुशीवत में भी पड जाता है। इसलिये यह कार्य केवल एक ही पुत्र वाले मत्री से कह देना चाहिये। कहा भी है कि स्वामी से निवेदन किये बिना दूत को कोई भी कार्य नही करना चाहिये। हाँ यदि कोई आपत्ति आ जावे तो उसका प्रतिकार स्वामी से बिना कहे भी किया जा सकता है। ऐसा मन में विचार धाय मत्री से कहने लगी।

धाय—मन्त्री जी एक तो आप का इकलौता पुत्र है आप भी इस समय में ऐसे ही थे अब पुत्र के जीवन को बचाने के लिये कोई शीघ्र ही उपाय करना चाहिये।

मत्री—आर्ये मेरे और मेरे पुत्र के जीवन को बचाना आप के ही हाथ मे है।

धाय—सो तो है ही परन्तु फिर भी आपकी प्रतिभा हम स्त्रियों को बुद्धि से अधिक है इसलिये आप को भी प्रयत्न करना चाहिए। इतना कह कर धाय ने वृद्धा का रूप धारण किया वह स्त्री जनोचित्त सब बातों में बड़ी ही चतुर थी। उसने दूसरे के चित्त को आकर्षण करने वाले वचनो द्वारा और आँखो तथा मन को प्रसन्न करने वाली वस्तुओं से कुछ ही दिनो में ही पद्मावती को प्रसन्न कर लिया। एक दिन प्रेम का जाल फैलाने का अवसर आया यह देखकर धाय ने बड़े हर्ष के साथ एकान्त में पद्मावती को लक्ष्य कर एक काव्य पढ़ा उसका भाव यह था कि जगत की सब स्त्रियाँ ही गगा नदी की तरह श्रेष्ठ हैं जिसका भोग सब प्राणी करते है। अथवा मृत्यु को प्राप्त हुए प्राणियो को भी पवित्र करती है जिसको महादेव जी अपने सिर की जटाओ में रत्नों की माला के समान धारण किये हुए है। इस श्लोक को सुनकर पद्मावती मन ही मन विचार करने लगी कि इस स्त्री की यह प्रस्तावना तो दुराचारिणी स्त्रीयो के समान है तथा स्त्रियों के योग्य दुराचार का महल बनाने के लिये पहली ताया खोजी है। फिर भी जो कुछ इसने कहा है उसके अभिप्राय को पूर्णरूप जानने का प्रयत्न करना चाहिये। यह सोच विचार कर धाय से बोली माता इस सुभाषित का क्या तात्पर्य है। धाय—परम सौभाग्यवती देवि यदि आप का हृदय वज्र का नही है तो सुभाषित का अर्थ तुम जानती ही हो। पद्मावती—यदि तुम्हारे इस काव्य के सुनने से मेरा

मन पिघलता नही तो तुम समझ लेना कि वज्र से वना हुआ है माता मैं वर्तमान में इसका अर्थ जानना चाहती हू किन्तु समझदार और स्वाभिमानी मनुष्य को दो के ही सामने अपने मन की वात कहना चाहिये। एक तो जो प्रार्थना करने पर प्रार्थना को अस्वीकार न करे, दूसरे उसमे जो अपने मन के अनुकूल हो। पद्मा—मन ही मन मे—देखो इसकी धृष्टता आकाश की तरह निर्लिप्त वस्तु को भी यह कीचड से लीपना चाहती है। माता ! मै उक्त दोनो वातो मे समर्थ हू। न मेरे लिये यह कोई नई वात है और न इसमे तुम्हारा ही कुछ प्रयत्न है। धाय (मन मे) यदि कोई तूफान न आ पहुचे तो तट के निकट आये हुए जहाज की तरह यह कार्य सिद्ध है। पुत्री ! इसलिए पुराणकारो ने कहा है कि प्राचीन काल मे चन्द्रमा ने अपनी गुरु पत्नी तथा इन्द्र ने गौतम की स्त्री अहिल्या के साथ और महादेव ने सतनु राजा की पत्नी के साथ सगम किया था।

पद्मा—माता आपका कहना ठीक है क्योकि वन्धु वांधव अग्नि की साक्षी पूर्वक स्त्री का शरीर दूसरे को सौंप देते है परन्तु मन को नही। उसका पति तो वही भाग्य शाली होता है जिससे उसे विश्वास के साथ ही साथ सूरत भी मिलती है।

धाय—हे पुत्री तो सुन एक दिन तू अपने महल के ऊपर घूमती थी, फूल की पखुडी की तरह कोमल और नगर की स्त्रियो के नयन कुमारो के विकसित करने के लिए चन्द्रमा के तुल्य किसी युवा की दृष्टि तेरे ऊपर पड गयी।

जैसे वसत के समागम होने पर भौरा आम की मजरी के रस का पान करने के लिए लालायित होता है वैसे ही उस दिन से कामदेव की तरह सुन्दर व युवा तेरे रस का पान करने के लिये लालायित रहता है। उसी दिन से उसका चित्त तेरे लिये चिन्तित है सदा तेरे गुणों का ही चिन्तन करता है, तेरी सुन्दरता का वखान करता है विलास के योग्य अन्य स्त्रियो के पास आने पर उनकी तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखता है वह भूताविष्ट की तरह एक स्थान पर नही वैठता है। पागलो की तरह विचित्र काम करता है। वस रोगी के समान दिनो दिन कृष होता जाता है। इन्द्रियां ऐसी क्षीण हो गयी है मानो कामदेव की आराधना के लिए उसने ध्यान लगाये हुए हो, आजकल मे ही उसके प्राण पखेरू उड़ जाने वाले हो रहे हैं। तथा सदा जल से भीगे हुए पखे से मन्द-मन्द हवा के किये जाने से और अत्यन्त सरस कमलो के डोडो के चन्दन के रस मे भिगो कर उनका लेपन करने से चादनी रात्रि में तेरे प्रेमी को कुछ होस आता है।

पद्मावती—माता तो अव तक यह वात तुम क्यो छुपाये रहो ? धाय—इस प्रकार। पद्मावती—इसमे क्या वुराई ? तो कव ? जव तुम चाहो।

इधर धाय का प्रयत्न जारी था उधर मंत्री प्रतिदिन अपने पुत्र के हित कामना से राजा के पास जाता था और राजा के महल मे रहने योग्य पक्षियो के गुणो का वर्णन किया करता था। एक दिन अवसर पाकर राजा के सामने एक श्लोक पढ़ा। कि जिस राजा के घर मे किंजल्क पक्षी होता है उस राजा का राज्य वृद्धि को प्राप्त होता है। और उस राजा के

बैरी भी नष्ट हो जाते है। सिद्ध किये गये चिन्तामणि रत्न के समान उसकी चिन्तायें पूर्ण हो जाती है।

राजा—मन्त्री वह किजन्य पक्षी कहाँ पर उत्पन्न होता है? और उसकी कैसी आकृति होती है! मन्त्री—स्वामी भगवान महादेव के श्वसुर हिमालय पर्वत की रत्न शिखडी नाम की चोटी के समीप में एक गुफा है उसमें सब प्रकार के पक्षी उत्पन्न होते है। जटायु वैनतेय वैसापयन आदि पक्षी उसी गुफा में पैदा हुए थे उसी गुफा में किजन्य नाम का पक्षी उत्पन्न होता है। उस गुफा को मै और पुष्पक पुरोहित दोनों अच्छी तरह से जानते है। क्योंकि हम दोनों भगवती नन्दा की यात्रा करने गये थे। उसका आकार मनुष्य के समान ही होता हैं। और वह अनेक रगों वाला होता है।

राजा (कुतूहल से) मन्त्री उस पक्षी के दर्शन करने की मेरी वड़ी अभिलाषा है वह कंसे सफल हो। मन्त्री—आप—स्वामी मेरे या पुष्पक के जाने से आप की अभिलाषा पूर्ण हो सकती है।

राजा—मन्त्री तुम तो वृद्ध हो पुष्पक को भेज दो? मन्त्री—तो पुष्पक के लिए ककण पुरस्कार दीजिये। और मार्ग में जाने के लिये योग्य द्रव्य दीजिये। राजा—अच्छा। राजा की आज्ञा पाकर पुष्पक घर में आया उसका मत था कि राजा की आज्ञा में संकल्प विकल्प नही करना चाहिये। अतः जाने की तैयारी करनी चाहिये। तैयारी करने लगा तब धर्म पत्नी पद्मावती ने पूछा कि स्वामी असमय में आप कहा जाने की तैयारी कर रहे है। पुष्पक—वस्तुतः बात को कहता है। तब पद्मावती बोली यह सब कपटी मन्त्री का जाल है। पुष्पक—ऐसा करने का क्या कारण है पद्मावती ने बीती हुई बातें कह सुनाई। फिर अब क्या करना चाहिये। पद्मा—यही करना चाहिये कि दिन चढ़ते ही नगरी से प्रस्थान करना चाहिये और रात्री के मध्य में चुपचाप लौट कर अपने घर में आकर मकान के किसी भाग में विश्राम करना चाहिये। आगे जो कुछ करना है वह मै कर लू गी। पुष्पक ठीक है। दूसरे दिन जब सब लोग सो गये तब वह ठगिनी धाय उस दुराचारी कडारपिंग को लेकर आई। उधर पद्मा ने यह सोचकर कि ये दोनो नरक गामी जीव है नरक जाने के पहले यही पर नरक गति क्यों न भोगें। अपने घर में एक बहुत गहरा गड्ढा खुदवा कर उसके ऊपर बिना बुनी खाट बिछा दी तथा जहाँ तहाँ सड़ी डोरी बाध दी उसके ऊपर सुन्दर चादर बिछवा दी। जब ये दोनों उस पर बैठने लगे तो दोनो के दोनों उस खड्ढे में गिर गये और छह माह तक जूठा दाल भात खा कर नरक के समान दु खो को भोगते रहे।

एक दिन सारे नगर में यह बात फैल गई कि स्वामी को आज्ञा का पालक पुष्पक एक पिंजरे में किजल्प पक्षी को और इस प्रकार के पक्षी को जन्म देने वाली उसकी माता पक्षिणी को भी साथ में लायेगा वह अब तीन या चार दिन में आजावेगा और नगरी में प्रवेश-करेगा। इधर पद्मावती ने उन दोनों के शरीर को अनेक रंगों से रंगा और चिडिया चकोर नीलकंठ चातक आदि पक्षियो के पख चिपका दिये। तथा पिंजरे में बद करके उन दोनों के साथ अपने पति पुष्पक के चिर प्रयास के योग्य वेष बनाकर वहा से नगर के बाहर स्थित उपवन में

भेज दिया। और आप विरहिनी स्त्री का भेष बना:कर पुरोहितके अद्भुत कार्य के सबंध में बात चीत करने के लिये आतुर सहेलियो के साथ पति से मिलने के लिये गई। दूसरे दिन गुणी पुष्पक राजमहल में आकर बोला महाराज यह किंजल्प पक्षी है और यह उसको जन्म देने वालो पक्षिणी है। राजा इकटकी लगाये हुए बहुत देर तक देखता रहा और पहचान गया कि यह किंजल्प पक्षी नही है न ही यह पक्षिणी है यह तो मन्त्री का पुत्र कण्डार पिंग तथा तडिल्लता धाय है कुट्टिनी है।

राजा ने पद्मा को बुलाकर कहा कि यह क्या मामला है पद्मा ने भी आदि से अत तक सब समाचार सुना दिया वृतान्त सुनते ही राजा नट की तरह प्रसन्न होता था कभी क्रोध से तमतमा उठता था कभी क्रोधित हो उठता था। सब सुन कर अतपुर की स्त्रीयो ने पद्मा के पैर पकडे और राजा ने सती स्त्रीयो के योग्य आनददायक वचनो से और आदर सूचक वस्त्राभरण प्रदान करके पद्मा को सम्मानित करके पालकी मे बैठा कर उसके घर पहुचा दिया। फिर कुट्टिनी और कडार पिंग का तिरस्कार करते हुए बोला अरे नीच क्या इस नगरी मे वेश्याये नही थी जो तूने ऐसा आचरण किया। अरे दुराचारी ऐसा करते हुए मर क्यो नही गया? अत यदि इसी समय मैं तुझे तिनके की तरह नष्ट कर डालूँ तो यह तेरा बहुत अपकार नही कहलायेगा। इस प्रकार बुरी तरह से तिरस्कार करके दुराचारी कडार पिंग का और कुट्टिनी के साथी उग्रसेन मत्री को सब लोगो के सामने फटकार देते हुये देश से निर्वासित कर दिया। इस प्रकार व्यभिचार करने के कारण प्रजा के सामने तिरस्कृत होकर कामी कण्डार पिग बहुत समय तक इस पाप का फल भोगता रहा फिर मर कर नरक मे चला गया।

इस विषय में एक श्लोक है जिसका भाव इस प्रकार है काम से पीड़ित और परस्त्री सभोग के लिये उत्सुक कण्डारपिंग परस्त्री गमन के सकल्प से मर कर नरक गया।

> क्रीडन्ति द्यूत काराः खलुधन मिव संग्राहितार्थं च द्यूतं ॥
> वित्तंह्रासं यदायान्ति तदपि न च मुञ्चन्ति कुर्वन्ति चौर्यं।
> चौर्येलब्ध्वा च वित्तं पुनरपि विजयन्तिप्रियेछन्ति वेश्यां।
> सेव्यन्तेमद्यमासं तदपि च मृगयार्थं न मासंलभन्ते ॥२१२॥

जुआरी लोग जुआ को धन इकठ्ठा करने के लिये खेलते है जब जुआ खेलते-खेलते हार जाते है तब भी जुआ खेलना नही छोडते है और चोरी करने लगते है अब चोरी कर धन लाते हैं तब पुनः जुआ खेलने लग जाते है, पर स्त्रीयो की तरफ दृष्टि डालते हैं, अथवा वेश्या की सगत करने लग जाते है। और वेश्या के सहवास व जुआरियो के सहवास में रहने से मास खाना और शराब पीने की आदत पडजाती है। पीछे धन क्षय हो जाने पर वेश्या बुरी तरह डाट फटकार कर निकाल देती है, मास खाने की इच्छा होती है तब शिकार खेलने के लिये यत्र तत्र जगलो मे पशु पक्षियो व मीन मगर इत्यादि को मार मार कर उनके मांस को खाते है। तथा शराब बनाकर पीते है जिससे उनके काम वासनाये बढ़ जाती है तब वे पर स्त्रीयो की तरफ दृष्टि डालते हैं, व पर स्त्रियो को छेड़ते है।

विशेष—धन की प्राप्ति की इच्छा व धनवान बनने की भावना से लोग जुआ खेलते हैं। जुआ खेलने पर जब हार जाते है तो भी उस जुआ को खेलने वाले जुआ खेलना नही छोडते है। जब जुआ में हार जाते है तब इधर उधर ग्रामों में, नगरों में जाकर चोरी करते है और उस धन को प्राप्त कर पुन: जुआ खेलते है जब जुआरी जुआ में जीत जाते है तब वेश्या के यहा जाने लगते है और वेश्या की संगति करने लगते है तब जैसे वेश्या ने कहा वैसाही खान पान करते है तथा माँस खाने व शराब पीने लग जाते है। अब पैसा तो वेश्या को खिला पिला दिया और जो बचा उसको जुआ में हार गये तब वेश्या ने कान पकड़ कर निकाल दिया। तब मास-खाने शराब पीने व वेश्या सेवन करने की आदते पडी हुई थी अब क्या था कि धन नही रह गया तब माँस खाने की इच्छा से जहा कही कोई भी पशु-पक्षी या मीन मगर इत्यादि जीवों को मार कर उनके माँस को निकाल कर उसको पकाकर खाने लग जाते है। जब मास खाने से काम वासना बढ जाती है वेश्या के लिये पैसा नही रह जाता है तब इधर उधर पर नारीयो के ऊपर दृष्टि डालते है। इस प्रकार एक जुआरी जुआ खेलने वाला क्रमानुसार सातों ही व्यसनो का सेवन करने लग जाता है इसलिये ये व्यसन नरक की सीढी है। अथवा नरक की पद्दत है।

इस पंचम दुस्सम काल में आज के युग में (लोग) मनुष्य धर्म यश कीर्ति व जाति कुल के स्वाभिमान से रहित हो गये है। वे हमेशा ही दूसरो की पुत्री व बहुओं माता बहनों पर कुदृष्टि डालते है। जगह जगह यही सुनने में आता है कि आज प्रोफेसर की पुत्री को कोई हरण कर ले गया। आज अमुक जगह लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार करते हुए पकड़ लिया ये अफवाये आकाश में फैली हुई रहती है। कोई भी जाति पांति का भेद नही करते हुए स्कूलो मे से कालेजों में से जबरन पकड़ कर ले जाते है और उनके साथ दुराचार करते है। आज पासे का जुआ नही रहा परन्तु अनेक जुआ खेलने के तरीके चालू है। जैसे घोड़ो की रेस साइकिलों बैल गाडियों की रेस व माटका दड़ा बादल आदि अनेक प्रकार से खेलते है यह जुआ सब व्यसनो का सरदार है। तथा जगत मे जुआरी की दुर्गति ही होती है। जब कभी जुआरी हार जाता है तब पास में धन नही रह जाता है तब किसी के पास कर्जा लेने को जाते है तब कर्जा देने वाला विचार करता है कि यह तो जुआरी है ये पुन: हमारे धन को वापस नही दे सकेगे। ऐसा विचार कर के जुआरी को कर्ज नही देते। जब कर्जा मिलता नही तो जुआरी चोरी करने के सन्मुख होता है जब चोरी कर के धन ले आता है तब पुन: जुआ खेलता है जब जुआ खेलने में जीत हो जाती है तब वह जुआरी वश्या की सगत करने लग जाता है। उसकी सगत में रहकर माँस भक्षण करता है तथा वेश्या के कहे अनुसार शराब पीने लग जाता है। जब जुआ मे आया हुआ धन (नष्ट) समाप्त हो जाता है और शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है तब माँस खाने व शराब पीने की भी आदते पड़ने के कारण अब बाजार से मास खरीदने व शराब खरीदने के लिये पास में पैसा नही रहा तब इधर उधर घूम कर दीन हीन निरपराध जिनका कोई स्वामी नही है उन जीवों को मार कर खाते है तथा मास प्राप्त करने के लिये दूसरे जीवो के मासको खाने के लिए शिकार करते है उनके

शरीर को छेदन भेदन कर माँस निकाल कर पका कर खाते है। जब मास खानें के कारण काम वासनाये बढनें लग जाती हैं तब पूर्व में वेश्या का सेवन किया था परन्तु अब वह वेश्या बिना पैसा केकैसे प्राप्त हो ?तब वह पापी कामासक्त दुराचारी अपनी व पराई स्त्रियो बहनो पर दृष्टि डालते है तथा बहका कर उनके साथ रमण करनें का प्रयत्न करते है। जब उसके दुराचार का लोगो को पता चल जाता है तब सब लोग उस पापिष्ठ का वहिष्कार करते है जिससे दुर्गति का पात्र बन जाता है।

जब कोई हमारी माता बहन बेटी व धर्म पत्नी इत्यादि को बुरी निगाह से देखता है तब हम उसका बहिष्कार करते है बैर विरोध करते है। जब हम दूसरो की बेटी बहन माता व बहू पोती इत्यादि पर कुदृष्टि डालेगे तो क्या वे उनके भाई पुत्र पिता आदि हमारा वहिष्कार नही करेगे ? अवश्य करेगे। क्योकि सब स्त्री पुरुषों को अपनी बहनादि का शील धर्म प्यारा है इसलिये हे भव्य प्राणियो इन सप्त व्यसनो में प्रसिद्ध हुए अनेकानेक राजाओ की कथा आगम मे पाई जाती है तो सामान्य लोगो की तो बात ही क्या है। प्रत्येक व्यसन का कथन करनें के पीछे कथा भी कही गई है। जहाँ पर पाप बुद्धि रहती है वहा पर सम्यक्त्व रत्न जीवो को प्राप्त नही होता है। क्योकि व्यसनों का सेवन करने वाला पाप रूप गठरी को लेकर दुर्वासनाओ से युक्त होकर मरण करता है जिससे जीव नरक गति मे जाता है। परन्तु सम्यकत्व होने के बाद सम्यग्दृष्टि जीव मरण करके नरक नही जाता है। इसलिये आत्म हितैषियो को इन सातो व्यसनो को त्यागकर सम्यकत्व उपार्जन करना चाहिये ।।इति।।

आगे जीव अजीव तत्वों का स्वरूप कहते है।

जीवाजीवद्रव्ये आलोके निवसन्ति निश्चलैव।
सलोकाकाशं तथा जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च ।। २१३ ।।

इस लोकाकाश के अन्त तक द्रव्यो का निवास क्षेत्र है वे द्रव्य अनादिनिधन है पराश्रय से रहित निवास करती है। ये द्रव्ये अपने-अपने अस्तित्व को लिए हुए है। अस्तित्व से रहित कोई द्रव्य नही है ये द्रव्ये जीव और अजीव की अपेक्षा कर के दो है। जीव द्रव्य एक तो वे है जो चेतना मात्र से जीवित हैं जिनके चेतना पाई जाती है वे जीव है। चेतना जानना देखना हलन-चलन रूप क्रिया भावो मे अनुरक्त है। दूसरी अजीव द्रव्यं है। जो देखने जानने व चेतना से रहित है रूपी और अरूपी है। रूपी एक पुद्गल द्रव्य है जो अनेक भेदो वाली है। पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल। ये द्रव्य अविनाशी साश्वत ध्रुव रूप से विद्यमान रहती है। जिनका कभी भी अभाव नही होता है। जो बौद्ध मत वाले जीव को क्षण भगुर मानते है। तथा एक समय मे एक जीव है दूसरे समय मे दूसरा जीव होता है पहले वाला जीव नष्ट हो जाता हैं इस नियम का निराकरण करने के लिए सास्वत कही गई है। द्रव्य का सदा अस्तित्व न मानने वाले बौद्धो का मत खण्डन हो जाता है। अस्तित्व कहने से शून्य वादी कहते है कि ससार सब शून्य ही है ससार मे कोई द्रव्य है ही नही उसका निराकरण करने के लिए कहते है कि द्रव्ये अपने-अपने स्वभाव मे स्थित है। इतना कहने से शून्य वाद मत समाप्त हो जाता है। सब लोक मे कहने से यह बताया गया है कि एक ब्रह्म मानने वाले या ब्रह्मा ने

लोक को तथा पदार्थों की व सृष्टि की या ये द्रव्ये; ब्रह्म में से ही उत्पन्न होती है और विनाश होने पर ब्रह्म में ही मिल जाती है। ऐसी मान्यता का निराकरण करने के लिए सास्वत और हमेशा विद्यमान रहती है। निवसति अथवा एक ब्रह्म की मान्यता का निराकरण करने के लिए द्रव्ये ऐसा दो वचन का निर्देश किया गया है कि द्रव्य एक नही दो है। जो मत वाले यह मानते है कि एक पुरुष ही द्रव्य है अन्य सब एक पुरुष के ही अश है इससे भिन्न कोई नही है इसका निराकरण करने के लिए निवसन्ति यह बहुवचनात्मक क्रिया पद दिया है कि एक पुरुष नही द्रव्ये छह है वे लोक में निवास करती है। सब लोक में द्रव्ये भरी हुई है तथा सब लोक द्रव्यो के निवास करने का क्षेत्र है। तथा कहने का तात्पर्य यह है कि सत्ता रहित पाच भूतो से अथवा पाँच भूतो के मिलने पर जीव की उत्पत्ति मानते है उनका निराकरण किया गया है कि जीव द्रव्य अनादि निधन है यह पांच भूतों के मिलने से इनकी उत्पत्ति नही है क्यों कि पाच भूत जड़ है जड़ से चेतना रूप जीव की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। सब द्रव्ये अपने गुण और पर्यायो से संबधित है वे अपने-अपने द्रव्य गुण और गुणों के विकार पर्यायों से युक्त है। इन द्रव्यों को नाग या काश्यप आदि ने धारण नही किया है जीव दो प्रकार के है एक ससारी दूसरे मुक्त। संसारी जीव जो जन्म-मरण रूपी रहट में झूला झूलते है अथवा चारों गतियों मे भ्रमण करते है। जो जन्म-मरण रूपी रहट के चक्कर से रहित हो गये है वे सिद्ध आत्मा मुक्त जीव हैं॥ २१३॥

नष्टाष्टकर्मणां ये लब्ध्वाऽऽष्टगुणाः कृतकृत्य नित्यम्॥
चरम देहा न्न्यूनाश्च लोकाग्रे निवासिनाः सिद्धाः॥ २१४॥

जिन्होंने ज्ञानावरण, दशनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय इन आठ कर्मो का नाश कर दिया है तथा औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, आहारक रूप नौकर्मइन सब का नाश कर दिया है। तथा जिन्होने अनंत दर्शन अनतज्ञान सुख और अनंत वीर्य अगुरुलघु, अव्याबाध, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व ऐसे आठ गुणो को प्राप्त किया है। जिन के अब अन्य अवस्था शेष नही रही है। अथवा अनेक पूर्ण गुणो को प्राप्त होने से वे कृत कृत्य हो गए है। नित्य है जिनको चार गति रूपी योनियों में जन्म-मरण धारण करना पड़ता था ससार अवस्था में अब वे उस भ्रमण से रहित हो गये इसलिए नित्य है वे पुनः संसार में नही आवेगे। वे अन्तिम शरीर की अवगाहना से कुछ कम अवगाहना वाले है। सिद्ध भगवान के क्षेत्र विपा की गत्यानुपूर्वी नाम कर्म का क्षय हो गया जो आकार में परिवर्तन करता रहता था इस लिये जिस अवगाहना वाले शरीर से मोक्ष प्राप्त किया है उस ही आकार के आत्म प्रदेश विद्यमान रहते है। जो लोक के ऊपरी भाग में अथवा लोक शिखर पर विराज मान हो रहे है ऐसे सिद्ध भगवान है। वे मुक्तात्मा कहलाते है।

विशेषार्थ—जीव और पोद्गलिक कर्म नौकर्म समूह का सबध अनादि काल से चला आ रहा है जिस प्रकार वश परपरा चलती रहती है कि पूर्वजों का विनाश और नवीन-नवीन पुत्र-पौत्रादि की उत्पत्ति होती जाती है वे ससार का कार्य सम्हालते जाते है। उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म फल दे देकर खिरते जाते है और नये-नये कर्मो का आस्रव बध होता रहता

है। पुराने-पुराने कर्मो की प्रति समय निर्जरा होती रहती है।

उसी प्रकार कर्मो की उत्पत्ति और निर्जीर्ण होने की संतान प्रति सतान क्रम अनादि काल से चला आ रहा है उन कर्म समूह का नाश करने के लिए प्रयत्न शील होकर आत्मा का साधन किया तथा सर्व कर्म समूह को भस्म कर दिया तव उपमारहित अनत गुणो को प्राप्त किया।

इस आत्मा के सर्वोकृष्ट गुण अनत दर्शन ज्ञानादिक है जो अन्य द्रव्यों में नही पाये जाते है। जिस ज्ञान में पदार्थो का स्वरूप यथार्थ प्रकाशित हो ऐसे दर्शन ज्ञानादि आत्मा में सर्वोत्कृष्ट गुण है इन गुणों का समुदाय ही आत्मा है अथवा अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्यादि गुण आत्मा मे ही है। आत्मा में सम्यक्त्व है, आत्मा में ज्ञान है, आत्मा मे सुख है, आत्मा में वीर्य है, आत्मा में योग है, आत्मा में चरित्र है, आत्मा में प्रत्याख्यान है। ससारी आत्मा के साथ घातिया कर्मो का समूह अनादि काल से लगा हुआ है, जो कर्म जीव के निज स्वाभाविक गुणों को प्रकट नही होने देते है, इसलिए इन कर्मो को दोष कहते हैं उन समस्त सर्व घातिया और देश घातिया तथा अघातिया कर्मो के अभाव हो जाने पर आत्मा मे अनंत ज्ञानादि गुण प्रकट होते है, तव उस आत्मा को सिद्धात्मा कहते है, जिनको इस शुद्ध आत्म तत्त्व की प्राप्ति हो गई है उनको सिद्ध कहते है। वे सिद्ध भगवान कर्मो की प्रकृतियो से सर्वथा भिन्न रहते है, ससार मे ऐसे बहुत से मानव है, जिनको अजन गुटका सिद्ध हो जाता है, वे एक प्रकार का सिद्ध अजन बनाते है, जिसको आँखो मे लगाते ही वे दूसरो को दिखाई नही देते है, परन्तु वे सब आने जाने वालो को देखते है, उसको अजन गुटका सिद्ध कहते है, वे सिद्ध भगवान अजन गुटका सिद्ध नही है जिन्होने अपने आत्म बल से सब कर्मों का नाश कर दिया है उनको सिद्ध कहते है, वही सूचित करने के लिए ग्रन्थकार ने सिद्धो का स्वरूप समस्त कर्मो की प्रकृतियो से रहित बतलाया है।

आगे ससारी जीवो का स्वरूप कहते है।

संसारिणो द्विविधेष नित्य स्थावरा स्त्रशाश्च पंच चतु: ॥
पृथ्वीतोयंज्वलनः पवनः वनस्पति चदुधास्त: ॥ २१५ ॥

ससारी प्राणी दो प्रकार के है एक स्थावर दूसरे त्रस जीव है वे स्थावर कायक जीव पाँच प्रकार के है और त्रस जीव चार प्रकार के है। वे पांच प्रकार के स्थावर पृथ्वी पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति के भेद से जानना चाहिए। वनस्पति के चार भेद होते है वे इस प्रकार के है कि साधारण वनस्पति दूसरी प्रत्येक प्रत्येक में भी दो भेद होते है सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित, प्रत्येक के चार-चार भेद होते है सूक्ष्म वादर पर्याप्त और अपर्याप्त। त्रस जीव दो इन्द्रिय, व तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पचेन्द्रिय इस प्रकार त्रस चार भेद वाले है। जिन जीवो के एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है उनको स्थावर जीव कहते हैं। जिनके स्थावर नाम कर्म का तथा मतिज्ञानावरण वीर्यान्तराय कर्म के उदय आने पर जीव स्थावर होते है। तथा त्रस नाम कर्म के उदय में आने पर त्रस जीव होते हैं। जो स्पर्शन इन्द्रिय आयुबल-स्वासोच्छवास तथा काय बल इन चार प्राणो से जीते है जीते थे और भविष्य में भी जीवेंगे

उनको जीव कहते है। आगे पंच स्थावरों के अन्य प्रकार के भेद है उनको कहते हैं ॥२१५॥

पृथ्वी कायकः कायःपृथ्वी जीवाश्च चतुर्धैव
अयेन्षु स्थावरेषु वा संयोजितव्य एकैके ॥२१६॥

शुद्ध भूमि जिसको जीव कभी भी स्पर्श नही करते है। जिस पृथ्वी में जीव विराजमान है, उसको पृथ्वी कायक कहते है। जिस पृथ्वी को जीव नें अपना शरीर बना कर छोड़ दिया हो उसको पृथ्वीकाय कहते है। जो जीव स्थावर नाम कर्म व पृथ्वी आयु को बाध कर विग्रह गति में है जब तक वह अपने उत्पत्ति के स्थान पर नहीं आ पहुंचा है तब तक उसको पृथ्वी कायक जीव कहते है। इसी प्रकार अन्य चारों शेष स्थावरों में लगा लेना चाहिये ॥२१६॥

तेऽपि चतुः प्राणयुक्ताः इन्द्रिय बलमायुः स्वासोच्छवासैः ॥
जीवन्ति जीविष्यन्ति भूत काले जीव्यचक्रुश्च ॥ २१७ ॥
तेऽप्युपयोगेयुक्ता ज्ञानदर्शनेऽष्ट चतु भेदाः।
दर्शनोपयोग चतुर्धाश्चक्षु अचक्ष्वावधि केवलानि ॥ २१८ ॥

जो इन्द्रिय बल, शरीर बल, आयु बल और स्वासोच्छवास इन चार प्राणों से पहले भूत काल में जीते थे, और भविष्य काल में आने वाले काल में भी जीवेंगे, व बर्तमान काल में भी जीवित है। तथा एक जीव के कम से कम चार प्राण होते है, और अधिक से अधिक दस प्राण होते है, इससे अधिक प्राण नही होते। एकेन्द्रिय जीव के एक स्पर्शन इन्द्रिय और काय बल स्वासोच्छवास तथा आयु ये चार प्राण होते है वे एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के बतलाये है उन पाचों ही प्रकार के जीवो के ये सब प्राण होते है। दोइन्द्रिय जीव के छह प्राण होते है स्पर्शन रसना वचन बल, काय बल, आयु बल, स्वासोच्छवास ये होते है, इन जीवो के औदारिक काय बल होता है, तीन इन्द्रिय के एक घ्राण इन्द्रिय की वृद्धि हो जाती है इसलिए सात प्राण होते है चार इन्द्रिय के एक चक्षु इन्द्रिय और अधिक बढ़ जाने से चार इन्द्रिय के आठ प्राण होते है असैनी पचेन्द्रिय के कर्ण इन्द्रिय और अधिक बढ जाती जिससे उनके ९ प्राण हो जाते है, सेनी पचेन्द्रिय जीवो के एक मनोबल और अधिक बढ़ जाता है, तब सेनी पंचेन्द्रिय जीवों के दस प्राण होते है। इससे अधिक प्राण किसी भी ससारी जीव के संसार अवस्था मे नही होते है कहे हुए जितने त्रस और स्थावर जीव है वे सब ही ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग सहित होते है। वे दोनों एक दूसरे को छोड कर नही उन दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग मे तादात्म्यक सम्बन्ध है दर्शनोपयोग के संसारी जीव की अपेक्षा से चार भेद है और ज्ञानोपयोग के आठ भेद होते है, इन दोनों के बारह भेद हो जाते है। दर्शनोपयोग चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवल दर्शनोपयोग यह दर्शनोपयोग निराकार है। महासत्ता मात्र वस्तु को ग्रहण करता है। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है वह साकार है तथा क्रिया और लक्षण आकार भेद पूर्वक जानता है इसलिये वह साकार है। दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर होता है। चक्षुदर्शनादि जो चक्षु दर्शनावरण कर्म के क्षयोपश होने पर चक्षुइन्द्रिय से होने वाले सत्ता सामान्य का अवलोकन होता है वह चक्षुदर्शन है। चक्षुइन्द्रिय से भिन्न अचक्षुदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर शेष इन्द्रियों से सत्ता मात्र पदार्थ का सामान्य अवलोकन होता है उसको अचक्षुदर्शन कहते है। अवधिज्ञान

के पूर्व में होने वाले अवधि दर्शनावर्ण कर्म के क्षयोपशम होने पर जो दर्शन होता है उसे अवधिदर्शन कहते है अथवा अवधि ज्ञान के पूर्व में वस्तु सामान्य का अवलोकन होता है उसको अवधि दर्शन कहते है। केवल दर्शन जो केवल ज्ञान के होने के साथ महासत्ता रूप पदार्थों का सामान्य से अवलोकन होता है वह केवल दर्शन है। यह केवल दर्शनावरण कर्म के पूर्ण रूप से क्षय होने पर होता है। जिसके तीन लोक व तीन कालवर्ती जितने द्रव्य पर्याय गुण और गुणों की पर्याये है वह सब सामान्य से अवलोकन होती है उसको केवल दर्शन कहते है ।।२१७।११८।।

ज्ञानोपयोगद्विविधे मतिश्रुतावधिः कुसुज्ञानं च ।
मन. पर्ययं केवल प्राक्चतुः क्षयोपशमिकं वा ।। २१९ ।।

मति श्रुत, अवधि ये तीन ज्ञान कुज्ञान और सुज्ञान के भेद को लिए हुए है। जिस ज्ञान के साथ में दर्शन मोह की मिथ्यात्व प्रकृति के सत्ता व उदय के रहते हुए उससे सम्बन्ध रहता है तब तक जो जीवो को ज्ञान होता है वह ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहलाता है। यह-मिथ्या मति ज्ञान मिथ्या श्रुत ज्ञान व विभंगा बधि ज्ञान होता है। जब जीव के सम्यक्त्व हो जाता तब जो मिथ्या ज्ञान था वह बदल कर मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन· पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान ये पाच ज्ञान ये सब मिलकर- ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है। जब मति ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर जो ज्ञान होता है वह मति ज्ञान तथा श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान होता है। जो अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर क्षेत्र द्रव्य काल की मर्यादा पूर्वक रूपी पदार्थो को बिना मन इन्द्रिय का सहायता के होता है जो ज्ञान होता है उसको अवधि ज्ञान कहते है। जिस मन· पर्यय ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर जो दूसरे के मन मे तिष्ठते हुए पदार्थो को जानने की शक्ति का प्रकट होना यह मनः पर्यय ज्ञान है। जो ज्ञानावरण कर्म के पूर्ण रूप से क्षय होने पर जो ज्ञान होता है वह केवल ज्ञान है केवल ज्ञान को छोडकर शेष सात ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर होते है उनको क्षयोपशामिक ज्ञान कहते है तथा जो आवरण के व वीर्यान्तराय कर्म के क्षय होने पर होता है, उसको क्षायक केवल ज्ञान कहते है इसी प्रकार आगे के तीन दर्शन दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर होते है इसलिए इनको क्षयोपशमिक ज्ञान दर्शन कहते है। केवल दर्शनावरण कर्म के क्षय होने पर तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षय होने पर जो दर्शन होता है उसको केवल दर्शन कहते है ।। २१९ ।।

स ज्ञानोपयोगे द्विधे परोक्षप्रत्यक्षे सांव्यवहारिकम् ।
प्रत्यक्ष सकल विकले विकलमवधिमनःपर्ययम् ।। २२० ।।

वह सम्यज्ञान दो प्रकार का है प्रथम तो मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान परोक्ष है क्योकि ये दोनो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायतापूर्वक होते है क्योकि इस मति ज्ञान मे इन्द्रियावरण ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम व इन्द्रिय नाम कर्म का क्षयोपशम तथा वीर्यातराय कर्म के क्षयोपशम होने पर उत्पन्न होते है इसलिए परोक्ष है। इनको प्रत्यक्ष भी कहते है। क्योकि इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर एक देश प्रत्यक्ष आत्मा पदार्थो

को पर निमित्त से जानता है। दूसरा परमार्थिक प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है विकल परमार्थिक और सकल परमार्थिक के भेद होने से। विकल परमार्थिक प्रत्यक्ष जो अवधि ज्ञानावर्ण व मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्मो के क्षयोपशम होने पर रूपी पदार्थो को मर्यादा पूर्वक इन्द्रिय और मन की विना सहायता के जो आत्म प्रत्यक्ष कर जानता है उसको अवधि ज्ञान कहते है। तथा जो मनः पर्यय ज्ञान है वह बिना इन्द्रिय और मन की सहायता के मर्यादा पूर्वक रूपों पदार्थो को दूसरे के मन में तिष्ठे हुए हैं उनको जान लेता है। यह मनःपर्यय प्रत्यक्ष है। यह भी एक देश आत्म प्रत्यक्ष कर पदार्थो को जानता है। सकल प्रत्यक्ष केवल ज्ञान है जो ज्ञानावरण कर्म के क्षय होने पर ही होता है। जिससे वह लोक और अलोकाकाश सहित सब द्रव्य और उनकी भूत भविष्यत और वर्तमान में होने वाली अनत पर्यायों को युगपत जानता है (दर्शन देखता है) वह सकल प्रत्यक्ष है अथवा सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष है ॥२२०॥

व्यवहारेकथितं मा अष्टौ चतुर्भेदानि परमार्थे।
ज्ञानदर्शने शुद्धं शुद्धनया सर्वजीवाना ॥ २२१ ॥

जो दर्शनोपयोग चार प्रकार का और ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का कहा गया है यह व्यवहार नय की दृष्टि से कहा गया है। तथा साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक सकल विकल प्रत्यक्ष ये सब भी व्यवहार नय की दृष्टि से कहे गये है, किन्तु शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से शुद्ध दर्शन शुद्ध ज्ञानोपयोग सब जीवो के कहा गया है। दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोग में जो विकल्प उपलब्ध है वे सब क्षदमस्त जीवो की अपेक्षा से कहे गये है। जैसा जिस जीव के ज्ञानावरण कर्म का उदयसत्व में से क्षयोपशम होता है वैसे ही जीव के ज्ञानोपयोग से जानने की शक्ति प्रकट होती है, तथा जैसा जिस समय जीव के दर्शनावरण कर्म का उदय सत्व में क्षयोपशम प्राप्त होता है, वैसा ही महासात्ता सामान्य रूप से पदार्थ का अवलोकन होता है। उदय तथा सत्ता में विराजमान ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म का जैसा क्षयोपशम जीवो के पाया जाता है वैसा ही तीव्र मंदता को लिए हुए पदार्थो को तारतम्य रूप से जानता है। जव मतिज्ञानावरण कर्म का तीव्र उदय होता है तब जीव को कुछ भी (सूझता नही) पदार्थों का ज्ञान नही होता है। उसकी जानी हुई देखी हुई रक्खी हुई भी स्मरण में नही आती है जव जान लिया कि यह वह पदार्थ मेरे योग्य है परन्तु मतिज्ञानवरण कर्म के उदय में होने के कारण एक समय वाद ही भूल जाता है। जिन वस्तुओं को पहले जाना था देखा था और प्रत्यक्ष मे भी दिखाई दे रही है तो भी यह भान नही होता कि यह क्या है कैसी है यह मतिज्ञानावरण कर्म के उदय का कार्य है। जव अनेक प्रकार से अनुमान किया गया लेकिन उसमें कोई आस्था नही हो पाई तव वहाँ पर भी मतिज्ञानावरण कर्म का उदय है। जव जिस काल में ज्ञानावरणकर्म का तथा वोर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम हो तव मनन करने की शक्ति प्रकट होती है मनन पूर्वक पदार्थ एक देश जाने जाते है। जिन पदार्थो को जाना था उनका पुनः स्मरण में आने को स्मृति मतिज्ञान कहते है। जिन वस्तुओं को पहले देखा था और प्रत्यक्ष में भी देखने पर पूर्व का स्मरण हो जाना यह मतिज्ञान का प्रत्यभिज्ञान भेद है। वह प्रत्यभिज्ञान तीन प्रकार का होता है एक सादृश प्रत्यभिज्ञान दूसरा विदृग प्रत्यभिज्ञान तीसरा एकत्व प्रत्यभिज्ञान। जिस पदार्थ को पहले देखा था उसको ही

प्रत्यक्ष मे देखना और देखे हुए पदार्थ का स्मरण होना यह एकत्व प्रत्यभिज्ञान मतिज्ञान है जो जिस पदार्थ को पहले देखा था उसके समान ही अन्य वस्तु को देख कर पूर्व में देखे हुए पदार्थ का स्मरण हो आना कि यह उसके ही समान है यह सादृश प्रत्यभिज्ञान मतिज्ञान का भेद है। जैसे यह गौ रोझ के समान बालो वाली है इसमे स्मृति प्रत्यक्ष में सादृशता दिखाई गई है यह भी मतिज्ञान के क्षयोपशम का ही भेद है। तर्क लगाकर पदार्थ को जानना कि जहाँ धूम होता है वहाँ अवश्य अग्नि होती है जहाँ जहाँ धुआँ वहाँ-वहाँ अग्नि है क्योकि साधन से साध्य का ज्ञान होना तथा नदी मे पानी देखकर तर्क करना कि आज अमुक स्थान पर पानी वर्षा है जिससे नदी मे वाढ़ आ गई वहाँ विजली भी चमक रही थी इससे यह प्रतीत होता है कि वहाँ पर पानी वर्षा है व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते है, यह तर्क पदार्थ और हेतु दोनो को ग्रहण करके साधन से साध्य का ज्ञान करता है, क्योकि जहा पर साधन नही वहाँ साध्य भी नही हो सकता। साधन से ही साध्य की सिद्ध हो सकती है, क्योकि साधन और साध्य का अविनाभावी सम्वन्ध है। जिसके बिना पदार्थों का ज्ञान नही उसको साधन कहते है जैसे अग्नि का साधन धुआँ है क्योकि विना धुआँ के अग्नि नही जानी जाती है क्योकि इस पर्वत पर अग्नि है इसलिए धुआ दिखाई दे रहा है यह निश्चय हो जाता है कि जहाँ पर धुआँ होता है वहाँ अग्नि अवश्य ही होती है। जहाँ जानने देखने वाला कोई जीव अवश्य है अजीव नही। विशेष आगे ज्ञानाधिकार मे कहेंगे यहाँ निश्चय नय के अभेद से एक दर्शन और एक ज्ञान है अथवा चित्स्वभाव है॥ २२१॥ ज्ञान का कथन उत्तर में कहेगे। यहाँ पर सम्यक्त्व का अधिकार है।

चेतनात्मको जीव· नविद्यन्ते स्पर्श रस गंध वर्णाः।
भूतार्थेनामूर्तिक व्यवहारे साकार मूर्तिक ॥२२२

निश्चय भूतार्थ द्रव्यार्थक नयकी अपेक्षा से जीव के हलका, भारी, कोमल कठोर स्निग्ध रूक्ष और शीत व उष्ण ये आठ प्रकार के स्पर्शादि नही है खट्टा, मीठा, खारा, कडुआ और कषैला ये पाँच रस नही है। सुगध और दुर्गंध भी नही है। काला, अरुण, पीत, नीला और धवल ये पाँच वर्ण भी नही है इसलिये जीव अमूर्तिक है। क्योकि ये सब रूपी पुद्गल द्रव्यें है अथवा पुद्गल द्रव्य के विशेष गुण है। व्यवहार नय की अथवा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से जीव साकार और मूर्तिक है यह भी असद्भूत व्यवहार की दृष्टि से कहा जाता है। शरीर पुद्गल द्रव्यो से वना हुआ है जब तक इस शरीर के आश्रय जीव है तब जीव का शरीर कहा जाना स्वाभाविक है। जब शरीरो से रहित हो जाता है तब वही आत्मा चेतनात्मक अमूर्तिक पदार्थ है। ससारी अवस्था में तथा चारो गतियों मे रहने वाले जीव है। वे सदेह होने से मूर्तिक कहे जाते है। अथवा व्यवहार नय से सदेह जीव मूर्तिक है।२२२।

ज्ञानावरणादीनां जीवविभाव भावेन च कर्ताः॥
बंधनै बंधन्ति वा तस्माद् व्यवहार नयेनोक्तः ॥२२३॥

जीव अपने विभाव भावो के द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठो (कर्मो का तथा नो कर्म तथा द्रव्य पुद्गल कर्म) पोद्ग-

लिककर्मो का कर्ता व्यवहारनय की अपेक्षा से कहा गया है। तथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश वध के भेद से चार प्रकार का बंध कहा गया है यह भी व्यवहार का आश्रय लेकर कहा गया है। जीव का जो ज्ञान गुण है वह मिथ्यात्व रूप से परिणमन कर रहा है यह जीव का मिथ्यात्व तथा ज्ञान का असंयम कपाय व नव नो कषाय रूप से परिणमन होना यह असयम है। तथा परिणामो में सक्लिष्टता का होना। वह संक्लिष्टता तीव्र मध्यम या जघन्यता को लिये ज्ञान का होना (भाव का होना) वे भाव पर सयोगी है जिन भावों से पंच स्थावर काय एक त्रस कायक जोवों को विराधना तथा पाँच इन्द्रिय तथा मन की होने वालो कुत्सित क्रियाओं को न रोकने रूप असयम है तथा कषाय और योगों के द्वारा पोद्गलिक द्रव्य कर्म वर्गणायें आती है वे आत्म प्रदेशों में एक मेक होकर मिल जाती हैं, तथा आठ कर्म रूप से बंट जाती है। आठ विभागो में बँट जाती है, यह प्रकृति बध है तथा उन कर्मो की फल देने के काल की मर्यादा का वध होना यह अनुभाग बध कर्मो के फल देनें की शक्ति का काल आवे उसको अनुभाग बंध कहते है तथा जितने द्रव्य कर्म वर्गणाये और वर्गो के समय प्रवद्ध आस्रव हुआ है उनका आत्म प्रदेशों में सम्बन्ध का होना परस्पर में मिलकर एक रूप हो जाना यह प्रदेश बंध है इन चारो ही प्रकार के वध के कारण जीव के शुभ तथा अशुभ सक्लिष्ट परिणामों का जीव कर्ता है तब यह जीव उन कर्मो का कर्ता व्यवहार नय की दृष्टि से कहा जाता है। निश्चय नय की अपेक्षा से जो पोद्गलिक वर्ग वर्गणायें परस्पर में वंध को प्राप्त होती है वे अपने गुण व पर्यायों को नही छोडती हैं जीव अपने चैतन्य भाव में स्थित है वह अपने भावों का कर्ता है न पुद्गल कर्मो का कर्ता। यह निश्चय नय से हुआ कि शुद्ध नय से अपने भावों का कर्ता है। पर द्रव्य का कर्तापना अशुद्ध नय से कहा गया है। निश्चय नय से न कोई ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म है न मोहनीय कर्म है न अन्तराय कर्म है। आत्मा अपने चित्त स्वभाव का कर्ता है और भोगता है।

असंख्यात्प्रदेशजीवेषु संकोच विस्तार- गुणैर्युक्तैश्च ।
समुद्घाते काले लोकेव स्वदेहं प्रमाणं जिनोक्तः ॥ २२४॥

जीवों में असख्यात प्रदेश वाले लोक के बराबर प्रदेश होते है। परन्तु संकोच विस्तार गुण वाले होने के कारण जहाँ जिस पर्याय में जाते है वहाँ उस ही पर्याय के अनुकूल छोटे से छोटे सूक्ष्म निगोदिया के शरीर जो घनांगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण सूक्ष्म अवगाहना को लेकर उत्पन्न होते है और वे अनन्त जीव उस शरीर में ही समा जाते है। यह सकोच गुण है कि जिससे सूक्ष्म निगोदिया शरीर में रहने लग जाते है। जब ये जीव महामत्स्य के शरीर को प्राप्त होते है उस महामत्स्य को अवगाहना एक हजार योजन लम्बे और पांच सौ योजन मोटे ऐसे स्थूल शरीर में भी निवास करते है तब विस्तार गुण के कारण से ही उस शरीर के प्रमाण जीवो के आत्म प्रदेशो का विस्तार करते है वे महामत्स्य के सर्व शरीर मे भी निवास करते है। जब केवल ज्ञानी मुनियों की आयु कर्म की स्थिति कम रह जाती है और वेदनीय नाम गोत्र इन तोनो आघातियाँ कर्मो को स्थिति अधिक रह जाती है तब उन कर्मो की स्थिति काडक घात करने के लिये समुद्घात होता है। प्रथमतः मूल शरीर को न छोड़ते हुए आत्म प्रदेशो का शरीर से वाहर निकलना और प्रथम समय मे दण्डाकार चौदह राजू लम्बा होता

है दूसरे समय में कपाट रूप तीसरे समय में लोक प्रतर चौथे समय में लोक पूर्ण करना। लोक पूर्ण मे कोई लोकाकाश का प्रदेश शेष नही रह जाता कि जहाँ पर आत्म प्रदेश न पहुचे हो इस प्रकार समुद्घात अवस्था मे लोक के बराबर विस्तार वाला है। जब शकोच को करता तब प्रथम समय में लोक पूर्ण से लोक प्रतर दूसरे समय में लोक प्रतर से कपाट रूप होता है। तीसरे श्मय में कपाट ये दण्डाकार होकर मूल शरीर में पहुच जाता है इस प्रकार छह समय की केवली समुद्घात कहा है। समुद्घात के सात भेद होते है वेदना समुद्घात, मरणान्तिक समुद्धात, कषाय समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक और केवल समुद्घात ये जीव सकोच विस्तार के कारण स्वदेह प्रमाण है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का प्रवचन है।

पौद्गलिक कर्माणां च विपाके फलं मुक्त: व्यवहारे।
कर्ता भोक्ताश्चात्मा मा भूतार्थे सुद्धनयेन्: ॥२२५॥

यह जीव व्यवहार नय की अपेक्षा व पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से तो यह जीव कर्मो के उदय का फल भोगता है पूर्व में बांधे हुए कर्म अपना फल देखकर खिरते रहते है उनका फल शुभ अशुभ दो प्रकार का जीव भोगता है। कर्म जब अशुभ रूप में होकर उदय में आते है तब ससारी जीव के शरीर में वेदना तथा रोग होना व पुत्र का वियोग धन हानि मान हानि व चोट का लगना फोडा होना, तथा प्राणघात का होना इत्यादि सब अशुभ कर्म का फल है। नरक गति में जाना तिर्यञ्च गति का पाना वहाँ पर हजारों प्रकार असख्यात व सख्यात वर्षो तक दुःखो का अनुभव होना ये सब अशुभ कर्मो का फल भोगता है। तथा शुभ कर्म जब उदय में आते है तब निरोग शरीर का होना तथा राजा होना धनवान बनना योग्य स्त्री पुत्र माता पिता का मिलना सर्वत्र आदर का होना। भाई मित्र परिजनों का अपने योग्य मिलना व सदाचारी धर्मात्मा जनों का मिलना व धर्म के साधनो का मिलना। देवगति की प्राप्ति होना उच्च पद इन्द्रादिक का मिलना तथा त्रियंच व नरक गति से निकल कर आर्य क्षेत्र में उत्पन्न होना ये सब शुभ कर्म व पुण्य कर्म के उदय मे आने पर ही जीवो को मिलते है। तथा पुण्य कर्म के उदय में ही जीवो को भोग और उपभोग की योग्य वस्तुओ की प्राप्ति होती है व वैर को छोड़ कर मित्रता का करना जहाँ जावे वही के लोग आदर सत्कार करने लग जावे यह सब शुभ कर्म का ही फल समझना चाहिये। इस प्रकार जीव ससारी अवस्था में दोनो प्रकार के कर्म के फल को भोगता रहता है। परन्तु निश्चय नय की दृष्टि से जीव कर्म का फल भोगने वाला नही। वह अपने शुद्ध भावो के फल का भोगने वाला है न जीव शुभाशुभ कर्मो का कर्ता ही होता है क्योकि कर्म है वे आत्मा की स्वजाति के नही है इस प्रकार व्यवहार नय और निश्चय नय से आत्मा भोगने वाला कहा गया है। जब सब कर्म रहित अवस्था को प्राप्त हो जाता है उस काल मे आत्मा को अपने शुद्ध भाव का फल भोगना ही होता है। क्योकि शुभ भाव और अशुभ भाव ये दोनो चेतन और अचेतन पुद्गल द्रव्य के सयोग सम्बन्ध से प्राप्त होते है। परन्तु उस शुद्ध अवस्थामें पर चेतन अचेतन पदार्थ का संयोग संबन्ध का अभाव ही है।२२५।

कुल योनि मार्गणा गुण समास स्थानेषु विभक्तजीवा:।
ते सर्वे संसारिण: ज्ञातव्याश्च जिनोपदिष्टे: ॥२२६॥

कुल १९९½ लाख कुल कोटि तथा चौरासीलाख योनि चौदह मार्गणा, चौदह

गुणस्थान ,चौदह जीव समास में जीव बँटे हुए हैं, वे सब संसारी जीव जानना चाहिये ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने उपदेश दिया है।

विशेष—पृथ्वीकाय जीवो की २२ लक्ष कुल कोटी है, जल कायक जीवों की सात लाख कुल कोटी है अग्निकाय जीवो की ३ तीन लाख कुल कोटी है। वायुकाय जीवों की सात लाख कुल कोटी हैं। वनस्पति कायक के २८ लाख कुल कोटी है, दो इन्द्रिय जीवों के सातलाख कुल कोटि कही है। तीन इन्द्रिय जीवों के ८ लाख करोड़ कुल है, चार इन्द्रिय के ९ लाख कोटि कुल है, जलचर जीवों के १२ लाख कोटि कुल है, सीसंप के ९ लाख कोटि कुल है। दश करोड़ लाख अन्य थल चर जीव है, नभ चर जीवों की १२ लाख कोटि कुल तथा २२ लाख करोड़ कुल नारकी जीवो के है, २६ लाख कुल कोटि देवो के है, चौदह लाख कोटिकुल मनुष्यो के है। गोमट्टसार जीव काड मे १२ लाख करोड़ कुल कोटि मनुष्य के कहे गये है। योनियाँ नो प्रकार की है शीत योनि, उष्ण योनि, सचित्त योनि, अचित्त योनि, सवृत योनि, विवृत योनि, मिश्र योनि तीन प्रकार की होती है। शीत, उष्णसव्रत, विव्रत, सचित्त, अचित्त ये तीन मिश्र। तथा नित्यनिगोद, इतर निगोद, पृथ्वी, जल, तेज, वायु इनकी प्रत्येक की सात सात लाख योनि तथा बनस्पति काय की १० लाख, दो इन्द्रिय, तीन, चार, इन्द्रिय जीवो की दो-दो लाख तथा देव नारकी पंचेन्द्रिय त्रियंच इनकी चार चार लाख योनियाँ होती है। तथा मनुष्यो की चौदह लाख योनि स्थान है। जन्म स्थान को योनि कहते है, विविक्त स्थान या रहने के स्थान के सम्बन्ध को कुल कहते है। मार्गणाये चौदह होती हैं।

गति देव, नरक, तिर्यच तथा मनुष्यगति के भेद, चार प्रकार की हैं। इन्द्रिय पांच होती हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, कर्ण, चक्षु ये है। काय छह है—पृथ्वी,- जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, और त्रस के भेद से कही है। योग पद्रह है सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग, सत्य बचन योग, असत्य वचनयोग उभय वचन योग, अनुभय वचन योग, औदारिक काय योग, औदारिक औदारिक मिश्र, वैक्रियक वैक्रियक मिश्र, आहारक आहारक मिश्र काय योग, और कर्माण योग। वेद स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद के भेद से वेद तीन प्रकार के होते है। कषाये पच्चीस होती है अनतानुवंधी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, सज्वलन ये चार इन चारों मे प्रत्येक-प्रत्येक के क्रोध मान, माया, लोभ, चार-चार भेद होने से सोलह भेद हो जाते हैं। नव नोकषाये है, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, पुरुष, और नपुंसक वेद कुल पंचविंशति कषाये होती है। ज्ञानमार्गणा, कुमति, कुश्रुति, विभगावधि, मति, श्रुतावधि, मन.पर्यय और केवल ज्ञान मार्गणा ये आठ भेद है। संयम मार्गणा के मुख्य में पाच भेद है विवक्षा के अनुसार सात भी होते हैं। जैसे सामायिक संयम, छेदोपस्थापन संयम, परिहार विशुद्धि संयम, सूक्ष्मसांपराय सयम, यथाख्यात सयम, ये पाँच तथा सयमासंयम असंयम। दर्शन मार्गणा के चार भेद है, चक्षु-दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन, केवलदर्शन। लेश्याये छह होती है कृष्ण लेश्या, नील, कापोत, तथा पीत लेश्या पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या। भव्य मार्गणा दूसरी अभव्य मार्गणा। सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद है सासादन, सम्यक्त्व मिश्र, सम्यक्त्व मिथ्यायत्व उपसम सम्यक्त्व, वेदक

सम्यक्त्व, क्षायकसम्यक्त्व। संज्ञी मार्गणा दो प्रकार की है एक सैनी जीव दूसरे असैनी, आहारक मार्गणा के भी दो भेद है एक आहारक दूसरी अनाहारक जिनमें जीव खोजे जाते हैं उनको मार्गणा कहते है जिन मे जीव निमग्न रहते है।

गुणस्थान चौदह होते है मिथ्यात्व गुण स्थान, सासादन, मिश्रगुणस्थान, असंयत सम्यक्त्व गुण स्थान, देश सयत, प्रमत्त सयत, अप्रमत्त सयत गुणस्थान अपूर्वकरण गुणस्थान, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म सापराय, उपशान्तमोह, क्षीण मोह, सयोगकेवली, अयोगकेवली के भेद से जानना चाहिये। जीव समास के भी चौदह भेद होते है—एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और स्थूल (वादर) वे दोनो पर्याप्तक और अपर्याप्तक दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, ये पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से ६ तथा पचेन्द्रिय जीव सेनी और असेनी पंचेन्द्रिय दोनो प्रकार के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के मिलाने पर चौदह भेद हो जाते है। इन सब से रहित सिद्ध परमात्मा है।

विशेष—यहा जीवो के निवास स्थानो का अथवा जहां जीव पाये जाते है उनका सक्षेप यह है कि योनियां व कुलकोटि जिस प्रकार जीवो के जन्मस्थान व जन्म लेने के स्थान है उन स्थानो के नाम को सक्षेप से योनि कहते है कुल कोटि जिन पुद्गलो को ग्रहण कर स्थित होता है उसको कुल कहते है। जहा जिस गति आदिक मे जीव मगन हो रहे है उनको खोजा जाता है उसको मार्गणा कहते हैं। गति नाम कर्म के उदय होने पर जिस जाति व पर्याय के योग्य शरीर धारण करे उसको गति मार्गणा कहते हैं। देवगति, नरक गति, त्रियचगति और मनुष्य गति। इन्द्रिय मार्गणा-जब इन्द्रिय नाम कर्म के उदय के अनुसार इन्द्रियो की रचना हो और इन्द्रिय को मति ज्ञानावरणका क्षयोपशम प्राप्त हो, पुद्गल इन्द्रियरूप परिणमन करे और अपने-अपने विपय व कार्यों के करने मे कुशल हो जावे। जिनसे जीवो की पहचान होती है उनको इन्द्रिय कहते है वे इन्द्रियाँ पाँच होती है। जिसके द्वारा जीव रस का आस्वादन करे वह रसना इन्द्रिय है, जिससे वर्ण का ग्रहण किया जावे वह चक्षु इन्द्रिय है। जिससे आठ प्रकार के स्पर्शों का ज्ञान किया जावे या आस्वादन किया जावे वह स्पर्श इन्द्रिय है। जिसके द्वारा दो प्रकार के गधो का ज्ञान किया जावे वह घ्राण इन्द्रिय है। जिस इन्द्रिय की सहायता से सात प्रकार के स्वरो का आस्वादन किया जावे वह कर्ण इन्द्रिय है। काय मार्गणा-काय छह प्रकार की हैं जिस पर्याय के अनुसार जीव के शरीर की रचना होती है उसको काय कहते हैं। जिन जीवो के स्थावर नाम कर्म का उदय होता है उनको स्थावर कहते है उन स्थावरो के योग्य जीव को शरीर की प्राप्ति होती है वे स्थावर है, वे स्थावर काय पाच प्रकार के होते है, पृथ्वी जल अग्नि वायु और बनस्पति काय जिनके त्रस नाम कर्म का उदय होता है उनको त्रस काय कहते है।

विशेष—जिनका शरीर पृथ्वी है वे पृथ्वीकाय। जिनका शरीर जल है वे जल कायक, जिनका शरीर अग्नि है उनको अग्नि कायक कहते है, जिनका शरीर वायु है उनको वायु कायक, जिनका शरीर वनस्पति है उसको वनस्पति काय कहते है। जिनका शरीर स्थूल है जो चलते फिरते खाते पीते है दो इन्द्रिय तीन, चार, पाँच, इन्द्रिय अनेक प्रकार के आकार विकार को लिये हुए शरीर को धारण करते है उनको त्रस काय कहते हैं।

योग—जिन बाह्य और अभ्यन्तर कारणों के मिलने पर आत्म प्रदेशों में परिस्पन्द होता है उनको योग कहते है, वे योग मन वचन काय के भेद से पद्रह प्रकार के होते है। चार मन के, चार वचन के, सात काय के। वेद—जो स्त्री रूप वेदन करे उसको स्त्री वेद कहते हैं, जो पुरुष रूप वेदन करे उसको पुरुष वेद कहते हैं जो न स्त्री वेद न पुरुष रूप ही वेदन करे उन दोनो से भिन्न रूप वेदन करे उसको नपुंसक वेद कहते है। कषाय मार्गणा जो आत्मा को तथा आत्मा के गुणों को कसे पीड़ा देवे बाधा पहुचावे स्वभाव में व शरीर में वक्रता उत्पन्न करती है उनको कषाय कहते है। तथा आत्मिक गुणो का घात करें उनको कषाय कहते है, वे कषाय पच्चीस कह आये है। जैसे अनतानुवधी क्रोध मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान, क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्जलन, क्रोध, मान, माया, लोभ। नवनों कषाये। जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण का आवरण करता है प्रकट नही होने देता है तथा विघ्न डालता है उसको ज्ञानावरण कर्म कहते है उस कर्म के क्षयोपशम प्राप्त होता है वैसा ही यह जीव पदार्थो के स्वरूप को जानता है। तथा क्षय होने पर जानता है। यह ज्ञान मार्गणा है। उसके भी दो भेद है जो मिथ्यात्व सहित ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होता है उसको कुज्ञान कहते है। जिसका सम्यक्त्व के साथ क्षयोपशम या क्षय होता है उसको सम्यग्ज्ञान कहते है। मिथ्यात्व से युक्त जीव के कुमति, कुश्रत, विभगावधि ये तीन और सम्यक्त्व के साथ होते है वे मति श्रुत, अवधि, मनः पर्यय, क्षायक, केवल ज्ञान ये ज्ञान मार्गणा के भेद है।

संयम के सात भेद है असयम, सयमासंयम-जिसमे त्रस जीवों की विराधना नही होती है उसको सयमासंयम कहते है जिनमे छह काय तथा पचेन्द्रिय और छठा मनका सयम पाया जाता है ऐसे संयम, सामायिक क्षेदोपस्थापना इत्यादि पहले कहे समान ही है। (दर्शन) कषायों के उदय मेंजीव स्व, पर के प्राणो के विराधनारूप परिणाम होते थे वे ही असयम कहे गये है, जब जीव के अनतानुबधी कषाय का उदय रहता है तब तक कोई भी प्रकार का संयम नही होता है। जब जीव के अप्रत्याख्यान कषाय का उदय होता है तब देश सयम नही होता है। जब जीव के प्रत्याख्यान कषाय का उदय रहता है तब सकल संयम नही होता है। जब जीव के संज्वलन कषाय का उदय होता है तब जीव के सामायिक संयम तथा छेदोपस्थापन व परिहार विशुद्धि संयम होता है। जब संज्वलन की लोभ कषाय सूक्ष्म रह जाती है। तब सूक्ष्म सांपराय सयम होता है जब सूक्ष्म लोभ कषाय का क्षय या उपशम हो जाता है तब यथाख्यात चारित्र जीव के होता है यह संयम मार्गणा है। दर्शन मार्गणा-जों आत्मा के दर्शन गुण को घाते आवर्णित करे अथवा प्रकट न होने देवे उसको दर्शनावरण कर्म कहते है। जब जीव के आवरण का क्षयोपशम होता है तब चक्षुदर्शन अचक्षु दर्शन तथा अवधि दर्शन केवल दर्शन केवल दर्शनावरण कर्म क्षय होने पर होता है वह केवल दर्शन गुण प्रकट होता है।

लेश्याये छह होती है कषाय अनुरंजित परिणामों को लेश्या कहते है। जो अनंतानुबंधी कषाय के उदय में आने पर जीव के जो सक्लिष्ट परिणाम होते है। जो अपने क्रोध कषाय को न छोड़ने वाला क्रूर परिणामो का करने वाला दया क्षमा रहित हो तथा हिसा भाव व

दूसरों को नष्ट करनेवाला व समूल नष्ट करने के भाववाला भाव होता है उसको कृष्ण लेश्या कहते है। जो कार्य करने मे मन्द हो तथा स्वच्छन्द विचरण करने वाला वर्तमान कार्य करने मे विवेक रहित हो स्पर्शनादि पांच इन्द्रियो के विषयो मे लम्पट होता है तथा जो मान व माया कषाय वाला हो आलसी हो दूसरे लोग जिसके अभिप्राय को न जान सके तथा अत्यन्त निद्रालू हो। धन धान्य की तीव्र लालसा रखने वाला होता है तथा बैर विरोध करने के परिणाम होते है उसको नील लेश्या कहते हैं। दूसरो पर क्रोध करना दूसरो की निन्दा करना अनेक प्रकार से दूसरे जीवो को दुःख देना। या बाधना अधिकतर शोकाकुल करना भय करना दूसरो की बढ़ती को देख कर सहन नही करना। अपनी प्रशसा करना दूसरो का तिरस्कार करना इत्यादि भावो के होने को कापोत लेश्या कहते है। पीत लेश्या कषायो की मदता हो कार्य अकार्य को समझनेवाला होता है हिताहित के बिवेक से मुक्त होता है सबके विषयमे समदर्शी तथा दया और दान मे तत्पर रहता है ऐसे परिणामवाला जीव पीत लेश्यावाला होता है।

पद्मलेश्या—कषायो की मदता का होना तथा परोपकार की भावना का होना अपने अवगुणो को देखकर छोड़ने वाला होना तथा गुणीजनो की सेवा करना व धार्मिक कार्यों मे आगे रहना कप्ट रूप तथा अनिप्ट रूप उपद्रवो को सहन करते हुए वैर द्वेष नही बाधने वाला ऐसे परिणाम को पद्म लेश्या कहते है। शुक्ल लेश्या-पक्षपात को न करना निदान को न बाँधना सब जीवो में समता भाव रखना इष्ट में राग अनिष्ट से द्वेष नही करना सरल परिणामी होना ये शुक्ल लेश्या के परिणाम है। जिनके आत्मा में सम्यक्त्व प्राप्त करने की शक्ति है उसको भव्य कहते है जिस आत्मा में सम्यक्त्व प्राप्त करने की योग्यता नही है उनको अभव्य कहते है। सम्यक्त्व के मार्गणा-सम्यक्त्व के छह भेद है जो दर्शन मोह के उदय मे जीव के भाव अतत्व मे रूचि यथार्थ तत्वो मे अरुचि का होना व जिसके उदय मे रहते हुए जीव के समीचीन धर्म मे रूचि उत्पन्न नही होती है तथा जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट पदार्थों मे रुचि नही होती। तथा मिथ्या दृष्टि के द्वारा कहे गये न कहे गये कुतत्वो पर श्रद्धान का होना सो मिथ्यात्व है। मिश्र सम्यक्त्व जिसके परिणाम न मिथ्यात्व रूप होते है न सम्यक्त्व रूप ही होते है। वह समीचीन धर्म को भी स्वीकार करता है और असमीचीन पर भी विश्वास करता है ऐसे परिणाम जैसे दही गुड मिश्रित, न मीठा ही है, न खट्टा ही है। ऐसे परिणामों का होना ही मिश्र गुणस्थान है। उपशम जब मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्व प्रकृति अनतानुबधी कषायें दब जाती है तब जीव के उपशम सम्यक्त्व होता है। उस उपशम का काल बीतने पर कोई कषाय का उदय आजाता है तब जीव सम्यक्त्व रूपी रत्नागिरी से गिरता है और मिथ्यात्व कर्म का उदय नही आता है तब तक जीव सासादन सम्यग्दृष्टि होता है। जब मिथ्यात्व का उदय प्राप्त हो जाता है तब वह भी मिथ्यादृष्टि हो जाता है। पूर्व में कही गई सात प्रकृतियो का क्षय होने पर क्षायक सम्यक्त्व होता है। देश घातिया सम्यक्प्रकृति के उदय होने पर तथा कषाय और मिथ्यात्व सम्यक्त्वमिथ्यात्व के उदयाभावी क्षय होना तथा सदवस्थारूप उपशम का होना ये सब कार्य होने पर वेदक सम्यक्त्व होता है। सज्ञी मार्गणा—जिन जीवो में हेय उपादेय की विचार

करने की शक्ति होती है उनको समनस्क तथा जिन के यह शक्ति नहीं है उनको असैनी कहते है। आहारक-जिन जीवों ने अपने तीन शरीर व छह पर्याप्तियों के योग पुद्गल नो कर्मो का ग्रहण कर लिया है वे आहारक इससे विपरीत अनाहारक होते है। अनाहारक संसारी जीव जब एक शरीर को त्यागकर नवीन शरीर को धारण करने को गमन करता है जब तक वह अपने जन्म स्थान को प्राप्त नही हुआ है तब तक उसको अनाहारक कहते है वह अनाहारक जीव एक समय दो समय या तोन समय रहता है चोथे के पहले ही आहारक बन जाता है। सिद्ध-भगवान हमेशा ही अनाहारक है। गुण स्थान चोदह है ये गुणस्थान जोवों के परिणामों के अनु-सार ही हुआ करते है। वे पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तो दर्शन मोह के उदय या उप-शम क्षयोपशम या क्षय होने पर होते है। आगे के पांच वैसे बारहवे तक चरित्र मोह के उदय मे रहने पर तथा उपशम क्षय या क्षयोपशम होने पर होते है, तेरहवां गुणस्थान योगो से होता है चौदहवा गुण स्थान योगो के अभावस्वरूप मे होता है। मिथ्यात्व गुणस्थान इस गुण स्थान वाले जीव को जिन वचन कदापि रूचिकर नही होते व सच्चे परमार्थ रूप धर्म व देव शास्त्र, गुरुओं पर विश्वास व श्रद्धान नही होता है। वह गृहोत, अग्रहीत मिथ्यात्व रूप ही भाव करता है। जिस प्रकार कोई अज्ञ मनुष्य पटना जाने को उत्सुक हुआ और चलकर चौराहे पर पहुच गया वहा उसने एक व्यक्ति से पूछा कि पटना का मार्ग कौन-सा है तब उसने कहा कि सूर्य उदय में आ रहा है उसी तरफ का रास्ता पटना जावेगा। इतना सुनकर भी उसको सतोष नही हुआ तव अन्य व्यक्ति से पूछा तो वह स्वय नही जानता था तब वह बोला कि ये लोग आ रहे है यही तो रास्ता है यह सुनकर उस कुमार्ग से चला पर पाटलिपुत्र को नही प्राप्त हुआ। यह मिथ्यात्व गुण स्थान है। सासादन गुणस्थान सम्यक्त्व से गिरने की अपेक्षा से है। तीसरा गुणस्थान सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोनों के मिश्र परिणामों की अपेक्षा है। चौथा गुणस्थान सम्यक्त्व की अपेक्षा है इसमें चारित्र मोह की प्रथम चौकड़ी तथा मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्व सम्यक्त्वप्रकृति इनके उपशम या क्षयोपशम या क्षय होने पर होता है। देश सयम यह अप्रत्याख्यान चौकडी के उदय के अभाव में होता है। यह जीव त्रसकाय की विराधना से विरक्त है परन्तु स्थावर काय की विराधना करता है इसलिये विरताविरत कहते है। छठवा प्रमत्त जिसके सयम में प्रसाद से दोष उत्पन्न होता है यह गुणस्थान सज्वलन कषाय व नव नोकषायो के उदय में रहते हुए होता है। तथा अप्रमत्त गुणस्थान इन कषायो की मदता में होता है। अपूर्वकरण मे इन तेरह कषायों की मदता होने पर जीव के अपूर्व भाव एक समय से दूसरे समय में श्रेणीचढ़ने वाले के नही मिलते है उनको अपूर्व कहते है इसलिये इसका नाम अपूर्वकरण कहते है। अनिवृत्तकरण इस गुणस्थान में कषाय व नोकषाये एक दम मंद होती है परिणामों में अत्यन्त विशुद्धता होती है प्रथम दूसरे समय वालो के परिणाम प्रायः समान ही होते है। जिसमें एक लोभ कषाय ही रह जाता है वह सूक्ष्म होता है उसको सूक्ष्म सापराय कहते है। जहां पर चारित्र मोह व दर्शन मोह का उपशम करता है अथवा दबा देता है उसको उपशॉत मोह कहते है जिन में मोह कर्म की २८ प्रकृतियां क्षय होने पर जो गुण स्थान होता है उसको क्षीण मोह गुण स्थान कहते है यहाँ तक के जीव सब ही छदमस्थ कहे जाते

है। चौथे में जघन्य अन्तर आत्मा पांचव से दशवे तक मध्यम अंतरात्मा, ग्यारहवें तथा बारहवे में उत्तम अन्तर आत्मा होता है। घातिया कर्मो की ४७ तथा तीन आयु शेष १३ नाम कर्म की प्रकृतियो के क्षय होने पर जो गुणस्थान होता है वह सयोगी गुण स्थान कहलाता है। जो गुण स्थान योगो के अभाव में होता है उसको अयोगी गुणस्थान कहते है। सयोग अयोग केवली के क्षायक सम्यक्त्व क्षायक यथाख्यात चरित्र क्षायक, अनत ज्ञान क्षायक, अनंत दर्शन, अनत दान लाभ, अनत भोग, अनत उपयोग, अनतवीर्य और अनत सुख, ये गुण आत्मा में प्रकट होते है। इन गुण स्थानो से अतीत सिद्ध भगवान है।

पाच प्रकार के स्थावर काय एकेन्द्रिय जीव है वे दो प्रकार के होते है एक तो सूक्ष्म दूसरे वादर। सूक्ष्म वे जीव हैं जो हमारी चरम चक्षुओ से नही देखे जा सकते है, वे किसी जीव को बाधा नही देते है, न उनको ही कोई बाधा देता है ऐसे सूक्ष्म जीव है। ऐसे जो प्राणी दूसरो को रोकते है और दूसरो के द्वारा रोके जाते है वे स्थूल देहधारी जीव है। वे दोनो ही प्रकार के जीव पर्याप्त निवृत्तपर्याप्त व लब्धपर्याप्तक के भेद को लिये हुए है। त्रसकाय के विकलेन्द्रिय जितने जीव है वे सब ही वादर होते है वे भी पर्याप्त निवृत्तिपर्याप्त लब्धि पर्याप्त तथा पचेन्द्रिय सेनी असेनी के भेद से भी पर्याप्त निवृत्ति पर्याप्त, लब्धपर्याप्तक के भेदो को लिये हुए है वे सैनो ससारी जीव चौदह जीव समासो में स्थित है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है। २२६॥

आगे अचेतन द्रव्यो को कहते है

अचित्तानिद्रव्याणि पुद्गल धर्माधर्मनभकालानि ॥
रूपीपुद्गलद्रव्यं शेषानि द्रव्याण्यरूपिणम् ॥२२७॥

अचेतन द्रव्य पाच है—वे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये पांच द्रव्य है जिनमें एक पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है तथा रूपि है शेष द्रव्य अरूपि है। ये सब द्रव्य सर्वत्र लोक में देखी जाती हैं तथा इनके निवाश स्थान को लोक कहते है (लोकर्यान्तीतिलोक.) इन द्रव्यों में से पुद्गल द्रव्य के छह भेद है वे इस प्रकार है—

रूपिणस्यषट् भेदानि अतिस्थूल स्थूलं सूक्ष्मसूक्ष्म स्थूलं ॥
स्थूल सूक्ष्मसूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्म जिनोपदिष्टैः ॥२२८॥

रूपि पुद्गल द्रव्य के स्कन्धो के मूल मे छह भेद है वे स्कन्ध, अतिस्थूल, तथा स्थूल सूक्ष्म, सूक्ष्म स्थूल, स्थूल सूक्ष्म, और सूक्ष्मसूक्ष्म इस प्रकार छह भेद होते हैं। अतिस्थूल उन स्कन्धो को कहते है जिसमे असख्यात और अनंत परमाणुओ के समूह हैं पृथ्वी पर्वतादि जिन स्कधो मे असख्यात तथा सख्यात परमाणुओ के समूह को स्थूल स्कध कहते है वेजल तेल रसादि तथा सूक्ष्म स्थूल जिनमें असख्यात परमाणु हो कर पकड़ में न आवे उसको सूक्ष्म स्थूल कहते हैं। अन्धेरा व छाया सूक्ष्म सूक्ष्म जिन मे असख्यात व सख्यात परमाणु के स्कन्ध हैं जो देखने में बड़ा भारी होता है परन्तु पकडने मे आता नही उनको सूक्ष्म स्थूल कहते है। भाषा-वर्गणाये असख्यात वर्गो के समूह रूप वर्गणाओ के समूह को कहते है वे वर्गणाओ के समूह दिखाई नही देते है। तथा द्रव्य कर्म वर्गणायें असंख्यात वर्गो का समूह होने पर भी दिखाई नही देते है। मनोवर्गणाये तथा कर्माण वर्गणाये है। जो एक परमाणु व वर्ग को सूक्ष्म

सूक्ष्म है अविभागी परमाणु है या वर्ग है। इस प्रकार पुद्‌गलो के छह भेदो को कहा।

अब आगे वे कौन कौन से हैं उनको कहते हैं।

अति स्थूल स्थूलं, पृथ्वी पर्वताः स्थूलं पुनः सर्पितैफादि ॥
जलदुग्ध रसादि सूक्ष्मस्थूलं क्षायोद्योते ॥ २२८ ॥
सूक्ष्मं कर्मवर्गणा सूक्ष्म सूक्ष्मं वर्ग परमाण्वखण्डः ॥
सर्व लोके व्यवस्थितां पुद्‌गल द्रव्यं त्रिविधानि ॥ २२९ ॥
शब्दं बधं सूक्ष्मं स्थूलं च संस्थानं तम् छायाश्च ॥
आतपोद्योत शीत भेदानि पुद्‌गलस्य पर्यायम् ॥ २३० ॥

जो बडे-बडे दिखाई देते है, जैसे पर्वत, पृथ्वी, मकान ये सब स्थूल-स्थूल स्कध हैं, जो तेल, घी, दूध, रस, आदिक है, वे सब स्थूल स्कध है। सूक्ष्म स्थूल जैसे हवा यह सर्व शरीर मे टकराती है तथा शीत व गर्मी आदि है, वे सूक्ष्म स्थूल-स्थूल स्कंध है। स्थूल सूक्ष्म छाया, अधकार इत्यादि है वे सब सूक्ष्म स्थूल स्कध है। तथा जो वर्गणायें है तथा वर्गणाओ का द्रव्य कर्म ज्ञानावर्णादि है वे सब सूक्ष्म स्कंध, है इनमें असख्यात और अनत वर्गो का समूह है सूक्ष्म सूक्ष्म जो अविभागी वर्ग या परमाणु अथवा अविभागी परिच्छेद है उसको सूक्ष्म-सूक्ष्म कहते है। सर्व लोक में पुद्‌गल द्रव्य भरे हुए है वे पुद्‌गल द्रव्य है।

जो हमको हमारे चर्म चक्षुओं से दिखाई देते है पृथ्वी पर्वत बादल ये सब स्थूल-स्थूल स्कध है। जो पानी, घी, तेल, रस, इत्यादिक है, वे अपने हाथो मे वा अन्य प्रकार से रोके जा सकते है, इन स्कधो को स्थूल स्कध कहते है। जो चर्म चक्षुओ से देखे जाते है ऐसे स्कध जैसे छाया अधकार शीत उष्ण इत्यादि स्थूल सूक्ष्म स्कंध है, क्यों कि वे देखने मे तो स्थूल है, परन्तु पकडने मे नही आते है। जो स्कध चर्म चक्षुओ से नही जाने जाते है परन्तु स्पर्शन इन्द्रिय के विषय होते या कर्ण इन्द्रिय के विषय होते है, वे स्थूल सूक्ष्म है जैसे हवा शब्द वर्गणाये। मेघों का गर्जना बिजली के तड़तड़ाट की आवाज का होना। जो स्कंध किसी भी इन्द्रिय के विषय न बनें वे स्कध बहुत परमाणुओ से बने हुए होने पर भी नही जाने जाते न देखे जाते है ऐसे द्रव्य कर्म असख्यात अनत वर्गो का समूह व वर्गणायें सारे लोक मे भरी हुई होने पर नही देखने मे आती है उनको सूक्ष्म स्कध कहते है। जो अविभागी पुद्‌गल द्रव्य है वे दो प्रकार के होते है एक वर्ग दूसरा परमाणु दोनो ही सूक्ष्म सूक्ष्म है। ये मनः पर्यय व केवल ज्ञान के विषय गोचर होते हैं, इस प्रकार पुद्‌गल द्रव्य का कथन किया गया है। इतना विशेष है कि पुद्‌गल द्रव्य तीन प्रकार का संख्यात असख्यात और अनत परमाणु वाले स्कध है। ससारी वहिरात्मा इन स्कधों को देख आनदित होता जाता है, पच रस पाच वर्ण दो गध आठ स्पर्श ये सब इस द्रव्य के स्वाभाविक गुण है। इन गुणो को छोड़कर कोई पुद्‌गल द्रव्य नही और पुद्‌गल द्रव्य को छोड़ कर ये नही रह जाते है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का प्रवचन है। शब्द यह सात प्रकार का होता है (अतत विनत घन) पचम धैवत, षटज, वृषभ, गाधार, मध्यम, निपाद ये सात प्रकार के शब्द होते है।

एक-एक परमाणु मे दूसरे-दूसरे द्विगुण परमाणुओं की स्निग्ध और रूक्ष इन दोनों

का मिलकर एक मेल हो जाना यह वंध है। यह वध रूक्ष से चौगुणे स्निग्ध परमाणु हो या स्निग्ध से रूक्ष परमाणु चौगुणे हो तब उनका वध होता यदि इस प्रकार के परमाणु नही मिले तो वध नही होगा। जघन्य गुण वाले परमाणुश्रो का परस्पर मे वध नही होता है। एक यह भी पुद्गल द्रव्य की पर्याय है क्योकि परस्पर मे परमाणुओ का मिलन होकर वध होने पर स्कंध बनता है। स्वभाव से आपस मे वध होना उस स्कध की स्थिति का वध होना उस स्कध का बिखरने की मर्यादा का होना तथा परस्पर में एक समय मे सख्यात परमाणुश्रो का मिलना असंख्यात परमाणुश्रो का मिलना अनत परमाणुश्रो का मिलना यह वध चार भेद वाला है। जो स्कध दिखाई नही देते न पकडने मे ही आते है वे सूक्ष्म है। जो दिखाई भी देते है, और रोके भी जाते है, दूसरो को रोकते है, वे स्थूल है। जो चारो ओर समानता से मिले हो उनको सस्थान कहते है, यह भी पुद्गल द्रव्य की पर्याय है। अधेरा जिसके होते हुए रक्खे हुए पदार्थ दिखाई न देवे। छाया वृक्षादि की परछाई गर्मी सर्दी तथा एक स्कध महास्कध के टुकडे होकर लघु स्कध का होना तथा परमाणुश्रो का भिन्न-भिन्न हो जाना यह भेद नामक पुद्गल द्रव्य की पर्याय है। प्रकाश जहाँ जो वस्तु रक्खी वहा वह देखी जाती वह प्रकाश है यह भी पर्याय पुद्गल द्रव्य की ही पर्याय है। इन पुद्गल द्रव्य की पर्यायो से ही ससारी जीवो का व्यवहार चलता है। ससाररूपी नाटको की यह ही स्टेज है जिस पर ससारी जीव मोह राग कर ससार रूपी नाटक को खेला करते है, राग करते है, अपनी मानते हैं जिसे पाकर हर्ष होता है, मद युक्त होता है, कि जो मेरे पास है, वह किसी के पास नही यह वही पुद्गल द्रव्य है, जो अनेक प्रकार रंग रगीला, रस रसीला गध गधवान रूपी रूपवान स्पर्श-स्पर्शवान दिखाई दे रहे है, यही तो पुद्गल है अन्य नही। अचेतन द्रव्यो मे विकारी विभाव रूप से परिणमन करने वाला पुद्गल द्रव्य है परन्तु धर्म-अधर्म आकाश और काल ये अपने स्वभाव मे ही परिणमन करते है पर भाव मे नही वे विकार रहित है, और अपने स्वभाव मे ही स्थित रहते है। (इस प्रकार अजीव तत्व का) जो सुख दु ख है ये सब पुद्गल द्रव्य है।

जीवाजीवेद्रव्ये स्वभाव विभावेन सयुक्तं च।
स्वभावे माडास्रव वंधरजस किंचित् कथचित्॥२३१॥

जब जीव और अजीव द्रव्य ये दोनो विभाव रूप से परिणमन करती है तब तक आस्रव वध को प्राप्त होती है परन्तु जिस काल में ये द्रव्य अपने-अपने स्वभाव मे परिणमन करती है तब आस्रव और वध का अभाव होता है। (जब विभाव रूप से परिणमन करती है जैसा) तथा कर्म रज का आना व वंध रूप से परिणमन होना बनता ही नही है, वे अपने गुण और पर्यायों मे ही मग्न रह जाती है। जिस समय जीव और पुद्गल ये दोनो द्रव्यें विभाव रूप पर सयोग सम्बन्ध से परिणमन करती है, तब द्रव्यकर्म पुद्गल वर्गणायें आस्रव को प्राप्त होती है, जीव के विभाव, भाव, राग, द्वेष, मोह, माया, क्रोध, मान, माया, लोभ, नव नो कषाय तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, ये पाचो इन्द्रिया तथा इनके विषय असयम मिथ्यात्व अज्ञान ये सब विभाव भाव जीव के है इन ही भावो के द्वारा ही आस्रवक होता है ये ही मुख्य आस्रव के कारण है ये सब द्विद्रव्य सयोगी है इसलिये इनको ही विभाव कहते है इन विभावो से हो

कर्म रूपी रज का आस्रव होता है। परन्तु आस्रव विभाव भाव से ही होता है, स्वभाव भाव में आस्रव का कारण दूसरा कोई द्रव्य नही होने से आस्रव का अभाव कहा गया है, यह परमार्थ परमागम से सिद्ध है। वे कर्मों का आस्रव किंचित् कथचित् भी और नही होता है।

विभावभावे व्यवस्थितोऽहं तत्कर्ता क्रोधाद्यसंयमम्।
भावानाकर्ताऽहं यत्पुद्गलानां माऽऽ स्रवामि ॥२३२॥

मै अपने विभाव भावो के द्वारा उन पोद्गलिक कर्मो का आस्रावक हूं। जो क्रोधादिक कषायें है व असयमादिक भाव है, जिन भावो का मै कर्ता हूं वे भाव ही द्रव्य कर्मो के आस्रव के कारण होने से मै ही आस्रवक हू, जब मै ही विभाव भावों में लवलीन होता हूं, तब यह कहता हू, कि मैने क्रोध किया, मैने मान किया, मैने मायाचारी की, मैंने लोभ किया मैं ही इनका कर्ता हू। मै ही असयम रूप भावों का कर्ता हूं, मेरे भावों से ही असयम रूप भावों की उत्पत्ति हुई है। मै कषाय व राग द्वेष रूप भावो का कर्ता हू, तथा कषाय भाव मेरे ही है इनसे मै भिन्न नही ये मेरे से भिन्न नही। इस प्रकार मै ही अपने भावों के द्वारा जो कार्माण वर्गणाये लोक में सर्वत्र व्याप्त है, वे वर्गणाये मेरे भावो से मेरी तरफ को खचि आती है यही आस्रव है।

अशुभ भावयुक्तानामास्रव वहुविधकर्मवर्गाणाम्।
परिणमन्तिकर्मभावे यत्पुद्गल द्रव्यस्वभावैः ॥२३३॥

अशुभ भावो से युक्त जीवो के बहुत प्रकार के कर्मो का आस्रव होता है। जिन भावों से पुद्गल द्रव्य और वर्गणाये आई है, वे वर्ग और वर्गणाये कर्म भाव रूप से स्वयम् ही परिणमन कर जाती है।

विशेष—जब जीव आर्त रौद्र रूप ध्यान व क्रोधादि कषायो से युक्त होता है, तथा संक्लिष्ट परिणामों वाला होता है तब यह समय प्रवद्ध पुद्गल वर्गणाओ का (ग्रहण करता है) आस्रव करता है, वह आस्रव एक समय मे सिद्ध राशि से अनतवे भाग और अभव्य राशि से अनत गुणे पुद्गल वर्गो का आस्रव करने वाला होता है, असख्यात वर्गणाओ के समूह को स्पर्धक कहते है वे स्पर्धक आठ कर्मो के रूप में स्वयम् ही परिणमन कर जाते हैं ॥२३३॥

मिथ्यात्वाविरते च योगाः कषायानि प्रमादश्च।
सकषाय सांपराय इर्यापथ निष्कषायं पुनः ॥२३४॥

आस्रव के मूल मे पाच कारण है, मिथ्यात्व, अविरति, योग, कषाय, और प्रमाद आस्रव दो प्रकार का है प्रथम सापराय आस्रव दूसरा ईर्यापथास्रव। जिस आस्रव का कारण मिथ्यात्व और असयम कषायें तथा योग प्रमाद ये कारण है, उसको सापरायक के आस्रव कहते है। यह आस्रव प्रथम गुण स्थान से लेकर चौथे के पूर्व में तो मिथ्यात्व सहित होता है पांचवे में स्थावर असयम योग कषाये और प्रमाद रह जाता है। छठवे गुण स्थान में कषाय योग प्रमाद के कारण से आस्रव होता है। सातवे अप्रमत्त गुण स्थान मे योग कषायो के कारणों को पाकर आस्रव होता है। अपूर्वकरण गुणस्थान मे योघ काषायो से आस्रव होता है तथा नो वे अनिवृत्त करण मे। नौवे गुण स्थान के अन्त में सापराय आस्रव समाप्त सरीखा

हो जाता है। क्योंकि वहा तक कषाये रह जाती हैं दशवे गुण स्थान में एक सूक्ष्म लोभ और योग रह जाते है। इसलिये दसवें गुण स्थान में सूक्ष्म सापराय आस्रव होता है। अब आगे चार गुण स्थान बाकी रह जाते हैं। उन गुण स्थानो में मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषायो का तो अत्यन्त अभाव हो जाता है। अब शेष योग रह जाते है, योगो से होने वाला आस्रव ईर्यापथ होता है। वह इस प्रकार का आस्रव होता है कि जिस प्रकार हवा के चलने से धूल उडी और कोरे घडे से टकरा गई और उसके ऊपर पडी और नीचे झड गई, वहा पर उसके ठहरने की सामग्री नही होने से घड़ा जसा का तैसा रहता है। इसी प्रकार जोवो के योगो के द्वारा कर्मो का आस्रव होता रहता है परन्तु कषाय रूप स्निग्ध पना के अभाव होने के कारण उसको रोकने वाला कोई नही तब वे पुद्गल वर्गणायें आती है। और निकली चली जाती है, क्योकि जीव के जो मिथ्यात्व और कषायें थी वे ही तो स्निग्धपना थी, सो उनका तो अभाव हो गया है दसवें गुण स्थान मे। इसलिये आगे के गुण स्थानो मे यथाख्यात चारित्र के धारक मुनियो के कषाय स्निग्ध भाव के अभाव होने के कारण स्थिति बध नही होता है। क्योकि स्थिति बध कषायो के उदय मे ही होता है इसलिये उपशात-मोह, क्षीणमोह और सयोग केवली इन गुण स्थानो मे योगों के कारण से आस्रव होता है वह ईर्यापथ आस्रव है। चौदहवे गुण स्थान मे योगो का भी अभाव हो जाने से वहां वह ईर्यापथ आस्रव भी नही रह जाता है। मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर नौवे गुण स्थान तक तो स्थूल सापराय आस्रव होता है दशवें में सूक्ष्म सापराय आस्रव होता है। आगे के गुण स्थानों मे ईर्यापथ आस्रव होता है ॥२३४॥

वहुवारम्भ ग्रन्थयुक्ताना मास्रव नारकायुषैव।
मायात्रियग्गतेः सकषाय संक्लिष्टैर्भावैः ।२३५॥

मिथ्यात्व भाव तथा कषायो से संयुक्त बहुत प्रकार के आरम्भो मे तथा परिग्रह मे आसक्त संक्लिष्ट परिणाम वाला जीव ही नरक गति का आस्रवक होता है। तथा मिथ्यात्व और मायाचारी करने वाला सक्लिष्ट परिणाम वाला जीव त्रियच गति का व त्रियच आयु का आस्रव करने वाला होता है। इन दोनो प्रकार के आस्रवो में जीव के तीव्र सक्लिप्ट परिणाम ही है। जीव जब परिग्रह में आसक्त होता हुआ तथा परिग्रह सग्रह करने की भावना से बहुत आरम्भ करता है, वह उस परिग्रह की प्राप्ति के लिये एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय प्राणियो की विराधना रूप आरम्भ करता है जिसमे लोभ कषाय का तीव्र उदय होता है जिससे नरक गति और आयु का आस्रव करता है छल कपट मायाचारी जीव अपनी कीर्ति की इच्छा से या लोभ और परिग्रह की इच्छा से तथा मिथ्यात्व और माया कषाय के उदय में आने पर जीव त्रियच गति और आयु का आस्रव और बध करता है। इस गति का आस्रवक भी मध्यम सक्लिष्ट परिणामी जीव करता है ॥२३५॥

ये कुर्वन्त्यिवर्णवादभृष्ट साधनोपकरणानां वा।
दर्शनमोहास्रवैव ज्ञानाश्रव मिच्छन्ति नित्यम् ॥२३६॥

जो प्राणी देवो व धर्म और गुरुओ का अवर्णवाद करते है, कि केवली भी कवलाहार करते है तथा देव अरहत भगवान भी औषधी का प्रयोग करते है, व डगे भर कर चलते है, औ

देव है वे भी वलियां चाहते है। तथा स्वर्ग के देव है वे भी कवलाहार करते है। तथा धर्म का अवर्णवाद कि शास्त्रों में लिखा है कि वेद यज्ञ में पशुओं की आहुति देने से धर्म होना है देवताओ को नरवलि व पशुवलि देने पर धर्म होता है कुआं वावडी व तालाव खुदवाने में धर्म होता है व धर्म के निमित्त पशुवलि करने में कोई दोष नही, वे जीव तो धर्म के निमित्त से मरकर स्वर्ग को प्राप्त होते है। नदी समुद्र तालाव आदि मे धर्म मान स्नान करना व बालू का ढेर लगाने व दान देने मे धर्म होता है यह धर्म अवर्णवाद है। इनको करने पर दर्शन मोह का तीव्र आस्रव होता है। तथा सब कर्मों का आस्रव होता है।

विशेष--अरहत भगवान के दर्शन मोह व चरित्र मोह का क्षय हो गया है तथा ज्ञानावरण दरसनावरण अत राय कर्म का भी क्षय होता है। जो कि आहार सज्ञा का कारण था, उस कारण के अभाव होने से कार्य का भी अभाव हुआ, तव भूख कैसे लग सकती है। यदि भूख लगी तो अनत सुख और अनंत वीर्य का होने का क्या सार और भगवान के क्षुधादि अठारह दोष नही है ? जव भगवान के क्षपोपशम ज्ञान का अभाव हो गया और केवल ज्ञान हो गया जिससे उनके ज्ञान में सम्पूर्ण वस्तुये प्रति समय में शुद्ध और अशुद्ध सभी दिखाई देती ही है। तव अपवित्र पदार्थ को ग्रहण कैसे कर सकते है। जव कि एक क्षयोपशम ज्ञान के धारी मुनिराज होते है वे भी आहार के समय पर अवधि ज्ञान का प्रयोग नही करते है, क्योंकि श्रावक के घर पर अनेक प्रकार की गलतिया हो जाया करती है, वे उनके ज्ञान में दिखाई दे जाती है, पचसून होते है तव आहार कैसे कर सकते है ? परन्तु केवली भगवान के तो सकल प्रत्यक्ष दिखाई देते है। जो स्वर्गवासी देव देविया होती है, वे भी कवलाहार नही करती है। क्योंकि उनके तो इच्छाहार है जिस समय उनके भूख की सुध होती है उसी समय उनके कण्ठ से अमृत झरता है और भूख की तृप्ति हो जाती है। उनको मासाहारी कहना यह देवावर्णवाद है और दर्शन मोह के आस्रव का कारण है।

ज्ञानोपार्जन के साधनों का विनाश करना पुस्तको को फाड कर फेंक देना व पढ़ने से रोक देना व कोई पढ रहा हो वहा पर हल्ला करने लगना, शोर मचाना, व शास्त्रादिक में विघ्न डालना, पाठशाला आदि की द्रव्य को नष्ट कर देना व द्रव्य को खा जाना व पुस्तकों को नही देने देना व अन्य प्रकार से विघ्न उत्पन्न करना, ईर्षा करना इससे ज्ञानावर्ण कर्म का आस्रव होता है कषायों की तीव्रता से ही चरित्र मोह का आस्रव होता है। इन सब प्रकार के कारण मूल में अपने अशुभ भाव ही है अन्य कोई नही ॥२३६॥

चारित्र मोहक आस्रव के कारण

तीव्रकषायोदये बहिष्कारोऽपमाने चानन्दाः।
स प्रमादेन युक्ताः चारित्र मोहास्रवकश्च। २३७॥

कषायो को तीव्र रूप से उदय मे आने पर ही धर्मात्मा जनो का वहिष्कार करता है व निरादर और निन्दा करता है स्वयम सयम से दूर रहता है। तथा प्रमाद के वशीभूत होकर अनेक जीवो की विराधना करने वाला जीव ही चारित्र मोह का आस्रवक होता है। निष्क्रिय होकर यंत्र तत्र उन्मत्त के समान भ्रमण करता है। तथा अपध्यान दुश्रुति का चिन्तवन करने वाला ही चारित्र मोह का आस्रवक होता है।

आर्त्त ध्यानेन निद्रालू दिवशेशयनं दर्शन निरोधं ।
धर्मार्थ च निरोध दर्शनावर्णस्यास्रवकः ॥ २३८ ॥

जो आर्तध्यान तथा रौद्र ध्यान से युक्त हो तथा अधिक नींद लेने वाला व दिन में सोने वाला और दूसरे जीवो के दर्शन करने मे विघ्न करने वाला जीव दर्शनावर्ण कर्म का आस्रवक होता है। मदिर मे दर्शन करने का निषेध करना तीर्थ यात्रा मे विघ्न डाल देना तथा उनके अन्य धार्मिक कार्यो मे विघ्न करने वाला जीव ही दर्शनावर्ण कर्म का आस्रव करने वाला होता है। दृष्टान्त राजा का द्वारपाल ॥ २३८ ॥

अशुभशुभ भावैः युक्ताः सयमसम्यक्त्वं माडाचारम् ॥
आस्रवको मनुष्यायुः पुण्यपापे सश्रितं च यदा ॥ २३९ ॥

अपने शुभ तथा अशुभ भावो के द्वारा यह जीव पुण्य पाप का आस्रवक होता है। जब देवपूजा, तोर्थयात्रा, वदना गुरु की पूजा दान, मान, सम्मान, करता है सयम सम्यक्त्व और शीलो का पालन करता है तथा जीवो पर करुणा रखता हुआ आचरण करता है। पच अणुव्रत व सात शील व्रतो का निर्दोष पालन करता है, व पचमहाव्रत पाच समिति, तीन गुप्ति रूप तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करता है तब शुभ भाव होते वे शुभ भाव ही पुण्यास्रव के कारण है। तथा कषायो की मन्दता आर्तरौद्रध्यान से रहित होना तथा अशुभ लेश्याओ से रहित होने वाला पुण्यास्रवक होता है। जो तीव्र सक्लिष्ट परिणाम वाला हिसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह मे आसक्त रहने वाला तथा बहुआरम्भ करने वाला आलसी व जीवो की दया से रहित कषायो से युक्त मिथ्यात्व युक्त पापास्रवक होता है। अपनी कीर्ति का इच्छुक व अपने गुणो का प्रकाशक व मायाचारी करने मे प्रवीण तथा आर्त्तरौद्र ध्यान से युक्त होता है। निदान करने वाला कृष्ण, नील, कापोत, लेश्या का धारक पापास्रवक होता है। जिनके इन दोनो प्रकार के मिले हुए परिणाम होते है वे मनुष्य आयु के आस्रवक होते है। तथा अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह के धारक जीव मनुष्य आयु के आस्रव करते हैं ॥ २३९ ॥

वेदयन्ति बहिष्कार माक्रन्दन हा च दुःख निवेदन येत् ॥
मरणमिच्छन्ति सहसा आस्रवकः वेदनीयस्य च ॥ २४० ॥
अपरगुणानामाच्छादन्ति विशेष गुणानां प्रकाशक·
इच्छति स्वात्म कीर्तिनीय गोत्रस्या ऽऽस्रवकश्च ॥२४१॥

जो दूसरो के मन को तोडता है तथा उनको दु ख पहुँचाने की चेष्टा करता है, व उनके कार्यो मे बिघन डालता है। कि ये सुखपूर्वक कही नही रहने लग जावे। ऐसे भावो का करने वाला। तथा दूसरे के शरीर व मन मे होने वाली वेदना को देखकर कहना कि हम जानते है यह दिखावटी करता है इस प्रकार करके उसका वहिष्कार करता है। जब अपने ऊपर कोई प्रकार का कष्ट आजावे तब जोर से रोना चिल्लाना कि अरे मर गया, अरे मर गया कोई रक्षा करो अरे कोई वैद्य ही बुला लाओ हाय मेरा शरीर फटा जाता है, हाय मेरे वेदना हो रही है, अरे मेरी कोई सुन लो रे भइया इस प्रकार शोर मचाता है। जिस से दूसरो के मन मे करुणा भाव उत्पन्न हो जाता है। रोना कराहना चिल्लाना कि मुझे बचाओ इत्यादि। तथा

दूसरों को वेदना देना किसी का नाक छेदना तथा लकड़ी में आरगाढ कर बैलों के व भैंसा घोडादि के शरीर के कोमल भाग मे चुभाना व कानों को काट देना उनके अण्डकोश को काट देना फोड देना। नस निकाल देना व लाठी आदिक से पीटना व छुरी तलवार कटारी इत्यादि व बन्दूक इत्यादि हथियारो से दूसरे जीवो के प्राणो का नाश करने वाला वेदनीय कर्म का आस्रवक होता है। ऐसा भी विचार करता है अब तो मरण हो जावे तो अच्छा हो वेदना भी सही नही जाती है। तिरस्कार भी नही सहा जाता है। इस प्रकार के भावो वाला मिथ्यादृष्टि जीव तीव्र वेदनीय कर्म का आस्रवक होता है। जो मनुष्य अपनी कीर्ति व प्रशसा की इच्छाकर के दूसरो के प्रकट गुणो को ढकने की इच्छा करता है। व अपने में गुण नही है फिर भी अपने गुणो को प्रकट करता है। कि मै इन सब बातों को भली प्रकार जानता हू। वे तो मेरे सामने कभी भी कोई काल मे नही हो सकते। उनका क्या हो सकता है, जो वे जान सके उनमें मेरे समान कोई गुण नही है इत्यादि भावो कर के दूसरो के गुण और सुख देने वाले गुणो का तिरस्कार कर अपनी प्रशसा करने वाला जीव नीच गोत्र का आस्रावक होता है ॥१४१॥

सर्वकार्मास्रवस्य सरंभं समारम्भ मारम्भ च।
सकषायै स्त्रियोगैश्च कृतकारिता ऽनुमोदैरास्रव ॥२४२॥

सब प्रकार के आस्रवो के कारण समरम्भ समारम्भ और आरम्भ (इन तीनो से युक्त प्राणी) इन तीनो को मन से, वचन से, काय से, तथा कृत, कारित और अनुमोदना से करता है व क्रोध, मान, माया, लोभ के वशीभूत होकर करता है। तब इनके एक सौ आठ भेद हो जाते है। वे इस प्रकार है मन, वचन, काय तथा समरम्भ, समारम्य, आरम्भ इन तीनो का परस्पर गुणा करने पर प्रत्येक के तीन-तीन भेद हो जाते है। जैसे मन कृत सरम्य मनकृत समारम्भ मनकृत आरम्भ। बचनकृत सरम्य, बचनकृत समारम्भ, आरम्भ। कायकृत सरम्भ काय.कृत समारम्भ कायकृत आरम्भ। इसी प्रकार मनकारित संरम्भ मनकारित समारभ मनकारित आरम्भ इसी प्रकार बचन कारिता के तीन। मन अनुमोदि मन से अनुमोदित सरम्भ मन से अनुमोदित समारम्भ। इसी प्रकार बचन से अनुमोदित सरम्भादि इन का परस्पर गुणा करने पर २७ भेद हो जाते है मन वचन काय ये ३ संरम्भ समारम्भ आरम्भ ये तीन कृतकारित अनुमोदना ये तीन। ३×३×३=२७ कुल हुए इनका चार गुणी कषाये जब प्रत्येक के साथ मे चार चार कषाये रह जाती है वे इस प्रकार है जैसे मनकृति सरम्भ को क्रोध से किया मान से किया माया से किया लोभ से किया तब एक एक साथ चार चार कषायें प्रवृत्त हुई तब सब के साथ कपायो का सम्बन्ध किया २७×४।१०८ भेदो की प्राप्ति हो जाता है। जिन कर्मो के करने में पाच सून होते है तथा जीवो की विराधना होती है उनका करने का भाव मन से होना वचन से होना काय से होना तथा कृतकारित अनुमोदना पूर्वक होना यह समरम्भ है। समारम्भय-उन आरम्भादि कार्यो के करने के साधनो का स्वय एकत्र करना दूसरो से करवाना व कोई कर रहे है उनकी प्रशसा करना। आरम्भ-हिसादि पाप कार्यो को करने में तल्लीन होना व दूसरो को उपदेश देकर तल्लीन करना व जो तल्लीन हो रहे है उनकी प्रशसा करना। इन सब कार्यो के करने पर नीच सब प्रकार के नीच कर्मो का आस्रव

होता है ।

शुभाशुभौ च भावैर्वा सकषायौ सतिद्धेषौ ।
तीव्रमंदास्त्रवव्यति नाऽन्यरास्त्रवस्यकोऽपिहेतु ॥२४३॥

जो शुभ अथवा अशुभ अपने भाव है। वे भाव ही जब कषाय सहित होते है उस समय रागद्वेष रूप होते है तीव्र व मंदता को लिए ज्ञानावर्णादि द्रव्य कर्मो के योग्य आस्त्रव नियम से ही होता है। अपने कषाय रूप जो परिणाम है वेही अशुभ कर्म रूप होते है जब शुभ भाव होते है तव शुभास्त्रव होता है जो शुभास्त्रव है वही पुण्यास्त्रव है।२४३

जिनपुजा मुनिदानं संयम शीलं सम्यक्त्वादि कार्येषु ॥
विघ्नं करोति मूढ़धी रास्त्रवकोऽन्तरायस्य ॥२४४।

यह प्राणी अज्ञानता वस होकर जिन पूजा विधान तथा रथ यात्रा महोत्सव तथा मुनियो को लिये दिये जाने वाले दान मे विघ्न डालता है। तथा जिन्होने भोग उपभोग आदि की वस्तुओ का त्याग कर दिया है।वशीलो का पालन कर रहे हैं।.जिन्होने अपने जीविका के योग्य द्रव्य किसी के पास जमा कर रख दी है। उस द्रव्य को नष्ट कर देना या दबा लेना। व मन्दिर प्रतिष्ठा व जीर्णोद्धार के लिये दान दिया है, उस द्रव्य को खाजाना इत्यादि धार्मिक कार्यो मे विघ्न डालने पर पाच प्रकार के अन्तराय कर्म का आस्त्रव होता है। जिस समय कोई भगवान की पूजा करने व कराने के लिए उत्सुक हो रहा है उसको कहना कि आज तुम नही जा सकते हो वड़े भगत हो गये ? इस प्रकार भगवान की पूजा मे विघ्न डालना। यह कहना कि चलो अभी नही फिर कर लेना। जव यात्रा करने की सब सामग्री एकत्र कर ली तब उसके वस्त्राभूषणो को छिपा दिया व खर्चा के लिये जो द्रव्य एकत्र करली थी उसको अपहरण करलिया जिससे उसकी यात्रा रुक गई। जब मुनियो के चतुर्विधे सघ को आहार औषध व ज्ञान दान व अभय दान करने के भाव हुए तब कहने लगा कि भाई इन महाराज के सघ मे दान अभी देना ठीक नही है। वहा पर धर्म की प्रभावना हो रही है वही देना ठीक है। ऐसा कहकर रोक देना यह अतराय कर्म का आस्त्रव है।

मिथ्यात्वाविति सन्ति कषाया योगा-पच द्वादशः ॥
पर्चावशति पचदश प्रत्ययाः केवली भणित्यैव ॥२४५॥

मिथ्यात्व के पाच भेद है। उनका कथन पूर्व मे कर आये है, सशम, विपर्यय एकान्त विनय और अज्ञान ये पाच हैं। तथा पंचेन्द्रिय व मन सयय नही और पृथ्वी आदि पच स्थावर काय तथा त्रसकाय सयम नही इस प्रकार असयम के तथा अविरत के बारह भेद होते हैं। कषाये पच्चीस है। अनतानुबन्धी क्रोध मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानी, क्रोधमान माया,लोभ, तथा, प्रत्याख्यान, क्रोधमान, माया, लोभस, ज्वलन, क्रोधमान, माया, लोभ, तथा हास्य रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, नपु सक व पुरुष वेद, ये सव कषाये है। योग पद्रह है मन योग के चार सत्यमनोयोग असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग। वचन योग के सत्यवचन योग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग, अनुभय वचनयोग, औदारिक काययोग, औदारिक मिश्र, वेक्रियक, वेक्रियक मिश्र योग आहारक, आहारक मिश्र, और कर्माण योग,

जानने। आस्रव के सत्तावन भेद केवली भगवान के शासन में कहे गये हैं। वे निश्चय आस्रव के कारण हैं।

मिथ्यात्वं सासादान मिश्राऽसयत देशाविरते विना।
द्वौपच चतुर्दशैकादश् विंशति सदाऽऽस्रवा भवन्ति ॥२४६॥
प्रमत्ताप्रमत्तो ऽपूर्वऽनिवृत्ति सूक्ष्योपशान्तेष्वास्रवा ॥
चतुर्विंश द्वा विंशद्वौ षोड़श दश नवास्रवाश्च ॥२४७॥

प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान मे पाँच मिथ्यात्व, बारह अविरति, कषाये पच्चीस, चार मन, चारबचन, काययोगो में से औदारिक, औदारिकमिश्र वैक्रियक वैक्रियक मिश्रऔरकार्माण योग ये पाच योग मिलकर पचपन आस्रव होते है।५+१२+२५+१३=५५। मिथ्यात्व गुण स्थान मे आहारक आहारक मिश्र दो योग नही होते है। सासादन गुण स्थान में पांच मिथ्यात्व और आहारक आहारक मिश्र इन सात प्रकृतियो का आस्रव नही होता है पचास प्रकृतियो का ही आस्रव होता है। मिश्र गुण स्थान मे चौदह प्रकृतियो का आस्रव नही होता है। ये है पाच मिथ्यात्व, औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण ये योग तथा अनतानुवधी क्रोध मान, माया लोभ, ये चार कषाये इनका आस्रव नही, आस्रव बारह अविरति इक्कीस कपायो का और दश योगो का होता है। असयत नामक चौथे गुण स्थान मे पांच मिथ्यात्व चार अनतानुवधी कषाये आहारक आहारक मिश्र को छोड़कर शेष रहे वे सब आस्रव होते है वे इस प्रकार है वारह अविरति २१ कषायों का व आहारक आहारक मिश्र को छोडकर शेप तेरह योगो का आस्रव कुल ४६ का होता है। देशविरत गुण स्थान मे वीश आस्रव नही होते है, पाँच मिथ्यात्व, अनतानुबधी और अप्रत्याख्यान उन दो चोकड़ी तथा एक असयम त्रसबध नही। अविरति ११ प्रत्याख्यान सज्वलन ये आठ और नव नो कषायों का व मन के चार, वचन के चार काय का एक औदारिक इन सैतीस का आस्रव होता है। ये आस्रव सब देश सयत जीवो के होते ही रहा करते है।

प्रमत्त गुणस्थान मे २४ आस्रव होते है, चार सज्वलन व नोकषाये इन तेरह का व औदारिक आहारक आहारक मिश्र, चार मन, चार वचन इन ग्यारह योगों का आस्रव होता है। यहाँ पर पाच मिथ्यात्व बारह अविरति, १२ वारह कषायो, का तथा औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वेक्रियक मिश्र, कार्माण योग इनका अभाव है। कुल तेंतीश का आस्रव नही। अप्रमत्त गुणस्थान मे भी प्रमत्त के समान ही आस्रव कहे है इतना विशेप है कि यहाँ पर अप्रमत्त और अपूर्वकरण इन दो गुणस्थानो मे आहारक, आहारक मिश्र, इनका आस्रव न होने के कारण कुल वाईस का ही आस्रव होता है। अनिव्रतकरण गुणस्थान में चार संज्वलन कषाये तथा तीन वेद तथा नोयोग चार मन के, चार वचन के, एक औदारिक, काय योग कुल १६ का आस्रव होता है। सूक्ष्म सापराय मे एक सूक्ष्मलोभ तथा चार मन के चार वचन के औदारिक काय योग कुल दस का आस्रव होता है। उपशांत मोह में केवल नोयोगो का ही आस्रव होता है। तथा क्षीणमोह मे सयोग केवली के सात योगो का ही आस्रव होता है। औदारिक काययोग सत्य और अनुभय मनोयोग, सत्य और अनुभय वचन योग तथा औदारिक

मिश्र व कार्माण योग इन सात का ही आस्रव है। अयोग केवली गुण-स्थान में आस्रवों का अभाव है। इस प्रकार गुणस्थानो मे यथा क्रम से आस्रवो का कथन किया है। अब आगे मार्गणाओ की अपेक्षा से आस्रवो का कथन करते है ॥ २४६ ॥ २४७ ॥

नरक त्रियच

नरक तिरश्च देवनृगतिषु षट् चतु पच द्वौ विहीन।
अष्टात्रिंशैकेन्द्रिय चत्वारिंश द्वीन्द्रियेषु ॥२४८॥
त्रितिरिन्द्रिये सप्त दशषोडशोनपचाक्षुषु सर्वे।
त्रशकाये सर्वेकेन्द्रियेऽष्टात्रिंशाऽऽस्रवाःसन्ति ॥२४९॥
त्रिचत्वारिशं योगेषु आहारकयुगले द्वादशास्रवाः।
स्त्री ५ नपुंसक त्रिषुचतुः द्वौ चतुर्हीना वेदे ॥२५०॥

नरक गति, त्रियचगति, देव गति, मनुष्यगति, नरकगति मार्गणा में सामान्य से इक्यावन आस्रव होते है। औदारिक, औदारिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, स्त्रीवेद तथा पुरुपवेद इन छह का आस्रव होता नही शेष पाँच मिथ्यात्व कषाये २३ तेवीश योग, ग्यारह अविरत, वारह का आस्रव होता है। सम्यग्दृष्टि नारकी जीव के पाच मिथ्यात्व अनतानुवन्धी चार कषाये (स्त्रीवेद पुरुषवेद) इनका तथा औदारिक औदारिक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र, इनका आस्रव नही होता है। त्रियच गति मे सामान्य से ५३ आस्रव होते है। वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, विना सव पाँच मिथ्यात्व वारह अविरति, कषाय सत्र योग ग्यारह का आस्रव होता है। देवगति मे औदारिक, औदारि मिश्र, आहारक आहारक मिश्र कपाय नपुसक वेद बिना शेष ५२ का आस्रव होता है। मिथ्यात्व ५ अविरति १२ कषाये २४ योग ग्यारह। मनुष्यगति में वैक्रियक वैक्रियक मिश्र विना पचपन का आस्रव होता है।

विशेष—त्रियचगतिगति मे कहे गये मिथ्यात्व की अपेक्षा से है, मिथ्यात्व रहित जीवो के चवालीस आस्रव होते हे। यहाँ पर पाँच मिथ्यात्व चार अनतानुबधी, चार कपाये, वैक्रियक वैक्रियक मिश्र, आहारक आहारक मिश्र, इनका आस्रव नही होता है। देश सयत मे ३९ का आस्रव होता है। इस त्रियच गति मे गुणस्थान पाँच है, मनुष्य गति मे गुणस्थान की चर्चा के समान जानना। इति गति मार्गणा।

एकेन्द्रिय जीवो के ३८ प्रकृतियो का आस्रव नही होता है। पाँच मिथ्यात्व सात अविरति, तथा मन अविरति रसना घ्राण, चक्षु, कर्ण ये तो होती ही नही वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, स्त्रीवेद, पुरुपवेद, चार मनोयोग, चार वचन योग, नही होते है १९। पाच मिथ्यात्व, एक स्पर्शन इन्द्रिय, और षट्काय सयम नही, कपाये स्त्री पुरुप वेदक विना २३ होती है। औदारिक औदारिक मिश्र और कार्माण इन सव को जोडने पर कुल ३८ आस्रव होते है। ५+६+२३+३=३७+१=३८ ॥ पृथ्वी से लेकर वनस्पति तक होते हैं। दो इन्द्रिय जीवो के पाच मिथ्यात्व आठ अविरति, मन, घ्राण, चक्षु, कर्ण, विना शेप छह काय जीव संयम नही। कपाये स्त्री पुरुष वेद विना शेप का आस्रव होता है। वैक्रियक वैक्रियक मिश्र

आहारक, आहारक मिश्र चार मन, तीन वचन, बिना शेप का आस्रव होता है। कुल ४६ का आस्रव होता है।

तीन इन्द्रिय जीवो के पांच मिथ्यात्व ६ अविरति पुरुप स्त्री वेद को छोड़कर २३ कपाये दो इन्द्रिय के समान चार योग इनका आस्रव होता है। ५+६+२३+४=४१ आस्रव होता है। चक्षु कर्ण और मन तो होता ही नही। चार इन्द्रिय जीवों के ४२ का आस्रव होता है। पांच मिथ्यात्व मन और कर्ण इन्द्रिय के बिना १० (का आस्रव) असयम कपाये २३ स्त्री पुरुष वेद विना योग पहले कहे प्रकारचार होते है। ५+१०+२३+४=४२ पंचेन्द्रिय जीवो के सव आस्रव होते हैं। क्योकि त्रस कहने से दो इन्द्रिय से लेकर सैनी पचेन्द्रिय तक सव ग्रहण कर लिये जाते है। गतिमार्गणा तथा इन्द्रिय मार्गणा के अनुसार यहाँ पर भी जान लेना चाहिए। (स्थावर काय में एकेन्द्रिय के ३८ आस्रव) स्थावर काय में पहले कहे गये एकेन्द्रिय के समान ३८ आस्रव होते है इति। कायमार्गणा। कायमार्गणा—औदारिक काय योग मे एक औदारिक काय को छोड़कर शेष योग नही, पाँच मिथ्यात्व, पंचविशति कषाये और वारह अविरति ४२ तथा औदारिक मिश्र में पांच मिथ्यात्व, १२ अविरति, पच्चीस कषाये योग एक औदारिक मिश्र इसी प्रकार वैंक्रियक काययोग में पाच मिथ्यात्व, वारह अविरति २५ कपाये तथा एक वैंक्रियक काययोग। वैंक्रियक मिश्र में भी योगों में एक योग वैंक्रियक मिश्र काययोग पहले के समान ही आस्रव होते हैं। तथा कार्माणयोग में भी अपने-अपने योग को रखकर पहले के समान ही ४३ का आस्रव होता है। आहारक काययोग में वारह आस्रव होते हैं। चार संज्वलन कपायें तथा स्त्री नपुंसक वेद बिना सात हास्यादिक योग एक आहारक उसी प्रकार आहारक मिश्र योग मे जानना। इति योग मार्गणा। स्त्रीवेद तथा नपुंसक वेद मे ५३ का आस्रव होता है। पाच मिथ्यात्व, वारह अविरति कषायें तेवीस नपुंशक और पुरुप वेद विना योग १३, आहारक आहारक मिश्र विना तेरह। ५+१२+२३+१३ =५३। नपुंसक वेद में मिथ्यात्व सव, अविरति सव कषाये स्त्री पुरुप वेद को छोड़कर सव आहारक आहारक मिश्र विना योग तेरह कुल ५+१२+२३+१३ कुल ५३ आस्रव होते है। पुरुप वेद में पहले के समान स्त्री नपुंसक वेद के विना सव कपाय पांच मिथ्यात्व अविरति सव कपाये २३ योग पंद्रह कुल आस्रव ५५ होते हैं इति वेदमार्गणा ॥२५०॥

कपाय मार्गणा

अनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्यख्यान संज्वलनं।
कषाये चत्वारिश पर्चात्रिश त्रिशते कविंशति ॥२५१॥
हास्यादि षट् कषाये मिथ्यात्वाऽविरति कषाययोगाः
पंचद्वादशैकविंशति पंचदश प्रत्यपयाऽऽस्रवाश्च ॥२५२॥

अनतानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चार कपायो मे पांच मिथ्यात्व, वारह अविरति एक क्रोध, नवनो कपायें, तेरहयोग, आहारकआहारक मिश्र विना ४० का आस्रव होता है, तथा अनंतानुवंधी मान कपाय मे पांच मिथ्यात्व, वारह अविरति एक मान नव नो कपायें योग तेरह कुल ४० का आस्रव होता है इसी प्रकार अपने-अपने कपाये समझना चाहिए माया लोभ कपाय में समझना चाहिए।४०। अप्रत्याख्यान कपाय मे वारह अविरति कपाय एक अप्रत्याख्यान क्रोध व

नो कषायें तथा आहारक आहारक मिश्र विना १३=३५ का आस्रव होता है। इसी प्रकार मान माया, लोभ कपाय मे समझना चाहिये, प्रत्यख्यान चौकडी मे अविरति ग्यारह कषायें १० एक प्रत्याख्यान क्रोध नव नो कषायें तथा योग औदारिक मिश्र, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण योग बिना दस योग ३१ का आस्रव होता है। इसी प्रकार मान, माया, लोभ के साथ सम्बन्ध कर लेना चाहिये। सज्वलन कपायो मे एक सज्वलन क्रोध नव नो कपाये १० योग चार मन, चार वचन, काय मे एक औदारिक, आहारक, आहारक मिश्र, कुल २१ होते है। इसी प्रकार अन्य क्रोध के स्थान पर मान, माया, लोभ लगा लेना चाहिये। हास्यादि छह नोकषायो मे ५२ का आस्रव है। पाच मिथ्यात्व बारह असयम कषायें १६ तीन वेद एक हास्य तथा योग सब होते है। सामान्य से ४५ आस्रव कहते है। क्रोधादि चार कषायो मे मिथ्यात्व ५ अविरति १२, अनतानुवधी चार, नव नो कपायें, पद्रह योग इस प्रकार कुल आस्रव वाईस कषायो मे सामान्य से कहे है यही क्रम मान माया लोभ के साथ कर लेना चाहिए। अनतानुवधी मे आहारक, आहारक मिश्र का आस्रव नही अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान सज्वलन का भी आस्रव नही होता है। कषायें कुल एक एक में दस-दस होती हैं। अप्रत्ख्यान में पाँच मिथ्यात्व तथा आहारक द्विक बिना शेष तेरह स्व चतुष्टय में कोई एक। हास्यादिक नो अविरति कुल। प्रत्याख्यान मे पाच मिथ्यात्व, एक त्रस वध को छोडकर शेप असयम ग्यारह कषायो मे से स्व चौकडी मे से कोई एक नव नो कपायें नो योग वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र आहारक आहारक मिश्र कार्माण और औदारिक मिश्र बिना ९ योग होते है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न करने पर विशेप और एक रूप में करके तव सामान्य कहते है। हास्य रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, इन छह नोकपायो मे पाच मिथ्यात्व, बारह अविरति, बीस कषायें अनतानुबधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, सज्वलन ये १६ तीन वेद एक स्व नो कषाय कुल २० कषाय योग सब होते है। इति काय मार्गणा। २५१। २५२॥

कुमतिश्रुते द्वेहीनं विभंगावधे पंचोन मतिश्रुते ॥
अवधिज्ञाने नव-नव मनःपर्ये विंशति सप्त ॥२५३॥

कुमति व कुश्रुत ज्ञान मे पचपन आस्रव होते है—पाँच मिथ्यात्व, बारह असयम कषाये २५ तथा योग, आहारक, आहारक मिश्र, विना शेष १३ का आस्रव होता है। विभंगावधिज्ञान मे औदारिक मिश्र, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण योग के बिना ५२ का आस्रव होता है। वे इस प्रकार है, पाच मिथ्यात्व, बारह अविरति कषाये २५ औदारिक काय योग वैक्रियक काय योग, चार मन के, चार बचन के, ये कुल दस योग मिलने पर ५२ आस्रव होते है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान इन तीनो ज्ञानो का कारण सम्यक्त्व है। पाँच मिथ्यात्व एकान्त विनय विपरीत ससय और अज्ञान तथा अनतानुवधी, क्रोध, मान, माया, लोभ इन नो का अभाव होने पर तथा मिथ्यात्व सम्यक् मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति इन तीन के अभाव होने पर ही मतिज्ञान श्रुत ज्ञानो मे तथा अवधि ज्ञान में ४२ आस्रव होते है। मन: पर्यय ज्ञान मे पाच मिथ्यात्व बारह अविरति बारह कषाय तथा स्त्री और नपुंसक वेद औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और

कार्माण योग विना शेप वीस का आस्त्रव होता है। केवल ज्ञान में सत्य मनोयोग, अनुभय मनो-योग, सत्य वचन, अनुभय वचन, योग, औदारिक, काय योग औदारिक मिश्र, और कार्माण योग ये सात का आस्त्रव होता है। इति ज्ञान मार्गणा ।। २५३ ।।

संयम मार्गणा

सामायिक युगलयोः परिहारविशुद्धौ सूक्ष्मलोभे च ।
यथाख्याते चतुर्विश विंशति दशैकादशयथाक्रमः ।। २५४ ।।

सामायिक और छेदोपस्थापन इन दोनो संयमो मे २४ आस्त्रव होते है। वे इस प्रकार हैं, सज्वलन चार, कषाये नव, नोकषाये, चार, मनोयोग, चार वचन योग तथा औदारिक काय योग तथा आहारक आहारक मिश्र काय योग। परिहार विशुद्धियाँ वीस का आस्त्रव है वह इस प्रकार है सज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार तथा स्त्री वेद नपुंसक वेद के बिना सात नोकपायें है। तथा सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, मनोयोग तथा चार वचन, योग, एक औदारिक योग कुल २० का आस्त्रव होता है। परन्तु सिद्धान्त सार ग्रन्थ में वाईस का आस्त्रव लिखा है वह इस प्रकार है। कपाये चार, नवनो कषाये तथा चार मन के चार वचन के एक एक औदारिक काय योग कुल २२ का आस्त्रव होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि तीनो वेद वाले जीवो को परिहार विशुद्धि सयम हो सकता है। सूक्ष्म सापराय मे मन वचन के आठ औदारिक काय योग एक सूक्ष्म लोभ कुल दस का आस्त्रव होता है। यथाख्यात चारित्र मे मिथ्यात्व असंयम कपायो का उपशात हो चुका है अथवा क्षय हो चुका है इसलिये यहाँ पर चार मनोयोग, चार वचन योग, एक औदारिक काय योग, एक औदारिक मिश्र तथा कार्माण योग इस प्रकार ग्यारह योगो का अस्त्रव होता है। यथाख्यात चारित्र के धारक केवली भगवान की अपेक्षा से समुद्घात कालमें औदारिक मिश्र और कार्माण योगो का आस्त्रव होता है ।२५४।।

देश संयते सप्तत्रिंशत्यसयमे पचपचासत्र
सर्वे चक्ष्वचक्षुयुगलवधिदर्शने नवोनसप्त ।।२५५।।

देश सयत गुण स्थान मे मन के चार वचन के चार एक औदारिक काय योग ९ प्रत्याख्यान सज्वलन नव नो कषाये १७ अविरति ११ असयत गुणस्थानों में आहारक आहारक विना १३ योग और वारह अविरति २१ कषाये कुल मित्थात्व में आहारक आहारक मिश्र विना ५५ का आस्त्रव होता है। सासादन में ५२ का तथा मिश्र में।

चक्षु और अक्षुदर्शनो मे सब आस्त्रव होते है। अवधिदर्शन में ४८ आस्त्रव होते है पाचमिथ्यात्व तथा अनंतानुवंधी चोकड़ी का आस्त्रव नही होता है शेष वारह अविरति २१ कषाये १५ योग। केवल दर्शन मे सात का ही आस्त्रव है केवल दर्शन में केवल ज्ञान के समान ही जानना चाहिये। इति दर्शन मार्गणा।

लेश्या मार्गणा

कृष्णादित्रिलेश्याषु नद्वौ पीतापद्मशुक्लेषु सर्वे ।।
भव्ये सर्वेऽभव्ये आहारक युगलं विना शेषाः ।।२५६।।

कृष्ण लेश्या नील तथा कापोत लेश्या इन तीनों लेश्या वाले जीवों के पचपन

आस्रव होते है । वे इस प्रकार है, मिथ्यात्व पाच, अविरति, सब कषाये, सब योग, आहारक आहारक काय मिश्र बिना तेरह योग होते है । पीत पद्म और शुक्ल लेश्या वाले जीवो मे लेश्याओ मे सब ही आस्रव होते है । इति लेश्या मार्गणा (भव्य जीवो का) भव्य मार्गणा मे सब आस्रव होते है अभव्य मे पचपन का आस्रव होता है आहारक आहारक मिश्र बिना ।५५।

सम्यक्त्व मार्गणा

मिथ्यात्व सपसादन मिश्रे चोपशम क्षयोपशमेषु ।।
द्वौसप्तैव चतुर्दश द्वादश नव नव विना क्षायके ।।२५७।।

मिथ्यात्व मे आहारक, आहारक मिश्र, योग, बिना सर्व आस्रव होते है । स्यसादन मे पाच मिथ्यात्व आहारक, आहारक मिश्र, योग, बिना पचास का आस्रव होता है मिश्र सम्यक्त्व मे ४३ का आस्रव होता है पाच मिथ्यात्व चार अनतानुबधी औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र, आहारक आहारक मिश्र, और कार्माण योग इन चौदह का आस्रव नही । उपशम सम्यक्त्व मे बारह का आस्रव नही होता है । पॉच मिथ्यात्व चार अनंतानुबधी औदारिक मिश्र आहारक पुगल बिना शेष ४५ का आस्रव होता है । क्षयोपशम सम्यक्त्व में पाच मिथ्यात्व चारकषायें अनतानुबधी इन नो का आस्रव नही होता है । शेष प्रकृतियो का आस्रव होता है । क्षायक सम्यक्त्व में पाच मिथ्यात्व अनंतानुबधी इनका क्षय होने से इनका आस्रव नही शेष का आस्रव होता है । इनका विशेष कथन कर आये है । इति सम्यक्त्व मार्गणा ।

संज्ञिनि: सर्वाऽऽस्रवाश्चा ऽसगिनि चोनमेकादश योगाश्च ।।
आहारके कार्माण विना ऽनाहारके चतुर्दश ।।२५८।।

सैनी मे सब आस्रव होते है । असैनी अवस्था मे पाँच मिथ्यात्व अविरति सब कषायें सब योग औदारिक औदारिक मिश्र और कार्माण, काय योग एक वचन योग, अनुभय शेष योग नही होते है । इस प्रकार ४६ का आस्रव होता है । इति सज्ञी मार्गणा । आहारक मार्गणाये आहारक मे कार्माण योग विना ५६ आस्रव होते हैं । तथा अनाहारक अवस्थायें पॉच मिथ्यात्व वारह अविरति कपायें सव एक कार्माण योग तेतालीश का आस्रव होता है ।

गुणयोग मार्गणासु जीवसमासेषु कथितं यथा क्रम
आस्रवाभवन्ति सदा सर्व जीवानां चतुर्गतिष्वेव ।।१५६।।

चौदह मार्गणा स्थानो मे व गुणस्थानो मे जीव आस्रवो के भेद कहे गये है । ये आस्रव चारो गति वाले सभी जीवो के निरन्तर होते रहते है । ऐसा कोई भी समय नही आता कि ससारी जीव के आस्रव न होता हो ? आस्रव के दो भेद है । एक भवास्रव दूसरा द्रव्यास्रव, जो द्रव्यास्रव का कारण होता है उसको भावास्रव कहते हैं । भावास्रव भी दो प्रकार के होते हे शुभ भावास्रव दूसरा अशुभ भावास्रव । अशुभ भावास्रव इस प्रकार है पाच मिथ्यात्व, बारह अविरति रूप है । अवस्तुओ मे वस्तुत्व मानना हिसादि दुष्कर्म करने मे धर्म मानना तथा पर स्त्रियो के साथ रमण करना रासलीला खेलने मे मगन रहना और कहना कि यह रासलीला तो भगवान श्री कृष्ण ने भी की थी इसके करने पर अवश्य ही स्वर्ग मिलता है । भगवान भी स्त्री के साथ रमन करते है जो शिव बन चुके है वे भी स्त्री साथ मे रखते है । देवी व देवताओ के निमित्त व अपनी उन्नति की इच्छा करके पशु वध करना

व करवाना। करते हुए को भला मानना। विचारना कि ये भी पुण्य के कारण है। तथा आशारूप पिशाच के जाल में फसे रहना, कि पुत्र मित्र आदि मिलने की आशा करना व अन्य प्राणियों को मारने विदारण करने व दुःख देकर अपने को सुखी बनाने की भावना होना ये सब अशुभ भावास्रव है। तथा मिथ्यात्व व कषाय युक्त सक्लिष्ट परिणामो का होना ही अशुभ भाव आस्रव का कारण है। देव पूजा करना, चतुर्विध सघ को चार प्रकार का दान देने में प्रवृत्ति का होना। सात तत्वों में यथार्थ रुचिका होना जीवो पर करुणा का होना, रागद्वेष का दूर करना, गुरुओ की सेवा सुश्रुषा करना, विनय करना, मद्य, मास, मधु, पाच उदम्वर फलो का त्याग करने के भावो का होना। रात्रि भोजन व विना छाना पानी का त्याग करने के भाव होना, तथा हिंसादि पाच पापो का त्याग करना व सात व्यसनो का त्याग कर बारह अव्रतों का त्याग करने के भाव होना व पच महाव्रतो व पांच समितियो का पालन करना व तीन गुप्तियो का पालन करना व पचेन्द्रियों के विपयो की इच्छाओ का निरोध करना व छह आवश्यक क्रियायो का यथा काल में पालन करना ये सब शुभभाव है। इन शुभ भावो से शुभ द्रव्य आश्रव होता है। व्रतादि मे परिस्थित होना ये शुभभाव है वे शुभ द्रव्य आस्रव है। अव यहा एक भेद और प्रकार वह यह है कि एक ओर शुभ और दूसरी ओर अशुभ ये दोनो भाव एक साथ होते है वे पापानुवधी पुण्य रूप द्रव्य आश्रव के कारणहै। जिनमें अशुभ भाव का कारण असभव भी नही, देखा जाता है। उसको पुण्यानुबधी पुण्य आस्रव कहते है। यह आस्रव प्राय. कर सम्यग्दृष्टि जीवो के ही होता तथा देश सयमी व सकल सयमी निकट भव्य समीचन धर्म के धारक प्राणी को ही प्राप्त होता है। ये भी सयम सामायिक छेदोपस्थापना परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सॉपराय, और यथा-ख्यात चारित्र बिना पुण्यानुबन्धीपुण्य वालो के नही होते हैं। इन पाचों प्रकार के सयमो में भी पुण्यानुवधी पुण्यास्रव होता है उसको स्थिति और अनुभाग वध कम होते है। मिथ्यात्व अविरति कपायो सहित जीवो के जो आस्रव कोटाकोटी को स्थिति और अनुभाग को लेकर वंधता है यह पापानुवधी पापास्रव है इसलिये तत्वार्थ सूत्र पापानुबधी पाप के कारण भावास्रवो का कथन छठवे अध्याय मे कहकर सातवे अध्याय मे पुण्यानुवधी पुण्यास्रवो का कथन उमा स्वामी महाराज ने किया है। साथ ही प्रमाद से होने वाले दोषो का कथन किया है उनमें सब से प्रथम मे सम्यक्त्व के पाच अतिचारो को कहकर पाच अणुव्रतो के अतीचारो का कथन करते हुए सात शीलो के अतीचार कहे है।

इन अतीचारो का कहने का कारण यह है कि ये दोष पापास्रव के कारण है इस-लिये इनको अतिचार कह दिया है प्रथम मे पाच व्रतो की पाच पॉच भावनाओका कथन किया है। तत्पश्चात संसार शरीर भोगो से विरक्त भावो का होना कहा है। उसके पीछे इन व्रतो की विशुद्धिके लिये मैत्री भाव प्रमोदभाव कारुण्य भाव मध्यस्थ भाव और माध्यस्थ भावो का कथन किया है इसलिये ये सव भाव तीन शल्यो से रहित होगे तब तो पुण्यानुवंधी पुण्य के कारण होगे। जव शल्य सहित होगे तव वे सम्यक्त्वादि गुणो से रहित होगे जिससे व्रती ऐसी सज्ञा को प्राप्त नही होगे (निसल्पो व्रती) चाहे वह गृहस्थ हो या अनागार हो वे दोनो निशल्य होगे तभी उन व्रतनियमो का यथार्थ फल मोक्ष है अथवा सव प्रकार के दुःखो का क्षय होने पर मोक्षपद ससारी जीवो को प्राप्त होता है। इन शुभ भावो की जितनी वृद्धि होती जाती है। तव

विशुद्ध भावो की प्राप्ति कालान्तर मे अवश्य ही प्राप्त हो जाती है। इन शुभ और शुद्ध भावो मे यथा क्रम से सॉपराय और ईर्यापथ आस्रव होता ही रहता है। शुभ भाव तो कषाय योग सहित होते है परन्तु शुद्धभाव कषाय रहित जीवो के ही होते है उनके जो आस्रव होता है वह ईर्या पथ आस्रव होता है जिसकी स्थिति अनुभाग नही होता है जैसे कोरे घडे पर पडी हुई धूल आपोआप नीचे झर जाती है इसलिये इन सब द्रव्यास्रव और भवास्रव से रहित एक मात्र सिद्ध अवस्था है उसे प्राप्त करने का उद्योग (प्रयत्न) करना चाहिये क्योंकि पुण्य और पाप ये दोनो ही जन्म मरण रूप दु ख के ही कारण है। और जड पुद्गल मयी है। इनको प्राप्त होकर हर्ष विषाद मतकरो। यहाँ पर अपनी भक्ति की अपेक्षा से आस्रवो का कथन किया है।

सम्यक्त्व व्रत समितिः गुप्तिः शीलानि निर्मल माचरन्ति।
देव तीर्थंकर नाममास्रवकों भवति जिनोक्तः॥ २६०

सम्यक्त्व के ४४ चवालीश दोष रहित श्रद्धान का होना पाच महाव्रत या अणुव्रतो का निरतिचार पालन करना व पाच समितियो का नि.प्रमाद होकर पालन करना तथा मन-गुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन का पालन करता है। तथा मनोदण्ड वचनदण्ड कायदण्ड इन का त्याग करता है। तथा पच व्रतो की पच्चीस भावनाओ सहित पालन करता है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव देव गति के योग्य उच्च पदो का आस्रवक होता है। बाल तप करने वाला मिथ्यादृष्टि भी देव गति का आस्रवक होता है। अथवा देवगति और आयु का वध करता है। परन्तु दर्शन विशुद्धिसहित जीब षोडश कारण भावनाओ की बार-बार चितवन करता है। अपने आचरण मे लाने वाला पुण्यात्मा भव्य जीव तीर्थंकर नाम कर्म और देव गति नाम कर्म व देव आयु का आस्रवक होता है। इन दोनो ही प्रकृतियाये पुण्यवान सुकृती जीवो को ही प्राप्ति होती है। जो सम्यक्त्व तथा व्रत समिति गुप्ति शील सोलह कारण, भावनाये ये सब पुण्य प्रकृतिया है इनसे ही कल्पवासी कल्पातीत देवो की आयु गति का आस्रव व तीर्थंकर नाम कर्म का आस्रव होता है सक्लिष्ट जो अपने परिणाम है वे परिणाम जव तीव्र सक्नेश भाव सहित होते है। तब तीव्रआस्रव होता है। तीव्रतर हो। तब तीव्रतर जब मध्यम सक्लिष्टता को लिए हुए होवें। तब मध्यम पापास्रव होता है। जव मन्द व जघन्य सक्लिष्टता को लिए हुए परिणाम होते है। तब पापास्रव जघन्य होता है। विशेप यह है कि मिथ्यात्व और आर्त रूप व रौद्र ध्यान रूप कपायो सहित परिणामो को सक्लिष्ट परिणाम कहते है। धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान सहित मिथ्यात्व और कषाय रहित जब परिणाम होते है, अथवा कषायो के क्षयोपशम होने पर जो देश सयम, सकल सयम, शील, समिति गुप्ति तथा आवश्यक क्रियाओ का पालन करता है तब पुण्यास्रव होता है। तथा दान देना मदिर निर्माण कराना तीर्थ क्षेत्रो की वदना करना, जिन बिब प्रतिष्ठा करना क ाना, व विद्यालय बनवाना, औषधालय बनवाना व बने हुए का सर-क्षण करना, व जीर्णोद्धार करना, चार प्रकार के मुनियो के सघ को अपनी शक्ति के अनुरूप आहार, औषधी, अभय ज्ञान दान देना तथा उनको सरक्षण करना उनको धर्म के आयतन मानना ये सब पुण्यास्रव के ही कारण है। इस प्रकार यथा काल व शक्ति के अनुसार आस्रवो के भेदो का कथन किया है। इति आस्रव तत्त्व।

आगे बंध तत्व कथन प्रथम में कर्मकाड के अनुसार करते है।

बध के योग्य कुल १४६ प्रकृतियां है। जिनमें से चार वर्ण एक गंध चार रस सात स्पर्श इन १६ का बध नहीं होता है। क्योकि ये बोस है, इनमें से बध चार का ही होता है शेष का एक साथ बध नही होता है। नाम कर्म की पाच सहनन पाच, सस्थान इनका बंध एक साथ नहीं होता, क्योंकि छह सहनन और सस्थानो में से एक-एक कोई का बंध एक जीव के होगा तब अन्य का बध नही होगा इन १० के बिना शेष ये दोनो प्रकार से मिलकर २६ हो जाती है इनका बध नही है, शेष १२० रह जाती है, उनका बध यथाकाल होता है। मिथ्यात्व गुण स्थान में आहारक-आहारक मिश्र तथा तीर्थकर नाम कर्म का बंध नही होता है। शेष ११७ का बध होता है। सासादन गुण स्थान में बध १०१ प्रकृति का होता है। जब मिथ्यात्व को छोडकर सासादन के सन्मुख होता है तब १६ प्रकृतियायें बध से रहित होती है। जब सासादन को छोड़ने के सन्मुख होता है तब २५ बध से रहित होती है। जब मिश्र को प्राप्त होता है, उसके ७४ का बध होता है, असयत गुण स्थान के अत में १० का बध नही होता है, तब ७७ का बध होता है पाचवें में ६७ का बध है, प्रमत्त गुणस्थान मे ६३ का बध होता है अप्रमत्त मे ५९ का बध होता है, अपूर्वकरण गुण स्थान में ५८ अनिवृत्त करण में २२ का बंध होता है सूक्ष्म सापराय गुण स्थान मे १०, उपशात मोह मे १, क्षीण मोह गुण स्थान मे एक व सयोग केवली के एक साता का बध होता है चौदहवा गुण स्थान बध रहित है।

मिथ्यात्वा विरतिश्चैव योगप्रमादसंयुक्तः।
यत्कषायनिबंधस्य पचहेतुर्जिनेन्द्रोक्तः॥ २६१॥

मिथ्यात्व पाच प्रकार व बारह अविरति, पद्रह योग और पंद्रह प्रमाद तथा २५ पच्चीस कषाये ये पाच बध के कारण भगवान जिनेन्द्रदेव कहे है। मिथ्यात्व के एकान्त मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व, सशय मिथ्यात्व। बारह अविरति स्पर्शन इन्द्रिय, सयम नही, रसना इन्द्रिय सयम नही, घ्राण इन्द्रिय सयम नही, चक्षु इन्द्रिय संयम नही, श्रोत्र इन्द्रिय, सयम नही, मन संयम नही। पृथ्वी काय अविनाश रूप संयम नही, जल-कायक अविराधना रूप संयम नही, अग्नि कायक जीव अविराधना रूप सयम नही वायुकायक जाव अविराधना रूप सयम नही, वनस्पति कायक जीव अविराधना रूप सयम नही, तथा दो इन्द्रिय तीन, चार, पाच इन्द्रिय जीव अविराधना रूप सयम नही, इस प्रकार बारह अविरति है। योग पद्रह मन के चार, वचन के चार, काय के सातयोग, प्रमाद के पद्रह भेद है चार विकथा स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, व चोर कथा पाच इन्द्रिय तथा चार कषायें व निद्रा और प्रचला ये सब भेद प्रमाद के है। पच्चीस कषायें अनतानुबधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ सोलह तथा नवनो कषाये। कुल पच्चीस॥ आस्रवो के ये सत्तावन भेद कहे गए है।

सयुक्ततैश्च विभावैः आत्मनोऽज्ञानेना संयमेन।
योमिथ्याभावे बध करोत्यनिश्चितकाले॥ २६२॥

यह अज्ञानी मोही प्राणी अपने मिथ्यात्व और अज्ञान भावो से युक्त होता नित्य ही मिथ्यात्व असयम क्रोधादि कषाय व योगों से पर द्रव्य जो पुद्गल की स्कध द्रव्य कर्म

वर्गणाओं को अपनी तरफ खींच कर बाधा करता है जो असंयमादि व मिथ्यादर्शन कषायें है वे सब ही विभाव है, जो पूर्व मे बाधी गई कर्म वर्गणायें उदयावली मे आ आकर प्रति समय खिरती रहती है, उन विभाव भावो से होने वाले भावो से ही यह जीव पुनः नवीन नवीन कर्मों से वध को प्राप्त होता है। ये मिथ्यात्व असयम कषायें और योग ये सब ही विभाव भाव है क्योंकि ये जीव के निज स्वाभाविक भाव नही है, पर द्रव्य के सम्बन्ध से प्राप्त हुए है। इन के सयोग या सम्बन्ध के द्वारा ही कर्मों का आस्रव हुआ है। जो समय प्रवद्ध है वे ही द्रव्य कर्म वर्गणायें कर्म रूप होकर आत्म प्रदेशो में एकी-भाव को प्राप्त होती रहती है। अथवा आत्म प्रदेशो मे एक मेक होकर बंध को प्राप्त होती है। २६२।

आगे वध के भेदो को कहते है

बंधश्चतुर्विधैव प्रकृति स्थित्यनुभाग प्रदेशैव।
प्रकृति प्रदेशय्योगै. अनुभाग स्थितोसकषायैः ॥२६३॥

वध के चार भेद है प्रकृति, स्थिति, अनुभाव, और प्रदेश वध के भेद से चार प्रकार का है। प्रकृति और प्रदेश वध योगो से होता है तथा स्थिति और अनुभाग बध मिथ्यात्व असयम और कपायो से होता है। यह प्रकृति बध स्वभाव से ही हुआ करता है, कि एक समय मे मोही अज्ञानी वहिरात्मा रागद्वेष से युक्त प्रति समय मे प्रकृति वंध को करता है। जो द्रव्य कर्म रूप पोद्‌गलिक द्रव्य कर्म वर्गणायें आकर्षित हुई हैं। वे कर्म रूप होकर परिणमन कर जाती है। और आत्म प्रदेशो मे दूध पानी की तरह एकमेक होकर मिल जाती है यह ही वंध है। उस वध की फल देने की शक्ति होती है उसको अनुभाग वंध कहते हैं। इस प्रकार बध के चार भेदों को कहा है ॥२६३॥

प्रकृतिर्वन्धोऽष्टविधो ज्ञानदर्शनवेदनीयगतिश्च मोहः।
आयुनामगोत्राणि अंतराय प्रकृतिर्मूलंम् ॥२६४॥

प्रकृति बध के मूल में आठ भेद हैं। वे इस प्रकार है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय. आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। जो आत्मा के निजी गुणो का घात करे या आच्छादन करे वह आवर्ण करने वाला आवर्णक है। जो आत्मा के ज्ञान गुण को अवरण करता है, वह ज्ञानावरण कर्म है। जो आत्मा के दर्शन गुण को आबरण करे, वह दर्शनाबरण कर्म है। जो आत्मा मे दुःख सुख, सुख दु ख का अनुभव कराता है व आत्मा के अव्यावाधगुण को प्रकट नही होने देता है उसको वेदनीय कर्म कहते है। जो जीव को मूछित करे व आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात करे वह दर्शन मोहनीय है। जो आत्मा के चरित्र गुण का घात करे वह चरित्र मोह है चरित्र मोह की अनतानुवधी क्रोधादि कषायो आत्मा के सम्यक्त्व गुण को स्थिर नही रहने देती है। अप्रत्याख्यान क्रोधादि चारो कषाये आत्मा के सयमा सयम भावो को नही होने देती है। प्रत्याख्यान की चारो आत्मा के सकल सयम गुण को प्रकट नही होने देती है। सज्वलन व नो कषाये आत्मा के यथाख्यान रूप स्वरूपाचरण चरित्र को प्रकट नही होने देती है। अथवा यथाख्यात रूप चारित्र का नाश करती है। आयु कर्म जीव एक गति व एक शरीर मे रोक रखता है। तथा आत्मा के अवगाहन गुण का घात

करता है। अथवा देव शरीर, नारक शरीर, त्रियच शरीर और मनुष्य शरीर मे रोक रखता है। नाम कर्म अनेक प्रकार का होता है समूह रूप से ४२ भेद है विशेष रूप से ९३ भेद है। यह नाम कर्म जीव के अनेक प्रकार के शरीर की रचना करता है। जिस प्रकार कुम्हार अनेक प्रकार के छोटे बड़े अनेक आकार के वर्तन बनाया करता है। वही कार्य नाम कर्म का है। और जो आत्मा के सूक्ष्मत्व गुण का घात करता है। आत्मा के सूक्ष्मत्व गुण को प्रकट नही होने देता है। गोत्र कर्म जीवो को ऊँच व नीच दो विभागों में बाटा करता है, जिस प्रकार चित्रकार चित्र बनाते समय यह चित्र राजा का है, यह दरिद्री का है, इस प्रकार ऊँच (नीच) कुल व जाति का है। तथा आत्मा के अगुरुलघुत्व गुण का घात करता है। अन्तराय कर्म अनेक प्रकार के कार्यो में विघ्न डालता है। जिस प्रकार राजा विचार करता है कि सयमी के लिये दान देना है तब भन्डारी रोक देता है, कि अभी नही एक माह व एक वर्ष बाद देना, क्योकि वे व्रती उस समय मे आवेंगे इत्यादि कहकर रोक लगा देता है। वह अतराय कर्म पाँच प्रकार का होता है दानन्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय। जो दान देते समय में दान नही देने देता है वह दानान्तराय कर्म है। जो लाभ होने वाला था परन्तु लाभ नही हो सका उसमें विघ्न उत्पन्न हो गया। जब सुन्दर मिष्ठान भोज्य वस्तुये खाने को प्राप्त थी कि दूसरे ने सामनें से भोजन को उठा लिया या माखी आ पड़ी तब भोज्य पदार्थ सब वही पड़ा रह गया यह भोगान्तराय है। उपभोगान्तराय—यह उपभोगान्तराय कर्म उपयोग की वस्तुओ का उपभोग नही करने देता है जिस प्रकार किसी की शादी हो गयी तब उसके शरीर मे रोग उत्पन्न हो गया और स्त्री के साथ उपभोग न कर सका। वीर्यान्तराय—जो शारीरिक शक्ति को प्रकट नही होने देता है तथा आत्मिकशक्ति को प्रकट नही होने देता है उसको वीर्यान्तराय कर्म कहते है। इन आठ कर्मो के बध से बधे हुए ससारी जीव संसार में दु:ख सहा करते है। इन आठो की काल मर्यादा का बध होना ही स्थिति बध है। जैसे ज्ञानावरण वेदनीय कर्म की स्थिति ३० कोटा कोटी दर्शनावर्ण अन्तराय कर्म की स्थिति है। मोहनीय कर्म की स्थिति ७० कोटा कोटी, सागर, की है। नाम और गोत्र कर्म की २० कोटा कोटी सागर की स्थिति है आयुकर्म की स्थिति ३३ सागर की है। इन कर्मो की जघन्य स्थिति वेदनीय कर्म की १२ मुहूर्त की है और गोत्र की ८ मुहूर्त की शेष कर्मो की स्थिति अतरमुहूर्त की है। जितनी काल मर्यादा को लेकर बध हुआ है जितने काल तक उन कर्मो के फल देने की शक्ति प्रकट नही होती है तब तक के काल को अवाधा काल कहते है। जब ये कर्म उदय में आ आकर फल देने लग जाय तब उसको अनुभाग बध कहते है। जिन द्रव्य कर्म वर्गणाओ को जीव समय प्रवद्ध कर (बाधता है) आस्रवित करता है और वे वर्गणायें कर्म रूप होकर आत्म प्रदेशो से सम्बन्धित हो जाती है यह प्रदेश बध ॥२६४॥

पंच नव द्वावाष्टाविंशति चतुर्द्विचत्वारिंश द्वौ।
पंचसंग्रह्यं खलु अष्टाचत्वारिंशाधिकशतं ॥२६५॥

इन आठों कर्मो के क्रमश: पाच ज्ञानावरण—मतिज्ञानावर्ण, श्रुत ज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मन:पर्यय ज्ञानावरण, केवल ज्ञानावरण दर्शनावरण के नौ भेद है, निद्रा, निद्रा, निद्रा, प्रचला, प्रचला, प्रचलास्त्यानगृद्धि, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण अवधि

दर्शनावरण और केवल दर्शनावरण, वेदनीय कर्म के दो भेद है, एक साता वेदनीय, दूसरा असाता वेदनीय। मोहनीय कर्म के दो भेद है एक दर्शन मोह, दूसरा चरित्र मोह दर्शन मोह की मिथ्यात्व मिश्र तथा सम्यक्त्व प्रकृति ये तीन कषाय, वेदनीय—अनतानुबधी अप्रत्यख्यान प्रत्याख्यान सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ इस प्रकार चारो के १६ तथा नौ नव कषायें, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, पुरुष, नपुसक वेद इस प्रकार २८ भेद हैं। आयु कर्म की चार है, देव आयु, नरक आयु, मनुष्य आयु और त्रियच आयु। गोत्र कर्म की दो है उच्च गोत्र, नीच गोत्र। नाम कर्म की ९३ प्रकृतिया है, गति चार देव, नरक, त्रियच, मनुष्य गति, जाति पाँच एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय पाच इन्द्रिय जाति। पाँच शरीर औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण। तीन अगोपाग, औदारिक, वैक्रियक आहारकअगोपाग। एक निर्माणकर्म पाँचबधन, औदारिक, वैक्रियक-आहारक तैजस कार्माण वधन। औदारिक सघात, वैक्रियक सघात, आहारक, सघात तैजस सघात, कार्माण संघात। छह सस्थान, समचतुरसख्यान स्वस्तिक सस्थान न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान, वामन सस्थान, कुब्जक सस्थान तथा हुण्डक सस्थान। सहनन छह है, वृज्र वृषभ नाराच, वज्र नाराच, नाराच, अर्घ नाराच, कीलित, ससृपाटिका सहनन। पाँच वर्ण, नीला, काला, लाल, पीत और सफेद, दो गध सुगध, दुर्गन्ध। रस पाच—खट्टा, मीठा, खारा, कषायला, कडुवा, आठ प्रकार का स्पर्श, शीत, उष्ण, कोमल, कठोर हल्का, भारी, स्निग्ध, रूक्ष। चार आनुपूर्वी—देवगत्यानुपूर्वी, नरकगत्यानुपूर्वी, त्रियंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी। एक अगुरुलघु एक उपघात, दूसरी परघात, एक आतप, एक उद्योत दो विहायोगति शुभ और अशुभ। एक उच्छवास, एक त्रस, एक वादर, एक सूक्ष्म, एक पर्याप्त, एक अपर्याप्त, एक प्रत्येक, एक साधारण, एक स्थिर, एकअस्थिर, शुभ, अशुभ, दो सुभगदुर्भग, सुरस्वर, दुस्वर, दो आदेय, अनादेय, दो, यशकीर्ति अपयश कीर्ति दो तीर्थकर नाम कर्म कुल ९३ है। गोत्र कर्म के दो नीच गोत्र, उच्च गोत्र। अतराय कर्म के पाँच भेद है दान, लाभ, भोग उपभोग और वीर्यान्तराय के भेद से १४८ भेद होते है।२६५।

कर्म निमत्तंभावो कर्म निमित्त कर्म विपाककाले।
भवति जीवस्य भाव बंधति दुष्टाष्टकर्माणाम्॥२६६॥

कर्मो के आने में जीव के शुभाशुभ भाव ही है उन भावों का ही जीवकर्ता होता है उन भावो से ही द्रव्य कर्म वर्गणाये आती है, तथा जिन कर्मो की जैसी उदयावली मे कर्म आ आकर फल देकर खिरते है, तत्काल मे जीव के भाव भी कर्मो के अनुसार ही हो जाते है इसलिए कर्मो का कारण कर्म भी है। कर्मो के कारण को पाकर जीव के शुभाशुभ भाव होते है। उन भावो से ही कर्म वर्गणायें आती हैं। और उनका बटवारा आठ कर्मो मे हो जाता है व उन दुष्टाष्ट कर्मो का बध जीव स्वय करता है। जब जीव के भाव अशुभ रूप आर्त ध्यान व रौद्रध्यान व सरम्भ, समारम्भ, आरम्भ मे प्रवृत्त होते है व क्रोध, मान, माया, लोभ, रूप परिणाम होते है, व हिसा, असत्य, चौर्य, व अब्रह्म व परिग्रह में आशक्ति का होना पचेन्द्रिय और मन व छह कायक जीवो की विराधना रूप संक्लिष्ट परिणामो से युक्त होता है। तब अशुभ द्रव्य कर्म आकर आत्मा के प्रदेशो के साथ एकमेक हो जाते है। वह अशुभ बध

है, तथा जब दया क्षमा सहित और (आरम्भ परिग्रह) आरम्भ रहित व परिग्रह से मर्छा रहित तथा धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान रूप व अणुव्रत महाव्रत समिति गुप्तिइ त्यादि की भावना का होना शुभ भाव हैं, तथा क्रोधादि कषाय रहित असंयम रहित सम्यक्त्व पूर्वक सयम का धारण करना दान देना पूजा करना ये भाव तथा क्रोधादिकषाय रहित असयम रहित सम्यक्त्व पूर्वक संयम का धारण करना ये भाव शुभ है। इनसे होने वालाबंध शुभ बध है। इस प्रकार बंध के व आस्रव व पुण्य और पाप रूप बध के कारण अपने शुभाशुभ भाव ही है। शुभभाव सम्यक्त्व पूर्वक और अशुभ भाव मिथ्यात्व पूर्वक ही होते है। ये ही दोनो पुण्य और पाप है ॥२६६॥

यत्कर्मबंधयोग्य विभागं सर्वाधिक वेदनीयस्य।
तद्धीनं मोहस्य हीनंधीर्दर्शनान्तराये ॥२६७॥
तद्धीन नामगोत्रयोरायुवस्य स्तोकोऽत्यम्।
प्राप्त विपाककाले वेदकोऽनुभवति कर्मफलम् ॥२६८॥

जो समय प्रवद्ध का आस्रव हुआ है उसका आठों कर्मो में हिस्सा अथवा बटवारा हो जाता है। प्रथम तो सब कर्मो का बटवारा समान रूप से होता है। शेष जो बहुभाग रह जाता है उसमें से वेदनीय कर्म को बहुभाग देकर शेष रह जाता है उसमें से भी बहुभाग मोहनीय का होता है। उसमें से जो शेष रह जाता है, वह ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय कर्म को दिया जब कुछ शेष रह गया उसमें से भी बहुभाग नाम और गोत्र को दे दिया जब उसमें से अन्य शेष रहा, उसको आयु कर्म को दिया इस प्रकार आठों कर्मो के विभाग होते है।

वेदनीय कर्म में अधिक बहु भाग देने का कारण यह है कि वेदनीय कर्म शुभ साता वेदनीय अशुभ असाता वेदनीय रूप होकर वेदन करता है, तब वे वेदनीय कर्म वर्गणायें खिर जाती है। वेदनीय, कर्म की वर्गणायें प्रति समय असख्यात असख्यात खिरती रहती है।

उससे कम मोहनीय कर्म का भाग कहा इसका कारण यह है, कि मोहनीय कर्म की स्थिती सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर की है। इस कर्म की वर्गणायें बहुत काल तक खिरा करती है। परन्तु वेदनीय की अपेक्षा मोहनीय कर्म की वर्गणायें असंख्यात भाग हीन खिरती है। ज्ञानवरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीनों कर्मो की स्थिति तीस कोटा कोटी सागर की है इसलिए मोहनीय से उनको बहुभाग कम दिया उसमें से तीनों का समभाग बटवारा किया अब शेष बहुभाग रहा उसमें से भी बहुभाग नाम और गोत्र को बराबर बटवारा करने के पीछे, जो कुछ शेष रह गया वह आयु कर्म को दिया। अथवा सबसे थोड़ा हिस्सा आयु कर्म का रह जाता है। इसका कारण यह है कि आयु कर्म की स्थिति सब से स्तोक है।

जो समय प्रवद्ध द्रव्य कर्म वर्गणायें अथवा वर्गणाओं के समूह स्पर्धक जीवन ने अपने भावों के द्वारा ग्रहण किए है। उनका आठों कर्मो में बटवारा होता है। प्रथम सब कर्मो का समान भाग मे बटवारा किया, तत्पश्चात जो शेष द्रव्य बची उस द्रव्य में से बहुत सा हिस्सा वेदनीय कर्म को दिया। शेष रहा उसमें से जिनकी स्थिति अधिक उनको अधिक द्रव्य दिया, जिनकी कम है, उनको कम दिया जिनकी समान है उनको समान दिया। जब सब का हिस्सा दे दिया गया अब शेष रहा वह सब द्रव्य आयु कर्म को दिया, इस प्रकार

कर्मो में वर्गणाश्रो का बटवारा यथा क्रम से हुआ करता है। इन कर्मो का जब विपाक समय आ जाता है। तब जीव हो फल भोगता है। इतना विशेष है कि आयुकर्म का बध सात कर्मों की तरह निरतर नही हुआ करता है क्योकि मनुष्यो व त्रयञ्चो का आयुकर्म का बध भुक्तायु के विभाग मे ही पड़ता है जब मनुष्य व त्रियच की आयु का दो भाग व्यतीत हो जावे तब आयु का बध होता है ऐसे बध का काल जीवन में अधिक से अधिक आठ बार आता है यदि उसमे उत्तर आयु का बध नही हो तो मरणान्तकाल मे होता है। देव और नारकीयो की भुक्तायु का जब छह महीना शेष रह जाते है तब उत्तर आयु का बध होता है।२६७।२६८।

> बध को बंध युक्तः दीर्घकालात् कृत्कर्मानुसारैं
> रसयित्वाद् विपाक च वंधति वहुवोधोभावेन॥२६९॥

(बध सहित यह) अनत काल से यह जीव कर्मों का बधक होकर कर्मो को बाधता चला आ रहा है। पूर्वोपार्जित कर्म फल दे देकर खिरते जाते है। जीव कर्मो के फल को भोगता हुआ भी नवीन नवीन कर्मो का बध करता रहता है। उदयावली के अनुसार ही जीव के भाव हो जाते है उन भावो से ही कर्मास्रव व बध होता रहता है। वे सब भाव शुभ तथा अशुभ ही अपने बध के कारण होते है॥२६९॥

> वंधति नारकस्यायु स्तीव्र संक्लिष्टो मिथ्यात्वेन सह॥
> देव: संक्लिष्टैर्वात्रिर्थश्च एकेन्द्रियायुश्च॥२७९॥
> नारकस्त्रियश्चनरायुश्देवनारक स्व स्व वंधोया॥
> त्रिश्चाश्च मनुष्या. चतुरायुश्च नित्यं वंधन्ति॥२७१॥

तीव्र सक्लिष्ट परिणाम वाला मिथ्यादृष्टि जीव ही नारक आयु का बंध करता है। तथा मिथ्यादृष्टि संक्लिष्ट परिणाम वाला ही एकेन्द्रिय की आयु का बध करता है। अथवा त्रियच गति का बन्ध करता है। नारकी जीव त्रियच मनुष्य आयु का बध करता है परन्तु देव आयु व नरकायु का बध नही करता है, नारकी नरक आयु व देव आयु का बध नही करता है। त्रिर्यंच मनुष्य चारों ही आयु का बध करते है। यह वंध मिथ्या दृष्टि सक्लिष्ट परिणाम वालो की अपेक्षा कर सामान्य से कहा है। २७०। २७१॥

> आगमन द्वारेण यत सरस्यच्छति सरोवरे च नित्यम्॥
> संग्रहनीरमेव च बध भवति जीवानां यत्॥ २७२॥
> सप्रसन्न चिन्तेयत् कोऽपि करोन्युपसंहार वृक्षम्
> स्निग्धलिप्त गात्रेन रजसा लिपनितच्चकाले॥ २७३॥
> समोहे प्रीत्यायत् बहुविध: करोति स्वाभावान् नित्यम्
> वधति कर्म रजसा यत्शुभाशुभैर्भावैश्च॥२७४॥

जिस प्रकार तालाब मे पानी जिन मोरियो में होकर आता है और तालाब में

पानी आ-आकर एकत्र हो जाता है अथवा भर जाता है। उसी प्रकार जीव के द्वारा किये गये मिथ्यात्व व क्रोध, मान, माया, लोभ व पचेन्द्रिय भोगों में अत्यन्त गृद्धता तथा रागद्वेष मात्सर्य पर निन्दा और असयमादि सब भाव है वही कर्मो के आस्रव के दरवाजे है। जिनमें होकर कर्मो का आस्रव होता है, और आत्मप्रदेश रूपी तालाब में भर जाते है यही बन्ध है। इन भावों से संसारी जीव हमेशा ही आस्रव व बन्ध कर्मो को किया करता है।

जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने शरीर पर तेल चुपड़कर जगल में जाता है, वहाँ हरे व सूखे अनेक वृक्षों को काटता है जिससे वृक्ष में से धूल झरती है और उसके शरीर पर गिरकर चिपक जाती है। उस काल में ही उसके बन्ध कहा जाता है। तब यह संसारी प्राणी रागयुक्त होता है तब अनेक प्रकार के अपने भावों को करता है, उन भावों के द्वारा आई हुई कर्म-रज आत्म प्रदेशो में मिलकर तदरूप हो जाती है। अथवा आत्म प्रदेशों में लिपट जाती है। जब जीव अपने पर निमित्त से होने वाले शुभ या अशुभ अनेक प्रकार के भाव करता है, किये हुए भावों के द्वारा जो आस्रव हुआ यह भाव बन्ध है। और आत्म प्रदेशो के मिलने रूप सन्मुख है यह द्रव्य बंध है। जो वर्गणायें कर्म रूप होकर एकमेक हो गई। अथवा आठ कर्म रूप हो गई है, यह द्रव्य बध है। वह चार प्रकार का है प्रकृति स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध। ज्ञानावरणादि रूप में परिणमित होती है यह द्रव्य बन्ध अनेक प्रकार का है।

क्षिप्त्वाबंधं चतुर्धाः शिवपुरमिति वासश्चयत्संग्रहीतम्।
सिद्धानंताश्चलोकाग्रयनुपम गुणाः सयताकंप भावे॥
अन्तातीताश्च कृतकृत्यमविचलमकर्माष्टधर्मसयुक्ताः।
जानन् पश्यन्समस्तं स्वतनुरिवमहात्मा निरजनमस्तान्॥२७५॥

अनतकाल से जीव और कर्मो का सबध चला आ रहा था। जीव कर्मो का संचय करता ही रहता था। उन कर्मो के फल को भोगता और नये-नये कर्मो का संचय कर पुनः बांध लेता था परन्तु सचय किये हुए द्रव्य कर्मो को जब नाश कर दिया व चार प्रकार के बधन को नष्ट कर दिया, तब लोक के अग्रभाग में जा विराजमान हुआ। अथवा शिव पुर मे वास करने लगा। अविचल है, निरंजन है, अनुपम अनत गुणों का धारक है। अकम्प है तथा अन्तातीत है, जिनके काल का अत नही, कि कितने काल तक निवास करेगा। वे शिवपुरी में निवास करते अपने अनत गुणो का अनुभव करते रहते हैं। तथा ज्ञानावरणादि आठ द्रव्य व रागद्वेषादि भाव कर्म औदारिकादि नौ कर्म इनसे रहित है। तथा सम्यक्त्वादि आठ गुणो से सहित अपने पूर्व शरीर की अवगाहना से युक्त तथा आकार वाले है वे सिद्ध भगवान सम्पूर्ण पदार्थो व उनकी पर्यायो को एक समय में ही देखते है और जानते है, वे पर्यायें अनत अनत होती हैं उन महात्माओ को मै ग्रन्थकार नमस्कार करता हूं।

जिन महात्माओ ने पूर्वोपार्जित अनेक प्रकार के रस, वर्ण गध स्पर्शन व शक्ति के धारक ज्ञानावरणादिक द्रव्य कर्मो को अपने साहस और धैर्यता व चरित्र तप व ध्यान रूपी तलवार से नष्ट कर दिया। उसी समय तीनो लोक व अलोकाकाश में जितने द्रव्यों और

उन सब द्रव्यो की होने वाली व वर्तमान व बीती हुई अनन्त पर्यायें, भविष्य मे होने वाली अनंत पर्यायें जिनके ज्ञान मे जाने जानी लगी व दर्शन मे देखी जाने लगी इसलिए अनत सिद्ध भगवान ज्ञाता द्रष्टा है। कर्म रूपी अजन के क्षय होने के कारण वे सिद्ध भगवान निरजन है। ये सिद्ध भगवान अन्तिम शरीर के आकार से युक्त अवगाहना को लिए हुए शिवपुरी में विराजमान हैं। उर्ध्व स्वभाव होने के कारण ही वे भगवान लोक के अन्तिम भाग में विराजमान हो गये हैं। क्योंकि आगे धर्मादि द्रव्यो का अभाव है। उन सिद्ध भगवान के जो गुण हैं वे उपमा से रहित हैं। उनको उपमा के योग्य ससार मे कोई वस्तु ही नही है कि जिसकी उपमा दी जा सके। वे अनुपम गुण अनत और स्वाभाविक है व अपने स्वभाव मे ही प्रकट हुए हैं। जिन गुणो को कर्मों ने अच्छादन कर लिया था जब वे कर्म क्षय हो गये तब वे सब गुण प्रकट स्वभाव मे ही हुए है। वे अकम्प है अचल है, कल्प काल की मारुत चलने पर भी वे चलायमान नही होते हैं। और वे ससार में पुनः जन्म मरण या पोषण या विध्वंसन करने को नही आते हैं। अनेक मतावलम्बी यह कहते हैं कि जब देवताओ पर सकट आता है तब भगवान अवतार लेते हैं और दैत्यो का नाश कर पुन. मोक्ष चले जाते हैं। इस मान्यता को यहा पर विचार कर के कहा गया है कि सिद्ध भगवान अचल है। वे सिद्ध भगवान अन्तातीत गुणो के धारक है, जिन के गुणो का अन्त नही होने से वे अन्तातीत हैं अथवा लोकाग्र में ही अनतकाल तक निवास करेंगे वे ससार मे पुनः नही आवेंगे। कोई कहता है कि विशेष गुणो का क्षय हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है यह भी बात उन सिद्धो मे नही बनती है। क्योकि वे तो ज्ञाता दृष्टा है वे अपने केवल दर्शन से देखते है केवल ज्ञान से जानते है। ऐसा ससार अवस्था मे कौन मूर्ख होगा कि अपने आत्मिक विशेष गुणो का नाश कर मोक्ष की याचना करेगा ? अपने गुणो को नाश करने को गृहवास छोड़कर जगल मे एकान्त में वास और सयम तपस्या को करेगा ? जब जीव के गुणो के घातक व उपघातक द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि भाव कर्म रागद्वेष ईर्षा मत्सर व औदारिकादि शरीरो का अत्यन्त क्षय हो जाता है कि जब जीव की अन्तिम अवस्था हो जाती है। उसके पीछे कोई अवस्था नही रह जाती है (तब जीव को मोक्ष) उसका ही नाम मोक्ष है। इन सब गुणो से युक्त जो शिवपुर व लोकाग्रवासी सिद्ध है वे सब प्रकार के बधन से रहित है उनको हम बार-बार मस्तक झुकाकर नमस्कार करते है।

यद्भावेनाऽऽयाति कर्माणि तद्भावस्य निरोधं॥
सवर याति सुदृढः भावकर्म द्रव्यस्य रोधम्।२७६।

जिस अपने भाव के द्वारा भाव कर्मो का आस्रव होता था तथा द्रव्य कर्मो का आस्रव होता था उन भावो का निरोध करने पर भाव कर्म और द्रव्य कर्म इन दोनो का अवश्य ही निरोध हो जाता है और सम्वर होता है। जब कर्मो का आना रुक जाता है उसी समय ये द्रव्य कर्मो का आना भी बद हो जाता है। क्योकि द्रव्य कर्म भाव कर्म के आश्रित है। परन्तु भाव कर्म द्रव्य कर्म के आधीन नही वे जीव के शुभाशुभ परिणामो के ही आधीन है। जब जैसे जीव के शुभभाव होवेगे तो शुभास्रव होगा और अशुभभाव होगे। तब अशुभ द्रव्य कर्म आवेगे जब ये शुभाशुभ भाव नही होगे तब भाव कर्म व द्रव्य कर्म दोनो ही रुक जायेंगे।

और संवर हो जायगा। भाव भी दो प्रकार के होते है, एक शुभ भाव एक अशुभ भाव। राग द्वेष कषाय रूप परिणामों का होना तथा दुश्रुति अपध्यान हिंसादान प्रमाद चर्या अनर्थ दण्ड समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ तथा अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतीचार, अनाचार, रूप हैं मिथ्यात्व कषाय युक्त सक्लिष्ट परिणाम है, व हिसानदी मृषानदी चौर्यानदी, परिग्रहानंदी ये चार रौद्रध्यान व इष्ट वियोग, अनिष्ट सयोग, वेदना, अनुभवनिदान, बन्ध ये कुध्यान है, व्यसन सात, सात भय असंयम परिणाम ये सब अशुभ भाव है (इन अशुभ भावों को) कृष्ण, नील, कापोत, लेश्याये तथा मनोदण्ड, वचन दण्ड, काय दण्ड ये सब अशुभ भाव है पचेन्द्रिय के विषयों मे अत्यन्त मृदुताका होना तथा षट् काय जीवो की विराधना के भावो का होना सब अशुभ भाव है इन सब का त्याग कर शुभ भावो में प्रवृत्ति होने पर अशुभ भाव व द्रव्य आस्रव का सवर हो जाता है। तथा बन्ध का भी सवर हो जाता है। द्रव्य सवर और भाव संवर दोनों एक साथ ही हुआ करते है। क्योकि द्रव्य कर्मो का साधन तो भाव कर्म है, क्योंकि साधन और साध्य का तादात्मिक सबध है, क्योकि बिना साधन के साध्य की सिद्धि नही होती है जैसे अग्नि का साधन धूम है धुआ के होने पर अग्नि जानी जाती है उसी प्रकार भाव कर्म द्रव्य कर्म का साधन है।२७६।

यदशुभ भावोद्भूतं तन्निरुद्धं शुभभावेषु प्रवृत्ति ॥
व्रत समितिगुप्तिः सम्यक्त्वेशीलस्वभावैः। २७७ ॥

जिन कारणों से अपने अशुभ भाव होते है, उन कारणों का त्याग करना सोही सवर है। जो अपने आत्मा में अशुभ भाव उत्पन्न होते है, उन भावो का रोकथाम करना यह सम्वर है। अथवा अशुभ भाव जो आस्रव और बधतत्व के प्रकरण मे कहे गये भावो का त्याग कर शुभ भावों में प्रवृत्ति का होना सो अशुभ भाव संवर है। अहिंसा से हिंसा की रोक लगाना व संयम से असयम, हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहरूप भावना व इच्छाओं का रोकना संवर है। पाँचसमितियो से पापोपदेश रूप पांच अनर्थदण्डों का रोकना व मनोदण्ड, वचनदण्ड कायदण्डो का मनगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति से निरोध करना सो त्रिदण्ड सवर है। हिंसा का अहिंसा से व असत्य का सत्यव्रत से, चौर्य का अचौर्य व्रत से, अब्रह्मचर्य, का ब्रह्मचर्य से व परिग्रह का सन्तोष से व भोगोपभोग परिमाण कर रोकने पर संवर होता है। ईर्या समिति से प्रमाद का निरोध करना भाषा समिति से पापोपदेश व दुश्रुती का निरोध करना सवर हैं। तथा हिसादान का सवर तथा सप्त शीलो से सात व्यसनों का (सम्वर) निरोध करना सवर है। सम्यक्त्व के निशाकित अग से सप्त भयों का निरोध, सम्यक्त्व से मिथ्यात्व का बहिष्कार कर देने पर सवर होता है। सब प्रकार के आस्रवो का अपने शील स्वभाव से सम्वर करना चाहिए। क्योंकि शील स्वभाव से सब प्रकार के आस्रवो का सम्वर होता है। शील आत्मा का निश्चय सम्यक्त्व ज्ञान चरित्र रूप है व शक्ति है यह शील ही द्रव्यास्रव और भावास्रव का निरोध स्वभाव रूप आत्मा ही है वही निजी आयुध है ॥२७७॥

क्रोधादि कषायाणां निरोधोत्तयक्षमादि दश धर्मैः।
असयमस्य संयमेन मिथ्यात्वं च सम्यक्त्वेन ॥ २७८ ॥

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्य इन दस धर्मों के द्वारा क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो कषायो का निरोध करने पर सम्वर होता है। असंयम भाव को सयम भाव से निरोध करने पर सयम भाव होता है। विशेष यह है अशुभ क्रियाओ व भावो का प्रतिपक्षी शुभ भाव व शुभ क्रियायें है वे शुभभाव क्रियाये परम्परा मोक्ष का कारण है। २७८ ॥

यदार्तरौद्रध्याने शुभभावेन गुप्ति समितिभि: सह ॥
अनुप्रेक्षा परीषहजयं. उद्भवति सवरणेद्विविधे ॥ २७९ ॥

आर्तध्यान व रौद्र ध्यान ये दोनो ही अशुभ है, इनका कुध्यान ऐसा भी नाम है। इन दोनो ध्यानो का निरोध करने के लिए तीन गुप्ति व पाँच समितिया है। जब जीव गुप्तियो मे सलग्न होगा तभी आर्त के चार रौद्र के चारो अशुभ ध्यान रुक जायेंगे। और शुभ धर्म ध्यान व शुद्ध शुक्ल ध्यान की प्राप्ति होगी। बारह अनुप्रेक्षाओ का बार-बार चिन्तन करने से इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग वेदनानुभव और निदानवंध नाम के आर्त ध्यान नही आ सकते है। न राग और द्वेष की ही वृद्धि व आगमन होगा। क्योकि जहाँ रुचि नही, वहा अरुचि होती है। जहाँ शीतलता है वहाँ उष्णता नही रह सकती है, जहाँ पर बारह भावनायें वैराग्य को जन्म दे रही है, सब ससार व शरीर व योग सम्बन्धो से विरक्त भाव जाग्रत है वहाँ अविरक्त रूप आर्त व रौद्र ध्यान कैसे रह सकते है। वावीस परीषहो के जीतने पर अथवा समभाव धारण करने पर सब प्रकार का सम्वर होता है। २७९ ॥

अशुभभाव निवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिर्ज्ञातिव्यश्चारित्रम् ॥
व्रत समिति गुप्ति रूपं चरित्रश्य त्रयोदशभेदम् ॥ २८० ॥

अशुभ क्रियाओ का त्याग करना और शुभ क्रियाओ में प्रवृत्ति का होना ही चारित्र है। वह चारित्र अहिंसा महाव्रत सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत, परिग्रह त्याग, महाव्रत, तथा ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति, उच्चार प्रस्रवण समिति तथा मनोगुप्ति वचोगुप्ति कायगुप्ति के भेद से तेरह प्रकार का है वह सम्वर का कारण है।

मिथ्यात्व गुणस्थान के अन्त मे मिथ्यात्व हुण्डक सस्थान, नपुंसक वेद असप्राप्त सृपाटि का सहनन, एकेन्द्रिय स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलत्रय ३ नरकगति नृकगत्यानुपूर्वी, और नरक आयु इन सोलह प्रकृतियो का सम्वर होता है। सासादन के अन्त में अनन्ता नुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्यान, गृद्धि निद्रा, प्रचला निद्रा, निद्रा प्रचला, प्रचला दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोध, परिमण्डल, सस्थान, स्वस्तिक, कुब्जक, वामन संस्थान। वज्र-नाराच, नाराच अर्धनाराच, कीलित, सहनन, अप्रशस्त, विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, त्रियंच-गति त्रियच गत्यानुपूर्वी, उद्योत, त्रियच आयु ये पच्चीस का सम्वर होता है। मिश्रगुण स्थान मे देव आयु का बन्ध नही है सम्वर शून्य है। अव्रति चौथे गुण स्थान मे तीर्थंकर देववमनुष्य आयु का वन्ध है। चौथे के अन्त मे अप्रत्याख्यान क्रोध, मान माया लोभ वज्र वृषभ नाराच सहनन औदारिक अगोपाग मनुष्यगति और गत्यानुपूर्वी इन दस का विच्छुत्ति है। देश सयत मे प्रत्याख्यान चोकडी का ही सम्वर है। प्रमत्त गुणस्थान के अन्त मे अस्थिर अशुभ असात-

वेदनीय अयशकीर्ति, अरति, शोक, इन छः का सम्वर होता है। अप्रमत्त गुण स्थान के अन्त में देव आयु का सम्बर है। अपूर्व करण के सप्त भाग है जिनमें से प्रथम भाग में निद्रा और और प्रचला दूसरे से लेकर पाँचवें भाग तक सम्वर नहीं होता है छठवे भाग के अन्त में तीर्थंकर निर्माण शुभ विहायोगति, पचेन्द्रिय तैजस, कार्माण, आहारक, अगोपांग, समचतुरस्र सस्थान, देवगति देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियक, अगोपाँग, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरू लघु उपघात परघात, उच्छ्वास, त्रसवादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, शुभग, सुस्वर, आदेय इन तीस का सवर है। सातवे भाग में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन चार का संवर है। अनिवृत्त करण के पांच भाग है—पहले भाग में पुरुषवेद, दूसरे भाग में सज्वलन, क्रोध, तीसरे भाग में मान चौथे भाग में माया, पाचवे भाग में सज्वलन लोभ का सम्वर है। सूक्ष्म सापराय में मति ज्ञानावरणादि पाँच चक्षुदर्शनावरणादि ४ दानान्तरायादि पाच यशकीर्ति और उच्चगोत्र का सम्वर होता है। उपशात मोह क्षीण मोह संयोग केवली में सम्वर नही है। परन्तु तेरहवे सयोग के अन्त में वेदनीय कर्म का सम्वर हो जाता है। इस प्रकार गुणस्थानो में सम्वर का कथन किया है ॥२८०॥

यत्सक्लिष्टेन भवति च भावेन आ स्रवेवम्।
हेतुर्विज्ञाय शुभमुपयोगे निरोधेन नित्यम्॥
द्रव्याणां सम्वर भवति युग्म च जीवस्य योगैः।
इच्छानां रोधनमशुभभावान् विशेषर्भवेयुः॥ २८१॥

जिन सक्लिष्ट परिणामो से हमेशा आस्रव होता था, वे ही परिणाम जीव के बन्ध के कारण थे। उन कारणो को दूर करके समभाव में प्रवृत्ति का होना ही सम्वर है। जिस समय भावास्रव रुक जाता है, उसी समय द्रव्यास्रव भी रुक जाता है। इस प्रकार द्रव्य सम्वर और भाव सम्वर एक साथ ही होते है। इच्छाओं का रोकना विशेष सम्वर का कारण है, क्योकि इच्छायें ही आस्रव व बन्ध का कारण होती हैं। जिन योगों के द्वारा कर्मास्रव होता था। तथा असयम मिथ्यात्व और कषाये प्रमाद व इच्छायें कही गई है उनका निरोध कर सम्यकत्व संयम समिति गुप्तियों का भली प्रकार आचरण में लाना तथा आर्त रौद्र ध्यानों का त्याग कर धर्म, ध्यान, देवपूजा, गुरुपास्ति, सयम, स्वाध्याय, दान व महाव्रत अणुव्रत व छः आवश्यक व देशधर्म का पालन करना। इस लोक पर लोक भय मिथ्या माया निदान ये तीन शल्प आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञा तथा कृष्ण, नील, कापोत इन तीन अशुभ लेश्या तथा अन्तरग परिग्रह, चौदह प्रकार व वाह्य परिग्रह दस प्रकार की इच्छाओ का त्याग करना सो सम्वर का कारण है। स्त्री कथा, राजकथा, भोजन कथा चोर कथा इत्यादि का त्याग करने पर सम्वर होता है। यह विशेष होता है। जहां पर मनोगुप्ति रहती है वहाँ पर आर्तध्यान व रौद्रध्यान व इस लोकसज्ञा परलोक आहरादि सज्ञायें तथा क्रोधादि कषायें नही ठहर सकती है। जहा पर वचन गुप्ति होती है अकथा और विकथायें नही रह सकती है। जहां पर काय गुप्ति रहती है वहाँ पर आरम्भादि हिसामय क्रियायें नही होती है। सम्वर इस प्रकार है कि तालाब की जिन मोरियों में होकर पानी आता था उन को बन्द करना है। भाव

सहित भक्ति दान स्वाध्याय एवं नियम ये सब सम्बर के हेतु है इनसे ही कर्मो का आस्रव नही होता है। इति सम्वर तत्व। २८१॥

आगे निर्जरातत्व का स्वरूप कहते है।

सविपाकमविपाकञ्च उदयेफलरसं दत्वा निर्जीणम्।
प्रयत्नेन न क्षिप्यं कर्मागम समये शीलम्॥२८२॥
कर्माणां स्थितिः पूर्ण प्रतिसमये विकरन्ति सम्बन्धम्॥
उत्कृष्ट मध्यम जघन्य विपाके रस निर्जीण।२८३॥

निर्जरा दो प्रकार की है एक द्रव्य निर्जरा एक भाव निर्जरा तथा सविपाक और अविपाक निर्जरा के भेद से। सविपाक निर्जरा उसको कहते है– कर्म उदयावली में आकर अपना रस देकर निर्जीर्ण हो जाते है परन्तु नवीन कर्मो का आस्रव जिसमे निरन्तर होता रहता है। कर्मो के उदय काल में जीव को जैसा रस देते है उस रस के अनुसार दुखी व आर्तध्यानी होता है व रौद्र ध्यानी होकर अनेक भेद वाले उत्तम, मध्यम, जघन्य, सक्लिष्ट भावो से तत्काल मे कर्मो का आस्रवक होता है जिससे पुनः कर्मोका आस्रव और बन्ध को प्राप्त होता है यह सविपाक निर्जरा कही गई है। जो सब ससारी जीवो के प्रति समय होती है, परन्तु यह बहुत कर्मास्रव और बन्ध का कारण भी है। प्रत्येक प्राणी के होती है भव्य और अभव्य दोनो के होती है। जो ज्ञानावरणादि कर्मो की स्थिति का बध किया था उनकी अवाधा काल व्यतीत होने पर रस देने की शक्ति प्रकट होती है। जो कर्म समय प्रवद्ध से वाँधे थे वे ही उदयावली में आकर अपना रस असंख्यातकाल मे दिखाते है, क्योकि कर्मो की स्थिति उत्तम, मध्यम, जघन्य, रूप से तीन प्रकार की होती है। जैसे ज्ञानवरणादि कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटी सागर की है और जघन्य अतरंर्मुहूर्त की है मध्यम के असख्यात भेद है। और मध्यम काल में व उत्कृष्ट व जघन्य काल मे फल देकर निर्जीण होते है यह सविपाक निर्जरा है। जिस निर्जरा मे प्रयत्न पुरुषार्थ का कोई कार्य नही पाया जाता है।२८२।२८३॥

वाह्यभ्यन्तरोपाधिश्च संसार शरीरं भोगेभ्यः
विरक्तेः चित्ते मुनिः निर्जरन्ति वद्धकर्माणम्॥२८४॥
सम्वर पूर्वक यद् गृहीत्वा सुनिश्चिते चारित्रे।
घोरतपाचरन्ति सुनिश्चितं भवति निर्जरा॥२८५॥

जब योगी वाह्य में तो हिंसादि पापो का तथा अभ्यन्तर मे राग द्वेष मोह कषायो का त्यागकर चारित्र मे लवलीन होता है। वाह्य में वास्तु, धनधान्य, दास, दासी, वस्त्र, आभूषण क्षेत्र तथा बर्तन सोने या चांदी के पीतल या तावा के उनका त्याग करते है। तथा आभ्यन्तर में विराजमान हुए मिथ्यात्व और क्रोध, मान, माया, लोभ, तथा हास्य, रति, अरति, शोकभय जुगुप्सा, स्त्री वेद, नपुंसक वेद पुरुष वेद, रूप कषायो का त्याग करते हुए व शरीर से भी ममता भाव का त्याग कर देते है। तथा ससार शरीर और पचेन्द्रियो के विषय व्यापारो से रहित होते हुए संवर पूर्वक चारित्र धारण करके संयम तप में लीन होते है तब वे कर्मो की निर्जरा करने मे समर्थ होते है। तथा चारित्र के द्वारा कर्मास्रवो का सम्वर करते हुए घोर

तप करके कर्मो की स्थिति व फल देनें की शक्ति विशेष को नष्ट करते है उस समय उनके अविपाक निर्जरा नियम से होती है।

विशेष यह है कि जबतक जीव के ऊपर उपाधिरूपी बोझा लदा रहता है तब तक वह उठ नही सकता है और उसके निश्चय सम्यक्त्व और चरित्र नही होते है। व्यवहार और निश्चय सम्यक्त्व चरित्र है वही कर्मो का अस्रव रोकने में समर्थ होता हैं। तथा चारित्र से ही कर्मों की विशेष निर्जरा कही है, जब योगी जब दोनो प्रकार के चरित्र से युक्त होते हुए प्रमाद से रहित हो जब-तप और ध्यान करते है तब उनके प्रति समय असख्यात असख्यातगुणी निर्जरा होती है। जिस प्रकार आम पर बौर आया हुआ है और उसमे आम आवेंगे वे काल-पाकर पकेंगे। परन्तु अभी बौर आया मेघो की गर्जना होने लगी बिजली कड़कड़ाने लगी तो वह बौर तथा फल खिर जाते है उस बौर के स्थान मे फल देने की व रस देने की शक्ति नही रह जाती है। उसी प्रकार यहाँ पर अविपाक निर्जरा समझना चाहिये। जबतक जीव संसार भ्रमण के कारणो को जानकर उनकारणों से होनेवाले आस्रव वध और उनका रसरूप दुःख है ऐसा जान कर विरक्त होता है व पंचेन्द्रिय सम्बन्धी योग और उपयोगों से अरुचि होती है तथा शरीर की अवस्था विशेष को जानकर शरीर से ममत्व त्यागकर सयमाचरण चारित्र धारण करने को समर्थ होता है। चारित्र धारण करने वाला भव्य जीव ही निर्जरा करने वाला होता है। २८४।२८५।।

इच्छानिरोधस्तपः पंचेद्रियविषयनिग्रह नित्यम्
सिखण्डीध्वनिश्रुत्वा पन्नगाः गोशीर विहाय ।।२८६।।
जिन भक्तौ संसक्ता सम्यक्त्वादि विशेष गुणलीनाः।
प्राज्ञः सतुण्टश्चेत निर्जरा वहु प्रदृश्यंते ।।२८७।।

जिससमयजीवससारकी आगामी वृद्धि के कारणपचेन्द्रियों के विषय भोगो में गृद्धता व इच्छाओं का निरोध करता है। शील संयम तप आदि कर आगामी फलस्वरूप राज्य वैभव व सुखों कीइच्छाओ का त्याग करता है तब पूर्वोपार्जित कर्म इस प्रकार ढीले पड जाते है कि जिस प्रकार जगली मोर की आवाज श्रवण कर चदन के वृक्ष पर लिपटे हुए सर्प उस चन्दन के पेड़ को छोड़कर भागने लग जाते है। अथवा बधन ढीले पड़ जाते है। उसी प्रकार सम्यक्त्व पूर्वक सयम तप व ध्यान की हुकार सुनकर कर्म रूपी सर्पो के बधन ढीले हो जाते है। अथवा जो पूर्वोपार्जित कर्म रूपी जल तालाब मे अधिक ताप पड़ने पर सूख जाता है उसी प्रकार कर्मो की गति जानना चाहिये। जो सम्यक्त्वादि विशेष गुणो में लीन है तथा जिनके हृदय जिनेन्द्र भगवान की भक्ति मे ससक्त है सब प्रकार की इच्छाओं व चिन्ताओ का नाश कर दिया है तथा सतोष को प्राप्त हो रहे है तथा जो सुख व दुःख में समता भाव को धारण किये है ऐसे बुद्धिमान सवर निर्जरा आस्रव वंध इनके कारणों को जानने वाले संतोषी है उनके सतत निर्जरा की वृद्धि होती है। वह निर्जरा प्रति समय असंख्यात गुणी होती है। यह निर्जरा जिन भक्त सम्यग्दृष्टि सयमी वीतरागी मुनियों के ही होती है २८६।२८७

सर्वशास्त्रज्ञोऽर्थं सयमेतपे लीन विगतरागः ।।
सुखदु खे समभाव विशेषो निर्जराजिनोक्तः ।।२८८।।

जिन्होनें प्रथमतः शास्त्रो से निश्चय व्यवहार रूप पदार्थो का स्वरूप यथार्थ जान लिया है। और रागरहित है अथवा शरीर और शरीर से सम्वन्धित चेतन व अचेतन पदार्थो से मुख मोड लिया है वे विगतराग योगी जव सुख व दु ख मे समभाव के धारक सयम और तप ध्यान में लीन होते हुए वे शुद्धोपयोग रूप को प्राप्त करते है तब उनके शुक्ल ध्यान व शुद्धोपयोग व यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होती है। उस यथाख्यात चारित्र के होनें से ही उन वीतरागी योगियो के दशवे गुण स्थान तक के जीवो की अपेक्षा असख्यात गुणी निर्जरा होती है। ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है। सूक्ष्म सापराय से उपशान्त मोह मे निर्जरा विशेष है, उससे भी क्षीण मोह मे अनंत गुणी निर्जरा है, तथा इन दोनो गुणस्थानो मे उपशान्त मोह वाले की अपेक्षा व क्षीणमोहवाले के वहु विशेपता है, कि क्षीणमोहवाले ने तो सत्ता की निर्जरा की है परन्तु उपशान्तमोह, वाले ने सबको दबा दिया है इन दोनो गुण स्थान वाले जीवो के भाव समान ही उज्ज्वल होते है।२८८।

मिथ्या दृष्टि ससारी जीवों की निर्जरा

माडकोऽपि जगति जीवः समयप्रवृद्धोनिर्जरा न सन्ति
भुक्तः स्थिति निर्जीर्ण सविपाकं नागस्नानवद् ।।२८९।।

इस ससार व पृथ्वी पर ऐसा कोई भी प्राणी नही है कि जिसके प्रति समय कर्मो की निर्जरा न होती हो ? सब जीवो के नियम से निर्जरा होती ही रहती है। कर्म अपना रस दे देकर खिरा करते है परन्तु संसारी मिथ्या दृष्टि जीव के सम्वर का अभाव है क्योकि निर्जरा के साथ ही नवीन नवीन कर्मो का आस्रव और बध हुआ करता है। जिससे वह निर्जरा पुनः ससार की वृद्धि का ही कारण वन जाती है। जिस प्रकार हाथी नदी या तालाब मे जाकर अपनी सूड़ मे पानी भर कर अपने शरीर को धोता है, व तालाब मे खूब स्नान कर बाहर आता है, तब वह किनारे पर पडी हुई धूल को अपनी सूड़ मे भर कर उछालता है, कीचड लिपट जाती है तब वह पहले के समान ही हो जाता है, इसी प्रकार अज्ञानी मिथ्या दृष्टि वहिरात्मा जीवो के निर्जरा कही गई है। २८९।

संयमैस्तपो नियुज्य .सम्यग्भावसम्पन्नो वीतराग.
संक्लिष्ट भावोन्मुख विशेषस्तस्य भवति निर्जरा ।।२९०।।
प्राग्ध्यानेमुक्तञ्च धर्मशु क्लाध्याने व्यवस्थित ।।
प्रतिसमये ऽनन्तगुणितः कर्माणामविपाक निर्जरा ।।२९१।।

जो मुनिराज साम्यभाव से युक्त है तथा राग रहित है वीतराग है और कषाय रूप सक्लिष्ठ भावो से रहित है। जिन्होनें प्रथम मे होनें वाले आर्त ध्यान व रौद्र ध्यानो को छोड़ दिया है। तथा धर्मध्यान शुक्ल ध्यान से युक्त है, उनके विशेष निर्जरा होती है पूर्व गुणस्थानो की अपेक्षा उत्तर उत्तर गुणस्थानों मे क्रम से असख्यात गुणी निर्जरा होती है। तथा अनत गुणी निर्जरा कर्मो की होती है परन्तु वह सम्वर के साथ होने के कारण बध का कारण नही

यह निर्जरा मोक्ष का ही कारण है इसको अविपाक निर्जरा कहते हैं। २९०॥२९१॥

मुक्तिः रमायाः सखी प्राग्निर्जरा न कार्यं कर्तुं समर्थम् ॥
अन्तरे कार्येकुशलं तस्मात् भजनीयमुत्तरः ॥२९२॥

यह निर्जरा मुक्ति रूपी स्त्री को मिलने में सखी के समान है, मोक्ष लक्ष्मी की सहेली है। परन्तु पहले कही गई सविपाक निर्जरा कोई कार्य करने में समर्थ नहीं है। इसलिये दूसरी अविपाक निर्जरा ही कार्य करने में कुशल है उसका ही सेवन करना चाहिये। उसकी ही भावना करनी चाहिये। यह दूसरी अकाम निर्जरा है उसके होने पर ही जीव को मुक्ति रमा के साथ नियम से पाणिग्रहण होता है। अथवा मोक्ष को प्राप्ति होती है। जिसके होने पर चार गति रूपी वेश्या के यहाँ ठोकरें नहीं खानी पड़ती हैं। इसलिये सम्वरपूर्वक तप कर कर्मो को खिपाना चाहिये अथवा कर्मो को एक देश क्षय करना चाहिये ।२९२ ॥

सिद्धापुरे प्रदेश द्वारं ध्यान योगेषुस्थित यत् ॥
कुभावान्विध्वंसिनी कर्मरिपुदलदलने समर्थः सा ॥२९३॥

वह निर्जरा मोक्ष रूपी नगरी में प्रवेश करने का दरवाजा है यह निर्जरा ध्यान और आत्मयोगो में स्थित है। और कुभावो का नाश करती है जो राग द्वेष मोह ममता क्रोध, लोभ, माया, मान तथा ईर्षा, मत्सर और पंचेन्द्रियो के विषयो व आर्त ध्यान रौद्र ध्यानों का समूल नाश करने वाली है। अथवा इन विभाव भावों का नाश करने वाली है। कर्म रूपी वैरी के सैन्य दल को दलन करने मे समर्थ है। तथा ससारी जीवो को होने वाले दुःख व सुखा भावो का भी नाश करने में समर्थ है अथवा अविनाशी मोक्ष सुख है उसको भी प्राप्त कराने में समर्थ है। २९३॥

व्रतसमितिगुप्तियुक्ताः समसुखदुःखे वीतरागमोहाः ॥
ध्याना ध्ययनेयोःरताः जितोपर्शगेंद्रिय विषयाः ॥२९४॥
अध्ययनेन ध्यान ध्यानेन कर्मनिर्जीणः स सम्वरैः।
तस्मान्निर्जरा हेतुरध्ययनं करेयुः नित्यम् ॥२९५॥

शास्त्रो का मनन व स्वाध्याय और अध्ययन करने पर तथा स्वाध्याय करते समय मन, वचन, काय तीनों योग उसमें रत हो जाते है। मन इधर-उधर को नहीं दौडता है। शास्त्रों का अभ्यास करने से सम्यकत्व का श्रद्धान होता है श्रद्धान होने परही ज्ञान मेंसमीचीनता प्राप्त होती है ।तब वह ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान हो जाता है। सम्यग्ज्ञान पूर्वक जो क्रिया की जाती है वह चारित्र सम्यग्चारित्र कहा जाता है। जब शास्त्र के द्वार पर भाव और स्वभाव को भली विधि जान लिया तब परभाव की ओर से दृष्टि हट कर निज स्वभाव की ओर झुक जाती है। तब पच महाव्रत पाच समिति तीन गुप्तिओ का पालन करने के सन्मुख होता है। उसी काल में उसके समताभाव जाग्रत होता है। तब सुख व दुःख में जन्म व मरण में मित्र व बैरी में महल या श्मशान में काच व कचन में समभाव को धारण करता है। तथा पर वस्तुओं से राग मोह ममता भाव का अभाव हो जाता है। इसका कारण यह है कि जब तक पर पदार्थों में रुचि रहती है तब तक एक से प्रीति तो दूसरे से द्वेष की उत्पत्ति अवश्य होती हो है। परन्तु

समभाव के होते ही जीव की परिणति वदल जाती है। वह वीतराग मोह हो जाता है। और ध्यानाध्ययन मे रत होता है। तब पचेन्द्रियों के विषयो की सामग्री सुलभता पूर्वक मिलने पर भी उसको रुचिकर नही लगती वह इन इन्द्रिय विषयो को जहर के सेवन के समान मान कर त्याग देता है। और शरीर से भी राग ममत्व त्याग कर तप ध्यान मे स्थित होता है। उस समय कोई भी प्रकार का देव मनुष्य त्रियच व अकस्मात उपसर्ग आजाने पर उसको धैर्यता-पूर्वक साहस के साथ अच्युत होता हुआ, विजय की ध्वजा को फहराता है। और उस योगी के ही सम्वर पूर्वक निर्जरा कही गयी है। अविपाक निर्जरा का कारण सम्यग्चारित्र और तप है। उस ध्यान तप की सिद्धि शास्त्र का बार बार अध्ययन करने पर होती है। ध्यान से कर्मो की निर्जरा होती है, इसलिए आचार्य नें स्वाध्याय व अध्ययन को भी तथा ज्ञान को निर्जरा का हेतु कहा। इसलिए शास्त्राध्ययन निरन्तर करना चाहिए २९५ ॥

यत्कालेयातिनिजरसमावेदनीयं च दातुं।
तत्काले क्रोधरूपशममुत्तमत्यमायाःनिमित्ते ॥
मिथ्यामोहोदयविचलमानमावच्छत वा ॥
बाह्यस्तंरागमकुटिलतायश्चिमा आजवैवम् ॥ २९६ ।

जिस समय जीव के अन्तरग कारण तो असाता वेदनीय का उदय को प्राप्त होवे। और उसी के अनुसार बाह्य में भी कारण मिलने पर कि वैरी दुष्ट के द्वारा आक्रोषमय मर्मभेदक कठोर वचन बोलने व छेदन भेदन मारण ताडन करने व धन मान हानि करने रूप प्रसग आने पर भी उस काल में क्रोध रूपी अग्नि को दबा देना उसको भडकने नही देना। तथा अपने पूर्वोपार्जित वेदनीय कर्म का फल जान समभाव धारण करना त था इस प्रकार राग द्वेष की वृद्धि नही होने देना। व क्रोधादिक के करने पर भी वेद-नीय कर्म तो अपना फल अवश्य ही देगा वह अपना फल दिये बिना नही रहेगा। ऐसी भावना होने पर जो रस भोगा गया है। वह तो निर्जरा हुई समभाव हुआ यह सवर हुआ इन का कारण उत्तम क्षमा है। मिथ्यात्व कर्म तथा चारित्र मोह कषाय वेदनीय मान के अतरग में उदय मे आना वाह्य पदाधिकार रूप वलादि को प्राप्ति होने पर भी अपने से हीन धन वल रूप बालो का तिरस्कार करने की इच्छा का न होना व उनकी विनय व आदर सत्कार करना तथा अन्यत्र जाने पर वहा के निवासियो द्वारा सत्कार विनय पूजा न करने पर तिर-स्कार व बदला लेने के भावो को जाग्रत नही होने देना। गोबरधन नें मेरा अपमान तिरस्कार किया उसको देख लूगा ऐसी भावना को दूर कर उनका विनय तारीफ करना यह उत्तम मार्दव धर्म है। राग की अधिकता तथा माया कषाय वेदनीय के उदय मे तथा लाभान्तराय कर्म के उदय मे आने पर भी मायाचारी करने के भाव नही करना अपने सरल भाव रखना। अतरग और वहिरग एक रूप परिणामो को रखना यह मार्दव धर्म है यह धर्म भी अनेक कोटि के दुष्ट कर्मो की सवर व निर्जरा का कारण है पूर्व के कर्म उदय मे आकर फल देखे जाते है परन्तु भविष्य के लिए बंध नही इसलिये निर्जरा ही हुई।२९६॥

संज्ञाग्रन्थोदययसतिं मूर्छाः परिग्रन्थ लोभः।
कृत्वा संतोषविभवबलैर्निर्जरस्यास्ति हेतुः।
मुञ्चाऽपध्यानमिति विकथा दुःश्रुतिः सत्यभाषा ॥
दुष्कृद्धिसा विहितकरण प्राणसंयत् प्रसिद्धाः ॥२९७॥

अभ्यन्तर ऐसे लोभ कषाय वेदनीय और परिग्रह नाम की सज्ञा का उदय बाह्य परिग्रह में मूर्छा भाव का होना तथा लोभ कषाय का कारण मिलने पर भी अधिक परिग्रह संग्रह करने की इच्छा न करके सतोष धारण करना। दूसरों के लाभ को देख खेद खिन्न नहीं होना कि मेरे को लाभ नही यदि मै भी ऐसा करता तो मुझको भी लाभ हो जाता। इस प्रकार की भावनाओं का त्याग करके सतोष धारण करना तथा संतोष करके लोभ कषाय को जीत लेना यह शौच धर्म महोपकारी है। इस शौच धर्म के पालन करने से अशुभ हिसादिक पापों (भावों) का आना रुक जाता है। तथा परिग्रह नाम की सज्ञा और लोभ कषाय ये सब वहुत आरम्भ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन सब पापों को जन्म देने में माता के समान है। सतोष के धारण करने पर पापास्रव नहीं होता है और अनेक कोटि मे सम्वर ही होता है तथा लोभ कषाय उदय में आकर फल देकर खिर जाती है इसलिये बंध के अभाव में कर्मों की निर्जरा ही हुई। अपध्यान तथा कषायो का त्याग विकथा श्रवण करने व चिन्तवन करने का त्याग तथा खोटे मिथ्यादृष्टियों के रचे गये हिसादि पापों के पोषक तथा पंचेन्द्रियो के विषयो के पोषक शास्त्र कादम्बरी, प्रेमसागर इत्यादि काल्पनिक रचे गये शास्त्रों का त्याग करना। इनके त्याग करने से अपने अशुभ भाव नही होते वचन भी प्रमाणवद्ध विश्वसनीय होते है यह सत्य प्रायः बहुत से पापास्रवो से जीव की रक्षा करता है तथा अनेक प्रकार से कर्मो की निर्जरा होती है। जो पापों का कारण हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पापो से निवृत्ति होने के लिए इन्द्रिय संयम और मन सयम तथा प्राण सयम, छह काय जीव सयम जिससे कोई भी प्रकार से जीवो की विराधना नही इस प्रकार से प्रवृत्ति का होना तथा दया भाव का होना यह सयम है। यह सयम सब हिसादि पापों का त्याग रूप है तथा जीवों की रक्षा रूप है जिससे कर्मो का सवर व निर्जरा होती है। यह संयम धर्म सब धर्मो में प्रधान धर्म है तो एक सयम ही है। यह सयम धर्म कहे गये उत्तम क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्य, शौच, सयुक्त है इस एक के पालन करने पर सब धर्मो का समावेश हो जाता है यह उत्तम संयम धर्म है ।२८७॥

(शिखरणी)

तपो यद्बाह्यभ्यन्तररूभय षट्-षट् च विविधः।
तथा तत् कृत्वा संवर दहति कर्मेन्धनमिव ॥
ददेयुः दानं लोभमिति न विविक्तं सगुणदा ॥
वशीलोकैव शत्रुरशुभ कृतिमुञ्चतितदा ॥२९८॥

तप अंतरग और बाह्य के भेद से दो प्रकार का है। बाह्य तप के छह भेद हैं और अन्तरंग के भी छह भेद है। बाह्य तप के अनसन, ऊनोदर रस परित्याग, व्रत परिसख्यान, विविक्त सैयासन, काय क्लेश ये छहों तप बाहर से जाने जाते है इसलिये इनको बाह्य

तप कहते है। अतरंग के भी छह भेद प्रायश्चित, आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय विवेक, व्युत्सर्ग, ध्यान व स्वाध्याय ये सब अतरग तप दूसरे के द्वारा जाने नही जाते है। इन तपो को सवर पूर्वक करने पर कर्म रूपी ईंधन जल जाता है। यह तप भी एक चरित्र का ही भेद है चरित्र के बिना तप नही होता है इस तप से ही कर्मो का नाश किया जाता है बाह्य तप कारण और अभ्यन्तर तप कार्य रूप है। सम्यक्त्व पूर्वक तप करने से बहुत निर्जरा होती है। यह उत्तम तप धर्म है। सब प्रकार की इच्छाओ का रोक देना ही तप है। दान के मुख्य चार भेद है आहार, औषधी, अभय और ज्ञान दान इन चारो के करने से वैर द्वेष को छोड़कर मित्र बन जाते है। तथा दाता की कीर्ति फैल जाती है और दाता के पास अनेक गुण स्वभाव से ही आ जाते है। जब दाता दान देता है। उस काल में एक गृहस्थ भी क्षमा दया निर्लोभ तथा विनय सम्पन्न हो जाता है तथा भक्ति भी उसके हृदय में उमड़ आती है। वह अपने हृदय मे अत्यन्त प्रसन्न होता है, उसके उस दान के काल में आर्त रौद्र ध्यान दूर हो जाते है तथा धर्म ध्यान रूप शुभ ही ध्यान होता है। तथा जो मिथ्यादृष्टि व क्रोध, मान, माया या लोभ कषाय से सम्पन्न है वे भी वैर व अभिमान मायाचारी को छोडकर दाता की शरण मे आ जाते है। यहा त्याग को भी दान कहा है सबसे प्रथम में मिथ्यात्व कषाय और असयम का त्याग करना सो दान है यह दान वैर विरोध और द्वेष को नाश करने वाला होता है। सब जीवो में प्रेम वात्सल्य भाव व मैत्री भाव करुणा भाव माध्यस्थ भाव तथा प्रमोद भाव प्रगट करता है। मुनिराज भी त्याग करते है वे अपने कषाय व राग, द्वेष, माया, मत्सर, क्रोध, मान, माया, लोभ, असयम व विकथा पचेन्द्रियो के विषय और ईर्षा का त्याग कर क्षमा मैत्री भाव करुणा भाव व प्रमोद भाव व माध्यस्थ भाव को प्राप्त होते है। तथा गृहस्थ व मुनि दोनो ही त्याग से ही मुक्ति को प्राप्त होते है। बिना त्याग के क्या साधु क्या श्रावक दोनो ही बोधि को प्राप्त नही हो सकते। इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार चार प्रकार का दान व त्याग अवश्य ही करना चाहिये। दाता के कषाय भाव व असयम भाव अप्रमोद भाव व मिथ्यात्व भाव रुक जाते हैं जिससे उनके सवर होता है, और उदयावली मे आये हुए कर्म फल देकर खिर जाते है यह तो निर्जरा हुई और भविष्य के लिये कर्मास्रव नही।

किंचित्मया भवति भूधन राशिपुत्राः।
भार्या सुतार्नमया बांधव गोत्र वशा।
गात्रोऽपि सास्वत कदापि विनस्यते ये।
धर्मोगुणस्यखलुरक्षतु मात्माघातात् ॥२६६

इस ससार मे जितनी विभूतिया दिखाई दे रही है वे सब सास्वत रहने वाली नही है। वे शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो रही है। यह पृथ्वी भी मेरी नही है यह राज वैभव सेना माल, खजाना, स्त्री, पुत्र, मित्र, पौत्र, ये भी मेरे नही है। ये तो एक सयोग से आकर मिले है जिस प्रकार कोई धर्मशाला मे यात्री आकर रात्रि मे विश्राम करते है और भोर हुई कि वह अपने देश व मार्ग को चले जाते है। जिस धन को देश विदेशो मे जाकर बड़े कष्टो व सकटो को प्राप्त होते हुए कमाया था वह धन मेरा कदापि नही हो सकता है। पृथ्वी, मकान, दुकान

खेत, कुआ, वापी, तालाब आदि तथा गाय, भैंस घोडा, हाथी इत्यादि धन मेरे नही है। ये सब मेरे से बहुत दूर है जिनका सयोग हुआ है उनका वियोग अवश्य होगा। ये सब देखते-देखते नष्ट होते चले जाते है। जिन वस्तुओ को मैंने ही बड़े प्रयत्न पूर्वक उपार्जन किया था वे वस्तुयें भी मेरी नही तव अन्य की तो क्या कथा। क्योकि जब जिस शरीर को माता के गर्भ से जन्म लेते समय साथ लाया था वह शरीर भी मेरे साथ नही वह भी मेरा नही वह भी अपनी स्थिति पूर्ण होते ही अवश्य विनाशको प्राप्तहोने जा रहा है। तब पुत्र, स्त्री, मित्र, माता पितादि अपने से अत्यन्त भिन्न है वे मेरे कैसे हो सकते है इस प्रकार सब पर वस्तुओ से ममत्व भाव का त्याग करना यह आकिचन्य धर्म है। इस लोक में मेरा एक धर्म है वही धर्म माता है, पिता है, पति है, पुत्र है, मित्र है, वही मेरा धन सम्पत्ति है व मित्र है तो एक धर्म ही है इस प्रकार पर भाव का त्याग कर निज स्वभाव रूप धर्म मे स्थिर होना ही आकिचन्य धर्म है इस धर्म के सेवन व धारण करने पर परभाव से होने वाले पापास्रव रुक जाते है। यह तो सवर हुआ तथा कर्म उदयावली में आकर अपना रस देकर खिरते है यह निर्जरा हुई और बध नही होने से बोझा ही उतरा।

स्यान्निर्जरा ससमये सह सवरैश्च ।
ब्रह्मात्मनो विमल भास्कर वच्चदीप्तः ।।
किं स्त्रीवपुश्च मलपुंजकुसप्त धातुः ।
रक्तो श्रवन्ति सततं (सहसा) विचिन्त्यमुञ्चेत ।।३००।।

जिसको अपना सुख का साधन व सुख देने वाली मान रहा है, उस स्त्री के शरीर से निरतर मल झरते रहते है। एक भी क्षण ऐसा प्राप्त नही कि जिसमे मल नही बहता हो उसके उस अपवित्र गात्र मे से तथा योनि मे से रक्त पात होता ही रहता है। शरीर तो मल का ही ढेर है और सात कु धातुओं से निर्माण हुआ है। रक्त, माँस, मज्जा, मूत्र, विष्टा तथा कृमि इन सातकुधातुओ से निर्मित है। इन स्त्रियो का मन कुटिल होता है तथा देखने मे कमनोय मालूम होती है। जिनके रूप रग व हास्य विनोद को देखकर काम रोगी आसक्त हो जाते है। उन स्त्रियो की मस्तक की बेड़ी भुजगी के समान होती है काली होती है। यह कामी जनो के चित्त को उकसाती है। जिससे विष उनके सर्वाग में फैल जाता है और काम रोगी वेदना से अत्यन्त दुःखी ही जाते है। पुनः उनकी प्राप्ति करने को प्रयत्न शील होते है वे उनके लिये आर्त ध्यान करते है, जिससे उन कामियो के बहुत कर्म बध हो जाता है। इस प्रकार स्त्रियो के स्वरूप का विचार उनके हाव भाव रूप रेखा आकृति नृत्य गीत आदि देखने का त्याग कर पूर्व भोगे हुए भोगो का भी चिन्तवन नही करना व प्रशसा नही करना, अपने शरीर का श्रृगार जो कामोद्दीपन करने वाला गरिष्ट भोजन का त्याग कर अपने निज शुद्ध चिदानद धन चैतन्य के अवलम्बन लेकर अपने शुद्ध आत्मा में लीन होना यह आत्मा ही ब्रह्म है उस आत्म ब्रह्म में आचरण करना यह ही ब्रह्मचर्य है। सव पापों का खण्डन करने वाला व सर्व धर्मो का यह मूल है। कर्मो के शुभाशुभ आस्रवव वंध का निरोधकरने वाला व कर्म रूपी रज को उड़ाने के लिये पवन के समान है। तथा यह ब्रह्मचर्य संवर व निर्जरा का मूल कारण है। चिद्रूपब्रह्म में

रमण करने वालो के पूर्वोपार्जित कर्म फल देकर और विना दिये ही खिर जाते है तथा काम वैरी को वश मे करने का यही विशेष उपाय है। यही सवर व निर्जरा का मूल हेतु है। आत्मा ही ब्रह्म रूप एक है कर्म फल कलक से भी रहित सूर्य के समान तेज पुञ्ज का धारक है उस अनत शक्तिशाली का भी यह स्पर्शन इन्द्रिय काम भोगो की तरफ ले जाती है। इसलिये इन इन्द्रियो के विषयो का त्याग कर अपने स्वभाव मे स्थिर होना यही ब्रह्मचर्य है यही शील है या स्वभाव है। यह प्रति समय कर्मो का सवर व निर्जरा करता है। ३००॥

क्रोधादिभाव नुतु नः स्वविभवविज्ञिः।
मुञ्चन्त तान् स्वविवात् न तु पश्य किंचित्॥
सानिर्जरा युतसंवर पूर्वकं च।
किं वंधमास्रवमतिप्रभ भूरि दुःखम्॥ ३०१॥

जो अपने क्रोधादि अशुभ भाव है वे अपने नही है परन्तु अचेतन द्रव्य के विभाव है पुद्गलमय है पुद्गद्रव्य की पर्यायें है। ऐसा अपने स्वभाव के भिन्न सर्वज्ञ वीतराग ने कहा है। उन क्रोधादि परभावो का त्याग कर देना चाहिए क्योकि वे अपने स्वभाव से अत्यन्त भिन्न है और अपने किचित भी नही है। यदि वे क्रोधादि भाव अपने हो जाते तो भी चेतनामय हो जाते। परन्तु ऐसा है नही जो कोई भी वस्तु होती है वह अपने निज गुणो का परित्याग नही करती न पररूप ही परिणमन करती है। इसलिए अपने देश की रक्षा करने के लिए स्वानुभव रूप अपना आत्मा ही साध्य व साधन है उसके साधन वे दश धर्म है अथवा उस आत्मा के द्योतक ये उत्तम क्षमादिक दश धर्म है ये दश धर्म ही सवर व बहुत निर्जरा के कारण है।३०१।

सुद्धात्म वस्तु खलु नित्य सुख स्वरूपं।
ग्राह्योऽन्यवस्तु न तु भिन्नतया विचिन्त्यम्॥
सर्वो विभाववहुदुःखमवेतिनित्यम्।
धर्माक्षमोत्तमरस खलु भावनीय॥३०२॥

एक निश्चय नयकर अपनी आत्मा कर्म मल कलक ते रहित शुद्ध वस्तु है वही सब प्रकार की चेतन अचेतन वस्तुए है। वे सब जो वस्तुये है वे सब इससे भिन्न है वे वस्तुयें अपने ग्रहण करने योग्य नही। जितने परवस्तु के सयोग से अपने में होने वाले विकार है वे सब ही विभाव है उन विभावो को करके यह आत्मा आप सुख की इच्छा करता है। वे विभाव भाव ही कर्मो के आस्रव और बध के करण होते है। तथा उनके विपाक काल मे होने वाले दुःख का अनुभव करने वाला यह जीव ही है। इससे विपरीत जो सरस मोक्ष तत्व है उसको प्राप्त करने के लिए विभाव भावो का त्याग करे तब अपने स्वभाव भाव मे रुचि हो। वे विभाव भाव आत्मा के क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, अज्ञान, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अतराय, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इन पाचो इन्द्रियो के विषय और आर्त ध्यान व रौद्रध्यान ये सब विभाव भाव है वे विभाव भाव ही जीव के दुःख के कारण है। जब तक इन विभाव भावो का आप कर्त्ता व स्वामी बना रहता है तब तक अज्ञान संज्ञा को पाता है तथा ससार भ्रमण का अत नही आ सकता है। जब कुभाव विभावो

को त्याग कर अपने शुद्ध वस्तु स्वरूप एक चित्स्वभाव जो पर भाव से जुदा भिन्न है वही उपादेय है उस चित्स्वभाव में कर्मों का आस्रव बंध नही होता है। उदय उदीरणा भी नही है (इसलिए सवर पूर्वक निर्जरा करनी चाहिए।) पर भाव से निवृत्त होकर उस चित्स्वरूप परमात्मा का ध्यान करने पर सवर और निर्जरा विशेष होती है। ३०२॥

उपमेऽनुरक्तार्ये सज्ज्ञानसंयुक्ता: विभावन् मुक्ता ॥
(शुद्धोपयुक्ता:) शुद्धोपयोगे न युक्त: निर्जरा साधो: सुनिर्दृष्टाश्च ॥३०३॥

जो सम्यक्त्व पूर्वक प्रयत्नशील है सयम तथा तप मे लवलीन है। तथा ध्यान और अध्ययन मे लीन है मुनियो में प्रधान संयम योगो से युक्त अपने स्वभाव सहित शुद्धोपयोग को प्राप्त हुए है उन साधुओ के विशेष निर्जरा होती है। उनके ही निश्चय निर्जरा होती है परन्तु शुद्धोयपोग से रहित सविकल्प व प्रमाद सहित सयम के धारक है वे सवर व निर्जरा के करने वाले नही। जो सम्यक्त्व भाव व विरक्त भाव से रहित सयमी है वे संयमी निर्जरा के करनेवाले न होकर बंध करनेवाले ही होते है। क्योकि उनकी बाह्य और अन्तरग परिग्रह ग्रहण करने की इच्छा होने के कारण ही आस्रव और बध होता है। वे विभावों के ही ग्राहक हैं वे स्वभाव भाव सम्यक्त्वादि गुणों से सून्य बहिरात्मा है उनके निर्जरा नही कही गई है।

जो प्रमादों से रहित सयमी सम्यक्त्व ज्ञान व चरित्र से युक्त निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करने में उद्यमी है। तथा जिनके विभाव भाव सब दूर हो गए है ऐसे बीतरागी संयम तप के धारक मुनि ही शुभोपयोग व शुद्धोपयोग से सयुक्त कर्मो को उदय रूप फ़ल देते हुए भी निर्जरा होती है तथा बिना उदय में आये भी कर्मो की विशेष उदोरणा हो जाती है यही मुख्य निर्जरा कही गई है। उनके ऊपर कर्मोदय जनित परीषह भी आ रही है या कोई उपसग भी आ रहा है तत्काल मे उपयोग की निश्चल दशा होने के कारण ही उदय व उदीरणा दोनो प्रकार की निर्जरा प्रति समय असख्यात गुणी होती है। वह निर्जरा उदय उदीरणा, संक्रमण, विसयोजन, कर चार प्रकार से होती है। यह निर्जरा शद्धोपयोगी साधुओ के ही सत्यार्थ रूप से होती है। ३०३।

(पूर्वे सग्रहीत कर्माणाम्)
(पूर्वे) पूर्वस्मिन् संकलितान् कर्माणां शुभशुद्धभभावैःतान् ॥
ध्यानाग्निना च दग्धैव चितत्स्वभावैव ज्ञानादि ॥३०४॥

अपने अशुभ भावों के द्वारा पहले जिन कर्मो का सचय कर रक्खा था उन एक किये हुए ज्ञानावरणादिक कर्मो को सम्यक् चरित्र को धारण कर निर्ग्रन्थ होकर शुभभाव रूप जो धर्म ध्यान है उसकी वृद्धि कर शुक्ल ध्यान में प्रवेश करने वाले योगी के निर्जरा विशेष कही गई है। सम्यक्त्व के धारक श्रावक के जो निर्जरा होती है वह तो दर्शन मोह और चरित्र मोह की अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इनकी तथा दर्शन मोह की मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति, इन सात प्रकृतियो से आने वाले जो कर्म थे वे आते भी नही और सत्ता से निर्जरा हो गई तब सयमासयम में अप्रत्याख्यान चौकड़ी शान्त हो जाती है तब सकल सयम होता है उस काल सयम के साथ ही सामयिक चारित्र होता है तथा परिहार विशुद्धी छेदोपस्थापना इनमें विशेष विशेष उत्तरोत्तर निर्जरा होती

है तब सूक्ष्म सापराय नामक चरित्र होता है जीव शुद्धोपयोग में प्रवेश कर कषाय और नौ कषाय की निर्जरा कर यथाख्यात चारित्र व शुद्ध शुक्ल ध्यान को प्राप्त करता है उस काल मे पूर्व एकत्र किये हुए कर्मो की ढेरी को जलाता है और गुण श्रेणी निर्जरा करता हुआ क्षीण मोह मे स्वरूपाचरण विशुद्ध यथाख्यात चारित्र होता है। वहा अशुभोपयोग का अत्यन्ताभाव हो जाने से निर्जरा ही निर्जरा होती है चैतन्य भाव का आवरण था जो ज्ञानावरण दर्शनावरण वह भी क्षीण वृत्ति को प्राप्त हो जाता है इस प्रकार गुणस्थानो मे निर्जरा का विधान है। इस प्रकार की निर्जरा का मूल हेतु सम्यक्चारित्र है यथाख्यात चारित्र के होने पर ही क्षीण मोह गुण स्थान होता है तथा क्षीण मोह गुण स्थान के अन्त मे ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय इनकी विशेष निर्जरा होती है तथा सयोग गुणस्थान मे उससे भी अधिक निर्जरा होती है ॥३०४॥

प्राक्क्षयं दर्शनमोहं चरित्रमोहस्यानन्तानु बन्धिः।
नरक त्रियचायु धीति कर्म निर्जीर्ण मुनेः ॥३०५॥

पहले मिथ्यात्व, सासादन व मिश्र गुण स्थानो में निर्जरा कही गई है वह सविपाक ही है वहाँ पर दर्शनमोह, चरित्र मोह का आस्रव और बध निरंतर होता रहता है। चौथे गुण स्थान मे क्षायक सम्यग्दृष्टि के जो निर्जरा कही गई है वह निर्जरा क्षयोपशम वाले के नही जो क्षयोपशम वाले के निर्जरा कही है वह उपशम सम्यग्दृष्टि के नही कही गई है। परन्तु क्षायक सम्यग्दृष्टि के ही यथार्थ चारित्र होता है जिस से पुन बन्ध नही सब जगह सम्वर ही सवर व यह शुद्धोपयोग मुनि के निर्जरा है।

शुद्धोपयोगनिरताः शुक्लध्यान चारित्रै र्युक्ताः ॥
निर्जीर्णं कर्माणां शुद्धोपयोगस्यनिश्चलवृत्तिः ॥ ३०६ ॥

जब चारित्र धर्म में लीन शुद्धोपयोगी योगो की वक्रता व चचलता से रहित निश्चल वृत्ति होती है। तब शुक्लध्यान मे स्थित मुनि के नयो का विकल्प व आलम्बन भी नही रह जाता है। तथा ध्यान ध्येय और ध्याता का भी विकल्प मिट जाता है। तब शुद्ध अप्रतिपाती ध्यानमुनियो के होता है। वह दृढ चारित्र के धारक व चरित्र की वृद्धि को प्राप्त होने वाले के ही होता है। अन्य एक ज्ञान या दर्शन के नही परन्तु सम्यग्ज्ञानो के चरित्र मे ही उसकी स्थिति चरित्र के बिना नही रह जाती है चरित्र के बिना शुद्धोपयोग या शुक्लध्यान की स्वतत्र सत्ता नही रह जाती है शुद्धोपयोग रूप चारित्रयोग की निश्चल अवस्था विशेष को प्राप्त आत्मा के होती है तभी विशेष कर्मो की निर्जरा होती है। इसका तात्पर्य यह है कि विशेष निर्जरा चरित्र से ही होती है ॥३०६॥

बाह्ययोग विहाय व येऽभ्यान्तर ध्यान योगे स्थित ।,
सर्व कर्म निर्जराश्च अचिरेन पावन्ति मोक्षम् ॥३०७॥

जो बाह्य योगों को छोडकर (रोक दिया है) अध्यात्म योग में रत होकर कर्म रूपी ईधन को जला रहे है वे योगी सब कर्मो का नाश कर शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर लेते है। बाह्य योगो मे स्थिति रहने पर द्रव्य योग भाव योग के कारण है जब द्रव्य मन

बचन काय की प्रवृत्ति होने पर आत्म प्रदेशों में परिस्पंद नही होना परिस्पन्दका कारण तो कषाय रूप अपने परिणाम है। परिस्पन्दका अभाव हो गया तब द्रव्य कर्म जनित योगों के द्वारा (द्रव्यास्रव कर्माश्रव नही होता)। भाव योग ज्ञानात्मक है जीव ज्ञानात्म योग मे स्थिर हो तब ही तप और ध्यान की सिद्धी होवे और सवर पूर्वक निर्जरा होगी। इससे यह शीर्षक निकला कि तप ध्यान से ही निर्जरा और सवर होता है। ऐसी अवस्था विशेष जब प्राप्त होती है तब ही साधन, साध्य, साधक, व ध्यान, ध्याता, ध्येय का विकल्प शान्त हो जाता है तब ही शुद्धोपयोग रूप अभ्यन्तर योग ध्यान मे स्थिति भोगी के कर्मो का क्षय होता है। तथा कर्म रूपी जंगल भस्मभूत होता है तथा सब कर्मो की निर्जरा कर के मोक्ष को प्राप्ति शीघ्र ही होती है ॥३०७॥

निशंकश्च मानवः सप्तभयेभ्यः परिमुक्तोनित्यम् ॥
संशयं न करोत्यात्मस्वभावे तद्भवति निर्जरा ॥३०८॥

जो मानव निशक है मरण वेदना, इस लोक, परलोक, अनरक्षक, राज भय, आकस्मिक इन भयो से रहित निर्भय होता है वही स्वात्मस्वभाव में स्थिर होता है। तब उसके इस लोक सम्बन्धी भय नही होता है वह विचार करता है कि इह लोक तो मेरा आत्मा ही है, इससे भिन्न दूसरा कोई लोक नही है तब इसलोक भय क्या है? परलोक भय मेरा आत्मा ही कर्म मल के विभाव विकारी भावो से रहित शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। इस परलोक विभाव रूप कर्म मेरा लोक नही वह ही परलोक है। वह परलोक मेरा नही इसलिये मुझे परलोक का कैसा भय! जितने मोह रागद्वेष क्रोधादि कषाये है तथा पचेन्द्रियो के विषय है वे सब पर भाव है वे ही मेरे विनाश करने वाले है वे मेरे ही द्वारा किये गये है उनको मै भली प्रकार से जानता हू तब वे मेरा क्या बिगाड सकते है क्योकि मेरी आत्मा ही मेरे लिये गुप्ति, समिति संयम का कोट किला व खाई है उनमें कर्म कृत भावों का प्रवेश करने को सुराक नही तब मुझे अगुप्ति भय कैसा। अनरक्षक भय ज्ञानावर्णादि व वेदनीय मोहनीय कर्म दुःख देतेहै उनसे रक्षा करने वाले मेरे आत्मा में जो उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच इत्यादिक धर्म है वे ही रक्षा करने में समर्थ है तब वे सब मेरे स्वभाव मे स्थित हैं तब मुझे अनरक्षा भय कैसा। क्योकि वे दश धर्म इतने बलवान है कि उनके सामने शत्रु का बल काम नही करता है वे अजय है। इसलिये मैं अनरक्षक नही सरक्षक हूं। फिर मुझे कैसा भय पोद्गलिक कर्मो का उदय मे आना ही आकस्मिक भय है जहाँ पर मेरा आत्मा अपने स्वभाव से ही सूर्य के तेज से भी अधिक तेज को लिये हुए उदय हो रहा है उसकी किरणे चारो ओर बिखर रही है जिसके प्रभाव से कर्म की लडियां तितर बितर हो जाती है। इसलिए मुझे आकस्मिक भय नही है। रोग भय यह वेदनीय और मोहनीय कर्म का ही विशेष उदय का फल है वह भी शरीर के योग मे है क्योकि मेरे स्वभाव मे इसका कोई स्थान व प्रवेश ही नही क्योकि ये सब जड़ अचेतन है जब कि मेरा आत्म चेतन और अरुपी है वे मेरा कुछ भी बिगाड़ करने मे समर्थ नही इस प्रकार ज्ञानी के रोगभय भी नही क्योकि बल पना यौवन वृद्धावस्था ये सब अवस्थाये पुद्गल के साथ ही है ये मेरे साथ नही तब कैसे वेदना या रोग

भय। जब सात भयों से रहित हो आत्मा निशक होती है तब चाहे अरण्य में निवास करे चाहे अटवी में, वहाँ पर उसके पास भय नही वेदन करते हैं भय दूर ही भाग जाते हैं। आत्मिक गुणो में प्रतीता होती है और अनुभूति होती है उस काल में पुद्गल कर्मो को निर्जरा ही होती है आस्रव और बन्ध का अभाव रूप सवर और निर्जरा होती है तब उपसर्ग या परिषहों पर विजय पाता है ॥३०८॥

भोग विभंवयोर्वांच्छा मुंचन्ति तपध्यानेऽनुरक्त'।
सयमे चिन्ताशक्ति भवति निर्जरा जिन शासने ॥३०६॥
मा पश्यति खलु दोषान् नापिनिन्दा गर्हा: किंचदपि परस्व।
गुणार्ज्जने भावेषु सति निर्जरा च जिन शासने ॥३१०॥
यो गृहण भाव त्यजति उद्भवेत् निन्दा बालेभ्यो बहुविधं:
स्वपर भव्यानां गोपयेत् भवति निर्जरा जिन शासने ॥३११॥
ध्यानतयो चारित्रेभ्यो विचलित मलिन कालुस्य चिन्त्ते।
स्वपरो' स्थापनौ वा भवति निर्जरा जिन शासने ॥३१२॥

ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव ससार के बनावटी क्षण में विनाश होने वाले वभव राज्य लक्ष्मी व देव पद आदि तथा पचेन्द्रिय के विषय भोगो की वस्तुओ की इच्छा नही करता है। वह विचार करता है कि ये जो भोग वैभव हैं वे सब ससार के बढाने वाले है, ससार की वृद्धि के कारण है तथा पुत्र स्त्री माता पिता बन्धु बान्धव सब मोह के बढाने वाले और दुर्गति के कारण है। पचेन्द्रियो के विषयो में आशक्त सुभोम चक्रवर्ती भी सातवें नरक गया था उसने पूर्वभव मे मुनिव्रत धारण कर बहुतप किया मरण काल में विद्याधर की विभूति देख निदान किया कि मैं भी ऐसी विभूति का स्वामी होऊँ यही मेरी तपस्या का फल मुझे प्राप्त हो। निदान कर मरा और (देवगति को प्राप्त कर स्वर्ग के सुख भोग) एक क्षत्रियकुल मे उत्पन्न हुआ तब परशुराम के अपसगुन होने लगे सपने भी खोटे आने लगे, तब परशुराम ने निमित्त ज्ञानी से पूछा कि मुझे खोटे सपने क्यो दिखाई देते है। तब निमित्त ज्ञानी ने कहा कि आपका बैरी आपको मारने वाला कही पर उत्पन्न हो गया है। उसकी परीक्षा यदि करनी है तो इस प्रकार होगी कि जो तुमने क्षत्रियों के दात तोड़ रक्खे है उन दातो को वह देखेगा और वे दात चावल के भात के रूप में परिणत हो जायेगे तब जान लेना कि यह ही मेरा वैरी है परशुराम ने दान शाला खुलवा दी, लोग ज्योनार जीवने को आते थे तब सब को वे दात दिखाये जाने लगे परन्तु पता नही चला एक दिन सुभोम भी भोजन शाला मे आ गया और एक थाली मे भोजन परोस दिया गया जब वे दात दिखाये गये तब चावल के भात रूप से परिणित हो गये यह देख परशुराम ने द्वन्द्व मचा दिया कि मारो-मारो बचने नही पावे तब पूर्वोपार्जित तप ध्यान का पुण्य उदय मे आता है। थाली ही चक्ररत्न बन जाती है जिससे परशुराम को सुभोम मार डालता है। आप चक्रवर्ती बन जाता है रसना इन्द्रिय का लम्पटी होने के कारण एक मायावी देव की बातो मे आ जाता है जिससे मर कर सातवे नरक मे गया। इसका विस्तार आगम से जानना चाहिए। परन्तु सम्यग्दृष्टि स्वयम

आगामी भोगों व राज्य वैभव की इच्छा से रहित होता हुआ तप और ध्यान में लीन होता है तथा निर्वाञ्छक होने से प्रति समय कर्मों की निर्जरा होती है यह निर्जरा निदान बंध रहित सम्यग्दृष्टि योगी के ही कही गई है।

विशेषः—निदान बन्ध करने वाले के तो पापास्रव विशेष रूप से होता है जिस तप के प्रभाव से जीव को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है क्या उस तप के प्रभाव से ससारिक ऐहिक सुख सामग्री नही मिल सकती है ? इसलिए भव्य जीवों को इच्छाओं का निरोध करके अपने मन और इन्द्रिय को संयम में लाकर उग्र तप ध्यान कर कर्मों की निर्जरा जिन शासन के धारकों के ही होती है (ऐसा ज्ञानियों के) जिनेन्द्र भगवान के शासन में है अन्य के यहां पर अविपाक निर्जरा नही कही गई है।

यह भव्य सम्यग्दृष्टि अपने अवगुणो का तो प्रकाशक होता है परन्तु दूसरे के गुणों का भी प्रकाशक होता है वह पर अवगुणो के ऊपर दृष्टि नही डालता है यदि देख लेता है तो भी उनका चिन्तवन नही करता है। वह देखे हुए दोषों को प्रकट नही करता है लेकिन उनके छिपे हुए गुणों को प्रकट करता है तथा अपने दोषों की निन्दा व गर्हा करता है परन्तु अन्य सयमी गुण विशेष धारकों के गुणो को प्राप्त करने के लिए उनकी सेवा वैयावृति व विनय करता हुआ अपने को धन्य मानते हैं उनके ही निर्जरा होती है ऐसा जिन शासन में कहा गया है।

जो आपने सम्यक्त्व पूर्वक सयम, चारित्र, तप, यम, नियम, रूप से धारण किये गये हैं व अन्य के द्वारा धारण कराये गये है उनका तिरस्कार व ग्लानि नही करता है तथा लौकिक अज्ञानी जन जिनका बहिष्कार अनेक प्रकार से करते है तो भी धारण किये हुए व्रतादिको से ग्लानि नही करता है। जिस भाव से ग्रहण किये थे उन भावों को नही छोड़ता है। परन्तु अपने पर के दोषो को दबा देता है और व्रतादिक की रक्षा करता है उनके जिन शासन में निर्जरा कही है।

जिनने पूर्व में सम्यक्त्वादि शील, संयम, चारित्र व तप को धारण कर लिया है उनके कोई बाह्य कषायो का कारण मिलते हुए भी मन में किसी प्रकार की वक्रता का न होना व सयम क्षमादि धर्मो के द्वारा रोक थाम कर देना तथा अपने पर को उन सम्यक्त्वादि में दृढ कर देना व दृढ हो जाना ही बन्ध की निर्जरा होती है ऐसी निर्जरा जिन शासन मे है। क्योकि सब विकल्पो के जाल को तोड़कर स्व को अपने आत्म ध्यान में लीन करता है। कर्म उदय में आकर खिर जाता है वही निर्जरा जिन शासन में कही गई है।

मिथ्यामार्गेन याति प्रशसन्ति तपोऽसयमीनां च ।।
सम्यक्त्वाराधनैव भवति निर्जरा च जिनशासने ।। ३१३ ।।

जो कुलिगी मिथ्या दृष्टियो के द्वारा कुसयम और कुनय, कुतप, कुतपस्वियो की प्रशंसा व विनयादि नही करता है। न उनकी स्तव वदना करता है आदर सत्कार भी नही करता है। परन्तु सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप की व तप के धारक व दर्शन, ज्ञान, तप और चारित्र

रूप चारो आराधनाओं मे मगन होता है तथा निरतिचार पालन करता है वह निर्मोही ज्ञानी ही निर्जरा का विशेष पात्र है। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के शासन मे निर्जरा कही गयी है ॥ ३१३ ॥

संयमतपात्माभिःसह धर्मं धार्मिकः धर्मात्माभिश्च ॥
तत्त्यजति मात्सर्थ भावेन भवति निर्जरा जिन शासने ।३१४॥

सम्यग्दृष्टि जीव सयम धर्म और सयम धर्म के धारक सार्धमियो के प्रति मात्सर्य द्वेष, कषाय, अविनय व निन्दा कलह नही करता है। उन सयमियो से प्रीति विशेष करता है। तथा अपने आत्मा का जिन कारणो से घात होता है उन कारणो को दूर करता है। यह स्वात्म वात्सल्य है। असयम व कषायो की उदयावली मै अजाने पर तथा बाह्य मे भी अनेक कारणों का मिलन होने पर भी सयम तथा उत्तम क्षमादि बल से उदयागत कर्मो के फल को भोग कर निर्जीर्ण कर देना व विचलित नही होना परीषहो का जीत लेना भावो मे विकृता नही होने देना यही आत्म वात्सल्य है। परम तपके तपने वाले है उनको किसी दुष्ट निर्दयी के द्वारा वेदना दी जा रही हो उस वेदना को सम-भाव से धारण कर अपनी आत्म विभूति व शान्ति भाव से दूर करना यह वात्सल्य सम्यग्ज्ञानी की प्रति समय निर्जरा है ऐसी सम्यक्चारित्र के धारियो की निर्जरा जिनेन्द्र भगवान के शासन में कही गई है ।३१४।

सम्यग्ज्ञान सयमैस्तपो ध्यानाभ्यामात्मनः प्रकाशनम् ।
(मिथ्यात्वांधकर) मोहांन्धकारस्य क्षिप्ते भवति निर्जरा जिनशासने ॥३१५॥

सम्यग्ज्ञान व सयम के द्वारा अपने आत्म वैभव को प्रकट कर दिखाना व तप और ध्यान के द्वारा अज्ञानियो की दुर्भावनाओ अज्ञानान्धकार का निराश करना तथा जिनेन्द्र भगवान के मार्ग के प्रभाव का महात्म प्रकट करना तथा शसय विभ्रम को दूर करना तथा मोह फ़ास की वेदना को दूर करना यह अनेक प्रकार से कर्मो की निर्जरा का कारण है ऐसी निर्जरा जिनेन्द्र भगवान के शासन मे कही गई है ।३१५॥

ज्ञात्वा पुद्गल कर्माविपाकं मुञ्चन्ति रागद्वेषादीन् ।
मायानिदानमिथ्या त्रिशल्यानि गरवादि भावान् ॥३१६॥
मैत्री प्रमोद कारुण्यं समभावमापघते सुखदुःखे ।
मोहतिमिरं हन्ति यः भवति निर्जरा जिन शासने ॥३१७॥

जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी आत्मा जब जान लेता है कि मेरे पूर्वोपार्जित पुद्गल कर्म सत्ता मे से उदय को प्राप्त हुए है जिससे नाना प्रकार के उपद्रव सन्मुख आ रहे है और एक के पीछे एक वेदना दे रहे है परन्तु जितने लोग यहा (दिखाई) कारण रूप दिखाई देते है वे तो बाह्य कारण मात्र निमित्त है ये मेरा कुछ भी विगाड़ नही रहे है इनका मेरा कोई वैर भी नही है ये तो विना कारण ही है ये जो वेदना दे रहे है वे मेरे परम प्रिय उपकारी है जिनके सहयोग से जिन कर्मो को करोडो वर्षो मे नाश करता था उन कर्मो को इनकी सहायता से आज अभी नष्ट किये देता हू ये ही मेरे परम उपकारी मित्र है इनका मेरा कोई वैर विरोध

नहीं है सम्भवत: हो क्योंकि मैंने इनका पूर्व भव में अवश्य अपकार किया होगा। जिसके कारण मुझ को देख कलुषित परिणाम करते है तथा वेदना देते है नही नही मेरे वेदना ये नही देते है ये तो मेरे परम उपकारी है मेरी परीक्षा कर रहे है। मेरे कर्मो का नाश अब शीघ्र ही हो जायेगा। अभी तक तो मै अकेला ही तप करता था अब ये साथी मिल गये अब शीघ्र ही मार्ग तय हो जायेगा और मै अपनी मजल पर पहुँच जाऊंगा। इस प्रकार भावों की उत्कृष्टता से युक्त होता हुआ सबसे क्षमा याचना कर राग द्वेष रूप भावों का त्याग करता है तथा समता भाव को धारण करता है। माया मिथ्यानिदान शल्य त्रय का व रस ऋद्धि सात गौरव त्रय का त्याग कर समभाव पूर्वक उत्तम क्षमादि भावो में दृढ़ प्रतीति पूर्वक आचरण करता है तथा सब जीवो से राग विरोध कषायो तथा वैर भाव का त्याग कर सबसे मैत्री भाव को धारण करना व सबसे अपने किये हुए अपराधों की क्षमा मागना तथा सबको क्षमा करना इन भावो के धारण करने पर कर्मो की विशेष निर्जरा होती है जो सब प्रकार को भोग काम व वैभव की इच्छाओ को त्याग कर रत्नत्रय में लीन होता है तथा समाधि में स्थित होता है उसके प्रति समय विशेष निर्जरा होती है। जो अन्य विद्वान सम्यग्ज्ञानी शील संयम के धारण करने वालो के गुणो में अनुराग करता है तथा उनकी वैयावृत्ति सेवा करता है तथा अपने दोषो की निन्दा करता है पर के गुणों को ग्रहण करता है ऐसे भव्य जीव के निर्जरा विशेष होती है। जो दयावान क्षमादि गुणों से दृढ है अपने ऊपर आये हुए उपसर्ग और परीषहो को जीत रहा है उसके विशेष निर्जरा होती है। जो सब जीवो से प्रेम करता हुआ सब के हित की कांक्षा करता है सम भाव पूर्वक मोहान्धकार व अज्ञान अन्धकार व असयम भाव का त्याग करता है उसके विशेष निर्जरा कही गई है। ३१६-३१७।

ये पश्यन्त्यन्स्मनं चात्मनिखलुसतत ध्यान वीधौ समाधौ।
वाह्यगात्रस्य सम्बन्ध मविसरति भुक्तं फलं प्राचि दुःखम्॥
वाच्छा कुर्वन्ति किं चिन्नमम भवभवे दर्शने ज्ञानयोगे।
प्रत्याख्याने चरित्रे निसरति च मलाच्छादित धोत लाम्वो: ॥३१८॥

जो भव्यात्मा शरीर से सम्बन्धित स्त्री, पुत्र, माता, पिता, परिजन व वस्त्र आभूषण अहकार तथा मकान व हाथी घोड़ा, गाय, भैंस, इत्यादि अनेक प्रकार के सम्बन्धों को यह जान कर छोड़ देता है कि मैने पूर्व में अनेक भव धारण किये थे उन सब भवों में इस शरीर और शरीर से प्रेम करने वाले व सम्बन्ध रखने वालों के ही कारण मैंने पूर्व में बहुत बार अनेक प्रकार से दुःख सहे इसलिये इस शरीर और शरीर से सम्बन्धित पदार्थ मेरे नही मेरे से अत्यन्त भिन्न है। ऐसा विचार कर भविष्य में होने वाले इन्द्रियजनित सुखो की इच्छाओं का त्याग कर निर्ममत्व होकर अपने आत्मा को अपने आत्मा में ही अवलोकन करता है और अपने आत्मा को निश्चय कर ज्ञान ध्यान समाधी में स्थित देखता है अनुभव करता है। जब निज स्वरूपमें स्थित होता है ? क्या देखता है। मेरा आत्मा ज्ञान में स्थित है, मेरा आत्मा दर्शन मे स्थित है मेरा आत्मा योगो में स्थित है, मेरा आत्मा प्रत्याख्यान में स्थित है, मेरा आत्मा चारित्र में स्थित है, इस प्रकार पर भावों से क्रमक्रम कर रहित होता जाता है यह विशेष निर्जरा

कही गई है वह इस प्रकार है कि जब तूमडी के ऊपर कीचड लिपटी रहती है तब तक वह तूमड़ी पानी के नीचे पडी रहती है जब तूमडी के ऊपर लगी हुई माटी धीरे धीरे घुलती जाती है उतनी उतनीवह हलकी होती जाती है और वह पानी के ऊपर आने लग जाती है। इसी प्रकार अपना आत्मा कर्ममल कीचड से आच्छादित हो रहा है जैसे कर्ममल कीचड सम्यक्त्व सयम तप ध्यान व परीषहो के जीतने व बारह भावनाओ का चिन्तवन कर परम वीतराग भाव के आने पर कर्मरज घुलने लग जाती है तब आत्मा का भी बोझा हल्का होने लग जाता है। यही निर्जरा श्रेयष्कर कही गई है।

विशेष—भव्य प्राणी अपने पूर्व भव में भोगे हुए दुःखो का बार बार चिन्तवन करता है आज तो मेरे को इतना दु.ख नही कि जितना मैंने इस शरीर के सम्बन्ध से पूर्व में भोगे हैं। जिनकी सीमा नही और वे दु ख कहे भी नही जा सकते हैं उन दुःखों को तो एक केवली ही जान सकते हैं अन्य के ज्ञान गोचर नही हो सकते है शरीर और शरीर के सम्बन्ध मे मैंने रोग वेदना शरीर के टुकड़े होने व छेदने भेदने व अन्नपान निरोध करने बाधने पीटने नाक कान छेदने रूप दुःख व मारने भक्षणे व पकावने उबालने शीत व धूप में बाँधने ढोने व अन्न पानी के न मिलने रूप अनत प्रकार के दुःख इस शरीर के सम्बन्ध से ही सहे इसलिये अब मैं अपने से भिन्न शरीर से सम्बन्ध रखने वालो से ममत्व का त्याग करता हूं अब मे निर्ममत्व होकर व निश्चिन्त्य होकर अपने आत्म स्वरूप जो बोधि समाधि मे ध्यान में स्थित होता हू मैं ही ज्ञान मे व दर्शन में, चारित्र में, प्रत्याख्यान मे, भोगो मे, सवर में स्थित हूं इस प्रकार भावना करता हुआ अपने आत्मा को अपने आत्मा मे देखता है तथा अनुभव गोचर करता है तब कर्म मल कुछ फल देके खिरते है कुछ विसंयोजना कर के निर्जीर्ण होते है कुछ उदीरणा कर शक्ति रहित होकर खिर जाते है। जिस प्रकार पानी की लहरो के उठने पर तूमड़ी के ऊपर लगी हुई माटी क्रम क्रम से घुलती जाती है और जब तूमडी हलकी हो जाती है तब पानी के ऊपर आ जाती है उसी प्रकार निर्जरा जानना चाहिये।३१८॥

मिथ्यात्वे निर्जरानास्ति नास्ति सासादने मिश्रे।
भवति चोत्तरोत्तरे भव्यानामभव्यानां न किंचितम्।३१९॥

मिथ्तात्व, सासादन और मिश्र इन तीनो गुणस्थानो मे जीवो के निर्जरा नही होती है। भव्य जीव के तो चौदह गुण स्थान होते है परन्तु अभव्य जीव के एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। भव्य जीवों के चौथे से आदि लेकर चौदहवें गुणस्थान तक विशेष निर्जरा होती है परन्तु अभव्य जीवो के आगे के गुणस्थान हीनही तब निर्जरा किसके हो। इसलिये सविपाक निर्जरा भव्य तथा अभव्य सभी जीवो के होती है। परंन्तु अविपाक निर्जरा भव्य सम्यक्दृष्टि सयमी के ही होती है।३१९॥

(इति निर्जरा तत्व)

मोक्षतत्त्व

द्रव्य भावौ च मोक्षौ शुद्धौपयोगयुक्तेन॥
पूर्वे भवति वृत्तिश्च उत्तरे द्रव्य मोक्षंव॥३२०॥

मोक्ष दो प्रकार का है एक तो प्रथम में होने वाला भाव मोक्ष है दूसरा द्रव्य मोक्ष है भाव मोक्ष वह है कि जिन्होंने अपने विभाव भाव और संयोग सम्बन्ध से होने वाले मिथ्यात्व अज्ञान असयम प्रमाद और क्रोध, मान, माया, लोभ और हिसा, झूठ, चोरी, कुशील वपरिग्रह में आशक्ति थी उस आशक्ति का परिहार कर सब विभावों से होने वाले राग द्वेष माया मत्सर तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और करण इन पचेन्द्रियो के विषय शक्तियो का त्याग कर अतरग और वाह्य परिग्रह तथा शरीर से भी ममत्व त्याग कर निर्मोह होता हुआ शुद्धोपयोगी होता है तब भाव मोक्ष होता है। द्रव्य मोक्ष उसके पीछे होता है वह द्रव्य कर्मो के क्षय होने पर होता है। जब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठ कर्म तथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चार प्रकार के बध का अभाव होने पर होती है । औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण इन पाँच नो कर्मो का क्षय हो जाने पर मोक्ष होता है । यह द्रव्य मोक्ष ससार के वृद्धि के कारण शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के भाव बध जो द्रव्य बंध का विशेष कारण था उसके अभाव होने पर भाव मोक्ष तथा शुद्धोपयोग में स्थिर रह जाना जिससे समय-समय पर कर्म फल देकर खिर जावे और भविष्य के लिये बध का अभाव होता जाय अब पूर्ण रूप से कर्म क्षय हो जाय यह भाव मुक्ति द्रव्य भक्ति का कारण है भाव भक्ति से ही द्रव्य मुक्ति होती है । बिना भाव के द्रव्य मुक्ति नही हो सकती है ॥३२०॥

किं दण्डयति गात्रं-गात्रं दण्डेन भवति न मुक्तिः ।
किं न दण्डयसि कषायानि चेदिच्छति मोक्षसौख्यमेव ॥३२१॥
दण्डयसि न कषायानि शरीरं दण्डयसि कृतोपवासैः ।
किं सर्पोमृयते वा बाल्मीकं कुट्टने तदा ॥३२२॥

हे अज्ञानी बहिरात्मा तू नित प्रति मात्र शरीर को सुखाता रहता है क्या प्रयोजन शरीर के सुखाने उपवास करने से सिद्ध हो जायेगी ? शरीर मात्रको जीर्ण करने से मुक्ति की प्राप्ति कदापि नही हो सकती है । यदि तू मोक्ष सुख की अभिलाषा रखता है तो उस मिथ्यात्व और क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायों को पीट जिससे कषाये तेरे पास ही न आ सके ।

एक, दो, चार, दश, पक्ष, मास के उपवास करता है जिससे शरीर सूख कर खंखर बन जाता है परन्तु शरीर के खंखर बनने मात्र से आस्रव और बध का अभाव नही होगा क्योकि आस्रव और बध का तो मूल कारण तेरे कषाये है इनकषायों को तू रोकना ही नही चाहता है । जो कषायें तेरे को अनन्त काल से ससार में जन्म मरणके दुखों को देती हुई भी तेरे अंतर में जमी हुई बैठी है । जिसप्रकार कोई अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव सर्प को मारने के लिये सर्प के बिल वामी को डण्डा लेकर कूटता है क्या ? वामी के कूटने से सर्प मर सकता है ? नही मर सकता । इसी प्रकार शरीर मात्र को कृश बनानें से मोक्ष सुख की प्राप्ति नही, इस लिये शीघ्र ही हमको अपनी कषायों का त्याग कर देना चाहिये । अपने भीतर में बैठी हुई कषाये ही हमारी मुक्ति में बाधा डाल रही हैं ॥३२१।३२२॥

संवरैः सह निर्जरा क्षयं कृतं च मिथ्यात्वम् ।
असंयते कषायानि क्षये सावकसम्यक्त्वम् ॥३२३॥

(सम्वर के साथ) सवर पूर्वक निर्जरा ही उत्तम है । सम्वर रहित निर्जरा कोई कार्यकारी नही । मिथ्यात्व गुण स्थान के अन्त मे मिथ्यात्व का सवर होता है । मिश्र के अन्त में सम्यग्मिथ्यात्व का सवर होता है । असख्यात गुण स्थान मे सम्यक्प्रकृति का किन्ही के उपशम किसी के उदय होता है, किसी के क्षय होता है, जिनके उदय होता है उनके सवर निर्जरा दोनो होती है । जिनके उपशम होता है उनके सवर मात्र ही है परन्तु जिनके इन तीनो का क्षय हो गया है उनको दर्शन मोह से मोक्ष हो जाता है तथा अनन्तानुवधी चोकड़ी का अभाव हो जाने से अनत ससार का कारण भूत जो मिथ्यात्व और अनतानुबधी कषायो का क्षय होने से अब ससार अन्त सहित हो जाता है मिथ्यात्व भाव को तो भाव मोक्ष प्रथम गुण स्थान के अत मे ही हो गया । परन्तु द्रव्य मोक्ष आगे के गुण स्थानो में होता है । अनतानुबधी का सवर सासादन के अन्त मे हो जाता है । परन्तु सत्व सत्ता मे रह जाता है जिनका उदय चौथे गुण-स्थान मे उपशम सम्यग्दृष्टि के आता है । जिससे सम्यक्त्व से च्युत होता है आगे के गुण-स्थानो मे इनका उदय नही है । क्षायक सम्यग्दृष्टि इनका क्षय करता है । परन्तु उपशम सम्यक्त्व बाला दबाता है । और वेदक वाला जीव विसयोजन करता है उसके नरक त्रियच आयु का बंध नही होता है । जिससे सम्यक्त्व होने के पूर्व में आयु बाध रक्खी है वह भी पहले नरक में व भोग भूमि के त्रियंचो में ही नियम से उत्पन्न होगा अथवा मनुष्य होगा तो उत्तम भोग भूमि का मनुष्य होगा ॥३२३॥

देश सकल संयमेऽप्रमत्तेऽपूर्वकर्णे मा कोऽपि ।
भागाऽनिवृत्ते नवैवं षोडशाष्टैकैक षट् पुंस ।३२४॥

देश संयम, सकल सयम प्रमत्त गुण स्थान मे तथा अप्रमत्त और अपूर्व करण गुण स्थान में कोई प्रकृति का क्षय नही है । अनिवृत्त करण के नौ भाग है परन्तु चौथे गुण स्थान मे त्रियच आयु व नरक आयु का बध नही तथा देश सयत मे मनुष्य आयु का बध नही अप्रमत्त गुणस्थान मे देव आयु का बधनही । आगेके अपूर्वकरण गुणस्थानादि मे किसी भी गुणस्थान में चारो आयु में से कोई भी आयु का बध नही है । इसलिये बध के अभावस्वरूप इनका क्षय ही समझना चाहिये । अनिवृत्त करण गुणस्थान के नो भाग है । जिनमें से पहले भाग मे सोलह प्रकृतियो का सत्व से क्षय है दूसरे भाग में आठ छह भागो मे एक-एंक की सत्ता से विच्छुति रूप क्षय है वे इस प्रकार है नरक गति और नरकगत्यानुपूर्वो २ त्रियंच गति त्रियच आनुपूर्वी २ विकल त्रय ३ निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, उद्योत, आतप, एकेन्द्री, साधारण, सूक्ष्म स्थावर इन सोलह की सत्ता शान्त हो जाती है । अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान दो चोकड़ी ८ ये मध्यम कपाये आठ दूसरे भाग मे क्षय होती है । तीसरे भाग मे नपुंसक वेद चौथे भाग मे स्त्री वेद तथा छह नौ कषाये व पुरुष वेद तथा सज्वलन क्रोध, मान माया इन तीन को अन्त में क्षय करता है इस प्रकार मोक्ष जाने वाले जीव के कर्मो की प्रकृतियाँ नवे गुण-स्थान में ३६ का क्षय करके आगे गुण स्थान को प्राप्त होता है ॥३२४॥

सूक्ष्मसांपरायान्ते च सूक्ष्मलोभश्च क्षयं कृत्वा।
नोपशान्तमोहे क्षीणमोहे क्षयं षोडशचरये ॥३२५॥

सूक्ष्म सांपराय गुण-स्थान के अन्त में सज्वलन सूक्ष्म लोभ को नाश करके उपशान्त मोह को छोड़कर क्षीण मोह गुण स्थान में जा पहुँचता है वहाँ पर यथाख्यात चरित्र व स्वरू-पाचरण व अप्रतिपादी शुक्ल ध्यान में स्थिर होकर उसके अन्त में १६ प्रकृतियों का क्षय करता है वे इस प्रकार है। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाच अतराय तथा निद्रा और प्रचला इन सोलह का क्षय करके केवली बन जाता है। इस प्रकार त्रेसठ प्रकृतियों का नाश कर केवली बन जाता है ॥३२५॥

आयुस्त्रयोदशनाम सर्वघातिनां क्षयात्केवलम् ।
ज्ञानंदर्शनमनंतदान लाभ भोगाश्च वीर्यम् ॥३२६॥

देव, नरक त्रियच, गति और तीन आनुपूर्वी छह तथा अन्य सात का क्षय होता है। ज्ञानावरण की पाच दर्शनावरण की ६ मोहनीय की २८ और अन्तराय की पाच इन ४७ प्रकृतियो के क्षय होने पर केवल ज्ञान को प्राप्त होता है। तथा तेरहवे गुण स्थान में अनन्त ज्ञान दर्शन क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक चारित्र तथा क्षायक दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा अनन्त-वीर्य को प्राप्त होता है ॥३२६॥

लोकालोकविभक्तं सर्वद्रव्यपर्यायानि सदा ।
जानीतेयुगपच्च सर्वज्ञ इत्युच्यते जिनः ॥३२७॥

जिनके ज्ञान में लोक और अलोक का विभाग करते हुए सब द्रव्य और उनकी सर्व होने वाली भूत भविष्य और वर्तमान काल मे होने वालो द्रव्य पर्याय और गुण पर्याय होती हैं जो अनन्त होती है उन सबको एक समय में ही देखते है और जानते है। वे पर्याये प्रति समय मे क्षय और उत्पन्न होती है उन सब पर्यायों सहित द्रव्यों को देखते है और जानते है, उनको सर्वज्ञ कहते है। अथवा उनको जिन कहते है। अथवा योग सहित होने से उनको सयोग केवली कहते है ॥३२७॥

माऽौपशमिक भावाः क्षयोपशमिक ज्ञान दर्शनानि।
नास्त्यौदयकाः भव्याऽभव्यौ चायोग केवलिने ॥३२८॥

औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र तथा क्षयोपशमिक तीन दर्शन चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन तथा क्षयोपशमिक कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, कुअवधि ज्ञान, तथा मति-श्रुतावधि और मनः पर्याय ये ज्ञान नही होते है। तथा सयमासंयम तथा क्षयोपशमिक सयम क्षयोपशमिक सम्यक्त्व तथा क्षयोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, क्षयोपशमिक वीर्य ये क्षयोपशमिक भावो का भी अभाव हो गया है। औदायिक के तीन गति, चार कषाय तथा तीन लिंग अज्ञान, अदर्शन व पाचलेश्याये (छह लेश्याये) अभव्यत्व ये परिणामिक भाव भी केवली भगवान के नही होते है। अयोग केवली के जो तेरहवें गुणस्थान मे कहे गये भाव है वे नही होते है साथ मे जो लेश्या औदायिकी थी उसका भी क्षय होता है तथा मनुष्य गति औदायिकी थी उसका भी क्षय होता है तथा भव्यत्व का भी अभाव अयोग केवली गुण स्थान हो जाता है ॥३२८॥

औदारिक वैक्रियको आहारमिश्रामिश्रौ पाप ॥
पुण्यं सुख दुखेयाङिन्द्रिय भोगोपभोगानि ॥३२६॥

अयोग केवली के अतावस्था में औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक आहारक मिश्र तथा तैजस और कर्माण व नो कर्म नही रह जाते है। तथा उनके पुण्य रूप सुकृत भी नही है और पाप रूप दुष्कृत भी नही है। तथा पचेन्द्रिय जनित भोग और उपभोग नही होने से इन्द्रिय जनित भोगो तथा उपभोगो से होने वाले सुख दुःख भी नही है इन्द्रिय जनित भोग विलास नही है। जो ससारी जीव सयोग रूप इष्ट, पुत्र, स्त्री, धन, आभूषण आदि पदार्थो के प्राप्त होने पर अपने को सुख का अनुभव करते थे वे सुख भी उनके नही है। तथा वेदनीय कर्म जनित वेदना व साता रूप शारीरिक तथा मानसिक दुख भी नही है ॥३२६

संक्रमण विसर्योजन काण्डक नास्तिस्थितिः खण्डमर्यादा ॥
द्रव्य भाव नो कर्माणि सहनन संस्थान नैव ॥३३०॥

उन अयोगी भगवान के कोई सक्रमण नही है। विसयोग भी नही है काण्डक भी नहीं है न कर्मो की स्थिति ही शेष रह जाती है न उसके खण्ड की कोई मर्यादा ही है द्रव्य कर्म भाव कर्म, नो कर्म, वज्रवृषभादि सहनन तथा समचुतरस्र सस्थानादि कोई सस्थान भी जिनके नही है। इस जीव ने पहले अनन्त काल से जिस अवस्था विशेष को कभी नही पाया था न आगे कोई अवस्था शेष ही रह जाती है ऐसी अन्तिम अवस्था को प्राप्त किया है ॥३३०॥

क्षिपित्वा प्रकृति बंधं स्थितिं चानुभाग प्रदेश बन्धम् ।
औदारिकादि योगाः मासन्ति पंचदश योगाः ॥३३१॥

जिन्होने प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश बध इन चारो बधो का समूल क्षयकर दिया है। तथा जिनकी औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण इन सात काय योग तथा चार मन के चार वचन के इन पद्रह योगो से रहित मुक्तात्मा हो जाती है तथा औदारिकादि बधनो से मुक्त होती है ॥३३१॥

शुद्धचैतन्य चिदात्मा सम्यत्क्वं ज्ञान दर्शन वीर्यानि ।
अगुरुलघु मव्यावाध सूक्ष्मोऽवगाहनागुणाः ॥३३२॥

उन मुक्तात्मा का स्वरूप शुद्ध चैतन्य तथा चिदात्मा है तथा क्षायक सम्यक्त्व एक क्षायक दर्शन एक, क्षायक ज्ञान, क्षायक वीर्य तथा अगुरुलघु, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अव्यावाधत्व इन गुणो से युक्त होते है। वे अनत गुण है। तथा वे सिद्ध भगवान गुण स्थान से रहित है तथा अविनाशी है अनत काल तक मुक्ति मे ही रहेगे। वे अपने अनत दर्शन और अनत ज्ञान से सब त्रिकाल व त्रिलोक व अलोकाकाश को अपना ज्ञेय बना लिये है अथवा सबको जानते है। वे भूत काल मे हो चुकी और भविष्य काल मे होगी और वर्तमान काल मे हो रही है उन सब पर्यायो को जानते है और देखते है अथवा सव द्रव्य गुण पर्यायो को जानते है देखते है ॥३३२॥

अतिसयमव्याध विषयातीतमनुपम मनतं च ।
शुद्धोपयोगस्य च सौख्य सिद्धानां सास्वतं ॥३३३॥

उन सिद्ध भगवान के शुद्धोपयोग रूप सुख है और वह सुख अतिशय स्वरूप है

उनमें हीनाधिकता नही है जैसे ससारी जीवों के इन्द्रिय जनित सुख होते हुए कभी हीन कभी अधिक कभी भी दुःख होता है परन्तु यह सुख पराश्रित है कर्माधीन है सिद्धों के जो सुख है वह पराश्रित नही वह हीनाधिकता से रहित होने से अतिशय सुख है। अव्याबाध- संसारी जीवों के वेदनीय कर्म सुख में बाधा उत्पन्न किया करता था परन्तु सिद्ध भगवान के वह बाधक वेदनीय कर्म क्षय हो गया है इसलिए उन सिद्ध भगवान के जो सुख है वह अव्याबाध है। सिद्ध भगवान के जो सुख है वह उपमारहित अथवा उपमातीत है। उपमातीत उसको ही कहा जा सकता है कि जिसकी जगत में कोई उपमा नही हो। इसलिए सिद्ध भगवान के उपमा रहित सुख है वह अनुपम है। विषयातीत उन सिद्ध भगवान के पंचेन्द्रियों के द्वारा स्पर्श नही किया जाने वाला ज्ञानमय सुख है व सिद्ध भगवान का ज्ञान ही सुख रूप से परिणमन करता है इसलिए जो उनके सुख है वह विषयातीत है तथा अनत है क्योकि जिस सुख का अंत नही उस ही सुख को अतातीत व अनत कहा जाता है जो आत्मा का ज्ञान और दर्शन है वही सुख रूप से परिणमन करता रहता है इसलिए अतरहित है। सिद्ध भगवान के अविनाशी अनवर्तक सुख है उसका कारण दूसरा सयोग या सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ नही है वह तो आत्मा के शुद्धोपयोग से आत्मा में ही प्रकट हुआ है ॥३३३॥

इति मोक्ष तत्वम् ॥

आगे सम्यक्त्व के कारणों को कहते है।

तव चरण युगलममररतिमिरं हरति विविधरिपुचमु दलनममित्।
विहितरज सकल मिलित कलुशान्क्षिपतु मम महदरि जगति भ्रमतिम् ॥३३४॥

जिन भगवान अरहत व सिद्ध भगवान ने अपने ज्ञानावरण और दर्शनावरण मोह- नीय और अन्तराय तथा वेदनीय, नाम, गोत्र, आयु इन कर्मो रूपी वैरी को नाश कर दिया है अथवा मदन के मद को व मर्दन कामदेव को बल को नाश कर दिया है तथा पाप पुण्य रूप पौधाओं को व क्रोध, मान, माया, लोभादिक जो अपने परिणामों में क्षोभ उत्पन्न करने वाले थे उनको नाश कर दिया है। उन शिवपुर वासी भगवान के चरणयुगल हमारे अज्ञान मिथ्यात्व मोह रूपी तिमिर (अन्धकार) की नाश करे। जो अज्ञान मिथ्यात्व रूपी तिमिर भ्रमर से भी अधिक काली है उसको शीघ्र ही दूर करे। पापो को नाश करें। जो ससार में ससारी प्राणियों का महावैरी है जिसके कारण ही हम ससारी आत्मा दुःख भोगते चले आ रहे है। उन कर्मो को दूर कर हमारी रक्षा करे।

नारके प्राक्तुर्ये त्र्यादि बाह्य साधनमधोधार्द्ध सप्ततेषु ॥
त्रिपक्षु स्याच्चतुर्विद धर्मश्रवणं वेदनातिश्च ॥ ३३५ ॥

पहले नरक वासी देवों के तीन सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण हैं एक तो जाति स्मरण व (विभंगावधि) धर्मोपदेश और वेदना अनुभव ये पहले से लेकर तीसरे नरक तक के नारकियों के होते है। तथा वहां तक स्वर्गवासी देव अपना नियोग पाकर जाते हैं और उनको धर्म का उपदेश देते है। जिससे उनको सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है। उससे आगे के नरकों में देवागमन नही है, इसलिए उनमें दो ही साधन है एक जाति स्मरण दूसरा वेदना अनुभव

त्रियंचों में चार साधन हैं देवदर्शन, धर्मोपदेश, जाति स्मरण और वेदनानुभव इस प्रकार चार साधन है ॥३३५॥

जातिस्मरणंजिनविम्वदर्शनं (देवार्द्धि) देवेषु चतुर्हेतुः।
धर्मश्रवण नित्यं देवार्द्धिप्रदर्शनं तथा ॥३३६॥

देव गति में सम्यक्त्व प्राप्त करने के चार-चार साधन है एक जाति स्मरण, जिन विम्ब दर्शन, देवों की ऋद्धि देखना और धर्मश्रवण ये चार साधन सोलहवे स्वर्ग तक के देवो में पाये जाते है। परन्तु नवग्रीवक अनुदिष और अनुत्तरविमानों वासी देवो के भी इसी प्रकार है परन्तु देव ऋद्धि दर्शन का अभाव है वहाँ पर सब ही एक समान ऋद्धि के धारक हाते है। तथा अनुदिष और अनुत्तर विमान वासी देवो में उत्पन्न होने वाले जीव सम्यक्त्व साथ लेकर ही उत्पन्न होते है। उनके यह कल्पना नही है।

मनुष्येषु चतुर्धर्मश्रवणं गुरुणां जातिस्मरणम्
जिन भक्तिः जिनविम्वः सम्यक्त्वोपार्जनस्यसदा ॥३३७॥

मनुष्यों के सम्यक्त्वो पार्जन में वाह्य साधन जिन भक्ति, जिनबिम्ब दर्शन, धर्मो पदेश श्रवण तथा गुरुओं के दर्शन व दानादि क्रियायें हैं। तथा जाति मरण होने पर भी सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। तथा गुरुओं की अतिशय प्रभावना देखकर श्रद्धान होता है ॥३३७॥

अभ्यन्तरे सर्वेषां दर्शनमोहस्योपशमं सदा ॥
क्षय न क्षयोपसम च चरित्र मोहस्य कषायाः ।३३८॥

अतंरंग साधन सब जीवों के समान ही है किसी के हीनाधिक नही है दर्शन मोह की मिथ्यात्व सम्य मिथ्यात्व सम्यक्त्व प्रकृति इन तीन तथा चारित्र मोह की अनतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात के उपशम होने पर उपशम सम्यक्त्व तथा क्षय होने पर क्षायक सम्यक्त्व तथा सर्व घातिया प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय तथा सदवस्थारूप उपशम तथा सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर जो सम्यक्त्व होता है वह क्षयोपशम कारण है तथा सम्यक्त्व तीनो ही भव्य से पर्याप्तक पचेन्द्रिय जीवो के ही उत्पन्न होता है तथा साकार निराकार अनुपयोगों से युक्त जीवों के होता है ॥३३८॥

आगे सम्यक्त्व के निशाँकित अग को कहते है।

अविचलोगभीरुश्च जिनाज्ञा प्रतिपालकोनिःसकः ॥
खडग धारायांपय तच्छद्धान निशांकितांगः ॥३३९॥
नाभूवन् भवतारः सांप्रते भवन्ति जिनवचोन्यथा ॥
इत्यकपायमनेच मा शंसयारुचिः परिपक्व ॥३४०॥

संसारावस्था में जो भी कार्य देखे जाते है वे भय युक्त ही रहा करते हैं परन्तु जब वे भगवान जिनेन्द्र के द्वारा कहे गये सत्पथ को प्राप्त होने वाले भव्यात्मा किसी भी कारण के मिलने या कुमार्ग में चलने वाले मिथ्यादृष्टियो के वैभव व पुण्य और लक्ष्मी की समृद्धि देखते हुए उनके बताये हुए मिथ्यामार्ग मिथ्याधर्म की प्रभाव व प्रभावना को देखते

हुए जो अपने ग्रहण किये हुए सन्मार्ग से चलायमान नहीं होते है वे ही बड़े गंभीर होते हैं। मिथ्यामार्ग की परीक्षा करने के व सन्मार्ग को परीक्षा कर उन्मार्ग का त्याग कर देते हैं। वे निशकित व निर्भय भव्य जिन वचन में रचमात्र भी शका नही करते हैं वे यह कहते है कि अहिसामय ही धर्म है तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ही निश्चय और व्यवहार धर्म है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ मार्ग है। इस से भिन्न अन्य कोई दूसरा मार्ग नही है। क्योंकि अन्य मार्ग में जिनेन्द्र द्वारा प्रज्ञप्त मार्ग के समान समतुलना नही है। मोक्ष का साक्षात् मार्ग यह जिनलिंग है वह जिनलिग निर्ग्रन्थरूप है। इस निर्ग्रंथलिग से ही सिद्ध गति प्राप्ति होती है, यह निर्ग्रन्थलिग ही सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला है, यह निर्ग्रन्थलिग ही साक्षात् मोक्ष मार्ग है, जितने अन्य मार्ग हैं वे सब उन्मार्ग है। जिन मार्ग ही निर्वाण में ले जाने का व सब दुःखों के कारणो को नष्ट करने वाला वज्र के समान है। जिस प्रकार वज्रके पड़ने पर पर्वत के पर्वत चूर्ण हो जाते है तथा गिर जाते है। यह निर्ग्रन्थ जिनलिंग सब प्रकार के पाप वासनाओं से रहित माता के गर्भ से उत्पन्न हुए बालक के समान निर्विकार तथा जात रूप है। यह सम्यक्त्व का निशकित अंग है।

जैसा कि तलवार की धार के ऊपर रक्खा गया पानी जैसा का तैसा अचल रहता है वह पानी चलायमान नही होता है। उसके जिन वचन में सदेह नही होता है अथवा कोई विकल्प भी नही होता है। सशय—दो वस्तुओं का एक वस्तु में निर्णय नही जैसाकि दिगम्ब निर्ग्रन्थ अचेलत्व से मोक्ष होगा या वस्त्र धारण किये हुए होगा। वह वस्त्र सहित जिनमार्ग है या वस्त्ररहित है। यह सर्व प्रकार के परिग्रह के त्याग रूप है या परिग्रह सहित के जैन धर्म है। जिनका समाधान हो नही सकता है उनको संशय कहते है, परन्तु जिनेन्द्र भगवान के वचन में जो शका नही करता है, उसके ही निशकित अग होता है।

सम्यग्दृष्टि जीव निश्चय करता है कि जिनाज्ञा भूतकाल में भी मिथ्या नही हुई वर्तमान में भी मिथ्या नही हो रही है और भविष्य में भी मिथ्या नहीं हो सकती है कोई अज्ञानी विचार करता है कि सर्वज्ञ तीर्थंकर को बताई बात मिथ्या हो जायेगी या मैं मिथ्या कर के बताऊगा ऐसा गर्व करने वाले रोहिणी के भाई द्वीपायन ने प्रयत्न किया। एक दिन नेमिनाथ भगवान का समोशरण गिरनार पर्वत पर आया हुआ था कि यादव सब दर्शन करने के लिये गिरनारी पर्वत पर पहुचे और प्रदिक्षणा कर पूजा वदना करी और मनुष्यों के कोठा मे आ विराजे और बलभद्र ने भगवान से कुछ प्रश्न किये कि हे भगवान जो द्वारिका नगरी देवों कर रची समुद्र के बीच में है यह नगरी कबतक ज्योकि त्यों स्थित रहेगी ? और किसके कारण और कब विनाश को प्राप्त होगी ? श्री कृष्ण की मृत्यु कैसे और किसके हाथ से होगी ? यह सुनकर भगवान नेमिनाथ की दिव्य ध्वनि खिरी कि हे बलभद्र जो तूने प्रश्न किये है सो सुन, तेरे पास में बैठे हुए रोहिणी का भाई द्वीपायन के बायें हाथ से पुतला निकलेगा जिससे द्वारिका का दहन होगा। और तेरे भाई जरद कुमार का तीर श्रीकृष्ण के पद्म को फारेगा जिससे श्रीकृष्ण की मृत्यु होगी। उस समय जरद कुमार के हाथ में जो इशु है उसी से मारे जायेंगे। तथा जो दीक्षा लेकर निकल जायेंगे वे रह जायेंगे व तुम दोनों भाई अग्नि से बचोगे। इन सब बातो को श्रीकृष्ण व रोहिणी के भाई ने मिथ्या करना चाहा परन्तु वह

मिथ्या हुई नही। इसकी कथा हरिवंश पुराण में से जानना चाहिये। तथा पहले भी कह आये है। यह जिन वाणी कभी भी मिथ्या नही हो सकती है न हुई थी न होगी ऐसादृढ श्रद्धान का होना ही निशांकित अग है तथा संशय और अरुचि का न होना ही सम्यक्त्व का निशांकित अंग है। ऐसा ही है अन्यथा नही हो सकता है। भय और अरुचि सशय का निराश करना यह निशांकित अग है जिन के सात भयों में से एक भी भय बनी रहती है वे निशाकित निर्भय नही इस लोक भय, परलोक भय, मरण भय, वेदना भय, अनरक्षक भय, अगुप्ति भय, अकस्मात् भय। जिन कारणो से अपने कुटुम्ब परिवार धन आजीविकादि बिगड़ जाने की आशका होती है उसको इस लोक भय है जो सब ससारी जीवनिके है। परलोक में मरण के पीछे कौन गति कौन क्षेत्र को प्राप्त होऊगा ऐसी अंतरग भावना का होना परलोक भय है। और मेरा मरण होगा ऐसी आशंका होने पर भय होता है जो मेरा नाश होवेगा न जानें कैसा दुःख भोगना पड़ेगा अब मेरा अभाव होवेगा ऐसा मरण भय है। मेरे वेदना होयेगी ऐसी आशका की उत्पत्ति का होना सो हो वेदना भय है, अपना यहाँ पर कोई रक्षक नही ऐसा जान कर भय करना सो अनरक्षक भय है। और अपनी वस्तु को कोई चुरा ले जावे नही सो हो अशका का होना सो चोर भय या अगुप्ति भय है। जो अकस्मात् में दुःख आ उपलब्ध हुए यह आकस्मिक भय है। जो स्वपर के स्वरूप का संवेदक होता है उस सम्यग्दृष्टि के ये भय नही होते है। जो पैर के नख से लेकर मस्तक की चोटी पर्यन्त चैतन्य ज्ञान धन है वह ही आत्मा हमारा तो धन है इससे भिन्न परमाणु मात्र भी हमारा धन नही है शरीर और शरीर से सबधि स्त्री पुत्र धन धान्य राज्य वैभवादिक है वे मेरे स्वरूप स्वभाव से बिलकुल भिन्न है। सयोग से उत्पन्न हुए है। इन पर द्रव्यादिका और हमारा क्या सबन्ध ? ससारावस्था में ऐसे सम्बन्ध सयोग अनतानत बार प्राप्त हुए है। और वियोग को प्राप्त हुए है। स्वभावतः जिनका संयोग हुआ है, उनका नियम से वियोग होगा ही। जो उपजा है वही विनशेगा मैं ज्ञान स्वरूप उपजा नही न विनाश ही होऊगा ऐसा जिसके दृढ निश्चय है उसके देह रूप परिग्रह के विनाश रूप इस लोक परलोकादि भय नही है। उसके ही निशांकित अग होता है। उसके परलोक भय भी नही है। जिसमे छह द्रव्यें देखी जाती है वही लोक है इसलिये हमारा लोक तो हमारा दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग ही है जिसमें द्रव्यें दिखाई देती है जानी जाती है।

जिसमे समस्त वस्तु झलकती है वही हमारे ज्ञानदर्शन मे अवलोकित होते है ज्ञान के बाह्य किसी वस्तु को मैं नही देखता हूं नही जानता हू यदि हमारा ज्ञान है तो निद्रा से युक्त हो जाता है अथवा रोगादि के होने के कारण मूर्छित मुद्रा मे हो जाता है तब सब लोक विद्यमान होते हुए भी अभाव रूप ही हुआ इसलिये हमारा लोक तो हमारा ज्ञान धन आत्मा ही है हमारा ज्ञान किसी वस्तु में देखने में नही आता है न जानने मे ही आता है ज्ञान से भिन्न जो लोक है वह नाना भेद को लिये हुए है वह स्वर्ग नरक त्रियक् ये सब सर्वज्ञ के प्रत्यक्ष भूत है वे भी मेरे स्वभाव से भिन्न है। जो पुण्य का उदय है वही स्वर्ग है और पापका उदय है जिससे नरक गति अशुभ गति को देने वाला है और पाप पुण्य दोनो ही विनाश युक्त है तथा स्वर्ग नरक ये दोनों ही पाप पुण्य का फल है वह भी विनाशी है। परन्तु मेरा आत्मा अनंतदर्शन

ज्ञान सुख वीर्य रूप अविनाशी है मोक्ष का नायक है मेरा लोक तो मेरे में ही विद्यमान है उसमें ही समस्त वस्तुओं को देखता हूं। जानता हूं, इस प्रकार सम्यग्दृष्टि के परलोक का भय नही है। यह निशाँकित अाग है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान ये पांचइन्द्रिय मन स्वाच्छोच्छ्वास मन वचन काय बाल और आयु ये भी कर्म जनित है और पुद्गल प्रश्रयरूप हैं इनका नाश होना ही संसार में मरण है। परन्तु आत्मा के ज्ञान दर्शन सुख वीर्य कभी विनाश को प्राप्त नही होते है अवश्य ही अविनाशी भाव प्राण है उनका विनाश किसी भी काल में नही है।

इसलिये जिसकी उत्पत्ति हुई है वही विनाश को पावेगा। मेरा सुख ज्ञान दर्शन वीर्य की सत्ता सदा काल विद्यमान रहती है कदाचित भी विनाश को प्राप्त नहीं होती है। इन्द्रियादिक जो प्राण है ये पर्याय के साथ में उपजते हैं। और पर्याय के साथ विनाश को प्राप्त होते है परन्तु चैतन्य तो मै अविनाशी हूं। इस प्रकार निश्चय का धारक सम्यग्दृष्टि जीव मरण के भय की शका नही करता है। इसलिये उसके वेदना भय भी नही है निशाकित है। वेदना का नाम अनुभव करने का है सो अनुभव करने वाला तो मैं ही हूं मैं जीव हूं मै अपने ज्ञान दर्शन का अनुभव करने वाला हूं मैं अविनाशी हूं। वह ज्ञान का अनुभव शरीर गोचर नहीं है शरीर में नही है। वेदनीय कर्म जनित जो वेदना है वह सुख दुख रूप है वह वेदना मोह कर्म के अधीन है वह मेरा नही है। और मेरा रूप भी उस प्रकार नही है वह तो शरीर के साथ में है। मै इनसे भिन्नज्ञाता दृष्टा हूं इस प्रकार ज्ञानीवेदना को शारीरिकवेदना को भिन्नजानता हूं। सम्यग्दृष्टिवेदना के भयसे निशकहोता है। सम्यग्दृष्टि जीव के अनरक्षक भय भी नही होता है। वह विचारता है कि जो उपजा है उसका ही विनाश होगा जिनका सयोग हुआ है उनका ही वियोग होगा। जो मेरे स्वभाव से भिन्न वस्तुये है वे धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, राज्य, वैभव व शरीर तो पुण्य पापाधीन है, जब पुण्य का उदय होवे तब आन मिले जब पाप का उदय हो तब विछुड़ जाती हैतथा हरण करली जावें परन्तु इससे भिन्न मेरा आत्मा अनन्तधनवाला तो सत्ता स्वरूप विद्यमान है असहाय सत् स्वरूप है। इसका हरण करने व विनाश करने वाला कोई भी देव दानव नही और रक्षा करने वाला भी नही, जिसका कोई विनाश करने वाला हो उसका रक्षक भी अवश्य चाहिये। सम्यग्दृष्टि अविनाशी स्वात्म स्वरूप का ही अनुभव करता है इसलिये उसके अनरक्षक भय नही निशांकित है। और अगुप्ति भय जो कपाटादिक की रक्षा बिना हमारा धन नष्ट हो जायेगा ऐसा चोर का भय भी नही है जो वस्तु का स्वरूप है वह तो अपने स्वभाव मे ही है अन्यत्र नहीं है। तथा अपना स्वरूप अपने से भिन्न नही है इसलिये चैतन्य स्वरूप जो मैं और मेरा आत्मा का चैतन्य स्वरूप मेरे में ही है। परका प्रवेश नही जो हमारा अनन्त दर्शन ज्ञान ही हमारा रूप है वही हमारा अप्रमाण अविनाशी धन है उसमें चोर का प्रवेश नही है और चोर का भय भी नही है इसलिये सम्यग्दृष्टि अगुप्ति रहित निशक है।

सम्यग्दृष्टि के आकस्मिक भय भी नही है अपना आत्मा निश्चय नय की दृष्टि से मेरा आत्मा तो सदा शुद्ध है ज्ञाता दृष्टा और अचल अनादि अनत है, स्वभाव से सिद्ध है अलक्ष चैतन्य प्रकाश रूप सुख का स्थानक है इसमें अचानक कुछ भी नहीं बिगाड़ होता। इस प्रकार दृढ़ भाव सहित सम्यग्दृष्टि निशाकित है। सम्यग्दृष्टि जीव हिंसादि पाप कार्यो के

करने व उसके फल की प्राप्ति में धर्म नही मानता है। तथा दूसरे मिथ्यादृष्टियों के कहे हुए धर्मो पर ही विश्वास नही करता है। जिन वचन का ही गाढ़ श्रद्धा न करता है ऐसा निशाकित सम्यग्दृष्टि का प्रथम अग है ।।३४०।।

निकाक्षित अग का स्वरूप

भोगोपभोगयो माड्काञ्छा सम्यक्त्व संयम तपैः ।
यद्धर्मोरातिमुक्तिः किं तन्नराति ससार वैभवं ।।३४१।।
यत्कृषकइच्छति फल माड्फलालार्थं च करोति कृषि ।
सदृष्टीच्छति राज्येन्द्राद्युच्च पदानिरा दुष्कृत् ।।३४२।।

इस धर्म के धारण करने से मुझको भोग और उपभोग की वस्तुये प्राप्त होने से धन धान्य का स्वामी होऊ। जो मैने सकल विकल सयम धारण किया है तथा उपवासादिक तप किये है, अनेक प्रकार से मुनियो के लिये दान दिये है, उनके प्रभाव से मुझे राज पद की प्राप्ति होवे विद्याधर होऊ, ऐसी इच्छाये सम्यग्दृष्टि नही करता है। जिस सम्यक्त्व के होते ही ससार का विच्छेद हो जाता है तथा सयम के धारण करने से अनेको भावो के उपार्जन किये हुए दुष्ट कर्म क्षय हो जाते है। व जिस तप के करने से मोक्ष सुख मिल सकता है तब अन्य की तो कथा ही क्या जिस सम्यक्त्व सयम तप की पूजा चक्रवर्ती व इन्द्रादि देव करते है जिससे मोक्ष रूपी अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है। जिस धर्म के धारण करने से त्रिलोक का अधिपत्यपना प्राप्त होता है क्या वह धर्म ससार की विभूतियाँ नही देख सकता है? जिस धर्म के धारण करने से सब प्रकार के विभाव और विनाशक दुःख देने वाले पापकर्मो का नाश हो जाता है भोग और उपभोग की जितनी वस्तुये है वे सब ही विनाश युक्त है कर्म से उत्पन्न हुई है और अपना फल देकर नाश हो जाने वाली है। पुण्य का जब उदय होता है तब ये विभूतियाँ चमकती है जब पाप का उदय होता है तब ये विभूतिया नाश हो जाती है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि जो विनाशिक पराश्रित भोगोपभोग की वस्तुये जितनी दिखाई देती है वे मेरी नही मैं भी इनका स्वामी नही। मेरे स्वरूप का मैं स्वामी हू मेरा भोग और उपभोग तो मेरा ज्ञान दर्शन अनत सुख अनत वीर्य ही है जिसका कभी भी शस्त्र से नाश कोई कर नही सकता है कोई भी विद्याधर व राजा चोर भी जिसका अपहरण नही कर सकता है वह एक चिदानद ज्ञान धन स्वरूप शुद्ध है। वह मेरा स्वभाव अन्य द्रव्य के सयोग सबध से डूबता नही है न विनाश ही होने वाला है। जो पराश्रित होते है वे अपने को कैसे सुख की सामग्री दे सकते है? क्योकि पराधीनता मे सुख कदापि नही हो सकता है ऐसा सम्यग्दृष्टि विचार कर आगामी भोगोपभोग व लौकिक वैभव राज्यादि विभूतियो की कभी भी वाञ्छा नही करता है। जब तक पुण्य का उदय नही आया है तब तक करोड़ो उपाय करने व पुरुषार्थ करने पर भी इन्द्रिय भोगो की वस्तुये प्राप्त नही होती है जो है वे भी अनिष्ट को प्राप्त होती है जिससे इष्ट वियोगादि अनेक प्रकार के दुःख सन्मुख आ जाते है। कदाचित् पुण्य का भी उदय आ जाय तो वह भी विनाशीक है। और इष्ट इन्द्रिय जनित है सो भोगते हो दुख का देने वाले है। जो इष्ट का सयोग हुआ है वह भी विनाशिक है आकाश मे चमकती हुई बिजली के समान क्षण मे नाश हो जाता है, तथा पराधीन है, तथा शरीर को निरोगता के अधीन है, धन व

स्त्री के अधीन है, पुत्र के आधीन, आयु के आधीन. जीविका और क्षेत्र के आश्रित है। काल और इन्द्रियों के अधीन है, तथा इन्द्रिय विषयों के अधीन है, इत्यादि अनेक प्रकार से पराधीन है। और विनाश के सन्मुख है वे भोग और उपभोग कितने काल तक भोगने में आते हैं। इसलिये इन्द्रिय जनित भोग है सुख हैं वें सब अन्तसहित है और जो अन्तसहित हैं तो भी धारा प्रवाह रूप नही है बीच-बीच में अनेक प्रकार के दुख बीच-बीच में आ जाते हैं कभी रोग हो जाने से कभी पुत्र व स्त्री व माता-पिता का वियोग होने रूप दुख कभी अनायास में ही अपमान का होना कभी धन हानि का होना कभी अग्नि का सयोग होना तथा वैरियों के द्वारा धन कीर्ति का नाश करने रूप अनेक प्रकार के दुःख आ जा है। दुख सहित है, और पाप वृद्धि का कारण बीज रूप है। इन्द्रिय जनित सुख में मगन होने पर अपने अपने आत्म जन्य सुख को भूल जाता है और महाघोर आरम्भ करने में लग जाते है। परन्तु उनका जैसे-जैसे सेवन करते जाते हैं वैसे ही पाप बढता जाता है और पाप बंध विशेष होता जाता है। इसलिये ये इन्द्रिय जनित सुख है ये सब पाप के कारण और नरक गति त्रियच गतियों में भ्रमण कराने वाले है। ऐसा पराश्रित क्षणभंगुर दुखो कर व्याप्त जो इन्द्रियजनित सुख है वे सम्यग्दृष्टि उसको सुख नही मानता वे तो सुखाभास ही मानता है। तब सुख में आस्था रूप श्रद्धान कैसे हो सके ? जब श्रद्धान होता नही है तब इच्छा कैसे करे ? तात्पर्य यह है कि जो सम्यग्दृष्टि है उसके आत्मा का अनुभव होता ही है जब आत्मा का अनुभव हो जावे तब आत्म स्वभाव को अतीन्द्रिय निराकुल अनत ज्ञान अविनाशी सुख का अनुभव होता है। इसलिये संसारी जीव के जो इन्द्रिय जनित सुख है वे सुख नही सुखाभास ही दिखाई देते है और वेदना का इलाज है। जिसके क्षुधा की वेदना उत्पन्न होगी वही भोजन की अभिलाषा व भोजन कर सुख मानेगा। जिसको प्यास लगेगी वही शीतल पानी पीने की इच्छा करेगा, जिसको शीत की वेदना होगी वही रजाई व चादर कम्बलादि वस्त्रों को ओढने के सन्मुख होगा, जिसको गर्मी की बाधा होगी वही शीतल पवन की इच्छा करेगा इसलिये बिना वेदना के इलाज कौन करे ? बिना नेत्र रोग के बकरी की पेशाब नेत्र में कौन डाले ? कर्ण रोग बिना कौन बकरी का मूत्र तैलादि को कौन कान में डाले ? शीतज्वर की वेदना बिना कौन अग्नि की गर्मी व सूर्य की गर्मी की इच्छा करेगा ? तथा वात रोग बिना दुर्गध मय तेलो का कौन मर्दन करेगा ? इसलिये सांसारिक पचेन्द्रियनिके विषय चाह रूप तीव्र आताप उपजता है तो भी विषयनकी पुनः इच्छा होती है। विषय भोग की इच्छा से उत्पन्न वेदना तो स्वल्प काल ही रहकर सेवन करने से पुनः अधिक-अधिक वेदना उत्पन्न करते है। इसी कारण इन्द्रियों से उत्पन्न हुए सुख सुख नही दुख रूप ही है। जिस प्रकारा सूर्य अस्त के समय गगन में जो पीलापन छा जाता है जिसके पीछे अधेरा लगा आता है वैसे ही ये सासारिक विषय वासना से होने वाले सुख है कि जिनके पीछे महा दुःख का अनुभव करना पड़ता है। बाह्य इन्द्रिय व शरीर व शरीर से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थो को अपने मानता है वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। इन्द्रिय विषयन की वेदना पूर्वक इलाज को ही सुख मानता है यह भी दर्शन मोह के कारण भ्रम वृद्धि है सुख तो वह है जिसमें वेदना का अंश भी नहीं हैं निराकुल स्थानुभवरूप है। विषयन के आधीन सुख मानना मिथ्या श्रद्धान है। इसलिये

सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्र और महेन्द्र चक्रवर्ती आदि के सुख को भी नही चाहता है। वह विचारता है कि यह सुख पराश्रित पुण्य कर्म के आधीन है। और बिनाशीक केवल दुख रूप ही भाषता है। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव के इन्द्रिय जनित सुख को कभी इच्छा नही होती है। इस जन्म में भी धन वैभव राज्य पदादि नही चाहता है और पर भव में भी इन्द्र चक्रवर्ती धरणेन्द्र इत्यादि पदों की इच्छा नही करता है। इन्द्रिय जनित सुख है वे अल्पकाल है आगे इनका फल रूप दु:ख काल असख्यात काल नरको का दु.ख तथा त्रियच गति मे दु.ख असख्यात व अनतकाल तक भोगना पड़ेगा। तथा कभी दीन दरिद्र महारोगी इत्यादि दु.ख भोगने व सहने पड़ेंगे। इस ससार मे जीव आशाकर जीवित होय रहा है। जिस आशा की पूर्ति कभी नही होती हुई देखी जाती है अपितु दु:ख ही देखा जाता है। अज्ञानी मोही जीव व्रत शान्ति तप सयम धारण करते है परन्तु इच्छा करके पुण्य का घात कर डालते हैं पुण्य बध तो निर्वांच्छक के ही होता है इसीलिये शुभ तथा अशुभ कर्म फल में ही सतोषी होकर तथा निराकुल होता हुआ विषय सुखो की इच्छा नही करता है।

जिस प्रकार किसान खेत को खोदना, जोतना खाद डालनाऔर पानी देना पुन: जोतना पानी देकर बीज को बोआ करता है जब उसमें अकुर आ जाता है पौधा हो जाता है तब वह खुरपी लेकर खराब पौधो को निकाल कर बाहर फेंकता जाता है और उसका लक्ष्य उस फसल के धान्य फल की तरफ रहता है वह पलाल की तरफ दृष्टि नही डालता है वह तो विचारता है कि जब मेरे धान्य आवेगा तो पुआल भूसा तो आप ही प्राप्त हो सकता है मैं पुआल की क्यों इच्छा करूँ ? मै पुआल के लिये इतना कष्ट क्यो सहन करूँ इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि चिन्तवन करता है कि जिस सम्यक्त्व संयम तथा धर्म का फल तो मोक्ष सुख व तीन लोक का अधिपत्य प्रदान करता है। बाकी जो ससार के सुख व वैभव ऐश्वर्य व पचेन्द्रियो के भोग उपभोग व धन धान्य सब वस्तुये है वे सब पुआल के समान ही है तथा चक्रवर्ती इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, नारायण, प्रति नारायण, बलभद्र, राजपद, मण्डलेश्वर महामण्डलेश्वर कामदेव इत्यादि पद तो पुआल के समान ही है। जिस धर्म के प्रभाव से तीन लोक की उत्तम से उत्तम विभूतियाँ पैरो में पड़ती है अथवा मोक्ष सुख तीर्थकरादि पद तीन लोक के द्वारा वदनीय ऐसा अरहत सिद्ध पद प्राप्त हो सकता है क्या उस धर्म को धारण कर लौकिक इन्द्रिय जनित सुख के लिये बेच दू ? नही कदापि नही। जितने वैभव है वे सब वैभव पापास्रव और पापबध के कारण है, इसलिये उनकी इच्छा नही करता है यह निकाँक्षित अग सम्यग्दृष्टि का है ॥३४१।३४२॥

निर्विचिकित्सा अग का स्वरूप

यत्पश्यति पराऽवगुणानां न करोति निन्दा च तेषाम्।
आलोक्यं बहुगुणान् समभावमापद्य तुसदा ॥३४३॥
यत्सदृष्टि गुणाविशेषोत्कष्ट निर्विचिकित्साऽऽपद्यते।
जल्ल मललिप्तगात्रे न स्पर्धा कदापि सदृष्टि: ॥३४४॥

भव्य सम्यदृष्टि दूसरो के अवगुणों को नही देखता है तथा देखे हुए अवगुणों को भी प्रगट नही करता है न होने ही देता है। न उनकी निन्दा ही करता है वह तो उनके अन्दर मे छिपे हुए गुणो को ही देखता है, परन्तु बाहर मे शरीर पर लगे हुए मैल और

पसीना से निकलने वाली दुर्गन्ध को नहीं देखता है न उसके प्रति द्वेष ही करता है वह तो स्वभाव को ही प्राप्त होता हुआ उनके गुणों में अनुराग करता है यह सम्यग्दृष्टि का निर्विचिकित्सा अग है।

जहां घोर कठोर तप चारित्र के धारण करने वाले व परीषह और उपसर्गों को जीतने वाले है जो अतरग में चौदह प्रकार का परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, राग, द्वेष, चौदह प्रकार के परिग्रह रूप भार से रहित हो गये है तथा जिन्होने क्षेत्र वस्तु, धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण तावा, दासी स्त्री, पुत्र, आभूषण, वस्त्र और मोती पीतल इत्यादि के वर्तन रूप परिग्रह का त्याग किया है। जो मुनियो के मूलगुण व उत्तर गुणो के धारक है वे मूलगुण पचमहाव्रत पाच समिती पचइन्द्रिय निरोध छह आवश्यक तथा केश लोच करना, स्नान न करना व खड़े होकर आहार करना व एक बार अन्न पान करना जमीन पर सोना ये मूलगुणों का निर्दोष पालन करते है तथा ये मुनिराज तालाब, कुंवा, वावडी, नदी आदि में स्नान नही करते है न वे नीम, कीकर, शीसम आदि की दातोन लेकर दातोन ही करते है न मजन व बुरुष आदि से भी दाँतों का घर्सन ही करते है, तथा धूप के लगने से जिनके शरीर में स्वेद वहने लगा है हवा के चलने से माटी व धूल उड़कर शरीर पर आकर लग जाने से सब शरीर जिनका मैला हो गया है उनको देख मूर्खअज्ञानी उनकी निन्दा करते है। तथा घृणा की दृष्टि से देखते है वे उनके गुणों को नही देखते है।

परन्तु सम्यग्दृष्टि उनके शरीर मात्र को देखकर घृणा नहीं करता है न दुर्भावनायें ही करता है वह विचार करता है कि यह शरीर तो स्वभाव से ही दुर्गन्ध मय है इसके सर्वांग से मल सतत निकलते ही रहते है वे मल अत्यन्त दुर्गन्धमय है जिन मलों का नाम लेने पर भी घृणा उत्पन्न हो सकती है तथा यह शरीर सप्त कुधातुओं से निर्माण हुआ है और वे कुधातुये सब दशाओ मे ही अपवित्र है। जिस शरीर का सबंध पाकर के शुद्ध सुगधित वस्तुये भी अपवित्र और दुर्गधमय हो जाती है तथा यह शरीर तो रोगों का ही एक मात्र स्थान है यह शरीर जितना ऊपर से दुर्गधमय हो जाती है उससे भी अधिक अन्तर में दुर्गंधमम है। यदि इस शरीर को करोड़ों समुद्रो के पानी से धोया जावे तो भी यह शरीर पवित्र नही हो सकता है ऐसे शरीर से क्या प्रयोजन है ऐसा सम्यग्दृष्टि विचार करता है। तथा वह यह भी विचार करता है कि इस शरीर में जो विद्यमान आत्मा है वह अनत गुणों का समूह है उसमें ही रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र, विराजमान है उनसे ही यह शरीर पवित्र कहा गया है। इस शरीर से रत्नत्रय धारण करने व व्यवहार और निश्चय रत्नत्रय से युक्त आत्मा इसमें विद्यमान है उससे ही यह पवित्र हो रहा है। रत्नत्रय के धारण करने व पालन करने के कारण ही इन्द्र, चक्रवर्ती, नारायण, वलदेव, वासुदेव. इत्यादि महान महान पुरुष मस्तक झुका कर वदना व नमस्कार करते है। इस प्रकार मन में सतोष कर उनके गुणो में अनुराग करता है तथा उनकी सेवा वैयावृत्ति करता है तथा आहार दान, औषधी दान देता है। तथा रोगी या वेदनोय कर्म के उदय में आने के कारण कोई भयकर रोग हो गया है व दुर्गन्ध आ रही व वेदना हो रही हो या शीत उष्णता के

कारण घवड़ाहट उत्पन्न हो गई हो उस समय उनकी सेवा तन मन धन लगाकर करता है तथा हाथ पैर की सेवा वैयावृत्ति करता है। तथा उपकरण शास्त्र वस्तिका चटाई फलक आदि देकर उनका मान सत्कार करता है। इत्यादि प्रकार से सेवाकर अपने को कृतार्थ मानता है यह सम्यग्दृष्टि का निर्विचिकित्सा अग है। इसलिये पुद्गल द्रव्य के नाना स्वभाव जानकर मलमूत्र रुधिकर माँस सहित दरिद्र रोगादिक सहित मनुष्य त्रियंचनिके शरीर मलिनता व दुर्गंधादि को देख कर व सुनकर ग्लानि नही करता है। जो कर्मो के उदय करि अनेक क्षुधात्रषा रोग दारिद्रादि कर दुःखित होना तथा पराधीन वंदी गृहादिक मे पडना नीच कुलादिक कुलो में उत्पन्न होना तथा नीच कर्म कर मलिन भोजन करना महामलिन वस्त्र धारण करना, खोटा रूप अग उपाँगादिका मिलना होता है सम्यग्दृष्टि इनमे, ग्लानि कर अपने मन को नही विगाडता है। तथा निद्य कर्म करने वाले व कषायो के अधिक निद्य आचरण करते हुए देखकर भी अपने परिणामो को नही बिगाड़ता है उसके निर्विचिकित्सा अग होता है तथा मलिन क्षेत्र मलिन ग्राम तथा गृहादिक में मलीनता दरिद्रता देखकर ग्लानि नही करता है। तथा अधकार, वर्पा, ग्रीष्म, शीत, वेदना से युक्त काल को देख कर ग्लानि नही करता है। और अपने दरिद्रता व रोग आता हुआ वियोग होता तथा अशुभ कर्म के उदय को प्राप्त होने पर भी अपने परिणामो में ग्लानि नही करता है। जो मैंने पूर्वभव में जैसा कर्म किया है उसका विपाक आज प्राप्त है सो मुझे ही भोगना पडेगा इन अशुभ कर्मो का तो ऐसा ही स्वाभाव है। इस प्रकार जानकर मन मे खेद खिन्न नही होता है। उस पुरुप के निर्विचिकित्सा अग होता है। सम्यग्दृष्टि जीव गुणवानो के गुणो को ग्रहण करता हुआ अपने अवगुणो का त्याग करता है और उनकी सेवा वैयावृत्ति करता हुआ अपने को धन्य मानता है और तत्पर रहता है। यह सम्यग्दृष्टि तो गुणो का ही ग्राहक होता है वह लाखो करोडो अवगुणो को नही देखता है। वह तो गुणोंका ही पारखी होता है उसका हृदय करुण से भीगा हुआ होता है और निर्दयता से भिन्न रहता है तथा सव जीवो को अपने समान मानता है यह सम्यग्दृष्टि का निर्विचिकित्सा अग है ॥३४३।३४४॥

आगे अमूढ दृष्टि अग को कहते है।

यज्ज्ञानान् मायाया वर्जन्ति सत्पथात् धार्मिकान् यदा।
माङ्पूजा खलु स्पार्धा तदाज्ञाधर्म स्वीकुर्वन्ति ॥३४५॥
श्रद्धान जिनकथित वाक्षु माञ्चलन्ति सद्धर्मात् किंचिदपि ॥
तत्सामूडदृष्टिश्च भवघातो हेतु भव्यानाम् ॥३४६॥

जो अज्ञानी लेकिन मिथ्यादृष्टि मायावीजन धर्मात्माओ को ठगने की चेष्टा करते है। जो कुधर्म को ही सच्चामार्ग धर्म और कुचारित्र को ही सुचारित्र मानते है और अपनी पूजा प्रतिष्ठा दिखाने की चेष्टा करते है। वे वहिरात्मा आत्मस्वभाव व धर्म के स्वरूप से विपरीत लौकिक धर्मो को ही धर्म कहते है उस धर्म को ही जगत जीवो का उद्धारक व कल्याण का पथ कहते है। लौकिक मूढ लोग यज्ञो मे पशुवलि चढाकर व पशुओं को अग्नि कुण्ड मे झोंक कर कहते है कि देखो धर्म का प्रभाव कि सव जीव स्वर्ग वासी वन गये वे वैकुण्ड में आनद करते है। इन्द्रजालिया मायावी लोग अनेक प्रकार की विभूतिये दिखाकर

सद्धर्म से वचित करने की चेष्टा करते है तथा भोले भाले संसारी अज्ञानी जीव उनके जाल में फँस भी जाते है।

परन्तु उनके बताये हुए धर्म मार्ग में रुचि न रखकर जो जिनेन्द्र भगवान नें सद्धर्म का जैसा उपदेश दिया है वही सत्य मार्ग है अन्य नही कैसे दृढ़ रहना यह अमूढ़ दृष्टि सम्यग्दृष्टि का अग है। वह मायावी हिसादि पापो में अनुरक्त रहने वाले कुटिल कुमार्गगामी जनों की प्रशसा व कीर्ति भी नही करता है। यदि करे तो मिथ्यामार्ग का ही पोषक हुआ उनकी कीर्ती व गुणानुवाद व प्रशसा विनय पूजा भी नही करता है। उनकी निन्द्या व धर्म के धारक मानकर उनकी सेवा वैयावृत्ति विनयाचार भी नही करता है। परन्तु जिन वचन पर ही अचल अकम्य विश्वास श्रद्धान रखता है, विश्वास रखता है, कि जगदीश ने जैसा वस्तु का स्वभाव कहा वैसा ही है अन्य प्रकार नही है अन्यथा कदापि हो नही सकता है अज्ञानी मोही कहते है कि स्त्री भी पुरुष रूप हो जाती है व ब्रह्मचारी भी विवाह करने पर ब्रह्मचारी ही रहता है वह अब्रह्मचारी नही होता है। घर साफ करते हुए भी केवल ज्ञान की उत्पत्ति होती है ऐसा कहकर लोगों को ठगते है, इस प्रकार उनके बताये हुए धर्म को मिथ्या रूप जान कर त्याग करता है। और जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए धर्म और धर्म के विषय में श्रद्धान करके सद्धर्म से रचमात्र भी चलायमान नही होता है यह भव्य सम्यग्दृष्टि का अमूढ दृष्टि अग है।

यह अज्ञानी मोही ससारी प्राणी मिथ्यात्व के प्रभाव व रागी द्वेषी देवन की पूजन प्रभावना देखकर प्रशसा नही करता है देवो के मठ मन्दिरो में होने वाली हिसा की प्रशंसा तथा देवों के लिये दी गई जो पशु-पक्षियों की बलि उसकी प्रशसा करता है तथा दस प्रकार के दान को देकर उसको ही अच्छा मानता है। यज्ञ होमादि को व खोटे मंत्र तंत्र मारण उच्चाटनादिक खोटे कर्मो की प्रशंसा करता है। कुआ वावड़ी तालाबादि खुदवाने की प्रशंसा ही करता है। न कद मूल शाक पत्रादिक भक्षण करने वाले को श्रेष्ठ जानकर उनकी प्रशसा करता है तथा पचाग्नि तप करने वाले बाघम्बर चर्म ओढ़ने वाले भस्म रमाने वाले ऊर्ध्वबाहु रहने वालों को महान ऊचा मानता है। गेरु से रगे हुए वस्त्र तथा रक्त वस्त्र तथा श्वेत वस्त्रादिको के धारणकरने वालो को श्रेष्ठमानता है। कुलिगी भेषधारी जटाधारियों की प्रशसा करता है। तथा खोटे तीर्थो की और रागी द्वेषी मोही व कुपरिणामियो व शस्त्र धारक देवों को पूज्य मानते है योगिनी यक्षिणी क्षेत्रपालादिकों को धन पुत्र के दाता मानता है रोगादिक के मेटने वाले मानता है। देवी देवताओ को कवलाहारी मानकर तेल, लपसी, पूवा, बड़ा, अतर पुष्पमालादि चढाकर देवताओ को प्रसन्न करता है तथा देवताओ को रिश्वत देकर पूछता है कि हे देव मेरी मुकद्दमा में जीत हो जावे तो छत्र चढ़ाऊ या मेरी जीत हो जावे, पुत्र हो जावे, बैरी मर जावे तो तेरे मन्दिर में छत्र चढ़ाऊँ मन्दिर बनवाऊ ध्वजा चढ़वाऊ व बकरा, मैढा, मुर्गा आदि जीवो की बलि चढाऊ रोट व चूरिमा चढ़ाऊ तथा बालकन की चोटी चडूला उतरवाऊं इत्यादिक बोली बोलना सो सब तीव्र मिथ्यात्व के ही उदय का प्रभाव है। पर जीवों की विराधना की जाती है वहाँ ही महापाप होता है इसलिए देवता के निमित्त

है। जहाँ गुरुओ के निमित्त की गई हिंसा ससार सागर मे डुवोने वाली है किन्ही दुष्टजनो के भय से तथा लोभ के वशीभूत होकर व लज्जा के कारण भी हिंसा करने की भावना कदाचित भी मत करो क्योकि दयावान धर्मात्मा की तो देव विना विचारे ही रक्षा करते हैं जो किसी भी जीव की विराधना नही करते है उनकी देव भी विराधना नही करते हैं। रागी द्वेषी वस्त्रधारी जितने देव हे वे सब आप भी दु.खी है तव वे दूसरों को सुखी कैसे वना सकते हैं। जो स्वय ही भयभीत है असमर्थ है इसीलिये वे शस्त्र धारण करते है क्योकि उनको भी मरण रूप विनाश का भय लगा हुआ है। जिनको भूख लगी होती है वही भोजन की इच्छा करते है इसलिये जितने खोटे माग हैं वे तो सवके सवही ससार मे पतन के कारण है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टियो के द्वारा किये गये त्याग व्रत.उपवास भक्तिदानादि की मन वचन काय से प्रशसा नही करना यही अमूढ दृष्टि नाम का सम्यक्त्व का अग है ॥ ३३३ ॥ ३३४ ॥

आगे उपगूहन अग कहते हैं

अज्ञानात् प्रमादाच्च उद्भूतदोषानि स्वसामर्थ्यात्
विगलत सर्व दोषान् मानिन्दांकिचत्कुर्वन्ति ॥३४७॥
चलतां धर्म वत्सलैः तद्दोषां क्षेपणंस्व विभवेन
उपगूहनं च संज्ञा याथा तथ्यं करणीयम् ॥ ३४८ ॥

जो अज्ञानता से व प्रसाद से व मिथ्यात्व कषायों की तीव्रता के कारणो से व चरित्र-मोह दर्शन-मोह के उदय में आने के कारण जो सम्यक्त्व व चरित्र से चलायमान हो रहा है व सम्यक्त्व और सयम को छोड़ने के सन्मुख हुआ है व दोप उत्पन्न हो गये है उन दोषो को वाहरी लौकिक मिथ्यादृष्टियो के ज्ञात न हो ऐसी क्रियाकर उन सब दोषों को दवा देना जैसी अपनी सामर्थ्य हो वैसा ही प्रयत्न करना तथा साम, दाम, दण्ड, भेद वनाकर इन चारो मे से किसी एक का प्रयोग कर दोषों को दवा देना। तथा दूसरों के देखे हुए दोषो को अन्य को नही कहना न दोषो को करने वालो की निन्दा ही करता है। परन्तु उत्पन्न हुए दोषो को प्रयत्न पूर्वक दवाने की चेष्टा करता है। तथा जो बुद्धिमान ज्ञानी धर्म के धारको के द्वारा गोपन कर उनको पुनः प्रायश्चित आदि देकर शुद्ध कर आदर विनय करना व धन मान आजीविका आदि की व्यवस्था कर देना यह उपगूहन अग है। तथा उनको उपदेश भी देते है कि जो वालक होता है वह अनेक वार खड़ा होता है और गिर जाता है चोट भी लग जाती है। तो भी वह बच्चा अपने पुरुषार्थ को कदापि नही छोड़ता है एक दिन खड़ा होकर दौड़ने लगता है जो तुमने सम्यक्त्व व सयम धारण किये है, वही तुम्हारे अमूल्य रत्न है। इन रत्नो के समान जगत मे कोई भी रत्न नही है। अज्ञानता से प्रमादस दोष उत्पन्न हो जाय तो उनको दूर कर पुनः शुद्ध कर लेना ही सम्दृष्टियों का कार्य हैं। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा विचार करता है कि इस मूर्ख ने सद्धर्म में दोष लगाया है इसके दोषो को यदि बाहर निकाल दिया जाय तो सच्चे सम्यग्दृष्टि संयमी धर्म के धारको की बड़ी निन्दा होगी जिससे धर्मात्माओ के मन में बड़ी ठेस पहुचेगी और धर्मात्मा की व धर्म की निन्दा जगह जगह होने लग जायेगी।

यदि यह दोष बाहर निकल जायेगा तो धर्मात्मा धर्म के धारकों की बड़ी ही निन्दा होगी और लौकिक जन यही कहेंगे कि जैनियों के त्यागी भी चाहे जो हुआ करते हैं पापाचारी होते है इससे धर्म और धर्मात्मा जनों को बड़ा धक्का लगेगा। कि अमुक जगह एक जैन साधू ने व धर्मात्मा ने मायाचारी करी चोरी करी परवस्तु का [अपहरण किया ऐसे निन्दा करेंगे उपहास करेंगे जिससे धर्म की बड़ी हानि होगी इसलिए भविष्य में कभी भी ऐसा खोटा कार्य मत करो जिससे तुम्हारी और धर्म व धर्मात्माओं को हंसी हो इस प्रकार समझाकर उसके दोष को दबा देना बाहर नही निकले देना यह सम्यग्दृष्टि का उपगूह्य सम्यक्त्व का अंग है। उसको यथार्थ धर्मात्मा बना देना यह सम्यक्त्व का अ ग है ॥३४७।३४८॥

स्थितिकरण अग

सम्यक्त्व संयमाभ्यां च यत्कोऽपि चलतां धर्म वत्सलैश्च।
प्रति तत्स्थापने प्राज्ञैः जिनोक्तः स्थितिकरणमुच्चते ॥३४९॥
दर्शन चारित्र मोहोदये विगलितेः श्रद्धासंयमात् ॥
शेवाविनयोपचारैः तत्स्थापने स्थापनं तदा ॥३५०॥

जो दर्शन मोह तथा चारित्रमोह की मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति तथा अनन्तानुबधी और अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान कषाय क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय में आने पर जिन का चित्र उद्विग्न व चलायमान हो गया है। धारण किये हुए देव शास्त्र व गुरु और जीवादितत्त्वो के श्रद्धान सयमासंयम या सकल सयम से विचलित हो रहे है। बुद्धिमान विवेकी धर्मनिष्ठावान उन को सम्बोधन कर व दिलासा देते हुए कि भाई आप घबड़ाये नही हम सब आपके ही है हमारा धन वैभव है वह आपका ही है। हम आपको कोई प्रकार की वेदना या अपमान नही होने देवेगे ? । आप न घबड़ाये क्योकि आपके अभी वेदनीय कर्म का उदय है। यह भी नही रहने वाला है कर्म अपना फल देकर अवश्य खिर जायगा। दूसरी बात यह है कि यदि श्रद्धान सहित सयम पूर्वक मरण करोगे तो शुभगति की प्राप्ति होगी और श्रद्धान सयम को विनाश करके मरण करोगे तो दुर्गति की प्राप्ति होगी, इसलिए सम्यक्त्व श्रद्धान व सयम पूर्वक ही रहना श्रेष्ठ है। इस प्रकार दिलासा देकर श्रद्धान और चारित्र में पुनः स्थिर व दृढ़ कर देना यही सम्यग्दृष्टि का स्थापना अ ग है।

धर्मात्माओ के द्वारा सेवा वैयावृत्ति व उपचार कर व धन मान देकर व सन्मान करके उनको दिलासा देकर कि आप घबड़ायें नहीं हम आपके ही हैं आप हमारे ही है जो कुछ आपकी आज्ञा होगी उसको हम उसी प्रकार करेंगे। आपका जो श्रद्धान है धर्म में व धर्म के ऊपर है वही आपका उपकार करने वाला है। जो जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ सम्यक्त्व चरित्र है कि जिसको तुमने ग्रहण किया है वह चरित्र आपके सब पापों को नाश करने वाला है। सब संसार के दुःखो से छुडाकर मोक्ष सुख देने वाला प्रधान दाता है। इस चरित्र को प्राप्त करने के लिए सर्वार्थसिद्धि के देव लालायित हो रहे है परन्तु उनको मिलता नहीं तुम्हारे पुण्य की बड़ी ही महिमा है कि जिसके प्रभाव से तुम संसार के दु.खों से भरे हुए कूप से पार हो जाओगे। उस सम्यक् चरित्र को आप छोड़कर क्या मिथ्यादृष्टि असंयमी बनकर नरक जाना चाहते हो ? या त्रियंच गति में जाना चाहते हो ? मिथ्यादृष्टी असंयमी

जीव ही अनन्त संसार मे भ्रमण करते है। आपने नही सुना कि सुभीम चक्रवर्ती जब तक पंचपरमेष्ठी की आराधना की विराधना कर मिथ्या दृष्टि बना और मरकर सातवे नरक चला गया क्या तुम भी नरक, जाना चाहते हो ? इस प्रकार उपदेश देकर उनको पुनः धर्म में स्थिर करना यह सम्यग्दृष्टि का स्थिति करण अ ग है।

विशेष—कोई भव्य पुरुष सयमी सम्यग्दृष्टि या कोई कषाय के उदय वश या दुर्जनो की सगति के कारण व रोग की तीव्रवदेना के कारण तथा दरिद्रता के कारण या व्यापार रहित होने के कारण तथा मिथ्यात्व का उपदेश व मिथ्यादृष्टियो का वैभव व चमत्कार मन्त्र तन्त्र चेटक विद्याओ को देखकर सधर्म सम्यक्त्व व चरित्र से डिग रहा हो या उसको धैर्यता देकर प्रेमकरना वात्सल्य दिखाकर धर्मात्मा प्रवीण पुरुष उनको भली प्रकार उपदेश देकर सत्यार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञानकराकर सम्यक्त्व व चारित्र में स्थापन कर दृढ़ करे यह सम्यग्दृष्टि का स्थिति करण अंग है। यहाँ कोई अव्रत सम्यग्दृष्टि है व व्रतीसयमी सम्यग्दृष्टि है जिसका परिणाम रोग की वेदना होने के कारण व दरिद्रता आ जाने व इष्टवियोग होने के कारण व चोर डाकुओ के द्वारा पीटे जाने व धन का अपहरण करने के कारण व वैरी के द्वारा पीड़ा देने व जीविका नष्ट करने के कारणो को पाकर सम्यग्दर्शन व चारित्र का उपदेश देकर पुन· उसमे स्थित करना यह स्थितिकरण सम्यक्त्व का अ ग है। हे धर्म के इच्छुक ! धर्मानुरागी होकर मनुष्य भव और उत्तम कुल इन्द्रियन की शक्ति और धर्म का लाभ मिलना अत्यन्त दुर्लभ है एक वार वियोग व छूटने के बाद इनका मिलना अत्यन्त दुर्लभ है इसलिए कर्म के उदय से प्राप्त हुई रोग की वेदना वा वियोग दरिद्रता का दु.ख गिनकर कायर होकर आर्त रौद्र परिणामी होना योग्य नही दु खी होने पर और कर्मो का तीव्र बन्ध होवेगा कायर होकर भोगोगे, वो भी भोगने अवश्य ही पड़ेगे, और धैर्यतापूर्वक भोगोगे व हस-हस कर भोगोगे तो भी अवश्य ही भोगने पड़ेगे। उन भोगो में विशेषता यह है कि आर्तध्यान कर आकुलतासहित भोगो के तीव्र कर्मो का आस्रव और बध पड़ेगा और हर्ष सहित भोगोगे तो कर्मो का आस्रव नही होगा न बध होगा वे कर्म अपना रस देकर खिर जायेगे, इसलिए दोनो प्रकार भोगना ही पडेगा। कायरता सहित भोगोगे तो पाप बध विशेष रूप से होवेगा। व्रत शील सहित भोगोगे तो भी भोगना पड़ेगा और व्रत शील रहित होकर भोगोगे तो भी भोगना पड़ेगा दोनो ही प्रकार से भोगना पड़ेगा बिना फल दिये कर्म का उदय खिर नही सकता यदि शोल व्रतादि रहित होकर भोगोगे तो विशष पापास्रव और कर्मो का बध होवेगा। माने दुर्गति का कारण तो कायरता ही है उस कायरता को बार-बार धिक्कार होवे। मनुष्य जन्म का फल तो धैर्यता और सतोष व्रत सहित धर्म का सेवन कर आत्मा का उद्धार करना है। जो मनुष्यो का शरीर है सो रोगो का ही घर है इसमे रोग उपजने का क्या भय है। आश्चर्य है इसमे तो सम्यग्दर्शन ज्ञान सम्यक्चारित्र और तप सयम ही शरण होते है। रोग तो उपजेगा ही सयोग हुआ है उसका वियोग नियम कर होगा ही यामे सन्देह कुछ भी नही। किन-किन पुरुषो के रोग की वेदना नही हुई किस को दुख नही हुआ ? इसलिए अपना साहस धारण कर के एक धर्म ही की शरण गहो। और जितनी वस्तुये

उत्पन्न हुई हैं व सब वस्तुयें अवश्य ही विनाश को प्राप्त होंगी। जहां पर देह का विनाश देखा जाता है जितने जीव है वे कर्मो के आधीन है वे सब उत्पन्न होते है और मरते हैं उन का वियोग का खेद करना वृथा है बन्ध का कारण है।

इस दुःषम पंचम काल के मनुष्य है वे अल्प आयु अल्प बुद्धि लिये हुए उत्पन्न होते है। इस काल में कषायों को वृद्धि तथा पचेन्द्रियों के विषयों में अधिक गृद्धता बुद्धि की मंदता रोग की विशेष अधिकता ईर्षा की बहुलता दरिद्रता को लेकर उत्पन्न होते है। इसी कारण सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर कर्मो के जीतने का उद्यम करना ही श्रेष्ठ है। कायर मत बनो इस प्रकार का उपदेश देकर परिणामों को स्थिर करना। यदि रोगी होवे तो औषधी व भोजन पथ्यादिक देकर उपचार करना व बारह भावनाओं का बार-बार स्मरण कराना शरीर की टहल मल मूत्रादिक विकृति को दूर करने कर जैसे तैसे परिणामों को स्थिर करना व धर्म में दृढ़ करना ही स्थितिकरण सम्यक्त्व का अग है। अथवा किसी को रोग की वेदना अधिकता कर ज्ञान चलायमान हो जावे व व्रत भग करने लग जाय अकाल में भोजन पान करने लग जावे या देखने लग जावे व त्यागी हुई वस्तु को पुनः भोगने की इच्छा करने लगे, तब उसको मीठा-मीठा प्रिय उपदेशादि करके जिससे पुनः सचेत हो जावे उसकी अवज्ञा भी नही करनी चाहिए। कर्म बलवान है निर्धनपना के कारण आहार पानी व औषध आदि की व्यवस्था न होय तव अपनी शक्ति प्रमाण उपदेश तथा आहार पान वस्त्र आजीविका व मकान व पत्रादिक की व्यवस्थाकर जैसे स्थभन हो जाय तैसे ही दान सम्मान विनय कर व्रत सयम में स्थिर करना यह स्थितिकरण अग है। तथा अपना आत्मा यदि न्याय व सत्यार्थ मार्ग सम्यक्त्व व चारित्र है उससे डिग रहा होवे अथवा काम, क्रोध, मद, लोभ के कारणो को पाकर चलायमान तथा अभक्ष्य भक्षण में प्रवृति हो जाय अभिमान के वशीभूत हो जावे सतोष से डिग जावे या स्त्री पुत्र माता पिता आदि से अधिक राग बड़ जावे अन्य और भी कारण आकर उपस्थित हो जावे तब अपने को धैर्यता पूर्वक सतोष पूर्वक स्थिर करे अथवा रोगादिक के कारण भी यदि अपने मन में आकुलता हो रही हो होवे, तो यही विचार करे कि ये रोग है सो कर्म जनित है। कर्मो के सत्ता में से उदय में आकर फल दे रहे हैं वे-सब फल देकर खिर जायेंगे तव तू ही तू तरह जायगा इसलिए कर्मों का तो फल अवश्य ही अपने को भोगना है रोकर या हसकर भोगना यदि संक्लिष्ट परिणाम कर भोगा तो भी भोगना अवश्य ही होगा यदि संक्लिष्टता रहित धैर्यता पूर्वक भोगा तो अवश्य भोगना अपने को है। जितनी बाह्य वस्तुये चेतन अचेतन जितनी है वे सब ही संयोग सम्बन्ध रूप हैं चेतन स्त्री पुत्र माता सेवकादि अचित्त मकान धान्य सोना चांदी खेत इत्यादि ग्राम नगर इत्यादि वस्तुओंका मिलना और बिछुड़ना सब कर्माधीन है। इनके वियोग में क्या? सयोग मे क्या राग करना ऐसा मन को समझाकर व्रत संयम सम्यक्त्व में स्थिर हो व अपने को चलायमान नही होने देना यह सम्यग्दृष्टि का स्थितिकरण नाम का अग है। बुद्धिमान धर्मात्मा जनो के द्वारा सेवा वैयावृत्ति व उपचार कर के धन, मान, सन्मान करके उनको दिलासा दे आप घबड़ावे नही हम और हमारा धन सब आपका ही है जो कुछ आपकी आज्ञा होवेगी

वही हम करेंगे रोग से न घबड़ाइये क्योंकि ये तो कर्म का भोग है सो भोगना ही पड़ेगा हम आपका इलाज अवश्य करावेगे। आपका जो सत्यार्थ सम्यक्श्रद्धान है व सयम है उसको मत छोडो मत विचलित होओ। यह सम्यक्त्व व चारित्र ही ससार के दुःखो का नाश करने वाला है तथा यही अपना असल उपकारी है तथा चारित्र है यह सब पाप मलो को क्षय कर चक्रवर्ती इन्द्रपद व तीर्थंकर पद को देता है व मोक्ष की प्राप्ति इससे ही होती है यह संपूर्ण संसार के दुःखो से छुडाकर अलौकिक निर्वाण सुख को देता है। इस चारित्र को इन्द्र चक्रवर्ती आदि महापुरुष भी नमस्कार करते हैं व प्राप्त करने की सद्भावना करते है ऐसे सम्यक्त्व सयम को त्यागकर दुर्गति की ओर जाना ठीक नही ? त्रियच गति के दुःख भोगना चाहते है ? असयमी मिथ्यादृष्टि जीव ही पचपरावर्तन रूप ससार मे भ्रमण करते है। आपने सुना नही है पुराण मे कि सुभौम चक्रवर्ती सम्यक्त्वश्रद्धान से भ्रष्ट होकर मरा जिससे सातवे नरक गया था क्या तुम वही चाहते हो ? इस प्रकार दिलासा व उपदेश देकर पूर्ववत स्थित हो जाना यह सम्यक्त्व का छठवा अग है ॥ ३४६ ॥ ३५० ॥

वात्सल्य अंग

विग्रह न सधार्मिकै: विवादं कुर्वन्ति प्रीतिर्नित्यम्।
यथागोवत्सवच्च प्रीतिः वात्सल्यमभिलषते ॥३५१॥
दृग्धर्मधारकाणां सहर्सैः आलिंगतं गात्रं च।
सप्रात्यानन्दन्ति सम्यग्दृष्टेवात्सल्यगुणः ॥३५२॥

धर्म और धर्म के धारक धर्मात्माओं के प्रति सम्यग्दृष्टि वात्सल्य गुण का धारी विवाद व झगडा नही करता है। कि यह तेरा है यह मेरा है वह साधर्मी भाइयो को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता है। तथा धर्मात्माओ का उपकार करके प्रति उपकार की भी अपेक्षा नही रखता है जिसप्रकार गाय अपने बच्चे के प्रति प्रेम करती है वह गाय उस बच्चे से अपना हित नही चाहती न उस बच्चे से मुझे भविष्य मे सुख मिलेगा न ऐसी इच्छा ही करती है। परन्तु वह गाय अपने बच्चे के ऊपर आये हुए सकट में अपने प्राणो की भी परवाह न करती हुई सिंह के सन्मुख जाकर लड़ती है तथा अपने बच्चे की रक्षा उस सिंह से करती है। तथा अपने प्राणो का नाश करती हुई भी अपने जीते जी बच्चे पर सिंह की चोट का कष्ट नही आने देती है। पहले आप मर जाती है पीछे बच्चा मारा जा सकता है बच्चा गाय के जीवित रहने पर मारा जाय यह हो नही सकता है। वह अपने बच्चे को अपनी छाती के नीचे दबा लेती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव भी गुरूओ व माता-पिता या अन्य धर्मात्मा पुरुषो को देख कर अपने मन मे बड़ा ही प्रसन्न होता है, सारा शरीर पुलकित हो जाता है तथा साधर्मी भाइयों से प्रेम करता है, ऐसा व्यवहार करता है कि मानो इनके समान दूसरा कोई नही है। उन धर्मात्माओ को देख ऐसा प्रसन्न होता है कि मानों जन्म के दरिद्री को महारत्न मिल गया हो व आंखो के अन्धो को आखे मिल गई हो। तथा धूप से घवड़ाये हुए को शीतल नीर व शीतल पवन मिल जाने पर प्रसन्न होता है वैसे ही सम्यग्दृष्टि प्रसन्न होता है। धर्मात्मा जनों को अपनी छाती से लगा लेता है। तथा लिपट जाता है जैसे जब नववधू का भाई आवे तो वधू अपने भाई से लिपट जाती है। तथा उसका आलिंगन करके अपने

माता-पिता आदि की राजी खुशी पूछती है। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव भी धर्मात्माओं से प्रेमपूर्वक विनय सहित कुशलता पूछते है तथा जिस प्रकार वृक्ष से बेल लिपट जाती है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव भी लिपट जाते है। कुशल पूछते हैं और ठहरने के लिए विस्तरा, चटाई, फलक व वास्तिका आदि का प्रबन्ध कर देते है। यदि स्थान की कमी हो तो वे अपना स्थान भी उसको दे देते है। तथा गुरूजनों को सामने से आते देखकर सामने जाकर विनय पूर्वक प्रणाम करता है तथा बाँई तरफ जाकर विनय पूर्वक नम्र होकर समाचार पूछता हैं कि हे स्वामी आपका रत्नत्रय तो कुशल है आज आप कहां से आ रहे है आप धन्य है कि ऐसे दुर्द्धर व्रतो को धारण किया है आज हम भी कृत्य-कृत्य हो गये कि आपके दर्शनों का लाभ मिला। आज हमारे भाग्य का उदय आया कि जिससे आप सरीखे महात्मा के दर्शन हुए। धर्मात्माओं को देख अपने को कृतकृत्य मानते हुए उनकी पाद, प्रक्षालन, पूजा, आरती आदि भी उतारते है यह सम्यग्दृष्टि का वात्सल्य अंग है। सम्यग्दृष्टि जीव विचार करता है कि मेरी हानि होवे तो होवे परन्तु धर्मात्मा, धर्म के धारकों की किंचित भी हानि न होवे। वह विचार करता है कि यदि धर्मात्मा होगे तो धर्म चलता रहेगा, धर्मात्मा ही नहीं होंगे तो धर्म कैसे चलेगा ? कहाँ रहेगा ! उस भावना से ही तो धर्म और धर्मात्माओं के प्रति रक्षा करने के लिये अपने यम नियमों का उल्लघन कर अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी धर्म और धर्म के धारकों की रक्षा करता है यह सम्यग्दृष्टि का वात्सल्य अंग है।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप धर्म के धारको का जो समूह है वह समूह ही सम्यग्दृष्टि का अपना सघ है। रत्नत्रय के धारक मुनि आर्यिका श्रावक-श्राविका तथा व्रती और अव्रती सम्यग्दृष्टियों से सत्यार्थ भाव सहित कपट, माया रहित यथायोग्य विनय करना, उठ खड़ा होना, नीचे बैठना, ऊँचे आसन पर बैठाना, सन्मुख जाना, वदना करना, गुणों का स्तवन करना, हाथ जोड़ना, आज्ञा मानना, पूजा प्रशसा करना जैसे महा दरिद्री के घर रत्न उत्पन्न होवे तब हर्ष का होना वैसे ही हर्षित होना, महान प्रीति की उत्पत्ति का होना यथा काल में आहार, औषधि व वस्त्र उपकरण आदि देकर वैयावृत्ति करके आनन्द मानना सो ही वात्सल्य नाम का सम्यग्दृष्टी अंग है।

विशेष भावार्थ—जिसको अहिसा रूप धर्म में प्रीति होती है जो हिंसारहित कार्य होते है। उनमें ही प्रेम करता है और हिंसामय कार्यो को दूर ही से टालने का प्रयत्न करता है। सत्य वचन में तथा सत्यवचन के धारको में और सत्यार्थ धर्म के प्ररूपण करने में प्रेम करता है तथा पर धन, पर महिला त्यागियों में जिसकी प्रीति होती है उसके ही वात्सल्य अग होता है। उत्तम क्षमादि दश लक्षण धर्म और उनके धारक साधर्मी भाइयो से अनुराग होता है उसके वात्सल्य अग होता है। और जिसके धर्म से अनुराग कर त्यागी, सयमियो में महान आदर पूर्वक प्रिय वचन का प्रवर्तन होता है उसके वात्सल्य अंग होता है। यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव के अन्तरंग तो अपना शुद्ध ज्ञानदर्शन मे अनुराग होता है बाह्य मे उत्तम क्षमादि धर्म के धारको में तथा धर्म के आयतन मे अनुराग होता है तो भी अन्य मिथ्याधर्मियों से भी द्वेष नही करता है। राग, द्वेष मोह येही वध के कारण है तिनमें मोह जो मिथ्यात्व और राग द्वेष ये दोनों ही अशुभ भाव है ये ही ससार भ्रमण के मूल कारण है।

एकान्तकर संसार परिभ्रमण का कारण पाप कर्म ही बध के कारण है। और राग भाव है। वह दो प्रकार का है एक अशुभ राग एक शुभ राग। जिनमें अरहत परमेष्ठी व सिद्ध परमेष्ठी तथा दशलक्षण धर्म मे तथा स्याद्वाद रूप जिनेन्द्र भगवान के मार्ग मे तथा वीतराग का कहा हुआ आगम वीतराग प्रतिविम्ब वीतराग के प्रतिविम्ब के आयतन में अनुराग का होना सोशुभ राग है। तथा देश सयम व सकल सयम में प्रीति का होना सो भी शुभ राग है। सो स्वर्गादिक का साधक पुण्यानुबधी पुण्यबध का करने वाला है व परपरा मोक्ष का कारण है। तथा सम्यग्दृष्टि के द्वारा दिया गया दान व आचार्य, उपाध्याय, साधुओ की वैयावृत्ति का करना, दान, पूजा, विनय करना यह भी शुभ राग है। ये ससार के उत्तमोत्तम सुखो को देता है। तथा परंपरा मोक्ष का कारण है। पचेन्द्रियो के विषयो मे अनुराग का होना कषायों में अनुराग तथा मिथ्यात्व और मिथ्यामार्ग व हिंसादि आरम्भ व परिग्रहादि पचपापो में अनुराग का होना सो मोह भाव और द्वेष भाव है। वे नरक निगोदादिक मे अनत काल परिभ्रमण के कारण है इसलिये जो सम्यग्दृष्टि जीव अन्य अज्ञानी मिथ्या दृष्टि-पातकियो मे भी द्वेष नही करता है, समस्त ससारी जीव मिथ्यात्व कर्म के तथा ज्ञानावरणादिक के आधीन होने से ही आप अपने स्वभाव को भूल रहे है यह अज्ञान की महिमा है वैर करने व द्वेष करने से कुछ भी साध्य नही है।

इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव विचार करता है कि मेरे स्वभाव मे रागद्वेष वैर-विरोध नही है। रागद्वेष रहित माध्यस्थ भाव रखता है वह तो वस्तु के स्वभाव में सत्यार्थ जानकर एकेन्द्रियादिक जीवन में करुणाभाव धारण करता है। प्रीति करता है समस्त मनुष्यो मे भी वैर रहित होकर किसी जीव की विराधना व अपमान मान हानि नही करता है। मिथ्यादृष्टियो के द्वारा किये गये उत्पाद् व देवो के मंदिरो से द्वेष वैर बिगाड भी नही करता है। तथा सराग देव व देवों की मूर्ति व मूर्तियो के रखने के स्थान मठ मन्दिरादिक तथा योगिनी भैरव काली केला आदि की रचना करते हुए भी रचना करने वालो से विरोध वैर नही करता है, ये देव मूर्ति व मदिर तो अनेक जीवन के अभिप्राय के आधीन पूजन व आराधना के लिये बनाये है। अन्य का अभिप्राय अन्य प्रकार बदलने को कौन समर्थ है सब ही मनुष्य अपना-अपना धर्म मानकर ही देवताओ की स्थापना करते है जिसको जैसा सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व रूप जैसा उपदेश मिला है वह वैसा ही करता है। वस्तु का जैसा स्वभाव है उसको वैसा ही जानना, समस्त मे साम्यभाव करना सम्यग्दृष्टि किसी मनुष्य को रेकार व तूकार नही देता है तब अन्य के मन्दिर व देव व धर्म के प्रति अवज्ञा के वचन गाली-गलौज कैसे कहेगा ? नही कहेगा। समस्त जीवो मे मैत्री भाव को धारण करता हुआ विचरता है कि यह अपने अचेतन मकान सुवर्ण इत्यादि भी विनाश युक्त है परन्तु धर्म ही एक शाश्वत और शुद्ध है। यदि धर्मात्मा होवेंगे तो धर्म चलता रहेगा यदि धर्मात्मा ही नही रहेगे तो धर्म कहा ठहरेगा ! इस भावना से धर्म और धर्मात्मा साधर्मी भाईयों की रक्षा करने के लिये यदि अपने प्राणो की बाजी लगा दी जाय वह श्रेष्ठ है कि जिस प्रकार निष्कलक राजकुमार ने धर्म और धर्मात्माओ की रक्षा करने के निमित्त अपना शिर कटवाया था और अकलक देव ने धर्मात्मा

और धर्म की रक्षा की वौद्धमतावलम्वी का गाढ मतखंडन कर धर्म की रुचि प्रकट की यह वात्सल्य सम्यक्त्व का सातवां अग है ।।३३८, ३३९।।

आगे प्रभावना अंग को कहते है ।

श्रीचतुर्मुखाऽष्टान्हिकेन्द्रध्वजा पचकल्याणपूजाः ।
जलयात्रा रथोत्सवैः श्रीजिन मार्गस्य प्रकाशनम् ।।३४०।।
व्याप्ताऽज्ञानमिथ्यातममपाकृत्यं तपोवलात्मशक्तिभिः ।
उपवासे सन्मानेः प्रभवन्तु लौकिकार्जनाश्च ।।३४१।।

संसार में संसारी जीवों के हृदय मे मोह अज्ञान रूपी महा अधकार भरा हुआ है । अंधकार सर्वत्र व्याप्त हो रहा है । उस मोह महांधकार को दूर करने के लिये तथा भगवान जिनेन्द्र देव के चतुर्मुख बिम्व की पूजा विधान कर अथवा अष्टान्हिका पर्व के समयपर नंदीश्वर द्वीप के चारों दिशाओं में स्थित जिन वावन चैत्यालयों की भक्ति सहित पूजा विधान कर व सिद्ध चक्र विधान कर प्रभावना करे तथा पूजा के प्रथम दिन बहु, कुमारी या सुहागिन स्त्रियों के समूह सहित कुआ, बावडी, तालाब, नदी इत्यादि पर गाजे-बाजे सहित मगल गीत, भजन गाते हुए जावे । और जल लाकर पूजा अभिषेक भगवान का गाजे-वाजो के साथ करे, तथा रथयात्रा निकलवावे और दान देवे इत्यादि प्रकार करके जैन धर्म का प्रभाव और प्रभावना दिखावे जिससे लौकिक जन भी यह देख आर्कषित हों कि धन्य है जैनी जो इन्होने इतना उत्सव किया इतना द्रव्य खर्च किया । तथा अकाल या दुर्भिक्ष की सम्भावना हो तब इन्द्र-ध्वज का विधान यथोक्त विधि से कर प्रभावना करे जैन धर्म की पूजा का महात्म्य कितना है कि सब जीवो पर आनन्द छा रहा है । पानी नही बरसा था पूजा के करने पर देखो कितनी वर्षा हुई । अरहत भगवान के पचकल्याणक करके धर्म की प्रभावना करना तथा प्रभावना करने के लिये रथोत्सव जलयात्रा कर धर्म की प्रभावना करना चाहिये । तथा व्रत उपवास कर जगत के जीवों को यह दिखाना चाहिये कि जैन धर्मावलम्वी कितने दिन तक बिना जल और भोजन के पद्रह दिन आठ दिन चार दिन तीन दिन महीना इत्यादि तक किस प्रकार वने रहते है । वे वड़े धन्य है हमसे तो एक घड़ी भी भूखा नही रहा जा सकता है । वे तो इतने दिन उपवास करके भी स्वस्थ्य वने हुए है उनके चेहरे पर ग्लानि का अश भी नही है जैनों के छोटे-छोटे वच्चे भी दो-दो उपवास करके भी दृढ रहे वे चलायमान नही हुए उनको पालकी या हाथी, घोड़ा गाड़ी या रथोत्सव के साथ नगर, ग्राम में प्रभावना के लिये गाजे-वाजे के साथ घुमावे और जैन मन्दिर में दर्शनार्थ ले जावे और उनको दान-मान देकर आदर, विनय व सत्कार करे । प्रभावना बाटे इस प्रकार धर्म की प्रभावना करके सवको जैन धर्म के प्रति सद्भावना का करना यह प्रभावना अंग है । अपने आत्मवल से धर्म की प्रभावना कर फैले हुए अज्ञान मिथ्यात्वांधकार को दूर करना तथा जैन धर्म के प्रति अरुचि को दूर करना यह प्रभावना अंग सम्यग्दृष्टि का है । तथा अतिथियो के आने का समाचार मिलने पर कि मुनि, उपाध्याय, आचार्य संघ के आने पर गाजे-वाजे सहित आदर-सन्मानपूर्वक नगर, ग्राम में प्रवेश करवाना, गुरूजनों को आगे जाकर नमस्कार करना, हाथ जोड़ना, उनके

पीछे-पीछे चलना और उच्चासन पर बैठाकर पाद प्रक्षालन करना सेवा वैयावृत्ति करना तथा मुनियो के जीवन चरित्र को सब जन-समूह के सामने प्रकट करना तथा व्रत उपवासो की कीर्ति को बार-बार लौकिक-जनो के सामने कहना कि इनकी तपस्या महान् है कितने परीषहो व सकटो को सहते हुए भी खेद-खिन्न नही होते है, ये जैन साधु है इनका जितना महात्म्य कहा जाये उतना ही थोडा है। ये वडे-ही ज्ञानी-ध्यानी योगी है बडे ही शात प्रसन्न मुद्रा के धारक निस्परिग्रही निर्भीक है। तथा कामदेव को इन योगियो ने ही जीता है। ये प्रवल इन्द्रिय विषयो के विजेता है। इनके समान अन्य नही हो सकते है। उनका शरीर मात्र कृश है परन्तु इनकी शक्ति महान् है ये मासोपवास पक्षोपवाम चातुर्मासोपवास करते ही रहते है। इनके ज्ञान की उपमा को कौन कह सकता है, 'ये सव प्रकार' की शकाओ का समाधान करने मे समर्थ है। ये उच्चकोटि के उत्कट विद्वान है इत्यादि कर जैन धर्म का प्रकाश करना यह सम्यग्दृष्टि का प्रभावना अग है। अथवा जहाँ पर कोई धर्म के साधन का आयतन नही होवे वहाँ पर आयतन वनाकर प्रतिष्ठा, पूजा कर सब जीवो को धर्म मार्ग में लगवाना यह प्रभावना अग है।

अनादिकाल से ससारी जीवो के हृदय मे अज्ञान रूपी अन्धकार व्याप्त हो रहा है उनको अभी तक सर्वज्ञ वीतराग का दिया हुआ उपदेश प्राप्त नही हुआ जिससे सत्यार्थ रूप धर्म को नही जानता है। इसी कारण यह नही ज्ञात हुआ कि मैं कौन हूँ मेरा स्वरूप कैसा है कहाँ पर जन्म नही लिया, कैसा था, कौन था, यहाँ पर मेरे को किसने उत्पन्न किया, अब रात्रि दिवस व्यतीत होने के साथ ही आयु कर्म भी व्यतीत हो रहा है, अब मेरे करने योग्य क्या है, मेरा हित कहाँ है, अराधना के योग्य कौन है। नाना प्रकार जीवो के दुःख और सुख कैसे है तथा देव, शास्त्र, गुरुओ का स्वरूप कैसा है। मरण और जीवन का क्या स्वरूप है। तत्त्व अतत्त्व का क्या स्वरूप है, हेय उपादेय क्या है, धर्म और अधर्म कैसे है, पुण्य और पाप कैसे है, भक्ष्य और अभक्ष्य का स्वरूप क्या है सुनय कुनय क्या है एकान्त व अनेकान्त क्या है प्रमाण और प्रमाणाभाव क्या है। इस पर्याय मे कौन कार्य करने योग्य है मेरा कौन है मैं कौन हू, इत्यादि विचार रहित मोह कर्म कृत अन्धकार से आच्छादित हो रहे है। उनके अज्ञान रूप अन्धकार को स्याद्वाद रूप परमागम के प्रकाश से दूर कर स्वरूप और पररूप का प्रकाश करना फल प्रकट करना सो प्रभावना अग है। वाहर मे अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का आत्मा की प्रभावना प्रकट करना तथा दान करके, तप करके, शील संयम निर्लोभता विनय प्रिय हितमितवचन वोलकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके तथा अष्टाह्निकाओ मे सिद्धचक्र विधान, इन्द्र ध्वज पूजा, विधान, पचकल्याणक पूजा करके गुणो का प्रकाश करना जिन धर्म का प्रभाव प्रकट करना सो प्रभावना अग है। जिनका उत्तम परिणामो से उत्तम दान को तथा अनशनादि घोर तप कर निर्वांछिकता को देखकर मिथ्यादृष्टि भी प्रशसा करने लग जावे कि अहो जैनियो के वात्सल्यता सहित बडादान है। निर्वाञ्छक ऐसा घोर तप करना तो जैनमत मे ही बन सकता है। अहो जैनियो के बड़े व्रत और तप है जो प्राण जाने पर भी व्रत भग कदापि नही करते है। अहो जैनियो के बड़ा अहिंसा व्रत है जो प्राण जाने पर भी दूसरो के प्राणो का घात कदापि नही करते है। तथा जिनके असत्य का त्याग, चोरी का

त्याग, परमहिला का त्याग, परिग्रह का त्याग कर सब अनीतियो से पराङ्मुख है तथा रात्रि में भोजन न करना अभक्ष्य भक्षण नही करना। प्रमाण सहित दिन में अन्न पान शुद्ध आहार करना. देख शोध कर भोजन करना, इस प्रकार जैनियो का बड़ा ही धर्म है। जिनके महाविनयवतपना है। मधुर, प्रिय हित मित रूप वचन कर सब को आनन्द उत्पन्न करते है। अतिशय रूप जिनके बड़ी भारी क्षमा है और अपने इष्टदेव में अगाढ़ भक्ति है आगम की बड़ी भक्ति व श्रद्धा है। बड़ी प्रवल विद्या है जिनका आचरण भी बड़ा उज्वल है वैरभाव से रहित जिनको बड़ा ही मैत्री भाव है ऐसा आश्चर्य रूप धर्म इनसे ही बन सकता है। ऐसी प्रशसा जिन धर्म की जिनके निमित्त से लौकिक जनो में भी प्रकट हो जिससे प्रभावना होती है। जो अनीति का धन नही चाहते है, और अन्याय अनीति के विषय भोग स्वप्न में भी नही चाहते है, कि हमारे कारण जैन धर्म की निन्दा हो जाय। यदि हो गई तो हमारा यह जन्म बिगड़ गया और परलोक भी बिगड़ गया, दोनो लोक नष्ट हो गये इसलिए सम्यग्दृष्टि पापाचरणो से वहुत दूर रहता है। तथा भगवान का रथ यात्रा महोत्सवादि करके तथा जल यात्रादि अनेक प्रकार से धर्म का प्रकाश फेलाना ही प्रभावना अग है। तथा जिन कारणों से धर्म का अपवाद हो उन कारणो की रोक देना और शील, संयम, दान, पूजा, दयादि का महात्म्य प्रकट कर दिखाना जिससे विधर्म मिथ्यादृष्टि भी प्रसन्न हो। धर्म और धर्मात्माओं के प्रति रुचि को प्राप्त हो व जैन धर्म का अगीकरण कर लेवे व द्वेष वैर अभिमान छोड़कर विनय युक्त होते हुए अपना हितकारी व सत्यार्थ, धर्म, मान स्वीकार कर आचरण में लावे यही सम्यग्दृष्टि का आठवा प्रभावना अग है ॥३४०।३४१॥

निशांकितं निकाञ्छा निर्विचिकित्सोपगूहनामूढ़ाः।
स्थिति करणं वात्सल्यं प्रभावनाऽष्टांग सम्यक्त्वे ॥३४२॥

सम्यक्त्व का पहला अग निशाकित, दूसरा निष्काछित अग है, तीसरा निर्विचिकत्सा चौथा अमूढदृष्टि, पाचवा स्थिति करण अग है, छठवां उपगूहन, सातवां वात्सल्य अग है अठवां अंग प्रभावना है ये आठ अंग ही आठ गुण कहलाते है। जिस प्रकार शरीर के आठ अंग है इनके बिना सम्यक्त्व शोभा को नही प्राप्त हो सकता है ॥३४२॥

आगे भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवों के सम्यक्त्व

प्राक् त्रिकाय देवदेवीषु विनाक्षायकं कल्पवासिनीषु ॥
कल्पदेवेषुत्रि नवग्रेवेयकेषु क्षायकं च ॥३४३॥

भवनवासी देव और देवियों में तथा व्यन्तर देव और देवियो व ज्योतिष्क देव और देवियो में तथा कल्पवासी देवियों के क्षायक सम्यक्त्व का धारक जीव उत्पन्न नही होता है न उनमें क्षायक सम्यक्त्वी ही उत्पन्न होता है। कल्पवासी देवो मे उपशम सम्यग्दृष्टि, क्षयोपशम क्षायक सम्यग्दृष्टि, जीव मरकर उत्पन्न होते है। परन्तु इतना विशेप है कि उनमें सव सम्यक्त्व के धारक जीव उत्पन्न होते है। तथा उनके सम्यक्त्वो की उत्पत्ति होती है। नवग्रेवेयक देवों के तीनों सम्यक्त्व उत्पन्न होते है। अनुदिश विमानो में जीव क्षयोपशम और क्षायक सम्यक्त्व को लेकर उत्पन्न होते हैं। तथा पाच पुष्पोत्तर विमानो मे भी क्षायक व क्षयोपशम सम्यक्त्व

को लेकर उत्पन्न होते है। तथा सर्वार्थ सिद्धि के देवो में एक क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते है। देवो के तीनो सम्यक्त्व पर्याप्त और अर्याप्त दोनो अवस्थाओ मे होते है।

कोई प्रश्न करता है कि आप पहले यह निर्णय कर आये है कि उपशम सम्यक्त्व पर्याप्तक अवस्था मे ही होता है। अपर्याप्तक अवस्था में नहो। फिर अपर्याप्त अवस्था मे देवो के उपशम सम्यक्त्व कैसे हुआ? उत्तर—इसका समाधान यह है कोई द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को लेकर उपशम श्रेणी से चढा और बीच में ही मरण को प्राप्त हो देव गति मे देवो मे उत्पन्न हुआ और अपर्याप्त अवस्था मे भी उपशम सम्यक्त्व रहा क्योकि उपशम का काल अधिक है देवगति की अपर्याप्त अवस्था का काल स्तोक होने से अपर्याप्त अवस्था में उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है। काल बीत जाने पर सासादन को प्राप्त हो छूट जाता है या प्रकृति का उदय आकर क्षयोपशमिक सम्यक्त्व हो जाता है। कल्पवासी देवागनाओ मे क्षायक सम्यक्त्व नही होता है ।।३४३।।

प्राग्वर्ज्यं क्षायकं न क्षयोपशमिकं च औपशमिकैव ।
त्रियंश्चावां त्रय न त्रियश्चीनां क्षायकं कदा ।।३४४।।

त्रियचिनी व त्रियच जीवो के औपशमिक और क्षयोपशमिक ये दो सम्यक्त्व होते है। ये भी त्रियच त्रियच्चिनी के पर्याप्तक अवस्था मे ही होते है। वे भी साकार निराकार उपयोग सहित सैनी पचेन्द्रिय के होते है। असैनी और अपर्याप्तक अवस्था मे नही होते है। क्योकि सम्यदृष्टि जीव मरण करके त्रियच जीवो मे उत्पन्न नही होते हैं। यदि किसी ने त्रियच आयु का बध करके पीछे सम्यक्त्व प्राप्त किया हो तो वह जीव भोग भूमि का त्रियच होगा परन्तु कर्म भूमि का त्रियच नही होगा। त्रियच गति मे त्रियच्चियो के क्षायक सम्यक्त्व नही परन्तु त्रियंचों के क्षायक सम्यक्त्व होता है वह भी पर्याप्त अवस्था में ही होता है। सम्यग्दृष्टि त्रियच मरण कर देवगति मे ही उत्पन्न होते है यह नियम है ।

मनुष्यानां त्रय. न च द्रव्यस्त्रीणां क्षायक तथा ।।
औपशमिकं नोऽपर्याप्तकानां पर्याप्तापर्याप्ते ।।३४५।।

मनुष्यो के पर्याप्त अवस्था मे औपशमिक क्षायक क्षायोपशमिक तीनों ही होते है। परन्तु औपशमिक सम्यक्त्व पर्याप्त अवस्था मे ही होता है। क्षायक क्षायोपशमिक दोनो सम्यक्त्व पर्याप्त अपर्याप्त दोनो ही अवस्था में होते है। यदि मनुष्य आयु का बध कर लिया है तत्पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ जोव कर्म भूमिका मनुष्य नही होगा वह नियमसे भोगभूमिका मनुष्य ही होगा और यदि नही किया हो तो वह मरण कर नियम से देवगति को प्राप्त होगा। मनुष्यनी द्रव्य स्त्रियो के क्षायक सम्यक्त्व की उत्पत्ति नही होती है। परन्तु उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्वो को प्राप्त होती है, वह भी पर्याप्त अवस्था में ही होती है। विशेष यह है कि भाव स्त्रियो के तीनो ही सम्यक्त्व होते हैं ।।३४५।।

घर्माया त्रिप्रावपंच उपशम क्षयोपशमं सम्यक्त्वं ।
क्षयोपशमं क्षायक पर्याप्तऽपर्याप्तकानाम् ।।३४६।।

धर्मा नामके पहले नरक मे नारकी जीवो के तीनो सम्यक्त्व होते हैं। दूसरे तीसरे और चौथे नरक वासी नारकियो के औपशमिक क्षयोपशमिक ये दो सम्यक्त्व होते है, आगे के

नरकों में नारकियों के उपशम सम्यक्त्व की सम्भावना है परन्तु अपर्याप्त अवस्था में उपशम सम्यक्त्व नही होता है क्षायक और क्षयोपशम सम्यक्त्व दोनो ही अवस्था में पाये जाते है। इसका कारण भी यह है कि किसी सक्लिष्ट परिणामी भव्य मिथ्यादृष्टि ने हिंसादिक पापो की प्रवृत्ति कर नरक गति और आयुका वध किया और उसके पीछे केवली या श्रुत केवली गुरुओं का उपदेश श्रवण कर उपशम या क्षयोपशम अथवा क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त कर मरण किया जिससे प्रथम नरक घर्मा में जाकर उत्पन्न हुआ। क्षायक को न कर उपशम सम्यक्त्व को या क्षयोपशम को प्राप्त किया। तव रत्नप्रभा सर्करा प्रभा या बालुका प्रभा में उत्पन्न हुआ। इससे आगे के नरकों में कोई भी सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होता है। लेकिन आगे के नरको के नारकियों के पर्याप्त अवस्था में क्षयोपशम चौथे या पाचवे छठवे तक औपशमिक सातवे नरक में नारकीयों के उत्पन्न होना सम्भव है ।।३४६।।

मनुजानां च क्षायकं केवलि श्रुतकेवलि पाद मूले ।।
नान्यथा खलु क्षायकं लोकेष्वन्योत्पत्तिर्न च ।।३४७।।

भव्य मनुष्यों के क्षायक सम्यक्त्व होता है वह केवली भगवान अथवा श्रुत केवली के पाद मूल में ही होता है अन्यत्र नही। यह निश्चय लोक में प्रसिद्ध है। जिन जीवो ने मिथ्यात्व कर्म के उदय काल मे नरक गति का बध कर लिया है पीछे भगवान सर्वज्ञ का उपदेश श्रवण किया धारण किया तव मिथ्यात्व कर्म का नाश कर क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त होता है। पुनः मरण काल में भी उसके तीव्र सक्लिष्ट परिणामों का होना नरक गति और आयु के सम्बन्ध का उदय है। जिस से अन्य समय मे आर्त्त या रौद्र परिणाम कर प्रथम नरक में जीव उत्पन्न होता है। वह वशा आदि छह पृथ्वीयो में उत्पन्न नही होते है। परन्तु क्षायक सम्यक्त्व के योग्य मनुष्य का ही द्रव्य है देह है यहा से लेकर किसी भी गति मे जा सकता है वहां से एक भव या दो भव मनुष्य के प्राप्त कर मुनिव्रत धारण करके अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ।।३४७।।

शुशिक्षा सुजातिर्वा सुकुलं वैभव सुगुण चारित्रम्
सुदेश सुग्राम च सुशीलं पावन्ति सुदृष्टिः ।।३४८।।

सम्यग्दृष्टि के पुण्य के प्रभाव से ही उसके योग्य सुशिक्षा-देव पूजा करना, दया जीवो पर करना स्वाध्याय करना, देश व्रत धारण करना व जिसमे सदाचार को व धर्म का पालन गुरुजनों की विनय करना, पूजा का फल दान के महात्म्य का उपदेश मिलना, तथा कुमार्ग और कुमार्ग में चलने से होने वाली हानि को प्रकट कर दिखाया गया है। जिसमें हेय उपादेय का कथन है जिसमे सुकृत और दुष्कृत का स्वरूप बता कर दुष्कृतो का परिहार करने का उपदेश दिया गया है। तथा जिसमें सम्यक्त्वाचरण और मिथ्यात्वाचरण का यथार्थ उपदेश दिया गया है। कल्याण और अकल्याण का स्पष्टीकरण किया गया हो ? तथा जो असभव दोप से रहित है, तथा अव्याप्ति अतिव्याप्ती आदि दोष नही है ऐसी शिक्षा मिलती है जो प्रमाण नय और निक्षेपो से भली प्रकार प्रभावित है ऐसी शिक्षा का मिलना। जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव, नारायण, प्रतिनारायणवासुदेव, वलभद्र आदि महापुरुषों का जिसमें कथन किया गया हो उसको सुशिक्षा कहते है। वह सुशिक्षा सम्यग्दृष्टि जीव को प्राप्त होती है। तथा संयम और

सयम के धारण करके जीव कहाँ किस गति में जन्म लेते है। ऐसी सुशिक्षा सम्यग्दृष्टि को मिलती है सम्यग्दृष्टि नीच जाति मे उत्पन्न नही होता है सुजाति मे ही उत्पन्न होता है। सुजाति किसको कहते है ? सुजाति माता के वश की परपरा को कहते है।जिस माताके बश मे विधवा है। परजाति सम्बध विवाह, जिसकी परपरा मे नही हुआ है। उसको शुद्धजाति कहते है ऐसी सुजाति मे सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होता है। जिस कुल मे जाति में कहे प्रमाण हीनाचरण व धरावना, परजाति वश की स्त्री व विधवा दुराचारिणी वेश्या की जाति से उत्पन्न हुए नीच कुलो मे सम्यग्दृष्टि का जन्म नही होता है, सम्यग्दृष्टि का जंन्म तो उच्चकुल क्षत्रिय वैश्य ब्राह्मण कुल मे ही होता है। इक्ष्वाकु वंश कुरुवश उग्रवश ऐसे वशो को उत्तम वश कहते है। सम्यग्दृष्टि जीव दरिद्री भिखारी निर्धन व कुमार्ग गामियो मे यह जन्म नही लेता है वह तो वैभवशाली, राजा, महाराजा, राणा, छत्रपति, मण्डलीक, महामण्डलीक, चक्रवर्ती आदि के घर जन्म लेता है। उसमे जन्म से स्वभाव से ही सुगुण होते है। जीवो पर दया करना विनय करना बड़ो का आदर सत्कार, भूखो को रोटी देना, देव पूजा, गुरुपास्ती, स्वाध्याय करना अतिथियो को कालानुसार आहार, औषधी, दान देना सब प्राणियो की रक्षा करने के भावो का होना, अपने समान ही सब ससारी प्राणियो को जानना देखना तथा उनके सुख दु ख मे धैर्य व शुभभावना इत्यादि सुगुण सम्यग्दृष्टि के जन्म से प्राप्त होते है।

जब सम्यग्दृष्टि जीव अपनी माता के गर्भ मे आता है, तब माता के ये भाव होने लग जाते है कि मुनियो के लिये चार प्रकार का दान दू, व मन्दिर बनवाऊँ, या तीर्थ यात्रा करू, या भगवान ने बिम्ब को मगवाकर पचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाऊ, या शास्त्र श्रवण करू, ऐसे भाव माता के हो जाते है। जब कोई मिथ्यादृष्टि पापी जीव माता के गर्भ मे आ जाता है तब माता के भी खोटे भाव हो जाते है। कि उसको माटी खाने की व ईट खप्पर खाने के भाव होते है कभी यह भाव होते है कि किसी को मार डालू नष्ट करदू या अपने पति के मास को काट कर खा जाऊ शराब पीऊ, इत्यादि भाव माता के हो जाते है। इन भावो का कारण वह जीव ही है जो माता के गर्भ मे आया हुआ है। जब सम्यग्दृष्टि जन्म लेता है तब माता के घर मे आनद का बाजा बजाता है। सब घर बाहर के लोग प्रसन्न चित्त होते है और जन्म का उत्सव मानते है। तथा दान, पूजा, मान, भक्ति आदि शुभक्रियाओ मे प्रवृत्त होते है। स्वपरिपार व अन्य परिवार के लोगो को वह सुख का स्थान बन जाता है तथा सब को सुख का मार्ग प्रदर्शक बन जाता है सब गुण स्वभाव से ही आ जाते है। तथा देश चारित्र व सकल चारित्र को सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है, तथा पचमहाव्रत पच समिति तीन गुप्ति और उत्तम क्षमादिक व दिग् देश व्रत अनर्थ दण्डो का त्याग कर सामायिक, प्रौषधोपवास, भोगोपभोग प्रमाण तथा अतिथी सविभाग ऐसे सब प्रकार चारित्र को सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है। तथा अन्य शुभ गुण उसमे स्वभाव से ही उत्पन्न हो जाते हैं जिस प्रकार तालाब मे पानी चारो ओर से बहकर एकत्र हो जाता है वैसे ही यहाँ पर जानना। सम्यग्दृष्टि जन्म से ही शुभाचरण करने वाला होता है सुदेश जहा पर सब जनता अपने शुभ कर्मो को करते हुए पाप और विरोध के कारणो से डरती हो तथा जहा पर चोरी, हिंसा, असत्य भाषण दुराचार करने वाला राजा नही होता है।

।

उसको सुदेश कहते है। जहा पर नीच वृत्ति के धारक चण्डाल, भील, नाई, धोबी, चमार मेहतर शिकारी चोर वेश्या व्यसन के सेवन करनें वाले व जुआ खेलनें वाले, मांस खानें वाले, शराब पीनें वाले, परस्त्रीयों में रत रहनें वाले, लोगों का निवास नही होता है, ऐसे ग्राम में सम्यग्दृष्टि का जन्म होता है। सम्यग्दृष्टि जीव के स्वभाव से ही सुशील होता है वह जन्म से ही हित मित वचन बोलता प्रिय वचन बोलता हुआ सब को आदर की दृष्टि से देखता है और आचरण भी करता है तथा ब्रह्मचर्य से रहना ऐसा सुशील सम्यग्दृष्टि को प्राप्त होते हैं। वह दूसरों के दुःखों को देख दुःखी होता है और उन दुःखों को दूर करनें का प्रयत्न करता है यदि कोई उसका तिरस्कार करता है उसका वह बहिष्कार भी नहीं करता है। जहां जाता है वही सम्यग्दृष्टि की आदर विनय की जाती है इन सब यशों को सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है। बहुत गुणों का पुंज वह सम्यग्दृष्टि होता है ॥३४८॥

नव निधि चतुर्दशरत्नाः षट्खण्ड महीषडाँगवलम्
षट् नवति सहस्रस्त्रियः आपद्यतेसम्यग्दृष्टिनः ॥३४९॥

सम्यग्दृष्टि जीव मरण के पश्चात उत्तर जन्म में चौदह रत्न, नव निधियों को प्राप्त होता है तथा छह खण्ड पृथ्वी जिसका घर बन जाती है और वह छह बलों को प्राप्त करता है व छयानवै हजार रानिओं का स्वामी होता है। चौदह रत्न जिनमें सात चेतन और सात अचेतन रत्न होते है, चेतन रत्न, पुत्र रत्न, स्त्री रत्न, भाण्डागार रत्न, प्रोहित रत्न, सेनापति रत्न, हाथी रत्न, घोड़ा रत्न, ये सात रत्न चेतन होते है। चक्ररत्न, छत्र रत्न, दण्डरत्न खड्ग रत्न, धनुष, काकणी, रत्न, कापुरोधा, चर्मरत्न, ये सात अचेतन रत्न है। कालनिधि पांडुकनिधि नैसर्ग निधी, माणवक निधि, पिंगला निधि, शंख निधि, पद्मनिधि, सर्वरत्न। एक आर्य खण्ड है पाँच म्लेक्ष खण्डों का राजा ग्रामाधिपति जनपद दुर्ग भण्डार षडंगबल तथा मित्र ये सप्त अंग और छहबल चौरासी लाख हाथी ८४ लाख रथ, अठारह करोड़ घोड़े ८४ करोड़ योद्धा देव बल विद्याधर ये षडागबल होते है। तथा अनेक प्रकार के इच्छित भोगों का भोग करते थे। तथा ३२ हजार मुकुट वद्ध राजा जिसकी सेवा करते हैं ऐसा चक्रवर्ती होता है। जिसकी बल की सीमा नही होती है वह अपने पराक्रम से देवों को भी जीत लेता है ॥३४९॥

देवेन्द्रो भूत्वैवं दिव्य सुखमनुभवति बहुकालम् ॥
अष्टार्द्धि धरादेवामर्द्धिकाः भवन्ति सद्दृष्टिनः ॥३५०॥

जो सम्यग्दृष्टि जीव है वे महर्द्धिके धारक देवों में उत्पन्न होते है, तथा इन्द्र होते है। जिसकी आज्ञा का पालन असंख्यात देव करते है। वह कल्पों में तथा कल्पातीत देवों में उत्पन्न होते हैं और अणिमा गरिमा लघिमा इत्यादि ऋद्धियों के स्वामी होते है। और वहां के सुखों का चिरकाल अनुभव करते है। तथा अष्ट ऋद्धियों के धारक प्रभावशाली होते है। सम्यग्दृष्टि जीव ही उच्च देव इन्द्र सामानिक आदिक देवों में उत्पन्न होते है वहां पर भी देवों की उत्कृष्ट आयु का भोग करते है। सम्यग्दृष्टि देवों में हीन देव नही होते है। वाहन गंधर्व किल्विशक असुर इत्यादिक नीच देवों में उत्पन्न नही होते है। जिनके कम से कम ३२ देवांगनाये होती है। उनके साथ सागरों की आयु तक सुख का अनुभव करते है बावीस सागर की स्थिति का भी पता नही लगता कि कब निकल गयी। नव ग्रैवेयक व नव अनुदिश

व पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होकर तेतीस सागर की आयुतक सुख का अनुभव करते हैं। वे देव धर्म चर्चा करते हुए काल व्यतीत करते हैं।३५०॥

सम्यक्त्वेसम्पन्नं भुक्त्वा कममीयं सुख देवलोके ॥
च्युतो भूत्वा भवन्ति मनुष्ये महापुण्डरीकाः ३५१॥

सम्यक्त्व सहित सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्गो के सुखों का वहुत काल तक भोग कर के वहां से च्युत हो कर मनुष्यों में जन्म लेकर महापुण्डरीक राजा होता है जिसकी आज्ञा मे अनेक राजा लोग रहते हैं व उनकी सेवा व आज्ञा का पालन करते है।३५१॥

यत्सम्यक्त्वेन युक्तौ विचरतिजगतीशो विनष्टं न काले।
दीव्यन्ते च त्रिलोके प्रभवति विभवतोऽस्याविरुद्धम् तथपि ॥३५२॥
सेवाकुर्वन्ति देवाः बहुविधरुपकारं न वैरं कदापि
भुक्त्वा सौख्य च दिव्य परिषदमचिरेलाति मर्त्ये शिवैव ॥३५३॥

सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व सहित संसार मे चाहे जिस गति में जावे और वहाँ पर रहे परन्तु उसका विनाश कदापि नही होता है। अथवा दुःखो का भोग करने पर भी कलुषित परिणाम वाला नही होता है। इसलिये उसका पतन नही होता है ससार में रहता हुआ भी कितना काल व्यतीत हो जाया करता है परन्तु वह काल उसके लिये थोड़ा ही है वह विनाश को प्राप्त नही होता है। वह सम्यग्दृष्टि तो ऐसी शोभा को प्राप्त होता है जैसे ताराओ के मध्य मे स्थित चन्द्रमा। वह अपने प्रभाव वैभव से तीनो लोको के प्राणियो को प्रभावित करता है तथा सव के लिये शरण भूत होता है। उसके प्रति कोई भी वैर विरोध नही करता है। परन्तु वैर भाव अभिमान छोड़ कर उसकी शरण को प्राप्त होते है। जिन सम्यग्दृष्टियो की सेवाकार्य स्वर्गों में निवास करने वाले भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देव करते है। तथा सम्यग्दृष्टि जीव बहुत काल तक देवो की सभा का अधिपति इन्द्र होता है उनको सेवाकार्य करने की आज्ञा नही करनी पड़ती तो भी देव स्वय आकर आज्ञा मांगते है कि हे प्रभो ! हमको कुछ सेवाकार्य करने की आज्ञा दीजिये ? और सेवा करते है देवगति के सुखो का चिरकाल अनुभव कर देव आयु का अत करके मनुष्यो में उत्पन्न होते है तीर्थंकर व चक्रवर्ती होकर सयम धारण कर कर्मो का नाश कर के अत मे मोक्ष को ही प्राप्त करते है। कोई तो पदो को प्राप्त करते है कोई नही भी करते हुए मोक्ष सुख को अवश्य ही प्राप्त होते है यह सब सम्यक्त्व की महिमा है॥३५२।३५३॥

नोकायाः नाविकेन विनातर्या करोत्युद्धारं यात्रिन् ॥
सम्यक्त्वकर्ण धारस्तद्विना चरनं भवोत्तीर्णः ॥३५४॥

जिस नदी मे गहरा पानी है और वेग से बह रही है जिसके किनारे पर नाव रक्खी हुई है उसमे बहुत से यात्री भी बैठे हुए हैं वे यात्री बिना मल्लाह खेवटिया के न होने के कारण, नाव मात्र में बैठने से नाव पार नही करेगी। उसी प्रकार सम्यक्त्व के अभाव मे संसार रूपी नदी को पार करने के लिये चारित्र रूपी नौका मे बैठे हुए यात्रियो को पार करने मे नाव समर्थ नही है। जहां पर ज्ञान और चारित्र दोनो स्थित है परन्तु एक सम्यक्त्व के

बिना ज्ञान और चारित्र कोई भी कार्य करने में समर्थ नही है। आचार्य ने सम्यक्त्व को खेवटिया कहा है (जिस) जहाँ घाट पर नाव रक्खी हुई दिखाई देती है यात्रीगण भी बैठ गये हैं परन्तु उस नाव को चलाने वाला मल्लाह न होने के कारण नाव दूसरी पार पर जा नही सकती न यात्रीगण ही पार हो सकते है। उसी प्रकार यहा पर समझ लेना चाहिये कि यात्री जहां के तहां ही रह जायेगे अपने यथेष्ठ स्थान को प्राप्त नही हो सकते है। न अपने इष्ट मित्रों सम्बधियो से ही मिल सकते हैं। नाव और नाव का चलाने वाला खेवटिया जब मिल जावेगा तभी नदी को पार कर यात्री अपने अपने स्थान को सुलभता पूर्वक प्राप्त कर सकेंगे इस लिये सम्यक्त्व प्रधान है ज्ञान चारित्र प्रधान नही है क्योकि ज्ञान और चारित्र मिथ्या भी होते है ॥३५४॥

सवितु र्जननी पुत्राः सखा स्त्री धन धान्ये वास्तु विषये ॥
संसारसारसौख्यं जानीहि सम्यक्त्वफलम् ॥३५५॥

सुयोग्य पिता दयावान सयमी गुणवान जिनकी कीर्ति चारों ओर फैल रही है जो दानादि शुभ क्रिया करने में तथा जिन भक्ति पूजा स्वाध्याय और सामायिक करने मे जिनका मन भ्रमर की तरह आशक्त है ऐसे पिता का मिलना। सरल स्वभाव वाली शीलवान दयावान पृथ्वी के समान क्षमा धारण करने वाली चतुर गृह व धार्मिक कार्य करने में निपुण और लज्जावान तन्वी पापो से डरने वाली तथा देव शास्त्र और गुरु सज्जनो की सेवा पूजा करने वाली तथा जानी हुई बात को न भूलने वाली हंसमुख रहने वाली जिसके मुख पर ग्लानि का अश नही सब को प्रसन्न करने वाली प्रियमधुर वाणी बोलने वाली माता का मिलना। रूपवान गुणवान दया धर्म परायण शीलवान पूजादान आदि क्रियाओ के करने मे दत्तचित्त तथा दुगुणो को निकाल दिया है जो एक पतिव्रत को धारण करने वाली विनयवान स्त्री का मिलना तथा पति आज्ञा को शिरोधार्यकर मानने वाली तथा मधुर बोलने वाली स्त्री का मिलना। निर्व्यसनी दयावान पापभीरू आज्ञाकारी सब गुणों करि अलकृत देव गुरु धर्म भक्त परायण पुत्र का मिलना। तथा नित्य क्रिया करने में लोन माता-पिता की आज्ञा पालन ही जिनका धर्म है जो सप्त व्यसनो से रहित सदाचारी गरीबो पर दया दृष्टि रखने वाले परस्पर विग्रह से रहित सबसे व्यवहार कुशल पुत्र का मिलना। मित्र जो अपने मित्र का सदा हित का चाहने वाला खोटी लौकिक जनों की संगत से बचाने वाले मित्र का मिलना। गाय, भैंस, हाथी, घोडा, इत्यादि अपने योग्य मिलना वस्त्र आभूषण, मकान, क्षेत्र, राज्य, वैभव का योग्य मिलना ससार के उत्तमोत्तम सुखो की प्राप्ति का होना। चक्रवर्ती तीर्थकर बलभद्र आदि पदो का मिलना यह सब सम्यक्त्व की ही महिमा है ॥३५५॥

बिना मिथ्यात्वेन ये शिव मजर ममरमक्षयं विभवं ॥
व्यपगत कषाय वायुः काष्टागत सुख विद्यां यान्ति ॥३५६॥

जिसका मिथ्यात्व कर्म व अनंतानुबन्धी चार कषायें नष्ट हो गई हैं ऐसा भव्य सम्यग्दष्टि जीव बुढ़ापा से रहित जिसका विनाश नही होता है जिसका अंत नहीं है जो

कषाय रूपी वायु के झकोरों से रहित है छैनी के द्वारा लकड़ी में छिद्र किये गये के समान हीनाधिकता से रहित ऐसे अविनाशी अनन्त ज्ञान सुख वीर्यादि गुणों को सम्यग्दृष्टि ही प्राप्त होते है।

मिथ्यात्व कषायो के बिना सम्यग्दृष्टि जीव रागद्वेष रूपी वायु से रहित मोक्ष सुख को प्राप्त होता है उस मोक्ष मे अक्षय विद्या प्राप्त होती है जो मोक्ष सुख वृद्धावस्था से रहित जिसमें बाल अवस्था वृद्धावस्था यौवन नही पाया जाता है अनत ज्ञान, वैभव, को प्राप्त होता है जिस प्रकार छैनी से किया गया साल छिद्र लकड़ी में ज्यो का त्यो बना रहता है न घटता है न बढता है उसी प्रकार मोक्ष मे स्थित आत्माओ के अनत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य तथा अगरु लघुत्व अव्याबाध अवगाहनत्व सूक्ष्मत्वादि सब गुण हीनाधिकता से रहित होते है। इसी प्रकार कल्प काल बीत जाने पर भी ज्ञान सुख का वैभव हीनाधिकता को प्राप्त नही होता इन सब गुणों को मिथ्यात्व से रहित ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है। यह सम्यक्त्व का महात्म्य है ।।३५६।।

भुवनत्रिय नारक स्त्रो नपुंसक त्रियश्चोकुलदरिद्रिषु।।
हीनांगाल्पायुषु चाव्रत्यपि न जातं सदृष्टिनः ।।३५७।।

सम्यग्दृष्टि जीव मरने के पीछे भवनवासी देव देवियो में व्यन्तर देव देवियो मे ज्योतिष्क देव देवियो व नारकियो मे तथा त्रियचो मे त्रियचिनियो में तथा नपुसको में नीच कुलो मे दरीद्रियो मे उत्पन्न नही होता है। तथा अग उपाग हीन भी नही होता है। अल्प आयु वालो मे उत्पन्न नही होता है। सम्यग्दृष्टि असयमी होनें पर भी नीच कुल व स्त्रियो में पाच स्थावरो मे व विकलेन्द्रिय अपनी पंचेन्द्रियो मे उत्पन्न नही होता है। यह सम्यक्त्व का ही महात्म्य है ।।३५७।।

संसारस्थ मूलं च महार्घदु:खस्य हेतुः मिथ्यात्व ।
रिपुः स एव च लोके नान्यथा कोऽपि भवतोऽद्वितीयम् ।।३५८।।

ससार रूपी अकुर का बीज है तो यह मिथ्यात्व ही है। ससार वृद्धि का कारण तथा पचपरावर्तन की जड़ यह मिथ्यात्व ही है। जिसके कारण जीव ससार परावर्तनो को करता हुआ चारो गतियो मे भ्रमण कर जन्म मरण के महाघोर दु:खो का भोग करता है। कही इष्ट वियोग का दु:ख, कही अनिष्ट योग का दु:ख, कही बिना पुत्र के दु.ख, कही पुत्र मरण वियोग का दु.ख, कही स्त्री न होने के कारण दु:ख, कही कर्कशा स्त्री के होने का दु:ख, कही स्त्री के मरण होने पर वियोग का दु.ख, कही धन के न होने व नष्ट होने रूप दु:ख, कही धन के होने पर दुख। कोई दीन दरिद्री होने के कारण दु:खी, कोई दुराचारी व्यसनी पुत्र पुत्री होनें के कारण दु:ख किसी के पुत्री विधवा होने से दु:ख कही दुराचारिणी, व्यभिचारिणी स्त्री के कारण दु:ख। कही पृथ्वी छूने का दु.ख, कही शीत, कही, उष्णता का दुख कही मारने छेदने भेदने पीटने पानी अन्न के न मिलने रूप दु:ख है। जहाँ पर भूख व प्यास की ऐसी वेदना होती है। कि मुझे तीन लोक का पानी और अन्न मिल जावे तो सबको एक बार में ही खा जाऊँ परन्तु एक भी दाना मिलता नही। कही पर परस्पर मे लड़कर एक दूसरे के गात्र के छोटे-छोटे तिल के

बराबर टुकड़े करने व जीवित ही तैल मिर्ची नमकमिला कर अग्नि में रांधना, छोंकना छेदना काटना पकवाना रूप महाघोर दुःख जीव को मिथ्यात्व के ही कारण मिलते है। कही त्रियच गति में भूख का प्यास का दुःख अतिभार लादने पर व अन्न पान का निरोध करने पर व अपने से बलवान के द्वारा मारने छेदने के कारण अतिशय भयानक दुःख जीव को मिथ्यात्व के ही कारण भोगने पड़ते है। स्वर्ग में भी देव मानसिक दुःख से ही दुःखी रहते है और आर्त्त ध्यान कर मरते है तथा अत्यन्त अधीर होकर मरणकर स्थावरों में उत्पन्न होते है। हीन अंग दरिद्री नीच कुल कुदेश इत्यादिक स्थानों में उत्पन्न होकर दुखों को प्राप्त कर भोगते हैं। संसार के दुखो का दूसरा कोई कारण नही दुःखो का कारण एक मिथ्यात्व ही है। यह मिथ्यात्व ही जीव का वैरी है ॥३५८॥

सम्यक्त्व सादृशं च न त्रिलोके त्रिकाले सखाकोऽपि।
दातारोयत्सौख्यं क्षतं दुःखं खलु दुष्कृतानां ॥३५९॥

सम्यक्त्व के समान ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक इन तीनों लोकों में तथा भूत भविष्य व वर्तमान तीनो कालों में कोई भी परम उपकारी मित्र नही है। यह सम्यक्त्व ही पहले कहे गये सब दुःखो का नाशकरने वाला ही नही है अपितु सब प्रकार के पापों का क्षय करता है। सम्यक्त्व के होने पर पचपरावर्तन रूप ससार का भी अन्त आ जाता है तथा नरक गति त्रियच गति, देव गति और मनुष्य गति के दुःखो से छुड़ाकर स्वर्ग और मोक्ष सुखो को देने वाला है। ससारी जीवो का उपकार करने वाला है तो एक सम्यक्त्व है वही कल्याण कारी है मोक्ष सुख में पहुंचाने वाला मित्र है ॥३५९॥

जातोनीचकुलेषुयत् भवति खलु सुदृष्टिः।
पूज्यतेचांगार वल्लोके भस्माक्षादितमात्मनम् ॥३६०॥

यदि कोई भव्य जीव नीच कुलो में उत्पन्न हुआ हो और सम्यक्त्व को प्राप्त हो जावे तो वह श्रेष्ठ माना जाता है। जिस प्रकार राख के अन्दर छिपी हुई अग्नि के समान ही उत्कृष्ट आत्मा माना जाता है। यदि उसका आत्मा चारित्र मोह के उदय के कारण से संयम को नही धारण कर सकता है जैसे अग्नि की उष्णता छिप नही सकती तत्प्रमाण सम्यक्त्व कही छिपाने पर छिप नही सकता है ।३६०॥

सम्यक्त्वं मोक्षमूलः मूलविना न परिवार परिवृद्धिः।
मूलविनष्टे द्रुमस्य न वृद्धिस्तथा सम्यक्त्वम् ॥३६१॥

सम्यक्त्व मोक्ष रूपी वृक्ष की जड़ है अथवा चारित्र रूपी वृक्ष को जड़ है मूल के बिना चारित्र रूप की साखाये व पिण्ड टहनी पत्ते फूलो की उत्पत्ति वृद्धि नही हो सकती है। जिस वृक्ष मे जड़ नही है क्या वह वृक्ष वृद्धि को प्राप्त हो सकता है? नही। चाहे जितना पानी या खाद दिया जावे कितनी ही रक्षा की जावे तो भी वह अवश्य ही सूख जाता है। उसी प्रकार सम्यक्त्व के अभाव में ज्ञान और चारित्र की स्थिति नही रह जाती है ।३६१॥

व्रत संयमोपवासाः शीलतपश्चबहुविधः कृत्वापि ॥
सम्यग्युतोमोक्षसुखः सम्यक्त्वं बिना दीर्घ भवोदधिः ॥३६२॥

अहिंसा अणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचोर्या णुव्रत, ब्रह्मचर्या णुव्रत, परिग्रह परमाणुव्रत तदा ये ही पंच महाव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक प्रोपधोपवास भोगोपभोग प्रमाण, अतिथिसविभाग, तथा मद्य, मास, मधु, त्याग रूप व्रतो का धारण कर पालन करना तथा पचेन्द्रिय संयम व मन संयम, त्रस सयम, स्थावर सयम, तथा अन्न जल का त्याग करना व अन्न का त्याग करना शीलों का पालन करना अनशन ऊनोदर व्रत परिसख्यान व्रत रसो का त्याग विवृत्त शैय्यासन और अनेक प्रकार के काय क्लेशों को सहन करना तथा (पचाग्नि तप करना शूलो की सैया पर सोना खडे ही रहना) इत्यादि तपो का निरतर करना ये सब किये गये है वे सम्यक्त्व सहित किये गये हैं तो मोक्ष सुख के कारण होते है यदि सम्यक्त्व रहित होकर किये गये है तो अनत ससार की वृद्धि के ही कारण ह।

(आचार्य कहते) ग्रन्थकार कहते हैं कि इस जीव ने सम्यक्त्व सहित होकर कभी भी व्रतो को धारण नही किया न सयम को ही पालन किया न कर्मो की जड़ को नाश करने वाले उपवासो को ही धारण किया। इस जीव ने अनेक वार रोहणी व्रत चारित्र शुद्धि के उपवास कनकावली के उपवास सर्वतोभद्र कर्मदहन के उपवास मालारोह व्रत के उपवास अनेक वार किये शीलो का पालन किया, उपवास व ऊनोदर आदि तप भी अनेक वार किये परन्तु एक सम्यक्त्व के न होने के कारण ही यह जीव दीर्घ ससारी ही वना रहा पचपरावर्तनो मे भ्रमण करता रहा। इन व्रतादिक को जीव जव सम्यक्त्व रूप भाव से पालन करता है तव जीव को ससार के जन्म मरण के दु:खो से शीघ्र ही मुक्ति मिल जाती है। इसलिए ये सम्यक्त्व सहित के लिए तो मोक्ष सुख के कारण है। नही तो दीर्घ संसार वृद्धि के कारण हैं॥३६२॥

पूजा दान सेवा बहुगुण चारित्रं सर्वं जानहु।
सम्यक्त्वेन मोक्ष सम्यग्विना दीर्घ भवार्णवः॥३६३॥

अष्टान्हिका पूजा सिद्ध चक्र पूजा, इन्द्र ध्वज पूजा, सर्वतोभद्र पूजा, त्रिलोक पूजा नित्य पूजा, तथा मुनि आर्यिका क्षुल्लक, क्षुल्लिका चार प्रकार के सघ को दान देना मन्दिर निर्माण करने मे दान देना विद्यालयो के लिए दान देना तथा सेवा, चाकरी करना और भी विनयादिक अनेक गुणो का होना तथा व्रत समिति गुप्तियों का पालन करना तथा अरहत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा जिन वाणी की पूजा भक्ति यदि सम्यक्त्व पूर्वक को गई है तो वह माक्ष का कारण होती है यदि मिथ्यात्व सहित की गई है तो अनन्त ससार का कारण भी होती है॥३६३॥

विवेक रहित ही मिथ्यादृष्टि है

पुण्यापुण्ये धर्मोऽधर्मौ हेयोपादे शुभाशुभौ।
पात्रापात्रौ संयताऽसंयतौ भव्याभव्यौ॥३६४॥
कार्याकार्ये च, हिताऽहितो नात्मानात्मनौ न जानाति॥
कृत्याकृत्यौ लाभालाभौ स्वभावश्चविभावः॥३६५
तत्वातत्वे दुःखं सुखे मोक्षोऽमोक्षश्चाविवेकिनः।
यच्चमिथ्यादृष्टिनः सत्यासत्येषु विहीनश्च॥३६६॥ त्रिलका

अज्ञान मोह रूप अन्धकार जिसके घर में विद्यमान है ऐसा भव्य विवेक शून्य होता हुआ यह नही जानता है कि पुण्य किस कार्य का होता है और पाप किस कार्य को करनें में होता है पुण्य पाप का विवेक नही करता है वह मिथ्यादृष्टि है। धर्म जीव का उपकारी और अधर्म जीव का कितना अपकारी है। धर्म किसको कहते है। अधर्म किसको कहते है। इन दोनों का स्वरूप कैसा है ऐसा नही जानता है वह मिथ्यादृष्टि है। क्या छोड़ना चाहिये क्या नही छोड़ना चाहिये क्या मेरे प्राप्त करनें योग्य है, क्या मेरे छोड़ने योग्य है, ऐसे हेयोपादेय के विवेक से रहित है वे ही मिथ्यादृष्टि जीव है।

किसका परिहार करू किसको ग्रहणकरूं क्या मेरे लिए शुभ काम है ? क्या अशुभ है ? कौन पात्र है किसको अपात्र कहते है ? पात्र और अपात्र के विवेक से शून्य है। सयम क्या है किस प्रकार का है इसके धारण करने पर मुझको क्या लाभ होगा। और क्या हानि होगी। तथा असयम क्या चीज है और इसके धारण करने पर मुझे क्या हानि उठानी पडेगी। जो भव्य और अभव्य के विवेक से सून्य है कि भव्य क्या है ? अभव्य कौन और क्या है ? मेरे करनें योग्य कौन सा कार्य है न करनें योग्य कौन सा कार्य है। कार्य अकार्य के करने पर क्या मुझे हानि उठानी पड़ेगी या मुझे लाभ होगा ? आत्मा और अनात्मा के विवेक से रहित जो है कि आत्मा क्या किसका नाम है अनात्मा क्या, किस का नाम है। आत्मा को जानने से व समझनें से मेरी क्या हानि होगी अनात्मा के जाननें व देखनें से क्या हानि होगी ? आत्मा अनात्मा के विवेक से जो शून्य है वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। करनें योग्य क्या है न करने योग्य क्या है किस कार्य के करने पर मुझे सुख शान्ति की प्राप्ति हो सकती है। किस कार्य करनें पर मुझको दु:ख मिलेगा ऐसे अहिसा और आरम्भ हिसा में विवेक न करता हुआ विचरता है वह मिथ्यादृष्टि है। अपने लाभ का और हानि के विवेक से विहीन है तथा मेरा स्वभाव क्या है विभाव क्या है। स्वभाव को जानने व देखने व मनन करने पर क्या लाभ हो सकेगा ? विभाव के देखने जानने पर या अनुभव करनें पर क्या मुझको विशेष वस्तु की प्राप्ति हो जायेगी ? स्वभाव क्या है ? विभाव क्या है कैसा है ? तत्त्व क्या है कितने है कौन-कौन से है ? अतत्त्व क्या है ? कौन-कौन से है ? इन तत्त्वो के जाननें व देखनें परिचय में लाने पर मुझे क्या हानि उठानी पड़ेगी ? अतत्त्वों को जानने देखने समझनें के पीछे क्या मेरी हानि होगी ? क्या मुझे विशेष लाभ होगा ? दु:ख किस कारण से होता है किस प्रकार का होता है कैसे जाना जाता है इसका भोगने वाला स्वामी कौन है ? इसकेभोगनें से मेरे को क्या हानि होगी ? तथा सुख किस कारण से होता है सुख का साधन क्या है सुख के साधन व सुख से क्या लाभ और हानि हो सकेगी ? क्या नही हो सकेगी ? मोक्ष क्या है, कैसी है, कैसा परिणाम है। किस प्रकार होती है ? मोक्ष का स्वरूप क्या है ? किसनें मोक्ष को प्राप्त किया है उसका फल क्या हैं ? संसार क्या है क्या वधन है, कर्म कौन-कौन से है। इनका फल क्या है, इनका स्वभाव कैसा है। इनके रहते और न रहते हुए मुझे क्या लाभ है क्या हानि है ? ससार किसको कहते है संसार कितना बड़ा है इसका कारण क्या है ? संसार वध कहां पर होता है, किस प्रकार होता है, इसके विवेक से रहित है मिथ्यादृष्टि है। ससार में सत्य क्या वस्तु है असत्य क्या वस्तु है सत्य किसका

साधन है, किसके आधार पर स्थित है, कहां पर रहता है, क्या उसका कार्य है ? असत्य क्या है कैसा है इससे क्या हानि है ? क्यों नही कहना चाहिए ? इस प्रकार जो विवेक से रहित है वही मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्व कर्म का उदय होता है तब जीव अपनें पुण्य पाप का फलभोगता हुआ भी दुःखी होता है, रोता है, चिल्लाता है, परन्तु विवेक शून्य होनें के कारण ही एक तरफ से छूटता है तो दूसरी तरफ से बधता जाता है जिस प्रकार मथान (रई) एक तरफ से छूटती है तो दूसरी तरफ से बधती जाती है यही गतिमिथ्यादृष्टि अविवेकी की कही गई है।

विशेष—मिथ्यात्व अधकार में फंसे हुए प्राणियों को विवेक का अभाव होनें के कारण भूतावेश के समान (उसका) वह मूढ हो जाता है। उसकी विचार करने की शक्ति नष्ट हो जाती है तब किंकर्तव्य ऐसा मूढ हो जाता है। उस समय में उसको अपना पराया नही सूझता है चाहे जिसकी पूजा स्तवन करता है, किसी का विनाश करता है आप कही गिरता है कही भी कुछ भी करता है यह दशा मिथ्यात्व के कारण ही जीव की होती है। जब विवेक जाग्रत होवे तब सुधरे और सम्यक्त्व को प्राप्त हो तब पुण्य और पाप का फल जानें तब पापों का त्याग कर पुण्योपार्जन करनें के भाव होवे कि पाप क्या है ? पुण्य क्या है ? पाप तो अज्ञान मिथ्यात्व है। पुण्य सुज्ञान और सम्यक्त्व है। पाप तो संसार की वृद्धि का कारण है तथा पुण्य है वह ससार के दुःखो से जीव को छुटानें वाला है, तथा परंपरा मोक्ष का भी कारण है। मिथ्यात्व और सासादन ये दोनो गुण स्थान है पाप रूप है आगे के गुणस्थान पुण्य रूप है क्योकि तीसरे गुण स्थान से लेकर १३ तेरहवे गुण स्थान तक पुण्य का उदय जीव के पाया जाता है। पाप है वह ससार में होनें वाले जन्म मरण वेदना, इष्ट वियोग, अनिष्ट सयोग रूप दुःख देनें वाला है तथा नरक गति त्रियंचं गतियों में ले जानें में प्रेमी मित्र के समान है ऐसा जानकर अशुभ भाव जो पाप रूप है उनका त्याग करके पुण्य रूप होवे। धर्म ही दु.खो से संसारी जीवो को छुड़ा कर उत्तम से उत्तम मोक्ष सुख मे ले जाकर धरता है और सब प्राणियो का हित करने वाला है। सुख देने वाला है धर्म से ही धन, धन से भोगोपभोगों का वैभव, राज्य पद, चक्रवर्ती पद, तीर्थंकर पद, इन्द्र पद, माहेन्द्र पद मिलते है। तथा धर्म से ही मोक्ष मिलता है धर्म का मूल तो अपनें आत्मा के घातक मिथ्यात्व कषायो का अभाव का होना है। तथा दया रूप सम्यक्त्व आत्मा का गुण है ऐसा जानें तब यह प्रतीति होवे कि अधर्म ही अनत ससार का बीज पाप मूलक दुःखो का हेतु पाप ही है, ऐसा जान पाप रूप मिथ्यात्व का त्याग करे। तथा अधर्म हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, परस्त्री और परिग्रह में अशक्तता का होना, अदया, असयम की प्रवृत्ति, जहाँ पर होती है वहां ही मिथ्यात्व है। उसका ही नाम अधर्म है। जब वह जाने कि यह मिथ्यात्व मेरा अहित करनें वाला है और सम्यक्त्व मेरा हित करनें वाला है। अहितकारी जाने तब मिथ्यात्व का त्याग करे। इस मिथ्यात्व रूप पदार्थ के सेवन करनें मात्र से मुझे नरक गति में जाना पडेगा और वहा पर अनेंक प्रकार से हजारो दुःख भोगनें पड़ेगे। तब मिथ्यात्व का वमन करे परन्तु विवेक सून्य होने के कारण जानते हुए भी उसका त्याग नही करता है। जिनोक्त धर्म और धर्म का स्वरूप जान श्रद्धापूर्वक धारण करना यह धर्म दुःखापहारक है। ऐसा मानें तब मिथ्यामार्ग व हिंसादि

पापों में धर्म की कल्पना की गई थी उसका त्याग करे ? तब अशुभ भाव का त्याग करने पर शुभभाव मे प्रवृत्ति हो। यह अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टि कुपात्र सुपात्र के विवेक से सून्य होनें के कारण कुपात्र को ही सुपात्र मान कर उनके लिए दान देता है। उनसे प्रति उपकार की इच्छा करता है तथा भांग, धतूरा, गाजा, मद्य आदि द्रव्ये दान मे देता है। धन देकर अपने को सुखी बनाने की इच्छा करता है। जो पात्र गाजा, अफीम, भॉग, धतूरा खाता है, मद्यपान करता है, तथा पर महिलाओ के साथ विषयकाम सेवन करता है, तथा हिंसा आरम्भ में रत रहता है, जोमाया पाप प्रवृत्ति में लवलीन रहते हैं, उनको ही पात्र मानता है। जो हिंसा, आरम्भ, परिग्रह, नशीली वस्तुओं से बहुत दूर है और ध्यानाध्ययन में लीन है। जिन्होंने आशारूपी बेल को जड़ को उखाड़ के फेंक दिया है वे सच्चे पात्र है उनकी तरफ दृष्टि भी नही डालता है। परन्तु उपकारी होनें पर भी उनको अपकारी मान कर द्वेष करता है। इस प्रकार पात्रापात्र के विवेक रहित होने के कारण ही अपात्रो की आराधना व दान मान पूजा करता है। जीव विराधना रूप असयम है और जीवो की अविराधना रूप सयम है। इन दोनों के विवेक से सून्य मिथ्यादृष्टि जीव की विराधना व रात्रि भोजन व देवी देवता व धर्म के नाम पर पशु पक्षियों की विराधना करता है। और उससे होने वाले असयम को ही महत्व देता है तथा धर्म मान करता है। किस प्रकार कैसा कौन-सा कार्य करने से मुझको सुख मिलेगा तथा हित होगा ? अथवा किस कार्य के करने से मेरा अहित होगा ! इन दोनों के विचार से सून्य होता हुआ अहित को ही अपना हितकर मानता है। शुभोपयोग रूप जो पुण्य है उसको त्याग कर पाप रूप दु:खों के कारणों को बड़ी चतुराई पूर्वक करता वह विवेकहीन मिथ्यादृष्टि है। क्या कार्य है क्या अकार्य है ? इन में भी विवेक नही करने वाला आत्मा और अनात्मा के विवेक से सून्य शरीर और शरीर से सम्बंधित अपने से भिन्न, स्त्री, पुत्र, ग्राम, देश, राज्य, मकान, नौकर, आदि को व गाय भैस, हाथी, घोड़ा, ऊँट, वैल, इत्यादि तथा मिथ्यात्व, अज्ञान, पुण्य, पाप, के फल को भोगता हुआ उनको अपना आत्मिक वस्तु मानता है। यह मेरा मकान मैंनें बनवाया है मेरे पुत्र है मैंने उत्पन्न किये है यह मेरी स्त्री है इस प्रकार पर वस्तुओं में अधिक ममत्व भाव रखता है। चेतन अचेतन पर पदार्थो को ही अपना व अपने रूप मानता है परन्तु निज आत्म स्वभाव का जिसको भान ही नही है ऐसा मिथ्यादृष्टि वहिरात्मा जीव है।

यह करने योग्य न करनें योग्य को भी नही जानता है न करनें योग्य कार्यो को बडे उत्साह पूर्वक करता है। करवाता है अनुमोदना भी करता है जो हिसा आरंभ और असत्य भापण, छल कपट, दगावाजी, जुआ खेलना, मांस मदिरा का सेवन करता है। कुदेव देवियों के लिए जानवरो की वलि चढा कर अपने कल्याण की इच्छा करता है तथा उसको ही मंगल मानता है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव जो शुभ क्रियाये है। जैसे अणुव्रत, महाव्रत, शील, देव, पूजा, स्तवन दानादि व परोपकारादि को त्याग कर देता है। उनकी तरफ दृष्टि नही डालने वाला विवेक सून्य अयोग्य को कर योग्य को छोड़ देता है। तथा करने योग्य शुभ कर्मो से घृणा कर छोड़ देता है करता भी है प्रमादपूर्वक करता है यथा काल में भावनापूर्वक नही करता है।

किस कार्य करने मे मुझे हानि उठानी पड़ेगी और किस कार्य करने में मुझको लाभ

होगा इन दोनो के विवेक से सून्य होने के कारण जिन कार्यो को करने से अत्यधिक गुणो का ह्रास होता है उन कार्यो को विधिपूर्वक करने मे समर्थ होता है। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव है वह अज्ञानी मोही विवेक सून्य मिथ्यादृष्टि आत्म लाभ के कारणो को व साधनो को नष्ट कर अनात्म पदार्थो की वृद्धि करने मे लवलीन होता है। जिसके कारण नाना प्रकार के सकट इसको भोगने पडते है। दु:खो को भोगता हुआ भी सचेत नही होता है कि ये दु ख मुझे क्यो कर प्राप्त हुए ? संकटों को दूर करने के लिए शनि देव की पूजा करता है, राहु केतू के लिए पशु मार बलि चढाता है सूर्य चन्द्रमा नाग देव खडोवा (कुत्ता) को देव मान कर पूजा करता है। जिससे पुन: दु खो के भयानक समुद्र मे जा पडता है ऐसा लाभ और अलाभ के विवेक से सून्य मिथ्यादृष्टि वहिरात्मा है जिन से सुख की प्राप्ति होती है उन मैत्री भाव दया भाव अहिंसादि धर्मों का त्याग कर व सच्चे देव शास्त्र गुरु व सयम से बहुत दूर चला जाता है ऐसा जीव ही मिथ्यादृष्टि है।

वस्तु का क्या स्वभाव है, क्या विभाव है इसके विषय में विवेक रहित ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव है जो यथार्थ वस्तु स्वभाव है उसको तो जानता ही नही कि सम्यक्त्व क्या है सम्यग्ज्ञान क्या है सम्यक् चारित्र क्या है, दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग किसका स्वभाव है या चित्स्वभाव किसका है इसको न जानता हुआ स्त्री पुत्र मकान वस्त्र पचेन्द्रियो के विषय राग द्वेष मोह क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार सज्ञाओ को तथा ईर्ष्या डाह इन को ही अपना स्वभाव व धर्म मानता है ऐसा वहि-रात्मा मिथ्यदृष्टि है। शरीर की उत्पत्ति को अपनी उत्पत्ति मानता है। शरीर के नाश होने को ही अपना नाश मानता है शरीर की कमजोरी को ही अपनी कमजोरी व निर्बलता मानता है शरीर के बल को ही अपना बल मान कर कहता है कि मै वलवान हूँ यदि चार अक्षर पढ लेता है तब अपने को विद्वान मानता है, और चार अक्षर नही पढे तो अपने को मूर्ख मानता है तथा अपनी उत्पत्ति पाँच भूतो से मानता है ऐसा स्वभाव विभाव को न जानने वाला ही वहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है।

भव्य क्या है, अभव्य क्या है इसके विवेक से सून्य है वह मिथ्यादृष्टि है। जिनमें होने की शक्ति विशेष है उसको भव्य कहते है। जिसमे होने की शक्ति नही है उसको अभव्य कहते है। होनहार का विचार नही करता है। क्या तत्त्व है क्या अतत्त्व है ? जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहेग ये पदार्थ व तत्त्वे द्रव्ये और अस्तिकाय इनको न मानकर स्त्री, पुत्र, माता, पिता हाथी, घोडा, गाय, बैल, शरीर को तत्त्व मानता है। तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनको तत्त्व मानता है तथा रुपया, पैसा, सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, मकान, घर क्षेत्र को तत्व मानता है और चर्चा भी यही करता है कि इससे भिन्न कोई तत्त्व है ही नही। जीव, अजीव, आस्रव बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप, ये नौ तथा पाप पुण्य को निकाल देने पर येही सात तत्त्व होते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म. आकाश, और काल। काल को द्रव्य छोड़कर शेष द्रव्ये पंचास्तिकाय है इन तत्त्वो को तत्त्व न मान कर अतत्त्वो को ही तत्त्व मानने वाला अज्ञानियो के द्वारा कही गई मछली, कच्छप, सूकर, नरसिह, वामन इत्यादि को ही तीर्थ कर्ता मानता है।

और उनको ही मार कर खा जाता है। परन्तु जिन धर्म में कहे गये वृषभादि तीर्थंकरों को तीर्थंकर नहीं मानता है मिथ्यादृष्टि पाखड़ी आड़म्बर से युक्त भेष धारी आरम्भादिक पापों में रत रहने वालों की सेवा करता श्रद्धाभक्ति करता है ऐसा मिथ्यादृष्टि वहिरात्मा है सत्यासत्य के विवेक से सून्य सत्यार्थ परमार्थ भूत जो जीवादिक तत्त्व या पदार्थ कहे गये है उनको न जानता हुआ जो सत्यता से रहित है अथवा दुःख के कारण है उनको सेवन कर अपने में सुखों की इच्छा करता है ऐसा वहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव है ।। ३६७।३६८।३६९।।

न जानाति जिनसिद्ध स्वरूपं त्रिविधाऽऽत्मनो भूतार्थं ।।
किमस्ति सम्यग्दृष्टि यात्मजरममरमविचलपदम् ।।३७०।।

जो भव्य आत्मा अरहतो के स्वरुप तथा सिद्ध परमात्मा के स्वरूप को निश्चय और व्यवहार नय करके नही जानता है वह अपने आत्मा के तीन भेद से युक्त है उस आत्मा को भी नहीं जान सकता है कि वहिरात्मा क्या है कौन सा भाव वहिरात्मा का है अन्तरात्मा कौन कैसा है क्या उसका स्वभाव और लक्षण है। तथा परमात्मा कैसा है, क्या उसका स्वरूप है ऐसा नहीं जानने वाला किसका श्रद्धान करेगा। जव सम्यक्त्व की प्राप्ति ही नहीं हुई तव ज्ञान और चारित्र से भी मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। तथा जो मोक्ष सुख वृद्धावस्था के दु खों से रहित अविनाशी है वह सुख ही अविचल है अथवा हीनाधिकता से रहित अतीन्द्रिय है ऐसे पद को प्राप्त कैसे होगा ? सवसे पहले अरहन्त सिद्ध स्वरूप को जिसने जान लिया है और उसपर श्रद्धान किया तव अपने आत्मा के भेदों को जान लिया कि आत्मा के तीन भेद हैं वहिरात्मा, अन्तरात्मा परमात्मा उसमें से वहिरात्मा भाव का त्याग करना तथा अन्तरात्मा होकर परमात्मा की ओर दृष्टि डाले तव मोक्ष पद को अवश्य पावेगा ऐसा श्रद्धान करेगा तव अवश्य सुख के साम्राज्य मोक्ष पद को पावेगा ।३७०।।

भुक्त्वा सुखं नृदेव लोकयोरऽक्षयपदं लभते भव्यः
शरणागतः सर्व लोके ऽपरमितमन्ते याति सौख्यम् ।३७१।।

भव्य सम्यग्दृष्टि अतरात्मा देव लोक अथवा स्वर्ग लोक के दिव्य सुखों का भोग करता है देवो का स्वामी इन्द्र होता है वहां के दिव्य सुखो को भोग सागर की स्थिति से लेकर तेतीस सागर की स्थिति पर्यन्त सुख भोगता है। अथवा जितने देव है उन पर हुकम चलाने वाला देवेन्द्र होता है देवों के समूह के साथ रहकर सुख भोगता है। जव देव आयु पूर्ण हो जाती है तव वहुतविभूति का धारी चक्रवर्ती होता है। और चक्ररत्न को धारण करके छह खण्ड पृथ्वी को अपना घर वना लेता है। जिसकी ३२ हजार नृप और देव सेवा करते हैं। जव सर्वविभूति को जीर्ण त्रण के समान त्यागकर जिन दीक्षा धारण करके शुक्ल ध्यान मे स्थित होता है और कर्मो का नाश कर अनंत दर्शन ज्ञानादि वैभव को प्राप्त होकर ससारी जीवो को मोक्ष मार्ग का उपदेश देता है और अघातिया कर्मो का नाश करके मोक्ष सुख को सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है ।।३७१।।

श्रेयं ज्ञानार्जनं च नृणां श्रेयं तच्छ्रद्धानैव
श्रद्धाने चारित्रं यल्लभते श्रेयससुखम् ।।३७२।।

मनुष्यो [को सबसे श्रेयस्कर तो यह है कि जिनागम का अभ्यास करके ज्ञानार्जन करे जो ज्ञानार्जन किया गया है उसमे श्रद्धान का होना श्रेयस्कर है और जिसका श्रद्धान हुआ है उसका ही यथार्थ ज्ञान होना है जिसका ज्ञान हुआ है उनका ही क्रिया रूप से परिणमन होना सो हो चारित्र है वह चारित्र ही मोक्ष का कारण है। श्रद्धान के विना जाने न जाने हुए पदार्थ व चारित्र सब ही निरर्थक ही होते है।

विशेष—जो ज्ञान उपार्जन किया गया है वह ज्ञान श्रद्धान रूप से परिणत हो जावे तो सम्यक्त्व होवे और जिस ज्ञान का श्रद्धान हुआ है उसका ही विवेक रूप यथार्थ ज्ञान हो जावे तव सम्यग्ज्ञान होता है और सम्यग्ज्ञान जा हुआ है वह चारित्र रूप परिणमन करे तब वह कर्मो का आस्रव बध रुक कर सम्वर निर्जरा होवे तथा सर्व कर्मो का क्षय हो जाना ही मोक्ष है इसलिये सबसे श्रेष्ठ सम्यक्त्व ही गुण है ॥३७२॥

अक्षरमात्रा हीन मंत्रं न विषवेदनां विहन्यतां ॥
सम्यक्त्वांगहीन दुष्कृतान मा जन्मसर्तति ॥३७३॥

जो मत्र अक्षर पदमात्रा हीन होता है, वह मत्र विषकी वेदना को दूर करने में समर्थ नही होता है उसी प्रकार निशाकितादि आठ अगो मे यदि एक अंग भी कम होगा तो वह सम्पक्त्व जन्म जन्म मे किये गये मिथ्यात्व के द्वारा पाप कर्मो का नाश करने मे समर्थ नही होता है।३७३

पापमूलं यत्स्यादन्यं लाभालाभे कि प्रयोजनं ॥
पाप विनाशोऽन्यं लाभालाभे कि प्रयोजनम् ॥३७४॥

पाप का कारण मूल मे दूसरा ही है तब धन के ल‌ाभ या अलाभ से क्या प्रयोजन है। जहा पर पापो का निरोध व नाश का कारण अन्य हो है तो धन का लाभ से क्या प्रयोजन है। पापो का मूल कारण मिथ्यादर्शन जिसके रहते लक्ष्मी मिले न मिले कोई प्रयोजन नही सिद्ध होता है। पापो का आस्रव और वध का निरोध करने व क्षय करने वाला सम्यक्त्व है जब सम्यक्त्व मिल गया तब अन्य सपति से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा।३७४॥

सम्यक्त्व सम्पन्नोयत् भवति पशुर्वहु श्रेयस्करं मानः ॥
नरत्वेऽपि पशूयाति मिथ्यात्व युक्तो मानवाश्च ॥ ३७५ ॥

यदि सम्यक्त्व सहित पशु भी हो तो वह श्रेष्ठ है परन्तु मिथ्यात्व सहित मनुष्य श्रेष्ठ नही। सम्यक्त्व सहित पशु भी मिथ्यादृष्टि मनुष्य से बहुत अच्छा है क्योकि उसका ससार भ्रमण का अन्त नजदीक ही है इसलिए वह पशु नही वह मनुष्यो से श्रेष्ठ है क्योकि पशुओ मे आत्म अनात्म वस्तु का विवेक नही परन्तु मनुष्यो मे सव प्रकार का विवेक है वह अनात्मिक वस्तुओ को ग्रहण करने का पूर्ण विचार करने मे समर्थ है। यदि अविवेक सहित भोग और उपभोग भोगे तो मनुष्य मे और पशु में क्या अन्तर है ? कुछ भी नही।

विशेषार्थ—सब जीवो की अपेक्षा मनुष्य विशेष विचारवान होता है। मिथ्यात्व के उदय से विपरीताभिनिवेश युक्त होने पर जब मनुष्य भी हिताहित के विचार से रहित होकर पशु के समान हो जाता है। तव पशु की बात ही क्या कहना है। तथा अविचार प्रधान पशुके भी कदाचित काललब्धि आदि कारणो के निमित्त से सम्यग्दर्शन को प्राप्त हो जावे

तो सम्यक्त्व के महात्म्य से पशु भी जब हेयोपादेय तत्त्व का वेत्ता हो जाता है। तो फिर मनुष्य की तो अब बात ही क्या कहना है सम्पक्त्व सहित पशु ही श्रेष्ठ है मिथ्यात्व युक्त मनुष्य नही ॥३७५॥

किंश्रेयशामरसुखं लब्ध्वायाति निगोदे दुःखंयत् ॥
श्रेयं नारक दुःख निवशति सम्यक्त्वेन युक्तः ॥३७६॥

मानव दर्शन मोह अज्ञान अधकार मे फंसा हुआ विचार करता है कि स्वर्ग मे जीवो को देवगति मे उत्तम सुख भोगने को मिलते है वे देव गति के उत्तम सुख किस काम के है कि जिसको प्राप्त कर अन्त समय मे निगोद मे जाना पड़े। देवगति तो मिथ्यात्व रूप वाल तप से भी प्राप्त होती है तथा अकाम निर्जरा से भी प्राप्त होती है जब देवगति भी प्राप्त हो गई वह भी विना सम्यक्त्व के समभाव आया नही और बड़े ऋद्धि के धारक देवो के वैभव देख देख नित प्रति संक्लिष्ट परिणाम किया बड़े वैभव के धारक देवो की आज्ञा के अनुसार गमन करना पड़ता है। ऋद्धि के धारक देवो की देवागनाये वैभव अणिमा गरिमादि विभूतिया है वैसी हमको हाय नही मिली। हमको इनकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है तथा इन की सवारी या वाहन का काम हमको करना पड़ता है। हाय हम इन्द्र कीभी सभा मे नही जा सकते हमको वाजे वजाने का काम करना पड़ता है। इन्द्र तथा सामानिक पारिषद देव अपने-अपने वैभव व परिवार सहित जहाँ कही जाते है तब हमको अपना नियोगी वाहन मान कर व वाजे वजाने वाले, गान करने वालो को जैसी आज्ञा देते है वैसा ही हमको करना पड़ता है। जब कभी नदीश्वर द्वीप मेरुओ के अकृत्रिम चैत्यालयो को वदना करने को सपरिवार जाते है तव हमको ही इनका विमान बनकर जाना पड़ता है ये हमारे ऊपर बैठ कर जाते है। वे वाहन, देव, हाथी, घोड़ा, ऊँट, वलद, सूकर, कुत्ता का रूप धारणकर विमान वनना पड़ता है इनके इतनी सुन्दर देवागनाये है हमारी देवागनाये इनके समान सुन्दर नही है। जब छह महीना आयुके शेष रह जाते है तव मिथ्यादृष्टि देवो की गले मे पड़ी हुई मदारमाला मुरझा जाती है तव वे देव रुदन मचाते है हाय अब हमारा सव वैभव छूट जायेगा हाय देवागनाये छूट जायेंगी मुझे ऐसे सुख कहा भोगने को मिलेगे ? हाय अब मेरा विनाश होगा इस प्रकार तीव्र आर्त ध्यान उनके छह महीने तक निरतर वेदना करता रहता है जिसके कारण देव मरकर एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है। परन्तु नरक मे गया हुआ सम्यग्दृष्टि जीव वहाँ के दुःखो का भोग कर कर्मो की निर्जरा करके मनुष्यो मे उत्पन्न होता है और सयम को धारण करके कर्मो की सवर पूर्वक निर्जरा करके तथा सव कर्मो को क्षय कर के अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त करते है। इसलिये मिथ्यात्व सहित स्वर्ग में जाना देवगति को पाना श्रेष्ठ नही परन्तु सम्यक्त्व सहित नरक गति को पाना श्रेयस्कर है। मिथ्यात्व सहित देवगति का पाना सो भी अनत ससार का कारण है जिस प्रकार हरी घास खिलाने वाला कषाई और सूखा घास खिलाने वाला वणिक् मे कितना अन्तर है उतना हीदेवगति व नरकगति मे अतर है। कषाई पहले वकरे को हरी हरी घास डालता है पीछे उसी के गले पर छुरा चलाता है परन्तु वनिया जैसा सूखा घास डालकर गाय के जीवन की रक्षा करता है उसी प्रकार

मिथ्यात्व के कारण जीवो को दुःख भोगने पडते है। सम्यक्त्व से युक्त जीव सुखो का अनुभव करता है ।३७६।।

आगे सम्यक्त्व के आठ अगो मे प्रसिद्ध महापुरुष

नृप पुत्रो ललितागोऽनंतमती चोद्यायनो रेवती।
जिनेन्द्र भक्तो वारिसेनो विष्णु वज्रकुमारौ ।। ३७७।।

सम्यक्त्व के आठ अंगो मे प्रसिद्ध हुए महापुरुष है उनके ये नाम है प्रथम अग मे राजपुत्र ललिताग प्रसिद्ध हुआ है। दूसरे निकाछित अग मे सेठ की पुत्री अनन्त मती वाला प्रसिद्ध हुई है। तीसरे निर्विचिकित्सा अग मे उपायन राजा प्रसिद्ध हुआ है। अमूढ दृष्टि अग मे रानी रेवती प्रसिद्ध हुई। उपहगुन अग मे जिनेन्द्र भक्त सेठ प्रसिद्ध हुआ, स्थिति करण अग में वारिसेन राजकुमार प्रसिद्ध हुआ है वात्सल्य अग मे मुनि विष्णूकुमार प्रसिद्ध हुए और प्रभावना अग मे व्रजकुमार मुनि विख्यात हुए है ।। ३७७ ।।

राजकुमार ललिताग की कथा (अजन चोर)

इस जम्बूद्वीप के उत्तर मे भरत क्षेत्र है उसमे काश्मीर नामक सुप्रसिद्ध देश है। उस देश मे विजयपुर नामक बडा विशाल नगर है उस नगर के राजा का नाम अरिमथन था वह बल विद्या मे निपुण था सत्यवादी धर्म परायण शील सयमी सज्जन वृन्द से सदा घिरा रहता था। वह सभा के मध्य ऐसा सोभायमान होता था जैसे तारा गणो के बीचो बीच चन्द्रमा शोभायमान होता है। शत्रु दल का दमन करने वाला था। मत्त हाथियो के मदको निरास व तितर-बितर करने वाला केहरी के समान पराक्रमी था। उसकी पट्ट महिषी का नाम सौदरी देवी थी, उनके कोई सन्तान नही थी। राजा व रानी की यह भावना थी कि हमारे पीछे राज्यकार्य कौन सम्भालेगा। इस प्रकार मन मे चिन्तातुर रहते थे। भाग्य उदय से वृद्धावस्था मे उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम ललिताग रक्खा गया था। परन्तु वृद्धावस्था में उत्पन्न होने के कारण माता-पिता का बहुत प्यारा था। बाल अवस्था में उसको विद्या अध्ययन व धर्म शिक्षा कुछ भी नही दी गई थी। जो कुछ कार्य करता उसको ही देखकर माता-पिता प्रसन्न होते थे। अव क्या था कि कुमार ललिताग यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ और दुष्ट दुराचारी लौकिक जनो की सगत करने लगा था। जिससे वह भी सात व्यसनो का सेवन करने लगा था। वह जुआ खेलना, मास खाना, शराब पीना, चोरी करना, वेश्या के घर जाना, शिकार खेलना पर स्त्री के साथ दुराचार करना इत्यादि। एक तो राजकुमार दूसरे बलवान तीसरे यौवन और दुराचारी नीच जनो की सगत मिल जाय तब उसकी बात ही क्या कहनी है इस प्रकार ललिताग अत्यन्त दुराचारी बन गया था। सात व्यसनो में पारगत हो गया था। धर्मात्मा सज्जनो की स्त्री माता बहन पुत्रियो का शील धर्म नष्ट करने लगा तथा इज्जत को लेने लगा था। व लूटखसोट भी करने लगा। किसी को मारता था किसी को बाध लेता था किसी का धन छीन लेता था इस प्रकार सारे नगरवासियो को दिन-रात पीडा देता रहता था। जिससे नगर वासी अपनी-अपनी इज्जत आबरुह की रक्षा करने की चेष्टा करते थे। सब जनता ललिताग के दुराचार से घबड़ाने लगी और दु.खी होने लगी जब ज्यादा उपद्रव करने लगा तब प्रजाजन

एकत्र होकर राजा के पास राज दरबार में तसरीफ लेकर पहुँचे और सब मिलकर राजा से निवेदन करने लगे कि हे राजन आप के राज्य काल में हमने बहुत सुख भोगे परन्तु अब हम आप के पास प्रार्थना करने आये है कि हमको आज्ञा दी जाय परदेश जानेको। ताकि हम दूसरे देश में जाकर रहे और अपने धन धर्म का पालन करे ? यह सुनकर राजा अरिमथन बड़े प्रेम के साथ पूछने लगा कि तुम्हारे ऊपरक्या आपत्ति आ उपस्थित हुई है सो क्यो नही कहते ? तब प्रजा ने, ललिताग कुमार की सारी कथा कह सुनाई कि वह हमारे धन धर्म को व इज्जत को स्वयम् नष्ट करता है तथा अन्य दुराचारी जनों से नष्ट करवाता है वह नीच व्यभिचारी दुराचारी पुरुषो की सगतकरता है जिससे सबके साथदुष्टता का ही व्यवहार करता है। यह सुनकर राजा ने धैर्यता बंधाते हुए कहा कि वह ललिताग तुमको दु.ख देता था तो तुमने अभी तक क्यों नही कहा ? हम उस ललिताग का आज ही इतजाम कर देते है सब प्रजा जन अपने-अपने स्थान को चले जाते है। राजा ने भी ललिताग को बुलवाकर कहा कि बेटा आप रोज कहां जाते हो ? क्या कार्य करते हो कहा रहते हो ? इतना पूछे जाने पर ललिताग कुछ भी उत्तर नही देता है। तब राजा ने बहुत प्रकार से समझाया वह भी राजा के सामने हा करता गया और राजा के पास से चला गया। और अपने मित्रो में जाकर मिल गया और पुन: वह पहले के समान ही आचरण करने लगा। बुरे व्यसनो का सेवन करने लग गया।

जब चारों तरफ द्वन्द्व मचाने लगा तब पुन: जनता के मुखिया लोगो ने राजा के पास जाकर फरयाद की कि महाराज ललिताग कुमार हमको बहुत पीड़ा देने लगा है वह पहले के समान ही दुष्टों को साथ लेकर विचरता है। यह सुनकर राजा ने ललिताग कुमार को बुलाया और कहा कि अरे पुत्र तेरे को मैने कितना समझाया परन्तु तूने उसपर बिलकुल ही अमल नही किया। इसलिए आज से अपना मुख नही दिखाना हमारे राज्य को छोड़कर अन्यत्र चले जाओ ! यदि इस बात का उल्लघन किया तो तेरे को प्राण दण्ड दिया जायेगा। यह सुनकर ललिताग अपनी माता बरसुन्दरी के पास पहुँचा। और बोला माता जी मुझको पिता जी ने राज्य से निकाल दिया है अब मै क्या करूँ ? तब माता बोली बेटा पहले ही तेरे को अनेक बार समझाया था पर तेरे समझ में एक नही आई। मै अब क्या करूँ ?

माता का ऐसा बचन सुनकर ललिताग राजमहल से बाहर निकला और राज्य छोडकर बाहरी देश में चला गया। और राजगृह नगरी में पहुँचा वहां उसने एक मिथ्या साधू की सगत की साधु ने उसको अजन गुटका सिद्ध करने का एक मंत्र दिया जिसको ललिताग ने बड़े प्रयत्नपूर्वक सिद्ध कर लिया जिससे वह कहीं भी रात्रि के मध्य में जाकर चोरी कर ले आता था। उसको सब दिखाई देते थे परन्तु वह किसी को दिखाई नही देता था। उस गुटिका को पाकर और अधिक चोरी करने लग गया। वहां राजगृह नगर में भी उसको दुष्ट दुराचारी सप्त व्यसनो में रत रहनेवाले बहुत से साथी मिल गये अब क्या था कि अंजन गुटिका के कारण उसको कोई देख नही पाता था वह मनमानी चोरी करने लगा। उसी नगर मे एक अनगसेना वेश्या थी उसके पास जाने लगा था। जितना चोरी कर धन लाता था उस द्रव्य को अनंग सुन्दरी को

ही दे देता था । इस प्रकार करते-करते कुछ दिन बीत गये थे कि एक दिन राजा और रानी दोनो हाथो पर बैठकर बडे ठाटवाट धूम-धाम से निकले । महारानी के गले मे एक रत्न हार था वह सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था उसको देखकर अनग सुन्दरी वेश्या विचार करने लगी कि यह हार मेरे गले की शोभा नही बना तो मेरे जीवन को धिक्कार है। शाम का समय आता है तब वह वेश्या अनग सुन्दरी अपना त्रिया चरित्र दिखाती हुई वेश भूषा विगाडे हुई पलग पर पडी हुई थी कि ललिताग (अजन चोर) आया और उसके कृत्य को देखकर दग रह गया और सोचने लगा कि यह आज क्या देख रहा हूँ ? यह ऐसे कैसे पडी है भीतर पलग के पास जाकर कहने लगा कि हे प्यारी आप ऐसे क्यो पडी हो ? क्या किसी ने तुम से कुछ कहा है ? तब वह कुटिला रोना सा मुख कर बोली कि अब मैं तब आपको सच्चा अपना प्रिय समझूँगी जब आप रानी के गले का हार मुझे लाकर देवेगे और मैं उस हार को पहन कर अपने गले की शोभा करूंगी । यह सुनकर ललिताग बोला कि यह मेरे लिये कोई बड़ी बात नही है परन्तु वह हार रात्रि मे प्रकाश मान होने से भय है आप सारिखी सुन्दरी को बात मैं जमीन पर डालने को असमर्थ हूँ पर क्या करूँ ? उस हार को कही पर छिपाया जाय पर वह छिप नही सकता है ? राज कर्मचारी शीघ्र ही उसकी खोज करके तुम को भी पकड कर कष्ट देवेगे । यदि राजा क्रोधित हो गया तो वह सारी सम्पति को लुटवा लेगा और प्राण दण्ड भी देवेगा ?इतने समझाने पर उस वेश्या के मन मे कुछ भी असर नही हुआ । वह कहने लगी कि तुम लाना नही चाहते हो इसलिए बाते बना रहे हो ? यह सुनकर ललिताय बोला कि अभी शुक्ल पक्ष है इसमे मेरी विद्या कार्य नही करती है कृष्ण पक्ष आने दो तब तुम्हारी इच्छा पूरी की जाएगी यह वचन देता हूँ ?

यह सुनकरवहवेश्या उठ खडी हुई औरशृंगार करके पहले के समानवार्तालाप करने लगी। जब कृष्ण पक्ष आया तो ललिताग अजन लगाकर रात्रि मे राजमहल मे प्रवेश कर रानी के गले मे से हार को लेकर महल से बाहर निकला ही था कि कोतपाल ने देख लिया और जान गया कि यह कोई चोर है जो रानी के गले का हार लेकर जा रहा है यह मालूम होता है कि कोई अजन गुटिका वाला चोर है। तब उसने उसका पीछा किया। कोतवाल को पीछे से आता हुआ देखकर वह ललिताग जोर से दौड़ने लगा परन्तु कोतवाल ने उसका पीछा नही छोडा । यह देख कर अंजन चोर ने उस रत्न हार को वही छोड दिया और आप परकोटा को उलघ कर श्मशान भूमि मे जा पहुँचा जहा पर जिनदत्त श्रेष्ठी का मित्र वरसेन जहाँ आकाश-गामिनी विद्यासिद्ध कर रहा था। उसको देख कर अजन चोर पूछने लगा कि आप यह क्या कर रहे हो ? ऐसा पूछे जाने पर वह वरसेन बोला कि मेरे मित्र जिनदत्त ने वह विद्या साधन की विधि कही है आकाश गामिनी विद्या सिद्ध करने के लिए ये जमीन मे अस्त्र गढे हुए है छीके पर चढकर इन धागाओ को क्रम से काटने पर आकाशगामिनी विद्या सिद्ध होगी। यह सुन कर अ जन चोर विचार करने लगा कि जिनदत्त श्रेष्ठी सत्यवादी जिनेन्द्र भगवान का भक्त और धर्मात्मा है वह मिथ्यावचन कभी भी बोल नही सकता है । ऐसा विचार कर मन मे उससे पूछा कि उसकी सिद्ध करने का मंत्र कौन सा है सो भी हमको बतला दीजिए ?

उसने भी पूरा मंत्र णमोकार बता दिया। अंजन चोर उस छींके में जा बैठा और उच्चारण करने लगा कि तार्णं तार्णं न जार्णं सेठ वचन प्रमाणं इस प्रकार मत्र का उच्चारण करते हुये छीके के सभी तारों को एक साथ काट दिए जिससे आकाश गामिनी विद्या सिद्ध हो गई। विद्या आकर कहने लगी कि मुझे क्यों याद किया है ? तब अंजन चोर कहने लगा कि मुझे वहाँ पहुँचा दो जहाँ पर मेरे गुरु जिनदत्त श्रेष्ठी है ? तब उस आकाश गामिनी विद्या ने शीघ्र हो सुदर्शनमेरु के चैत्यालयों को वंदना करने को गये हुए जिनदत्त के पास ले जाकर छोड़ दिया। चैत्यालय में प्रवेश कर जहाँ जिनदत्त श्रेष्ठी थे वहाँ जाकर सबसे प्रथम में जिनदत्त को प्रणाम किया। तब जिनदत्त कहने लगा कि यहाँ पर भगवान की अकीर्तम् मूर्तिया है तथा मुनिराज है उनके दर्शन करने का था तूने मेरे को पहले क्यों नमस्कार किया ?यह श्रवण कर अजन चोर कहने लगा कि आप ही तो मेरे गुरु हैं। यह सब होने के पीछे जिनदत्त ने जान लिया कि पहले तो यह तस्कर था इसको आकाश गामिनी विद्या सिद्ध हो गई परन्तु णमोकार मंत्र तो आता ही नही। जिनदत्त ने भी नाना प्रकार से धर्मोपदेश दिया और णमोकर मंत्र को सिखाया इस प्रकार निशांकित अंग में अजन चोर राजकुमार ललितांग प्रसिद्ध हुआ।

इति निशांकितांग में अंजन चोर की कथा।

लज्जागारव भयेन दर्शनहीनान् न नमेयुः सद्दृष्टिभिः।
चेन्नमति यत्कोऽपि च मिथ्यादृष्टि भवतिनियमात् ॥३७८॥

सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टियो की पूजा व नमस्कार विनय व सेवा वैयावृत्ति कदापि न करे। यदि भय से लज्जा स्नेह व यत्र तत्र मंत्र के लोभ से नमस्कार करता है तो वह निश्चय से मिथ्यात्व का पोषक होने के कारण वह भी मिथ्यादृष्टि होता है। अथवा उसका सम्यक्त्व गुण नष्ट होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो जायेगा इसलिए अनेकानेक कारणों के मिलने पर भी सम्यग्दृष्टि जीव लौकिक जनों की व कुदेव धर्म गुरुओं को नमस्कार नहीं करे।

विशेष—जो भव्य सम्यग्दर्शन से शुद्ध है वे यदि सम्यक्त्व से हीन है उन मिथ्यादृष्टियों को जानते हुए यदि पैरो में पड़ते है स्तवन करते हैं प्रशंसा करते है यदि इनको हम नमन नही करेंगे तो लोग नामोसी देवेगे तथा हमारी इनके यहाँ इज्जत नही रहेगी और हमारी कीर्ति में धब्बा लग जायेगा। बडे-बड़े राजा लोग इनकी सेवा करते है इसलिए नमस्कार करना चाहिए। इस प्रकार लोक लाज के लिए भी यदि मिथ्यादृष्टियों को नमस्कार करने वाला भी मिथ्यादृष्टि है। तथा अपने को वर की इच्छा व धन पुत्र की इच्छा कर व विवाह सम्बन्ध की इच्छा कर कुलिंगी भेषधारियो की पूजा स्तवन करना व आहार दान दे मान सम्मान करना कि हे गुरु देव आप ही हमारे लिए भगवान है हमको कोई ऐसा इलाज बताइये ताकि हमारा वंश न डूबे हम निर्धनी है हमारे पुत्र का विवाह नही हो रहा है हमारे मुकद्दमा चल रहा है जिससे बड़े परेशान है सो आप हम पर दया कर कुछ

साधन वताने की कृपा करे। आप तो दीन दयाल परोपकारी है इस प्रकार कह कर स्तवन वदना करना और मंत्र तंत्र यत्र की याचना करता है सो भी मिथ्यादृष्टि ही है। अपनी मान वड़ाई व कीर्ति की इच्छा कर भगवान जिनेन्द्र के कहे हुए सप्त क्षेत्रों के लिए दान न देकर मिथ्यात्व के पोषक कुदेव कुगुरु के मदिरो के लिए धन का दान देना व बनवाना और उसमें अपनी कीर्ति की इच्छाकर इस प्रकार करने वाले भी मिथ्यात्व के पोषण करने वाले होने के कारण मिथ्यादृष्टि ही है। यहाँ पर लज्जा तो इस प्रकार कही गई है यदि हम नमस्कार नही करेंगे तो लोग कहेगे कि यह बड़ा मानी है हमको तो सबका समाधान करना है इस प्रकार लज्जा से मिथ्यादृष्टि कुलिगीयो की विनयादिक करना। तथा भय इस प्रकार है कि यह राज्य मान्य हैं व मन्त्रादिक की सामर्थ्य सपन्न है यदि इनका विनय नही किया तो कुछ बिघ्न खडा कर देगा इस प्रकार विचार कर नमस्कारादि करना यह भय से विनय है। ये तो हमारे पुराने मित्र है इनका हमारा तो बहुत पुराना सबन्ध है यदि हम इनकी विनयादिक नही करेंगे तो उनके मन में खेद होगा कि मेरा मित्र भी देखो मेरे को नमन नही करता है। यह खेद है इससे नमस्कार करना सो स्नेह नमस्कार है गौरव तीन प्रकार का है रसगौरव, ऋद्धि गौरव, सात गौरव के भेद से यहाँ रसगौरव तो इस प्रकार है कि मिष्ट इष्ट पुष्ट भोजनादिक मिलता रहे तब उससे प्रमादी रहता है। ऋद्धिगौरव इस प्रकार है कुछ तप आदि के प्रभाव से ऋद्धि की प्राप्ति होने पर उसका गारव आ जाता है उससे उद्यत प्रमादी रहता है। सातगौरव ऐसा है शरीर निरोग हो कुछ भी क्लेश का कारण न आये तब सुखीपना आ जाता है उसमें मग्न रहते हैं इत्यादिक गौरवादि की मस्ती से बुरे भले का विचार (विवेक) न करते हुए मिथ्यादृष्टियो को भी विनय करने लग जाता है वह भी निश्चय से मिथ्यादृष्टि ही है क्योकि पापो का ही पोषक है इसीलिये सम्यग्दृष्टि अन्य कुलिगी मिथ्यादृष्टि देव धर्म गुरु की प्रशसा करे न नमस्कार करे।। ३७२ ।।

हेयाहेयं वेद्युः द्रव्यगुणपर्याये तत्त्वपदार्थानि ।।
श्रद्धानं तद्भावेन सम्यग्दृष्टिनो भूतार्थे ।। ३७९ ।।

जब हेय और उपादेय का विवेक हुआ तब अतत्त्व मिथ्यादृष्टियो के द्वारा कहे गये तथा माने गये एक तत्त्व दूसरो के द्वारा पाँच तीसरो के द्वारा नौ तत्त्व किसी के द्वारा माने गये २५ तत्त्व इत्यादि का त्याग कर द्रव्य और गुण की विकार रूप पर्यायों को जानकर तथा सात तत्त्व नौ पदार्थ पचास्तिकाय छह द्रव्यो को जान कर भूतार्थ नय से श्रद्धान करता है तब व्यवहार सम्यग्दृष्टि हो जाता है तथा निश्चय सम्यग्दृष्टि होता है। जब अतरग में आत्म ख्याति रूप श्रद्धान का होना आत्म तत्त्व का यथार्थ श्रद्धान का होना कि जितने अन्य द्रव्य गुण पर्याय हैं वे स्वात्म द्रव्य गुण पर्यायो से बिलकुल भिन्न है वैसा अत्यन्ता भाव से इनमे आस्ता रूप निश्चय करता है तब जीव के परिणामो की विशुद्धता होती है। विशुद्धता के साथ ही द्रव्यो को व पर्यायो को विनाशीक जान आत्मद्रव्य एक अविनाशी है जिसका कभी कोई अवस्था मे विनाश नही ऐसा पदार्थों में रुचि रूप श्रद्धान का होना कि आत्मा अनादिकाल से कर्मो से वंध हुआ है ये औदारिकादि शरीर है वे सब तादात्मिक सम्वन्ध से रहित सयोग

सम्बन्ध से है। ये शरीरादिक हैं वे सब कर्माधीन है उनकी जाति के है तथा पुद्गल द्रव्य की विभाव पर्याये है इनकी उत्पत्ति और विनाश दोनों ही कर्माधीन है। परन्तु आत्मा चित् सत् स्वरूप है उसका विनाश नही और उत्पत्ति भी नही आत्मा पुद्गल द्रव्य कर्म रूप से परिणमन भी कभी नही करता है न कर्म ही चेतना रूप परिणमन करते है। यदि परिणमन करते हैं तो अपने गुण और पर्यायो मे ही करते हैं। स्वभाव में परिणमन करते है। यह जीव स्वयं ही अपने परिणामों से परिणमन करता है कभी शुभ रूप से कभी अशुभ रूप से कभी शुद्ध रूप से जब अशुभ रूप से परिणमन करता है तब अशुभ कहा जाता है जब शुभ रूप से परिणमन करता है तब शुभ भाव कहे जाते है जब शुद्ध रूप से परिणमन करता है तब शुद्ध भाव रूप होता है। अशुभ भाव हों तब द्रव्य कर्म वर्गणाये समय प्रवृद्ध रूप से पाप रूप अशुभ आती है वे ही अशुभ कर्म रूप होकर स्वभाव से परिणमन करती है ऐसी जिसकी श्रद्धा प्राप्त हुई वह निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव है। तब अशुभ भावों को जानकर उन विभावों तथा कुभावों का त्याग कर शुभ भावों में प्रवृत्ति रूप प्रसम संवेग आस्तिक्य और अनुकंपादि वाह्य चिन्ह भी सम्यग्दृष्टि के देखे जाते हैं। जब सम्यक्त्व होवे तब ही हेय और उपादेय का ज्ञान कर श्रद्धान मे लावे यह निश्चय व्यवहार सम्यग्दृष्टि होता है। इन दोनों में अंतरंग मिथ्यात्व कषायों का अभाव ही कारण है ॥ ३७९ ॥

यत् सम्यक्त्वं भ्रष्टं सजिन मार्गात् भ्रष्टा न पावन्ति।
कदापीच्छितं स्थानं भ्रमति यत्र तत्र कुदृष्टिनः ॥ ३८० ॥

जिनका सम्यक्त्व नष्ट हो गया है वे जीव अरहंत मार्ग से भी भ्रष्ट है जो सुमार्ग को भूल कर कुमार्ग मे गमन करते है वे अपने इच्छित स्थान को कभी भी प्राप्त नहीं हो सकते है व जहाँ तहाँ चारो गतियों मे ही भ्रमण करते रहते है तथा जन्म मरण के दुःखों का भोग करते ही रहते है। जो जिनमत के श्रद्धा न से भ्रष्ट है उनको ही भ्रष्ट कहा गया है। जो सम्यक्त्व च्युत हो गये हैं उनको अपनी इच्छित अविनाशी अनत निर्वाण सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। मिथ्यादृष्टि जीव जितना भी ज्ञान उपार्जन कर लेवे कितना ही घोर तपस्या या तपश्चरण करे या चारित्र का पालन करे तो भी संसार के अन्त को प्राप्त नही हो सकता क्योंकि संसार वृक्ष का वीज या जड़ तो एक मिथ्यात्व ही है जिस प्रकार कोई सन्मार्ग को छोड़ के विपरीत मार्ग में गमन करके अपने घर पहुंचना चाहता है और विचार करता है कि यह मार्ग ही अच्छा है चलता जाता है कितने ही काल तक चलता गया परन्तु उसको वह स्थान नही पाया यह दिशा भ्रष्ट होने के कारण संसार रूपी जंगल में भटकता फिरता है जहाँ तहाँ दौड़ लगाता हुआ भी सही मार्ग न होने के कारण ही भ्रमण कर दुःख ही उठाता है। सुख की प्राप्ति नही। सम्यक्त्व से भ्रष्ट जीव निर्वाण सुख को कदापि नही प्राप्त हो सकता है।

जो जिन शासन की श्रद्धा से भ्रष्ट है और न्याय अलंकार छन्दालंकार काव्य कुशलता विनोद काव्य का जानकार होने पर भी विना सम्यग्दर्शन के चारों गतियों में ही

भ्रमण करता हुआ जन्म मरण के दुःखो को ही भोगता है परन्तु मोक्षसुख को प्राप्त नही हो सकता है ।। ३८० ।।

ज्ञानं तपश्चारित्रं सम्यक्त्वेन सह राति मोक्ष सुखम् ।।
मिथ्यातवेन सह भव दुःखो यद्रुच्येत्स्तत्त्वं कुरु ।। ३८१ ।।

शास्त्र बहुत पढ लिए और ज्ञान बहुत उपार्जन कर लिया तथा व्याकरण छंद सब जान लिए करोड़ो वर्ष गृहवास को छोड़ कर जगल ही अपना घर बना लिया और खडेश्वरी होकर लम्बे हाथ लटका दिए और वस्त्र भी गल गये शरीर भी शुष्क हो गया तप करते हजारो वर्ष भी वीत गये इस प्रकार आतापन योग धारण किया। सकल सयम विकल संयम को भी धारण किया और उसका आचरण किया। तथा उपदेश काव्य पढ़ने की चतुरता भी प्राप्त करली ये सब एक वार ही नही अनेको वार प्राप्त की तो भी अपने आत्म स्वरूप का बोध प्राप्त नही हुआ आत्मा तो वहिरात्मा ही रहा फिर वह ज्ञान और चारित्र तप तो अनन्त ससार का बढाने वाला ही हुआ। कोई पुण्य के उदय मे अनेक कारण से नित्य निगोद मे से निकल आया और पुण्य के उदय से पच स्थावरो मे से भी निकल कर त्रस कायक मे दो इन्द्री तीन चार असैनो पचेन्द्रिय भी हुआ। जब कुछ अकाम निर्जरा हुई और कुछ शुभ कर्म का उदय हुआ जिससे मनुष्य पर्याय प्राप्त की। मनुष्य पर्यय मे भी द्रव्य लिंगी होकर दिगम्बरी दीक्षा को धारण कर अनेक प्रकार तपस्या करी और चारित्र का भी पालन अच्छी तरह निर्दोष रूप से पालन किया परन्तु (सम्यक्त्व की प्राप्ति नही हुई) भाव की प्राप्ति नही हुई। द्रव्य लिंग को धारण कर केतेक बार देवगति को प्राप्त भी हुआ केतेक वार नैवेग्रेवेयक मे भी उत्पन्न हुआ। केतेक वार नीच भवन वासी व्यन्तर ज्योतिषी देवो मे भी उत्पन्न हुआ तथा केतेक वार नीच देवो मे उत्पन्न हुआ और दूसरो के वैभव को देख झूर-झूर मरा हाय-हाय मेरे ऐसे भोग नही मुझे अब वाहनं बनना पडेगा इत्यादि भाव कर मरण कर पुनः चतुर्गति निगोत मे पुन' जा विराजमान होता है जो नवग्रेवेयक वासी (द्रव्य लिगी) देव मरण कर मनुष्यो मे राजा होता है तब वह नाना प्रकार के पचेन्द्रिये भोगो के लिए अनेकप्रकार के पापों को कर नरक मे चला जाता है इस प्रकारज्ञान और तप चारित्र का फल ससार की वृद्धि का ही कारण है। वही तप सम्यक्त्व सहित ज्ञान वैराग्य चारित्र मोक्ष का कारण है इसलिये हे भव्य जो तेरे को अच्छा प्रतीत हो सो कर हमनें तो सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनो का स्वरूप कह दिया है ।। ३८१ ।।

सम्यक्त्वरत्नसार मोक्ष महावृक्षमूल मणितं ।।
तज्ज्ञातव्यो निश्चय व्यवहार स्वरूपे द्विभेदं ।। ३८२ ।।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इन चारो रत्नो मे श्रेष्ठ सम्यक्त्व रत्न है जैन धर्म में प्रथम मे रत्न की उपमा दी है जिनेन्द्र भगवान के मार्ग में तीन रत्न मानें गये है प्रथम सम्यक्त्व दूसरा ज्ञान तीसरा चारित्र इनको रत्नत्रय कहा है। उनमें भी सम्यक्त्व श्रद्धान को ही सबमे श्रेष्ठ कहा है क्योकि सम्यक्त्व के होने पर ज्ञान में यथाथता या समीचीनता आ जाती है तब वह ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है तब ज्ञान से हेय और.

उपादेय की यथार्थ प्रतीति हो जाती है इसलिए न्याय शास्त्र में भी कहा है कि अहित परिहार्थ हित गृहणार्थं सम्यग्ज्ञान प्रमाण। जिस ज्ञान से अहित का परिहार किया जावे और हित ग्रहण किया जावे वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही ग्रहण करने योग्य होता है। यह सामर्थ्य सम्यग्ज्ञान में ही होती है। जो क्रिया ससार के वृद्धि के कारणो को तथा बंध आस्रवों को रोकने में समर्थ होती है वह सम्यग्ज्ञान पूर्वक होती है तभी वह सम्यग्चारित्र कहा जाता है। जिससे अशुभ राग और द्वेष कषायो का निरोध तथा व्रत सयम शील समिति और गुप्तियो का पालन किया जाता है उसको सम्यक्चारित्र कहते है। ज्ञान तप चारित्र इन तीनो में समीचीनता आ जाती है इसलिए सम्यक्त्व को सबसे प्रधान रत्न कहा गया है। सम्यक्त्व के अभाव मे यथार्थता नही आती है न सम्यग्ज्ञान चारित्र यथार्थ को प्राप्त होते है। यहाँ पर सम्यक्त्व ही मोक्ष वृक्ष की मूलमाना है। सम्यक्त्व गुण उत्कृष्ट है। उस सम्यक्त्व को व्यवहार और निश्चय के भेद से दो प्रकार का जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। निश्चय सम्यक्त्व सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों से भिन्न अपने आत्मा का ज्ञान पूर्वक श्रद्धान का अकप रूप से होना क्षायक सम्यक्त्व है यह वीतराग सम्यक्त्व भी कहलाता है। व्यवहार सम्यक्त्व है। तथा सराग सम्यक्त्व है इसमें चल मल दोष उत्पन्न होते रहते है यह कारण पाकर नष्ट भी हो जाता है परन्तु वीतराग क्षायक सम्यक्त्व अविनाशी आत्मा के गुणों में से एक प्रधान गुण है। सम्यक्त्व होते ही मोक्ष मार्गपना चालू हो जाता है जिस मकान की नीव कच्ची है या विना नीव का मकान विना जड़ के वृक्ष की स्थिति नही रह सकती है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जिस वृक्ष के जड़ नही है वह वृक्ष कितने दिन तक खड़ा रह सकता है? वह तो हवा लगते ही जमीन पर पड़ जाता है जड़ के अभाव में वह पनपता नही पत्ते को पल सखायें फूल फल कैसे आवेंगे? कैसे वृद्धि को प्राप्त होगे? नही होगे। सम्यक्त्व के होने पर ज्ञान और चरित्र को वृद्धि होती है।। ३८२ ।।

व्यसनभयमतिचारं च यद मूढताऽनायतनः मंमांनि चाष्टौ।
यत् चतुश्चत्वारिंश दोषा न संति ते सद्दृष्टिनः।। ३८३ ।।

सात भय सातव्यसन सम्यक्त्व के पाच अतीचार आठ मद तीन मूढता छह अनायतन आठसंकादिक (दोप) चवालीश दोष नही होते है वे सम्यग्दृष्टि हैं इन कहे गये दोपो मे से एक भी दोष प्राप्त होवे तो सम्यक्त्व की उत्पत्ति नही। जहा पर सात भय रहते है वहां निशा कितादि अग सम्यक्त्व के नही रहते है। जहा पर सात व्यसन निवास करते है वहा पर सम्य क्त्व का होना ही नही सम्भव है। जहा देव मूढ़ता धर्म मूढता गुरु मूढ़ता रहती है वहा पर सम्यक्त्व नहीं होता। जहां पर छह अनायतनोसे एक भी अनायतनकी आराधना होती है वहा पर भी सम्यक्त्व नही, जहा पर संका काञ्छा चिकित्सा आाद सम्यक्त्व के दोष रहते हैं वहां पर भी सम्यक्त्व नही हो सकता है। ज्ञान मद तप वल राज्यकादि आठ मद निवास करते हैं वहा भी सम्यक्त्व को उत्पत्ति नही हो सकती। शंकाकाञ्छा सच्चेधर्म देव गुरुओ के दोषों को देखना निर्दोपियों को दोप लगाना व मिथ्यादृष्टि कुमार्गगामियो का विनय स्तवन करना ये पांच सम्यक्त्व के अतीचार है इनमे से यदि एक अतीचार रहता है तो भी

सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है। आचार्य कहते है कि इन चवालीश दोषो में से यदि एक दोष भी बांकी रह जाता है तो सम्यक्त्व की उत्पत्ति नही हो सकती। दोषो से रहित होने पर ही यथार्थ सम्यक्त्व शुद्ध होता है ।। ३८३।।

सम्यक्त्वाद्धीनं ये उग्रोगमाचरन्ति तपोनित्यम्
तेऽपिन पावन्ति बोधि वर्षः सहस्र कोटि चारित्रं ।। ३८४ ।।

जो भव्य हैं परन्तु सम्यत्व से रहित होकर उग्र-उग्र तप करते है। कभी अनसन तप करता है तभी पक्षोपवाश कभी मासोपवास श्रेणी रोहण तथा सर्वतो भद्र के उपवास करता है कभी ऊनोदर कभी रसपरित्याग कभी व्रत परिसख्यान कभी-कभी एक आसन से छह मास व वर्ष तक खड़े ही रहता है कभी बैठे ही रहता है। इस प्रकार अनेक कायक्लेशों को सहन करता है। तथा परीषहो को सहन करता है व उपसर्ग आने पर भी रचमात्र भी चलायमान नही होता है। तथा पचमहाव्रत और पाचसमिती तथा गुप्तियों का भी पालन कर हजारो वर्ष व्यतीत कर दी तथा करोणो वर्ष हाथ झुलाकर तप किया गया तव चारित्र भी मोक्ष का कारण नही वना वह तब पुण्य का कारण ही होता है पुण्य से देवगति को प्राप्त होता है मोक्ष को नही। जव भाव सम्यच्त्व के अभाव के कारण मिथ्यात्व कर्म का विशेष वध हो जाता है जिससे केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप वोधि की प्राप्ति नही होती है इसलिए ज्ञान तप चारित्र इन सवमे सम्यक्त्व ही प्रधान है ।।३८४।।

शुष्क जात मात्रं घोरतपश्चरन्ति समिथ्यात्वेन ।।
किंवाल्मीकं कुट्ठे जगति मरति सर्फो न मुक्तिः ।। ३८५ ।।

घोर तप करके शरीर को सुखा दिया कभी कभी वेला का उपवाश तेला का चौलाका व पक्षमास का उपवाश किया जिससे सारा शरीर कृप हो गता। तथा रसों का त्याग कर नीरस भोजन भी वहुत किया। मासोपवास पक्षोपवास भी वहुत वार किये जिससे शरीर सूख कर लकड़ी वनादिया परन्तु अन्तरग मे वैठी हुई कपाये व मिथ्यात्व की तरफ दृष्टि ही नही डाली। मिथ्यात्व क्रोधमान माया लोभ इन कषायो को सुखाया नही केवल शरीर मात्र के सुखाने से ह भव्य तेरे को मोक्ष सुख की प्राप्ति नही होगी। जिस प्रकार कोई अज्ञानी जीव सर्फ को मारने के लिये वाह्मी को दण्डा लेकर कूटता है क्या वाह्मी कूटने मात्र से सर्फ मर जावेगा ? नही मरजावेगा। इसी प्रकार अज्ञानी मिथ्यादृष्टि के द्वारा किया गया तप समझना चाहिये। इस प्रकार तप करने से मोक्ष की प्राप्ति कभी भी नही होगी। जव सम्यक्त्व पूर्वक मिथ्यात्व और कपायो का नाश किया जाय वह श्रेष्ठ है भोजन करके भी सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया यही महा तप है। जव मिथ्यात्व और कपाओं का नाश कर स्वतन्त्र होगा तव ही ध्यान के वल से कर्मो का नाश करने मे समर्थ होगा ? ३८५।

सौभाग्य विना नारी भावविना सयमस्तपश्चरणं ।।
भाति गृहं सुपत्रेण विना कुणयविमानवत्सर्वः ।। ३८६ ।।

जिन स्त्रियां के प्रथम पुत्र नही तथा पति भी नही माता पिता सास ससुर नही वे स्त्रियां शोभा को नहीं पाती है। सुपुत्र के विना घर की शोभा नही यदि कुपुत्र हजारों

की संख्या में होवे तो भी कोई काम के नही क्योकि दुःराचारी व्यसनी पुत्रों से घर को शोभा है विना सम्यक्त्व के (सयम) वा वैराग्य के नही व्रत चारित्र सयम तप सब ही शोभा को नही पाते है। भाव विना जो संयम चारित्र व तप धारण किया है वह सब शोभा को प्राप्त नही जिस प्रकार मुरदा को ले जाने के लिये रचा गया विमान शोभा को प्राप्त होता है वैसी ही व्रतादि को शोभा जानना चाहिये क्योंकि विमान के साथ तो रोना शोक दुःख ही होता है।३८६।

विना नृपेन देशंस्व सचिवेनास्थितिः राज्यम् ।।
पतिर्विना च कामिनी भावविना चारित्रम् ।। ३८७।।

देश की स्थिति विना राजा के नही रह सकती है विना मन्त्री का राज्य सुरक्षित नही रह सकता है तथा विना मन्त्री के राजा के राज्य की स्थिति नही रह जाती है। यदि पतिव्रता स्त्री है वह स्वतत्र विचरती है वह भी शील सम्पन्न नही रह सकतो है वह पति धर्म से अवश्य नष्ट हो जायेगी और अपवाद को प्राप्त होती है। उसी प्रकार भाव के विना चारित्र कोई कार्य कारी नही हो सकता है। सम्यक्त्व के विना चारित्र कर्म मलों को नाश करने में समर्थ नही हो सकता है परन्तु कर्म बन्ध का कारण ही होता है। जिससे ससार में ही प्राणी भ्रमण करता है। यह चारित्र पुण्य का कारण है पुण्य से राजपद प्राप्त कर अन्त में दुर्गति को प्राप्त होता है। विना भाव के क्रिया फल को प्राप्त कराने में समर्थ नही। ३८७।।

ससौभ्याग्येन भामिनी स सुपुत्रेण गेहं च।
ससचिवेन राज्यं च सम्यक्त्वेन चारित्रं।। ३८८ ।।

जिस भामिनी के प्रथम तो पुत्र उत्पन्न हो दूसरे सास ससुर माता पिता पति से युक्त हो वह भामिनी सोभा को प्राप्त होती है। दूसरे माता पिता का अधिक प्यार सास ससुर भी मन मे हर्षित होते है कि हमारी पुत्रवधू एक रत्न है हमारो सेवावैया वृत्ति बहुत करती है। पति सोचता है कि मेरा बड़ा ही सौभाग्य है कि ऐसी स्त्री रत्न की मुझे प्राप्ति हुई है। सुपुत्र से ही घर की शोभा होती है क्योकि सुपुत्र से ही कुल की मर्यादा व धर्ममर्यादा चलती रहतो है तथा धर्माचरण करने वाले विनयवान दयावान पुत्र से ही घर की कीर्ति माता-पिता के यश की वृद्धि होती है। जिस राजा के राज्य में प्रधान योग्य धर्मनिष्ठ सदाचारी होता है उस राज्य की अधिक वृद्धि होती है उस राजा का यश चारों ओर फैल जाता है और प्रजा वढ़ जाती वह राज्यो का शृगार वन जाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व सहित चारित्र की वृद्धि होती है वह सम्यक्त्व चारित्र यथा काल मे घातियाकर्मो का नाश करने में समर्थ होता है। तथा सम्यक्त्व चारित्र की सव देव दानव यक्ष भूत इन्द्र तथा चक्रवती आदि महापुरुष पूजा करते है चारित्र के पालने पर अभीष्ट फलकी प्राप्ति अनिवार्य रूप से हो जाती है। इसलिये यह सम्यक्त्व गुण ही श्रेष्ठ है। ३८८ ।।

स्वच्छन्देन भामिनी महाव्रष्टया क्षेत्रक्यारी च ।।
निरंकुशोयोगी विनासम्यक्त्वेन चारित्रं ।। ३८९ ।।

स्वच्छन्दता पूर्वक विचरने वाली (आचरण करनेवाली) पतिव्रता स्त्री हो तो वह भी अपने पद से भ्रष्ट हो जाती है तथा धर्म से भ्रष्ट हो जाती है। जिस प्रकार अति वर्षा जव होने

लग जाती है तब खेत और खाई फूट जाती है जिससे खेत क्यारी में पानी नहीं ठहरता है तथा खेत भी कट जाता है। जिस शिष्य तथा साधू के ऊपर आगम व गुरु का अंकुश नही रहता है वह निरंकुश हुआ स्वच्छन्दाचारी बन जाता है और धर्म से भ्रष्ट होता है तथा धर्म तीर्थ का विराधक भी होता है व लौकिक जनो के द्वारा निन्दा अपवाद को प्राप्त होता है। उसी प्रकार सम्यक्त्व के विना चारित्र मात्र व ज्ञान मात्र से मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती वह चारित्र निरर्थक ही होता है। इस लिये तीनो मे सम्यक्त्व ही श्रेष्ठ है। ३८९।

प्रावट् काले पत्र न तिष्ठन्त्यर्क जवासयोः कदापि॥
सम्यक्त्वोदये मा मिथ्यात्व ज्ञान चारित्राणि॥ ३९०॥

वर्षाकाल के आने पर अकौवा व जवासे के पेडो पर पत्ते नही रह जाते है सब पत्ते वर्षा ऋतु को पाकर झड़ जाते है एक देखने मात्र को पत्ता नही मिलते है उसी प्रकार सम्यक्त्व के प्रकट होने पर मिथ्यात्व और मिथ्याज्ञान चारित्र और तप इनकी स्थिति समाप्त हो जाती है। जहाँ सम्यक्त्व रूपी सूर्य का उदय होता है उसी समय मिथ्यत्व अज्ञान और मिथ्याचारित्र व मिथ्यातप का नाश होकर सम्यग्ज्ञान चारित्र तप की प्राप्ति होती है। इसलिये सम्यक्त्व गुण मोक्ष मार्ग में प्रधान है। ३९०।

मारुतवेगेन यदा मेघो विनश्यन्ति क्षणमेके॥
सम्यक्त्वोदयेतथा विनश्यन्ति मिथ्याज्ञान चारित्रे॥ ३९१॥

जब आकाश मे काले-काले मेघो की घटाये छाई हुई होती है और विजली चमकती है काला-काला मोर के समान अन्धकार फैला होता है उस समय पवन के जोर से चलते ही काले-काले वादल क्षण मात्र में इधर उधर फटकर भाग जाते है अथवा नष्ट हो जाते है उसी प्रकार सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व अज्ञानरूपी काले अन्धकार रूपी वादल छाये थे वे सब क्षण मात्र मे नष्ट हो जाते है। और सम्यग्ज्ञान रूपी प्रकाश हो जाता है ऐसा सम्यत्व का महात्म्य कहा है। ३९१।

नीलकंठध्वनिं श्रुत्वा पन्नगाः प्रपलायन्ते॥
युक्त्वागोशीरं ते सम्यक्त्वोदयेऽज्ञानं तपः॥ ३९२॥

जो सर्प चन्दन के वृक्ष से दिन रात लिपटे रहते है यदि उन सर्पो को फर्सालेकर टुकडे-२ भी कर दिये जावे तो भी वे चन्दन के वृक्षको छोड़ नही सकते परन्तु वे ही जब जगली मोर वोलता है मोर की वोली सुनकर ढीले पड जाते हैं और चन्दन को छोडकर भागने लग जाते है। उसी प्रकार सम्यक्त्व के होते ही मिथ्यात्व अज्ञान और कुतप सब नष्ट हो जाते हैं। तथा ज्ञानावरणादि कर्मो की स्थिति व अनुभाग वन्ध भी क्षीण हो जाता है। फल देने की शक्ति भी कमजोर हो जाती है। जिस प्रकार वृद्ध मनुष्य के स्पर्शन इन्द्रिय विपय विप को पान करने मे समर्थ नही होती है उसी प्रकार सम्यक्त्व का प्रभाव जानना चाहिये। ३९२॥

और भी कहते है।

प्रावट् काले प्रजाः नीरज सरदसुकाले तथा कोकिलायाः
केदं दृष्ट्वा किलकानि विविधविधमात्रे विचित्रं॥३९३॥

स्वराज्यं प्राप्तजीवो विचरयति खलु निर्बाध सौख्यं लभन्ते ॥
सम्यक्त्व पाति लब्धः विरमति च तपो ज्ञान चारित्रमेधम् ३८७

वर्षाकाल आने पर जीवों की वृद्धि अधिकाधिक होती है और शरदऋतु को पाकर तालाब का पानी निर्मल हो जाता है अथवा पानी मे मिली हुई कीचड़ पानी के नीचे बैठ जाती है जिससे निर्मल पानी हो जाता है जिससे जलजन्तु मीन आदि वृद्धि को प्राप्त होती है जब आम के वृक्ष पर कलिया आने लग जाती है। तब कोकिल उनकी सुगन्ध लेकर खाकर स्वयं किलकिल करने लग जाती है। अथवा अनेक प्रकार के मीठे-मीठे बोल सुनाती है। तथा नाच उठती है तथा सदाचारी नीति निपुण राजा को पाकर प्रजा बढ़ जाती है। नाना प्रकार के शुभ उद्योग करने लग जाती है तथा दुष्ट जनो का व्यापार शान्त हो जाता है जिससे धर्म की वृद्धि होती है और जीव इधर-उधर सुख पूर्वक विचरते है। नाना प्रकार के भोगों व उपभोग के सुखों का अनुभव करते है उसी प्रकार भव्य सम्यक्त्व को पाकर ज्ञान पूर्वक अनेक प्रकार के चारित्र की वृद्धि होती है व तप की वृद्धि करके कर्मो का नाश करके अविनाशी अक्षय इन्द्रिय व्यापार से रहित परम सुख है उसको प्राप्त करते है। इसलिये मोक्षाभिलाषियों को चाहिये कि वे सर्व कार्यो को छोड़कर सदासुख देने वाले सम्यक्त्व को उपार्जन करे ॥ सम्यक्त्व व सयम के फल की इच्छा नही करनी चाहिये। ३८८

आगे अनंतमती की कथा निकांक्षित अग में प्रसिद्ध

इस ही जम्बूद्वीप के उत्तर में भरत क्षेत्र के पूर्व में वगनाम का विशाल देश है उस देश में चम्पापुर नामकी अत्यन्त सुन्दर नगरी है। जिसके चारों ओर बाग बगीचे लगे हुए थे। उस नगरी में चोपड़ के बाजार बने हुए थे उस नगरी की स्त्रियां अपनी शोभा से देवांगना के वैभव को तिरस्कार कर रही थी। जहा के लोग धर्मात्मा व शीलवान् स्व स्त्री व्रती थे उस ही नगर में सर्व गुण सम्पन्न राज्यमान्य प्रिय दत्त नामका श्रेष्ठी निवास करता था। उसकी धर्म पत्नी का नाम अगवती था। अंगवती अपनी शरीर की लावण्यता रूप गुणों से युक्त थी उसकी कुक्ष से एक सुन्दर कन्या रत्न उत्पन्न हुई थी जिसका नाम अनन्तमती रक्खा गया था। वह वाला वालापन मे ही अपने रूप सौन्दर्य से देवागनाओं की सुन्दरता को भी मात करती थी। बालावस्था में वह बच्चों के साथ गुड्डा-गुड्डी खेला करती थी। एक दिन अनन्तमती अपनी सहेलियों के साथ गुड्डा-गुड्डी खेल रही थी। उसमें एक पुतला का दूसरे की पुतली के साथ विवाहोत्सव मनाया जा रहा था कि कही से घूमते हुए प्रियदत्त श्रेष्ठी अनन्तमती के पास आ पहुचा और उन्होनें कहा बेटी तू अभी विवाह का उत्सव मना रही है हम तो तेरी शादी बड़े ठाट-बाट से करेंगे। इतना कह कर अनन्तमती के शिर पर हाथ फेरा और अनन्तमती को आशीर्वाद दिया और बड़े प्रेम के साथ गोद में उठा लिया तथा अनन्तमती को गोदी में लेकर प्रियदत्त जिनमन्दिर में गये। वहाँ पर भगवान के दर्शन भक्ति करके मुनि महाराज के दर्शन किये और भक्ति व विनय से गुरु की स्तुति वन्द नाकी। तत्पश्चात् मुनिराज ने धर्मोपदेश दिया उपदेश सुनने के बाद प्रियदत्त ने अष्टांहिकाओ में आठ दिन का ब्रह्मचर्य व्रत लिया था तब अनन्तमती वोली कि महाराज

मुझे भी व्रत दीजिए तब मुनिराज ने अनन्तमती को भी ब्रह्मचर्य व्रत दिया और अनन्तमती ने भी ब्रह्मचर्य व्रत को बड़े हर्ष के साथ धारण किया।

अब क्या था कि अनन्तमती दोज के चन्द्रमा के समान दिन रात बढने लगी और सोलह वर्ष की हो गयी। अथवा यौवन के सन्मुख हुई। एक दिन अनन्तमती अपनी सहेलियों के साथ बगीचे मे झूला झूलने को गई थी हिंडोला झूलते समय विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे अमरावती नगरी का स्वामी विद्याधर सुकेतु अपनी धर्म पत्नी सुकेती के साथ वन क्रीडा करने के लिए निकला था वह भ्रमण करता हुआ चम्पापुरी के उद्यान में आया वहा उसने अनतमती को हिडोला झूलते हुए देखा और अनत मती के रूप और सौदर्यता को देखकर वह कामासक्त हो गया। और शीघ्र ही अपने देश को लौट गया और अपनी धर्मपत्नी को रनवास मे छोड़कर चम्पापुर मे आया जहा अनत मती सहेलियो के साथ हिडोला झूल रही थी। हिंडोला पर से एकाएकी अनन्तमती को अधर उठा लिया और विमान मे बैठकर अपने देश को लौटा। यहाँ सुकेती ने विचार किया मेरा पति कहाँ किस कारण से इतना शीघ्र ही चला गया वह भी उसके पीछे चम्पापुरी की तरफ को चल पड़ी जब सुकेतु लौट रहा था कि उसकी दृष्टि सुकेती के ऊपर पड़ी उसके मन मे बड़ा भय उत्पन्न हो गया और उस सुकेतु ने अपनी विद्या स कहा कि इस वाला को कही जगल में शीघ्र ही छोड़ आओ विद्या आज्ञा पाकर अनन्तमती को एक भयानक बीयावान जगल मे छोड़ आई। अब अनतमती बीयावान जगल मे रोती-रोती भटक रही थी। हाय माता पिता मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है कि जिसके कारण मुझको अकेली बीयावान जगल मे पटक दिया। साथ ही यह भी विचार करती है कि जीव ने जसे पूर्व मे शुभ और अशुभ कर्म किए है उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। विना फल दिए वे कर्म नही जा सकते है, कर्म बड़े ही बलवान हैं, इन कर्मों के अधीन सारा जगत होकर नाच रहा है इनके ऊपर सूर्य चन्द्रमा का भी कुछ बल नही चल सकता है तब मनुष्य की तो कहानी ही क्या है। आज मेरे पूर्वोपार्जित कर्म का उदय आया है जिससे मुझ को मेरे माता-पिता से भिन्न कर बीयावान जगल मे लाकर पटक दिया है। ये कर्म बड़े ही बलवान है, ये तीर्थंकर को भी नही छोड़ते तब हम सरीखो की तो बात ही क्या है। कर्मों के उदय का फल अवश्य ही भोगना चाहिए इस प्रकार विचार कर ही रही थी कि भीमराज जो भीलो का राजा था उसके सेवक गण उस ही जंगल में आ पहुचे जिस जगल मे अनन्तमती भ्रमण कर रही थी अनन्तमती को देखकर विचार करने लगे कि यह कोई देवी है या कोई विद्याधरी है या रम्भा है या वन देवी ही प्रकट हुई है। वे सब जगल के अच्छे-अच्छे फल तोड़ कर लाये और अनन्तमती के पास रख कर नमस्कार किया और वहा से सोच विचार करते हुए अपने स्वामी भीमराज के पास पहुंचे और बोले कि प्रभो आप के पुण्य प्रभाव से पास के जगल मे एक देवी आई है उसके दर्शन करो विनय करो ?

यह सुनकर भीमराज अनन्तमती के पास जगल में गया और अनन्तमती के सुन्दर शरीर और नव योवन को देखकर कामाशक्त हो गया और अनन्तमती से कहने लगा कि आप बड़ी

पुण्यवान हैं। जिससे मुझ सरीखा राजा तुमको मिला है। चलो राजमहल में चलो सब शृंगार करो राज भोग का भोग करो मेरी पटरानी पद स्वीकार करो यह कह कर वह भीलराज अनन्तमती को अपने घर ले गया और मान आदर सत्कार किया तब अनन्त मतीपंच परमेष्ठीयो का ध्यान करने लगी तब भीमराज बोला कि या तो मुझको स्वीकार करो नही तो तुम को बहुत कष्ट उठाने जरूर पडेगे। आप मेरे तेज व पराक्रम को नहीं जानती कि मैं कौन हूं मेरे सामने बड़े-बड़े बलवंत राजा भी कांपते है तुम मेरी आज्ञा को यदि उलंघन करने का साहस रखती हो तो मैं तुमको देखता हूं कि कौन बचायेगा। अनन्तमती विचार करने लगी कि मैंने माता-पिता के सामने गुरु से ब्रह्मचर्य व्रत लिया है उस व्रत को नही छोड़ूगी यदि प्राण जायेगे तो पुनः मिल जायेगे पर ब्रह्मचर्य पुनः अनंतकाल बीत जाने पर भी नही मिलेगा ? इस प्रकार मन में विचार कर अपने शीलव्रत के पालन करने में दृढ़ थी।

भीमराज जो भीलों का राजा था उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि इस हठग्राही नादान अबला को नाना प्रकार से कष्ट दो कहा कि जब तक यह मुझे स्वीकार न करे तब तक दो। वह कर्मचारी अनंतमती को पीड़ा देने लगे पीड़ा दे रहे थे कि भीमराज ने आकर कहा अब तो हमारी बात मान लो और मेरी ओर जरा दृष्टि उठाकर तो देखो ? मेरा सौदर्य कामदेव से कुछ कम नही मेरे को देख व मेरा नाम सुनकर ही बडे-बड़े राजा लोग कांप उठते है। यदि तुम अपने हठाग्राह को नही छोड़ेगी तो बहुत दुःख तुमको उठाने पड़ेगे ? भीमराज के सेवकों ने अनंतमती को बहुत मार लगाई परन्तु वह धैर्यतापूर्वक उस मार का सामना करती रही उसने कोई भी प्रकार से भी पटरानी पद को स्वीकार करने में समर्थ नही हुई। उसी समय वहाँ पर अनंतमती के शील के प्रभावसे वनदेवता का आसनकम्पायमान हुआ और वह देवी शीघ्र ही वहाँ जा पहुँची कि जहाँ अनतमती को वेदना दी जा रही थी। वन देवी ने भीमराज को पकड़ कर मार लगाना चालू कर दिया कि भीमराज एक दम कांपने लगा और घबराकर चिल्लाने लगा तब वन देवी ने कहा कि यदि तू जहाँ से इस वाला को लाया है वहाँ इस अबला को छोड़ आयेगा तो मै तेरे को छोड़ दूगी दूसरी बात यह है कि जा सती से क्षमा माँग यह सुन कर भीमराज ने अनतमती से क्षमा माँगी (और अनतमती को) सब लोग कहने लगे कि यह नारी तो सामान्य नारी नही है यह तो कोई महान है तभी तो इसकी रक्षा करने कें लिए देवी देवता तत्पर है। तत्पश्चात यक्षनी बोली कि बेटी तेरे को कहां जाना है वहाँ में तेरे को पहुँचा देती हूं तब अनंतमती बोली कि मुझे अयोध्या पहुंचा दो यह सुनकर यक्षिनी अनतमती को अयोध्या के समीप मार्ग में छोड आई और आप अतर्ध्यान हो गयी। वहां पर एक सेठ का पड़ाव था वह दूसरे देश से लौटकर आ रहा था कि अनंतमती को अपनी पुत्री बनाकर साथ में ले ली और अनतमती की रूपरेखा देखकर उसने अनतमती से सारा समाचार पूछा कि किस की तू पुत्री है कौन सा गाम है भीमराज के यहाँ कैसे आई यह सुन कर अनतमती ने उत्तर में कहा कि मेरे साथ में मेरा सारा परिवार है मै अकेली नही हूं। (यह बात सुनकर पुष्पक वणिक) मेरे पास क्षमारूपी नौकर है तथा शीलरूपी पुत्र है सदाचार मेरा धन है दया मेरी माता सत्य मेरा पिता है गुण मेरा भाई है तत्व मेरी पुत्री है सम्यक्त्व

मेरा मित्र है संयम मेरा भवन है मेरा देश मोक्ष है भगवान जिनेन्द्र प्रणीत आगम मेरा नगर है यह बात सुनकर वणिक पुष्पक अनतमती को साथ ले गया। कुछ दिन वाद वह पुष्पक अनतमती से कहने लगा कि मेरी तुम धर्मपत्नी वन जाओ उसने अनतमती को वहुत सा लालच दिखाया परन्तु अनन्तमती ने अपने मन के किये हुए फैसला को ही स्वीकार किया सेठ के बार-बार कहने पर भी अपने ब्रह्मचर्य को वेचनेके लिए सन्मुख नही हुई। वह सेठ ने अनतमती को वहाना बनाकर एक वेश्या के हाथ कुछ द्रव्य लेकर वेच दिया। अव अनतमती को एक वेश्या के घर जाना पड गया था परन्तु अनन्तमती अपने शील व्रह्मचर्य पालन करने में दृढ दत्त चित्त थी। वेश्या ने अनेक प्रकार से समझाया और कहा कि खाओ पियो यार दोस्तो से चार चार बाते करो इस यौवन का मजा लूटो चलो उठो ? यह सुनकर अनन्तमती अत्यन्त क्रोधित हुई। वेश्या ने बहुत प्रकार से अनन्तमती की विषय भोगो मे रत करने का प्रयत्न किया पर कामयाबी नही हुई। यह देख कर कुटिनी विचार करने लगी कि यह न तो वोलती है न हँसती है न खाती है न पीती है न विस्तर विछाकर ही सोती है मौन सहित रहती है किसी की ओर आख खोलकर भो देखती नही है। यह विचार कर वेश्या ने निर्णय किया कि इस सुन्दर अबला को अपने राजा के पास ले चलू और राजा इसको देखकर हमको इनाम भी देगा ? वह वेश्या अनन्तमती को साथ मे लेकर राज दरवार में गई। राजा को अनन्तमती सौप दी, राजा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वेश्या को बहुत सा धन दिया। और अनन्तमती को रनिवास मे भेज दिया तथा रहने की खान-पान की सारी व्यवस्थाये राजाज्ञा से कर दी गई। शाम के समय राजा राज महल मे गया और अनन्तमती से कहने लगा कि मैंने तुम को अपनी पटरानी बनाने का निश्चय किया है तुम मेरे साथ पाणिग्रहण करो तव अनन्तमती नें विवाह करने से इनकार कर दिया। राजा ने भी अनन्तमती को शाम दाम दण्ड भेद बना कर समझाया परन्तु अनन्तमती विवाह करने को किसी हालत मे तैयार नही हुई। वह अपने व्रह्मचर्य धर्म की रक्षा करने मे दत्त चित्त थी वह भोगो से अत्यन्त भय-भीत थी वह विचार करती थी ये भोग सास्वत रहने वाले नही है ये तो क्षणभगुर है इन क्षणभगुर भोगो की इच्छा कर अपने अमूल्य रत्न जो साश्वत मोक्ष सुख को देने वाला है उसको कोडी की बदले कैसे बेचा जाय। क्षणभगुर भोग और उपभोग व राज्य वैभव से क्या प्रयोजन वह अपनी प्रतिज्ञा मे अटल रही।

जब अनन्तमती राजा की पटरानी बनने को तैयार नही हुई तब राजा नें अपने सेवको को आज्ञा दी कि जव तक यह अबला यह न कहे कि मैं राजा को अपना स्वामी स्वीकार करती हू तब तक इसको मार लगाओ सेवक भी राजाज्ञा के अनुसार मार लगाने लगे तथा वेदना देने लगे। जव मार लगा रहे थे। उस मार को खाकर अनन्तमती कभी वेहोश होकर जमीन पर पड जाती थी कभी उठ बैठी होती थी इस प्रकार वे राजा के सेवक निर्दयता का व्यवहार कर रहे थे और पुनरपि-पुनरपि यही कहते जाते थे कि राजा के साथ पाणिग्रहण करो। उसी समय वहाँ के नगर देवता का आसन कम्पायमान हुआ और उसे देख मन में चिन्ता हुई कि मेरे आसन के हिलने का क्या कारण है ? देवता ने उसी समय अपनी अवधि

लगा कर देखा तो उसको ज्ञात हुआ कि इस ही नगरी में एक बाला शीलवती को महाकष्ट दिया जा रहा है। वह देव तुरन्त ही वहाँ पहुंचा कि जहाँ पर अनन्तमती को राज कर्मचारी मार लगा रहे थे वहाँ जाकर देव ने उसमार को राजा की पीठ पर डाल दिया उधर राज कर्मचारी अनन्तमती पर प्रहार करते है उधर वह प्रहार राजा के ऊपर हो रहा है। इस प्रकार राजा के ऊपर मार पड़ने लगी राजा घबडा कर जमीन पर गिर गया और हाय-हाय चिल्लाने लगा रोने लगा कभी जमीन पर लोट-पोट होता है कभी उठता है परन्तु मार देने वाला कोई दिखाई नही देता जब राजमहल के सब लोग एकत्र हो गये परन्तु मार ही मार दिखाई दे रही थी। मारनेवाला कोई भी दिखाई नही देता था तब सब लोग हाथ जोड़ कर बोले मार देने वाला देव तू कौन है हमको दिखाई तो दे तब देव दिखाई दिया सब ने प्रार्थना की कि राजा को क्षमा करो तब देव नें कहा कि मै एक क्षण भी क्षमा नही कर सकता हूं यदि यह अपना जीवन चाहता है तो सती से क्षमा मागे यदि सती क्षमा कर देगी तो मैं क्षमा कर दूंगा ? तब राजा ने उठकर अनन्तमती के चरण में नमस्कार कर प्रार्थना की कि हे देवी ! मैने तो बिना जानें ही आपको महान कष्ट दिया मेरी भूल को क्षमा करो ? इस प्रकार कहा तब अनन्तमती ने क्षमा कर दिया। इस प्रकार अनन्तममती के ऊपर का उपसर्ग दूर हुआ। देवता ने कहा कि जहाँ इसकी जानें की इच्छा हो वहाँ पहुँचा दो ? अनन्तमती के कहे अनुसार राजा नें अनन्तमती को भेज दिया अनन्तमती अयोध्या में जिन चैत्यालय में जा पहुची वहाँ पर भगवान के विधिपूर्वक दर्शन किए और वहीं पर कमश्री नामकी आर्यिका के दर्शन किए। और अनन्तमती माता जी के पास ही चैत्यालय में रहने लगी।

इधर चम्पापुर में अनन्तमती की सखियों ने अनन्तमती के अपहरण का समाचार उसके माता-पिता को दिया कि हम सब गीत गाते हुए बगीचा में झूला झूल रहे थे कि एक कोई आकाश से आया और अनन्तमती को चील झपट्टा कर ले गया। अनन्तमती के अपहरण का समाचार प्रियदत्त सेठ ने तथा अनन्तमती की माता ने व परिवार के जनो ने भी सुना तब सबके सब अनन्तमती के वियोग में आसू बहानें लगे। अब प्रियदत्त श्रेष्ठी राजा के पास गये और राजा से कहा कि मेरी पुत्री अनन्तमती को कोई दुष्ट हरण कर ले गया है राजा ने प्रियदत्त को सबोधन किया कि धैर्य धरो आपकी पुत्री की -खोज की जायेगी। प्रियदत्त सेठ ने भी अपने कई एक आदमियों को अनन्तमती की खोज लगाने के लिए भेज दिये। अनन्तमती की माता रुदन करती हुई हाय बेटी अनन्तमती तेरे को कौन दुष्ट दुराचारी हरण कर ले गया हा बेटी अब तू हमको कैसे मिलेगी। सब परिजन पुरुजनों में अनन्तमती के अपहरण का शोक छाया हुआ था। तथा राजा ने भी शोक किया, दिलाशा देते हुए समझाया फिर भी परिवार के लोग ऐसे रोते थे की मानो पति के वियोग के विरह में चकवी रोती है शोक करती है। उसी प्रकार अनन्तमती के वियोग में उसका परिवार दुःखी हो रहा। अनन्तमती की माता इस प्रकार रो रही थी। कभी मूर्छा खाकर जमीन पर गिर जाती तब परिजन लोग चन्दनादि का छिड़कावा करके सचेत करते थे तब वह होश में आ जाती पुनः हाय बेटी अनन्तमती कह कर रोनें लग जाती थी ऐसी दशा माता की हो रही थी। इस

प्रकार दिन रात बीत रहे थे।

एक दिन प्रियदत्त श्रेष्ठी अनन्तमती की खोज करने के लिए ,आयोध्या नगरी की तरफ को निकले अयोध्या में प्रियदत्त की बहन रहती थी वहाँ पर पहुचे। और अपनी बहन से अनन्तमती के अपहरण की सारी बात कह सुनाई यह सुन कर वह भी शोकातुर हो उठी। प्रिय दत्त जिन मन्दिर के दर्शन करने के लिए रास्ते मे जा रहे थे कि एक मकान के सामने दरवाजे पर चौक पूरा हुआ देखा उसको देखकर प्रियदत्त रोने लगे कि ऐसा चौक तो हमारी अनन्तमती ही अपने दरवाजे पर पूरा करती थी। मन्दिर के दर्शन कर बहन के घर वापस आये और कहा कि यहाँ कोई वाला तो नही आई है यह सुनकर एक स्त्री कहने लगी कि चैत्यालय मे कमल श्री आर्यिका विद्यमान हैं उनके पास एक रूपवती वाला है तव प्रियदत्त को विश्वास हो गया कि हो न हो अनन्तमतो ही हो तव उसको बहन ने एक सखी को भेजकर अनन्तमती को अपने घर बुलवा लिया और प्रियदत्त अनन्तमती को देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए कि जिस प्रकार सूर्य के उदय को पाकर कमल खिल जाते है तथा चन्द्रमा को देखकर कुमुद खिल उठता है। तथा वर्षा के बादलो को देखकर मोर नाच उठते हैं व स्वाति नक्षत्र को आया जान चातक पक्षी प्रसन्न होता है। और आकाश में जहाँ तहाँ उडता है और बोलता है उसी प्रकार प्रियदत्त अनन्तमती को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। और गोद मे लेकर उसके मस्तक पर हाथ फेरा पुचकारा और किस प्रकार तेरे को कौन अपहरण कर ले गया और क्या पीछे मुसीबते आईं सब समाचार पूछा और कहा बेटी घर चलो तुम्हारी माता तेरे बिना धैर्य नही धारण कर रही है जिस दिन से तेरा अपहरण हुआ है उस ही दिन से अन्न पान का त्याग किए हुए दिन रात रोती ही रहती है यह सुनकर अनंतमती और प्रियदत्त श्रेष्ठी चम्पापुरी को चल दिये। और अपने घर पहुंच गये साथ में अपनी बहन को भी ले गये थे। अनन्तमती का आगमन सुनकर माता व परिजन आनन्दित हुए और सब घरो मे मगलमय गीत हुए प्रियदत्त ने भी अनेक प्रकार से दान पूजा करवाई। कुछ ही दिनो में प्रियदत्त का विचार हुआ कि अब अनन्तमती विवाह योग्य हो गई अब इसका विवाह संम्बन्ध करना चाहिए। तव अपनी बहन के जेष्ठ पुत्र के साथ विवाह करने का निश्चय किया। तथा विवाह महोत्सव की तैयारियां चलने लगी तब अनन्तमती ने प्रियदत्त से पूछा कि पिता जी ये किसके विवाह की तैयारिया चल रही है ? यह सुनकर प्रियदत्त बोला कि बेटी तेरे ही विवाह की तैयारिया चल रही है यह सुनकर अनन्तमती कहने लगी कि आपको पता नही कि आपने ही तो ब्रह्मचर्य व्रत मुझे गुरु से दिलवाया था। आप क्या मेरी शादी करना चाहते है। यह सुनकर प्रियदत्त सेठ बोला कि बेटी हमने तो आठ दिन की अष्टान्हिकाओ के व्रत लिए थे। तब अनन्तमती बोली कि उसी समय क्यों नही कहा था कि हमने तो आठ ही दिन के लिए व्रत लिये है अब मैं अपने अमूल्य ब्रह्मचर्य रूप रत्न को नही बेचूंगी न मैं शादी करूंगी। इतना कहकर अनन्तमती कमल श्री आर्यिका के पास गई और विनयपूर्वक वदना करके कहा कि आप मुझे आर्यिका व्रत की दीक्षा दीजिए यह सुनकर कमल श्री आर्यिका ने अनन्तमती को आर्यिका के व्रत दिये।

अब अनन्तमती आर्यिका व्रत को धारणकर उग्र तप करती हुई समाधि पूर्वक मरण कर स्वर्ग को गई।

इति अनन्तमती कथा।

सम्यक्त्वोपपत्ते च नैसर्गिकोऽधिगमः खलु नित्यम्।
स्वभावेन परोपदेश पूर्वकोपप्रतीतिश्रद्धा ॥३८९॥

सम्यक्त्व की उत्पत्ति में दो कारण है एक नैसर्गिक दूसरा (परोपदेश) अधिगमज। नैसर्गिक जो आत्मा मे स्वभाव से ही उत्पन्न हो जिसमें बाह्य कोई भी कारण न बना हो स्वभाव से ही आत्म रुचि व देव शास्त्र गुरुओं में श्रद्धान व सात तत्त्वों, नव परार्थो व छह द्रव्य, नव पदार्थो में श्रद्धान हुआ हो, वह नैसर्गिक सम्यक्त्व है। जो सम्यक्त्व परोपदेश पूर्वक जीवादि तत्त्वो व द्रव्यों, देव शास्त्र गुरुओ में श्रद्धान का होना तथा ज्ञान पूर्वक जो सम्यक्त्व होता है उसको अधिगमज सम्यक्त्व कहते है। शंका—यदि उपदेश नही सुना तो पदार्थ का श्रद्धान कैसे हुआ ? यदि सुना और सुनने से हुआ तो वह भी अधिगमज ही हुआ ? समाधान—आपका यह कहना ठीक है परन्तु निसर्गज सम्यक्त्व में परोपदेश कारण नही वह पूर्व संस्कार के अनुसार ही दर्शन मोह व अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात का उपशम या क्षयोपशम होना ये अन्तरग कारण मिलने पर जो तत्त्व श्रद्धान होता है वह नैसर्गिक अथवा निसर्गज सम्यक्त्व है। दोनों सम्यक्त्व होने में अन्तरंग कारण समान ही है। जब दर्शन मोह का उपशम हो या क्षयोपशम हो तब अधिगमज और निसर्गज दोनों ही सम्यक्त्व जीवों के होते है। जब तक अन्तरग में दर्शन मोह तथा चरित्र मोह की अन्तानुबन्धी चार कषायो का उपशम क्षयोपशम क्षय नही होता है तब तक दोनो ही सम्यक्त्व नही हो सकते। ३८९।

उद्दायन राजा की कथा निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध।

कच्छ देश में रोरव नामक नगर था वह नगर अनेक प्रकार के बाग-बगीचे तथा सज्जनों से परिपूर्ण था जहाँ के बाजार चोपड़ के बने हुए थे और जहाँ पर हीरा जवाहरात के व्यापार होते थे। जहा की स्त्रियायें अपनी शोभा से देवाँगनाओं की शोभा का बहिष्कार करती थी अनेक देश-देशान्तर से आने वाले वणिक लोग व्यापार किया करते थे। सब व्यापारी धन में कुबेर के समान धनवान थे। उस देश के राजा का नाम उद्दायन था और उनकी पट्ट महिषी का नाम प्रभावती था। एक दिन सौधर्म इन्द्र की सौधर्म सभा में निर्विचिकित्सा अग में प्रधान है तो उद्दायन राजा है यह श्रवण कर वासव नाम का देव उद्दायन राजा तथा प्रभावती रानी की परीक्षा करने को चल दिया। वासवदेव ने अपना रूप एक मुनि का धारण किया और अत्यन्त दुर्बल पीड़ित हुए की तरह उठता बैठता राजा उद्दायन के महल के पास जा पहुँचा। उद्दायन राजा ने मुनिराज को महल की तरफ आता देखकर शीघ्र ही महल से उतरा और बोला हे स्वामी अत्र तिष्ठ-तिष्ठ-तिष्ठ कह कर पड़गाहन किया और अपने महल में ले गया, उच्चासन दिया और पाद प्रक्षालन किया, पूजाकर नमस्कार किया, और आहार जल शुद्ध है मन, वचन, काय शुद्ध है ऐसा कह कर

आहार देना चालू कर दिया तब बासवदेव ने चारों तरफ दुर्गंध ही दुर्गंध फैला दी। और आहार कर चुकने के पीछे राजा उद्यायन के ऊपर वमन कर दी जिससे सारा रसोई घर दुर्गंधमय बन गया था। सब सेवक लोग दुर्गंध के आने से भाग गये। राजा और रानी प्रभावती दो ही रह गये। राजा विचार करने लगा हाय हमारा धन खोटा है जिससे महाराज को हजम नही होकर वमन हो गई वे दोनो ही अपनी निन्दा करते हुए मुनिराज के शरीर को गरम पानी से धोने लग गये उन्होने दुर्गंध का विचार नही किया कि दुर्गंध आ रही है न उनसे ग्लानि ही की, न उनके प्रति बहिष्कार की भावना ही की। अपितु सेवा वैयावृत्ति करने की भावना की, यह देखकर वासवदेव विचार करने लगा कि जैसा इन्द्र ने कहा था की वैसा ही देख रहा हूँ। वासवदेव ने तुरन्त ही अपना असली रूप धारण किया और राजा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा कि हे राजन्! मैंने इन्द्र की सभा मे जैसी आप की कीर्ति सुनी वैसी ही साक्षात रूप से में भी परीक्षा कर देखी। इस प्रकार परीक्षा करने के पीछे राजा उद्यायन को नमस्कार कर देव बोला, आप धन्य है आप ही सच्चे सम्यग्दृष्टि है। इस प्रकार कह कर वासवदेव अपने स्थान को चला गया।

इति उद्यायन प्रभावती रानी की निर्विचिकित्सा अग की कथा

आगे अमूढ दृष्टि अग मे प्रसिद्ध रेवती रानी की कथा

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नाम का नगर था उस नगरी के राजा का नाम चन्द्रप्रभ था उनको अनेक विद्याये सिद्ध थी। एक दिन राजा अपने पुत्र को राज्य देकर आप यात्रा के लिए निकला और दक्षिण मथुरा मे गुप्ताचार्य मुनिराज जहां रहते थे वहा जा पहुँचा। गुप्ताचार्य से मुनि दीक्षा मागी तब गुप्ताचार्य ने कहा कि अन्तरग व बहिरग दोनो प्रकार के परिग्रह का त्याग करो जितनी विद्याये है उन सब का त्याग करो ? तब चन्द्रप्रभ विद्याधर बोला हे भगवन्! एक आकाश गामिनी विद्या रख कर शेष का त्याग कर देता हूँ। मेरा विचार उत्तर मथुरा के चैत्यालयो के दर्शन करने का है। यह श्रवण कर गुप्ताचार्य ने कहा कि तुम क्षुलुक दीक्षा ले सकते हो, मुनि दीक्षा नही, क्योकि मुनि दीक्षा मे सबका त्याग करना होगा। तब चन्द्रप्रभ विद्याधर ने उत्तम श्रावक में व्रत धारण किये और गुप्ताचार्य के पादमूल मे रहने लगा। एक दिन वह चन्द्रप्रभ क्षुल्लक उत्तर मे मथुरा जाने को तैयार हुआ और गुरु के पास जाकर आज्ञा मागी गुरु से आज्ञा लेकर चला तब उसने कहा महाराज किसी को कुछ कहना हो वह कहो मे कह दू गा। तब महाराज ने कहा कि सुव्रत मुनि महाराज को हमारा नमोस्तु कहना और रानी रेवती को धर्म वृद्धि आशीर्वाद कहना, पुनः क्षुल्लक जी ने कहा और किसी को तो कुछ नही कहना है ? यह सुनकर गुप्ताचार्य ने कोई उत्तर नही दिया। भव्यसेन को कुछ भी नही कहा।

अब क्या था कि विद्याधर विद्या बल से उत्तर मथुरा के दर्शन करने को पहुंचा और मुनिसुव्रत मुनिराज को धर्म वात्सल्य देखकर क्षुल्लक जी ने बार-बार नमोस्तु कहते हुए गुरु के कहे अनुसार गुरु का नमोस्तु नमोस्तु कहा।

मुनि सुव्रत मुनि महाराज से आशीर्वाद लेकर जहाँ पर भव्यसेन महाराज रहते थे

वहां गया परन्तु नमस्कार नही किया और पास में बैठ गया। भव्यसेन मुनिराज शौच क्रिया करने को बाहर जाना ही चाहते थे कि क्षुल्लक ने भव्यसेन का कमण्डल अपने हाथ में ले लिया और अपनी विद्या बल से कमण्डल का पानी सुखा दिया और कहने लगा कि महाराज कमण्डल में तो पानी ही नहीं है। तथा मार्ग में हरा-हरा घास विद्या बल से बना दिया। तथा तालाब बना दिया और कहने लगा कि श्री महाराज सामने तालाब दिखाई देता है उसमें शौचादि की शुद्धि कर लीजिये उसका पानी अत्यन्त निर्मल है? यह सुनकर भव्यसेन ने तालाब में जाकर शौचादि क्रिया की? भव्यसेन भी हरे घास को रोंदते चले गये कहते थे कि घास में एकेन्द्रिय जीव होते है ऐसा आगम में लिखा है तथा जल भी एकेन्द्रिय जीव का जन्म स्थान है तथा त्रसकायक जीव भी उत्पन्न होते है ऐसा शास्त्र में लिखा है। यह देखकर क्षुल्लक विचार करने लगा कि इसी कारण गुप्ताचार्य ने इनके प्रति मौन धारण किया और विचार करना चाहिए कि रेवती रानी को ही क्यो आशीर्वाद कहा अन्य को क्यो नही? इसकी परीक्षा अवश्य करूंगा।

वह क्षुल्लक मथुरा की पूर्व दिशा में चतुरमुखी ब्रह्मा का रूप धारण कर बैठा जिसको देख नगर वासी लोग देखने को आने लगे। शहर व घर-घर में ब्रह्मा जी के प्रकट होने की चर्चा चल पड़ी यह खबर चारों ओर फैल गयी, कि शहर की पूर्व दिशा में ब्रह्मा जी सक्षात् विराजमान है। प्रजा विचार करने लगी कि हम लोगो का बड़ा ही भाग्य का उदय है कि ब्रह्मा साक्षात आ विराजमान हुए है। सब नगर के स्त्री-पुरुष बाल-बच्चे वृद्ध सब ही ब्रह्माजी के दर्शन करने जाते थे और अपने को धन्य मानते थे। राजा को यह भी समाचार मिला कि पूर्व दिशा में ब्रह्मा जी आये हुए है राजा ने भी ब्रह्मा के दर्शन करने की तैयारी कर रानी रेवती से कहा कि चलो नगर के पूर्व दिशा में ब्रह्मा जी आये है चारों मुखो से वेदो की कथा कह रहे है यह सुन रेवती रानी कहने लगी कि हे राजन जिनागम में ब्रह्मा चौबीस होते है पच्चीस नही सो चौबीस-के-चौबीस तो हो चुके फिर ये पच्चीसवा कहा से आ गया? यह कोई छलिया है। इन्द्र जालिया है। रानी नही गई, राजा को दर्शन करते हुए देखा और भव्यसे को भी देखा परन्तु रेवती को नही देखा।

दूसरे दिन प्रभात होते ही उस विद्याधर क्षुल्लक ने विष्णु भगवान का रूप धारण किया गरुड़ पर सवार नाग शैय्या पर लेटे हुए लक्ष्मी जी पैर दबा रही थी एक हाथ में शख था एक हाथ में चक्र था इस प्रकार मथुरा की दक्षिण श्रेणी में (दिशा में) विष्णु भगवान् अपने वैभव सहित पधारे है उनको देखने के लिए नगर के नर-नारीं बाल वृद्ध आने लगे और दर्शन कर अपने को कृतार्थ मानने लगे। यह समाचार राजा ने भी प्राप्त किया और राजा भी दर्शन करने के लिए जाने को उत्सुक हुआ और रानी के महल में गया कहने लगा कि हे प्रिये विष्णु भगवान साक्षात अपने नगर की दक्षिण दिशा में विराज रहे है सब लोग दर्शन कर आनन्द की लहर ले रहे है तुम भी चलो पहले भी नही गयी अब तो चलो? यह सुन कर रेवती रानी बोली कि राजन आपनहीं जानते कि शास्त्रों में लिखा है विष्णु नौ होते है और नौ प्रति विष्णु होते है सो वे दोनों ही प्रकार के विष्णु तो चौथे काल में हो चुके

अब इस पंचम काल में विष्णु की उत्पत्ति है ही नही, फिर यह विष्णु कहां से आ गया ? यह कोई मायावी है ? जगत को धोखा देने वाला है यह कह कर रेवती रानी ने राजा से इन्कार कर दिया कि मैं नही जा सकती। राजा दर्शन करने गया और बड़ी भक्ति से विष्णु की पूजा की। विद्याधर ने देखा कि रेवती रानी नही आई सब नगर के नर नारी आ गये। परन्तु रेवती रानी दिखाई नही दी।

पुनः विष्णु का रूप बदल कर नगर की पश्चिम दिशा में एक अग्नि की धूनि जल रही थी त्रिशूल लगा हुआ था डमरू बज रहा था नादिया पर बैठे थे साथ मे पार्वती बैठी थी उनके गले में उनका हाथ डला था जटाओ में से गगा की धारा गिर रही थी कंठ में गुहेरा सर्प लिपट रहे थे प्यारी-प्यारी भजन कर रहे थे। मरे हुए शेर की खाल की मृगछाला थी पार्वती जी की गोदी में कार्तिकेय जी मोर की सवारी पर बैठे थे सर्वांग में भस्म लग रही थी इस प्रकार महादेव जी का रूप धारण कर बैठा ही था कि नगर में सब जगह यह चर्चा चली कि आज नगर के पश्चिम दिशा में महादेव जी पार्वती कार्तिकेय जी अनेक महात्माओं के साथ विराजमान है नगर में चारों तरफ यह आवाज फैल चुकी थी कि सब नर-नारी बाल वृद्ध सभी दर्शन के लिए चल पड़े जहा महादेव जी विद्यमान थे वहां जाकर सबने दर्शन किये और अपने को धन्य मानने लगे। इधर राजा ने भी अपने द्वारपाल के द्वारा यह समाचार प्राप्त किया तब वह भी सारे परिवार के साथ चलने को उद्यत हुआ। रानी के पास गया और कहा हे प्रिये आप चलें आज अपने नगर के समीप उद्यान में महादेव भी पधारे हुए है। सब जनता दर्शन कर पुण्य लूट रही है चलो हम भी दर्शन कर आनन्द लेवे ? यह सुनकर रानी कहने लगी कि हे महापुरुष जिनागम में ग्यारह रुद्र हो गये है सो ग्यारह के ग्यारह रुद्र हो चुके हैं और अन्तिम रुद्र महादेव हुए सो भी हो चुके अब यह बारहवां रुद्र भेषधारी कहां से आ गया यह कोई विद्याधर है ऐसा विचार कर वह दर्शनार्थ नही गई राजा मन्त्रिमण्डल सहित गया विद्याधर ने राजा को बड़ें गौर से देखा परन्तु रेवती रानी को नही देखा।

पुन· उस विद्याधर ने अपनी विद्या के बल से एक योजन में समवशरण की रचना की उसमें बारह सभाये बनी थी अनेक देव देवी अपनी-अपनी सभा मे विराजमान थे। तीन कटनी की वेदी थी उसके ऊपर कमल बना हुआ था उसके ऊपर आप विराजमान था दोनो तरफ चौसठ चमर ढोरे जा रहे थे एक तरफ बत्तीस यक्ष दूसरी तरफ बत्तीस यक्ष चमर ढोर रहे थे। अशोक वृक्ष था भामण्डल अपनी अनुपम छवि दिखा रहा था दुन्दुभि बज रही थी, देवो द्वारा फूलो की वर्षा की जा रही थी, दर्पण के समान जिनका शरीर बनाया था। तथा प्रथम कोट के भीतर चार दिशाओ मे चार मानस्थम्भ बने हुए थे। चारो दिशाओ में चार मुख दिखाई दे रहे थे। यह प्रतीत हो रहा था कि भगवान महावीर का समवशरण ही आया हो।

अब क्या था भगवान महावीर का समवशरण आया हुआ जानकर नगर के नर-नारी बडे हर्ष के साथ उछलते कूदते दौड़ लगाते हुए चल रहे थे कि हम पहले भगवान के दर्शन करूँ मैं पहले करूँ। समवशरण को देखकर सब लोग आनदित हो गए और भगवान की

दिव्य ध्वनि खिर रही थी सब लोग धर्म का स्वरूप सुन रहे थे। राजा को भी द्वारपाल ने समाचार दिया कि महाराज श्री श्री १००८ भगवान महावीर स्वामी का समवशरण आया है नगर की सारी जनता धर्मोपदेश सुनकर लाभ ले रही है। यह सुनकर राजा ने भी चलने की तैयारी की और रेवती रानी के पास पहुँचा और कहा कि आज तो चलो आज तो भगवान का समवशरण नगर के उत्तर दिशा में आया हुआ है यह सुनकर रानी चकित हो गई कि इस असमय पंचम काल में तीर्थंकरों की उत्पत्ति नही होती है तीर्थंकर चौबीस ही होते है पच्चीसवा तीर्थंकर हो नही सकता है वे चौबीश तीर्थंकर चौथे काल मे होते है सो हो ही चुके यह पच्चीसवा तीर्थकर कहां से आ गया यह भी कोई मायावी छलिया है यह विचार कर वह नही गई राजा को विद्याधर ने देखा परन्तु रेवती रानी दिखाई नही दी। राजा तथा मन्त्री और भव्यसेन मुनि भी दिखाई दिए।

तत्पश्चात् विद्याधर ने अपना असली क्षुल्लक का भेष धारण कर चर्या के निमित्त क्षुल्लक को आता देख कर रानी ने बड़े भक्ति और प्रेम से पड़गाहन किया और आहार दान दिया अपने को कृत कृत्य माना और कहने लगी कि इस दुस्सम पंचमकाल में मुनि आर्यका क्षुल्लक क्षुल्लिका होते रहेगे। यह सुनकर वह क्षुल्लक बोला माता जी आप को गुप्ताचार्य महाराज ने धर्म वृद्धि आशीर्वाद कहा है। हे माता जी! मैंने आप की परीक्षा करने के लिए भेष धारण किए कि ऐसा रानी मे कौन सी विशेष बात है कि जिससे आप को ही आशीर्वाद कहा अन्य किसी को नही कहा है। यह क्षुल्लक रानी की भूरि-भूरि प्रशसा कर विहार कर गया। कितना ही ठगने का विचार किया परन्तु वह अपने मन में जिन वाणी में अटल निसदेह रही रंचमात्र भी चलायमान नही हुई ॥४॥

अमूढ दृष्टि अग में रेवती रानी की कथा समाप्त ॥४॥

आगे जिन भक्त सेठ की कथा उपगूहन अग में प्रसिद्ध

इस जम्बू द्वीप के मध्य उत्तर में भरत क्षेत्र है उसमें स्वर्ग समान उत्तम रत्नों से वनी हुई पटना नगरी है उस नगरी में चन्द्रशेखर नाम का राजा राज्य करता था। उसके एक बड़ा प्रतापी पुत्र था उसका नाम सुधीर था वह कुसंगत के कारण दुराचारी बन गया था। सप्त व्यसनो के सेवन करने में एक द्वितीय यमराज के समान था। एक दिन उसने सुना कि ताम्रपुर नगर में जिनदत्त नाम का नगर सेठ है और उसके मकान के सतखने के ऊपर एक चैत्यालय है उसमें भगवान के ऊपर लगे हुए छत्र में वैडूर्य मणी लगी हुई है यह जानकर सुधीर ने अपने सव साथियों को वुला कर कहा कि ताम्रपुर में एक जिनदत्त श्रेष्ठी है उसके घर में चैत्यालय है उसमें वैडूर्य मणी लगा हुआ है और सेठी के घर पर वड़ा-कड़ा पहरा लगा हुआ है। वहाँ पर सामान्य लोगों का प्रवेश करना नहीं बनता है। जो छत्र में लगी हुई वैडूर्य मणि को अपना पराक्रम दिखा कर लेकर आयेगा वही हम सब चोरों का सरदार कहलायेगा। तव यह सुनकर सूर्य नाम का एक तस्कर वोला कि मैं कार्य कर सकता हूँ। यह मेरे लिए कोई बड़ी बात नही मैं शीघ्र ही उस सेठ के चैत्यालय में लगे हुए छत्र से वैडर्य मणि को सहज ही में ला सकता हूँ।

इतना कह कर वह सूर्यवर्मा चोर एक पीतल का कमण्डल लेकर हाथ में ब्रह्मचारी का रूप धारण कर चल दिया और ताम्रपुर मे जिनेन्द्र भक्त सेठ के यहाँ चैत्यालय मे जा पहुँचा और दर्शन किये। जिनेन्द्र भक्त सेठ ने विचार किया कि कोई ब्रह्मचारी महाराज आये हुए हैं ऐसा जान कर उसकी रहने की व्यवस्था कर दी। वह ब्रह्मचारी भी देखा देखी करने लग गया। जब वहा रहते हुए बहुत दिन बीत गये परन्तु ऐसा अवसर नही पाया कि छत्र मे से उस वैडूर्यमणि की चोरी की जा सके। एक दिन जिनेन्द्र भक्त सेठ ने परदेश जाने का विचार किया और शुभ मुहूर्त में प्रस्थान किया तब वह तस्कर विचार करने लगा कि अब अपने को अच्छा अवसर मिल जाएगा और अपना कार्य अवश्य बन जाएगा। जिनेन्द्र भक्त सेठ ने गांव के बाहर जाकर एक सुन्दर बाग में रात्रि को मुकाम किया। इधर उस तस्कर ने वैडूर्य मणि को छत्र मे से तोड़कर एक वस्त्र मे लपेट ली ताकि किसी को दिखाई न दे सके। अब क्या था कि ब्रह्मचारी भेषधारी उस मणि को लेकर चला जब दरवाजे पर आया त्यो ही पहरेदारो ने भाप लिया और रंगे हाथो से पकड़ लिया और बहुत मार लगाई यह समाचार किसी सेवक ने जिनेन्द्र भक्त सेठ को दे दिया कि ब्रह्मचारी भगवान के छत्र मे लगे हुए मणि को लेकर भाग रहा था। जब दरवाजे पर आया तब द्वार पर रहने वाले पहरेदारो ने पकड़ लिया और मार लगाई। और उनको बाध रक्खा है। यह सुनकर जिनेन्द्र भक्त शीघ्र ही सुनकर उन्ही पैरों चल दिया और अपने मकान पर पहुचा और देखा कि चोर को द्वारपालो ने बाध रक्खा है। जिनेन्द्र भक्त ने द्वारपालो को बहुत डाटा और कहने लगा कि यह मणि तो मैंने ही मँगाई। इस ब्रह्मचारी का कोई दोष नही तुमने बिना विचारे ही क्यो उसको मार लगाई। और कहने लगा कि आप को ऐसा व्यवहार नही करना था। उस रत्न को लेकर हाथ मे उस तस्कर को भी अपने महल के भीतर ले गया और समझाया कि यदि तुझ को चोर कहकर राजा के हाथ सुपर्द कर दू तो राजा आज ही तुमको सूली पर चढ़ा देगा। तथा अन्य प्रकार का भी दण्ड बहुत देगा जिससे तुझको जीवन आशा भी छोड़नी पड़ेगी। तथा और अनेक प्रकार से समझाया और कहा कि यदि मैं चाहूँ तो तेरे को अभी मरवा डालू पर इस प्रकार करने व दण्ड देने से व दिलवाने सच्चे धर्मात्मा ब्रह्मचारी क्षुल्लक मुनियो का कोई विश्वास नही करेगा और लौकिक जन कहेगे कि जैनो के ब्रह्मचारी क्षुल्लक आदि त्यागी भी चोर होते है इस प्रकार लोक मे जैन धर्म और धर्म के धारक जैनो का अपवाद होगा। यदि नौकरो के हवाले कर दू तो वे इसको बिना प्राण लिए छोड़ेगे नही। उस तस्कर को धर्म का स्वरूप समझाया और चोरी करने का त्याग करवा दिया और उसको सन्मार्ग मे लगाकर पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी बना दिया।

इति उपगूहन अग

इति जिनेन्द्र भक्त सेठ की कथा समाप्त

सम्यक्त्वमेक द्वित्रिदश श्रद्धानं श्रद्धाति तथा।
असंख्यातविकल्प जिन प्रज्ञप्तं परमागमे ॥२९०॥

निश्चय रूप से सम्यक्त्व एक है तथा सराग और वीतराग के भेद से दो प्रकार का होता है उपक्षम क्षयोपशम क्षायक के भेद से तीन प्रकार का होता है। आज्ञा सम्यक्त्व मार्ग सम्यक्त्व, उपदेश सम्यक्त्व, सूत्र सम्यक्त्व, बीज सम्यक्त्व, सक्षेप सम्यक्त्व, विस्तार सम्यक्त्व, अर्थ सम्यक्त्व, अवगाढ सम्यक्त्व, परमावगाढ सम्यक्त्व के भेद से दश प्रकार का है श्रद्धान और श्रद्धान करने वाले की अपेक्षा से अनेक भेद होते है।

पूर्व में कहे गये जीवादिक द्रव्य पदार्थो सात तत्त्वों पर श्रद्धान का होना सम्यक्त्व एक है। निश्चय सम्यक्त्व और व्यवहार सम्यक्त्व के भेद से दो प्रकार का है। सराग सम्यक्त्व और बीतराग सम्यक्त्व के भेद से भी दो प्रकार का है। उपशम सम्यक्त्व जिसमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यग्प्रकृति और अनतानुबधी क्रोधमान माया लोभ इन सात का उपशम होनेपर जो हो वह उपशम सम्यक्त्व है इनके क्षय होने पर जो हो वह क्षायक सम्यक्त्व है। इन ही सातो के सर्व घातिया प्रकृति मिथ्यात्व सम्यग्मि-थ्यात्व, अनतानुबधी कषायों की उदयाभावी क्षय सदवस्था रूप उपशम तथा सम्यक्प्र-कृति का उदय ही मे आने पर जीव के जो सम्यक्त्व होता है उसको क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते है। इस प्रकार सम्यक्त्व के तीन भेद होते है। क्षायोपशमीक सम्यक्त्व को वेदक सम्यक्त्व कहते है कृत-कृत वेदक भी इसी का नाम है परन्तु इतना विशेष है कि जब क्षायक सम्यक्त्व करने को जीव सन्मुख होता है तब ही जीव के कृतकृत वेदक अंतर्मुहूर्त पहले केवली के पादमूल में होता है उसके पीछे क्षायक सम्यक्त्व नियम से होता है। आज्ञा सम्यक्त्व केवली भगवान के द्वारा जैसा कहा गया है वही सत्य है अन्यथा नही हो सकता। पदार्थ व द्रव्य की व्यवस्था भगवान के आगम मे जिस प्रकार से कही गई है वैसी ही है अन्यथा नहीं है ऐसा श्रद्धान होना सो आज्ञा सम्यक्त्व है।१। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनों की एकता होना तथा तीनो रूप एक आत्मा में परिणमन होना ही मोक्ष मार्ग है अन्यथा मोक्ष मार्ग नही। ऐसा श्रद्धान का होना सो मार्ग सम्यक्त्व है ॥२॥ अरहंत केवली व श्रुत केवली अगधर आचार्य उपाध्याय और मुनियो का उपदेश सुनकर आत्म रुचि या श्रद्धान का होना सो ही उपदेश सम्यक्त्व है। तथा तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव आदि महापुरुषो ने संयम धारण कर समाधि पूर्वक केवल ज्ञान प्राप्त किया थाऐ सा सुनकर सच्चे धर्म और धर्म के धारकों में रुचि का होना सो उपदेश सम्यक्त्व है। तथा नारक त्रियंच मनुष्य गति के दुःखों को श्रवण कर ससार को दुःखों का समुद्र जान कर जो तत्त्व पर श्रद्धान होता है उसको उपदेश सम्यक्त्व कहते है।३। मुनियो के आचार विचार के कथन करने वाले सूत्र को सुनकर आत्मा में जाग्रति का होना सो सूत्र सम्यक्त्व है।४। जिस पद में आगम सूत्र के एक अक्षर को पढ़ने या जाननें पर जो तत्त्वो का श्रद्धान होता है वह अथवा श्लोक का प्रथम अक्षर पढ़ने पर पूरे श्लोक का अर्थ समझ लेना यह बीजाक्षर है जिसके पढ़ने पर आत्मा की तत्त्वों में जो रुचि होती है अथवा श्रद्धान होता है वह वीज सम्यक्त्व है। बीज अक्षर को समझ कर सूक्ष्म पदार्थो के स्वरूप को जानने पर पदार्थो में जो श्रद्धान होता है वह बीज सम्यक्त्व है ॥५॥ सक्षेप से पदार्थो के स्वरूप का ज्ञान होने पर जो आत्मा में पदार्थो पर रुचि उत्पन्न होती है

उसको सक्षेप सम्यक्त्व कहते है ।।६।। जिसमें पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का विस्तार पूर्वक जानकर श्रद्धान का होना सो विस्तार सम्यक्त्व है ।।७।। ग्यारह अग चौदह पूर्व और अग वाह्य के द्वारा विस्तार पूर्वक सुन कर आत्म जागृति का होना व पदार्थों में श्रद्धान का होना विस्तार सम्यक्त्व है ।।८।। प्रवचन वचनो की सहायता के विना किसी अन्य प्रकार से पदार्थों का ज्ञान कर श्रद्धान की उत्पत्ति का होना उसको अर्थ सम्यक्त्व कहते है। अग पूर्व और प्रकीर्णक आगम के किसी एक देश का पूरी तरह से अवगाहन करने पर जो श्रद्धान होता है उसको अवगाढ सम्यक्त्व कहते है। अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान व केवलज्ञान से जीवादि सात तत्त्वो, छह द्रव्यो, नव पदार्थों, पचास्ति कायों को जानकर जो प्रगाढ पदार्थों में श्रद्धा की उत्पत्ति होती है वह परमावगाढ सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व के ये दश भेद वाह्य निमित्त को लेकर कहे गये है श्रद्धान और श्रद्धान करने वालों की अपेक्षा से सम्यक्त्व के वहुत अगणित भेद हो जाते हैं। दश भेद कहे गये है वे सब श्रुत ज्ञानाश्रित हैं अंत का परमावगाढ सम्यक्त्व केवली सयोगी अयोगी के होते है तथा सिद्ध भगवान के शाश्वत स्थित रहता है ।२९०।

मिथ्यात्वे मिथ्यात्वं सासादने सासादनं सम्यक्।
मिश्रे मिश्रमविरते संयतासंयते प्रमत्तेत्रि ।।२९१।।

मिथ्यात्व गुण स्थान मे एक मिथ्यात्व अतत्त्व श्रद्धान रूप मिथ्यात्व है सासादन गुण स्थान मे एक सासादन सम्यक्त्व है मिश्र गुण स्थान में एक मिश्र सम्यग्मिथ्यात्व है जब कोई भव्य अनादि मिथ्यादृष्टि व सादि मिथ्यादृष्टि जीव तीन करण लब्धियो को प्राप्त कर मिथ्यात्व के टुकड़े कर देता है और चरित्र मोह के भी भेद कर अनंतानुबधी कषायो को दबा देता है तब असंयत सम्यग्दृष्टि कहलाता है परन्तु अन्तर्मुहूर्त बीत जाने पर वह सम्यक्त्व रूपी रत्न चूलिका से गिरता है गिरने का कारण अनतानुबधी कोई एक कषाय का उदय होता है तब सासादन गुण स्थान होता है यह जीव जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त नही हुआ है उतने काल को सासादन कहते है जब दर्शन मोह का उदय आ जावेगा तब जीव मिथ्यात्वी कहलावेगा। जब उपशम सम्यक्त्व क्षयोपशम क्षायक ये तीनो सम्यक्त्व अव्रती देश व्रती सकल सयम के धारक प्रमत्त सयत और अप्रमत्त सयत के तीनो ही सम्यक्त्व होते है । परन्तु जो श्रेणी चढने को उद्यत है उनके क्षयोपशम सम्यक्त्व है वह या तो सम्यप्रकृति का क्षय करके श्रेणी चढ़ेगा या उस प्रकृति को दबाकर द्वितियोपशम प्राप्त कर उपशम श्रेणी चढेगा। स्वस्थान अप्रमत्त के तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं सातिसय के तो द्वितियोपशम और क्षायक सम्यक्त्व होता है।

विशेष—सासादन सम्यग्दृष्टि जीव चौथे या तीसरे गुण स्थान के पीछे होने वाले कषायो के उदय मे। यथा किसी भव्य जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त किया और अतर्मुहूर्त तक उपशम मे रहा पुनः अनंतानुबधी कषाय का उदय होने के कारण को पाकर सम्यक्त्व रूपी रत्नगिरि से गिर कर अभी मिथ्यात्व रूपी भूमिको प्राप्त नही हुआ है बीच की अवस्थाये है क्योकि अभी दर्शन मोह को मिथ्यात्व प्रकृति का उदय नही आया है जब तक

मिथ्यात्व का उदय नही आया है तब तक सासादन करता है सासादन के काल में जीव सम्यक्त्वी रहता है इस कारण इस गुण स्थान में पारिणामिक भाव भी होते हैं परन्तु इस गुण स्थान में चारित्र-मोह को अनन्तानुबंधी कोई एक अननानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ कषायों का उदय पाया जाता है जिससे औदायिक भाव भी आचार्य ने कहा है । जब जीव के मिथ्यात्व का उदय आ जायेगा तब जीव मिथ्या दृष्टि बन जायेगा । इस गुण स्थान का काल एक समय से लेकर छह आवली पर्यन्त है । एक आवली में भी असंख्यात समय होते हैं समय है वह काल का सबसे छोटा भाग है । अधिक से अधिक शासन करने वाला जीव छह आवली तक इस गुण स्थान में रह सकता है । पीछे नियम से मिथ्यात्व प्रकृति का उदय आ जायेगा जिससे जीव मिथ्यादृष्टि बन जायेगा । मिश्र गुण स्थान में जीव के परिणाम सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों परस्पर विरोधी मिले रहते हैं अथवा सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोनों से मिले हुए परिणाम होते हैं। जिस प्रकार दही और खांड मिला देने पर एक तीसरा ही स्वाद बन जाता है वह न खट्टा ही कहा जाता है न मीठा ही कहा जा सकता है । इसी प्रकार इस गुणस्थान वर्ती जीव को न सम्यग्दृष्टि कहा जा सकता है न मिथ्यादृष्टि ही कहा जा सकता है । इस गुणस्थान वाला जीव धर्म अधर्म देव अदेव तत्त्व अतत्त्वों की समान मान्यता करता है सबकी समान मान्यता पूजा वंदनादि क्रियायें करता है वह एक तरफ को नही झुकता है वह गगा गये गंगा दास जमना गये जमुनादास की कहावत के अनुसार ही उसके परिणाम होते है ।

इस गुण स्थान में जीव के आयुबध नही होता है न इस गुण स्थान में जीव का मरण ही होता है मरण यदि होगा तो मिथ्यत्व में या अविरत सम्यक्त्व में ही होगा । मिश्र गुणस्थान वर्ती के नही क्योंकि यह अन्त समय में या तो मिथ्यादृष्टि बन जायेगा या सम्यग्दृष्टि बन जायेगा ऐसा नियम आगम का है । चौथे गुण स्थान का नाम असयत सम्यग्दृष्टि है इस गुणस्थान वर्ती जीवों के उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों सम्यक्त्व होते है तथा निसर्गज और अधिगमज ये दोनों प्रकार से होते है । निश्चय सम्यक्त्व और व्यवहार सम्यक्त्व होता है सराग सम्यक्त्व व वीतराग सम्यक्त्व भी पाया जाता है जो दश सम्यक्त्व पहले कहे गये है उनमें से पहले के नो सम्यक्त्व अविरति सम्यग्दृष्टि जीव के पाये जाते है तथा संयता सयत प्रमन्त संयत गुण स्थान में इस प्रकार सकल सयम के धारक प्रमत्त संयत के ये तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते है । प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाले का काल कम है परन्तु सयमा संयम प्रमन्त संयम का काल विशेष होने के कारण प्रथमोशम सम्यक्त्व होता भी है नही भी होता है । इसका कारण बताते हुए आचार्य कहते है कि प्रथमोपशम की स्थिति अन्तर्मूहूर्त की है । यहाँ कोई पूछता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि के क्षायक सम्यक्त्व कैसे होता है ? असंयम जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्रकृति की सत्ता में से उदय में आ जाने पर काण्डक घात कर ऊपर नीचे निसेकों का क्षेपण करके क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है तथा केवली व श्रुत केवली के पाद मूल में जाकर व धर्म श्रवण कर भावों में उज्ज्वलता आती है जिससे उदय में आई हुई प्रकृति तथा दबी हुई प्रकृतियो को क्षय करता है इसलिए अविरत

सम्यग्दष्टि के क्षायक सम्यक्त्व होता है। इस प्रकार चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि के तीनो ही सम्यक्त्व होते है ॥ ३९१ ॥

अप्रमत्ते अयद्वि स्वस्थाने सातिशये प्रज्ञप्तम् ॥
अपूर्वकरणेऽपिद्वि चोपाशान्त मोहे सम्यक् ॥३९२ ॥

अप्रमन्त गुथ स्थान में दो भेद है प्रथम स्वस्थान दूसरा सातिसय। प्रथम स्वस्थान में तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते है। परन्तु सातिसय (सम्यग्दृष्टि) अप्रमत्त वाले जीवो के दो ही सम्यक्त्व होते है उपशम श्रेणी को चढने वाला जीव द्वितियोपश सम्यक्त्व व क्षायक सम्यक्त्व ये दो ही होते है क्योकि क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव के इतनी परिणामो की निर्मलता नही होती कि जिससे श्रेणी चढ सके। इस कारण क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्रकृति दबा देता है और द्वितियोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर श्रेणी से चढता है। अपूर्व करण अतिवृत्ति करण और सूक्ष्म सापराय इन तीनो गुणस्थानो में औपशमिक और क्षायक दोनों ही सम्यक्त्व होते है उपशम श्रेणी से चढने वाले जीवो के औपगमिक व क्षायक दोनों ही सम्यक्त्व होते है परन्तु क्षपक श्रेणी चढने वाले जीव के एक क्षायक ही सम्यक्त्व होता है। उपशात मोह मे भी दोनो सम्यक्त्व होते है परन्तु विशेप यह है कि उपशम श्रेणी चढ़ने वाले क्षायक सम्यग्दृष्टि व उपशम सम्यक्त्व वाले जीव उपसम श्रेणी से चढ़ने के काल में चारित्र मोह की अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान सज्वलन नव नो कषायो का उपशम कर चढते है जव उपशात मोह मे कोई सज्वलन कपाय लोभ का उदय आ जाता है तव उससे च्युत होता है क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव तो क्रम मे उतर कर छटवे गुण स्थान में आकर रुक जाता है परन्तु उपशम श्रेणी से चढने वाला गिरकर छठवें मे नही ठहरता है वह मिथ्यात्व मे भी पहुँच जाता है।

क्षीणमोहादित्रिषु क्षायकं सम्यक्त्वं च सिद्धानाम ॥
अभव्यानामेकं सास्वतं निवसति मिथ्यात्वम् ॥३९३॥

क्षीण मोह सयोगी और अयोगी इन तीनो गुणस्थानो में एक क्षायक सम्यक्त्व होता है तथा अनन्त सिद्ध भगवान के भी एक क्षायक सम्यक्त्व होता है। सम्यक्त्व के जितने भेद कहे गये है वे सव भव्य जीवो की अपेक्षा से कहे गये हैं अभव्य जीवो के एक मिथ्यात्व गुणस्थान विद्यमान रहता है उसका आदि अन्त नही है ॥ ३९३ ॥

आगे स्थिति करण अग में प्रसिद्ध वारिसेन मुनि की कथा

विहार प्रान्त में राजगृह नाम का नगर है उसमे राजा श्रेणिक राज्य करता था उसकी रानी का नाम चेलना था। महारानी चेलना की कुक्षि से वारिसेन नाम का पुत्र हुआ वह महा प्रतापी परक्रमी धैर्यवान था। एक दिन वारिसेन राजकुमार श्मसान भूमि मे चतुर्दशी की रात्रि को ध्यान करने को गया और प्रतिमायोग धारण कर स्थिति हुआ था कि एक चोर चोरी कर रत्न जड़ित हार लेकर राजमहल में से निकल रहा था कि कोतवाल ने उस चोर का पीछा किया तब वह चोर श्मसान भूमि की तरफ भागा और वारिसेन राजकुमार के सामने पास मे ही रत्नहार को डाल कर भाग गया और कही जाकर छिप गया। जब कोतवाल वहाँ पहुंचा और राजकुमार वारिसेन को खड़ा हुआ देखा और विचार

करने लगा कि राजकुमार ही चोरी करने लग गया तब फिर अन्य की तो बात ही क्या रह जाती है। यह विचार कर कोतवाल नें महाराज श्रेणिक को समाचार दिया कि राजकुमार ही रनिवास से चोरी कर ले गये हैं वे श्मशान भूमि में खडे हुए हैं। यह सुन कर राजा श्रेणिक नें कहा यदि राजकुमार वारिसेन ही चोरी करने लग गया तो ऐसे पापी राजकुमार के सिर धड से अलग-अलग कर दो अथवा मार डालो। यह सुनकर कोतवाल नें राजाज्ञा के अनुसार चाण्डालों को कहा कि वारिसेन राजकुमार को तलवार से मार डालो। राजाज्ञा से चाण्डालों नें श्मसान भूमि में जाकर ध्यानस्थ श्री वारिसेन राजकुमार जो प्रतिमायोग से खडे थे उनके ऊपर तलवार की धाराओं का प्रहार किया गया। तलवार की धारायें राजकुमार के शरीर पर एक चमत्कार रूपी छटायें दिखाई दे रही थी। यह सब समाचार कोतवाल नें राजा श्रेणिक को कह सुनाया। राजा स्वयं चल कर घटना स्थल पर आया और सब चमत्कार देखकर आश्चर्य में पड गया और विचार करनें लगा कि यह राजकुमार चोर नहीं है चोर कोई अन्य व्यक्ति हो सकता है। इतनें में प्रभात हो गया और चोर सामनें आ गया और बोला कि महाराज मैंनें चोरी की राजकुमार नें नहीं, चोरी करके मैं जब राजमहल से गुजर रहा था तब कोतवाल नें मुझे देख लिया और मेरा पीछा किए हुए दौडता चला आ रहा था तब मैंने अपना जीवन बचानें के लिए उस हार को राजकुमार वारिसेन को ध्यानस्थ खडे देखकर कुमार के पास हार डाल दिया और मैं आगे जाकर वृक्ष की छाया में छिप गया। इसके पश्चात् राजा श्रेणिक नें राजकुमार वारिसेन से क्षमा माँगी कि बेटा मेरी गलती को माफ करो और अपनें राजपाट को सम्हालो परन्तु राजकुमार वारिसेन ने प्रतिज्ञा की कि मै अब इस थाली में भोजन नहीं करूँगा अब भोजन में पाणि पात्र में ही करूँगा। सब परिवार व अपनी स्त्रियों से आज्ञा लेकर व माता-पिता से आज्ञा लेकर वारिसेन राजकुमार ने बन में विराजमान सुदत्ताचार्य के पास जाकर मुनि दीक्षा ले ली।

एक दिन वारिसेन मुनिराज अपनें पुराने मित्र पुष्पडाल के घर पर आहार करने के निमित्त गये तब पुष्पडाल ने महाराज को पड़गाहा और आहार दान दिया। आहार होने के पश्चात् वारिसेन महाराज को पहुंचाने के निमित्त पुष्पडाल कमण्डल हाथ मे लेकर मुनिराज के पीछे-पीछे जा रहा था और पुष्पडाल कहता जाता था कि महाराज यह वही क्षेत्र है जहाँ पर मैं और आप धान में पानी दिया करते थे पुनः कहने लगा कि यह वही खेत है कि जहाँ पर हम और तुम गाय खेदनें को आया करते थे। पुनः कुछ आगे चलकर कहने लगा कि महाराज यह वही बावड़ी है कि जिसमें हम और तुम स्नान किया करते थे। इतना कहने पर भी वारिसेन महाराज ने लक्ष्य नहीं दिया वे पीछे की ओर नहीं देखते हुए चलते ही रहे पुष्पडाल विचार करता था कि अब आज्ञा दे देवें तो मैं अपनें घर चला जाऊँ परन्तु वारिसेन महाराज ने आज्ञा नही दी वे अपनें गुरु के पास जाकर कहनें लगे कि महाराज यह संसार भोगों से विरक्त होकर जिन दीक्षा लेनें के लिए आया है सो इसको दीक्षा दे दीजिए इसको भी अपना शिष्य बना लीजिए। तब पुष्पडाल से महाराज ने पूछा कि तुमको जिन दीक्षा लेनी है क्या ? तब पुष्पडाल विचार करने लगा कि अब अपनें मित्र की बात

भी टाली नही जा सकती है यह सोचकर पुष्पडाल ने कहा कि हाँ महाराज जो वारिसेन महाराज ने कहा है-वह सत्य है मुझे दीक्षा दे दीजिए। यह सुनकर मुनिराज ने पुष्पडाल को मुनि दीक्षा दे दी। पुष्पडाल और वारिसेन अपने गुरु सुदत्ताचार्य के साथ रहने लगे और देश देशान्तर में तीर्थ क्षेत्रों की वंदना के निमित्त निकले और जगह-२ भ्रमण कर वारह वर्ष में राजगृही के पास जगल में लौटकर आए तव तक पुष्पडाल विचार करता रहा कि मेरी भामिनी कैसे रहती होगी कैसी उसकी व्यवस्था होगी क्या करती होगी मैं विना कहे ही निकल आया वह मेरे बिना मेरे वियोग में अपना समय कैसे वितातो होगी जहाँ पर मुनि सघ ठहरा हुआ था वहाँ से पुष्पडाल अपने ग्राम की तरफ जाने को सन्मुख हुआ था। तव वारिसेन महाराज ने देख लिया और वे कहने लगे कि अरे पुष्पडाल तैंने द्रव्य लिग को धारण कर वारह वर्ष उस गजदता एक नयनी के ध्यान में सारा समय खो दिया। चल अब राजगृह में वारिसेन और पुष्पडाल दोनो ही राजगृह नगरी में पहुँचे और राजमहल में रानी चेलना को समाचार दिया कि वारिसेन मुनि तथा पुष्पडाल मुनि राजमहल मे आ रहे है यहसुनकर महारानी चेलना ने विचार किया कि आज मेरा वेटा क्या पद से च्युत हो गया है जो कि राजमहल में आ रहा है उसने तुरन्त ही दो सिंहासन लगवाए जिसमें एक सुवर्णमयी था दूसरा लकड़ी का था। वारिसेन महाराज लकड़ी के सिहासन पर जा आरूढ हुए पुष्पडाल सोने के सिहासन पर आकर वैठ गये। माता ने उसी क्षण विचार किया कि मेरा वेटा स्थान पतित नही है। पुनः अपनी माता को पास में बुलाकर कहा कि हे माता तुम अपनी वत्तीश वहुओ को कहो कि वे सव अपने-अपने आभूषण और वस्त्र पहन शृगार कर आवें तथा पुष्पडाल की स्त्री को भी बुलाओ और कहो कि सव वस्त्राभूषण पहन कर आवे व शृगार कर शीघ्र ही आवे यह सुनकर चेलना रानी ने अपनी पुत्र वधुओ को आज्ञा दी कि सव वहुये अपना-अपना सव श्रंगार कर वहा चले जहा पर श्री वारिसेन महाराज व पुष्पडाल वैठे हुए है। सव रनिवास की रानिया सज धज के आ गई तथा पुष्पडाल की स्त्री भी आ गई तव वारिसेन महाराज वोले कि हे पुष्पडाल देख तेरी स्त्री जिसका तू वारह वर्ष से ध्यान कर रहा था देख जिनका मैंने त्याग किया है उनके पैर का धोवन भी तेरी स्त्री नही यदि है तो कह ? यह सुनकर पुष्पडाल की स्त्री कहने लगी कि इसमोह को धिक्कारहो। तबवारिसेन महाराज वोले की जिस प्रकार तू निरतर स्त्री का ध्यान करता रहा उसी प्रकार एक चित्त होकर संयम मे रत होता तो तेरे को ऋद्धि नही प्राप्त हो जाती। पुनः पुष्पडाल की स्त्री कहने लगी कि तुमने जैसा मेरा ध्यान किया वैसा ध्यान यदि आप अपने आत्म ध्यान व संयम में लगाते तो तुम्हारा कल्याण हो जाता (आह मोह की महिमा) आप सरीखा मोही और कौन होगा। इस प्रकार समझाने पर पुष्पडाल शीघ्र ही राजभवन से निकल कर घोर तपस्या करने लगा और तप के प्रभाव से ऋद्धि की प्राप्ति हुई इस प्रकार स्थितिकरण अंग में वारिसेन मुनिराज ने पुष्पडाल को चारित्र में दृढ़ किया।

स्थिति करण अंग में वारिसेन मुनि की कथा समाप्त

पंच स्थावराणां च विकवेन्द्रियासंज्ञि पचेन्द्रियाणां ॥
मिथ्यात्वं खलु नित्यं अपर्याप्तक तिर्यंश्चानां ॥३९४॥

पृथ्वीकायक जलकायक अग्निकायक वायुकायक वनस्पतिकायक जीवों के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में एक मिथ्यात्व ही रहता है। गुणस्थान प्रथम ही होता है दो-इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इंद्रिय असेनी पंचेन्द्रिय इनके पर्याप्त अपर्याप्त निवृत्ति पर्याप्तक तीनों अवस्थाओ में एक मिथ्यात्व कर्म का उदय रहता है व मिथ्यात्व गुणस्थान होता है इन जीवों के सम्यक्त्व उत्पत्ति का कारण पहले कह आये है कि पर्याप्तक संकलेन्द्रिय समनस्क साकार निराकार दोनों उपयोगों से युक्त जीवों के सम्यक्त्व की उत्पत्ति कह आये सेनी पचेन्द्रिय त्रियच जीव के पर्याप्त अवस्था में ही प्रथमोपसमसम्यक्त्व उत्पन्न होता है ॥ ३९४ ॥

पंचेन्द्रियाणांतयः सम्यक्त्वं च भवति मिथ्यात्वं।
इन्द्रिय व्याघारात् व्यपगतानां खलु क्षयकम् ॥३९५॥

सैनी चारोंगति वाले पंचेन्द्रिय जीवों के मिथ्यात्व तथा उपशम सम्यक्त्व क्षयोपशम सम्यक्त्व व क्षायक सम्यक्त्व है। विशेष यह है कि पंचेन्द्रिय जीवों के प्रथमोपशम सम्यक्त्व पर्याप्त अवस्था में ही होता है अपर्याप्त अवस्था में उत्पन्न नहीं होता है।

परन्तु क्षायक या क्षयोपशमिक सम्यक्त्व जीवों के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों ही दशाये होती है परन्तु द्रव्य स्त्रियों के पर्याप्त अवस्थाये उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है क्षायक सम्यक्त्व नही होता है। इन्द्रिय व्यापार से रहित जीवों के एक क्षायक सम्यक्त्व ही होता है क्योकि सयोगी और अयोगी केवली और सिद्धपरमात्मा के एक क्षायक ही सम्यक्त्व होता है ॥ ३९५ ॥

देव नारकयोश्चतुः पंचेन्द्रितत्रियश्चां पंचैव ॥
मनुष्याणां चतुर्दशं गुणास्थानं खलु निर्दिष्टम् ॥३९६॥

देव तथा नारकी गति वाले जीवों में प्रथम के चार गुण स्थान होते है सैनी सकलेन्द्रिय त्रियंच जीवों के देश संयत नाम के पांचवे गुण स्थान तक होते है मनुष्यों के मिथ्यात्व से लेकर अयोग केवली पर्याप्त सब गुणस्थान होते है। देवियों के चार गुण स्थान व तिर्यंचिनियों के पांच गुण स्थान तथा द्रव्य स्त्री मनुष्यनियों के पहले से लेकर पांचवे संयमासयम गुणस्थान होते है। तथा भाव स्त्रीवेदी जीवों के अनिवृत्त करण तक नौ गुण स्थान होते है। तथा भोगभूमिया मनुष्य व त्रियचों व त्रियचिनियों के पहले से लेकर अविरत संयम तक चार गुण स्थान होते है। सम्यक्त्व सहित मनुष्यो के चौदह गुण स्थान होते हैं मिथ्यात्व सहितों के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है।

इस श्लोक में यह स्पष्ट करा दिया गया है कि सम्यक्त्व को प्राप्त त्रियचिनी भी संयमासयम को प्राप्त स्त्री पांचवे गुण स्थान को प्राप्त होती है यह सब महिमा सम्यक्त्व की है। सम्यग्दृष्टि जीव ही सकल निकल परमात्म पद को प्राप्त होते है। ३९६॥

स्थावरेषु मिथ्यात्व त्रशकाये त्रयोदश गुणस्थानम् ॥
द्रव्यवेदे त्रयोदश भाववेदेच नव स्थानम् ॥ ३९७॥

पाच प्रकार के स्थावरो मे एक मिथ्यात्व ही गुण स्थान पाया जाता है त्रशकायकों मे तेरह गुण स्थान होते हैं। मिथ्यात्व से लेकर सयोग केवली पर्यन्त तेरह गुण स्थान होते हैं। तथा द्रव्य वेद पुरुष वेद मे तेरह गुण स्थान होते है भाववेद से मिथ्यात्व से लेकर व्ययगत वेद अनिवृत्ति करण के भाग तक जो गुण स्थान होते है यथा पुरुष वेद वाले मिथ्यात्व से लेकर अनिवृत्त करण तक के गुणस्थान होते हैं। द्रव्यस्त्री वेद वाली के मिथ्यात्व से लेकर सपता सपत तक पाच गुण स्थान होते है। नपुंसक द्रव्यवेद वाले के चार गुण स्थान होते है। उदय की उपेक्षा वेद मिथ्यात्व से लेकर नोवे गुण स्थान पर्यन्त होते है। ३९७।

त्रियोगेषु त्रिविध च सन्ति त्रयोदश स्थानान्यैव।
त्रिवेदेषु नवव्यपगत वेदेषु पच विख्यात च ॥ ३९८ ॥

मन वचन काय तीनो योगो मे मिथ्यात्व से लेकर सयोग केवली पर्यन्त तेरह गुण स्थान होते है पहले गुण स्थान मे एक मिथ्यात्व ही होता है दूसरे में सासादन तीसरे गुण स्थान मे मिश्र सम्यक्त्व होता है चौथे से लेकर सातवे गुण स्थान तक तीनो सम्यक्त्व होते है आठवे से ग्यारहवें गुण स्थान तक के जीवो के द्वितीयोपशम और क्षायक दो सम्यक्त्व होते है। तथा क्षीण मोह सयोगी अयोग केवली के एक क्षायक सम्यक्त्व होता है तथा सिद्ध भगवान के भी क्षायक सम्यक्त्व होता है।

विशेष यह है कि सत्य मनोयोग और सत्य वचन योग वाले जीवो के तीनो ही सम्यक्त्व होते है। यथा असत्य मन वचन योगियो के तीनो सम्यक्त्व होते है। यथा औदारिक काययोग में मिथ्यात्व से लेकर सयोग केवली गुण स्थान तक सब होते है तथा तीनो सम्यक्त्व होते हैं तथा छहो भी होते है। औदारिक मिश्र मे गुण स्थान पहला दूसरा चौथा तथा सयोग केवली ये चार गुण स्थान तथा सम्यक्त्व क्षयोपशम और क्षायक दो ही होते है। क्योकि मिश्र अवस्था में उपशम सम्यक्त्व नही होता है वहा पर अपर्याप्त अवस्था विशेष है। उपशम सम्यक्त्व पर्याप्त अवस्था में ही होता है। वैक्रियक काय योग में तीनो ही सम्यक्त्व तथा छहो सम्यक्त्व गुण स्थान पहला दूसरा तीसरा चौथा ये चार होते है उपशम क्षयोपशम क्षायक मिश्र सासादन और मिथ्यात्व सब होते हैं। वैक्रियक मिश्र में गुण स्थान तीन होते है। मिथ्यात्व सासादन और असयत ये गुण स्थान होते है तथा सम्यक्त्व तीनों ही होते है। विशेष यह है कि वैक्रियक मिश्र मे उपशम सम्यक्त्व भी पाया जाता है उसका कारण यह है कि कोई उपशम श्रेणी में चढ़ा और बीच में ही मरण को प्राप्त हुआ। उपशम श्रेणी का काल अन्तर्मुहूर्त का है परन्तु उस जीव ने एक समय मे ही देवगति को प्राप्त कर लिया जिससे मिश्र अवस्था मे देवों के अपर्याप्त अवस्था में उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है। आहारक का एक प्रमत्त ही गुण स्थान है इसमे क्षायक तथा क्षयोशमोपशमिक ये दो सम्यक्त्व पाये जाते है। तथा आहारक मिश्र मे भी जानना चाहिये। कार्माण योग मे पहला दूसरा तथा चौथा और सयोग केवली ये चार गुण स्थान होते हैं। तथा उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनो मे ही सम्यक्त्व होते हैं।

कार्माण योग में मिश्र गुण स्थान नहीं होता है क्योंकि मरण का अभाव है नवीन कर्मो का बन्ध ही होता है न आयु का वन्ध हो होता है। भाववेद में गुण स्थान अनिवृत्त करण तक नौ होते है उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों ही सम्यक्त्व होते है इसी प्रकार स्त्री वेद पुरुष वेद नपु सक वेदो में जानना चाहिये। वेद रहित सूक्ष्म सांपराय से लेकर अयोग केवली गुण स्थान जानना अपगत वंद वाले जीवो के उपशम तथा क्षायक सम्यक्त्व होते है। ३९८।

कषायेषु त्रिसम्यक नव स्थाने दशैव सूक्ष्मलोभः
शेषः स्थानमकषायं त्रियज्ञाने मिथ्यात्वमेव ॥ ३९९ ॥

सज्वलन नों कषायों के उदय में सांपराय नामक नोवां गुणस्थान होता है परन्तु लोभ कषाण में दश गुण स्थान होते है आगे के गुण स्थानों में कषायें व नो कषाये नहीं रह जाती। विशेष यह है कि अन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, इनका उदय (चौथे गुण स्थान तक पाया जाता है) मिथ्यात्व और सासादन दो गुणस्थान पाये जाते है तथा एक मिथ्यात्व रहता है सासादनों सम्यक्त्व एक रहता है अप्रत्याख्यान के उदय में मिश्र तथा असंयत ऐसा चौथा गुण स्थान होता है प्रत्याख्यान के उदय मे सयमासयम होता है। असंयभ गुण स्थान में उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनो सम्यक्त्व होता है इसी प्रकार आगे के पच में गुण स्थान में सम्यक्त्व तीनो होते है सज्वलन क्रोध, मान माया, लोभ इनके उदय में छठवे से लेकर नोवें गुण स्थान तक होते हैं छठवे मे तीनों सम्यक्त्व तथा [सातवें अपूर्व करण में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व तथा क्षायक सम्यक्त्व तथा नोवे में भी वे ही होते है दशवां गुण स्थान लोभ कषाय के उदय में होता है इसमें भी क्षायक और औपशमिक सम्यक्त्व होते है तथा आगे के गुणस्थान कषाय रहित है। मिथ्यात्व के साथ होने वाले कुमति कुश्रुति विभगावधि ज्ञान ये तीनो मिथ्या ज्ञान हैं एक मिथ्यात्व नामक प्रथम गुण स्थान मे ही होता है। तथा सासादन में भी पाया जाता है। ३९९

मतिश्रुतावधिश्च तनःपर्ययेषु त्रियसम्यक्त्वमेव ॥
चबुधन्ते क्षीणमोह केवले क्षायकं सम्यक्त्वम् ॥ ४०० ॥

मति ज्ञान श्रुत ज्ञान अवधिज्ञान क्रमशः चौथे गुण स्थानसे लेकर बारहवे गुण स्थान क्षीण मोह तक होते है। विशेष यह है कि मति श्रुत अवधि ज्ञान चौथे से उत्पन्न होते है और क्षीण मोह तक रहते है इनमे तीनो ही सम्यक्त्व पाये जाते है परन्तु मनःपर्यय छठवे गुण स्थान में विशेष चारित्र व ऋद्धि के धारक मुनि . होता है और क्षीण मोह गुणस्थान तक योगियों के ही होता है अन्य के नही। चौथे से लेकर सातवे गुणस्थान तक तीनो सम्यक्त्व होते है सातवे से लेकर क्षीण मोह तक दो ही सम्यक्त्व होते है उपशम या क्षायक परन्तु क्षीण मोह मे एक क्षायक सम्यक्त्व ही होता है सयोग केवली अयोग केवली गुण स्थान मे एक केवल ज्ञान और क्षायक सम्यक्त्व होता है मनःपर्यय ज्ञान मिथ्यात्व सासादन मिश्र असयत संयतासंयत इन गुणस्थानो मे नही उत्पन्न होता है वह तो प्रमत्त नाम के छठवें व अप्रमत्त नाम के सातवे गुण स्थान वाले मुनियो के उत्पन्न होता है और बारहवें गुण स्थान क्षीण मोह तक वाले जीवों के पाया जाता है जिसमें ऋजुमति वाले जीवों के तो तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते है परन्तु

विपुल मती के क्षायक एक ही सम्यक्त्व पाया जाता है। यह क्षायक सम्यग्दृष्टि के होकर केवल ज्ञान होने तक जीव के साथ बना रहता है परन्तु ऋजुमती मन.पर्यय ज्ञान उपशम सम्यक्त्व क्षयोपसम सम्यक्त्व द्वितीयोपशम क्षायक सम्यक्त्व वालो के होता है जिससे सम्यक्त्व के नाश होने के साथ ही ऋजुमती ज्ञान का भी नाश हो जाता है। उपशम श्रेणी चढ़ने वाले द्वितीयोपशम करने जीव के जो ऋजुमती ज्ञान होता है वह ग्यारहवे गुण स्थान में पहुंच कर सम्यक्त्व व चारित्र से भ्रष्ट होता है तब वह ज्ञान भी भ्रष्ट हो जाता है। केवल ज्ञान में दो गुणस्थान होते हैं सयोग केवली अयोग केवली तथा सिद्ध भगवान के गुण स्थान तीन होते है। उनके एक क्षायक सम्यक्त्व ही सास्वत विराजमान रहता है।

प्रमत्ताद्यानिवृत्ते च सामायकं प्रमत्ताप्रमत्ते च
परिहार विशुद्धिश्च क्षेदोपस्थाने त्रिद्विच ।४०१॥

प्रमत्त गुण स्थान से लेकर अनिवृत्ति करण पर्यन्त चार गुण स्थानो में सामायिक चारित्र होता है परिहार विशुद्धि चारित्र प्रमत्त और अप्रमत्त दो गुण स्थानों में होता है तथा क्षेदोपस्थापन चारित्र भी प्रमत्त और अप्रमत्त अपूर्वकरण अनिवृत्तकरण गुणस्थानो मे होता है। सामायिक चारित्र मे तीनो सम्यक्त्व होते है परिहार विशुद्धि वाले जीव के क्षयोपशम या क्षायक दो ही सम्यक्त्व होते है तथा क्षेदोपस्थापन चारित्र मे उपशम क्षयोपशम और क्षायक तीनो सम्यक्त्व पाये जाते है तथा आठवे नौवे गुणस्थान की अपेक्षा उपशम और क्षायक दो सम्यक्त्व पाये जाते है।४०१।

सूक्ष्मसांपराये वा यथाख्याते द्विसम्यक्त्व नित्यम्॥
सयमासयमेकं गुणस्थाने त्रय सम्यक्त्वं॥ ४०२॥

सूक्ष्मसापरायगुणस्थान मे एक सूक्ष्म सापराय चारित्र है तथा उपशम और क्षायक दो सम्यक्त्व होते हैं यथाख्यात चारित्र मे दो सम्यक्त्व होते है एक उपशमसम्यक्त्व व क्षायक सम्यक्त्व होते है यथाख्यात चारित्र मे चार गुण स्थान होते है। उपशात मोह वाले जीवो के क्षायक सम्यक्त्व तथा उपशम सम्यक्त्व ये दोनो है परन्तु क्षीण मोहादि मे एक क्षायिक सम्यक्त्व होता है सयतासयत सयतो मे एक गुणस्थान है इस गुणस्थान मे तीनो ही सम्यक्त्व होते है परन्तु सयतासयत का काल बहुत होता है इसलिये वेदक व क्षायक दोनो सम्यक्त्व होते है।४०२।

मिथ्यात्वादीनि त्रयोवर्ज्य चक्ष्वचक्ष्ववधिदर्शने॥
प्रागसंयतस्थानै क्षीणमोहान्त नव सम्यक्त्रि॥ ४०३॥

आगे के मिथ्यात्व सासादन मिश्र इनको छोड़कर शेष नो गुणस्थानों में चक्षुदर्शन अचक्षु दर्शन अवधिदर्शन होते है इन तीनों दर्शनो मे उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनो ही सम्यक्त्व होते हैं। चौथे से लेकर सातवे में गुणस्थान पर्यन्त प्रथमोपशम सातवें से द्वितियोपशम सम्यक्त्व ग्यारहवे गुणस्थान तक होता है तथा चौथे से लेकर सातवे तक वेदक सम्यक्त्व है तथा क्षायक सम्यक्त्व चोथेगुणस्थान से लेकर बारहवे क्षीणमोह तक जीवों के होता है।४०३।

स अयोग केवलयो दर्शनमेकं क्षायकं सम्यक्त्वं॥
कृष्णनीलकापोते स्थानं चतुवयःसम्यक्त्वं॥ ४०४॥

सयोग केवली और अयोग केवली जीवों के एक केवल दर्शन और क्षायक सम्यक्त्व अवगाढ़ रूप होता है यथा सिद्धभगवान के भी ये दोनों ही रहते है। कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले जीवों के पहले गुणस्थान से लेकर चौथे गुणस्थान तक होते है। इन तीनों लेश्या वालों के मिथ्यात्व के उदय में मिथ्यात्व कषाय के उदय में सासादन तथा मिश्र मोह के उदय में मिश्र सम्यक्त्व होते है। परन्तु असयत गुणस्थान की अपेक्षा से इन तीनों लेश्याओं में तीनों ही सम्यक्त्व होते है क्योंकि तीनो लेश्याये भव्य और अभव्य दोनों के पाई जाती है। ४०४।

अप्रमत्तान्तानि पीत पद्मेच शुक्ले त्रयोनशस्थानं।
सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे लेश्या वज्ययपोनिनश्च ॥ ४०५।

प्रथम पीतलेश्या और पद्मलेश्या मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त वाले तक जीवों के निरन्तर रहा करती है आगे के गुण स्थानो में नही इन लेश्यावाले जीवो के छहों सम्यक्त्वादि होते है छहो का कहने का तात्पर्य यह है आगे गुण स्थान अपने-अपने भावानुसार होते है परन्तु चौथे से सातवे तक के जीवों के तीनों सम्यक्त्व पाये जाते है। आगे शुक्ललेश्या वाले जीवों के गुणस्थान तेरह होते है मिथ्यात्व, सासादन, सम्यक्त्व मिश्र, सम्यक्त्व उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते है। असयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्त गुण स्थान पर्यन्त तीनों ही सम्यक्त्व होते है अपूर्वकरण में द्वितीयोपशम और क्षायक दो सम्यक्त्व होते है वे दोनों सम्यक्त्व उपशांत मोह गुण स्थान तक रहते है आगे क्षीणमोह सयोग केवली गुण स्थान में एक क्षायक सम्यक्त्व रहता है तथा अयोग केवली के लेश्या नही होती है सिद्ध भगवान के अलेश्या एक क्षायक सम्यक्त्व ही होता है। ४०५।

भव्येसर्वस्थान सकलं सम्यक्त्वादि भवन्ति सदा।
अभव्येमिथ्यात्वमेव न सम्यक्त्व कदालभ्यते ॥ ४०६ ॥

भव्यजीवो में चौदह गुणस्थान होते है। मिथ्यात्व से लेकर अयोगी पर्यन्त चौदह गुणस्थान होते है और अभव्य जीवों के एक मिथ्यात्व गुणस्थान और एक मिथ्यात्व ही रहता है। भव्य जीवों के मिथ्यात्व सासादन मिश्र असयतादि गुणस्थानों में प्रथम में मिथ्यात्व दूसरे में सासादन तीसरे मे मिश्र चौथे में उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों सम्यक्त्व होते है। परन्तु अभव्य जीव के एक मिथ्यात्व ही सास्वत रहता है उसके अनेक वार संयोग मिलने पर भी सम्यक्त्व को प्राप्त नही होता है। जैसे मोठ के अन्दर में छोड़ कर उसको कितनी ही उबाल दी जावे तो भी नही सीझता है। ४०६।

सम्यक्त्रयेषुयथास्थानं चतु एकादशायोग्यन्नं ॥
त्रिद्विचैकं च नित्य सासादनादीनि स्वस्थानंम् ॥ ४०७।

उपशम क्षयोपशम क्षायक इन तीनों सम्यक्त्वों में चौथे गुण स्थान से लेकर अप्रमत्त तक चार गुण स्थान होते है। द्वितीय उपशम सम्यक्त्व में पाँच गुणस्थान होते है अप्रमत्त से लेकर उपशान्त मोह पर्यन्त होते है। क्षयोपशम सम्यक्त्व में चार गुण स्थान होते है क्षायक सम्यक्त्व में ग्यारह गुण स्थान होते है असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर चौदहवे अयोग केवली गुण स्थान तक होते है। मिथ्यात्व का एक मिथ्यात्व गुण स्थान है सासादन सम्यक्त्व

का सासादन गुणस्थान है मिश्र सम्यक्त्व का एक मिश्रनामका तीसरा गुण स्थान होता है। तथा गुण स्थानातीत सिद्ध भगवान के एक क्षायक सम्यक्त्व होता है ऐसा सकार से सूचित होता है। प्रथम यकार का यह भी प्रतीति होती है कि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चौथे गुण स्थान से लेकर ग्यारहवे गुण स्थान तक के जीवों के पाया जाता है। ४०७ ॥

क्षीणमोहादीनिखलु स्थानं सम्यक्त्व त्रयानि सञ्ज्ञिनां ॥
मिथ्यात्वमेकं स्थानं असञ्ज्ञिनां खलुप्रणीत ॥ ४०८॥

समनस्क पचेन्द्रिय जीवो के सामान्य से मिथ्यात्व से लेकर क्षीणमोह नाम के बारहवें गुण स्थान तक होते है परन्तु पचस्थावर व दो तीन कर असैनी पचेन्द्रिय जीवो के नियम से एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। तथा उनके तीव्र दर्शन मोह का उदय बना ही रहता है। तथा सैनी जीव के मिथ्यात्व सासादन मिश्र तथा उपशम क्षयोपशम और क्षायक ये सब होते हैं सैनी व असैनी भाव से रहित जीवो के एक क्षायक सम्यक्त्व ही पाया जाता है। ४०८।

आहारकाणामैव सयोगान्तस्थानं सर्वसम्यक् ॥
अनहारकानां मिश्र न त्रयं च सयोग न प्राक् ॥४०९॥

आहारक अवस्था मे जीवो के प्रथम गुणस्थान मिथ्यात्व से लेकर तेरहवें तक तेरह गुणस्थान होते है। तथा मिथ्यात्व सासादन सम्यक्त्व मिश्र सम्यक्त्व तथा उपशम क्षयोपशम और क्षायक ये सब होते है परन्तु अनाहारकावस्था मे एक मिश्र को छोड़कर मिथ्यात्व सासादन असयत तथा केवली इन चार गुणस्थानो मे अनाहारक अवस्था विशेष पायी जाती है। अनाहारक जीव विग्रह गति मे होते है क्योकि मरण मिथ्यात्व सासादन और अविरति इन गुणस्थानों में ही नियम से होता है मिश्र गुणस्थान में जीवो का मरण नही होता है। अरहत केवली के जब समुद्घात होता है तब दण्ड कपाट लोक प्रतर और लोक पूर्ण करता है तब जीव अनाहारक होता है अनाहारक अवस्था मे मिथ्यात्व सासादन सम्यक्त्व तथा द्वितीयोपशम क्षयोपशम व क्षायक सम्यक्त्व होते हैं। प्राक् के पहले न दिया है उससे यह सूचित होता है कि पहले के मिश्र को छोडकर तथा तेरहवे गुणस्थान के पहले देश संयत से लेकर क्षीण मोह तक के जीव अनाहारक नही है ।४०९।

सम्यग्लिंगप्रधानं समृद्धिर्ज्ञान चरित्रयोर्नित्यम् ॥
स एव प्रथमलिंगं न द्रव्यलिगात् मुक्तिश्च ॥४१०॥

सब लिंगो मे भाव लिग प्रधान है भाव लिंग के बिना द्रव्य लिंग प्रधान नही है जब भाव लिंग होता है तभी ज्ञान भी समीचीन होता है और वृद्धि को प्राप्त होता है। जिससे चरित्र की वृद्धि और कर्मो का क्षय व स्वर्ग और मोक्ष जीव को प्राप्त होता है। मात्र द्रव्य शरीर से विरक्त होने रूप नग्न दिगम्बर हो गया व श्रावक के व्रत नियम धारण किये अथवा श्रावक पद को छोड़कर मुनि व्रत को धारण किया तथा सब बाह्य परिग्रह घर खेती स्त्री पुत्र इत्यादि का त्याग कर नग्न हो गया वस्त्र भी त्याग दिये परन्तु अन्तरग मे मिथ्यात्व मोह व कषाये विद्यमान है उनका तो त्यागनही किया तब भाव कैसे हुआ बिना सम्यक्त्व के मोक्ष नही हो सकता है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और चरित्र मोक्ष के कारण नही होते परन्तु ससार के ही

होते है। सब लिंगों में प्रधान लिंग सम्यक्त्व भाव है सम्यक्त्व भाव हो प्रथम लिंग है। जब जिस रूप में अपने भाव परिणमन होगे उसी प्रकार शुभ अशुभ कर्मो के व शुभ अशुभ गति का आस्रव बध होता है। आर्त ध्यान व रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान ये सब अपने भावो के ही आश्रित है जीव के भाव विभाव रूप हो चेतन, अचेतन द्रव्यों का जैसा सयोग मिलता है वैसा ही जीव का भाव भी परिणमन होता है वह भाव ही कुभाव है और नरक गति, त्रियंच गति का आस्रव और बंध का कारण होता है। जब अपना भाव शुभ रूप से परिणमन करता है तब देव आयु, देव गति का आस्रव बंधक होता है तथा धर्म ध्यान रूप भाव होता है। जब आर्तध्यान व रौद्रध्यान अपने भाव होते है उन भावों से युक्त अपने ही सक्लिष्ट परिणाम होते है वे अपने ही भाव ससार के भ्रमण व दुःख रूप से अपने अनुभव में आते है पर संयोग सम्बन्ध होने वाले भावो को छोड़ देना चाहिए। तथा विभावों का त्याग कर इन्द्रियजनित विषय भोगों को भी पर निमित्तक सयोग रूप जानकर उनमें आशक्ति का त्याग को जानकर उनसे उन्मुख होता है तब अपना परिणाम ही धर्म ध्यान रूप होता है जिससे कल्पवासी या कल्पातीत देव गति आयु का बन्ध करता है। जब अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व क्रोध मान, माया, लोभ नव नो कषाये इन परिग्रहों का त्याग करके संसार शरीर और भोगों से विरक्त परिणाम होता है तब जीव के सम्यक्त्व भाव व संयम होता है और द्रव्यलिग शरीर, मन, वचन, पंचेन्द्रिय के विषय व्यापार से रहित होता है तब निज द्रव्य काल क्षेत्र भव और भाव में परिणयन करता है तब वह भाव ही सम्यक्त्व, ज्ञान, चरित्र होता हुआ समृद्धि को प्राप्त होता है जब विभावो से उन्मुखपना होवे तब स्वभाव में प्रवृत्ति हो तब जीव की मुक्ति की प्राप्ति हो इसलिए सब में अपना सम्यक्त्व रूप जो भाव है वही भाव प्रधान है वही श्रेष्ठ लिग है भाव सम्यक्त्व के बिना द्रव्य लिग का धारण करना सो साधु व श्रावक को मुक्ति का दाता नही मुक्ति का कारण तो भाव सहित द्रव्य लिंग का धारण करना ही है एक-एक से मुक्ति की प्राप्ति नही।

गुण जो स्वर्ग मोक्ष का होना और दोष जो नरक त्रियंच गति का होना। इनका होना ही भगवान ने अपने परिणामो को ही कहा है क्योंकि जैसा कारण होता है तदरूप कार्य होता है क्योंकि कार्य के पहले कारण होता है। यहां पर मुनि तथा श्रावक के प्रथम में सम्यक्त्व का होना ही प्रधान भाव लिंग है इस जगत में जीवादि छह द्रव्ये है उनमें से जीव तथा पुद्गल परिणमन शील है इन दोनो में स्वभाव परिणमन तथा विभाव परिणमन करते हुए दिखाई देते है जीव का स्वभाव परिणमन ज्ञान दर्शन में होता है तथा चित् स्वभाव है तथा पुद्गल में रूप, रस, गध, स्पर्श ये स्वभाव है गुण है इनको छोड़कर अन्य रूप से रूपान्तर गंध से गधान्तर रस से रसान्तर स्पर्श से स्पर्शान्तर होना सो स्वभाव परिणमन है यह पुद्गल द्रव्य अचेतन है अचेतन का अचेतन मे ही परिणमन होता है चेतन में नही। चेतन का चेतन में ही परिणमन होता है अचेतन मे नही। ज्ञान का परिणमन ज्ञान में ही होता है दर्शन का परिणमन दर्शन में ही होता है। परमाणु से द्विअणुक स्कन्ध होना सख्यात असंख्यात पुद्गल का एकत्र हो पिण्ड बन जाना सो ही विभाव भाव है। जीव का विभाव भाव रंग, द्वेष, मोह

रूप से परिणमन होना सो विभाव भाव हैं तथा ज्ञानावरण कर्म के क्षपोपशम से जो भाव होते हैं वे भी विभाव स्वभाव है।

जिन पुद्गल द्रव्यो का निमित्त पाकर जीव के जो राग, द्वेष, मोह, माया, ईर्षा मत्सर क्रोध, मान, माया, लोभ तथा स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, करण, इन्द्रिय के विषयो में प्रवृत्ति का होना तथा मिथ्यात्व, अज्ञान, असयम, मन, वचन, काय के योग मे सुख दु:ख रूप परिणमन होना पर को अपना मानना तथा शरीर को अपना स्वभाव मान राग और द्वेष रूप परिणामो का होना ही जीव का विभाव भाव है। अथवा शरीर के विनाश व उत्पत्ति भी विभाव हैं नरक, देव, त्रियच, मनुष्य ये गतियाँ भी स्वभाव नही ये भी परसंयोगी भाव ही हैं। इसलिए जीव को उपदेश है कि स्वभाव भाव रहना नैमित्तिक भाव रूप न प्रर्वतने का है। जीव के पुद्गल द्रव्य कर्म के संयोग से व नौकर्म का सम्बन्ध है इन बाह्य शरीरादिक को द्रव्य कहते है अपने भाव के अनुसार ही द्रव्य कर्मो की प्रवृत्ति होती है। द्रव्य कर्म ज्ञानावरण दर्शनावरणादिक हैं इस प्रकार द्रव्य की प्रवृत्ति होती है। इन द्रव्य और भाव का स्वरूप जानकर स्वभाव के परिणमन करने का उपदेश है विभाव भावो में परिणमन करना योग्य नही। जब विभावों को हेय जान स्वभाव को उपादेय जान प्रवृत्तें तब स्वभाव रूप परमानन्द सुख की प्राप्ति होवे। पहले कहे गये राग, द्वेष सब ही विभाव है पर द्रव्य के सगोग से प्राप्त है और ससार वृद्धि के कारण है।

ग्रन्थकार कहते है कि यदि अपने आत्मा को शुद्ध भावयुक्त करना चाहते हो तो अपने विभावो का हमें त्यागकर अपने आत्मा के साथ वात्सल्य भाव को धारण करना चाहिये। क्योकि जीव आप अपने स्वभाव से वात्सल्य न कर पर भावो से वात्सल्य करता हुआ अनादि काल से चला आ रहा है इसीलिए इसके कुभाव भाव हो रहे है। जब कर्म कर्मफल रूप विभाव है वे पर संयोगी कर्मो के विपाक से होने वाले भावो का त्याग करे तब कार्य बने, मोक्ष सुख की प्राप्ति हो, जीवो को कर्म सुख दु.ख देनें मे कुछ भी कारण नही, परन्तु कर्मो का विपाक काल का निमित्त मिलने पर जीव अपने भावो से अपने को सुखी व दु खी अनुभव करता है। जब कि स्वभाव तो ज्ञान दर्शन है रस, गधादि पुद्गल के स्वभाव गुण है तथा स्कन्धदि विभाव है। उनमे जीव का हित अहित भाव प्रधान है बाह्य द्रव्य निमित्त मात्र है बिना उपादान के यह निमित्त कुछ भी कार्यकारी नही है। यह तो सामान्य रूप से स्वभाव का स्वरूप है। इसी का विशेप सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र तो जीव का स्वभाव है इनमे भी सम्यग्दर्शन भाव है क्योकि सम्यक्त्व के बिना बाह्य क्रिया व ज्ञान सब ही मिथ्या है क्योकि भाव के विना क्रिया फल देने मे समर्थ नही होती है वह ज्ञान क्रिया ही सब ससार वृद्धि के साधन होगी ऐसा जानना चाहिये।

आगे वात्सल्य अंग में प्रधान श्री विष्णुकुमार मुनि की कथा

अवन्ती देश मे विशाला नाम की एक विशाल नगरी थी उसमें जयवर्वन नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा के दरवार मे चार मन्त्री थे उनका नाम शुक्र, वृहस्पति प्रहलाद और वलि था ये मन्त्री व्राह्मण थे। शुक्र वौद्ध दर्शन का एक उच्च विद्वान था, वृह-

स्पति चार्वाक दर्शन का पारगामी था, प्रह्लाद शिव मत में प्रधान था तथा बलि वेदों में पारांगत था। एक दिन सर्व श्रुत पारागत अकपनाचार्य अपने ७०० सौ मुनि सघ सहित विशाला नगरी के सर्व जनानन्दन नाम के उद्यान में आकर ठहरे हुए थे। नगरवासी श्रावको को मुनि सघ का समाचार प्राप्त हुआ और सब श्रावक मुनि सघ की पूजा व दर्शन करने के लिए उद्यान की तरफ जा रहे थे। जो राज मार्ग व राज महल के निकट में ही था। राजा का राजमहल बहुत ऊँचा गगनचुम्बी महल के ऊपर से सब श्रावको को जाते हुए देख कर विचार करने लगा कि असमय में श्रावक लोग पूजा की वस्तुये लेकर उद्यान की तरफ क्यों जा रहे है।

कुछ ही अर्सा बीता था कि छहों ऋतुओ के फल फूल लेकर माली आया और राजा को प्रणाम कर पुष्प फल भेट किये और शुभ सूचना दी कि उद्यान मे श्री परम पूज्य अकम्पना चार्य महाराज सात सौ मुनि सघ सहित पधारे है। उनके प्रभाव से छहो ऋतुओं के फल फूल आने लगे है वे सब जीवों को आनन्द देने वाले तथा अपने वचनामृत से चन्द्रमा को भी तिरस्कृत करने वाले है उन्ही की कृपा व तप के प्रभाव से उद्यान नन्दन वन बन गया है। उनकी उपासना के लिए उज्जयनी नगरवासियो का उत्साह उमड़ रहा है। यह सुन कर राजा का भी भाव हुआ कि मुनिराज के दर्शन करू। राजा ने मुनिराज के दर्शनार्थ चलने के लिए चारों मन्त्रियो से पूछा। तब प्रथम में सच्चे धर्म की धुरा को उखाड़ फेकने में चतुर वलि बोला कि हे राजन्! वेद से बढ़कर दूसरा कोई तत्व नही है श्राद्ध से बढ़कर कोई विधि नही है यज्ञ से बढ़कर दूसरा कोई मोक्ष का देने वाला धर्म नही है तत्पश्चात समीचोन सन्मार्ग का विनाशक प्रह्लाद बोला—अद्वैत से बढ़कर उत्कृष्ट दूसरा कोई तत्त्व नही है। शकर से बढ़कर कोई देवता नही है। और शैव शास्त्र से बढ़कर कोई शास्त्र नही है जो मुक्ति और मुक्ति को देने वाला हो।

नास्तिक शिरोमणि शुक्र और बृहस्पति ने भी अपने अपने मत प्रकाशित किये तथा अपने धर्मो की प्रशंसा की। तब थोड़ा क्षुब्ध होकर राजा बोला अहो दुर्जन रूपी लता के आधार भूत द्विज वृक्ष क्या मेरे ही सामने आप की जबान चलती है या विद्वानों के सामने भी बोल सकते हो?

वलि उचाव—राजन यदि हमारी बुद्धि वैशिष्ठ के विषय में आपके मन में ईर्ष्या है इसलिए आप ऐसा वचन कहते है। तो समस्त शास्त्रों में प्रवीण विद्वान की तो बात ही क्या यदि सर्वज्ञ आजावें तो भी हम हारने वाले नही, उसके सामने भी हमारी विद्या निर्दोष ही ठहरेगी।

नृप उचाव–यह सुनकर राजा कहने लगा कि जितना मानतुम करते हो इसकी परीक्षा अवश्य हो जाएगी कि कौन सूरवीर है कौन कायर यह पहचानतो समर भूमि में ही हो सकती है। ऐसा कहकर उस स्थिर स्वभाव वाले राजा ने नगरी में आनन्द सूचक भेरी बजवा दी उसको सुनकर सब परिवार पूजा की सामग्री लेकर आगये तब राजा विजयशेखर हाथी पर सवार हो वंदना करने को उद्यान की ओर चल दिया और नगरी के वाहर उद्यान में सीमा के

बाहर ही हाथी से उतर कर अपने अपने परिवार को प्राप्त पुरुषो के साथ आचार्य महाराज के समीप जाकर स्तवन व पूजा कर बैठ गया। और विनय सहित धर्म का स्वरूप पूछा तथा स्वर्ग और मोक्ष का स्वरूप बूझा कि भगवान मोक्ष का क्या स्वरूप है और उसकी प्राप्ति का क्या उपाय है ऐसी प्रार्थना करके चुप हो गया। आचार्य ने स्वर्ग और मोक्ष का स्वरूप कहा तथा धर्म की चर्चा करने लगे तब वलि बोला कि स्वर्ग और मोक्ष का आप स्वामी दुराग्रह क्यो करते है। बारह वर्ष की स्त्री और सोलह वर्ष का पुरुष का परस्पर मे जो प्रेम रस उत्पन्न होता है उसे प्रीति कहते है यह प्रीति ही साक्षात् स्वर्ग है उसे भिन्न कोई अदृश्य स्वर्ग नही है। आचार्य क्या एक प्रत्यक्षप्रमाण ही है ? हा समस्त श्रुत रूपी पृथ्वी का उद्धार करने वाले आदि पुरुष के तुल्य विद्वान् महात्मन् एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है।

आचार्य—तब हम पूछते है कि तुम्हारे माता पिता ने विवाह किया था इत्यादि का क्या प्रमाण है ? और तुम्हारे पूर्व पुरुष थे इसका क्या कुछ प्रमाण है ? यदि कहोगे कि जो वस्तुयें हमारे प्रत्यक्ष मे नही है उनको हम प्रमाणिक पुरुषो के कथन से मानते है तो तुम्हारे पक्ष का ही-ह्रास होगा और हमारे पक्ष की पुष्टि होगी। इस उत्तर को सुनकर वलि सकट में पड गया और सदस्यो के लिए प्रीतिकर उत्तर न सूझने पर भण्ड वचनो का प्रयोग करने लगा। यह देखकर राजा की आखे शर्म से नीची हो गई परन्तु प्रति उत्तर नही दिया। क्योंकि प्रतिष्ठा के भग होने के भय से राजा ने मुनियो के सामने मन्त्रियो से कुछ भी नही कहा और बोला कि भगवान् जिसका चित्त मोह से अध हो रहा है जो समीचीन धर्म को विध्वंस करने मे समर्थ हो रहा है जो वर्तमान तत्त्वो से ही संबध रखता है उस पुरुष के पास मेरु के समान स्थिर आप सरीखे गुरुओ का अपवाद करने के सिवा दूसरा हथियार ही क्या हो सकता है।

(टिप्पणी)

अन्य पुस्तको मे यह कथा इस प्रकार भी कही गई है कि राजा जब दर्शन करने को आ रहा था उससे पहले अकपनाचार्य ने अपने शिष्य वर्ग को सूचना दे दी कि यहाँ के राजा के मत्री मिथ्यादृष्टि है तथा विद्या मद मे चूर हो रहे है इसलिए राजा के आने पर सब मौन से रहे राजा भी मन्त्रियों सहित दर्शन करने के लिए गया सब को नमस्कार किया आशीर्वाद भी दिया परन्तु कोई भी कुछ बोला नही तब राजा वापस आ रहा था कि मार्ग मे श्रुत सागर नाम के मुनिराज मिले तब तक चारो मंत्री मुनियो की भूरि-भूरि निन्दा उपहास करते हुए आ रहे थे कि मुनिराज दीखे और प्रहलाद बोला देखो एक बैल पेट भर चर कर आ रहा है। राजा ने नमस्कार किया और धर्म का स्वरूप पूछा इस पर चर्चा चली तब मुनिराज ने उस मिथ्यात्वी वलि को वाद में परास्त किया तथा प्रहलाद व शुक्र को व बृहस्पति को भी हरा दिया। परन्तु हार होने का उनको सदमा व्याप्त हो गया और वे अपने स्थान को चले गये। इधर श्रुतसागर भी संघ में जा पहुचे। रास्ते में हुए विवाद को भी गुरु से कह सुनाया तब आचार्य ने कहा वत्स तुमसे जहा पर विवाद हुआ है वही जाकर वहाँ के क्षेत्रपाल से

जगह मांगकर कायोत्सर्ग ध्यान से खड़े हो जाओ ? ऐसी आज्ञा पाकर श्रुतसागर जहा पर हो विवाद हुआ पहुंच गए और क्षेत्रपाल से आज्ञा लेकर वही जहाँ कायोत्सर्ग से खड़े हो गये। रात्रिका मध्य काल था कि वे ब्राह्मण अपने अपने हाथों में तलवार लेकर मुनिराज को मारने के लिए चल दिए। रास्ते में जा ही रहे थे कि उनको वे ही मुनिराज दिखाई दिए कि जिन्होंने परास्त किया था। वे ब्राह्मण मंत्री मुनिराज को मारने के लिए परस्पर में कहने लगे कि प्रथम बार तू कर वह कहता है कि तू कर वह कहता है कि तू प्रथम बार कर सब के सब इसी द्वन्द्व में एक-एक से इशारा कर रहे थे। वे विचार करते थे कि यदि मेरी तलवार से मरण हो गया तो मैं ही पापी बनूंगा ये सब बच जाएंगे अन्त में यह निर्णय हुआ कि चारो एक साथ ही वार करे ताकि पाप के समभागी सब बनें तब चारों ने एक दम तलवार का वार करने के लिए ऊपर हाथ उठाया ही था कि यक्षदेव ने सबको ज्यो का त्यो कील दिया जिससे वे खड़े के खड़े रह गये। प्रभात हुआ तब सर्वत्र यह समाचार फैल गया कि राजा के मत्री मुनि महाराज को मारने के लिए तलवार का प्रहार कर रहे थे। सो किसी ने उनको कील दिया है लोग बड़ी ही तादाद में एकत्र हो गये सब ही चारो मन्त्रियो को लानत दे रहे थे। यह समाचार राजा को भी प्राप्त हुआ और राजा भी घटना स्थल पर आ पहुचा और मन्त्रियो को धिक्कारता टी। तथा यक्षदेव से प्रार्थना की कि अब इन पापियों को क्षमा करो ये अपने किए हुए का फल स्वयं भोगेगे। तब यक्षदेव ने उनको छोड़ दिया। राजा ने उनका सब जर माल लुटवा लिया और देश निकाला दे दिया।

इति टिप्पणी

इस प्रकार चर्चा का प्रसंग बदल कर और परम शान्ति रूपी गंगा नदी के उद्गम के लिए हिमवान पर्वत के तुल्य अकम्पनाचार्य के शिष्य जनो के योग्य आराधना करके तथा आज्ञा लेकर राजा अपने राज महल को वापस लौट आया। और दूसरे दिन अन्य अपराध के बहाने से बलि तथा उनके साथी मन्त्रियो के साथ तिरस्कार पूर्वक निकाले गये वे मत्री भ्रमण करते हुए कुरुजागल देश में पहुच कर हस्तिनापुर नगरी के राजा पद्म की शरण मे पहुंच गये। राजा पद्म के पिता महापद्म ने अपने बड़े पुत्र विष्णुकुमार के साथ श्रुतसागर महाराज के पास जाकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली थी। अपने छोटे पुत्र को राज्य भार सौप गये थे। उनके दीक्षा लेने के पीछे कुम्भपुर का राजा सिह कीर्ति ने टैक्स देना बद कर दिया पद्म राजा के ऊपर चढ़ाई करने का उद्योग करने लगा। उस सिह कीर्ति राजा ने अनेको राजाओ को युद्ध में परास्त किया था वह एक बड़ी सेना लेकर हस्तिनापुर पर चढ़ाई करने की सोच रहा था राजा पद्म के गुप्तचरो ने युद्ध का समाचार दिया। यह सुनकर पद्म राजा को अत्यन्त चिन्ता व्याप्त हो रही थी यह देख बलि ब्राह्मण कहने लगा कि राजन आप उदास क्यों हो रहे हो तब पद्मराज से कहा कि यदि आपकी आज्ञा हो तो हम अभी उसको जीत कर आपके चरणों मे ला सकते है। यह सुनकर राजा पद्म ने कहा कि यदि तुम चतुर हो तो सिंहकीर्ति को पकड़ कर लाओ और रुके हुए टैक्स को वसूल करो। यह सुनकर बलि प्रहलाद बृहस्पति शुक्र चारो मंत्री थोड़ी सी सेना लेकर चल दिए और मार्ग मे कपट विद्या में प्रवीण उस बलि

ने मार्ग में छलकर सिंह कीर्ति को पकड़ लिया और साथ में अन्य योद्धाओं को भी पकड़ कर पद्म राजा के चरणो मे लाकर उपस्थित कर दिया। यह देखकर राजा पद्म विचार करने लगा कि मत्री बड़े ही श्रेष्ठ पराक्रमी है इन्होने हमारे काटे को ही निकाल दिया इस प्रकार मन मेप्रसन्न होता हुआ वोला कि हे मन्त्रियो माँगो क्या माँगते हो वही तुम को दिया जाएगा ? तब वलि वोला महाराज अभी आपकी कृपा से सब प्रकार की वस्तुये हमें प्राप्त है यह बचन आप अपने भंडार मे जमा रखिए। ऐसा कहकर कुछ दिन पश्चात वलि मन्त्री एक सेना लेकर छोटे-छोटे राजाओ को जीतने के लिए चल दिया और विजय प्राप्त कर वापिस आ गया। इधर स्वामी अकपनाचार्य अपने सात सौ मुनियो सहित विहार करते हुए कुरुजागल देश के हस्तिनापुर के उत्तर मे स्थिति हेम पर्वत की बड़ी गुफा में चातुर्मास करने को ठहर गये। उधर यह समाचार वलि, प्रहलाद आदि मत्रियो ने सुन लिया था। जिससे ऐसे प्रतीत होने लगे कि कुत्ते के काटने का जहर बढ जाता वैसे ही मुनियो के सघ का आने का समाचार सुनकर उनको क्रोध बढ़ गया और पुराना बदला चुकाने की अपेक्षा कर राजा पद्म से अपनी धरोहर बचन माँगा कि हमको सात दिन के लिए राज्य दिया जाय राजा पद्म ने भी राज्य सात दिन के लिए देना मजूर कर लिया। और आप राज कार्य को छोड़ कर राजमहल मे रहने लगे।

अब क्या था कि वलि ब्राह्मण ने एक अश्वमेध यज्ञ करना प्रारम्भ किया जहाँ पर जिस गुफा मे मुनिराज ठहरे हुए थे उसके निकट ही प्रारम्भ कर दिया और यज्ञशाला के चारो तरफ मरे हुए जानवरो की चर्म की बाढ़ लगाई तथा यज्ञ का कार्य-क्रम चलने लगा। तथा नाना प्रकार के जलचर थल चर जीवो को पकड़ कर जलती हुई अग्नि की ज्वाला में डाल देते थे जिससे भयकर धुआँ निकलने लग जाता था वह धुआँ मुनियो के आश्रम स्थान मे भर गया था जिससे मुनियो के श्वासोच्छ्वास रुक रहे थे परन्तु उन मुनिराजो ने गुरु की आज्ञा पाकर सल्लेखना ले ली थी कि जव उपसर्ग दूर हो जाएगा तभी चर्या के लिए नगरी मे जावेगे नही तो हमारे चार प्रकार के आहार का त्याग.है। जीवित पशुओ के शरीर के जलने से कडुआ धुआ निकलने लगा था जिससे मुनिराजो के कण्ठ फट गए थे। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए थे। यज्ञ काण्ड चालू ही था। उधर मिथला पुरी मे जिष्णु आचार्य का शिष्य भ्राजिष्णु मुनि महाराज रात्रि के बारह बजे तारागणो की शोभा देख रहे थे कि एक तारा कापता हुआ दिखाई दिया। उन्होने अपने गुरु के समीप जाकर कहा कि महाराज इस प्रकार आकाश मे तारा काप रहा है यह सुनकर उन्होने अवधि ज्ञान से जान लिया कि हस्तिनापुर मे अकपनाचार्यादि ७०० सौ मुनियो के ऊपर वलि ब्राह्मण कृत घोर उपसर्ग हो रहा है। यह वलि प्रहलाद वृहस्पति और शुक्र चार ब्राह्मण मत्रियो के द्वारा किया जा रहा है। वह शिष्य गुरु से पूछने लगा कि महाराज यह कैसे निवारण किया जाय सो कहो ? यह सुनकर आचार्य बोले कि विष्णु कुमार मुनिराज के द्वारा ही दूर किया जा सकता है अन्यथा नही क्योकि उनको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हो गई है तव आचार्य ने अपने शिष्य क्षुल्लक को आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही अपनी आकाश गामिनी विद्या से जाओ जहाँ हिमालय पहाड़ पर विष्णु

कुमार मुनिराज वैठे ध्यान कर रहे हैं गुरु की आज्ञा पाकर वह क्षुल्लक शीघ्र ही हिमालय पर्वत पर पहुँचा। जहाँ पर विष्णु कुमार मुनिराज ध्यान में बैठे थे क्षुल्लक ने प्रथम हो तीन प्रदिक्षणा दी नमस्कार किया, पास बैठ गया विष्णु कुमार मुनि का ज्योंही ध्यान छूटा त्योंही क्षुल्लक जी ने नमस्कार किया और कहा महाराज विष्णुकुमार आचार्य महाराज ने मुझको आपके पास भेजा है कि आपको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हो गई है आप चलकर हस्तिनापुर में अकंपनाचार्य के ७०० सौ मुनि संघ के ऊपर हो रहे उपसर्ग को दूर करो उनकी रक्षा का कार्य आपके हाथो से ही हो सकता है ऐसा महाराज ने कहा है।

यह सुन कर क्षण मात्र में विष्णु कुमार मुनि हस्तिना पुर में पहुँच गये और प्रथम ही राज महल में राजा पद्म से मिले और उसकोबहुत डाँट लगाई कि तेरे होते हुए सात सौ मुनियों के ऊपर घोर उपसर्ग हो क्या तेरे को इसीलिए राज्यपद दिया कि तू मुनियों के ऊपर उपसर्ग करा। यह सुनकर पद्मराज बोला महाराज क्षमा कीजिए मैं वचनबद्ध हो गया हूं अब आप और कुछ न कहें आप ही देवता है आप ही गुरु है आप ही रक्षक है आप ही मंगल रूप है आप ही जीवों की शरणभूत है आप ही जगत में श्रेष्ठ हैं इस प्रकार पद्म ने प्रार्थना विनती की तब राजमहल से निकल कर यज्ञ मण्डप की तरफ को चल दिए।

यज्ञ मण्डप था वह दूर से ही दिखाई दे रहा था जिस पर नाना प्रकार की ध्वजा पताकायें लग रही थी धुआं भी आकाश को उड़ रहा था पशु पक्षियों का कोलाहल मच रहा था तथा वेद मन्त्रो का उच्चारण हो रहा था। तथा गायत्री मन्त्र का उच्चारण बडे जोर-शोर से किया जा रहा था। उस यज्ञ मण्डप के निकट पहुंच कर विष्णु कुमार ने अपना रूप वौना वना लिया जनेऊ धारण किया माथे मे त्रिपुड तिलक भी लगाया एक पीताम्बर लगोटी पहन ली और चादर ओढ ली। हाथ में एक टेडी मेडी छड़ी ले ली (और वेद मन्त्रों का बड़े ही उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए यज्ञ शाला में प्रवेश किया) और गले में यज्ञोनवीत था गले में रुद्राक्ष की माला थी चर्म मृग पहने हुए ऐसा सुन्दर रूप किए हुए वे यज्ञ शाला में प्रवेश करते हुए वेदों के मन्त्रों व गायत्री मन्त्रों का उच्चारण वड़े मधुर ध्वनि से करते जा रहे थे कि यह देख सब लोग चकित हो गए और विचारने लगे कि वलि की यज्ञ की महिमा देखो कि साक्षात विष्णु भगवान यज्ञ को देखने के लिए यज्ञ मण्डप में आए हुए है। वही प्रतीत होता था सब लोग कह रहे थे कि विष्णु भगवान वामन का रूप धारण कर आये हुए है। विष्णु कुमार मुनिमहाराज दानशाला की ओर जा रहे थे सब यज्ञ मण्डप में एक नये आनन्द की छटा छा रही थी। वामन को आता देखा वे बंद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए दान शाला में पहुंच गये। उनके पीछे अनेक नर-नारी उनकी सौन्दर्यता को देखकर मुग्ध हो रहे थे। तथा वाणी सुनकर चकित हो उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। दानशाला में वलि इच्छित दान वांट रहा था। तब वामन ने भी याचना की तब वलि वोला कि प्रभो जो इच्छा हो वह मांग लीजिए वही आपको दिया जाएगा। इतना कहने पर वामन ने त्रिवाचा भरवाली तथा तीन वार सकल्प का पानी छुड़वाया और कहाकि अव एक छोटी सी झुपडिया वनवाने को

तीन पेड भूमि मेरे को दे दो मैं अपने ही पैर से नाप लूंगा यह सुन कर वलि बोला महाराज आपने कुछ भी नही माँगा और कुछ मागिए। तब मुनिराज बोले बस और कुछ नही चाहिए। चलो शीघ्र ही चलो हमको वह भूमि बताइए कि जहा हम झोपडी बनवावेगे। तब वलि बोला कि जहाँ आपको पसद हो वही दी जाएगी यह सुनकर विष्णुकुमार मुनि ने वह यज्ञ शाला की भूमि ही मागी तब वलि, प्रहलाद बोला कि और कुछ आवश्यकता हो वह भी कहिए तब बोले कहाँ से नापू अब जल्दी करो ? तब यज्ञ की भूमि को नापा दूसरा पद पुष्करार्ध पर्वत पर रक्खा जिससे जमीन आकाश नाप लिया अब कहने लगे कि तीसरी डग कहाँ भरू शीघ्र ही बताओ नही तो तुम सबको आर दे दूंगा जिससे तुमको लोक मे जगह ही नही मिलेगी यह सुनकर और भी घबड़ा गये और वलि बोला कि महाराज मेरी पीठ पर ही पैर रख लीजिए यह अवशेष रह गयी है। इस पीठ पर ही पैर रख लीजिए यह कह कर वलि भूमि पर लेट गया विष्णु कुमार ने भी उसकी पीठ पर जैसे ही पैर रखा तैसे ही जोर से चिल्लाने लगा। उधर आकाश से देव पुष्प वृष्टि करने लगे जय-जयकार का शब्द होने लगा सब लोग क्षमा की याचना करने लग गये। तब मुनिराज ने कहा कि जा अब मैं तुझको क्षमा करता हू तू पहले यज्ञ मे पानी डाल कर अग्नि को शात कर यह सुनकर वलि और प्रहलाद, वृहस्पति, शुक्र सबने सब दौड कर यज्ञ में पानी डाल शात कर दी और चर्म की लगी हुई बाढ को वलि ने अपने हाथ से निकाल दी। और अकम्पनाचार्य महाराज के पास जाकर अपने किए गए घोर उपसर्ग की निन्दा कर क्षमा मागी तथा जिन धर्म के स्वरूप को जानकर चारो ने जैन धर्म स्वीकार किया। उधर नगर वासी जितने श्रावक थे वे अन्न जल का त्याग किये हुए बैठे थे कि जब तक मुनियो के ऊपर आया हुआ उपसर्ग दूर नही होगा तब तक हम अन्न पान नही करेगे।

श्रावक भी सब समाचार सुनकर शीघ्र ही सेवा वैयावृत्ति मे उपस्थित हुए सबने विचार किया कि मुनिराजो के गले शुष्क हो गए है तथा फट गए है क्योकि जहरीला दुर्गन्ध मय धुआ के होने से। इसलिए ऐसा सलिल कोमल सरस आहार बनाना योग्य है। तब सबने सेमही व खीर सीर इत्यादि भोजन तैयार किया और मुनिराज आहार के लिए नगरी में आये सब ने बड़े प्रसन्न भाव पूर्वक आहार दिया। जिनके घर मुनिराज नही आये थे उन्होने महाराज से आकर कहा कि जब तक हमारे किसी अतिथी का भोजन हमारे घर पर नही होगा तब तक हम भोजन नही करेगे। तब यह सुनकर अकम्पनाचार्य महाराज ने कहा कि जिन के यहाँ आहार नही हुआ है वे अपने दरवाजे पर श्रमण बनाकर पूजे और भोजन करे यह सकल्प करे कि हमने मुनिराजो को आहार दिया। सबने मिलकर परस्पर मे रक्षाबधन किया तथा अपनी बहन बेटियो को भी दान मान दिया जिससे इस दिन का स्मरण बना रहे विष्णुकुमार मुनिराज भी पुनरपि दीक्षा छेद कर दुबारा दीक्षा धारण की और ध्यानाग्नि के द्वारा घातिया अघाति कर्मो को नाश कर शिवपुर गामी बन गये।

इति वात्सल्य अंग में प्रसिद्ध विष्णुकुमार मुनि की कथा।

प्रभावना अंग में प्रसिद्ध वज्रकुमार मुनि की कथा

पचाल देश में श्रीमान भगवान पार्श्वनाथ के यश से प्रकाशित अहिछेत्र नाम का नगर है। उसमें द्विसतप राजा राज्य करता था उसकी रानी का नाम चन्द्रानन था। राजा द्विसतप के सोमदेव नाम का पुरोहित था वह बड़ा कुलीन और शीलवान था। षडंगवेद ज्योतिष शास्त्र, निमित्त शास्त्र और दण्डनीति का पण्डित था तथा देवी और मानवी विपत्तियों का प्रतिकार करने में चतुर था। एक दिन उसकी पत्नी यज्ञदत्ता गर्भवती हुई उसको जिनेन्द्र भगवान की पूजा जैन मन्दिर में दर्शन व जैन साधुओं के दर्शन करने व आहार दान देने के, भाव होते थे। परन्तु पति और सास श्वसुर के भय से निरन्तर संकुचित रहती थी। वह दिनों दिन शरीर से कृश होती जाती थी तब सोम देव की माता ने पूछा कि बेटा बहू जिस दिन से गर्भवती हुई है उसी दिन से इसको न जाने क्या हो गया है, यह नित प्रति सूखती जाती है। यह सुनकर सोमदेव ने अपनी धर्म पत्नी यज्ञदत्ता से पूछा कि हे प्रिये तुम्हारी दशा क्यों बिगड़ती जाती है ? जब बार-बार पूछा तब वह बात बनाती हुई बोली की मेरी यह इच्छा हुई है कि आम खाऊँ परन्तु असमय मे आम कहाँ मिल सकते क्यो कि आम का मौसम बीत चुका है था इसलिये दोला पूरा न होने के कारण वह बहुत दुखी थी। पूछने पर कहा तब सोमदेव सोचने लगा कि हमारे मन को पीड़ा देनें वाले इसके असामयिक मनोरथो को कैसे पूर्ण करूँ। वह अपने शिष्यों सहित इधर उधर आम की खोज में चल दिया और जहाँ तहाँ आम के बागीचे देखे उनमें कही पर भी आम दिखाई नहीं दिया। तब अनेक लोगों से पूछा कोई आम नही बता सका। और आगे बढ़ते ही गए कि एक जंगल में गायें चराने वाले ग्वाले से पूछा कि भाई यहां आम कही पर मिल सकते है ? तव वह ग्वाला बोला कि भाई आम तो एक जगह देखे हैं देखों जहां पर एक नग्न दिगम्बर साधु जी बैठे है उस वृक्ष पर आम लगे हुए है। यह सुनकर सोमदेव शिष्यों सहित उधर को ही चल दिये और जहां मुनि राज बैठे थे वहा उसके उत्कृष्ट तप की एक नई छटा दिखाई दे रही थी। वे भ्रमण करते हुए जल वाहिनी नदी के तीर में फैले हुए एक विदाक्ष नाम के बड़े भारी जंगल में सुमित्र नाम के मुनिराज को देखा। उत्कृष्ट तप के करनें से उनका शरोर पवित्र हो रहा था। समस्त शास्त्रो के सुनने से मनोबल वढ़ गया था। ऐसे प्रतीत होते थे मानो धर्ममूर्ति रूप धारण कर आ विराजमान हुऐ हो। उनके ब्रह्मचर्य धर्म के तेज प्रताप से एक आमक वृक्ष पर बौर और आमों से फल रहा था। पुरोहित जी ने आम वृक्ष से तोड़कर अपनें शिष्य के हाथ अपनो धर्म पत्नी के पास भेज दिये और आप धर्म कथा सुननें के लिए अवधि ज्ञान के धारी मुनि के समीप वैठ गये। तब मुनि ने अपना उपदेश देना चालू किया कहने लगे यह जीव पहले जन्म में सहस्रार स्वर्ग के सूर्य विमान में बहुत बड़े वैभव का स्वामी सूर्य चर देव था। पूर्व जन्म का वृतान्त श्रवण कर पुरोहित जी को जाति स्मरण हो आया स्वप्न में प्राप्त हुए साम्राज्य के तुल्य इस संसार से विरक्त होकर उसने काम को जीतने में समर्थ जैनेश्वरी दीक्षा धारण की और शास्त्रों के रहस्य को जान कर मगध देश के सोपारपुर के निकटवर्ती नाभि गिर पर्वत पर आतापन योग से स्थित हो गए।

उधर यज्ञदत्ता को जब क्षात्रो ने ग्राम के फल ले जाकर दे दिए। उनको प्राप्त कर ग्रानन्दित हुई साथ ही यह कह सुनाया कि गुरु जी ने जिनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली है। यह सुनकर बडी दु:खित हुई ग्रौर पति के वियोग से उसका चित्त उमड़ गया। समय प्राप्त होने पर उसके गर्भ से एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुग्रा। वह यज्ञदत्ता पुत्र को लेकर उसी पर्वत पर गई कि जहा पर सोमदेव आतापन योग से स्थित थे। उनको देखकर बोली। ग्ररे मन रूपी वन को जलाने के लिए वन की ग्राग समान नि.स्नेही मूर्ख कपटी ! यदि इस नग्न दिगम्बर वेष को छोडकर ग्रपने घर चल ग्रौर भोगोप भोग भोगो वे भोग इन्द्र को भी प्राप्त नही है स्वेच्छा से चलना हो तो चल नही तो ग्रपनी संतान को सभाल इस प्रकार प्रथम में तो प्रेम बताया परन्तु वे उसकी तरफ को देख भी नही सके। तब उसके क्रोध की ज्वाला ग्रौर बढने लगी ग्रौर कटुक कठोर निंद्य वचन रूपी ग्रनेक प्रकार के बाण छोडे परन्तु उनके हृदय में एक भी प्रवेश नही हुग्रा वे ग्रपने ध्यान से क्षण मात्र के लिए भी विचलित नही हुए। यह देखकर कहने गली कि पापी योग धारण कर खड़ा हो गया है नि स्नेही मूर्ख कपटी। ये ग्रपना पुत्र सम्भाल यह कहकर उस ग्रातापन योग मे स्थित मुनि के सामने शिला पर बालक को लिटाकर ग्रपने घर को चली गई। शिला तप रही थी तब बच्चा मुनि राज के चरणो मे लिपट रहा था ग्रौर मुनिराज ग्रपने ऊपर उपसर्ग जानकर कायोत्सर्ग से निश्चल खडे रहे।

·इसी बीच में एक घटना घटी विजयार्घ पर्वत की उत्तर श्रेणी मे ग्रमरावती नगरी को राजा त्रिशङ्कु चिरकाल तक राज्य सुख का भोग कर ससार ग्रौर शरीर भोगो से विरक्त हो गए। मुनि होने की इच्छा से ग्रपनी कन्या तो हेमपुर के स्वामी भूमि गोचरी बलवाहन राजा को दे दी ग्रौर राजा जेष्ठ भास्कर देव पुत्र को राज्य भार सौप दिया। ग्रौर ग्राप सुप्रभदेव मुनि के पास जिन दीक्षा धारण कर ली। कुछ दिन बीत जाने पर उसके छोटे पुत्र पुरन्दर ने ग्रत्मीयजनो के द्वारा उत्साहित किए जाने पर ग्रपनी भुजबल से तथा सैन्यवल के घमण्ड में ग्राकर ग्रपने बड़े भाई भास्कर देव का राज्य छीन लिया। तब भास्कर देव ने ग्रपने परिजन के साथ ग्राकर बलवाहनपुर मे ग्रपना लश्कर डाला ग्रौर स्वय ग्रपनी पट राणी मणिमा के साथ सोमदत्त मुनिराज की बदना के निमित्त ग्राया। मुनि के चरण कमलो मे पृथ्वी के कमल के समान उस सुन्दर बालक को देखकर वह बोला ग्ररे बड़ा ही ग्राश्चर्य है कि बिना रत्नाकर के रत्न विना जलाशय के कमल बिना ईंधन के तेज का पुज विना सूर्य के उग्रकान्ति कारक ग्रौर बिना चन्द्रमा के मनोहर यह बालक यहाँ कहां से ग्राया ? वह पल्लव के समान इसका लावण्य हाथ के स्पर्श से भी म्लान होने वाला है। किन्तु इस ग्रत्यन्त गर्म पहाड पर बज्र से बने हुए के समान क्रीडा करता हुग्रा सुख से ऐसा लेटा हुग्रा मानो माता की गोद मे लेटा हो। भास्कर देव अपनी पटरानी से बोला हे प्रिये ! तुमको पुत्र की वाछा थी भगवान के प्रसाद से तुम्हारे यह सर्व लक्षणो से युक्त पुत्र प्राप्त हुग्रा है। इसका नाम वज्रकुमार रखते है। यह हमारे वश को समुपन्नत होगा। ऐसा कहते हुए बालक को गोदी मे ले लिया ग्रौर मुनिराज की स्तवन पूजा वन्दना कर बच्चे का

वृतान्त मुनिराज से पूछा तब उन्होने बच्चे का सब वृतांत कह सुनाया। यह सुनकर वह भास्कर देव अपने नगर की ओर लौट गया।

बचपन के कारण बज्रकुमार के शरीर की कांति अशोक वृक्ष के नवीन पत्तों की या धतूरे के अथवा लाल मणि की गेंद की तरह प्रतीत होती थी। घर बाहर के आदमी बड़ी ही प्रीति से प्यार से पुष्प गुच्छे की तरह देखते थे। वह हाथों हाथ घूमता था। पहले वह मुख ऊपर को करके लेटा रहता था कुछ बड़ा होने पर उसने मुस्कराना शुरू किया तत्पश्चात घुटनों से चलने लगा। फिर तुतलाते हुए बोलना भी चालू किया। फिर स्पष्ट बोलने लगा इस प्रकार वह पाच अवस्थाओ को बिताकर बड़ा हुआ जैसे मेरु भूमि का भाग वृक्षों की शोभा से शोभित होता है सरोवर कमलो से शाभित होता है। राजहसों का समूह स्त्री के समागम से शोभित होता है और स्त्री समागम काम विलास से होता है वैसे ही वज्रकुमार का शरीर यौवन से सुशोभित हो गया।

तत्पश्चात् यौवन के भर उठने पर पितृ वश और पातृ वंश से प्राप्त हुई निर्दोष विद्याओ के प्राप्त होने से उसका प्रताप और भी बढ़ गया और उसने अपने मामा की लड़की इन्दुमती के साथ पाणिग्रहण किया। एक दिन बज्रकुमार अनेक विद्याधर कुमारो के साथ विजयार्ध पर्वत की शोभा देखता हुआ घूम रहा था। घूमते-घूमते वह हिमवान पर्वत पर जा पहुँचा वहाँ विद्याधरो के स्वामी गरुड वेग की अतिशय रूपवती कन्याओ में प्रवीण पवन वेगा बहुरूपिणी विद्या साथ रही थी। वज्रकुमार ने देखा कि बिघ्न डालने की इच्छा से वह विद्या अजगर का रूप धारण कर उस कन्या को निगलना ही चाहती है। उस परोप-कारी ने तुरन्त ही गरुड विद्या के द्वारा उसके मुख को चीर दिया। इस विघ्न के दूर होते ही पवन वेगा को विद्या सिद्ध हो गई। उसने सकल्प किया कि मेरे प्राणों की रक्षा करने वाला युवक इस जन्म में तो मेरा पति है। यह सकल्प करते हुए उसने बज्रकुमार को इष्ट वस्तु की प्राप्ति करने वाली प्रज्ञप्ति नाम की विद्या दी और कहा कि इसी पहाड़ के पास से बहने वाली नदी के पास आतापन योग से स्थित मुनि महाराज के चरणो के समीप में बैठ कर पढ़ने मात्र से तुम को यह विद्या सिद्ध हो जायेगी। यह कह कर वह अपने नगर को लौट गई। वज्रकुमार ने भी उसके कहने के अनुसार फेनमालिनो नदो के किनारे पर बैठे हुए आचार्य के सानिध्य मे विद्या सिद्ध की। इस विद्या के प्रभाव से उसमें असाध्य कार्यों के साधन की शक्ति आ गई और इससे उसका पराक्रम तथा होसला और भी बढ़ गया। तब उसने अपने चाचा पुरन्दर देव भास्कर अमरावती नगरी के राज्य शासन पर अपने पिता भास्कर देव को बिठाया और स्वयवर में पवन वेगा के साथ तथा अन्य विद्याधर कुमारियो के साथ विवाह करके आनन्द पूर्वक दिन बिताने लगा।

एक बार इष्ट बन्धु बान्धवों के कहने से और दुष्ट जनो के अनादर से उसको पता लगा कि मैं भास्कर देव का पुत्र नहीं हूँ बल्कि इसने मेरा पालन पोषण किया है। यह सुनकर उसने प्रतिज्ञा की कि अपने वश का निश्चय हो जाने पर ही मैं अन्न जल ग्रहण करूँगा अन्यथा मेरे सबका त्याग है तब उसके पालक माता पिता उसको मथुरा नगरी में तपस्या

करते हुए सोमदत्त मुनि के पास ले गये। मुनि की शारीरिक आकृति के तुल्य ही अपनी आकृति को देखकर उसको बड़ा ही आनन्द आया। और उसने उन दोनो माता-पिता को समझा बुझाकर अतरंग और बहिरग परिग्रह का त्याग कर दिया और निर्ग्रन्थ साधु बनकर चारण ऋद्धि का स्वामी बन गया।

एक बार मथुरा नगरी मे चारण ऋद्धि के धारी मुनि आकाश मार्ग में चले जाते थे उसी मार्ग में दो तीन वर्ष की एक बालिका थी जिसकी आखो मे कीचड़ भरा हुआ था इधर उधर भटकती और मागती खाती डोलती थी। उसको देखकर पीछे चलने वाले सुनदन नाम के मुनिराज बोले कि जीवो के कर्म विपाक को कोई भी नही जानता है देखो तो बेचारी यह बालिका इतनी सी उम्र में कष्ट भोगती है। यह सुनकर आगे चलने वाले मुनि राज बोले कि ऐसा मत बोलो ? यद्यपि जब वह बालिका गर्भ मे आई तब तो राजश्रेष्ठी के पद पर प्रतिष्ठित इसका पिता समुद्र दत्त मर गया। जब वह जन्मी तो माता भी मर गई। बड़ी हुई तो असमय मे ही बन्धु बान्धव मर गए और अब वह इस हालत मे है। तथापि युवती होने पर वह इस राजा की पूतिका नाम की पटरानी होगी। वही पर भोजन के लिए घूमते हुए बौद्धभिक्षु ने इस वार्तालाप को सुना उसने सोचा कि मुनि झूठ नही बोलते हैं। अत: वह उस बालिका को अपने विहार में ले गया और उसकी रूचि के अनुसार खान पान देकर उसे बड़ा किया। सब लोग हँसी मे उसे बुद्धदासी कहते थे। धीरे-धीरे वह यौवन अवस्था को प्राप्त होने लगी उसकी भृकुटियो मे विलास आचला लोचनो मे एक अद्भुत चंचलता दृष्टिगोचर होने लगी उसकी बातो मे चातुर्य झलकने लगा ओठो पर अपूर्व मादकता छा गई अग प्रत्यग मे यौवन की लहर उठने लगी। चाल में भी मादकता आ गई कुछ ही समय बीतने पर वह रूपवती बुद्धदासी विहार के एक ऊंचे शिखर पर चढ़ी हुई थी कि घूमते-घूमते राजा पूतिवाहन उस विहार के करीब गया और उसकी दृष्टि बुद्धदाशी पर पड़ी और उसके रूप लावण्यता को देखकर उस पर मुग्ध हो गया। उसके हृदयं को कामवाणो ने भेदन कर दिया। इस स्त्री रूपी नदो मे प्राय: मेरी मति इस प्रकार की हो गई है। प्रथम तो वह उसके कुटिल केशो की बीच मागवनी ही थी और केशो की चोटी बनी थी वह भी गोलाकार जूड़ा रूपी भ्रमर मे पड़कर भ्रान्त हो गई थी। नेत्ररूपी लहरो के तूफान मे पड़कर पीड़ित हुई उसके बाद दोनो स्तन रूपी बालुकामय किनारो पर पहुँच कर उसकी फिना शिथिल पड़ गई पुन: उदर की तीन रेखाओ मे भ्रमण करने से थक गई और पुन: नाभि में डूब जाने से क्लान्त हो गई। बुद्धदाशी ने भी राजा को देखा। राजा ने अपने मन में उठते हुए बवण्डर को जिस किसी तरह रोक कर आगे का मार्ग निर्धारित किया। एक अपने विश्वस्त व्यक्ति को बुलाकर अपने मन की अभिलाषा बतलाकर वह बोला तुम भिक्षु के पास जाकर पूछो कि यह कन्या रत्न विवाहित है या अविवाहित है ? यदि अविवाहित हो तो उसको हमारे लिए तैयार करो ? उस विश्वस्त पुरुष नें राज महिषी का पद प्रदान करने की प्रतिज्ञा करके उसका राजा के साथ विवाह कर दिया।

उसके बाद भव्य जनो को आनन्द देने वाला नन्दीश्वर पर्व आया। इस पर्व में

पूतिकवाहन राजा की रानी उर्मिला देवी बड़ा भारी महोत्सव करके जिनेन्द्र देव का रथनिकालती थी बुद्धदासी ने उसके महोत्सव को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए बुद्धदेवी की पूजा का आयोजन किया और उसके योग्य सब सामग्री राजा से मांगी। राजा ने सब सामान दे दिया। जव उर्मिला को अपनी सोत की यह हरकत दुर्जनता मालूम हुई और उसका प्रतिकार करने का उपाय सोचने लगी पर कुछ भी उपाय नही समझ में आया। तब उर्मिला देवी श्री आचार्य सोमदेव के चरण कमलों में आ उपस्थित हुई और बोली कि हे स्वामी मैं फाल्गुण की अष्टान्हिका की पूजा के दिन रथयात्रा सहित पूजा करती हूँ। इस साल मेरी सोत बुद्धदासी कहती है कि तेरा रथ पीछे चलेगा पहले बौद्ध रथ चलेगा। यदि मेरा रथ हमेशा की भांति इस साल नहीं चलेगा तो मैं चार प्रकार के आहार का त्याग कर दूँगी। इतना कहने पर सोमदेव आचार्य ने वज्रकुमार को इशारा किया। वज्रकुमार ने उसको समझाया कि माता धैर्य धरो और पूजा की तैयारी करो ?

यह सुनकर उर्मिला स्व स्थान को चली गई। बज्रकुमार ऋद्धिबल से भास्कर देव का नगरी में पहुंचे और वहां के सब विद्याधर वज्रकुमार को आया देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। एक तो भाई पुत्र पना दूसरे मुनिराज को देखकर सब विद्याधर एकत्र हुए ? और वज्रकुमार महाराज से सबने क्षेम कुशल पूछी। तब श्री बज्रकुमार मुनिराज बोले कि मथुरा नगरी में पूतवाहन राजा की रानी उर्मिला देवी अष्टान्हिका पर्व के दिनों में नित प्रति रथोत्सव करती है। अब फाल्गुण अष्टान्हिका आ गई है उसका रथ निकलवाना है। यह सुनकर सव विद्याधर और विद्याधरी अष्ट मंगल द्रव्य व पूजा की सामग्री लेकर चल दिये। आगे-आगे बाजे बजते जाते थे और ध्वजाये फहराती जा रही थी। उस समय विद्याधर उन्मत्त भरे स्वरो से जिनेन्द्र भगवान के गुणो का गान करते हुए मथुरा में प्रवेश कर उर्मिला रानी के घर पहुँचे। सब नगर के नर नारी सोचते थे कि बुद्ध की पूजा के लिए ये सब तैयार ही होकर आये होगे ? कोई कहते थे कि बुद्धदासी बड़ी भाग्यवान है। परन्तु यह बात सब ही निषफल हुई। प्रभात होते ही आकाश मार्ग से रथ का निकलना चाल हुआ। जिसके प्रथम मे अनेक रग वाली ध्वजाये थी पीछे अनेक प्रकार के बाजे थे। पीछे सुवर्ण के थालों में पूजा की सामग्री थी। उसके पीछे विद्याधरीयो के हाथो मे दर्पण, झारी, कलश छत्र, चवर पंखा, धूपदान, कुम्भ कलश था। तथा आठ प्रतिहार्य थे। तत्पश्चात् बासुरी बजाने वाले नाचने वाले विद्याधर थे इस प्रकार आठ दिन पर्यन्त रथ निकलता रहा। यह रथ का ठाठ बाट देखकर बुद्धदासी दंग रह गयी। और अपने मनोरथ को धिक्कार देती रह गई। अन्त मे बौद्ध धर्म का त्याग कर जैन धर्मानुरागी बन गई।

मिथ्यात्वेऽनंताश्च सासादन मिश्रश्चासंयतेषु ॥
सयतासयते वा पल्यस्यासंख्येय भागाः सुदृक ॥ ४०९

मिथ्यात्व गुण स्थान तथा मिथ्यात्व दर्शनमोह वाले जीव अनंतानन्त है वे सब भव्य और अभव्य चकार से पचस्थावर और नित्यनिगोद इतर निगोद तथा विकल सकलेन्द्रि चारों गति वाले जीव होते है। सासादन तथा मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टि तथा संयत जीव

पल्य के असंख्यात वे भाग सम्यग्दृष्टि जीव है।

विशेष-सासादन गुण स्थान मे सामन्य से ५२०००००० सासादन सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं जिनका एक सासादन ही गुण स्थान पाया जाता है। मिश्र सम्यग्दृष्टि जीव १०४०००००० एक सौ चार करोड मिश्रगुणस्थान मे जीव पाये जाते है। असयत सम्यग्दृष्टि जीव सात अरब है ७०००००००००० जो कि चौथे गुण स्थान वर्ती जीव होते है। तथा सयमासयम वाले जीव १३ तेरह करोड होते है। ४०९

प्रमत्ते कोटि प्रथकत्वं सख्या त्र्युपरिनवाधः सति कोटि ॥
प्रयत्ते सयत प्रोक्तः संत परमागमे साधुः ॥ ४१०

प्रमत्त गुण स्थान मे जीवो की सख्या तीन करोड़ के ऊपर और नौ करोड के नीचे होती है इस प्रकार सम्यग्दृष्टि पर्यन्त की सख्या परमागम मे जितेन्द्र देव ने कही। वह इस प्रकार है ५९३९८२०६ पाच करोड तिरानवै लाख अंठानवै हजार दो सौ छह है।

अमयत्ते संख्यात मुपशम काः प्रवेशे एक द्वित्रि ॥
चतुः पचाशत् क्षयकोऽष्टोत्तर शत तद्विशेषः ४११ ॥

अप्रमत्तवर्ती जीव सख्यात है तथा उपसम श्रेणी चढने वाले जीव क्रमशः एक समय में एक वा दो या तीन तथा अधिक से अधिक चौवन होते है। उपशम श्रेणी अपूर्व करण तथा अनिवृत्त करण सूक्ष्म सापराय तथा उपशात मोह तक जानना चहिये। क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव प्रवेश काल मे एक या दो या तीन होते है परन्तु अधिक एक सौ आठ तक जीव श्रेणी चढते है। अप्रमत्त कुल जीवो की सख्या प्रमत्त गुण स्थान वालो की सख्या से आधी है २९६९९१०३ दो करोड़ ९६ लाख ९९ निन्यावै हजार एक सौ तीन होतो है।

तेरह कोटि देशे वावण्णा सासण मुयव्वा।
भिस्सम्मि य मद्दूणां असंजदा सत्त साप्प कोडीयो १ ॥
क्षापकवत्केवलिनश्च विशेषेण सत सहस्र प्रथकत्व ॥
अभव्योजीवाश्च खलु गुणस्थाने केवलो वित्ति ॥४१२॥

क्षपक श्रेणो चढ़ने वाले क्षायक सम्यग्दृष्टि आठवा नोवा दशवा बारहवा चार गुण स्थानो मे क्रम से जानना चाहिये। सयोग केवलो तथा अयोग केवलियो की सख्या क्षपक श्रेणी के समान ही जानना चाहिये। तीन लाख से ऊपर और नौ लाख से नीचे की सख्या होतो है उपशम श्रेणी मे चढ़ने वाले ११९६ मुनि तथा चारो क्षपक श्रेणी में चढ़ने वाले मुनियो की सख्या २३९२ होती है तथा सयोग केवलियो की सख्या ८९८५०२ है तथा अयोग के बलियो की सख्या ५९८ मुनि ऐ मुनि अनेक समय वाले है। एक समय मे एक वा दो या तीन सयोग केवलो होते है अथवा अधिक से अधिक एक समय मे एक सौ आठ अथवा तीन लाख के ऊपर तथा नौ लाख के नीची सयोग केवली होते है। तथा अयोग केवलियो की सख्या कही गई है पाच सौ अठानवै ५९८ है इन गुण स्थानो को भव्य सम्यग्दृष्टि जीव ही नियम से प्राप्त होते है। परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव अभव्य नही प्राप्त होते ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

प्राग्नारके नारकाश्च मिथ्यादृष्टय संख्येयाश्रेणयः ।।
प्रतराऽसंयेय भागो द्वितियादिषु चा संख्याततैवः । ४१३
सर्वंभूषु सासादन मिश्रासंपताः पल्पसंख्येयभागः ।।
त्रियग्गतौ मिथ्यादृगनंतानंताः ज्ञातव्यश्च ।। ४१४
सासादनादि असयता संयताः पल्यासंख्येया भागः ।।
नृगतौ नराः कुदृष्टयः श्रेण्यसंख्यात भागं संख्या ।। ४१५
सासनादि च संयता संयता संख्यात. सम्यग्दृष्टिः
शेषः प्राग्वत् स्थानं देवगतौ नारकवत्सन्ति ।। ४१६

घर्मा नामक प्रथम नरक में नरक गति वाले जीव नारकविलों के तथा आकाशप्रदेशों के प्रमाण को लेकर अपनी उपपाद शैवा जगत प्रतर श्रेणियों का ऊर्ध्व अर्ध त्रियक फैले हुये के साथ परस्पर गुणा करने पर जितने आकाश प्रदेश होते है उनके असख्यातवे भाग प्रमाण प्रथम नरक में मिथ्यादृष्टि जीव निवास करते है। तथा सासादन सम्यग्दष्टि तथा मिश्र सम्यग्दृष्टि उपशम, क्षयोपशम, क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण ह.ते है। इनका कहने का कारण यह है कि इन तीन गुण स्थान वाले जीव सख्यात है क्योंकि गुणस्थानों की चर्चा करते हुये सामान्य से सख्या बताई जा चुकी है। दूसरे नरक से लेकर सातवे नरक तक नारकी जीव जगत श्रेणो के असंख्यातवे भाग है क्योकि इनका निवास स्थान सात राजू प्रमाण है। पहले नरक मे मियाथ्दृष्टि जीव असख्यात हैं इसी प्रकार प्रस्तार की अपेक्षा कहने से नारक विलों का प्रमाण संख्या उपपाद से ग्रहण हो जाता है। इसलिये सब नरकों में मिथ्यादृष्टि जीव असख्यात है। असंख्यात के अनेक भेद आगम में कहे गये है दूसरे आदिक नरको में क्षायक सम्यग्यदृष्टि जीव उत्पन्न नही होते है शेष उपशम व क्षायोपशम वाले जीव होते है वे सब ही सख्यात ही है सातवे नरक में क्षयोपशम सम्यक्त्व नही होता है। त्रियंच गति मे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तान्त है सासादन मिश्र तथा असयत सम्यग्दृष्टि व सयमा सयमत जीव पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण है अथवा सख्यात है। मनुष्यगति में मिथ्यादृष्टि जीव जितना मनुष्यक्षेत्र है उतने आकाश प्रदेश श्रेणी के प्रतर से रहित असख्यातवे भाग है इसका कारण यह है कि मनुष्यों की सख्या कुछ अक प्रमाण है तथा क्षेत्र ४५ लाख योजन प्रमाण मनुष्य क्षेत्र है उससे आगे मनुष्य नही रहते हैं जगतश्रेणी जो कही गई है वह भी संख्यात कोटि योजान प्रमाण है। सासदन मिश्र तथा असयत सम्यग्दृष्टि देश संयत जीव भी सख्यात है प्रमत्तादि गुणस्थानो में जो सख्या पहले कही जा चुकी है उतनी ही यहां समझ लेना चाहिये। देवगति में देव जगत श्रेणी मे जगत प्रतर के असंख्यात वे भाग प्रमाण मिथ्यादृष्टि जीव है। यह विशेष है कि तीन काय में क्षायक सम्यक्त्व के धारक जीव नही है शेष दो प्रकार उपशम सम्यक्त्व तथा क्षयोपशम सम्यक्त्व के धारक है परन्तु वे भी वही उत्पाद कर धारक होते है। विमान वासियो मे तीन सम्यक्त्व के धारक जीव उत्पन्न होते है अनुदिश और अनुत्तर विमानो मे क्षायक और क्षयोपशम सम्यक्त्व धारी जीव उत्पन्न होते है क्योकि नव ग्रैवेयक के अन्त तक मिथ्यादृष्टि जीव की उत्पत्ति है आगे के देवों में नही। सासादन मिश्र

सम्यक्त्व वाले नही। वे सब स्वर्गों में पल्य के असख्यात वे भाग प्रमाण होते हैं जिस प्रकार नरको मे विलोकी सख्या कही उसी प्रकार देवों के विमान और उत्पाद सैय्या के प्रमाण से लेकर जानना। ४३८।३९।४०४१।

प्रागेकेन्द्रियाश्च आपंचासज्ञिनोऽसंख्यातश्रेणयश्च
संज्ञिनोमिथ्यादृष्टियोऽसंख्येया श्रेणयः प्रतराः।४१६।
शेषागुणस्थानवत् भुजलाग्निवायुकोऽसंख्याल्लोका।
अनंतानतापादपास्त्रशाः प्रचेन्द्रियवदसंख्याताः ४१८॥
मिथ्यात्विन.वाङ्मनो योगिनोऽसंख्याच्छे श्रेणयोर्भाग:॥
प्रतराऽसंख्येयभागाः काये अनन्तानन्तार्जीवाः। ४१९
त्रियोगिषु शासनादि आसपतासपतेषु पल्यासख्यात॥
भोगः प्रयत्तादयाः केवलिनः सामान्योक्ताः संख्याः ४२०

एकेन्द्रिय जीव पृथ्वी कायक जल कायक अग्निकायक वायुकायक और वनस्पति दो इद्रिन्य तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय पाँच इन्द्रिय असैनी सव-मिथ्यादृष्टि ही है उनके एक दर्शन मोह की मिथ्यात्व प्रकृति का ही उदय विद्यमान निरन्तर रहता है वे सव जीव मिलकर अनन्तानन्त है। तथा सज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव जगत श्रेणीजगत प्रतर के असख्यातवे भाग प्रमाण है। अवशेष सासादनादि अपने-अपने गुण स्थान को संख्या कही गये प्रमाण है। दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय पचेन्द्रिय जीव त्रश नाली जगत श्रेणी जगत प्रतर के असख्यातवे भाग प्रमाण हैं। पृथ्वी जल अग्नि वायु कायक जाव मिथ्यादृष्टि जगत श्रेणी जगत प्रतर के असख्यात वे भाग प्रमाण है अथवा असख्यात लोक प्रमाण है। त्रसकायक जीव गुणस्थानो में कहे गये प्रमाण है क्योंकि त्रसकापक जीव अपने-अपने इन्द्रिय के जीव असंख्याता सख्यात हैं। मनोयोगी-मन सहित जीव वचन योगी वाले जोव मिथ्यादृष्टि जगत श्रेणी के असख्यात वे भाग मात्र प्रमाण को लिये हुये है। काययोगी की अपेक्षा विचार करने पर कोययोग वाले जीव अनन्तानन्त है वे सव मिथ्यादृष्टि ही हैं तथा तीनो योग वाले जीव (मन वचन काय) सासादन मिश्र सम्यग्दृष्टि असयत सम्यग्दृष्टि देश सयत जीव पल्य के असख्यात वे भाग हैं प्रमत्तादि मे गुण स्थान की चर्चा में कहे गये प्रमाण जीव राशि होती है अथवा प्रमत्त से लेकर सयोगी गुण स्थान पर्यन्त जीव संख्यात होते हैं। ये सब ही सम्यग्दृष्टि होते है।

स्त्रीपु वेदयोः सदाऽसख्यातमिथ्यादृष्टियोजीवाः।
वेदेनपुंसकेऽनन्तानन्ताः श्रेणयासंख्येयभागः ॥४२१॥

स्त्रीवेद तथा पुरुष वेद वाले मिथ्यादृष्टि जीव असख्यात जगत श्रेणी प्रमोण है तथा दोनो वेद वाले जीव असख्यात है क्योकि स्त्रोवेद पुरुषवेद मनुष्य त्रियच और देवो मे पाये जाते है परन्तु ऐकेन्द्रिय से लेकर असज्ञो पचेन्द्रिय तक के जोवो के स्त्रीवेद पुरुषवेद के कारणो के अभाव में कार्य का भी अभाव देखा जाता है। नपुसक वेदवाले जीव सबलोक के प्रमाण है और वे अनन्तानन्त होते है इसका कारण यह है कि नपुसक वेद का उदय ऐकेन्द्रिय

से लेकर असैनी पचेन्द्रिय तक निरन्तर पाया जाता है तथा सैनी सपूर्णता तथा नारकी जीवों के उदय मे निरन्तर रहता है वहा पर स्त्रीवेद पुरुषवेद नही होते है। तथा एकेन्द्रिय से लेकर सैनी पचेन्द्रिय सन्मूर्छन जन्म लेने वाले नपु सकवेदी जीव अनन्तानन्त मिथ्यादृष्टि होते है। वे जगत श्रेणी के असख्यात वे भाग प्रमाण होते है। ४४६।

स्त्रीनपुंसकवेदयोः सासादनाद्यसयता - संयताः ॥
गुणास्थानवत् प्रमतोऽ - निवृत्तान्तः सख्येयाश्चः ॥४२२॥

स्त्रीवेद तथा नपु सक भावों में सासादन मिश्र असंपत सम्यग्दृष्टि सयतासंयत जीव पल्य के असख्यात भाग प्रमाण है स्त्री व नपु सक वेदों का सत्व और उदय अनिवृत्त गुणस्थान के मध्य मे पाचवे भाग तक पाया जाता है वे सव गुणस्थान की समान सख्या वाले होते है। परन्तु द्रव्य स्त्रीवेद वालों के मिथ्यात्व से लेकर सयतासंयत गुणस्थान होता है नपु सक वेद वालो के भी यही व्याख्या समझनी चाहिये। पाचवे के आगे द्रव्य पुरुषभाव स्त्रियां नपुंसक वेद वाले जीव नौवे गुण स्थान तक होते है वे सब संख्यात होते है।

पुंवेदेसख्यास्ति संयतासंयते सामान्योक्तम् ॥
सकलसंयमादिषु गुणस्थानवत्संख्याऽपगतवेदाः ॥ ४२३ ॥

पुरुषवेद वाले जीवों की संख्या जिसप्रकार सासादन आदि गुणस्थानों तथा मिश्र असयत सयतासयत जीवों को सख्या सामान्य से कही गई गुणस्थानों की चर्चा में कहे प्रमाण है तथा वेद रहित जीव सूक्ष्म सांपराय से लेकर अयोग केवली गुणस्थान तक की संख्या पहले कही जा चुकी है ये असंयतादि अयोगी पर्यन्त गुणस्थान सम्यग्दृष्टि जीवों के ही हुआ करते है।

क्रोध मान माया नव नो कषाय निवृन्ताते स्थान्वत् ।
लोभकषायेऽन्ते सूक्ष्म सांपरायकोऽ कषायेऽन्याः ॥४२४॥

क्रोध, कषाय, मान कषाय, माया नव नौ हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्ता, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नवंसक वेद ये सब नौ वे गुण स्थान तक होती है। अनंतानुवंधी कषाय के धारक मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त है तथा लोक प्रतर के असंख्यात वे भाग मात्र हैं। अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायो के धारक सम्यग्दृष्टि जीव पल्य के असंख्यात वे भाग है तथा सख्यात है। प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों के धारक देश संयत जीव संख्यात है। तथा सज्वलन क्रोध मान माया इन तीन तथा नव नो कषायो के धारक जीव संख्यात है तथा गुण स्थान के समान ही जानना योग्य है। तथा सूक्ष्म लोभ सूक्ष्म सापराय दशवे गुण स्थान होता है उसकी संख्या गुण स्थान के समान ही कही गई है। कषाय सहित जीव उपशांत मोह क्षीण मोह सयोग अयोग केवली ये गुण स्थान सम्यक्त्व के होने पर ही होते है इनकी संख्या गुण स्थान के समान जाननी चाहिए ॥४४९॥

कुमति श्रुतविभंगानि आमिश्रगुणस्थाने नित्योद्भूतम् ।
मति श्रुतावधिज्ञानमसंयते क्षीणमोहान्ते ॥४२५॥

दर्शन मोह को मिथ्यात्व प्रकृति के उदय मे रहते हुए जो ज्ञान होते हैं वे ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहे जाते है कुमति कुश्रुति विभगावधि ज्ञान ये तीन प्रथम मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर सासादन श्रौर मिश्र गुण स्थान तक के जीवो के होते हैं। सम्यक्त्व के होने पर जो ज्ञान होते है वे सम्यग्ज्ञान कहलाते हैं वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, श्रवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान श्रौर केवलज्ञान ये सम्यग्ज्ञान है वे ज्ञान असंयत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह तक नो गुण स्थानो मे मति श्रुति श्रवधिज्ञान होता है परन्तु मन पर्ययज्ञान विशेष चारित्र के धारक प्रमत्त सयत से लेकर क्षीण मोह पर्यन्त मे सात गुण स्थानों मे होता है ।।४२५।।

कुज्ञाने कुदृष्टिनोऽनंतानंताविभगेऽसख्याताः।
प्रागसयतं जात क्षीणान्तें मति श्रुतावधिः ।।४२६।।

कुमति कुश्रत के धारी मिथ्यादृष्टि जीव लोक प्रमाण है अथवा अनतानत है विभगावधि ज्ञान के धारी मिथ्यादृष्टि जाव असख्यात जगत प्रतर श्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण है अथवा असख्यात है। मति श्रुति ज्ञान के धारक जीव असख्यात है अथवा अवधिज्ञान के धारक सम्यग्दृष्टि जीव असख्यात है ये तीनो ज्ञान असयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुण स्थान से लेकर बारहवें क्षीण मोह क्षदमस्थ गुण स्थान के धारक जीवो के पाए जाते है। इनकी सख्या प्रत्येक गुण स्थान के समान सख्या जानना चाहिए। विशेष यह है कि सम्यग्दृष्टि देव व नारकी त्रियच मनुष्यो मे अवधिज्ञान और मति श्रुति ज्ञान पाए जाते है ।।४२६।।

मनः पर्यये जीवाः सख्याताः प्रमत्तादि क्षीण मोहे।
केवलज्ञाने द्वे स्थः गुण स्थान वच्च ज्ञातव्यः ।।४२७।।

मनः पर्यय ज्ञान नियम से प्रमत्त गुण स्थान वाले किसी ऋद्धि के धारक विशेष तपस्वी व चारित्र की वृद्धि करने वाले मुनि के होता है। प्रमत्त से लेकर क्षीण मोह क्षद्मस्थ तक के जीवो के होता है। तथा एक मनुष्य पर्याय सकल सयमी के ही होता है। क्यो कि मति श्रुति तथा अवधिज्ञान ये चारो गति वाले जीवो के हो सकते है परन्तु यह नियम मनः पर्यय ज्ञान के लागू नही होता है। दूसरी बात यह है कि मन. पर्यय ज्ञान मनुष्य लोक प्रमाण क्षेत्र में ही होता है व जानता है। प्रमत्त गुणस्थान वाले किन्ही ऋद्धि धारकों के होता है सबके नही। मनः पर्यय ज्ञानियो की सख्या गुण स्थान के समान समझना चाहिए। अथवा सख्यात जीव होते है। केवलज्ञान के दो गुण स्थान है सयोग और अयोग केवली इनकी संख्या पहले कही जा चुकी है गुण स्थानो की चर्चा मे वहा से जानना चाहिए ।।४२७।।

प्राक् चतुर्गुण स्थानेऽ सयतोत्तरे संयतासंयताः।
अनन्तानन्तोऽसंख्याः संयता संयताः सयताः ।। ४२८।।

पहले गुण स्थान से लेकर मिश्र गुण स्थान पर्यन्त जीव अनतानत है तथा असख्यात गुण स्थानवर्ती व संयता सयत प्रमत्त सयत जो संख्यात होते है तथा संयता सयत जीवो का एक सयतासयत गुण स्थान होता है।

विशेष यह है कि मिथ्यात्व गुण स्थान का सम्बन्ध नित्यनिगोद इतर निगोद

पृथ्वी जल तेल वायु प्रत्येक साधारण वनस्पति तथा अप्रतिष्ठित प्रतिष्ठित एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय असेनी पचेन्द्रिय जीव तथा त्रियंच देव नार की व मनुष्य सब की संख्या असंयत सम्यग्दृष्टि को भी संकलन करने पर चार गुण स्थान असंयम में ही होते है वे असंयत जीव अनन्तानन्त होते है। सयता संयत जीव सख्यात ही होते है।

सामायक छेदोपस्थापने प्रमत्तादनिवृत्तकरणे।
परिहार विशुद्धे द्वे प्रमत्ता प्रमत्ते संख्याता: ॥४२९॥
सूक्ष्मंसांपराये खलु यथाख्याते संयाताश्चजीवाः।
तेऽपि सम्यग्दृष्टिनः गुणस्थानवत् संख्यात्परा: ॥४३०॥

सामायिक चारित्र प्रमत्त नामक छठवे गुण स्थान से लेकर अनिवृत्त करण तक चार गुण स्थान ही होते है। परिहार विशुद्धि सन्यत वाले जीव प्रमत्त और अप्रमत्त दो गुण स्थान में होते है। तथा छेदोपस्थापन चारित्र भी प्रमत्त गुण स्थान से लेकर अनिवृत्त गुण स्थान तक चार गुण स्थान होते है। तथा सूक्ष्म सापराय सयत का एक सूक्ष्म सांपराय स्थान है। यथाख्यात चारित्र संयम में चार गुण स्थान होते है। उपशांत मोह क्षीण मोह, सयोग केवली अयोग केवली इनमें होता है। प्रमत्त सामायिक चारित्र के धारक जीवों की सख्या गुर्ण स्थान के समान कही गई है तथा परिहार विशुद्धि वाले जीव संख्यात है तथा छेदोपस्थापना वाले जीव व सूक्ष्मसापराय यथाख्यात चारित्र के धारी जीव गुण स्थान की चर्चा में कहे प्रमाण है ये सब सयम सम्यग्दृष्टि जीवों के होते है ॥४२९॥४३०॥

चक्षुदर्शनेऽसंख्यात चक्षुदर्शने कुदृष्टयोऽनन्ताः।
अवधिदर्शनेऽसंख्यात्सकलेन्द्रियार्भवन्ति जीवा: ॥४३१॥
नोद्भवन्ति कुदृष्टेषु केवलदर्शनं केवलज्ञानवत्।
असख्यातानंताश्च सदृष्टि मिथ्यादृष्टिनः ॥४३२॥

चक्षुदर्शन वाले जीव असख्यात होते है तथा अचक्षुदर्शन में मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त होते है अवधिदर्शन वाले जीव असंख्यात होते है वे सब ही सकलेन्द्रिय समनस्क होते है। प्राय. अवधि दर्शन में देव नारकी त्रियच व मनुष्य चारों गति वाले सम्यग्दृष्टियों के ही होता है मिथ्यादृष्टि जीवों के अवधि दर्शन नही होता है। एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तथा मिथ्यादृष्टि जीवो के अवधिदर्शन नही होता है। इसलिए अवधिदर्शन वाले जीव अवधिज्ञान के समान ही होते है चक्षुदर्शन मे चार इन्द्रिय से लेकर क्षीण मोह पर्यन्त मिथ्यादृष्टि प्रथम गुण स्थान से लेकर बारहवे क्षीण मोह तक होते है वे जीव असंख्यात होते है। अचक्षुदर्शन मे एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त सब जीव होते है। तथा मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर क्षीण मोह पर्यन्त वाले जितने जीव है उन सबके होता है इसलिए उनकी सख्या अनन्तानन्त है। ये दोनो दर्शन भव्य और अभव्य दोनों के होते है परन्तु अवधिदर्शन सम्यग्दृष्टि जीवो के ही होता है अन्य के नही। केवल दर्शन केवलज्ञान के समान क्योंकि केवलदर्शन केवलज्ञान प्राय: एक साथ ही उत्पन्न होते है। इनकी संख्या केवलज्ञान के समान है ॥४३१॥४३२॥

कृष्णनीलकापोतत्रिलेश्याष्वनंताजीवाः ।
पीतपद्म लेश्यायोश्च संयतासंयताश्च संयताः ॥४३३॥
महिला वेदवत्सन्ति शुक्ल लेश्या युक्तामिथ्यात्विनः ।
भूषयन्ति सयोगान्तारलेश्याऽयोगिनः जिनाज्ञातिव्यः ॥४३४

कृष्णलेश्या मे स्थित एकेन्द्रिय से लेकर सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक चार गति वाले जीव अनन्तानन्त है। तथा नील लेश्या मे स्थित अनन्त जीव है। तथा कापोत लेश्या में एकेन्द्रिय से लेकर पर्याप्तक पचेन्द्रिय चार गति वाले मिथ्यादृष्टि आदि से लेकर असयत गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि तक के जीव स्थित होते है। इसका कारण यह है कि अनन्तानुबधी कषायों का उदय चौथे गुण स्थान वाले जीवो के पाया जाता है। तथा बध से विच्छुत्ति सासादन गुण स्थान में ही होता है परन्तु उदय चौथे गुण स्थान वाले उपशम सम्यग्दृष्टि के पाया जाता है जिससे सम्यक्त्व का नाश कर सासादन कर मिथ्यात्वी बन जाता हैं। कापोत लेश्या वाले जीव भी अनन्तानन्त होते हैं। पीतपद्म लेश्यायो में स्थित मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त संयत गुण स्थान वालें होते है वे भी द्रव्य स्त्रियो के समान असख्यात जीव होते है। पीत पद्म ये लेश्यायें शुभ है वे नरक गति मे नही होती है ये तीन गति वाले जीवो में ही पाई जाती है। शुक्ल लेश्या में मिथ्यादृष्टि प्रथम गुण स्थान से लेकर सयोगीजिन तक के जीव पाए जाते है वे जीव तीन गतियो की अपेक्षा असख्यात होते हैं। ये सब लेश्यायें कषायों के तारतम्य रूप से होती है परन्तु सयोग केवली भगवान के कषाये तो नही रह जाती है? सयोगी जिनके योगों की अपेक्षा करके शुक्ल लेश्या कही गई है ऐसा जिन प्रवचन है अयोगी जिन लेश्या रहित होते है।

भव्योऽनंतानन्ता सर्वस्थानेषु खलु दीव्यन्ति ये ॥
पुनोऽभव्याऽनंताश्च मिथ्यात्वैव स्थानं नित्यम् ॥ ४३५

भव्य जीव अनन्तानंत है वे मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अयोगी गुणस्थान पर्यन्त प्रकाशमान हो रहे है। तथा अभव्य जीव अनन्त है वे एक मिथ्यात्व गुणस्थान को ही विभूषित करते रहते है। भव्य जीवो के गुणस्थान भावानुसार बदलते रहते है। जब मिथ्यात्व भाव होता है। व मिथ्यादृष्टि जब सम्यक्त्व भाव होना है तब सम्यग्दृष्टि होते है। जब मिथ्यात्व और अनतानुबधी कषायो का उपशम या क्षयोपशम या क्षय हो जाता तब भव्य जीव सम्यग्दृष्टि बन जाता है जब कषायो की गति मदतर होती जाती है वैसे ही परिणामो की विशुद्धता होती जाती है तव देश सयताद्दि गुणस्थान होते है। जव कषायों का उपशम होता है तब उपशमिक भाव होता है जब कषायों का क्षय हो जाता है तब क्षायक सम्यक्त्व यथाख्यात चारित्र हो जाता है। यथाख्यात होने पर ज्ञानावरणादि कर्मों का घातियाओ का नाश कर डालता है तव केवली वीतरागी सर्वज्ञ हो जाते है। भव्य अभव्य दोनों भावों से रहित सिद्ध भगवान होते है ॥ ४३५ ॥

कुदृष्टयोऽनतानंताः सासादन मिश्रासंयताजीवाः ।
उपशमिक क्षायक क्षयोपशमिक सम्यक्त्वानि ॥ ४३६०॥

पल्यस्या संख्येयभागः संख्यातसंख्यातं गुणितं नित्यम् ॥
परमागमे च भणितं संख्या सर्वं गुणस्थाने ॥ ४३७ ॥

संसार अवस्था में तत्वार्थ श्रद्धान से रहित बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव तो अनंतानंत होते है। वे अपने आत्मा के त्रिभेदों के ज्ञान श्रद्धान से रहित होते है उनको देव धर्म गुरु के गुण स्वभाव को न जानने व श्रद्धान के अभावों में मिथ्यात्व के पोषक देव धर्म गुरुओं की अराधना कर मिथ्यात्व में ही रत रहते है। मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोक प्रमाण हैं। तथा सासादन सम्यग्दृष्टि मिश्र सम्यग्दृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि तथा सयतासयत पल्य के असंख्यात वे भाग प्रमाण होते है। असयत चौथे गुण स्थान के आगे वाले जीव नियम से सम्यग्दृष्टि होते है। चौथे गुण स्थान में प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। तथा क्षयोपशम और क्षायक सम्यक्त्व होता है। इस सम्यक्त्व वाले जीव सयमासयम प्रमत्त अप्रमत्त सयम के धारी होते है। परन्तु विशेष यह है कि अप्रमत्त गुण स्थान में दो भेद हो जाते है। पहला स्व स्थान दूसरा सातिशय सातिशय वाला जीव श्रेणी आरोहण करने के सन्मुख होता है। तबवेदक सम्यक्त्व की प्रकृति को दबाकर द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि बन जाता है। और श्रेणी चढ़ने की पूर्ण तैयारी कर लेता है तब अपूर्व करण गुण स्थान सातिशय वाले जीव के होता है वहां दो प्रकार से श्रेणी चढता है एक उपशम दूसरी क्षपक श्रेणी से चढते है। जो उपशम श्रेणी से चढ़ते है वे उपशमक कहलाते है जो क्षपक श्रेणी से चढ़ते है—वे क्षपक कहे जाते है। अपूर्व करण उपशमक क्षपक होते हैं अनिवृत्त करण भी उपशमक क्षपक होते है-उपशमक जीव चारित्र मोह की २१ प्रकृतियों का उपशम करता है और क्षपक श्रेणी वाला उन ही प्रकृतियों का क्षय करता है। सूक्ष्म सांपरायक भी उपशमक और क्षपक होता है उपशांत मोह वाला जीव उयशामक ही होता है इसमें क्षपक श्रेणी वाले जीव का गमन नहीं। इस गुणस्थान में चारित्र मोह का नियम से उदय आता है और उपशांत से च्युत होकर नीचे-नीचे क्रम से वा अक्रम से उतरता है परन्तु क्षपक श्रेणी से चढनें वाला जीव दशवे से बारहवे क्षीण मोह में ही जाता है उसका पात नही होता है वह क्षीण मोह गुणस्थान के भागों में ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय का नाश कर केवली नाम के तेरहवे गुणस्थान को प्राप्त होता है। इन सबकी सख्या गुण स्थान में जितनी कही है उतनी हो जाननो चाहिये। विशेष यह है कि उपशम श्रेणी वाले जीवो की अपेक्षा क्षयक श्रेणी चढने वालों की संख्या बहुत विशेष होती है, क्षायक सम्यग्दृष्टियो की अपेक्षा वेदक सम्यग्दृष्टियो की सख्या संख्यातगुनी है। चारों उपशामक तथा क्षपको की संख्या गुणस्थान के समान कही गई है संयतासंयत और प्रमत्त संयतों का काल बहुत है इसी कारण सख्या भी अधिक है यह मुणस्थान के समान ही है।

समनकाऽमनस्काश्च मिथ्यात्वेऽनंतानंताऽसंज्ञिनः।
संज्ञिनोऽसख्याताश्च मिथ्यात्वादिक्षीणेषु च। ४३८ ॥

संसारी जीव दो प्रकार के होते है एक असैनी (मनरहित) दूसरे समनस्क होते है। एकेंद्रिय जीव पृथिवी, जल, वायु, वनस्पति, तथा दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पांच इन्द्रिय तक के जीव असैनी होते है वे सब मिथ्यादृष्टि ही होते है और वे सब मिलकर

असेनी जीव अनतानंत होते है। समनस्क जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर क्षीण मोह तक बारहवे गुण स्थान पर्यन्त होते हैं वे सब चारो गति करने वाले जीव असंख्यात होते है। सैनी जीव देव और देविया तथा नारकी जीवो के गुण स्थान चार होते है। तथा त्रियंचों के पाच गुण स्थान होते है। तथा मनुष्यों में बारह गुणस्थान होते है वे सब ही गुण स्थान पूर्ण विशुद्ध पर्याप्तिवालो के ही होते है अपर्याप्त अवस्था में नही होते है। चौथे गुण स्थान वाले जीव नियम से सम्यग्दृष्टि ही होते है वे समनस्क ही होते है तथा चौथे से बारहवे गुण स्थान तक जीव सम्यग्दृष्टि सैनी होते है। सयोग और अयोग केवली समनस्क अमनस्क के विकल्प के रहित होते है। उनको सख्या गुणस्थान के समान कही गई है।

अनाहारकाऽऽहारका: त्रयोदशगुणस्थानेषुहारका: ॥
अनाहारका:मिश्रं वर्ज्य सयोगस्थानेषु ॥ ४३९ ॥

ससारी जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर तेरहवे गुणस्थान पर्यन्त आहारक ही होते है। तथा अनाहारक जीव मिथ्यात्व, सासादन, असयत सम्यग्दृष्टि व सयोग केवली इन चार गुण स्थानो मे होते है।

विशेष यह है कि विग्रह गति में जीव अनाहारक होते है। जो कोई जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण करने के लिए जाता है जब तक वह नवीन शरीर को धारण नही कर लेता तब तक अनाहारक होता है बीच की गति को विग्रह गति कहते हैं उसमें जीव एक समय या दो समय या अधिक से अधिक तीन समय तक अनाहारक होता है। तत्पश्चात नियम से आहारक हो जाता है। जीव का मरण मिथ्यात्व सासादन असयत सम्यग्दृष्टि इन तीन गुणस्थानो में ही होता है। सयता सयत से लेकर बारहवे व तेरहवे इत्यादि गुणस्थान में मरण काल मे जीव नियम से असयत हो जाता हैं। समुद्घात के सात भेद होते है। वेदना समुद्घात काषाय समुद्घात मरणान्तिक समुद्घात आहारक समुद्घात तैजस समुद्घात के दो भेद होते है शुभ और अशुभ और केवली समुद्घात कुल समुद्घात के सात भेद है। जब केवली भगवान के आयुकर्म के निषेक थोडे रह जाते है और वेदनीय नाम गोत्र की स्थिति के निशेक अधिक रह जाते है तब उस आयु के समान करने के लिए केवली समुद्घात होता है वह आठ समय का होता है। प्रथम समय में दण्डाकार होकर के आत्मप्रदेश शरीर को न छोड़ते हुए बाहर निकलते है। दूसरे समय मे कपाट रूप आत्मप्रदेश होते है तीसरे समय मे जगत प्रतर होते है चौथे समय मे आत्म प्रदेश लोक पूर्ण होते हैं अथवा लोकाकाश के जितने प्रदेश है उन सब प्रदेशो पर आत्मप्रदेश स्थित हो जाते है जिससे अघाति कर्मो की स्थिति काण्ड होकर आयु के बराबर स्थिति रह जाती है तत्पश्चात प्रथम समय मे लोकपूर्ण मे आत्म प्रदेशो का समिटना होता है तब लोक प्रतर लोकप्रतर से कपाट रूप से दण्डरूप आत्मप्रदेश हो जाते है। तथा एक समय दण्ड रूप रहकर पहले के समान ही निज शरीर मे व्याप्त हो जाते है वहाँ पर भी जीव अनाहारक होते है। समुद्घात की अपेक्षा से तेरहवे गुण स्थान वाले केवली भी अनाहारक होते हैं। तथा अयोग केवली व सिद्ध भगवान निरन्तर अनाहारक ही रहते है। आहारक जब एक

शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर छहों पर्याप्तियों के योग्य नो कर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर लेता है तब जीव आहारक होता है। आहार प्रथम समय में जब नोकर्म स्कन्धों को ग्रहण करता है तत्काल में उपादयोग होता है उसके पीछे वृद्धियोग होता है जब पूर्ण छहों पर्याप्तियां होने में एक समय बाकी रह जाता है तब पूर्णयोग होता है। इस योग की पूर्ति पर पांच इन्द्रिय छठा मन श्वास्वोच्छ्वास मनबल, वचनबल, कायबल, आयु ये सब पूर्ण हो जाते हैं इन सबका काल अन्तर्मूहूर्त है और एक एक काल भी अन्तर्मूहूर्त का है। अन्तर मूहूर्त के बहुत भेद हैं। आहारक और अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीव अनतानंत होते है। सासादन से लेकर सयोगी गुण स्थान् तक सब जीव आहारक होते है वे सब जीव अपने अपने गुणस्थान के समान होते हैं। मिश्र गुण स्थान मे जीव का मरण नही होता है मरण काल मे मिश्र गुणस्थान वाला जीव नियम से मिथ्यादृष्टि बन जायगा या असयत सम्यदृष्टि बन जायगा तब ही उसका मरण होगा। सम्यग्दष्टि जीव मरण करके मनुष्यों में उत्पन्न नही होता है देव मरकर देवो में नही, नारकी मरकर नारकीयो में नही उत्पन्न होते है। तथा देव भी नारकी नही होते है नारकी मरण कर देव नही होते है, सम्यग्दृष्टि त्रिय च मरण कर त्रियचों मे उत्पन्न नही होते हैं। विशेष यह है कि देव मरण के पीछे मनुष्यों में या त्रियचो में उत्पन्न होते है तथा नारकी मरण कर मनुष्यो में व त्रियत्रों में उत्पन्न होते है। सम्यग्दृष्टि देव व नारकीक मर र नियम से मनुष्यो में ही उत्पन्न होते है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य त्रियच मरण कर देवो मे ही उत्पन्न होते है। मिथ्यात्व सहित देव व नारकी पचेन्द्रि त्रियचों में जन्म लेते है व देव एकेन्द्रियो में भी जन्म लेते है। बाल तपकर तथा अकाम निर्जरा कर के मनुष्य भवनवासी ब्यन्तर ज्योतिषी देवों मे उत्पन्न होते है। तथा सब नरकों व त्रियंचो में भी उत्पन्न होते है व मनुष्यो में भी जन्म लेते है। नारकी मरण कर तीर्थकर हो सकते है परन्तु अन्य महापुरुषों में वे जन्म नही ले सकते है। देव सम्यग्दृष्टि तीर्थकर व बलदेव वासुदेव चक्रवर्ती कामदेव आदि पदों को प्राप्त होते है। सम्यक्त्व होने के पूर्व में नरक व त्रियच व मनुष्य आयु का वध कर लिया है उसके पश्चात सम्यक्त्व की प्राप्ति हो तो वे जीव प्रथम नरक में जाते है यदि त्रियंच गति आयु का बध कर लिया हो तो मरण कर भोग भूमि के मनुष्य व त्रियच नियम से होते है। आगे के नरकों में मिथ्यादृष्टि जीव जाते है। सम्यग्दृष्टि जीव नरक में वास कर दुःखों का भी अनुभव करते हुए आकुलित नही होते है वे विचारते है कि पूर्व में खोटे कर्म किये है जिसका फल तो तेरे को ही भोग ना होगा अब खेद खिन्न होने से क्या प्रयोजन इस प्रकार समझा कर दुःखों के बोझा को वहन करते है। मिथ्यादृष्टि भी इन दुःखों का अनुभव करते हुए संक्लिष्ट परिणामी होता है इसलिए मरण कर त्रियंचो में जन्म लेता है सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यो में। मिथ्यादृष्टि जीव बहुत हैं और सम्यग्दृष्टि जीव थोड़े है। इस प्रकार सख्या का निरूपण किया है विशेष आगम से जान लेना चाहिए। ४३९।

इति संख्या निरूपण

सदामिथ्यात्वे क्षेत्र रिजुमति वासं सकलस
द भव्या भव्यानां प्रथम गुणस्थानमविभवान्

गुणस्थानं सासादन मगृहिता योग मवशा
असंख्याद्भागक्षेत्र मवि ससयोगेन सकलम । ४४० ।

मिथ्यादृष्टि जीव सब लोक मे निवास करते है इसलिए उनका क्षेत्र सब लोक है मिथ्यत्व गुण स्थान वाले भव्य और अभव्य सब ही जीव होते है पृथ्वी कायक अवकायक तेजकायक वायुकायक वनस्पतिकायक नित्यनिगोद इतर निगोद (दो इन्द्रिय तीन) इन जीवो का निवास क्षेत्र सब लोक है। तथा दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय सैनी असंनेपचेन्द्रिय जीव लोक नाड़ी के भीतर निवास करलेते है। तथा पर्याप्ति की अपेक्षा से सर्व लोक क्षेत्र बन जाता है इस लोक मे कोई आकाश प्रदेश बाकी नही रहा कि इस जीव ने उसको अपना जन्म क्षेत्र न बना लिया हो। सब जीव लोक के असख्यातवे भाग मे निवास करते है। भव्य सासादन सम्यग्दृष्टि मिश्र सम्यग्दृष्टि असख्यात सम्यग्दृष्टि सयतासयत गुणस्थान वाले जीवो का क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग क्षेत्र है। विशेष यह है कि सयतासंयत गुणस्थान त्रियच व मनुष्यो मे ही होते है। मनुष्यो का क्षेत्र तो ४५ लाख योजन वाला अढाई द्वीप क्षेत्र है। त्रियचो का क्षेत्र स्वयभूरयण पर्यन्त निवास क्षेत्र है वह भी लोक का असख्यात भाग होता है। इसलिए लोक का असख्यात का भाग कहा गया है। आगे प्रमत्तादि सयोगी और अयोगी गुण स्थान मनुष्यो के ही पाये जाते है सो मनुष्यो का क्षेत्र सामान्य से ४५ लाख योजन मात्र है। विशेष यह है कि जिन केवलीयो की आयु कर्म कम रह गया है शेष अघातिया कर्मो की स्थिति अधिक रह गई है उन केवलियो के समुद्घात होता है तत्काल मे नीचे से लेकर ऊपर पर्यन्त सब लोक की ऊचाई तक आत्म प्रदेश दण्डाकार होते हैं दूसरे समय में कपाट रूप फैलते है। तीसरे समय मे जगत प्रतर रूप से आत्म प्रदेश होते है चौथे समय मे लोक पूर्ण करते हैं। तब उस काल मे मनुष्यो का क्षेत्र सर्वलोक होता है। जब आत्म प्रदेशो को समेंटते है तब पुनः चार समय मे चरमशरीर के बराबर आत्मप्रदेश हो जाते है। तथा मरणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा गति आगति के प्रमाण से मनुष्यो का निवाश क्षेत्र लोक का असख्यात भाग प्राप्त होता है कोई छठवेनरक का नारकी मनुष्यायु का वध कर मनुष्य भव के सन्मुख हुआ तब मनुष्य का क्षेत्र छह राजू नीचे हुआ। तथा कोई देव सर्वार्थ सिद्धि में से मनुष्यायु का वधकर च्युत हुआ और विग्रह गति को प्राप्त हो एक मोड़ा या दो मोड़ा लेकर मनुष्य मे उत्पन्न हुआ इस अपेक्षा से सात राजू ऊपर मनुष्यो का क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग ही होता है। सम्यग्दृष्टि जीव मरण कर मात राजू क्षेत्र मे उत्पन्न होते है इस प्रकार मनुष्यो का क्षेत्र दश राजू से कुछ कम प्राप्त होता है। असख्यातवा भाग प्राप्त होता है ।। ४४० ।।

नारकेषु चतुर्गुण स्थानेषु च लोकस्यासंख्येय भाग. ।
त्रियश्चा सर्व लोकः मिथ्यात्वादि संयता सयताः ।। ४४ ।।

नरक गति मे नरको मे मिथ्यात्व, ससादन, मिश्र, असयतादि चार गुण स्थान होते हैं उन सातों पृथ्वीयो में निवास करने वाले नारकियो का सामान्य से लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र है। एक जीव की अपेक्षा शरीर की अवगाहना के समान क्षेत्र है।

त्रियंच जीवों के सामान्य से मिथ्यात्व से लेकर संयता संयत तक पांच गुण स्थान होते है परन्तु मिथ्यादृष्टि त्रियंचो का सर्वलोक क्षेत्र है। इसका कारण यह है कि पृथ्वी कायक और पृथ्वी जीव, जल कायक और जल जीव, अग्नि कायक और अग्नि जीव, वायुकायक वायु जीव वनस्पति कायक, वनस्पति जीव सर्व लोक मे जन्म मरण करते है (इसलिए) ये सब जीवो का एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। दो इन्द्रिय से लेकर सैनी पंचेद्रिय जीव भी मरणान्तिक समुद्धात की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र होता है अथवा लोक का असख्यातवा भाग क्षेत्र होता है। (सासादन) भव्य सैनी पचेन्द्रिय त्रियंच पर्याप्तक साकार निराकार उपयोग से युक्त जीवों के सासादन मिश्र असयत सम्यग्दृष्टि और सयतासंयत गुण स्थान पांच होते है इन गुण स्थान वाले जीवों की अपेक्षा लोक का असंख्यात भाग क्षेत्र होता है। क्योकि दो तीन चार सैनी असैनी जीव त्रसनाली के अंतर्गत ही पाये जाते है। त्रियंच मरण कर या नारकी मरण कर मनुष्य लोक के त्रियंचो में उत्पन्न होते है तब लोक का असख्यातवा भाग क्षेत्र होता है। एक जीव की अपेक्षा जितना मुक्त शरीर है उतना ही क्षेत्र होता है ॥ ४४१ ॥

नृगतौ नृणां मिथ्यात्वाद्य योग केवलि स्थानः क्षेत्रः।
लोकस्यासंख्य भागं समुद्घाते सर्वलोकम्: ॥ ४४२ ॥

मनुष्यगति में गुणस्थान चौदह होते हैं इनका क्षेत्र भी लोक का असख्यातवा भाग होता है। जो कोई देव मनुष्य आयु बाधकर मरा और मनुष्य में उत्पन्न हुआ इस प्रकार छह राजू से कुछ अधिक क्षेत्र हो जाता है तथा कोई नारकी नरक से मनुष्यायु का वंधकर विग्रह गति में है इस प्रकार भी मनुष्य का क्षेत्र छह राजू हो जाता है। यह लोक का असख्यातवां भाग है। केवली भगवान के समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक मनुष्यों का क्षेत्र होता है उस काल में त्रस नाली के बाहर भी मनुष्यो का (रहना) क्षेत्र प्राप्त हो जाता है। विशेष रूप से जितनी अपने शरीर की अवगाहना होती है उतना ही अपना निवास क्षेत्र होता है।

देवगतौ चतुरस्थानं लोकस्यऽसंख्येय भाग क्षेत्रम्।
दीव्यन्ते सर्वत्र: मरणान्तक वैक्रियक समुद्घात् ॥ ४४३ ॥

देवगति में देवों के चार गुणस्थान होते है। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असंयत सम्यग्दृष्टि इन चार गुण स्थान वाले देवों का निवास क्षेत्र लोक का असख्यातवां भाग है। अब मरणान्तक समुद्घात की अपेक्षा भी छह राजू प्राप्त होता है वैक्रियक समुद्घात की अपेक्षा देवो के आठ राजू प्राप्त होता है मान लीजिये कि कोई देव अपनी अवधि ज्ञान से जान लेता है कि मेरा मित्र तीसरे नरक में गया है तव वह वैक्रियक समुद्घात कर सोलहवे स्वर्ग से चलता है और तीसरे नरकत क पहुचा और सम्बोधन करा तव देवों का क्षेत्र आठ राजू प्रमाण क्षेत्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार भी लोक का असंख्यातवा भाग ही प्राप्त होता है। अथवा कोई मिथ्यादृष्टि देव मरणान्तक समुद्घात कर निगोद में जावे तो भी देवों का सर्व-लोक क्षेत्र प्राप्त नही होता है वह भी असंख्यातवां भाग क्षेत्र होता है। अथवा जितनी [illegible] अवगाहना व विहार करने का क्षेत्र है ॥ ४४३ ॥

एकेन्द्रियाणां सर्वं लोकं विकलेन्द्रिय सकलेन्द्रियाणां
लोकस्याऽसंख्यातभागेषु निवास क्षेत्रं च ॥ ४४४ ॥

पृथ्वी कायक जल कायक अग्नि वायु वनस्पति कायक एकेन्द्रिय जीव सब लोक मे जाते हैं अथवा सर्व लोक सामान्य से जन्म क्षेत्र है अथवा निवास क्षेत्र है। तथा दो तीन चार पाँच इन्द्रिय सैनी असैनी जीवों का निवास क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग में से कुछ भाग मे निवास करते हैं क्योकि त्रस जीव त्रस नाली के अन्तर्गत ही रहते हैं बाहिर नही। मरणान्तिक और वेदना तथा वैक्रियक व केवली इन समुद्घातो की अपेक्षा विचार करने पर प चेन्द्रिय त्रश जीवों का सर्व लोक क्षेत्र होता है। तथा वैक्रियक और मरणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा भी लोक का असख्यातवा भाग दोइन्द्रिय सेलेकरप चेन्द्रिय जीवो का निवास क्षेत्र होता है। तथा अपने-अपने शरीर की अवगाहना के प्रमाण क्षेत्रकहा गया है। विशेष यह है कि एक समय में पाई जाने वाली पहले कही गई सख्या क्षेत्र सहस्र पृथकत्व सख्यावाले सयोग केवली स्वस्थान अपने अपने क्षेत्र की अपेक्षा से लोक का असख्यात का भाग क्षेत्र है। असख्यात भाग इस कथन से प्रतर समुद्घात होने पर लोक के असंख्यात के बहु भाग मात्र क्षेत्र जानना चाहिये। त्रिलोक सारमे कहाहै। सन्तासीदी चदुस्सदेत्यादिना। कथन से सब वातवलय अवरूद्ध क्षेत्र से सबलोक के असख्यात भागका एक भाग मात्र होने से हीन हो तो सब लोक उनका क्षेत्र -होता है लोक पूर्ण की अपेक्षासे सबलोक क्षेत्र कहा गया है। अथवा असख्यात वे भाग इस प्रकार शब्द से समुद्घातकालमें असख्यातभाग होने पर भी परपृष्ट इससे दण्डकपाट प्रतर -लोक पूर्ण करता है इस अपेक्षासे पचेन्द्रियो का सबलोक क्षेत्र कहा है। ३७९ ॥

पंचस्थावराणां च क्षेत्रः सर्वलोकं त्रस कायकाना-मेव च ॥
नृवद् वांग्मनसयोगिनां मिथ्यात्वान्ते सयोगिनां च। ४४५

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति इन पच स्थावतरो के एक मिथ्यात्व का ही उदय रहता है इनका निवास क्षेत्र सवलोक है। दोइन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त त्रश कायक जीवो का क्षेत्र लोकका असख्यातवा भाग है अथवा सर्वलोक केवली समुद्घात की अपेक्षा से कहा गया है मन, वचन योग वाले जीवो का निवास क्षेत्र लोक का असंख्यातका भाग है। वचन योग वाले जीव मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर सयोगी जिन तक तेरह गुण स्थान होते है। वे जीव दो इन्द्रिय से लेकर सैनी पंचेन्द्रिय पर्यन्त होते है। तथा मनोयोगी एक पचेन्द्रिय ही होते हैं वे भी मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सयोगी केवली तक होते हैं इनका निवास क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग होता है। काययोग की अपेक्षा विचार करने पर एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त सब जीव काययोगी होते है। एकेन्द्रिय की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र प्राप्त होता है। दोइन्द्रिय तीन चार इन्द्रिय असैनी पचेइन्द्रिय तक जीवों के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है तथा सयोगीपर्यन्त काय योग वाले जीवो के लोक का असख्यातवा भाग क्षेत्र है तथा पचेन्द्रिय काययोगी केवल समुद्घात की अपेक्षा सर्व लोक क्षेत्र होता है वैक्रियक काय वैक्रियक मिश्र काययोग मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर असयत नामके चौथे गुण स्थान तक

होता है उनका क्षेत्र लोक का असंख्यात भाग है। औदारिक मिश्र चार गुण स्थानों में होता है। मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, सम्यग्दृष्टि तथा सयोग केवली। आगे तीन में तो मरण की अपेक्षा क्षेत्र कहा गया है परन्तु सयोग केवली के मरना भाव होने पर भी समुद्‌घात अवस्था में अनाहारक नियम से होते है। मरन होने के पोछे जीव संयता-संयतादि गुण स्थानो को छोड़ कर नियम से चौथे गुण स्थान मे आजाता है उसकाल में ही अनाहारक होता है उसका काल एक समय, दो समय, तीन समय, जीव अनाहारक कहा जाता है तत्पश्चात नियम से आहारक हों जाते है। इनका क्षेत्र मिथ्यादृष्टियो का तथा केवली समुद्‌घात का क्षेत्र सब लोक है। सासादन असंयत सम्यग्दृष्टियो का क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग है। तथा आहारक और आहारक योग वाले जीवों का क्षेत्र लोक का असख्यातवां भाग है। तथा आहारक मिश्रवाले जीवों का गुणस्थान के समान ही होता है। यह आहारक और आहारक मिश्र प्रमत्त नामके छठवे गुण स्थान में ही होते है। कार्माणयोग वाले जीवो का क्षेत्र औदारिक मिश्र के समान ही जानना चाहिये वकार से यह सूचित किया गया है।

काययोगिनां मिथ्यात्वाद्ययोगिनां गुणस्थानवद्
स्त्री पुवेदानां खलु मिथ्यादृष्टिनिवृन्तानां ॥ ४४७
मिथ्या छ्ट्यादीनन्य निवृत्तानपगत वेदानां क्षेत्रम् ॥
वेदेनपुंसकेवा सर्वलोकः लोकासंख्यभागः ॥ ४४८

काययोग के सात भेद होते है जो इस प्रकार है औदारिक औदारिक मिश्र वैक्रियक वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माणयोग ये सब भेदों का कथन कहकर वेदो को अपेक्षा क्षेत्र कहते है। स्त्री वेद, पुरुष वेद, को अपेक्षा लोक का असख्यातवाँ भाग क्षेत्रहै इन दोनो वेद वाले जीवों के मिथ्यात्व से लेकर अनिवृत्त करण तक नो गुण स्थान होते है। नपुंसक वेद वाले जीवों का सर्व लोक क्षेत्र है तथा एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय असंनी जीव तक सबही नपुसक वेद वाले होते है। तथा नारको और सम्मूर्छन जितने जोव होते है। वे सब ही नपुंसक वेद वाले होते है। नपुंसक वेद में मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अनिवृत्ति करण गुण स्थान तक होते है। तथा त्रियंच मनुष्यों में भी नपुसक वेद वाले होते है। सर्व लोक क्षेत्र एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा से है। दो इन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त तक जीवों का लोक का असख्यातवा भाग क्षेत्र होता है। वेद रहित जीवों के पाच गुणस्थान होते है।

क्रोधमान मायाश्च लोभकषायाणां नवस्थानम्
गुणस्थावत्क्षेत्रं भणितं श्रीजिनागमे भव्यः ॥४४९॥

क्रोध मान माया इन तीन कषायों का उदय और सत्व नौवे गुणस्थान तक पाया जाता हैतथा लोभकषाय का उदय दशवे सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान तक पाया जाता है। एकेन्द्रिय तथा दोइन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्तमिथ्यात्व गुण स्थानवर्ती जीवों के चारो कषाये पायी जाती हैं। इनका सर्वलोक क्षेत्र होता है। तथा अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान सज्वलन क्रोध, मान, माया इन चारो का उदय प्रथम गुण स्थान से लेकर अनिवृत्ति करण नाम के नौवे गुण स्थान तक पाया जाता है इन कषायो से युक्त जीवों का क्षेत्र लोक का असख्यात वा भाग है तथा सूक्ष्म

लोभ का। इन कषायों से युक्त सब ससारी जीव होते है।

कुमतिश्रुतविभगिनां सर्वलोको वा लोकस्य क्षेत्रं
असंख्येयभागश्च स्थानं त्रयमिथ्यात्वादि वा। ४५०

कुमति कुश्रुति वाले जीवो के मिथ्यात्व, सासादन, और मिश्र तीन गुण स्थान होते है इन दोनो ज्ञान वाले जीवो का निवास क्षेत्र सर्व लोक होता है। क्योकि ये दोनो ज्ञान नित्य निगोदिया जीव के अक्षर का असंख्यातवा भाग मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान होते हैं और वे ज्ञान निरावरण होते है वे जीव सूक्ष्म और बादर भेद वाले होते है। वे सब जीव सब लोक मे फैले हुए हैं कोई एक आकाश प्रदेश बाकी नही कि जहा पर वे जीव नही पृथ्वी आदि स्थावरों मे भी मतिश्रुत ज्ञान पाये जाते हैं। तथा दोइन्द्रिय से लेकर सेनी पचेन्द्रिय तक मिथ्यात्व सासादन मिश्रवाले जीवो के ये दोनो ज्ञान पाये जाते हैं इसलिये उन दोनो का क्षेत्र सब लोक होता है। विभंगावधि ज्ञान देव, नारकी जीवो के होता है तथा त्रियच मनुष्यो के भी सम्भव हो इसका क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग है। विभंगावधि ज्ञान के तीन गुण स्थात होते है मिथ्यात्व सासादन और मिश्र ॥४७५॥

मतिश्रुतावधीनां च मनःपर्ययकेवलज्ञानीनां।
लोकस्या संख्येय भागोवा सर्वं क्षेत्र च ॥ ४५०

मति श्रुत और अवधि ज्ञान वाले जीवो का क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग है तथा मन पर्यय ज्ञानियो का क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग है तथा गुण स्थान असयत सम्यदृष्टि से लेकर क्षीण मोह तक के गुण स्थान होते है। मनःपर्यय ज्ञानियो का क्षेत्र सब लोक है अथवा मनुष्य लोक ही क्षेत्र होरहा है दूसरी बात यह भी हैं कि यह मन पर्यय ज्ञान सयमी छठवे गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह पर्यन्त वाले जीवो के होता है। केवल ज्ञानियो का क्षेत्र स्वस्थान की अपेक्षा लोक का असख्यात का भाग होता है समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र होता है। तथा गुण स्थान सयोगी और अयोगी दोही होते है। ॥४७६॥

पंचसंयतानां वा संसतासंयतानां च क्षेत्रम्।
लोकस्याऽसंख्येय गुणस्थानवद् भागः तथा ॥ ४५२ ॥

सामायिक क्षेदोपस्थापन ये दोनो सयम छठवे गुण स्थान से लेकर नौवें तक होते हैं परिहार विशुद्धि छठवे सातवे में सूक्ष्म सापराय एक गुण स्थान मे इन सबका क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग है तथा यथाख्यात चारित्र का क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग तथा सर्व लोक होता है संयमासयम एक गुणस्थान होता है वह भी त्रियच मनुष्यो के ही होता है उसका क्षेत्र भी लोक का असंख्यातवा भाग है। आगे के पांचो सयम मनुष्यो के ही होते हैं इसलिये इनका क्षेत्र मनुष्य लोक क्षेत्र है। ४७७

चक्ष्व चक्ष्व वधीनां चासर्वलोकः केवल दर्शनस्य।
मिथ्यादृष्ट्यादि क्षीण मोहकेवलीनां क्षेत्रम् ॥ ४५३ ॥

चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन केवल दर्शन वाले जीवो का क्षेत्र सामान्य से सर्वलोक अथवा

लोक का असख्यातवां भाग होता है विशेष अचक्षु दर्शन एकेन्द्रिय से लेकर क्षीण मोह तक के जीवो के होता है। जिसमे एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र है तथा दो इन्द्रियादि की अपेक्षा लोक का असंख्यात वा भाग है। चक्षुदर्शन यह चारइन्द्रिय से होता है और क्षीण मोह तक वाले जीवो के होता है सामान्य से लोक का असख्यातवा भाग है विशेष अपने इन्द्रिय की आवगाहना के प्रमाण होता है। अवधि दर्शन सम्यग्दृष्टी जीव के होता है इसका क्षेत्र अवधि ज्ञान के समान है तथा केवलदर्शन का केवल ज्ञानियो के समान ही क्षेत्र होता है।

कृष्णनीलकापोत लेश्यायुक्तानां सर्वलोकैव।
प्राक्चतुः स्थानं पीत पद्मे चशुक्ले ऽ सर्वक्षेत्रम्॥ ४५४॥

कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले जीवों का क्षेत्र निश्चय से सब लोक होता है पहले गुणस्थान से लेकर असयत सम्यग्दृष्टि तक चार गुणस्थान हाते है क्योकि एकेन्द्रियादि सव जीवो की अपेक्षाए सर्व लोक क्षेत्र होता है। पीतपद्मलेश्या वाल जीव मिथ्यात्व से लेकर अप्रमत्त तक गुणस्थान मे होते हैं। इन दोनों लेश्या वालो का क्षेत्र लोक का असख्यातवां भाग है, शुक्ललेश्या वाले मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर सयोगी गुणस्थान् तक होते है उनका क्षेत्र लोक का असंत्यातवा भाग है। अथवा भव के प्रमाण क्षेत्र होता है।

भव्याभव्यानां वा सर्वलोकक्षेत्रं सामान्यं च।
गुणास्थानवत्सर्वत्रैर भव्यानॉमिथ्यात्वैव ॥ ४५५ ॥

भव्य तथा अभव्य जीवो का सर्व लोक क्षेत्र होता है। क्योकि एकेन्द्रिय से लेकर सैनी पचेन्द्रिय तक भव्य और अभव्य दोनो ही पाये जाते है। परन्तु सासादन से लेकर अयोग केवली तक तेरह गुणस्थान भव्य जीवो के ही होते है। अभव्य जीवो का एक मिथ्यात्व गुण स्थान नियम से होता है। एकेन्द्रिय जीव सर्वत्र लोक में पाये जाते है जिनमें भव्य जीव अनंतानंत है अभव्यजीव भी अनत है तथा दूर भव्य भी अनत है वे सब मिथ्यादृष्टि होते हैं और उनके जन्म मरण का क्षेत्र सर्व लोक है। इस प्रकार एकेन्द्रिय भव्य अभव्य दूर भव्य इनकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र होता है। ऐसा कोई क्षेत्र वाकी नही रह जाता है कि जहां पर सूक्ष्म एकेन्द्रिय या वादर एकेन्द्रिय जीव न पाये जाय। मिथ्यात्व की अपेक्षा तीनो का निवास क्षेत्र सर्वलोक है गुणस्थान सासादनादि की अपेक्षा भव्य जीवों का क्षेत्र लोक का असख्यात वाँ भाग होता है। भव्य केवली समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक है तव अभव्य पन्चेन्द्रिय की अपेक्षा लोक का असंख्यातवा भाग क्षेत्र होता ॥ ४५५ ॥

उपशमक्षयोपशम क्षायक सम्यग्दृष्टीनां नित्यम्।
प्राक्चतुस्थानादि च यथायोग्य मयो गियन्तानां ॥ ४५६ ॥
सामान्यं क्षेत्रोक्तं सासादन मिश्र सम्यग्दृष्टीनां।
उपशमोपशान्तानां मिश्राप्रमत्तेऽयोगेक्षायकम्ः ॥ ४५७ ॥

सम्यक्त्व के तीन भेद होते हैं प्रथमोपशम द्वितियोपशम क्षयोपशम और क्षायक ये तीनो ही सम्यक्त्व भव्य जीवों के ही होते है चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होकर अयोग गुणस्थान तक वाले जीवों के होते है। श्लोक में यथा योग्य यह शब्द दिया है! इसका कारण यह है

कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व चोथे गुण स्थान में उत्पन्न होता है और अन्तर्मुहूर्त पीछे सम्यक्प्रकृति का उदय आ जाने पर वही सम्यक्त्व क्षयोपशम तथा क्षय होने पर क्षायक सम्यक्त्व होता है। श्रेणी चढते समय क्षयोपशम सम्यक्त्व को देश घाति या प्रकृति को दबाकर। द्वितीयोपशम कर श्रेणी चढता है उपशात मोह तक गुणश्रेणी निर्जराकर चढता है। इन दोनो प्रथम द्वितीय उपशम का क्षेत्र लोक का असख्यात वा भाग है। क्षयोपशम सम्यक्त्व का भी तत्प्रमाण ही है क्षायक सम्यक्त्व का क्षेत्र सर्वलोक वा लोक का असख्यातवा भाग है। सासादन और मिश्र का भी लोक का असख्यातवा भाग क्षेत्र है। केवली समुद्घात की अपेक्षा क्षायक सम्यक्त्व का क्षेत्र सबलोक होता है। मिथ्यात्व का क्षेत्र सर्वलोक होता है।

समनस्कानां असर्वं लोकक्षेत्रम्मनस्काना तथा।
सर्वक्षेत्र द्वयोर्विना सामान्योक्तं क्षेत्रं जिना ॥ ४५८ ॥

सैनी जीवो का क्षेत्र लोक का असख्यात्वाँ भाग होता है मनरहित जीवो का क्षेत्र सारवलोक है। समनस्क जीव तो देव नारकी पचेन्द्रिय त्रियच तथा मनुष्य होते है ये सब लोक के असख्यातवे भाग मे ही निवास करते हैं। समनस्क अमनस्क दोनो भावों से रहित केवली जिन होते है उनका क्षेत्र गुणस्थान के समान ही जानना चाहिये।

आहारक जीवानां मिथ्यादृष्टयादि सयोगान्ताना।
सामान्योक्तंक्षेत्र महारकाणां सर्वलोकम् ॥ ४५९ ॥

आहारकजीवो का क्षेत्रसामान्य गुणस्थानके समान कहा गया है क्योकि जितने ससारी देह धारी हैं वे सब ही आहारक होते है उनका क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग होता है (अनहारकजीवो) यह भी इस प्रकार है कि आहारक जीव सर्वलोक में पाये जाते है क्योकि वे एकेन्द्रिय सूक्ष्म बादर से लेकर विकलेन्द्रिय व सकलेन्द्रिय जीव होते है। अनाहारक जीव सर्वलोक मे पाये जाते है इसलिए इनका भी सर्वलोक क्षेत्र है। एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र अहारक जीवो के होता है। त्रसोकी अपेक्षा नही अनाहारक जीवों केविग्रहगति व केवली के समद्घात की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र होता है विशेष अपने-अपने शरीर की अवगहना के समान क्षेत्र होता है।

इति क्षेत्र प्ररूपणा।

मिथ्यादृष्टोना स्पर्शं सर्वलोकं च सासादनादि।
अयोगान्ताना च लोकस्याऽ संयेय भागः ॥ ४६२ ॥

मिथ्यादृष्टि एकेद्रिय जीवो का स्पर्श सब लोक मे किया जाता है वे सब लोक में निवास करते है। तथा दो इन्द्रिय तीन, चार, पाच इन्द्रिय असैनी व सैनी जीवो के द्वारा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। सासादनादि क्षीण मोह तक वाले जीवो के द्वारा लोक का असख्यात वा भाग स्पर्श किया जाता है। तथा सयोग केवलियो के स्वस्थान की अपेक्षा तो लोक का असख्यात वा भाग स्पर्श किया जाता है केवली समुद्घात की अपेक्षा से सब लोक स्पर्श किया जाता है। (त्रसनली) सासादन गुण स्थान वाले जीवो के द्वारा त्रसनली

के एक भाग के आठवे भाग वारहवे भाग व चौदहवें भाग से कुछ कम आकाश का स्पर्श करते है। सासादन मिश्र असयम सम्यग्दृष्टि जीव लोक का असंख्यातवा भाग स्पर्श करते हैं। अथवा त्रसनाली के आठवे भाग चौदहवे भाग से कुछ कम क्षेत्र को स्पर्श करते है। संयतासयत लोक नाडी के असंख्यातवे भाग को स्पर्श करते है।

अष्टौ द्वादश चतुर्दश भागे वा किंचिदूनं स्पर्शम्।
षट् चतुर्दशभागेन प्रमत्ताद्ययोगान्तानाम् ॥ ४६१ ॥

अथवा त्रसनाली के आठवे भाग तथा बारहवे भाग व चौदहवे भाग से कुछ कम आकाश प्रदेशों को स्पर्श करते है। प्रमत्तादि अयोगी गुणस्थान पर्यन्त वाले जीवो के द्वारा लोक नाडी का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। अथवा त्रशनाड़ी का आठवां भाग व वारहवां भाग व चौदहवा भाग से कुछ कम स्पर्श किया जाता है। तथा सयोग केवली समुद्घात की अपेक्षा सब लोक का स्पर्श करते है ॥ ४६१ ॥

नरकगतौ नारकैश्य लोकस्यासंख्येय भागं स्पर्शम्।
सन्ति चतुर्गुणस्थानं भागोहीनं हीनं किंचित् ॥ ४६२ ॥

नरकगति में नारकी जीवो के चार गुणस्थान पहले के होते है उन चार गुणस्थान-वाले नारकी जीवों के द्वारा लोक नाड़ी का असंख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है मिथ्या-दृष्टि जीवो का क्षेत्र लोक नाडी का छह राजू तथा सात राजू से कुछ कम क्षेत्र का स्पर्श किया जाता है। अथवा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। दूसरे आदि से लेकर सातवे नरक तक के नारकियो द्वारा पहले कहे गये प्रमाण से कुछ-कुछ कम क्षेत्र स्पर्श किया जाता है। यह लोक नाडी चौदह राजू प्रमाण है। उसके आठवे भाग को स्पर्श करते है। कोई बारहवे भाग को स्पर्श करते है कोई चौदहवे भाग को स्पर्श करते है। अथवा कुछ हीनता को लिये हुए स्पश करते है। सासादन मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। तीन गुणस्थान वाले जीव एक राजू दो तीन, चार, पांच राजू यथा लोक नाडी के चौदहवे भाग से कुछ ही कम क्षेत्र को स्पर्श करते है। एक नारकी जीव की अपेक्षा अपनी उपपाद शैया से लेकर अपने प्रस्तार के मध्य भाग का अपने शरीर प्रमाण स्पर्श करते है।

त्रियग्गतौ तिरश्चौ सलोकं मिथ्यादृष्टीना स्पर्शम्।
सासादनादि देश संयतः लोकसंख्यभागं ॥ ४६३ ॥

त्रियंचगति वाले मिथ्यादृष्टि त्रियचों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है त्रियच कहने से पृथ्वी, अप, तेज, वायु और पादप ससार निगोद नित्यनिगोद सूक्ष्म वादर सव जीव सर्वलोक में व्याप्त है वे सव ही प्रथम गुणस्थान वाले होते है उनके द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है। तथा दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पाचेन्द्रिय सैनी असैनी तक मिथ्या दृष्टि जीव है तथा सर्व प्रथम गुणस्थान वाले होते हैं उनके द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। त्रियच गति मे पॉच गुणस्थान होते है। सासादन गुणस्थान वाले त्रियंच सवसे थोड़े है उनसे भी कम देश संयत वाले त्रियंच जीव है वे सव एक राजू प्रमाण

लोक को स्पर्श करते है तथा विशेष अपने-अपने शरीर की अवगाहना के अनुसार स्पर्श कहते है।४३६।

नृगतोनृभि: स्वर्शनं मिथ्यादृग्भि: सर्वलोक लोकवऽसंयेय ।
शेषगुणस्थानै र्वा क्षेत्रवाज्जाज्ञातव्यं: विभागम्: ।। ४६४ ।।

मनुष्यगति मे मिथ्यादृष्टि जीवो के द्वारा लोक का असख्यात वा भाग स्पर्श किया जाता है। मरण समुद्धात की अपेक्षा से भी लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। क्योकि मनुष्य लोक मात्र ४५ लक्षयोजन प्रमाण ही है। परन्तु केवली सद्धात की अपेक्षा ग्रहण करने पर सर्वलोक मनुष्यो के द्वारा स्पर्श किया जाता है। मिथ्यात्व गुणस्थान सासादन इत्यादि क्षीण मोह गुणस्थान वाले मनुष्यो के द्वारा लोक का असख्यात वा भाग स्पर्श किया जाता है। स्वस्थान सयोगी अयोगी जीवो के द्वारा अपनी अपनी शरीर की अवगाहना के प्रमाण ही आकाश प्रदेश स्पर्श किये जाते है। मरणान्तिक समुद्धात की अपेक्षा भी लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। यथा कोई जीव सर्वार्थसिद्धि से च्युत हो मनुष्य मे जन्म लेने को सन्मुख हुआ तब भी वह छह राजू से कुछ अधिक क्षेत्र को स्पर्श करता है वह भी लोक का असख्यातवा भाग होता है। तथा छठवे से निकलकर कोई जीव मनुष्यायु का बध कर विग्रहगति को प्राप्त हो तब भी छह राजू प्रमाण क्षेत्र हुआ वह भी लोक का असख्यात भाग है अयोग केवलियो के द्वारा सात राजू स्पर्श किया जाता है तथा चौदह राजू से कुछ यक आकाश स्पर्श किया जाता है।४६४।।

देवगतौ देवैर्वा कुदष्टिभि र्जगतोर सरपेय भागाम् ।
अष्टौ चतुर्दश भागा शेष स्थाने स्पर्श मूयते।।३६५ ।।

देवगति में मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि जीवो के द्वारा जगत श्रेणी के असंख्यातवे भाग को स्पर्श किया जाता है। तथा सादन और मिश्र असंयत सम्यग्दृष्टी जीवो के द्वारा लोक नाडो का आठवे भाग से कुछ कम अथवा चौदहवे भाग से कुछ हीन स्पर्श होता है। मरणान्तिक समुद्‌ात की अपेक्षा भी सात राजू स्पर्श किया जाता है आठ राजू इसका यह कारण है कि मिथ्याद्रष्टि देव मरण कर एकेन्द्रिय जीवों मे लोक मे कही भी उत्पन्न हो तब लोक का असख्यतवा भाग स्पर्श होता है ।। ४६०।।

एकेन्द्रियैः स्पर्श सर्वलोको दीण्द्रियादिभि रसर्वः ।
असख्यात भागोवा पंचेद्रियै: सर्वलोकम् ।।३६६।।

एकेन्द्रिय जीवो के द्वारा सब लोक स्पर्श किया जाता है ऐसा लोक का क्षेत्र बाकी नही है कि जहाँ पर एकेन्द्रिय जीव न पाये जाते हो। एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म वादर के भेद से सब जगह विद्यमान है। इसलिये इनके द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है। दो इन्द्रियादि पचेन्द्रिय जीव के द्वारा केवली समुद्धात काल मे सब लोक स्पर्श किया जाता है। एकेन्द्रियादि पचेन्द्रिय पर्यन्त मिथ्यादष्टि जीवो के द्वारा सब लोक स्पर्श किया जाता है। सासादन मिश्र गुणस्थान वाले पचेन्द्रिय जीवो के द्वारा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है असयत सम्यग्दृष्टियो से लेकर अयोगी गुण स्थान ग्यारह होते है उन गुण स्थानो मे रहने वाले सब जीव सैनी पचेन्द्रिय हो होते है उनका स्पर्श लोक का असख्यातवा भाग होता

है। तथा चौदह राजू से कुछ कम है। कम कहने का कारण यह है कि सम्यग्दष्टि देव नारकी मनुष्य और त्रियंच सब पंचेन्द्रिय ही होते है इनका क्षेत्र कुछ कम चौदह राजू है क्योंकि जीव त्रस नाली के अन्तर्गत हो पाये जाते है त्रसनाली तेरह राजू से कुछ अधिक है।

स्थावरैः सर्वलोकं त्रशकायकौ पंचेन्द्रियवच्च ।
स्पर्श यथाकाले च निपुज्यतां गुणस्थानेषु ॥४६७॥

पंचस्थावर कायक जीव सब लोक में ठसाठस भरे हुए है इसलिये इनका स्पर्श क्षेत्र सब लोक है। त्रश कायक जीवों का स्पर्श लोक का असंख्यात वाँ भाग है तथा सर्व लोक होता है। विशेष गुणस्थानों के समान यहां पर भी जान लेना चाहिये।

वाङमनोयोगिभिश्च सर्वलोकं स्पष्टं मिथ्यादृष्टिभिः ।
सासादनादिक्षीण कषायैर्वा गुणस्थान् वत् ॥४६८॥

मन वचन योग वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है तथा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है क्योंकि वचन योग सयोग केवली के समुद्घात काल में भी विद्यमान रहता है। तथा वचन योगी तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं। तथा द्रव्य मन रहता है परन्तु भाव मनका कार्य नहीं रह जाता है इसलिये उनको अमनस्क भी उपचार से कहते है। सयोग केवली की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श है। गति आगति व मरणानिनक समुद्घात की अपेक्षा भी लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। क्योंकि वांङ् मनयोगो त्रशनाली के भीतर हो रहते है। तथा सर्वलोक भी स्पर्श किया जाता है इसका कारण यह है कि किसी एकेन्द्रिय जीव ने दोइन्द्रिय या तीन, चार, पांच इन्द्रिय की आयुका वध किया वह लोक के किसी भी भाग में था वहां से विग्रह गति को प्राप्त हुआ इस अपेक्षा से (जानना चाहिये) सर्वलोक मिथ्यादष्टिवचन योगी के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। शेष गुण स्थान के समान है। ४६८

काययोगिभिः कुदृग्भिः सयोगान्त योगिभिः स्पर्शम् ।
सामान्योक्तं क्षेत्रं लोकस्यासंख्येय भागम् ॥३६९॥

काययोग वाले जीवों के द्वारा व मिथ्यादृष्टी व एकेन्द्रिय पृथ्वी काय से लेकर वनस्पति काय तक वाले जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है क्योंकि ये सब जीव औदारिक काय योगवाले है। तथा दो इन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय त्रियंच मनुष्य इनके द्वारा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। अथवा केवली समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। औदारिक औदारिक मिश्र, वैक्रियक वैक्रियक मिश्र आहारक आहारक मिश्र और कार्माण इन सातयोग वालों में से पहले ओदारिक योग वाले सर्वलोक को स्पर्श करते है तथा औदारिक मिश्रवाले सम्यग्दृष्टि भी सर्वलोक को स्पर्श करते है। वैक्रियक और वेक्रियक मिश्रवाले जीवों के द्वारा लोक नाडी के कुछ भाग को स्पर्श करते है अथवा ८/१४ राजू स्पर्श करते हैं। आहारक आहारक मिश्रवाले जीवो के द्वारा लोक का असख्यात वां भाग स्पर्श किया जाता है। कार्माण योग वाले जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है कि औदारिक काय, योग में गुण स्थान चौदह होते है तथा मिश्र में चार होते हैं मिथ्यात्व

सासादन असंयत और सयोग केवली। इनमें मराणान्तिक विग्रहगति व समुद्‌घात की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श होता है या एकेन्द्रिय जीव सर्वत्र व्याप्त होनें की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श करते है। वैसे अपने अपनें शरीर के बराबर ही स्पर्श करते है।

स्त्री पुं वेदाभ्यां सह कुदष्टिभिः जगताः संख्येय भागः।
सर्वलोकं च वायत् नपुंसकवेदैः स्पष्टम् वा ॥४७०॥

स्त्रीवेद पुरुष वेद वाले मिथ्यादष्टियो के द्वारा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है क्योकि स्त्री वेदी पु वेदियो का लोक सात राजू है। इन वेदो का विचार पहले गुणस्थान से लेकर अनिवृति करण तक कहा गया है इसका कथन भाव वेद की अपेक्षा है। सासादन आदि गुण स्थान वाले जीवों के द्वारा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है नपुंसक वेद वाले जीवो के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है क्योकि नपुंसक वेद वाले जीव पंचस्थावर एकेन्द्रिय हैं वे सब ही नपु सक वेद वाले है तथा सम्मूर्छन जन्म लेनें वाले व नारकी जीव सबही नपु सक वेद वाले होते है। इनके मिथ्यात्वादि चार गुण स्थान होते है। नपुंसक वेद वाले जीव दो इन्द्रियादि असैनी पंचेन्द्रिय पर्यन्त सब ही मे होते है। एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा से सर्व लोक स्पर्श किया जाता है दो इन्द्रियादि की अपेक्षा लोक का असंख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। स्त्री व पुरुषो में जो नपु सक वेद होता है वह भाव वेद है भाव वेद की अपेक्षा से अनिवृतिकरण गुणस्थान होता है उन गुणस्थानो मे निवास करने वालो के द्वारा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। लोक नाडी का आठवाँ भाग चौदहवाँ भाग पांचवाँ भाग छठवाँ भाग से कुछ कम मरणान्तिक समुद्‌घात की अपेक्षा स्पर्श कहा गया है। स्व शरीर की अपेक्षा जितनी अवगाहना वाला जितना बड़ा या छोटा शरीर हो उतना स्पर्श है।

सर्वकषायैः स्पर्श सर्वलोको वा एक पंचषट्।
अष्टौ चतुर्दशभाग लोकस्याऽसंख्येयभागः ॥४७१॥

कुल कषाये पंच्चीश होती है सामान्य से सबकषाय वाले जीवों के द्वारा सब लोक स्पर्श किया जाता है। भिन्न भिन्न कषायों की अपेक्षा सर्व लोक अथवा लोक का असख्यातवा भागअथवा एकराजू, पांच राजू, छह राजू, आठ राजू, अथवा चौदह राजू से कुछकम स्पर्श किया जाता है। इसका क्रम यह है कि सज्वलन कषाय वाले जीव त्रसनाली के एक राजू से कुछ कम लोक को स्पर्श करते है क्योकि संज्वलन कषाये छठवें से लेकर सूक्ष्म सांपराय तक ही जीवो के पाई जाती है इसलिये इनका मनुष्य क्षेत्र होता है। तथा अप्रत्याख्यान कषाय सयता-सयत जीवो के होती है इनका क्षेत्र एक राजू प्रमाण होता है क्योकि स्वय भूरमण द्वीप के पचेन्द्रिय त्रियंचो मे संयता सयत होता है। अप्रत्याख्यान कषाय वाले जीवो के द्वारा पाच राजू स्पर्श किया जाता है तथा आठ राजू स्पर्श किया जाता है। हास्यादि नव नो कषायवाले जीवो के द्वारा चौदह राजू से कुछ कम क्षेत्र स्पर्श किया जाता है। इसका कारण यह है कि नो कषाये प्रत्येक चौकड़ी वाले जीवों के साथ पायी जाती है। अनतानुबंधी कषायवाले जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। स्त्री और पुरुष वेद को छोड़कर एकेन्द्रिय से लेकर

असंज्ञी पंचेन्द्रिय तथा सम्मूर्छन जन्म लेने वाले व नारकी जीवों के एक नपुंसक वेद का ही उदय पाया जाता है इसलिये नपुंसक वेद कषाय वाले जीवों के द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है। एकेन्द्रिय से लेकर असैनी और सैनी मिथ्यादष्टी जीवो के अनतानुबधी कषाय का उदय पाया जाता है इसकी अपेक्षा से सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। उपशय सम्यग्दष्टि जीव के जब सत्ता में से अनंतानुबंधी कषाय उदय में आ जाती है तब सासादन गुणस्थान बनता है। सासादन के पीछे मिश्र आदिक गुणस्थानों में अनतानुबधी कषाय का उदय नहीं है अप्रत्याख्यान कषाय का उदय पाया जाता है। उपशम सम्यग्दृष्टी जीव के अनंतानुबधी की सत्ता पायी जाती है क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीवों के सत्ता है नहीं भी है क्षायक सम्यक्त्व वाले जीव के अनतानुबधी कषाय का सत्व नही रह जाता है। शेष कषायों का क्रम गुणस्थान के समान लगा लेना चाहिये। ४७१॥

कुमतिश्रुतविभगावधि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययैः।
केवलज्ञानिनेश्च क्षेत्रवत्स्पर्श सर्वलोकं॥ ॥४७२॥

कुमति, कुश्रुति, विभगावधि, वाले तथा मति श्रुतावधि और मनः पर्यय ज्ञान वाले जीवो के द्वारा स्पर्श क्षेत्र के समान कहा गया है तथा केवल ज्ञानियों के द्वारा सामान्य से सर्वलोक स्पर्श किया जाता है क्षेत्र के समान ही यहां स्पर्श जानना चाहिये ॥४७२॥

असंयतैर्जगत् देशसंयतैःजगतोऽसंख्येय भागं।
सर्वसंयतै स्पर्शं क्षेत्रवत्स्वात्व काले सदा ॥४७३॥

पहले मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर चौथे सम्यग्दृष्टी असयत पर्यन्त सब गुणस्थान असयत ही होते है।

असयत जीवो के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। तथा विशेष-मिथ्यादृष्टि असंयत एकेन्द्रिय जीवों के द्वारा सब लोक स्पर्श किया जाता है। तथा दो इन्द्रिय आदि त्रस-कायक असैनी व सैनी पचेन्द्रिय जीवों के द्वारा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। तथा सासादन मिश्र व असंयत सम्यग्दृष्टी जीवो के द्वारा लोक का असख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। देश सयत वा सकल सयतो के द्वारा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है तथा सयोगी के केवली द्वारा सब लोक व स्वस्थान की अपेक्षा अपनी-अपनी अवगाहना के समान ही स्पर्श किया जाता है। सयतों का गुणस्थान के समान स्पर्श होता है।४७३॥

अचक्षुदर्शनः स्पर्शस जगत् चक्षुदर्शनैः पचेन्द्रियवत्॥
अवधिः केवल दर्शनैः सामान्योक्तं स्पर्शं चैव। ४७४॥

अचक्षुदर्शन वाले जीवों के द्वारा सबलोक स्पर्श किया जाता है। चक्षु दर्शन वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। अवधि दर्शन वाले तथा केवल दर्शन वाले जीवो के द्वारा अवधि ज्ञान और केवल ज्ञान के समान स्पर्श है।

विशेष—अवधि दर्शन असंयत सम्यदृष्टि जीव से लेकर बारहवें क्षीणमोह तक वाले संयमी जीवों के होते हैं उनके द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते है। केवल दर्शन स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असख्यातवे भाग को स्पर्श करते है तथा समुदघात की

अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। यह अन्य प्रदेशों की अपेक्षा कथन है। ५७४॥

कृष्णनीलकापोत लेश्याभिः सर्वलोक स्पर्शम्।
सासादन सुदृग्भिश्च जगतोऽसंख्येय भागैव। ४७५॥

कृष्ण, नील, कापोत, तीन अशुभ लेश्यावाले जीवो के द्वारा तीनों लोक स्पर्श किये जाते हैं तथा सासादन, मिश्र और असयम सम्यग्दृष्टियो के द्वारा लोक का असख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है।

मिथ्यादृष्टि जीवों के कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्याओं का उदय पाया जाता है वे मिथ्यादृष्टी जीव एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तथा असैनी और सैनी जीवो के ये तीनो लेश्यायें विद्यमान रहती हैं। तथा नारकी मिथ्यादृष्टी व सासादन व मिश्र असयत गुण स्थान वालो के ये तीनों ही लेश्याये पाई जाती है। तथा पहले नरक में जघन्य कापोत लेश्या होती है दूसरे मे मध्यम तीसरे के ऊपरी भाग में उत्कृष्ट कापोत लेश्या तथा नीचले भाग मे जघन्य नील लेश्या चौथे नरक में मध्यम नीललेश्या तथा पाचवें के ऊपरी भाग में उत्कृष्ट नील तथा जघन्य कृष्ण लेश्या पाई जाती है। छठवें नरक के मध्यमे कृष्ण लेश्या तथा सातवे नरक में उत्कृष्ठ कृष्ण लेश्या होती है। एकेन्द्रिय जीवों के प्रायः कृष्ण लेश्या पायी जाती है तथा अन्य भी पाई जाती है इसी लिये इन लेश्यावाले जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। तथा सासादनादि गुण स्थान चार गती वाले सैनी पचेन्द्रिय जीवो के होते है। उनका स्पर्श लोक का असख्यात वाँ भाग है। अथवा पाचवा भाग है अथवा आठवां भाग है अथवा चौदहवाँ भाग से कुछ हीन को लिये हुए स्पर्श करते हैं। यहां पर शिष्य प्रश्न करता है कि बारहवां भाग क्यों नही कहा ? समाधान-यहा पर कही गई लेश्याओ की अपेक्षा से पांच भाग है। किन्ही आचार्य का मत है कि सासादन वाले जीव मरण कर एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न नही होते हैं इस मत के अनुसार बारहवां भाग नही दिया गया है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि जीव लोक का असंख्यातवा भाग स्पर्श करते हैं। ५०१॥

तेजोलेश्या कुदृगाद्य प्रमत्तै जंगतोऽसंख्येय भागं।
तथा पद्मलेश्याभिः शुक्ल कुदृगादि संयोगैः ४७६
कुदृग्देशसयतैश्च जगतोऽसंख्येय भाग षट्चदतु श
प्रमत्तादिसयोगान्तैः गुणस्थान वत्स्पर्श सदा ॥४७७

पीत लेश्या और पद्मलेश्या वाले जीव मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्त गुण स्थान तक होते है वे जीव लोक के असख्यात वें भाग को स्पर्श करते है तथा लोक नाडी के आठवें भाग चौदहवे भाग से कुछ हीन आकाश को स्पर्श करते हैं। तथा विशेष यह है कि सम्यग्मिथ्या-दृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि जीव लोक के असख्यातवें भाग को स्पर्श करते हैं। जगत नाली के आठ राजू से तथा चौदह राजू से कुछ कम स्पर्श करते हैं संयतासयत गुणस्थान में पीतलेश्या वाले जीवो के द्वारा लोक का असंख्यात वां भाग स्पर्श किया जाता है। तथा साढे तेरह राजू को छोड़कर शेष रहता है उसमे से भी कुछ कम क्षेत्र को स्पर्श करते हैं प्रमत्त

और अप्रमत्त गुणस्थान वाले जीवों के द्वारा भी लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है।

पद्मश्लेया वाले जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक होते है। अथवा पद्मलेश्या अप्रमत्त गुण स्थान तक रहती है पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि सासादन मिश्र और असयत सम्यग्दृष्टी जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श कियाजाता है। विशेष यह है कि पद्म लेश्या वाले जीवो के द्वारा लोक नाड़ी का ८वाँ चौदहवां भाग से कुछ कम लोक वाणी स्पर्श की जाती है। संयतासंयत वाले जीवो के द्वारा लोक का असंख्यात वाँ भाग स्पर्श किया जाता है। अथवा पाँच राजू या चौदह राजू से कुछ कम को। प्रमत्ताप्रमत्त दो गुण स्थान वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है।

प्रथमतः शुक्ल लेश्या मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर सयोग केवली गुण स्थान वाले जीवो के होती है। मिथ्यादृष्टि से लेकर सयतासंयत पाचवे गुण स्थान वाले जोवों के द्वारा लोक का असख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है। बिशेष यह है कि शुक्ल लेश्या वाले जीव छह राजू तथा चौदहवे राजू से कुछ कम लोक का स्पर्श करते है। प्रमत्त से लेकर सयोगी पर्यन्त गुणस्थान के समान कहा गया है।

विशेष कापोत लेश्या का धारक मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि या सयतासंयत या प्रमत्त संयत मरणान्तिक समुद्‌घात करता है उस समय उसके परिणाम जिस योनि के योग्य होते है तब जीव प्रदेश उस स्थान तक जाते है और स्पर्श कर पुनः शरीर में आ जाते है उस काल मे लोक नाडी का एक राजू से कुछ हीन व पाच राजू तथा वैक्रियक समुद्‌घात कर पीत लेश्या वाला पाच राजू ऊपर तथा तीन राजू नीचे तीसरे नरक तक गमन करता है तत्काल मे आठ राजू स्पर्श होता है।

तम-तम प्रभा में रहने वाले कृष्ण लेश्या के धारक जीवों का मरण सासादन में नही होता है। इसलिए इनके मरण के अभाव की प्रतीति होती है। कोई जीव अन्तिम पाचवे नरक के प्रसार से नील लेश्या वाला सासादन सम्यग्दृष्टि मरणांतिक समुद्‌घात कर आत्म प्रदेशों का ऊपरी चित्रा पृथ्वी तक के क्षेत्र को स्पर्श करता है। उस समय सासादन वाला जीव लोक नाड़ी के चौदह राजू में से कुछ कम पांच राजू स्पर्श करता है। तीसरी पृथ्वी बालुका प्रभा के अन्तिम इन्द्रक प्रस्तारसे उत्कृष्ट कापोत लेश्या तथा जघन्य नील लेश्या में मरणान्तिक समुद्‌घात करता है तब चौदह राजू में से सासादन वाला जीव दो राजू से कुछ अधिक का स्पर्श करता है। २/३४३छठवी पृथ्वी में रहने वाले जीवों के अशुभ लेश्या के धारक असंयत सम्यग्दृष्टियो का मरण होता है इसलिए लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श होता है। वह कैसे ? उनका मनुष्य लोक में उत्पन्न होने का सद्‌भाव होने से एक राजू विष्कम्भ होने पर सर्वत्र स्पर्श का अभाव होने से कहा है गमन के समान स्व स्थान की अपेक्षा से चौदह का आठवाँ भाग स्पर्श ८/३४३ राजू है। विहारवत पीत लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि देव तीसरे नरक की पृथ्वी से अष्टम पृथ्वी वादर कायक जीव के द्वारा मरणान्तिक समुद्‌घात की अपेक्षा

से चौदह् राजू से ८ राजू तथा ८/३४३ स्पर्श होता है। गमन के समान ही स्व स्थान की अपेक्षा से लोक का आठवा भाग व लोक नाड़ी का आठ राजू होता है ८/३४३। पीत लेश्या वाले देश सयतो के द्वारा किए गए मरणान्तिक समुद्‌घात की अपेक्षा से सात राजू अथवा चौदह् का आधा भाग है। अथवा चौदह् का तीन भाग होना चाहिए ३/३४३॥

सानत्कुमार महेन्द्र पर्यन्त पीत लेश्या का सद्‌भाव पाया जाता है इसका परिहार करने के लिएगोमट्ट सार जोवकाड में लेश्या मार्गणा के स्पर्शाधिकार में इस प्रकार समुद्‌घात मे नौ का १४ भाग से थोडा कम है। आठ भाग प्रमाण है विहार के समान समुद्‌घात के काल मे भी त्रसनाली के चौदह् भागो मे से कुछ कम आठ भाग प्रमाण स्पर्श होता है। तथा मरणान्तिक समुद्‌घात की अपेक्षा चौदह् भागो मे से कुछ कम नव भाग प्रमाण स्पर्श है। उपपाद,अवस्था मे चौदह् भागो मे से कुछ कम डेढ भाग प्रमाण स्पर्श होता है। इसप्रकार पीत लेश्या का कथन तीन प्रकार से किया गया है। विहार के समान स्वस्थान वेदना समुद्‌घात कषाय समुद्‌घात वैक्रियक समुद्‌घात की अपेक्षा से लोक का आठवा भाग है ८/३४३ पहले कहे हुए चौदह् के आठवें भाग प्रमाण यह क्रम जानना चाहिए।

पद्म लेश्या वाले देश सयतो के द्वारा की गई मरणान्तिक समुद्‌घात की अपेक्षा से चौदह् का पाचवा भाग है ५/३४३ राजू सहस्रार स्वर्ग के ऊपर पद्म लेश्या नही पायी जाती है। पद्म लेश्या का गमन के समान ही स्वस्थान वेदना कषाय तथा वैक्रियक समुद्‌घात में चौदह् भाग मे से कुछ कम आठ भाग प्रमाण ही स्पर्श है। मरणान्तिक समुद्‌घात मे भी चौदह् भाग मे कुछ कम आठ राजू ८/३४३ प्रमाण ही स्पर्श है। क्योकि पद्म लेश्या वाले भी देव पृथ्वी, जल, वायु वनस्पतियो में उत्पन्न होते है। तैजस तथा अहारक समुद्‌घात अवस्था मे संख्यात घनागुल प्रमाण स्पर्श है स्वभाव अवस्था मे लोक के असख्यातवे भाग मे से एक भाग प्रमाण स्पर्श होता है। पद्म लेश्या सतार सहस्रार स्वर्ग मध्य लोक से पाच राजू प्रमाण ऊँचा है। उपपाद की अपेक्षा से पद्म लेश्या का स्पर्श त्रसनाली के चौदह् भागो में से कुछ कम पाच भाग प्रमाण है। ५/३४३॥

शुक्ल लेश्या वाले जीवो का स्वस्थान स्वस्थान में पीत लेश्या की तरह् लोक के असंख्यातवे भाग प्रमाण स्पर्श है। विहारवत्स्वस्थान तथा वेदना कषाय वैक्रियक मरणान्तिक समुद्‌घात और उपपाद इन तीन स्थानो मे चौदह् भाग में से कुछ कम छह् भाग प्रमाण स्पर्श होता है। तैजस तथा आहारक समुद्‌घात में असख्यात घनागुल प्रमाण स्पर्श है। शुक्ल लेश्या वाले दश सयतो के मरणान्तिक समुद्‌घात की अपेक्षा चौदह् का छठवा भाग स्पर्श है। ६/१४ ६/३४३ अच्युतकल्प से ऊपर उनकी उत्पत्ति का अभाव होने के कारण दूसरे जीवों के भी मिथ्यादृष्टि से लेकर असयत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान तक वाले जीवों के चौदह् के छठवां भाग से कुछ कम स्पर्श होता है ६/३४३। शुक्ल लेश्या वाले देवो का मध्य लोक से नीचे गमन नही होता है ऐसी युक्ति प्राप्त होती है। अन्यथा चौदह् राजू का आठवा भाग भी आचार्यों ने शास्त्रो मे कहा है उनका गमन मध्य लोक तक भी नही होता है केवल मरणान्तिक समुद्‌घात

की अपेक्षा से चौदह का छठवां भाग कैसे मानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि के उसका अभाव है।

आरणादि कल्पों तथा कल्पातीत देवों के एक शुक्ललेश्या होती है उनके द्वारा लोक का ८/३४३ राजू स्पर्श किया जाता है। केवली के उपचार से कही गई है क्योंकि उनके कषायों का क्षय हो चुका है परन्तु योग विद्यमान होनें की अपेक्षा होती है। समुद्घात के चार भेद होते हैं एक दण्ड दूसरा कपाट तीसरा लोक प्रतर चौथा लोक पूर्ण होता है तत्काल में सर्व लोक स्पर्श होता है अन्य समय में उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी चढ़नें वाले जीव स्वस्थान की अपेक्षा लोक का असंख्यात वाँ भाग स्पर्श करते हैं ॥४७७॥

भव्यैः गुंणस्थानत् अभव्यैः सर्वलोकैव स्पष्टम्।
त्रय सम्यग्दृष्टिनामसंयतादि सयोगान्तैः स्थानम् ॥४७८॥

भव्य जीवो के द्वारा आकाश प्रदेशों को गुणस्थानों के समानस्पर्श किया जाता है। तथा अभव्य जीवों के द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है। क्यों कि मिथ्यादृष्टि अभव्य एकेन्द्रिय जीव अनंत हैं वे सब जीव सर्व लोक में निवास करते है। तथा त्रसजीव है उनका गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है। भव्य जीव अनंतानंत है वे सबलोक व आकाश के प्रदेशो पर विराजमान है। एकेन्द्रिय पृथ्वी काय, अपकाय, अग्निकाय, वायुकायक जीव असंख्याताख्यात हैं। वनस्पति कायक, जीव अनंतानंत होते है उनके द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव त्रसनाली के भीतर रहते है इसलिये लोक का असंख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। मरणान्तिक वेदना वैक्रियकऔर कषाय समुद्धात की अपेक्षा भी लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। केवली समुद्घात की अपेक्षा सब लोक स्पर्श किया जाता है। सासादन मिश्र तथा उपशम क्षयोपशम क्षायक सम्यग्दृष्टियों का स्पर्श गुण स्थान के समान जानना चाहिए। संयतासयत प्रमत्त संयत, अप्रमत्त, अपूर्वकरण उपशामक और क्षपक अनिवृत्त करण उपशमक क्षपक सूक्ष्म सांपराय उपशमक उपशांत मोह क्षीण मोह इन सब का स्पर्श गुण स्थान के समान है। तथा सयोगी अयोगी का भी स्पर्श गुण स्थान के समान ही है।५०४।

संयतासंयतैर्जगतोऽसंख्येय भागमोपशामिकाः।
क्षयोपशमिकै र्वा सासादनमिश्र सुदृष्टैस्तथा ॥४७९॥
सामान्यं स्पर्श च कुदृगमनस्काना सर्वलोकश्च।
चक्षुर्वत् संगिनैः द्वौव्यपदेशरहितानां स्थानवत् ॥४८०॥

सयतासंयत पांचवे गुणस्थान वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टियों के द्वारा गुण स्थान के समान स्पर्श किया जाता है। तथा उपशम क्षायक सम्यग्दृष्टियों का जानना चाहिए ॥४८०॥

असैनी मिथ्यादृष्टी जीवो के द्वारा सबलोक स्पर्श किया जाता है। सेनी एक पंचेन्द्रिय देव नारकी मनुष्य या त्रियंच होते हैं उनके द्वारा चक्षु दर्शन वालों के समान स्पर्श किया जाता है। अथवा लोक का असंख्यातवां भाग तथा सैनी असैनी के विकल्पों से रहित

जीवों के द्वारा सब लोक स्पर्श किया जाता है। केवली समुद्‌घात की अपेक्षा से है तथा विग्रह गति वाले जीव तथा सिद्ध भगवान ये सब जीव सैनी असैनीपन से रहित है। उनका स्पर्श अपने-अपने गुण स्थानवत् गुणस्थानातीत है। ५८०॥

आहारकैः कुदृगादि क्षीणकषायान्तानां प्राग्वदुक्तः।
सयोगीभिश्च जगतोऽसंख्येय भागः स्पर्श वा॥४८१॥
अनाहारक कुदृष्टभिः सलोकं सासादन दृष्टिभिः।
असंख्येय भागवा एकादश चतुर्दश भागोनम्॥४८२॥
सयोगिभिश्च जगतोऽ सख्येय भागामुपदिष्टंजिनैः।
स्पर्श सम्यक्त्वदि गुण सामान्यविशेषैव॥४८३॥॥

आहारक जीवो के द्वारा गुणस्थान मे कहे गये प्रमाण स्पर्श कहा गया है। वह मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त गुणस्थान मे जानना चाहिए। क्योकि इनका स्पर्श समुद्‌घात व मरणान्तिक समुद्‌घात व विग्रह गति से रहित है इसलिए प्रत्येक का अपने अपने शरीर के प्रमाण स्पर्श किया जाता है। अनेक जीवो की अपेक्षा सब लोक स्पर्श किया जाता है। केवली भगवान समुद्‌घात अवस्था में भी एक अपेक्षा से आहारक रहते है क्योकि समुद्‌धात काल में भी अपने मूल शरीर को नही छोडते है परन्तु उनके शरीर से असख्यात प्रदेश बाहर निकलते हुए भी शरीर में असख्यात प्रदेश रहते है। अनाहारक अवस्था में मिथ्यादृष्टियो के द्वारा सबलोक स्पर्श किय जाता है। तथा सासादन सम्यदृष्टियो के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग चौदह भागो मे से कुछ कम ग्यारह भाग ११/३४३ स्पर्श किया जाता है। अनाहारक अवस्था मे सयोगी जिन के द्वारा सबलोक स्पर्श किया जाता है। सब गुण स्थान व मार्गणा स्थानो में जैसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है वैसा जानना चाहिये। ।४८१।४८२।४८३।

काल की प्ररूपणा करते है।

सामान्यविशेषकालं त्रिविधोऽनाघनंतानादिशान्तश्च॥
सादिशान्तश्च भव्यैः अभव्यानांमनादिनान्त।४८४॥

काल दो प्रकार कहा गया है एक सामान्य दूसरा विशेष। सामान्य से भव्य और अभव्यों का काल अनादि अनत है। एक जीव की अपेक्षा कर काल का कथन करना विशेष है। काल तीन प्रकार का है एक काल अनादि अनत दूसरा अनादिशान्त तीसरा सादि शान्त इस प्रकार है। अभव्य और दूरानदूर भव्यो की अपेक्षा विचार करने पर अनादि और अनत है तथा भव्य जीवो को अपेक्षा विचार करने पर अनादि शान्त तथा सादि शात काल होता है। जिनको ससार अवस्था में अनत उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी व हुण्डासर्पिणी काल व्यतीत हो चुके है और उत्सर्पिणी और अवसर्पिणो हुडा सर्पिणीकाल अनतानत बीतनें पर भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होगे उनके काल को अनतानत काल कहते है। जिन जीवो नें अनन्तकाल से अभी तक सम्यक्त्व प्राप्त नही किया है परन्तु कुछ काल बीत जाने पर जीवो नें एक बार उपशम सम्यक्त्व को प्राप्तकर अन्तर्मुहुर्तकाल व्यतीत कर पुनःमिथ्यादृष्टी बन गया हैउसको

ही फिर से सम्यक्त्व की प्राप्ति हो उस भव्य जीव की अपेक्षा काल सादिशांत होता है । जो जीव उपशम श्रेणी से चढ कर मिथ्यात्व और अनंतानुवंधी के वंध का अभावकर विशेष यह है कि अनादि मिथ्यादृष्टी जीव ने अनंतवार विना सम्यक्त्व के पंचपरावर्तन रूप संसार में रहकर काल व्यतीत किये परन्तु सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई । तथा ऐसा काल नहीं प्राप्त हुआ कि जिसमें सम्यक्त्व के योग्य भाव हुए हों । तथा अनंतवार पंच परावर्तनों को परिपूर्ण करे फिर भी सम्यक्त्व के योग्य भाव अनेक काल तक प्राप्त नहीं होगा उस अभव्य तथा दूर भव्य की अपेक्षा कर अनादि अनत कहा गया है । परन्तु इन दोनों में भी भेद है अभव्य जीव को तो सम्यक्त्व उपार्जन के अनेकानेक कारण मिलते हैं तथा अनेकवार मुनिव्रत धारण कर घोर तपस्या करके नव ग्रैवेयक तक जाता है परन्तु सम्यक्त्व की योग्यता न होने के कारण सयोग मिलनेपर भी अनंत संसारी ही रह जाता है । दूर भव्य जिसको ऐसा योग कभी प्राप्त नही होता है कि जिससे वह सम्यक्त्व को ग्रहण करे । वह तो नित्य निगोद या पृथ्वी कायक, जल, तेज, वायु और वनस्पति कायक तथा दो इन्द्रियां तीन चार असैनी पचेन्द्रिय व सैनी पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होते हुए भी गुरुओं का उपदेश मिलता नही मिल जाये तो उसके धारण करने के भाव नहीं होते हैं । जिनकी शंखावर्तयोनि है उनके तो सयोग मिलने पर गर्भ रह नहीं सकता है परन्तु जिनकी योनि तो बंश पत्र है परन्तु उनके सयोग का अभाव होने के कारण पुत्र की उत्पत्ति नहीं । अभव्य जीव तो बाँझ के समान है दूर भव्य विधवा (बाड़) के समान है भव्य जीव कुमारी के समान हैं । उसकी जब शादी होगी और पति का सयोग मिलेगा और सन्तान की उत्पत्ति होगी ही । दूर भव्य भी अनत काल से संसार में भ्रमण करता चला आ रहा है उसको सम्यक्त्व प्राप्त करने का नियोग नही मिलता है और अनतानत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल बीत जाने पर भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होगी वे दूर भव्य है जिन जीवों ने पहले क्षयोपशम विशुद्धी देशना प्रयोग तथा करण लब्धी को प्राप्त कर अनतानुबधी क्रोध मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व इन पाच का उपशम कर या सात का उपशम कर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर सम्यक्त्व से च्युत होगया है और मिथ्यादृष्टो बन गया है । वह जीव अर्धपुद्‌गलापरावर्तन के कुछ कम कोटि पूर्व शेष रहने पर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर वेदक सम्यक्त्व को करता है और क्षय करने के सम्मुख होता है तत्काल में कृत-कृत वेदक को करके क्षायक-सम्यग्दृष्टी बन जाता है । और सयम को धारणकर मोक्ष को प्राप्त होता है । इस प्रकार सादि साँत है । अथवा कोई जीव द्वितीयोपशम को प्राप्त कर उपशम श्रेणी माड़ी और चरित्र मोह की सज्वलन कषायों को दबाता गया और उपशान्त मोह को प्राप्त हो तदनतर सज्वलन लोभ का उदय में आजाने के कारण उपशांत मोह से गिरा और नीचे के गुण स्थानो को प्राप्त कर अन्त में मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ और मरण को प्राप्त हो कुदेवों में उत्पन्न हुआ वहा से चतुर्गति निगोद में जाकर उत्पन्न हुआ और अर्धपुद्‌गला परावर्तन तक ससार में जन्म मरण के दुःख सहन कर अन्त में सम्यक्त्व को प्राप्त कर क्षायक सम्यग्दृष्टी हो सयम धारण करके सब कर्मो की जंजीर बधन को तोड़कर मोक्ष को प्राप्त करता है इस

अपेक्षा से सादि शान्त है ।

मिथ्यादृष्टिनां खलु सर्वकालोऽ नाद्यनंतं जिनोक्तम् ।
भव्यानां शादिसान्त मनाद्यवसानं सामान्यम् ।४८५।।

भव्य मिथ्यादृष्टी जीव समान्य अनादि अनत काल तक पाये जाते है उनका सब काल है । सम्यक्त्व की उत्पत्ति की अपेक्षा से अनादि शान्त कहा गया है । पहले जिन्होंने उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर सम्यक्त्व से च्युत हो सासादन को प्राप्त हो पुनः दर्शन मोह का बन्धक होकर वह उदय में आया तब वह मिथ्यादृष्टि हुआ और पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त होगा इस अपेक्षा से भव्य जीवों के सादिशात कहा है । कोई अनादि काल से मिथ्यात्व में रत होकर पचपरावर्तनों को अनेकबार कर चुका तब पचलब्धियों को प्राप्त हो उपशम सम्यग्दृष्टी हुआ और उसके काल को पूरा होने के पूर्व मे ही सम्यक्प्रकृति का उदय आया तथा सर्वघातिओ का उदयाभावीक्षय किया कषायों का विसंयोजन कर क्षयोपशम कर सम्यग्दृष्टि हुआ तब केवली के चरण को प्राप्त हो कृत-कृत वेदक होकर क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त किया और मरण को प्राप्त हुआ और देवो में उत्पन्न होकर वहां की आयुका भोग कर मनुष्य हुआ और आठ वर्ष की उम्र में मुनि दिक्षा लेकर कर्मों का नाश करेगा इसी अपेक्षा से आदि शान्त है ।४८५।

सादि शान्तं जघन्ये चान्तमुहूर्ता

सादिशान्तानां काल मन्तर्मुहूर्तार्धद्रव्य परावर्तनम् च ।
विशेष सामान्यैकमुपशमकानां तथैव ।।४८६।।

सादि शान्त का जघन्य काल अन्तर मुहूर्त है उत्कृष्टता से अर्धपुद्गल परावर्तन से कुछ कम काल है । गुण स्थानों की अपेक्षा विचार करने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर मुहूर्त है तथा उपशम श्रेणी चढने वाले द्वितीयोपशम का काल है । तथा क्षयोपशम का जघन्य काल है । किसी अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त हुआ और अन्तर मुहूर्त के पीछे छूट गया तब अर्धपुद्गल परिवर्तन का शेष काल जब पूर्व कोटि से कुछ अधिक रह जाता है उस समय में पुनरपि उपशम व क्षयोपशम व क्षायक कर क्षपक श्रेणी से चढ कर केवल ज्ञान को प्राप्त करता है तथा मोक्ष को प्राप्त करता है । कोई अनादि मिथ्यादृष्टी जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्रथम समय में प्राप्त किया तदनन्तर सम्यक्त्व प्रकृति का उदय मे आ जाने पर सर्व घातिया प्रकृतियो का उदया भावी क्षयकर क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो अप्रमत्त गुण स्थान को प्राप्त हुआ और कृत कृत्य वेदक को प्राप्त हो सब सातो का क्षयकर क्षपक श्रेणी से चढा और अन्तर मुहूर्त में केवली हुआ और निर्वाण को प्राप्त हुआ इस अपेक्षा से जघन्य से अंतर मुहूर्त काल होता है । इस प्रकार जघन्य और उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । शादि शात का काल कहा गया है ।४८६।

समयःसासदनानामुत्कृष्टं पल्यासंख्येय भागः ।
जघन्येन समयैव उत्कृष्ट षडावलिकश्च ।।४८७।।

सासादन, सम्यग्दृष्टी गुण स्थान का काल सामान्य से अल्प काल का असंख्यातवां

भाग है तथा जघन्य एक समय है। एक जीव की अपेक्षा सासादन सम्यक्त्व का काल एक समय है। तथा अधिक से अधिक काल छह आवली प्रमाण है तत्पश्चात् वह सासादन वाले जीव नियम से स्वस्थान पतित होकर मिथ्यादृष्टी बन जाते है।

लघुमिश्राणांकालः द्वौघटिके पल्यसंख्येय भागः।
हीनाधिकमानं च अन्तर्मुहूर्तं जानीहि ॥४८८॥

मिश्रगुण स्थान में सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्य काल दो घड़ी है और उत्कृष्ट काल पल्य का असंख्यातवां भाग है। एक जीव की अपेक्षा से उत्कृष्ट और जघन्य काल अंतर मुहूर्त है ऐसा जानना चाहिये।४८८।

असंयतसदृष्टिनां सर्वकालो वान्तमुहूर्तं च :
विशेषैवषट्षष्ठि त्रायंशित्सा गरैवम् ॥४८९॥

असंयत सम्यग्दृष्टियों का जघन्य काल अन्तमुहूर्त है। और उत्कृष्ट सर्व काल सामान्य से कहा गया है। क्योंकि असयत सम्यग्दृष्टि जीव हमेशा ही विद्यमान रहते हैं। विशेष यह है कि एक जीव व अनेक जीवो की अपेक्षा विचार किया जाता है तब अनेक जीवों की अपेक्षा तो सब काल प्राप्त होते है कि कोई ऐसी उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल नहीं कि जिसमें उपशम क्षायक क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव न रहते हों परन्तु रहते ही है। एक जीव की अपेक्षा उपशम सम्यक्त्व का काल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का जघन्य काल अन्तमुहूर्त उत्कृष्ट छयासठ सागर है क्षायक सम्यक्त्व का काल जघन्य से अन्त मुंहूर्त है उत्कृष्टता से तेतीससागर प्रमाण से कुछ अधिक है उसके पीछे मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

विशेष—उपशम सम्यक्त्व वाला जीव अतमुंहूर्त के बीत जानें पर कषायों का उद होनें पर सम्यक्त्व से गिर जाता है और सासादन को प्राप्त होता हुआ मिथ्यदृष्टि बन जाता है। यदि उपशम सम्यक्त्व को विराधना नही करता है तो अनतर अन्तर मुहूर्त के अन्त-र्गत सम्यक्प्रकृति उदय में आजाती है तब वह जीव नियम से क्षयोपशमिक सम्यग्दृष्टि बन जाता है। क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव का जघन्य से अतर मूहूर्त काल है। यह कैसे ? उत्तर—कोई जीव नें क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो उपशम श्रेणी चढनें के सन्मुख हुआ और क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्रकृति को दबा कर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो उपशम श्रेणी से चढ़ा। तथा अन्त मूंहूर्त काल बीतनें के पहले कृत कृत्य वेदक होकर पीछे सम्यग्प्रकृति का क्षय कर क्षायक सम्यग्दृष्टि बन जाता है इस प्रकार क्षयोपशम सम्यक्त्व का जघन्य काल अतमुहूंरत प्राप्त होता है। तथा उत्कृष्ट काल क्षयोपशम सम्य-क्त्व का छयासठ सागर प्रमाण है। यह कैसे ? उत्तर—कोई जीव क्षयोपशभ सम्यक्त्व को प्राप्त कर तिष्ठा और छयासठ सागर का जब दो घटी काल शेष रहा तब उपशम श्रेणी से चढा और उसको द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कर उपशान्त मोह को प्राप्त हो चरित्र से च्युत हुआ अन्त मे सम्यक्त्व से च्युत हुआ तब छयासठ सागर उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। अथवा छयासठ सागर के अन्तर्मुहूत अवशेष रहने पर सम्यक्प्रकृति का क्षय कर क्षायक

सम्यग्दृष्टि बन जाता है इस प्रकार भी काल छयासठ सागर प्राप्त होता है। क्षायक सम्यग्दृष्टी का काल जघन्य से अन्तमुहूर्त कहा गया है और वह इस प्रकार है कोई वेदक सम्यग्दृष्टि जीव केवली श्रुत केवली के समीप में जाकर कृत कृत्य वेदक को यक्ष कर क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त कर क्षयक श्रेणी माड़ कर चढा और अन्तर्मुहूर्त में घातिआ और अघातिया कर्मो को क्षय कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुआ। एक जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त होता है। तथा किसी जीव को क्षायक सम्यक्त्व कर ससार में भ्रमण करे तो तेतीस सागर प्रमाण तक ससार मे भ्रमण कर मोक्ष को प्राप्त होगा तथा यह विशेष है कि क्षायक सम्यक्त्व होने के पीछे जीव कोटिपूर्व से अधिक (आठ वर्ष) एक समय कम तैतीस सागर तक ससार मे रहता है इसका कारण यह है कि किसी जीव नें मरण काल के अंतर मुहूर्त पहले कृतकृत्य वेदक हो केवली के पाद मूल मे क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त हो मरण को प्राप्त हुआ और सर्वार्थसिद्धि मे देव हुआ वहा की तेतीस सागर का भोग कर मरा और पूर्वकोटि की आयु वाले कर्म भूमिया मनुष्यो मे उत्पन्न हुआ और आठ वर्ष की वय मे सकल संयम को धारण कर क्षायक श्रेणी से चढ और केवली बन कर मोक्ष को प्राप्त हुआ इस अपेक्षा से क्षायक वाले का काल प्राप्त होता है।४८९।

स यतासंयताना सामान्य सर्वकालोजघन्यम्।
विशेषान्तर्मुहूर्तं पूर्वकोटि देशोनधिकम् ॥४९०॥

सयतासयत जीवो के वासना काल हमेशा विद्यमान रहते है यह सामान्य है। एक जीवने सयमासयम को धारण किया और अन्तरमुहूर्त रहा कोई अप्रत्याख्यानावर ण कषायों का उदय और वाह्य अन्यकारणो के मिलने पर सयमासयम की विराधना करके असयमी होगया अथा मरण को प्राप्त हुआ तव वहा पर अस यमी बन जाता है इस अपेक्षा से अतर मुहूर्त प्राप्त होता है क्योंकि मरण काल व विग्रह गति में नियम से चौथा गुण स्थान होता है। किसी जीव ने सयमासयम को आठ वर्ष छह मास की वय मे धारण किया और पूर्व कोटि से कुछ कम आयुका भोग कर मरा और कल्पवासी देवो मे उत्पन्न हुआ इस प्रकार जीव का उत्कृष्ट काल है पूर्व जन्म से कुछ कम रहने का भी यह कारण है कि आठ वर्ष तक व्रत धारण करने की शक्ति प्रकट नही होती है। यही देशोन कहने का कारण है। ४९०।

प्रमत्ता प्रमत्ताना सर्वकालोत्कर्षं स्तोकश्च वा।
जीवस्य स्तोकैक समयोत्कृष्टान्तर्मुहूर्तम् ॥४९१॥

सामान्य से प्रमत्त और अप्रमत्त गुण स्थान वाल जीवो का सब काल है अथवा सर्व काल मे रहते है। ऐसा कोई समय खाली नही रहता है। कि जिस समय मे प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान वाले जीव न हो। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर सब से कम काल एक समय है एक समय कहने का कारण यह है कि प्रमत्त अप्रमत्त सयत एक समय मे अप्रमत्त दूसरे समय मे प्रमत्त होता है तथा पहले समय मे प्रमत्त दूसरे समय में अप्रमत्त इस प्रकार स्वस्थान वाले अप्रमत्त और प्रमत्त संयम वाले जीव झूला झूलते रहते हैं। जो सातिसय अप्रमत्त होते है वे जीव समय पश्चात् अपूर्व करण को प्राप्त हो जाते है। तथा उत्कृष्टता

से दो घडी काल होता है। अथवा मरणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा अंतमुहूर्त उत्कृष्ट काल होता है। इसका कारण यह है कि प्रमत्त और अप्रमत्त अवस्था में मरण का अभाव है।

चतुरूपशमकानां च स्तोकैक समयोत्कृष्टान्तर्मुहूर्तम्।
चतुःक्षपकानां खलु जघन्योत्कृष्ट ज्ञातव्यः ॥४९२॥

उपशम श्रेणी से चढने वाले जीवो का काल जघन्यता से एक समय है उत्कृष्टता से अन्तर्मुहूर्त है तथा प्रत्येक गुण स्थान का भी अन्तर्मुहूर्त काल है। तथा क्षपक श्रेणी चढने वालों का जघन्य और उत्कृष्ट काल मुहूर्त प्रमाण है। एक समय कहने का यह कारण है कि जीव के भाव प्रति समय बदला करते है यदि कोई जीव उत्तम संहनन का धारी हो तब उसके एक से भाव वढते हुए दो घड़ी तक रहता है इस अपेक्षा से दो घड़ी उत्कृष्ट काल चारों उपशामक वालो का होता है तथा क्षायक वालों का परन्तु विशेष यह है कि उपशमक तो उपशान्त तम जाता है परन्तु क्षायक क्षीण मोह नाम के गुणस्थान को दशवें से प्राप्त होता है। अपूर्वकरण उपशायक और क्षायक दोनो के भाव एक समान ही उज्ज्वल होते है। अपूर्व करण में अपूर्व भाव होते है। अनिवृत्त करण में उससे भी उज्ज्वल परिणाम होते है सूक्ष्म सायराय में उससे भी उज्ज्वल परिणाम होते है। तथा उपशात मोह में उपशम जीव जाता है। परन्तु क्षपक श्रेणी से चढने वाला नही जाता है ॥४९६॥

सर्वं क्षपकाणां स्तोका स्तोकौ च कालोऽन्तर्मुहूर्तम्।
सिद्धानंता क्षपकाः कालोऽनंतानंतप्रगृह्यम् ॥ ४९३ ॥

चारों क्षपक श्रेणी चढ़ने वालो का काल उत्कृष्ट जघन्य तथा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है तथा अपूर्वकरण से लेकर अयोगी गुण स्थान वाले जीवो का काल दो घड़ी है। एक जीव की अपेक्षा से भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा कोई जीव क्षपक श्रेणी मे चढ़ना प्रारम्भ कर अन्तर्मुहूर्त में कृत-कृत केवली ही सिद्ध बन जाता है। अथवा उपसर्ग विजयी बन कर अन्तरमुहूर्त में सिद्धगति को प्राप्त होता है। जब कभी अप्रमत्त गुणस्थान वाले तथा प्रमत्त के ऊपर देव व मनुष्य व त्रियच के द्वारा किया गया उपसर्ग उस काल मे वह क्षापक श्रेणी माढ चढ़ा और उपसर्ग केवली हो सिद्धगति को प्राप्त हुआ इस प्रकार जानना चाहिए। आगे संयोगी और अयोगी का कारण कहते है।

सयोगीनां आ कालं एकः प्रति स्तोकान्तर्मुहूर्तः।
उत्कृष्टेन पूर्वकोटि देशोनं चोक्तं जिनः। ४९४।

सयोगी जिनका सामान्य अनेक जीवो की अपेक्षा सब काल है। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्टता से पूर्व कोटि से कुछ काम होता है। यह वासना काल है। यदि कोई सयोग केवली (अधिक से अधिक केवल ज्ञान प्राप्त कर साढ़े आठ वर्ष कम कोटि पूर्व तक रह सकता है। इसका कारण यह है कि कोई क्षायक सम्यग्दृष्टि सर्वार्थ सिद्धि से च्युत होकर कोटि पूर्व की आयु को लेकर जन्मा और आठ वर्ष के पीछे जिन दीक्षा धारण कर क्षपक श्रेणी चढ़ा ध्यानस्त हुआ और अन्तरमुहूर्त में घातिया कर्म को नाशकर केवली बन गया और शेष आयु का भोग केवल ज्ञानावस्था मे करता है इस प्रकार

उत्कृष्टता से आठ वर्ष कम कोटि तक वासना काल प्राप्त होता है।

मिथ्यादृष्टीनां सर्वकालोनरकगतौ त्रिविधो प्रोक्तम्।
वेदनाकालेऽचिन्ता निन्दागर्हो स्वमनस्यन्तं मुहूर्तम् ॥ ४९५ ॥

नारकी जीव नरक गति में मिथ्यादृष्टि जीवों का सब काल है क्योकि मिथ्यादृष्टि हमेशा ही विद्यमान रहते हैं। वे मिथ्यादृष्टि भव्य अभव्य और दूरभव्य की अपेक्षा से तीन प्रकार के होते है। एक जीव की अपेक्षा विचार करनें पर कम से कम काल की मर्यादा दो घडी। अथवा अन्तरमुंहूर्त है वह कैसे ? पूछे जानें पर कोई मिथ्यादृष्टि भव्यमिथ्यात्व सहित प्रथम नरक की आयु का बध कर मरा और अन्तरमुहूर्त मिथ्यात्व में रहा और पृथ्वी छूने व नारकीयो के द्वारा दी गई वेदना का अनुभव करता हुआ अपने मन में विचार करता है कि मैंने गुरुओ की आज्ञा का उलंघन कर हिंसारम्भ में तल्लीन रहा जिससे मुझे आज ये दुःख भोगने पड़ रहे है अब मैं उन गुरुओं के उपदेश को स्मरण कर पापों का त्याग करता हू तब उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ इस प्रकार मिथ्यात्व का जघन्य काल सातों नरकों मे जानना चाहिए। दूसरी बात कोई नारकी दस हजार वर्ष की आयु को लेकर उत्पन्न हुआ और जब वेदना की प्रतीति हुई थी उसकी बार-बार मन में चिन्ता करता है और पापों की वृत्ति का त्याग करता है तथा सच्चेदेव धर्म गुरु की श्रद्धा उत्पन्न होती है तब उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर मरण करता है इस प्रकार काल की प्राप्त होती है यही क्रम आगे के नरको में कहा गया है। ५१८

उत्कर्षाब्धिनरकाणां स्वभुज्यमानायुवत्कालो भवति ॥
सासादन मिश्राणां सामान्योक्तं पूर्वं जिनैः ॥ ४९६ ॥

एक नारकी जीव नरक में मिथ्यादृष्टि अपनी आयु प्रमाण काल होता है। पहले नरक के इन्द्रक बिल में जघन्य से दस हजारवर्ष और उत्कृष्ता से एक सागर तथा दूसरे नरक का नारकी जीव एक सागर जघन्य और उत्कृष्ट तीन सागर पर्यन्त रहता है। तीसरे नरक की जघन्य स्थिति तीन सागर और उत्कृष्ट स्थिति सात सागर चौथे नरक के नारकी जीव की जघन्य से सात सागर और उत्कृष्टता से १० सागर पाचवे नरक के नारकियो की जघन्य स्थिति दश सागर और उत्कृष्ट स्थिति सत्रह सागर प्रमाण होती है छठवे नरक में जघन्य स्थिति १७ सागर की है और उत्कृष्ट बावीस सागर प्रमाण है सातवें नरक की जघन्य स्थिति बावीस सागर प्रमाण और उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण आयु है उतनें तक उत्कृष्ट मिथ्यात्व की स्थिति प्राप्त होती है। सासादन और मिश्र सम्यग्दृष्टि का काल गुण स्थान के समान कहा गया है ॥५१९॥

सद्दृष्टीजीवानां खलु सर्वकालः एको जीवः तथा।
द्वे घटिकेस्तोकं कलस्तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनाम् ॥ ४९७ ॥

नरक गति मे सम्यग्दृष्टि नारकी जीव निरतर सब कालो में रहते है पहले नरक मे उपशम सम्यक्त्व काल तथा क्षायक क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव निरंतर विद्यमान रहते है। दूसरे नरक में नारकी जीवो के उपशम और क्षयोपशम दो सम्यक्त्व वाले जीव

हमेशा विद्यमान रहते हैं तीसरे चौथे पांचवें तक क्षयोपशम तथा उपशम सम्यक्त्व सब काल में पाया जाता है तथा छठवें सातवें में उपशम सम्यक्त्व वाले जीव होते है। एक जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर दो घड़ी काल तक रह कर विराधना करके मिथ्यादृष्टि बन जाता जाता है। मिथ्यादृष्टि त्रियंच जीवों का मिथ्यात्व सब काल में विद्यमान रहते हैं।

सर्वकालो जीवस्य दौ घटिका स्तोकमस्तोकमसंख्येय।
पुद्गल परावर्ताः सासादनादिदेश संयतान् ।। ४९८ ।।
गुणस्थानवत्कालोऽसंयत सदृशां सर्वकालश्च।
एकः प्रति पेक्षा च स्तोकं द्विघटिके त्रिपल्योपमम् ।।४९९।।

एक जीव की अपेक्षा सें दो घड़ी मिथ्यात्व का काल है। इसका यह कारण है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ इस प्रकार मिथ्यात्व का जघन्य काल पाया जाता है। जैसे कोई जीव मरण कर पर्याप्तक साकार निराकार दोनों उपयोग वाला सेनी पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने के सन्मुख हुआ और अपने शरीर के योग्य नौकर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर पूर्ण पर्याप्तक हुआ और उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ इस प्रकार त्रियचगति में मिथ्यात्व का जघन्य काल दो घड़ी बन जाता है। सामान्य से असंख्यात पुद्गल परावर्तन काल होता है। सासादन सम्यग्दृष्टि मिश्र सम्यग्दृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि देश संयत सम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानों के समान जानना चाहिए।

विशेष यह है कि असंयत सम्यग्दृष्टि हमेशा ही वर्तमान रहते हैं एक जीव दो घड़ी सम्यक्त्व में रह कर पुनः सासादन को प्राप्त कर एक समय में या अधिक से छह आवली काल से पहले ही मिथ्यात्व की प्राप्त होती है। कोई जीव त्रियंचगति की आयु का बंध करने के पीछे सम्यक्त्व को प्राप्त कर मरा और भोग भूमिया त्रियचो में उत्पन्न हुआ और तीन पल्य की स्थिति प्राप्त करने की अपेक्षा से तीन पल्य प्रमाण सम्यग्दृष्टि का काल प्राप्त होता है ।। ४८९ ।। ४९९ ।।

कृदृगाणां सर्वकालः एकजीवः प्रति हीनान्तर्मुहूर्तः।
उत्कृष्टेन त्रिपल्यं साधिकं पूर्वकोटि प्रथक्त्व वै ।। ५०० ।।

मनुष्य गति मे मनुष्यों में मिथ्यादृष्टि मनुष्य सव काल में विद्यमान रहते है एक जीव की अपेक्षा से मिथ्यात्व अन्तर्मुहूर्त काल जघन्य से और उत्कृष्टता से तीन पल्य से अधिक करोड़ पूर्व काल प्राप्त होता है इसका कारण यह है कि किसी मिथ्यादृष्टि जीव ने मुनियों की भक्ति कर आहार दान दिया तत्काल में आयु का त्रिभाग प्राप्त हुआ और मरण कर उत्तम भोग भूमि में उत्पन्न हुआ और तीन पल्य की उत्कृष्ट आयु को धारक भोग भूमिया मनुष्य हुआ और तीन पल्य की आयु का भोग किया इस प्रकार पहले की करोड़ पूर्व और भोग भूमि की तीन पल्य उत्कृष्ट आयु की अपेक्षा से मिथ्यात्व का काल मनुष्य गति में उपलब्ध होता हैं ।। ५०१ ।।

सासादन सदृष्टीनां जघन्यैक समयोत्कृष्टान्तर्मुहूर्तम्।
एक जीवैक समयः उत्कर्षेण षडा वलिकाः ।। ५०२ ।।

सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों का काल सामान्य से जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सामान्य है। परन्तु एक जीव कम से कम एक समय सासादन वाला होता है अधिक से अधिक छह आवली प्रमाण काल होता है। यह कथन सासादन गुणस्थान की अपेक्षा से नही है परन्तु गिरने की अपेक्षा से है। जैसे कोई मिथ्यादृष्टी उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व की विराधना कर रत्न परवत से गिरा और मिथ्यात्व पर नही पहुँचा उसके बीच के काल को सासादन कहते है। जब कोई जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो दो घडी काल तक सात प्रकृतियों मे से अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन कषायों में से कोई एक उदय में आजाने पर सम्यक्त्व से गिरा परन्तु अभी उसका मिथ्यात्व प्रकृति का उदय नही आया है तब तक वह शासक है (सासादन वाला है) जब मिथ्यात्व प्रकृति का उदय प्राप्त हो जाता है तब मिथ्यादृष्टि बन जाता है। बीच के काल कम से कम एक समय अधिक से छह आवली प्रमाण काल सासादन का है।

मिश्राणांहीनाधिककालोऽन्तर्मुहूर्तकबहुनृणां।
असंयतानां सर्वः एकस्य द्वे घटिका काल॰ ॥ ५०३ ॥

मिश्र गुण स्थान वाले तथा मिश्र सम्यक्त्व वाले जीवों का जघन्य और उत्कृष्ट काल दो घडी है यह दो घड़ी जघन्य और उत्कृष्ट है। इस गुण स्थान में जीव का मरण भी नही होता है जब मरण काल अप्राप्त होगा उस समय वह जीव नियम से सम्यग्दृष्टि बन जाएगा या मिथ्यादृष्टि दोनों से कोई एक में मरण होगा। असयत गुणस्थान वाले सम्यग्दृष्टि जीव सर्व काल मे रहते है विशेष एक जीव की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल है। यह कैसे ? किसी अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव ने सात प्रकृतियो को उपशम कर और उपशम सम्यक्त्व में रहा। तत्पश्चात् चार कषायो में से कोई कषाय के उदय आ जाने व सबके उदय आ जाने पर मिथ्यादृष्टि बन जाता है किसी जीव ने मरण काल में वेदक सम्यक्त्व पाकर मरण किया या क्षायक को पाकर मरण किया इस अपेक्षा से अन्तरमुहूर्त जघन्य काल प्राप्त होता है। अथवा क्षयक श्रेणी के सन्मुख हुआकृत कृत वेदक सम्यग्दृष्टि क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त हो क्षयक श्रेणी से चढा और अन्तरमुहूर्त में घातिया अघातिया कर्मो को क्षय कर सिद्ध बन गया इस प्रकार का भी क्षायक अन्तरमुहुर्त प्राप्त होता है॥ ५२५ ॥

उत्कर्षेण त्रिपल्यः सातिरेकाणि देश सयताद्य।
योगान्तार्ना कालः स्वरूपस्थानवत् च ज्ञातव्यः ॥ ५०४ ॥

असयत सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य गति मे अधिक से अधिक पूर्व कोटि अधिक तीन पल्य तक रह सकते है। यह कैसे ? किसी मिथ्यादृष्टि जीव ने उपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व मे ही मनुष्य आयु का वधकर पीछे से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ तत्पश्चात क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ पुनः केवली के पाद मूल मे क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त कर मरा और उत्तम भोग भूमि मे जाकर जन्मा और तीन पल्य की आयु का भोग किया इस प्रकार मनुष्यो मे सम्यक्त्व का काल तीन पल्य से अधिक काल प्राप्त होता है। सयतासयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोग केवली जीवो का काल गुण स्थान मे कहे गये प्रमाण समझना चाहिए। ऐसा

आगम बचन है ।। ५०४ ।।

कुदृगदेवानामाकालमेकंप्रति स्तोकं द्विघटिका ।
दीर्घनेकत्रिंशत् सागरोपमः खलु जिनोक्तः ।। ५०५ ।।

मिथ्यादृष्टि देवों का सादाकाल है क्योकि मिथ्यादृष्टि देवों का कभी कोई अवस्था में अभाव नही है । एक जीव की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि जीवो का कम से कम काल अन्तरमुहूर्त तक रहकर सम्यग्दृष्टि हो जाता है । जैसे कोई मनुष्य देव आयु का वध कर मरा और देव गति को प्राप्त हुआ जाति स्मरण उपपाद स्थान मे सोते हुए के समान उठा और देवों के वैभव को देख विभगावधि से विचार किया कि मैने जिनेन्द्र भगवान का नाम मात्र सुना था जिसके प्रभाव से मै देवगति को प्राप्त हुआ हूं यह विचार कर जिनेन्द्र भगवान व जिन धर्म पर अत्यन्त श्रद्धालू बन गया तब दो घड़ी जघन्य काल मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ । उत्कृष्टता से इकतीस सागर से कुछ कम देवगति में मिथ्यात्व की सत्ता होती है । यह कैसे ? कोई मिथ्यादृष्टि दिगम्बर जिन मुद्रा को धारण कर घोर तप सयम कर द्रव्य सल्लेखना सहित मरण कर अंतिम ग्रैवेयक कल्पातीत देवों में उत्पन्न हुआ और वहा की आयु ३१ सागर प्रमाण सुख भोग कर मरण किया और मनुष्यों में जन्म लिया इस अपेक्षा से देवों में मिथ्यात्व का अस्तित्व अधिक से अधिक ३१ सागर प्राप्त हो जाता है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का प्रवचन है ।। ५०५ ।।

सासादनमिश्रयोश्च प्रागुक्तस्तद्वत् काल क्रमः ।
सदृष्टीर्ना मेव कालोदेवं प्रति चरमोद्विघटिकाः ।। ५०६ ।।

सासादन सम्यग्दृष्टि तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीवों का काल गुणस्थानों की चर्चा में जैसा कह आये है उसी प्रमाण जानना । क्योकि देव दो घड़ी के बाद उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होते है और अन्तरमुहूरत काल तक सम्यक्त्व में रह कर व्यतीत कर सासादन में रह कर एक समय से लेकर अधिक से अधिक छह आवली प्रमाण व्यतीत कर मिथ्यादृष्टि बन गया तब सम्यक्त्व जघन्य काल दो घड़ी हुआ । ५०६ ।

कालत्रार्यत्रिंशत् सागरोपम कल्पातीतानां
देवीर्ना पल्यानि पच पचासत् द्विघटिकेवा ।। ५०७ ।।

देवों में सम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्ट काल तेतीश सागर प्रमाण होता है । यह कैसे ? कोई मनुष्य जिन दीक्षा लेकर जिन भगवान के समवसरण में गया और कृत कृत वेदक को कर क्षायिक सम्यग्दृष्टी बना और घोर तपस्या करी उपशम श्रेणी से चढा उपशांत मोह तक गुण श्रेणी निर्जरा कर रहा था कि मरण को प्राप्त हुआ और कल्पातीत सर्वार्थसिद्धि का अहमेन्द्र देव हुआ और तेतीश सागर की आयु तक सुख का अनुभव कर च्युत हुआ । इस प्रकार सम्यग्दृष्टि देवों के उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है ।

देवीयो के भी काल मिथ्यात्व का जघन्य दो घड़ी और उत्कष्ट पचपन पल्य कहा गया है । कोई स्त्री मिथ्यादृष्टि देवीयो में उत्पन्न हुई और उपपादसैया पर उसको दूसरा ही महत्त्व दिखाई दे रहा था यह देख चकित हो गई तब जाति स्मरण से जाना कि मैं अब

देवगति को प्राप्त होकर देवी हुई हूं। इसका कारण मैंने जिन बिम्ब के दर्शन किए थे उसका ही प्रभाव है ऐसा विचार कर मन में देव शास्त्र गुरु के प्रति अत्यन्त श्रद्धान हुआ और सम्यग्दृष्टि वन गई तब मिथ्यात्व को दो घडी काल प्राप्त हुआ। तथा इसी प्रकार अधिक से अधिक दो घडी कम पचपन पल्य प्रमाण काल होता है। दो घड़ी कम करने का क्या कारण? इसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि स्त्री मरण कर देवीयो मे उत्पन्न नही होती है वे तो नियम से देव ही होती हैं। सामान्य की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि देव देवी सब काल में पाये जाते है तथा सम्यग्दृष्टि देव देवी सव काल मे पाये जाते है। तथा अपने-अपनें स्वर्ग की आयु के समान काल कहा गया है ॥ ५०७ ॥

एकेन्द्रियजीवानां सर्वकालश्चरमं क्षुद्रभवम् ।
कालोत्कर्षेणासख्येय पुद्गलापरावर्ताश्च ॥५०८
विकलेन्द्रियाणां सर्वकालैक समय जीवस्य क्षुद्रभवञ्च ।
असंख्येय वर्ष सहस्राण्यजघन्यायुलब्धि ॥५०९ ॥

एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के होते है वे सूक्ष्म और वादर दो प्रकार के होते है उनमें से सब जीवो के एक मिथ्यात्व ही सब काल में रहता है अथवा सर्व काल कहा गया है वे जीव पृथ्वी कायक, जल कायक, अग्नि कायक, वायु कायक, वनस्पति कायक होते है क्योकि उनके एक मिथ्यात्व की सत्ता और उदय रहता है। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर पृथ्वी कायक जीव कम से कम एक क्षुद्रभव जो स्वासोच्छवास का अठारह भाग १/१८ आयु प्रमाण है। उत्कृष्टता से शुद्ध पृथ्वी जीव की आयु १२००० हजार वर्ष प्रमाण होती है खर पृथ्वी की २२००० हजार वर्ष प्रमाण होती है। जल कायक जीवो की उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष प्रमाण हाती है। जघन्य से क्षुद्र भव प्रमाण है १/१८ भाग है। अग्नि कायक जीवो की उत्कृष्ट आयु तीन दिन जघन्य क्षुद्रभव प्रमाण आयु वायु कायक जीवो की जघन्य आयु क्षुद्रभव स्वासोस्वास का १/१८ भाग प्रमाण और उत्कृष्टायु ३००० हजार वर्ष प्रमाण है वनस्पति कायक जीवो की उत्कृष्ट आयु १०००० हजार वर्ष प्रमाण होती है जघन्य से क्षुद्रभव प्रमाण होती है। तथा दो इन्द्रिय जीवो की आयु जघन्यता से क्षुद्रभव प्रमाण है उत्कृष्टता से बारह वर्ष प्रमाण है। जघन्यता से दो घड़ी भी कही गई है वह आयु पर्याप्त जीव की अपेक्षा से है। तीन इन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयु ४९ दिन की तथा जघन्यायु क्षुद्रभव और अन्तरमुहूर्त की है। चतुरिन्द्रय जीवो की उत्कृष्ट आयु छह महीना की है जघन्य आयु अपना क्षुद्रभव प्रमाण है। अथवा उत्कृष्टपना से एक जीव एकेन्द्रिय मे रहे तो कितने काल रह सकता है? असख्यात द्रव्य परावर्तन कर सकता है। कोई जीव उनमें से निकलकर दो इन्द्रियादि जीवो मे उत्पन्न होते है कोई जीव क्षुद्रभव धारण कर त्रश जीवो मे उत्पन्न होते है। विकलेन्द्रिय व सकलेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होते है। वनस्पति काय के दो भेद है एक साधारण दूसरी प्रत्येक वनस्पति इनके ही आश्रय से रहने वाले नित्यनिगोद और चतुर्गति निगोद लब्ध पर्याप्तक जीव है उनका काल क्षुद्रभव या अनन्त पुद्गल परावर्त होता है। यह कैसे— इसका कारण यह है कि नित्यनिगोदिया जीव एक पुद्गल परावर्तन को भी करते रहते है

उनमे क्षेत्र परावर्तन का अभाव है क्योंकि उनका क्षेत्र सीमित है यदि भव परावर्तन करने लग जावे तो नित्यनिगोदिया कहना बन नही सकता है। अथवा अपनी मुक्त आयु का स्वास का अठारहवाँ भाग है क्षुद्रभव को व्यतीत कर त्रश काय में विकलेन्द्रिय में उत्पन्न होते है। विकलेन्द्रिय में जीव असख्यात हजार वर्ष पर्यन्त रह सकता है।

कुदृग: सकलेन्द्रियाणां प्रज्ञप्तः सर्वकालेषुवासम्।
अनुकालोंऽतर्मुहूर्तं वरमुदधिसहस्राधिकं वा ॥५१०॥

पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों का सब ही वासना काल है वे सब काल में विद्यमान रहते है। एक जीव की अपेक्षा से जघन्य काल दो घड़ी अथवा अन्तरमुहूर्त है। इसका कारण यह है कि कोई देव या नारकीय सम्मूर्छन सेनी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के जन्म लेने के पीछे सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है इस प्रकार दो घड़ी जघन्य काल मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है। उत्कृष्ट का विचार करने पर हजार सागर से अधिक पूर्वकोटि काल कहा है यह कथन भव्य जीव की अपेक्षा से है क्योंकि अभव्य का काल तो अनन्तानन्त पंच परावर्तन है।

देव नारक त्रिचश्चश्चनृणां सासादनाद्य योगान्ताना ।
गुणस्थानवत्कालः प्रज्ञप्तः खलु जिन शासने ॥५११॥

पंचेन्द्रिय देव देवी व नारकीय और मनुष्य तथा मनुष्यनी जीव त्रियच त्रियचनी इनकी काल व्यवस्था गुण स्थान के समान जानना चाहिये। विशेष यह है कि मिथ्यादृष्टि भव्य अभव्य और दूर भव्यो की अपेक्षा से सर्व काल में जीव रहते है। वे सब एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक होते है। आगे सासादन इत्यादि गुण स्थान पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के ही होते है। पचेन्द्रियपने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

स्थावर काय मे स्थावर जीवो का निवासकाल अनन्तानन्त है अथवा सर्व काल है। तथा एक जीव को अपेक्षा से अपने क्षुद्रभव के प्रमाण है पूर्व कथित उत्कृष्ट आयु प्रमाण है तथा उत्कृष्टता से असख्यात पुद्गल परावर्तन है। पृथ्वी जल अग्नि वायु इन चारों काय के जीवो की अपेक्षा सर्व काल है। तथा वनस्पति कायक जीवो का भी काल एकेन्द्रियों के समान है।

उत्कृष्ट सहस्रोदधिः कोटि पूर्वं पृथक्त्वै रधिकम् ॥
सासादनाद्य योगान्त शेषाणां गुणस्थानवत् ॥५१२॥

सामान्य से मिथ्यादृष्टी त्रस जीव सब काल में विद्यमान रहते है एक जीव को अपेक्षा दो घड़ी अथवा अन्तरमुहूर्त काल प्राप्त होता है। यह कैसे ? जब कोई त्रश पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव जन्म के सन्मुख हुआ और उस ही काल मे दो घड़ी बीत जाने पर उसने सम्यक्त्व को प्राप्त किया तब मिथ्यात्व का काल दो घड़ी या अन्तर मुहूर्त हुआ। उत्कृष्टता से हजार सागर कोटि पूर्व अधिक पृथक्त्व काल प्राप्त होता है। सासादन मिश्र असयत देश सयत से लेकर असंयोग केवली गुण स्थान तक पचेन्द्रिय जीवो में होते है उनकी काल मर्यादा गुण स्थानों के समान कही गई है।

वाङ् मनसः योगिनाम् च मिथ्यादृष्टियादि संयोगिदेहिनां।
सर्वकाल एकस्यैकसमयोत्कृष्टद्विघटिका ॥५१३॥

मन, वचन, योगि मिथ्यादृष्टी से लेकर सयोग केवली व त्रियच मनुष्य देव नारकी होते है उनका सब काल है। तथा एक जीव को अपेक्षा से उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त है। और जघन्य काल एक समय है। तथा सासादन सम्यग्दृष्टियो का काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली प्रमाण है। मिश्रसम्यग्दृष्टो का काल जघन्य से एकसमय उत्कृष्टता से पल्य का असख्यातवा भाग है। (अथवा अन्तरमुहूर्त है) एक जीव की अपेक्षा से जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त है।

उपशमकानां कालो जघन्यैक समयोऽन्तरमुहूर्तं च।
काययोगस्य सर्वकालाऽऽनपानस्याष्टादश भागः ॥५१४॥

उपशम श्रेणी चढने वाले, वचन, योग वाले जीव अपूर्व करण अनिवृति करण सूक्ष्म सापराय इनका जघन्य काल एक समय प्रत्येक का है। उत्कृष्टता से सब का काल भी अन्तर-मुहूर्त है तथा एक-एक का काल भी अन्तरमुहूर्त प्रमाण है। इस श्लोक मे च शब्द से यहा पर चारो क्षपको को ग्रहण कर लेना चाहिए। उपशम श्रेणो चढने वाले के समान ही क्षपक श्रेणी चढने वालो का काल कहा गया है। क्षपक श्रेणी वाला जोव उपशात मोह को उलघ कर क्षीण मोह मे जाता है अथवा दसवे से बारहवे को प्राप्त होता है। प्रत्येक गुण स्थान चढने वालो का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त है तथा प्रत्येक गुण स्थान का कम से कम काल तो एक समय और अधिक अन्तरमुहूर्त है यह कैसे ? इसका कारण यह है कि आवली के ऊपर और दो घडी से नीचे जितने काल है वे सब अन्तरमुहूर्त प्रमाण ही कहे गये है। यह काल की मर्यादा भावो की अपेक्षाकृत है क्योकि भाव प्रति समय बदलते रहते है।

काय की अपेक्षा विचार करने पर काय योग वालो का सर्व काल है तथा अनन्ता-नन्त पुद्गल परावर्तन है क्योकि काययोग एकेन्द्रिय से लेकर असेनी सेनी मिथ्यादृष्टि पचेन्द्रिय तक के होता है।(जघन्य से स्वास्वोच्छवास का अठारहवा भाग है)जघन्यता से एक समय है। मिथ्यादृष्टी सम्यग्दृष्टी अनेक जीवो की अपेक्षा सर्वकाल है क्योकि मिथ्यादृष्टी तथा सम्यग्दृष्टी हमेशा ही विद्यमान रहते है। एक मिथ्यादृष्टी की अपेक्षा से जघन्य काल एक समय है उत्कृष्ट काल अनन्तानन्त काल है अथवा असख्यात,पुद्गल परावर्तन है। शेष सुगम है ॥५१४

समिथ्यात्रिवेदानां सर्वकाल एकस्यान्तमुहूर्तम्।
अथः पल्य पृथक्त्वं सतमुदधि पृथक्त्वमनतश्च ॥ ५१५

स्त्री पुरुष और नपुसक वेद वाले मिथ्यादृष्टि जीवो का सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्यता से अन्तरमुहूरतकाल है और उत्कृष्टता से तीनसो पल्य से ऊपर नो सौ पल्य से नीचे। तथा पुरुष वेद वाले जीव का जघन्य से अन्तरमुहूरत तथा उत्कृष्टता से तीन सौ सागर से ऊपर नौ सौ सागर से नीचे काल कहा गया है नपुसक वेद वाले जीवो की अपेक्षा से अनन्तानन्त काल है।

एकस्यान्तर्मुहूर्तं मोघेन पंचपंचाशत् पल्यानि ।।
त्रयस्त्रिंशतत्सागर: स्त्री नपुंसक वेदयोर्नः पुंषः ।।५१६।।

तीन वेद वाले जीवों का जघन्य काल अन्तरमुहूरत है। तथा स्त्री वेद वाले जीवों का उत्कृष्ट काल पचपन पल्य प्रमाण है क्योकि स्त्री वेद वाले जीव आरणअच्युत स्वर्ग तक वहां उनकी पचपन पल्य की उत्कृष्ट आयु होती है। नपुंसक वेद वाले जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर प्रमाण होती है। तथा पुरुष वेद की स्थिति तैंतीस सागर प्रमाण है क्योंकि वेद रहित कोई उपशम श्रेणी चढने वाला जीव सूक्ष्म सापराय को पार कर उपशांत मोह से च्युत होते समय मरण को प्राप्त हुआ और सर्वार्थ सिद्धि विमान में तैंतीस सागर प्रमाण आयु को प्राप्त हुआ इस प्रकार तैंसीस सागर प्रमाण काल प्राप्त होता है। कोई सक्लिष्ट परिणामी दीर्घ रौद्र ध्यानी नरक की तैंतीस सागर प्रमाण आयु का धारक नारकी हुआ। इस अपेक्षा से नपुंसक वेद की तैंतीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है।

षोडशकषायानां च चत्वारिंशत् कोटाकोटी सिन्धुः ।।
अरति भय शोक नपुंसकानां विंशति कोटाकोटी ।।५१७।।
स्त्रीवेदस्य पंचदश हास्यरति पुंवेदानां दशोदधिः ।।
कोटाकोटी च यदाकालेऽपकर्षेण द्विघटिकाः ।।५१८।।

अनन्तानुवन्धी अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान सज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ इन सोलह कषायो की उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोटा कोटी सागर प्रमाण है। तथा अरति शोक भय और नपुंसक वेद इन नो कषायो की उत्कृष्ट स्थिति २० कोडा कोडी सागर प्रमाण है स्त्री वेद की उत्कृप्ट स्थिति पन्द्रह कोटा कोटी सागर प्रमाण है। तथा हास्य रति और पुरुष वेद नोकषायों का काल दश कोटा कोटी सागर प्रमाण उत्कृष्ट कहा गया है। इन कपायों तथा नो कषायों का जघन्य काल दो घड़ी प्रमाण जानना। यह मिथ्यादृष्टी जीव इन पचीस कषायों की उत्कृष्ट वधक होता है। तथा प्रथम कषाय की चौकड़ी का तीव्र उत्कृष्ट स्थिति कौन के होती है

आगे श्लोक कहते है

सर्वं काले मिथ्यात्वे मिथ्यादृष्टिनां सर्वकषानि यान्ति।
मिथ्यात्व मोहस्य सप्तति कोटाकोट्यन्तर मुहूर्तम् ।।५१९।।

(मिथ्यादृष्टि) मिथ्यात्व मे मिथ्यादृष्टि जीवो के निरन्तर वासना काल प्राप्त होता है। ऐसे जीव वहुत है जिनको मिथ्यात्व का अन्त नही आवेगा। वे कौन है? अभव्य और दूर भव्य दोनो के ये कषाये निरन्तर विद्यमान रहती है इसलिए इनका काल अनतानत कहा गया है। तथा दर्शन मोह की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण काल होता है। जघन्य से दो घड़ी प्रमाण वासना काल होता है। इनका फल काल आवाधा काल के पूर्ण होने पर होता है। आवाधा काल एक कोटा कोटी सागर का एक सौ वर्ष होता है। जैसे किसी कर्म की स्थिति वीस कोड़ा कोड़ी सागर की है उनका आवाधा काल दो हजार वर्ष होगा। भव्य मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से दो घड़ी जघन्य काल ही पर्याप्त है। और उत्कृप्ट पने से असंख्यात पुद्गला परावर्तन काल है। मिथ्यात्व का सदाकाल है। एक जीव की अपेक्षा

अन्तर मुहूर्त और उत्कृष्टता से असख्यात पुद्गला परावर्तन काल है। ५२०॥

सासादनादि सूक्ष्मसांपरायान्तानाम् सदाकालः।
जघन्येक समयोत्कृष्टेनान्तर मुहूर्तं कालम् ॥५२अ॥

सासादन से लेकर सूक्ष्म सापराय नाम के दशवे गुण स्थान तक के जीव हमेशा विद्यमान रहते है इस प्रकार सामान्य से यह काल की मर्यादा कही है। एक-एक गुण स्थान पृथक-पृथक की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्टता से अन्तर मुहूर्त प्रमाण हैं। काल कषायो का कहा गया है। लोभ कषाय को छोड़कर शेष कषायो का अस्तित्व अनिवृत्त करण तक ही पाया जाता है लोभ का अस्तित्व दशवे गुण स्थान तक होता है।

ज्ञानावर्णस्यस्थितिः सागरकोटाकोटी त्रिंशच्च।
कुमतिश्रुतिमिथ्यादृष्टिनां सदाविभंगानां च ॥५२१॥

ज्ञानावरण कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटा कोटी सागर प्रमाण होती है। तथा कुमति कुश्रुत तथा विभगावधि ज्ञान का सर्व काल होता है ये तीनो ज्ञान मिथ्यादृष्टि जीवो के होते है। इनका काल मिथ्यात्व के काल प्रमाण है॥

सेतरैकजीवस्य आर्यत्रिंशसागरश्चान्तर्मुहूर्तम्।
मतिश्रुतावधीनां च सम्यक्वत् कालो याति ॥५२२॥

कुमति कुश्रुति और विभंगावधि ज्ञान का काल उत्कृष्टता से तेतीश सागर प्रमाण है। कम से कम अन्तर मुहूर्त प्रमाण है। इसका कारण यह है कि ये तीनो ज्ञान मिथ्यादृष्टि देव और नारकियो के होते है। नारकी जीवो की उत्कृष्ट आयु तेतीश सागर प्रमाण है। देवो के इकतीस सागर प्रमाण होती है। ये एक जीव एकेन्द्रिय के कुमति कुश्रुति दो ज्ञान होते है वे अक्षर के असख्यातवें भाग प्रमाण निरावरण ज्ञान के धारो होते हैं। विकलेन्द्रियो तथा अमनस्क पंचेन्द्रिय तथा सेनी पचेन्द्रिय त्रियच मनुष्यो देव नारकी मिथ्यादृष्टि जीवो के होने से इनका मिथ्याज्ञान कहा गया है ऐसे जीव नित्य ही ससार मे विद्यमान रहते हैं। सर्व काल है। जघन्य से अन्तर मुहूर्त है यह कैसे जाना जाता है? कोई मिथ्यादृष्टि पर्याप्त पचेन्द्रिय साकार निराकार उपयोग वाला अनादि मिथ्यादृष्टि देव या नरकी पंचलब्धियो के काल को पूराकर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तब अन्तरमुहूर्त काल प्राप्त हो जाता है। विभगावधि मिथ्यादृष्टि देव या नारकी जीवो के प्राय कर होते है। कोई मिथ्यादृष्टि अकाम निर्जरा या वाल तपकर देवगति को प्राप्त हुआ या पापोपार्जन कर नरक गति को प्राप्त हो सातवे नरक गया वहा तेतीश सागर की स्थिति को प्राप्त हुआ। वहा विभंगावधि को प्राप्त हुआ तब तेतीश सागर इन तीनो ज्ञानों का काल उत्कृष्ट प्राप्त हुआ। मति श्रुतावधि इन तीनो ज्ञानो का काल नाना जीवो की अपेक्षा सर्वकाल होता है। इनकी काल मर्यादा सम्यक्त्व के समान है इसका भी कारण सम्यक्त्व ही है। क्यो कि सम्यक्त्व होने पर ही सम्यग्ज्ञान कहलाते है नही तो मिथ्याज्ञान कहलाते है। जब जीवो के उपशम सम्यक्त्व हुआ तत्काल मे मिथ्याज्ञान भी सम्यग्ज्ञान हो जाते है। जब अन्तर मूहूर्त व्यय हो गया और उपशम सम्यक्त्व क्षय हो गया तब मति श्रुति ज्ञान है वे मिथ्याज्ञान हुए इस प्रकार इनका काल दो

घड़ी जघन्य है। मति श्रुतावधि ये तीनों ज्ञान सम्यग्दृष्टि असंत से लेकर क्षीण मोहक्षद्मस्थ तक रहते हैं तथा मन पर्ययज्ञान छठवे गुण स्थान से क्षद्मस्स क्षीण मोह तक सात गुण स्थानों में होता है इन चारो ज्ञानों का काल सम्यक्त्व के समान कहा गया है।

मनःपर्ययस्य कालः प्रमत्तादि क्षोणमोहान्तवच्चेत् ।।
केवलऽनिना कोटिपूर्वं देंशोनैक मुहूर्तम् ।।५२३ ।।

मनः पर्ययज्ञान प्रमत्त गुण स्थान वाले मुनियों के होता है तथा प्रमत्त से लेकर क्षीण मोह तक के किन्ही भी योगियो के होता है। अनेक जीवो की अपेक्षा सर्वकाल है। तथा एक जीव की अपेक्षा जघन्यता से अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टता से कोटि पूर्व से कुछ कम काल तक रहता है। केवल ज्ञान सयोगी अयोगी दो गुण स्थानों में होता है इसका काल एक समय या मुहूर्त है। तथा वासना काल कोटी पूर्व से कुछ काल कम है तत्पश्चात जीव सिद्ध भगवान बन जाता है। इन ज्ञानो की मर्यादा एक सम्यक्त्व है। मति श्रुति ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति क्षायक सम्यक्त्व की अपेक्षा से तेतीश सागर पूर्व कोटि पृथक्त्व है। जघन्य अन्तर मुहूर्त की है। अथवा क्षयोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षा से ६६ सागर की स्थिति प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि किसी जीव ने प्रथमोपशम को प्राप्त कर दूसरे समय में क्षयोपशम किया तब श्रेणी चढ़ने को सन्मुख हो शेष प्रकृति का क्षय कर क्षपक श्रेणी से आरोहण किया और सब के काल को पूराकर केवलज्ञान को प्राप्त हुआ। इन सब का काल अन्तर मुहूर्त हो जघन्य हुआ। क्षायोपशम सम्यक्त्व के साथ होने वाले मति श्रुति अवधि इनका काल छयासठ सागर उत्कृष्ट और जघन्यता से अन्तर मुहूर्त है। क्यो कि क्षयोपशम सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति छयासठ सागर की कही गई है तत्पश्चात या क्षायक सम्यग्दृष्टि हो जायेगा या द्वितियोपशम सम्यक्त्व को कर लेगा। इस प्रकार उत्कृष्ट और जघन्य काल सव ज्ञानो का कहा है।

सयम की काल मर्यादा कहते है।

पचविध सयमाना मोघेन सदाकालैक समयो वा।
अन्तर मुहूर्तं हीन देश सयतनां पूर्वं कोटी ।।५२४।।

सामायिक क्षेदोपस्थापन परिहारविशुद्धि सूक्ष्म सापराय और यथाख्यात पाचों चारित्र का सामान्य से काल अन्तर मुहूर्त है उत्कृष्टता से सब काल है कि पांचों संयम वाले जीव सव कालों मे नियम से विद्यमान रहते है। एक-एक की अपेक्षा से जघन्यता से एक समय और उत्कृष्टता से अन्तर मुहूर्त काल है। इसका सामान्य से कोटि पृथक्त्व मुनिराज प्रमत्त गुण स्थान से लेकर सयोगी असयोगियो की सख्या विद्यमान रहती है। अथवा तीन कम नौ करोड़ मुनि विराजमान रहते हैं। यथाख्यात चारित्र की जघन्य से अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टता से कोटि पूर्व से कुछ कम स्थिति है। इस का कारण यह है कि किसी जीव ने आठ वर्ष छह माह की उम्र बीत जाने पर जिनेश्वरी दीक्षा धारण कर श्रेणी चढा और अन्तर मुहूर्त तक ध्यान किया जिससे केवल ज्ञान को प्राप्त हुआ। आठ वर्ष छह महिना दो घड़ी कम कोटि पूर्व तक संयोग में रहकर अयोग केवली होते हैं। वह यथा ख्यात चारित्र का काल उत्कृष्ट प्राप्त हुआ। संयमासयम का जघन्यता से एक समय और उत्कृष्टता से अन्तर मुहूर्त है वासना को अपेक्षा

यथाख्यात के बरावर है।

चतुर्दर्शनानां सर्वः कालो भवन्ति वहुवो जीवाः।
मिथ्यादृष्टि जीवस्य कालोऽन्तर्मुहूर्तं कथितम् ॥५२५॥

चक्षुदर्शन अचक्षु दर्शन अवधि दर्शन और केवल दर्शन चारों दर्शन वाले जीवों का सर्व काल है। हमेशा ही विद्यमान रहते है। चक्षुदर्शन वाले मिथ्यादृष्टि तथा अचक्षुदर्शन वाले मिथ्यादृष्टि का काल जघन्यता मे दो घडी कहा गया है। और उत्कृष्ट से दो हजार सागर प्रमाण है।

द्वे सहस्रोदधिः कालः चक्षुदर्शनयुक्तानाम्।
अचक्षुदर्शनाना प्राग्युक्तस्तथा विजानीहि ॥५२६॥

अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन तथा केवलदर्शन की काल मर्यादा पहले की चर्चा मे कथन कर आये हैं उतनी ही जानना चाहिए। तीश कोटाकोटी सागर प्रमाण है।

प्राक् लेश्यायुक्तानां भवति च सर्व कालोऽन्तरमुहूर्तं।
उत्कृष्टेस्त्रार्यत्रिशत् सागरोपमं मुनिरुपदिष्टः ॥५२७॥
सप्त दश सप्त सागरो संयताम् त्रयंत्रिश सप्तदश ॥
सप्तसागरोपयान्तर मुहूर्तं कालश्चरमम् ॥५२८॥

कृष्ण लेश्या नील लेश्या कापोत लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवो का वासना काल सव है अथवा तीनो लेश्याओ के धारक मिथ्यादृष्टि नित्य विद्यमान रहते है इनका काल सव है। एक जीव की अपेक्षा से विचार करने पर कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट काल तेतीश सागर से कुछ अधिक हैं नील लेश्या का जघन्य से अन्तर मुहूर्त और उत्कृष्टता से सत्रह सागर से कुछ अधिक हैं कापोत लेश्या वालो का उत्कृष्ट काल सात सागर से कुछ अधिक है जघन्यकाल दो घडी हैं कृष्ण नील कापोत ये तीनो असयत चौथे गुणस्थान वाले जोवो तक के होती हैं।

पीतादित्रयलेश्या मिथ्यादृष्टिनां सर्वकालश्च।
एकस्यद्वयष्टादश एकत्रिंश सागरोऽधिकम् ॥५२९॥

पीत लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर की है और कुछ अधिक है। पद्म लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागर से कुछ अधिक है। शुक्ल लेश्या की स्थिति अधिक से ३१ सागर की मिथ्यादृष्टी जीवो द्रव्यलिंगी मुनि की अपेक्षा से है क्योकि कोई भी मिथ्यादृष्टी कु तप कर देव गति को प्राप्त हुआ ईशान व सौधर्म स्वर्ग मे पीत लेश्या का धारक उत्पन्न हुआ तव दो सागर से कुछ अधिक काल प्राप्त होता है। जघन्यता से दो घड़ी या अन्तरमुहूर्त काल है ॥५२९॥

जघन्यान्तुर्मुहूर्तं सम्यग्दृष्टीनां सर्वकालश्च।
त्रार्यत्रिशत्सागरोपमं देशान्सयोगान्ते शुक्ला ॥५३०

सम्यग्दृष्टी नाना जीवो की अपेक्षा से ये तीन लेश्यायें हमेशा विद्यमान रहती हैं एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तरमुहूर्त काल है उत्कृष्टता से मिथ्यादृष्टी के समान ही पीत पद्म लेश्या का उत्कृष्ट काल है। परन्तु शुक्ल लेश्या का काल तेतीस सागर प्रमाण है।

अथवा कोटि पूर्व पृथक्त्व अधिक है। यह लेश्या मिथ्यादृष्टी जोवों से लेकर सयोग केवलो गुण स्थान वाले जीवों तक के होती है। पीत पद्म अप्रमत्त गुण स्थान तक होती हैं।

पीतपद्मेप्रमत्ता प्रमत्तैक संयतान्तर्मुहूर्तम् ।
शुक्ले यथाकालश्च योगान्तेषु गम्यते जिनः ॥५३१ ॥

पीत पद्म दोनो लेश्यायें मिथ्यादृष्टी असंयत सासादन मिश्र सयतासयत प्रमत्त अप्रमत्त छठवे व सातवें तक होतो है। शुक्ल लेश्या मिथ्यादृष्टो से लेकर सयोग केवलो जिनके होतो हैं। अन्तरमुहूर्त तथा एक-एक सयय को इनका जघन्य काल है विशेप यह है कि सयतासंयत शुक्ल लेश्या वाले नाना जोवो को अपेक्षा सर्व काल है। एक जोव को अपेक्षा से जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त है ॥५३१॥

अभव्य मिथ्यादृष्टो जीवों का काल अनादि अनन्त है भव्य जोवों का काल अनादि शान्त सादि शान्त। जो अनादि काल से मिथ्यात्व को लेकर ससार में जन्म मरण कर रहा था जिनसे पंच परावर्तनो को अनेक वार पूर्णकर दिये फिर भी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं हुआ न होवेगा ऐसा अभव्य मिथ्यादृष्टी का काल अनादि अनन्त है। जो भव्य अनादि काल से ससार अवस्था में रहकर पंचलब्धियो को पाकर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ तब अनादि शान्त मिथ्यात्व का हुआ। यदि शात किसो जीव ने ससार में भ्रमण कर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर क्षयोपशमक हो श्रेणो चढ़ने के सन्मुख हुआ तव द्वितोयोपशम कर उपशम श्रेणो से चढ़ना चालू किया और उपशान्त मोह तक चढ़ा तव ज्ञानावरर्णादि का बंध का अभाव किया। तव कषाय के उदय में आ जाने से उपशान्त मोह से च्युत होकर क्रमशः मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया और पुनः नवीन रूप से ज्ञानावरण आदि कर्मो का आस्रव और बध कई प्रकार से हुआ तव संसार में भ्रमण कर पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त किया तब सादि शान्त काल भव्य के प्राप्त होता है वही क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त कर क्षपक श्रेणो से चढ़कर केवल ज्ञान प्राप्त करते है। भव्य भो दो प्रकार के होते है एक निकट भव्य दूसरे दूर भव्य। वा शब्द से दूर भव्यों को भी ग्रहण किया गया है वे जोव अनन्तानन्त काल संसार में ही भ्रमण करते रहेंगे गुणस्थानों को अपेक्षा प्रथम गुणस्थान मिथ्यात्व में सब भव्य अभव्य दूर भव्य सव ही होते है। शेष गुण स्थान भव्य जोव के हो होते हैं। विशेष इस प्रकार है।

अभव्यानामनाद्यनंतो भव्यानामनादि सान्तः ।
सादिशान्तपूर्वोक्तः कालो यथावज्ज्ञातव्यः ॥ ५३२॥
अभव्यानाद्यनंतो भव्यानादिशादिशान्त कालः ।
मिथ्यादृष्टीनां सान्तर्मुहूर्तं साद्यनादि शान्तः ॥ ५३३ ॥

अभव्य मिथ्यादृष्टी जीवों का काल अनादि और अनंत है। भव्य जीवों का काल अनादि शान्त और सादि शान्त। जो भव्य है और मिथ्यात्व सम्पन्न होने के कारण से अनंत काल से संसार में जन्म मरण करता चला आ रहा था जिसने पंच परावर्तनों को अनेक बार पूर्ण कर दिए फिर भी सम्यक्त्व को प्राप्त नही हुआ न होवेगा ही ऐसे अभव्य जीवों का काल अनादि और अनंत होता है। जो भव्य है और अनादि काल से संसार अवस्था में रहकर

पंच लब्धियों को प्राप्त हुआ और उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त किया तब अनादि शान्त मिथ्यात्व की अवस्था हुई। सादि शान्त किसी मिथ्यादृष्टी जीव नें प्रथमोपशम सम्यक्त्व को पाकर पुन: क्षयोपशमिक सम्यक्त्व को कर श्रेणी चढने के सन्मुख हुआ और सम्यक्प्रकृति को उपशम द्वितीयोपशम कर उपशम श्रेणी से चढा और उपशान्त मोह ग्यारहवें गुण स्थान तक चढा और उसमें अन्तरमुहूर्त काल तक रह कर। लोभ कपाय का उदय आ जाने से उपशान्त मोह का आस्रव कर बंध को प्राप्त हुआ तब सादि शान्त काल भव्य जीव को प्राप्त हुआ। वही जीव ससार में कुछ समय भ्रमण कर सम्यक्त्व को प्राप्त करके क्षपक श्रेणी से चढकर केवल ज्ञान को प्राप्त हो मोक्ष को प्राप्त करता है। भव्य जीव भी दों प्रकार के होते हैं एक निकट भव्य दूसरा दूरभव्य। वा शब्द से दूर भव्य को भी ग्रहण किया है दूरभव्य अनंत काल बीत जानें पर संयोग नही मिलेगा। न वे सम्यक्त्व को ही प्राप्त होगे। वे अनत ससारी ही रहेगे। गुण स्थानों की अपेक्षा से मिथ्यात्व गुण स्थान में भव्य दूर भव्य और अभव्य सब ही में रहते हैं। शेष गुण स्थान भव्य जीवों के ही होते हैं॥ ५३२-५३३॥

मिथ्यात्वे चाहारक जीवानां प्रोक्तं सर्वकालश्च।
अनुकालोऽन्तरमुहूर्तं ऐषाऽसंख्यातोत्सर्पिण्य च॥५३२॥

अमनस्क जीवो का सर्व काल है क्योकि वे जीव एकेन्द्रिय से लेकर असेनी पंचेन्द्रिय पर्यन्त अनतानत जीव है वे सब ही अमनस्क है (मन रहित) उनकी अपेक्षा से सब काल है एक जीव की अपेक्षा से क्षुद्रभव प्रमाण है इसका कारण यह है कि कोई भव्यात्मा एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव मरकर पंचेन्द्रिय सेनीयो में उत्पन्न होता है इस अपेक्षा से क्षुद्रभव कहा है। उत्कृष्ट काल असंख्यात भाव परावर्तन काल है इसका कारण यह है कि नित्यनिगोदिया जीव असख्यात बार भाव परावर्तन को करके भी नित्य निगोद से निकलता नही। भाव परावर्तन ही क्यों कहा? इसका कारण कहनें का यह है कि भव परावर्तन तक के परावर्तन नित्यनिगोदिया जीवो के नही होते है क्योकि द्रव्य क्षेत्र काल भाव ये चार परावर्तनो को एकेन्द्रिय से लेकर चारो गति वाले पचेन्द्रिय जीव कहते है। नित्यनिगोद वाले जीवो को नित्य ऐसा विशेषण दिया है। परन्तु इतर निगोद यहा ग्रहण किया जाय तब पाचो ही परावर्तन प्राप्त हो सकते है परन्तु नित्य निगोदिया जीवो के ऐसा भाव परावर्तन ही होता है चार नहीं।

सेनी पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टी व सासादन मिश्र असयत सम्यग्दृष्टी व सर्व क्षीण मोह पर्यन्त जीव है वे सब ही समनस्क है सामान्य से सबका काल नित्य है क्योंकि कोई भी उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल का एक समय नही। तथा जघन्यता से दो घडी काल है। सज्ञी जीवो का जघन्य काल दो घड़ी है और उत्कृष्टता से तीन सौ सागर से कुछ कम काल होता है अथवा सौ सागर प्रथक्त्व काल है यह सेनी मिथ्यादृष्टी का काल कहा है। सासादन से लेकर क्षीणकषाय क्षद्मस्त जीवों की अपेक्षा जघन्य काल अतरमुहूर्त है। उत्कृष्टता से सत सागर प्रथक्त्व है।

आहारक अवस्था में मिथ्यादृष्टी जीव हमेशा ही विद्यमान रहते है इसलिए आहा-

रक जीवों का सर्व काल है। जघन्यता से अंतरमुहूर्त है। उत्कृष्टता से असख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल कहा गया है। अनाहारक जीव मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर सयोगी जिन गुण स्थान तक सब ही जीव अनाहारक होते है उनका अनेक संसारी जीवों की अपेक्षा सर्व काल है। एक जीव की अपेक्षा से एक समय या दो समय व तीन समय होता है। उत्कृष्टता से आवली के असख्यातवें भाग प्रमाण काल है। पुनः एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय काल है या दो समय या सख्यात समय है तथा एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय है। अयोग केवलो अनाहारक नाना जीवो की अपेक्षा से सर्व काल है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय है। अयोग केवली अनाहारक नाना जीवों की अपेक्षा से सब काल हैएक जीव की अपेक्षा से जघन्य काल अतरमुहूरत है उत्कृष्टता से कोटि पूर्व से कुछ कम है।

विशेष—एक जीव पूर्व शरीर को छोड़कर उत्तर शरीर को प्राप्त करने के लिए विग्रह गति से गमन करता है तब ऋजुगति से गमन करे तो एकसमय पर्यन्त अनाहारक रहता है तत्पश्चात वह अपनें शरीर के योग नो कर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर नियम से आहारक बन जाता है। एकेन्द्रिय जीव या देव मरण कर लोक नाड़ी के बाहर वाले एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होनें के सम्मुख होता है तब वह दो समय या तीन समय पर्यन्त अनाहारक औदारिक काय इन्द्रिय बल स्वासोच्छ्वास और आयु इनके योग्य पुद्गलो को ग्रहण कर लेता है तब वह आहारक हो जाता है। दो इन्द्रिय के भाषा पर्याप्त रसना इन्द्रिय ये छह पर्याप्त होती है तीन इन्द्रिय के एक घ्राण इन्द्रिय पर्याप्त बढ़ जाती है चार इन्द्रिय के एक चक्षु इन्द्रिय बढ़ जाती है पचेन्द्रिय जीव के कर्ण इन्द्रिय व मन बढ़ जाने से छह पर्याप्तया है। नाना भव्य जीवों की अपेक्षा सर्व काल है एक जीव की अपेक्षा अन्तरमुहूर्त काल है एक जीव की अपेक्षा से एक समय अन्तरमुहूर्त है ॥५३३-५३४॥

सम्यक्त्वानां खलु सर्वः वासानाकालः सामान्यः।
चरमोद्विघटिका त्रार्यात्रिशसागरोऽधिकं विद्येत् ॥५३५॥
क्षयोपशमिके द्विचरम द्वात्रिंशाधिक सतसागरः कालोऽपिवा॥
भ्रमित्वा जगान्ते सिद्धाः सुखानुभवन्तु चिरकालश्च ॥५३६॥

सामान्य से तीनो प्रकार के सम्यग्दृष्टि जीवों का वासना काल हमेशा ही रहता है उपशम तथा क्षयोपशम ये दोनों सम्यक्त्व पंचेन्द्रिय चारों गति वाले जीवों की अपेक्षा सब काल रहता है क्योकि ऐसा कोई समय नही आता है कि तीनों लोक में उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव न रहे। उन दोनो सम्यक्त्वों की उत्पत्ति और विनाश दोनों ही हुआ करते है। कुछ स्थान ऐसे है कि जहाँ पर क्षायक सम्यक्त्वी की उत्पत्ति नही होती। विशेष यह है कि उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव तीसरे नरक तक ही जन्म लेते है तथा क्षायक सम्यग्दृष्टो प्रथम नरक तक ही जन्म लेते है दूसरे आदिक में क्षायक सम्यक्त्व का अभाव है। उपशम सम्यक्त्व सातों नरक वासी नारकियों के होता है उसका काल उत्कष्ट दो घड़ो मात्र ही है उपशम करने वाले जीव सब कालो में पाये जाते है। विशेष यह है कि

क्षयोपशम सम्यक्त्व का जघन्य काल अंतरमुहूर्त है उत्कष्टता से ६६ सागर प्रमाण है किन्ही आचार्यो का ऐसा मत है कि क्षयोपशम सम्यक्त्व दोबार होता है इसका कारण यह है कि क्षयोपशम न करने वाला जीव जब छयासठ सागर में अंतरमुहूर्त शेष रहा तब श्रेणी चढने के सन्मुख हुआ और द्वितीयोपशम कर श्रेणी चढा और उपशान्त मोह, में अतरमुहूर्त काल रहा और च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो पुनः उपशम कर पुनः क्षयोपशम करके क्षयो-पशमिक सम्यग्दष्टी बना और अतरमुहूर्त कम छयासठ सागर प्रमाण रहकर कृतकृत वेद कर क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त हो गया इस अपेक्षा से १३२ सागर प्रमाण काल क्षयोपशम का होता है। क्षायक सम्यक्त्व का जघन्य काल अतरमुहूर्त है उत्कष्ट काल कोटि पूर्व आठ वर्ष तीन महीना अधिक तैतीस सागर प्रमाण है। इसका कारण यह है कि जिनके दो भव मनुष्य के बाकी है वे अनुदिश और अनुत्तर विमानों मे उत्पन्न होते रहते है उनकी जघन्य स्थिति ३२ सागर प्रमाण हैं और उत्कष्ट तैतीस सागर प्रमाण है इस प्रकार विचार करने पर क्षयोपशम वाले की छयासठ सागर प्रमाण कही गई है तथा पूर्व कोटि पृथक्त्व सिद्ध हो जाता है। अथवा १३२ सागर प्रमाण ससार अवस्था मे रहकर क्षय कर क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त हो मोक्ष को प्राप्त होता है। उपशम श्रेणी से चढने वाले उपशम सम्यग्दृष्टी चारो का काल अतरमुहूर्त है तथा एक-एक का भी है क्षपक श्रेणी चढने वालो का काल अयोगी पर्यन्त मूहूर्त होता है सयोग सम्यग्दष्टी का काल कोटि पूर्व से कुछ कम है सासादन का जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवलिक मिश्र वालो का भी उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त तथा जघन्यता से एक समय है विशेष आगम से जानना चाहिए। ये सब सम्यक्त्व निकट भव्य के लिए अचिन्त्य सुखो को देने वाले है। इनका सुख स्वाद अभव्य तथा दूर भव्य को नही होता है ।। ५३५-५३६ ।।

अमनस्कानां सर्वः कालो वा क्षुद्रभव प्रमाणैव ।
उत्कृष्टोऽसख्यातो भावपरावर्तः भवेत् तत् ।।५३७
मिथ्यात्वे सज्ञीनां सर्वं भवन्ति कालोऽन्तरमुहूर्तो ।
सासादनादि क्षीणान्त सयमीनामन्तमुहूर्तम् ।।५३८

सामान्य अमनस्क जीवो का सर्वकाल है। अमनस्क जीव हमेशा ही विद्यमान रहते है। एक जीव की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव का काल छुद्रभव प्रमाण है क्योकि भव को पूर्ण कर सेनी पचेन्द्रियो मे उत्पन्न होने की अपेक्षाकृत है। और उत्कृष्टता से अनत भाव परावर्तन उस जीव के होते है। क्योंकि अमनस्क जीवो के नित्य ही मिथ्यात्व का उदय पाया जाता है। तथा स्थावर नाम कम का उदय (रहता है)। वे जीव एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायक एकेन्द्रिय होते हैं इनके चार प्राण होते है और चार पर्याप्तिया होती है। तीन इन्द्रिय जीवो के सात प्राण पाच पर्याप्तिया होती है असेनी पचेन्द्रिय जीवो के पाच पर्याप्तया तथा ९ प्राण होते है। ये सव ही असैनी होते है। जब छहो पर्याप्तिया और दश प्राणो की प्राप्ति होती है तब पचेन्द्रिय समनस्क होता है। पर्याप्तिया कौन है उनसे क्या प्रयोजन है ? जब मिथ्यादृष्टि जीव औदारिक वैक्रियक और आहारक तीन शरीरो योग्य व छह पर्याप्तियो के योग्य औदारिक वंक्रियक आहारक तथा भाषा मन आनपान पर्याप्ति इनके

योग्य नो कर्म पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण कर लेता है तब समनस्क होता है। सेनी पंचेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टियों का सब काल है। एक जीव की अपेक्षा से अन्तरमुहूर्त है क्यों कि जन्म के पीछे अन्तरमुहूर्त बीत जाने पर सम्यक्त्व को प्राप्त होता है। सासादन से लेकर क्षीण कषाय गुण स्थान वाले संयमी जीवों का काल अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट और जघन्य प्राप्त होता है। क्योकि सासादन से लेकर क्षीण कषाय तक के सब जीव समनस्क ही होते है। औदारिक शरीर वालों के कवलाहार होता है केवलियों के नो कर्म आहार स्थावरों के लेपाहार होता है देवों के इच्छाहार और पक्षियों के अण्डे की अवस्था मे ओजाहार होता है। किसी के कर्माहार भी होता है। परन्तु यहा इन से कोई सम्बन्ध नही है ॥५३७-५३८॥

एकेन्द्रिय जीवों के चार प्राण होते है दोइन्द्रिय जीवों के छह प्राण होते है।

अनाहारकेमिथ्यादृगादीनां इचैक द्वित्रि समयाः।
सासादनासंयता सम्यग्द्वष्टेयेक द्वित्रि समयः ।५३९॥

अनेकानेक मिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा से सर्वकाल होता है परन्तु एकजीव की अपेक्षा एक समय या दो समय या तीन समय अधिक से अधिक इसके पीछे जीव नियम से आहारक हो जाता है सासादन तथा असयत सम्यदृष्टि गुणस्थान वाले अनाहारक अवस्था में एक दो या तीन समय काल होता है। तथा आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण काल होता है सयोग केवली के अनाहारक काल की व्याख्या कर आये है ।५३९।

आगे अन्तर कहते है

गुणभ्रष्टो गुणान् पुनः लब्ध्वामध्यगतःकालान्तरोच्यते ॥
यथाकोऽपि स्वगृहात् निर्गच्छतं पर गृह पुनःस्वम् ॥५४०॥

जैसे कोई व्यक्ति अपने घरको छोड़कर परदेश चला गया और कुछ काल बीतने के बाद वह अपने घर को वापस आया और अपने घर को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार जो कोई भी पहले समय में गुणस्थान का स्वामी बना था और उस गुणस्थान से कालान्तर में च्युत हो गया औरअन्य गुणस्थानों को प्राप्त होगा पुनः उन गुणस्थानों को छोड़कर पहले स्थान को प्राप्त होने के बीच में जितना काल व्यतीत हुआ वह अन्तर कहलाता है। गुण से गुणान्तर भाव से भावान्तरमार्गणा से मार्गणान्तर कषाय से कषायान्तर। ज्ञानावरण से ज्ञानावरणान्तर दर्शनावरण से दर्शनावरणान्तर दर्शन मोह से दर्शनमोहान्तर। ५४०।

मिथ्यादृष्टे नास्त्यंतरैकं प्रत्यन्तर मुहूर्तान्तरः
ऐषांन्तरं द्वात्रिंशधिक शतोदधिर्देशोनः ।४४१ ॥

अनेक मिथ्यादृष्टी जीवों की अपेक्षा कोई अन्तर नही है। एक जीव की अपेक्षा दो घड़ी अंतरकाल होता है और उत्कृष्टता से १३२ सागर से कुछ कम होता है। इसका-कारण यह है कि किसी अनादि मिथ्यादृष्टी जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर उपशम सम्यग्दृष्टी हुआ और तत्पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृति उदय में आ जाने से क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी बन गया तब उसका काल ६६ सागर प्रमाण हुआ और असंयत गुणस्थान में ही व्यतीत किये जब अतर मुहूर्तकाल शेष रह गया उपशम श्रेणी चढने के सन्मुख सातिसय

अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त हो द्वितीयोपशम कर श्रेणी चढ़ा और उपशान्त मोह में कुछ ही समय रहा और कषाय का उदय हो जाने के कारण वहा से च्युत हो क्रम से असयत दशा को प्राप्म होने पर सम्यक्त्व प्रकृति का पुन: उदय हुआ तब ६६ सागर प्रमाण स्थिति सम्यक्त्व की ग्रहणकर मनुष्य देव देवसे मनुष्य गति मे जन्ममरण कर ६६ सागर से कुछ कम काल शेष रहा कि कारण पाय सम्यक्त्व की विराधना करके मिथ्यादृष्टि बन गया इसप्रकार १३२ सागर प्रमाण काल उत्कृष्ट प्राप्त होता है। किसी जीव ने उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त किया और दो घड़ी काल तक सम्यक्त्व मे रहा तब कषाय का उदय होने पर सासादन करने वाला हो एक समय के पीछे मिथ्यादृष्टि बन गया इस प्रकार मिथ्यात्व का अतर काल दो घड़ी होता है यह मिथ्यात्व का जघन्य काल है।५४१॥

सासादन मिश्रौदृगां नास्त्यतरैकं प्रति चरम समय:
ऐधा पल्यासंख्येय भागोवैकस्य चरमान्तरम् ।५४२
ऐधार्धपुद्गला परावर्तो देशोनमिश्रैकं द्विघटी ॥
सम्यग्दृष्टयप्रमत्त सयतानां नास्त्यंतरैव ॥५४३॥
एकस्य चरमो द्विघटिकैधाऽर्धपुद्गलावर्त देशोन ॥
चतुरुपशमक क्षपकौ चरम समयो जीवानां च। ५४४॥

सामान्य से सासादन और सम्यगमिथ्यादृष्टि नाना जीवो की अपेक्षा से अन्तर नही पाया जाता है इसका कारण यह है कि तीनो लोको मे प्रतिसमय कोई न कोई जीव सासादन व मिश्रवाला विद्यमान रहता ही है इसलिए निरतर है। एक जोव को अपेक्षा विचार करने पर कम से कम एक समय अन्तर पड़ता है। इसका कारण यह है कि कोई उपशम सम्यक्त्व वाला जीव उपशम सम्यक्त्व की मर्यादापूर्ण कर कषायके उदय आने के कारण को पाकर सम्यक्त्वरत्न चूलिका से गिरा परन्तु मिथ्यात्व रूपी भूमि पर नही पहुंचा है तब तक सासादन करता है पुन: मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ एक समय के अनतर पुन. जोव सासादन को प्राप्त हुआ इस प्रकार जघन्य अन्तर एक दूसरे जोव की अपेक्षा से अन्तर प्राप्त होता है नाना जोवो की अपेक्षा एक समय अन्तर है एक जीव को अपेक्षा अधिक से अधिक अतर पल्यका असंख्यातवे भाग प्रमाण है।

मिश्र सम्यग्दृष्टी जीवो का जघन्यअन्तरदो घड़ी है। उत्कृष्टता से अर्धपुद्गलापरावर्तन काल से कुछ कम कहा है इसका भी कारण यह है कि कोई मिथ्यादृष्टो जीव ने मिथ्यात्व को दबा कर सम्यगमिथ्यात्व को प्राप्त हुआ पोछे एक समय के पश्चात उपशम सम्यग्दृष्टी हुआ अथवा मिथ्यादृष्टी हुआ पुन: दो घड़ी के पीछे मिथ्यात्व प्रकृति को दबाकर सम्यगमिथ्यात्व को प्राप्त हुआ तब दो घड़ी अन्तरकाल प्राप्त हुआ। तथा कोई मिश्र सम्यग्दृष्टि था पुन: च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो अर्धपुद्गला परावर्तन से कुछ कम काल तक ससार मे भ्रमण किया पुन: मिश्र को प्राप्त हुआ तब अन्तर काल उत्कृष्ट अर्धपुद्गला परावर्तन से कुछ कम काल प्राप्त हुआ। असयत सम्यग्दृष्टी से लेकरअप्रमत्तगुणस्थानवाले अनेकजीवो को अपेक्षा से कोई अंतर नही पाया जाता है इसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव तीनों लोक तीनो कालो मे

विद्यमान रहते हैं। तथा संयतासंयत और प्रमत्त और अप्रमत्त संयत सदा काल विद्यमान रहते हैं इस अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट काल अंतर अर्ध पुद्‌गला परावर्तन से कुछ कम समय पाया जाता है। जैसे किसी जीव से उपशम सम्यक्त्व व क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर संयमासयम को प्राप्त किया प्रमत्त संयत हुआ और अप्रमत्त इन चारगुण स्थानों को प्राप्त होने के पीछे सम्यक्त्व से व चारित्र से भ्रष्ट हुआ और अर्धपुद्‌गला परावर्तन पर्यन्त संसार में भ्रमण कर जब अतरमुहूर्त शेष रहा तब सम्यक्त्व को प्राप्त हो सयम को धारण कर संयमासंयम प्रमत्त अप्रमत्त को प्राप्त हो क्षपक श्रेणी माड़कर चढ़ा और मोक्ष पद को प्राप्त हुआ। चारों उपशम व क्षपक श्रेणी चढनें वाले जीवों की अपेक्षा से एक समय जघन्यता से अंतर है इसका भी कारण यह है कि एक समय के पीछे नियम से कोई न कोई जीव श्रेणी चढने के सन्मुख होता ही है। उपशम श्रेणी से चढे चाहे क्षपक श्रेणी से चढ़े ॥ ५४२-५४३-५४४ ॥

ऐघा वर्षपृथक्त्वमयनमेकस्य द्विघटिका कालः ॥
अर्धद्रव्य परावर्तः सयोगीनां च नाऽस्त्यन्तरम् ॥५४५॥

उपशम श्रेणी चढ़नें वाले जीवों का अधिक से अधिक सवत्यर पृथकत्वअंतर होता है। यदि कोई भी जीव उपशम श्रेणी नहीं चढे तो एक वर्ष प्रथकत्व तक नही चढ़ेगा तत्पश्चात नियम से चढेगा क्षपक श्रेणी का अन्तर छह महिना है उसके पीछे निलम से कोई जीव क्षपक श्रेणी से चढेगी। एक जीव की अपेक्षा से विचार करनें पर कम से कम दो घड़ी और अधिक से अधिक अर्धपुद्‌गला परावर्तन से कुछ कम अंतर उपशम श्रेणी वाले का है उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव उपशान्त मोह तक चढता है और वहां से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो संसार में भ्रमण-कर पुनः पंचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्यों में उत्पन्न होकर उपशम श्रेणी चढा तथा अर्धपुद्‌गला परावर्तन से कुछ कम काल अन्तर हुआ। क्षायक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणो चढ़नें वालों के अन्तर नही है क्योंकि क्षायक सम्यक्त्व विनाश नही होता है वह सयोगी अयोगी तथा सिद्ध होनें तक जैसा का तैसा बना रहता है। तथा सयोगी एक जीव या अनेक जीवों की अपेक्षा से भी अन्तर नहीं है।

जीव काड गोमट्ट सार में सान्तर मार्गणाओं का उत्कृष्ट काल प्रमाण कितना है !

सत्तदिवा छम्मासा वासपुधन्तं च वारसमुहुन्ता ॥
पल्लासंखं तिण्हं बरमवरं एक समयो दु ॥।१४६॥
पढमुवसमसहिदाण विरदाविरदीये चोद्दसा दिवसा ॥
विरदिए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोधव्वो ॥१४७॥

आठ अन्तर मार्गणाओं का उत्कृष्ट काल क्रम से सात दिन छह महीना पृथकत्व वर्ष पृथकत्व बारह मुहूर्त और अन्त की तीन मार्गणाओं का काल पल्य के असंख्यात वें भाग प्रमाण है। जघन्य काल सब का एक समय है। उपशम सम्यक्त्व का उत्कृष्ट विरह काल सात दिन है सूक्ष्म सांपराय का छह महीना आहारक योग का वर्ष पृथक्त्व तथा आहारक मिश्र का पृथक्त्व वर्ष की वैक्रियक मिश्र का बारह मुहूर्त अपर्याप्त मनुष्य का पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। तथा सासादन और मिश्र इन दोनों का भी उत्कृष्ट अन्तर काल पल्यका

असंख्यातवां भाग है। और जघन्य काल सबका एक समय है मतलब यह है कि तीनों लोक में कोई भी उपशमसम्यग्दृष्टि न रहे। ऐसा विच्छेदन सात दिन के लिए पड सकता है। उसके पीछे कोई न कोई उपशम सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होता ही है इसी प्रकार सूक्ष्म सापराय आदि के विषय में समझना चाहिए।

प्रथमोपशम वाले देश सयत का उत्कृष्ट विरह काल चौदह दिन और प्रमत्तअप्रमत्त गुण स्थान का उत्कृष्ट विरह काल पन्द्रह दिन समझना चाहिए। उपशम सम्यक्त्व के भेद दो हैं एक प्रथमोपशम सम्यक्त्व दूसरा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चार अनन्तानुबधी क्रोध मान माया लोभ कषाये तथा एक दर्शन मोहनीय मिथ्यात्व के आश्रित तीनो दर्शन मोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी पाच अथवा सात का उपशम करता है। तब उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है उसको उपशम सम्यक्त्व कहते हैं। अनन्तानुबन्धी चार का विसंयोजन कर तथा दर्शन मोह का उपशम होनें से जो सम्यक्त्व होता है वह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व है इनमें से प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित देश संयत गुण स्थान का अन्तर काल चौदह दिन का है प्रमत्त और अप्रमत्त का पन्द्रह दिन का है। गाथा में दिए गए तु शब्द से दूसरे सिद्धान्त के अनुसार २४ दिन का भी अन्तर होता है ऐसा सूचित किया गया है किन्तु जघन्य विरह काल सबकाएक समय है।

नारक सप्तभूषु कुदृष्टयाद्यसंयत सदृष्टिनों नान्तरम्।
चरमान्तनरं मुहूर्तश्च दीर्घं स्वनरकायुर्देशोन ॥५४८॥
सासादन मिश्रणां चरमसमोनघः पल्यासख्य भागः॥
एकस्यद्विघटी चोत्कर्षेण स्वायुर्देशयैः ॥५४९॥

पहले-पहले नरक से लेकर सातवे नरक तक सब नरको में पहले के चार गुणस्थान होते है। नाना जीवो की अपेक्षा से जीव चारो गुण स्थानो में सदा विद्यमान रहते है इसलिए कोई अन्तर प्राप्त नही होता है। एक जोव की अपेक्षा से विचार करने पर जघन्यता से मिथ्यादृष्टि का अन्तर-अन्तर मुहूर्त है और उत्कृष्टता से अपनी भुज्यमान नरक आयु से कुछ कम काल है। पहले नरक में एक सागर से कुछ कम है। दूसरे नरक मे तीन् सागर से कुछ कम है तीसरे नरक में सात सागर से कुछ कम है चौथे नरक में दश सागर से कुछ कम है पाचवे नरक मे सत्रह सागर से कुछ कम है छठवे नरक में २२ सागर से कुछ कम है सातवे नरक मे तेतीस सागर से कुछ कम अन्तर पाया जाता है। इसका कारण यह है कोई मिथ्या-दृष्टि मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ और दो घड़ी के पीछे वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और मरण समय मे विराधना कर अन्तर मुहूर्त के पीछे मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ इस प्रकार अपनी नरक आयु से कुछ कम काल एक सागर प्राप्त हुआ। सासादन सम्यग्दृष्टि व मिश्र सम्यग्दृष्टि तथा असयत सम्यग्दृष्टि जीवों के भी अन्तर पाया जाता है। कोई जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और अन्तर मुहूर्त के पीछे कोई अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय मे आने से सम्यक्त्व रूपी रत्न शिखर से च्युत हुआ तब सासादन को प्राप्त हुआ। उसमें भी एक समय व्यय कर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। जब वेदना का अनुभव करते-करते बहुत काल व्यतीत हो गया उसके पोछे पुनः उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और पुनः

अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय में आ जाने के कारण सम्यक्त्व से च्युत हुआ पुनः सासादन को प्राप्त हुआ एक समय के पीछे मिथ्यात्व को प्राप्त होकर मरण कर पचेन्द्रिय त्रियंचों में उत्पन्न हुआ इस प्रकार सासादन में अन्तर पाया जाता है। इसी प्रकार मिश्र और असयत का भी अन्तर प्राप्त होता है एक सागर तीन सात दश सत्रह बावीश और तेतीश सागर से कुछ कम अन्तर पाया जाता है, यह अन्तर एक जीव की अपेक्षा से कहा गया है। जघन्यता से सासादन और मिश्र का अन्तराल कम से कम एक समय तथा पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण है। सम्यक्त्व की अपेक्षा से जघन्य दो घड़ी अन्तर है। इसका कारण यह है कि कोई जीव सम्यक्त्व को प्राप्त कर अन्तर मुहूर्त तक रहकर पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ पुनः मिथ्यात्व का उपशम करके सम्यग्दृष्टी बन गया, तब अन्तर मुहूर्त काल प्राप्त हुआ। उत्कृष्टता से अपनी मुक्तायु से कुछ कम अन्तर प्राप्त होता है। इसका कारण यह है कि एक वार सम्यक्त्व होकर छूट जाने पर पुनः सम्यक्त्व होने तक के बीच के काल को अन्तर कहते है तीसरे नरक तकके नारकियों को देवों के द्वारा दिए गए धर्मोपदेश को सुनकर नारकी जीव मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यक्त्व को प्राप्त होते है। तथा वेदना अनुभव व जाति स्मरण से सम्यक्त्व को प्राप्त होते है। तथा भ्रष्ट होते है पुनः प्राप्त होकर मनुष्यों में उत्पन्न होते है। इस प्रकार नरक गति मे अन्तर का निरूपण किया। नाना जीवो की अपेक्षा तीनो सम्यक्त्वों का अन्तर नहीं वे जीव निरन्तर रहते ही है। ५६७।५६८॥

त्रियचगति

यत् त्रियंगतौमिथ्या दृष्टीनां नास्त्यन्तरं चरमद्विघटी।
दीर्घं त्रिपल्योपमं देशोनंक जीवस्यान्तरम् ॥ ५४६ ॥

मिथ्यादृष्टी अनेक जीवों की अपेक्षा कोई अन्तर नही है यदि अतर है तो दो घडी तो जघन्य से है अधिक से तीन पल्य से कुछ ही कम है। उसका भी कारण यह है कि पचेन्द्रिय त्रियच भोग भूमि में मिथ्यादृष्टी त्रियच की उत्कृष्ट आयु तीन कल्प की होती है। किसी मिथ्यादृष्टी जीव ने वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त किया और विराधना कर मिथ्यात्व को प्राप्त हो पुनः जब भुक्तायु पल्य के असख्यातवे भाग आयु शेष रही तब पुनः उस ही सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ पुनः अतर मुहूर्त के पीछे मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ, तत्र दो घड़ी मिथ्यात्व का अतर प्राप्त हुआ। त्रियंचों में गुणस्थान पाँच होते है। उनका भी अंतर गुणस्थानों की चर्चा के समान समझना चाहिये ॥ ४४६ ॥

मनुष्यगति

मिथ्यादृष्टयादिनृगताः सयोगान्तानां किञ्चिन्नान्तरम्।
जीवं प्रातिद्विघटी चरमेंधपल्पत्रयसाधिकम् ॥ ५५० ॥

सामान्य मिथ्यादृष्टी से लेकर मनुष्य गती में सयोग केवली गुणस्थान वाले जीवों के कोई अंतर नही प्राप्त होता है। एक जीव को अपेक्षा से दो घड़ी अ तर प्राप्त होता है। इसका कारण यह है कि मिथ्यादृष्टी सादि या अनादि दोनों हो मिथ्यात्व रूपी जहर का वमन कर सम्यक्त्व रूपीरस का पान करते है, पुनः सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यादृष्टी हुआ तब

दो घड़ी मिथ्यात्व का अ तर प्राप्त हुआ। उत्कृष्टता से तीन पल्य से कुछ अधिक काल अंतर प्राप्त होता है। यथा किसी मिथ्यादृष्टी जीव ने मनुष्य आयु का पूर्व में बधकर लिया पीछे से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ तब वह उत्कृष्ट भोगभूमि के तीन पल्य वाले मनुष्यो में उत्पन्न हुआ और मरण काल मे सम्यक्त्व की विराधना कर मिथ्यादृष्टी होकर मरा और कुदेवो में उत्पन्न हुआ इस प्रकार तीन पल्य से कुछ अधिक अन्तर मिथ्यात्व का हुआ। यह अ तर क्षयोपशम की अपेक्षा है ॥ ५५० ॥

सासादन मिश्रयोश्च द्विघटी चरमो दीर्घं त्रियल्याधिकम्।
देशाद्यप्रमत्तान्त ऐकैके द्विघटिका चरमैव ॥ ५५१ ॥

सासादन सम्यक्त्व मिश्र सम्यक्त्व असयत सम्यग्दृष्टी देशसयत प्रमत्त अप्रमत्त पर्यन्त सब का अंतर काल अ तर मुहूर्त है। विशेष यह है कि सासादन सम्यग्दृष्टी व सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीवों का जघन्यता से अंतर मुहूर्त अतर है, तथा उत्कृष्टता से तीन पल्प से कुछ अधिक है। अधिक कहने से पूर्व कोटि पृथक्त्व समय अधिक है। तथा पल्प के असख्यातवे भाग है अथवा अंतर मुहूर्त अ तर है। नानाजीवो की अपेक्षा से कोई अतर नही एक जीव के प्रति जघन्यता से तीनो मे अंतर मुहूर्त होता है।

आगे इन तीन गुणस्थान वाले जीव यदि पुनः प्राप्त हो तो अधिक से अधिक कितने समय बाद उन गुणस्थानो को प्राप्त होगे।

ऐधापूर्व कोटी प्रथकत्वोपशमचतुर्णां द्विघट्यन्तरम्।
दीर्घं चक्षपकानां नास्त्यन्तर जिनोपदिष्टम् ॥ ५५२ ॥

देशसयत प्रमत्त अप्रमत्त संयतों का उत्कृष्ट कालान्तर करोडपूर्व प्रथकन्त्व है इतना काल व्यतीत होने पर नियम से जीव सयमासयम प्रमत्त संयम अप्रमत्त सयम भाव को प्राप्त होते है चारो उपशम श्रेणी चढनेवालो मे जघन्यता से अतर मुहूर्त कालान्तर है। जो कोई भव्य देश सयत को धारण कर पुनः भ्रष्ट हो जावे तब गुरू का उपदेश सुनकर पुनः देश सयम गृहण करने के योग्य भाव हुए उसके मध्य में जघन्यता से अन्तर दो घडी होता है (अतर मुहूर्त)। जो कोई भव्य देश सयम को धारण कर पुन: भ्रष्ट हो गया और पूर्व कोटि तक पुनः देश सयत के योग्य भाव नही हुए जब अन्तर मुहूर्त शेष रहा तब पुन: देश सयत को धारण किया। इस नियम से पूर्व कोटि पृथकत्व काल प्राप्त होता है यह उत्कृष्ट काल है। क्योंकि कर्मभूमिया मनुप्य की आयु इससे अधिक नही होती है। क्योकि सम्यग्दृष्टी जीव देश संयत का धारण करने वाला मनुष्य से मनुष्य नही होता है। इसी प्रकार काल जघन्य उत्कृष्ट प्रमत्त और अप्रमत्त का प्राप्त होता है। कोई सातिसय अप्रमत्त उपशम श्रेणी चढना प्रारम्भ कर उपशान्त मोह को प्राप्त हुआ। वह क्षायक सम्यग्दृष्टी हो या उपशम सम्यग्दृष्टी हो दोनों ही उपशम से चढकर उपशान्त मोह मे पहुचकर भ्रष्ट हुआ और क्रमसे गिरा प्रमत्त मे आया तथा मिथ्यात्व भाव हुए अथवा असयत भाव हुए दो घडी काल बीतने पर पुन. उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो उपशम श्रेणी से चढा या असंयम में अतर मुहूर्त रहकर पुन. उपशम श्रेणी प्रारम्भ कर चढा इस नियम से अतरमुहूर्त अन्तर प्राप्त हुआ। पूर्वकोटि उत्कृष्ट

अंतर काल है। क्षायक सम्यग्दृष्टी और क्षपक श्रेणी चढने वाले जीवों के कोई अन्तर नही पाया जाता है क्योंकि क्षपक श्रेणी चढने वाले जीव नियम से केवल ज्ञान को प्राप्त हो मोक्ष की प्राप्ति करते है। मनुष्यगति में मनुष्यों के चौदह गुणस्थान होते है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है।

सुरगतौमिथ्यादृष्टी जीवानामंतरंनंकिंचिदेकम् ।
अंतरमुहूर्तोत्कृष्ट मेकत्रिंशदुदधिदेशोनः ।। ५५३ ।।
तथासासादनाद्यसंय ताताना चान्तरमौद्यच ।
चतुर्गतिषु मिथ्यादष्टी जन्ममृत्युलभतेसदा ।। ५५४ ।।

देवगती में मिथ्यादृष्टी जीवो का निरंन्तर जन्ममरण होता रहता है तथा मिथ्या-दृष्टी जीव निरंतर निवास करते है मिथ्यात्व की सत्ता कायम रहती है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर दो घड़ी है और उत्कृष्टता से इकतीश सागर से कुछ कम है। सासादन और मिश्र तथा असयत सम्यग्दृष्टी जीवों की अपेक्षा से अन्तर नही है उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होने में अन्तर मुहूर्त जघन्य अन्तर है तथा मिथ्यात्व को लेकर चारो गतियो मे जीव भ्रमण करते रहते है ।। ५५३ । ५५४ ।।

एकेन्द्रिय वते चतुः पंचेन्द्रियाः वाऽसंज्ञीनोजीवानां ।
सर्वदामिथ्यात्वैव नास्त्यतर मेकक्षुद्रभवः ।। ५५५ ।।

इन्द्रिय मार्गणा की अपेक्षा विचार करने पर एकेन्द्रिय द्विइन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय असैनी पचेन्द्रिय पर्यन्त जितने जीव है वे सब मिथ्यादृष्टी ही हैं तथा सेनी पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टी गुणस्थान से लेकर सयोगी जिन तक होते है। एकेन्द्रियादि पचेन्द्रिय पर्यन्त नाना जीवोकी अपेक्षा से कोई अन्तर नही पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर अपना क्षुद्र भव अन्तर होता है।

ऐधा द्वौसिन्धुः कोटीपूर्वं पृथकत्वमभ्यधिकम् ।
चैकप्रति क्षुद्रभवः सख्यात पुद्गला परावर्ताः ।।५५६।।

उत्कृष्टता से दो सागर से अधिक दो कोटी पूर्व पृथकत्व अन्तर प्राप्त होता है। तथा एक जीव की अपेक्षा से एक क्षुद्र भव अधिकता से अन्तर असख्यात पुद्गला परावर्तन काल अन्तर प्राप्त होता है। कोई एकेन्द्रिय क्षुद्र भव धारण कर दो इन्द्रिय के क्षुद्र भव को धारण कर पुनः एकेन्द्रिय में जन्मा तब एक क्षुद्रभव प्राप्त होता है। कोई एकेन्द्रिय निगोदिया जीव अपने स्थान से च्युत हो क्रम से जन्म मरण कर पंचेन्द्रिय जीवो में उत्पन्न होकर असख्यात पुद्गला परावर्तन किये और देवगति को प्राप्त हो पुनः एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ तब असख्यात पुद्गला परावतर्तन काल अन्तर प्राप्त होता है ।। ५५६ ।।

सासादन मिश्राणां नास्त्यतरैकं पल्या संख्येय भागः ।।
उत्सहस्रसागराः पूर्वकोटी पृथक्त्वं सदृगोवा ।।५५७।।

सासादन सम्यग्दष्टी मिश्र सम्यग्दृष्टी जीवों की अपेक्षा कोई अंतर नही है परन्तु एक जीव की अपेक्षा अतर अवश्य पाया जाता है। अथवा एक जीव की अपेक्षा पल्य का

असंयाख्तवा भाग काल अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्टता से हजार सागर और पूर्वकोटि पृथकत्व अंतर पाया जाता है। असयत सम्यग्दृष्टी का भी सासादन के समान ही अंतर जघन्य और उत्कृष्ट होता है। ५५७

चतुरुपशमकालां च सामान्यैकं प्रति चरम द्विघटी।
ऐधा सहस्रसिन्धुः पूर्वकोटी पृथक्त्वैरम्यधिकम् ॥५५८॥

चारो उपशम श्रेणी चढने वालो की अपेक्षा अन्तर नही है परन्तु एक जीव की अपेक्षा अन्तर पाया जाता है। यदि कोई एक बार उपशम श्रेणी चढकर गिरे पुनः श्रेणी चढ़ना आरम्भ करेगा तो अतरमुहूर्त काल बीत जाने पर ही करेगा तब अन्तर जघन्यता से प्राप्त दो घडी होता है। यदि कोई उपशय श्रेणी चढा और उपशान्त मोह में पहुँचा वहाँ चारित्र मोह की कषाय का उदय आया और उपशान्त मोह से च्युत हो मिथ्यात्व को प्राप्त हो मरण किया और मिथ्यादष्टी देव हो वहा की आयु को भोगते हुए जब शेष आयु के छह मास रह गये तब मदार माला को मुरझानी देखकर तीव्र सक्लिष्ट परिणामी हो मरा जिससे मरकर स्थावर कायक एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न हुआ तथा चतुर गतिनिगोद जीवों में उत्पन्न होकर हजार सागर पर्यन्त जन्म मरण कर मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर आठ वर्ष बीतने के पीछे सम्यक्त्व प्राप्त हो सयमी बना और प्रमत्त अप्रमत्त का उलंघन कर उपशम श्रेणी से चढ़ा तब हजार सागर अन्तर प्राप्त होता है। अथवा एक हजार सागर पूर्वकोटी अन्तर मुहूरत काल अन्तर प्राप्त होता है। ५५८॥

स्थावरकायकाणां च नास्त्यंतरमेक प्रतिक्षुद्रभवः।
उत्कृष्टेन संख्येया द्रव्य परावर्तान्तरः ॥५५९॥

पृथवी पानी आग हवा और वनस्पति कायक जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर नही है एक जीव की अपेक्षा से क्षुद्रभव जघन्य अन्तर है। उत्कृष्टता से असंख्यात पुद्गला परावर्तन काल अन्तर है। वनस्पति कायक जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर नही एक जीव की अपेक्षा अपना क्षुद्रभव है उत्कृष्टता से लोकके जितने प्रदेश है उतना अन्तर काल है क्योकि इन जीवो के हमेशा ही मिथ्यात्व व अनतानुबन्धी कषायो का उदय निरतर विद्यमान रहता है। गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

त्रशकायकानां खलु इन्द्रिय मार्गणावदतर नियोजयेत्।
सासादन मिश्रयोः हीनं पल्यासंख्येय भागः ॥५६०॥
द्विघट्युत्कृष्टांतरं द्वौसहस्रसागरौ पूर्वकोटी।
अभ्यधिकम् पृथक्त्व मुपशमकस्यान्तरमुहूर्तञ्च ॥५६१॥

त्रशकायक जीव दोइन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त सब त्रसकाय वाले ही जीव होते हैं उनके त्रसनाम करम का उदय निरतर बना रहता है। मिथ्यात्व से लेकर अयोगी तक सब गुण स्थान होते है। चौदहवे अयोगी गुणस्थान वाले त्रस स्थावर दोनों नाम कर्म से रहित होते है। चौदह गुणस्थानो का अन्तर इन्द्रिय मार्गणा के समान ही है विशेष कुछ नही है। सासादन और मिश्र सम्यग्दष्टी जीव से दो गुणस्थान में रहने वालों का अन्तर पाया जाता है वह

अन्तर पल्यका असख्यातवा भाग तथा अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्टता से दो हजार सागर पूर्व कोटी पृथकत्व से कुछ अधिक अन्तर पाया जाता है। उपशम श्रेणी चढने वालों की अपेक्षा कम से कम दो घड़ी और उत्कृष्टता से हजार सागर पूर्वकोटि पृथक्त्व कालान्तर पाया जाता है। क्षायक सम्यक्त्व सहित "यदि श्रेणी , चढे तो जघन्यता से अन्तर्मुहूर्त अन्तर पाया जाता है और उत्कृष्टता से तेतीश सागर पूर्वकोटि पृथक्त्व अन्तर प्राप्त होता है। क्षपक श्रेणी वाले के कोई अतर नही पाया जाता है । ५६१ ।

त्रियोगीजीवानांच मिथ्यादृष्ट्था ध्ययोगान्तानाम् ।
अंन्तरं कबहूणां च सर्व गुणस्थान वन्नियोज्येत् ।। ५६२।।

मन वचन काय तीनों योग वाले जीवो के अंतर गुणस्थान के समान है जैसा गुणस्थानों में कालान्तर कहा है उसी प्रकार लगा लेना चाहिये। काय योग वाले जीव मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी जिन तक निरतर बने रहते है। योग बहुवचन के साथ है। इससे यह सूचित होता है कि तीनों योग वाले जीव निरन्तर होते है। एक जीव की अपेक्षा से अन्तर कहा गया है।

स्त्री वेद वाले जीवों के कितना अन्तर पड़ता है इसको बतलाने के लिये श्लोक कहते है।

स्त्रीवेदे खलु कुदृगां नाहृत्पंतरैकस्य चरमधिद्वटी ।।
पंचपंचाशत पल्योपम देशौन लव्धः ।।५६३।।
सासादन मिश्रयोः एक प्रति चरमपल्यासंख्येयः भागः
असयताद्यप्रमत्त सयतानां दीर्घ पल्यशत ।।५६४।।
द्वयोपशमकयोः एकं प्रति चरमाद्वि घटी दीर्घम् ।
पल्योपम शत पृथकत्वं"क्षपकमोहैक समयोवर्षः ।।५६५।।

मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेद वाले जीवो की अपेक्षा विचार करने पर निरन्तर स्त्रीवेद वाले जीव रहते है। ऐसा कोई समय नही रहता कि कोई स्त्री न रहे। परन्तु एक स्त्री की अपेक्षा से विचार किया जावे तो एक स्त्रीवेदी जीव का अतर मुहूर्त जघन्य से अन्तर प्राप्त होता है। विशेषता से पचपन पल्य से कुछ कम अंतर प्राप्त.होता है। सासादन और मिश्र गुणस्थान वाली स्त्रीवेदी जीवों के प्रति विचार करनें पर पल्य का असख्यातवां भाग तथा अंतर मुहूर्त काल प्राप्त होता है। उत्कृष्टता से सौ पल्य प्रथक्त्व अतर है। असयत सम्यग्दष्टी से लेकर सयमासयम गुणस्थान तक द्रव्य स्त्रीवेद पाया जाता है इन दो गुणस्थानों वाले एक जीव का अतर अतमुंहूर्त है उत्कष्टता से सौ पल्य पृथकत्व कालअतर प्राप्क होता है। भावदेव स्त्री वेदी जीवो की अपेक्षा विचार करने पर असयत से लेकर अनिवृत्त करण तक उत्कृष्टता से सौ पल्य से कुछ कम अतर होता है तथा जघन्यता से दो घड़ी अतर प्राप्त होता है।

अप्रमत्त सयत अपूर्वकरण अनिवृत्त करण भाव स्त्री वेद वलों का एक जीव की अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त काल अन्तर होता है उत्कृष्टता से सौ पल्य पृथकत्व है। दोनों क्षपक श्रेणी

चढने वाले का एक समय जघन्यता से अंतर है उत्कृष्टता से वर्ष प्रथकत्व है विशेष षड् खण्डागमादि ग्रन्थो से जान लेना चाहिये।

वेदनपुंसकेनित्यं मिथ्यादृष्टीनांनास्त्यन्तरम्।
द्विघटिकाऽन्तरमेकेन त्रार्यत्रिशदुदधिर्देशोन ।।५६६।।
सासादनादि संयताऽनिवृत्तकरणान्तनाम्।
अकथिष्यं च वान्तरं गुणस्थान सदृक् व्रजेत् ।।५६७।।

नपुसक वेद मे गुणस्थान पहले से लेकर अनिवृत्त करण तक सव गुण स्थान वाले जीवो के अन्तर नही पाया जाता है ये सब निरंतर ही रहते है। मिथ्यादृष्टि एक जीव की अपेक्षा दो घड़ो जघन्य अतर पाया जाता है उत्कृष्टता से तेतीश सागर से कुछ कम अतर पाया जाता है। सासादन से लेकर अनिवृत्तकरण गुणस्थान तक के अन्तर को पहले कह आये हैं उतना ही अन्तर जानना चाहिये। नपुसक भाव वेद मे गुण स्थान नौ होते है द्रव्यवेद वालो के गुण स्थान पॉच होते है।

सकषायैश्च जीवानां प्रागनिवृत्त संयताः।
पुंवेद सादृशां तरं सर्वस्थानेषु सामान्यम् ।।५६८।।

कषाय सहित जीवोके गुणस्थान नौ होते है सूक्ष्म लोभ में दश गुणस्थान होते है। सामान्य अनेक जीवो की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टी से लेकर अनिवृत्ति करण के छठवें भाग तक लोभ कषाय को छोडकर शेष कषाय वाले जीव निरतर विद्यमान रहते है। सामान्य से लोभ कषाय वाले जीवो के भी अ तर नही पाया जाता है। उदय की अपेक्षा इनमें भेद होते है। क्योंकि तीव्र उदय मद उदय मदतर उदय मद तम उदय मे आती रहती हैं उनकी सत्ता का अभाव ही नही। यदि एक जीव की अपेक्षा अंतर होता है तो वह इस प्रकार है कि कोई एक जीव उपशम श्रेणी से चढ़ता है और कषायो को उपशमाता हुआ उपशात मोह को प्राप्त हो गया वहा कषाय का उदय आया तब जघन्यता से एक समय अतर और उत्कृष्टता से अठारह महोना अतर पाया जाता है। क्षपकश्रेणी चढ़ने वाले जीवो के भी जघन्यता से एक समय और उतकृष्टता से अठारह महीना अन्तर पाया जाता है। सूक्ष्म सापराय गुणस्थान में एक लोभ कषाय का सत्व रह जाता है उससे आगे उसकी सत्ता नही शेष पुरुष वेद के समान समझना।

कुत्रिज्ञानेषु मिथ्यादृग् जीवानां नास्त्यंतरम्।
प्राक् सुज्ञानमसयत्क्षीण मोहान्तश्च जीवानाम् ।।५६९।।
सम्यग्दृष्टे घटिद्वे च कोटीपूर्वश्च देशोनम्।
सयतासयते षट्षष्ठ्युदधि सातिरेकश्च ।।५७०।।

सामान्य से कुमति कुश्रुत विभगावधि ज्ञानो में स्थित मिथ्यादृष्टी जीवों की अपेक्षा से कोई अतर नही है एक जीव की अपेक्षा भी अन्तर नही है सासादन मे भी एक और अनेक जीवो की अपेक्षा से कोई अन्तर नही है। मति, श्रुत अवधि ज्ञान में नाना जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर प्राप्त नही होता है। एक जीव की अपेक्षा विचार किया जाय तब जघन्यता

से अन्तर मुहूर्त अन्तर होता है उत्कृष्टता से पूर्व कोटि से कुछ कम कम अन्तर प्राप्त होता है। देशसंयतो मे सामान्य से कोई अन्तर नहीं है एक जीव की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त अन्तर होता है उत्कृष्टता से छयासठ सागर से कुछ अधिक अन्तर पाया जाता है। विशेष यह है कि कोई मिथ्यग्दृष्टी जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर कुमति कुश्रत विभंगावधि का विनाश कर मति श्रुत अवधि ज्ञान का धारी होकर अन्तर मुहूरत के पीछे मिथ्यादृष्टी हुआ तव अन्तर, अन्तर मुहूर्त प्राप्त हुआ। कोई मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्व अंधकार का क्षयोपशम कर क्षयोपशम सम्यग्यदृष्टी हुआ और अपनी छयासठ सागर की स्थिति को पूर्ण कर मिथ्यादृष्टी बन गया तव पुनः कुमति कुश्रुत विभंगावधि ज्ञान को प्राप्त हुआ इस प्रकार छयासठ सागर अन्तर प्राप्त होता है क्षायक सम्यग्दृष्टी की अपेक्षा कोई अन्तर नही।

प्रमत्ताद्यु पशांतनां मुहूर्त चरमान्तरम्।
त्रार्यत्रिशत्समुद्राः सातिरेक षट् षष्ठयविधश्च ॥५७१॥

प्रमत्त गुणस्थान वाले एक जीव की अपेक्षा अन्तर मुहूर्त अन्तर प्राप्त होता है तथा उत्कृष्टता से तेतीश सागर से कुछ अधिक अंतर होता है। चारो उपशम श्रेणी चढ़ने वालों की अपेक्षा से अंतर नहीं है परन्तु एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अंतर दो घड़ी है। और उत्कृष्ट अंतर छयासठ सागर से भी कुछ अधिक विरह काल पाया जाता है ॥५७१॥

अवधिज्ञानिनां हीनं समयोवर्ष पृथकत्वम्।
मनःपर्यय संयतादि क्षीण मोहान्तानां ॥५७२॥
जघण्योत्कृष्टमंतर मुहूर्त पूर्व कोटि वा।
केवलीना गुणस्थान सामान्यंमाप्रर्वातत: ॥५७३॥

अवधिज्ञान चोथे गुणस्थान से लेकर क्षीण मोह तक वाले जीवों के होता है उन सब गुण स्थान वाले जीवों की अपेक्षा से कोई अंतर नही। एक जीव की अपेक्षा कम से कम एक समय अतर है और जत्कृष्टता से वर्ष पृथक्त्व अतर है। मन.पर्यय ज्ञान प्रमत्त संयत से लेकर उत्पन्न होता है और क्षीण मोह वाले जीवों तक के उत्पन्न होते रहते है नाना जीवों की अपेक्षा से कोई अतर नही है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अतर अन्तर मुहूरत काल है और उत्कृष्ट भी अंतर मुहूरत है। चारो उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव की अंतरमुहूरत अंतर पाया जाता है और उत्कृप्ट कोटि पूर्व से कुछ कम अन्तर पाया जाता है चारों क्षपक श्रेणी चढने वाले योगियों का विरह काल अवधि ज्ञान के समान है केवली भगवान केवल ज्ञान में सयोग केवली को तरह अन्तर जानना चाहिये तथा अयोगी का ॥५७३॥

सामायिक क्षेदोपस्थापन परिहार विशुद्धि सयनां।
जघन्यान्तर मुहूर्तश्च द्वयोरुपशमकयो रेकैकम् ॥५७४॥
पूर्वकोटिदेशोन गुणस्थान प्रमत्ताप्रमत्तयोः ॥
मिथ्यादृष्टी संयत द्विघटिका आर्यात्रिशदुदधिः ॥५७५॥

सामायिक क्षेदोपस्थापन परिहार विशुद्धि सयतों का नाना जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर नही है। एक जीव की अपेक्षा से तीनो का जघन्य अन्तर काल अन्तर मुहूर्त

है। सामायिक छेदोपस्थापन सयत प्रमत्त गुणस्थान से लेकर अनिवृत्त गुणस्थान तक वाले जीवों के होते है इनमें उत्कृष्टता से करोड पूर्व से कुछ कम अन्तर है यह अन्तर उपशम श्रेणी चढने वाले जीवो की अपेक्षा से है। परिहार विशुद्धि संयत जीवो के गुण स्थान दो होते है। उनका कालान्तर उत्कृष्टता से अन्तर मुहूर्त है। अन्य सूक्ष्म सापराय संयत और यथाख्यात सयतो के अतर गुण स्थान व मनुष्य गति के समान जानना चाहिये। मिथ्यादृष्टी सासादन मिश्र असयत सम्यग्दृष्टी का अतर तेतीश सागर प्रमाण उत्कृष्ट अतर होता है जघन्यता से अतर मुहूर्त है ॥५७५॥

चक्षुदर्शने मिथ्यादृष्टयादि क्षीणमोहान्ताना च।
सामान्यैर्नास्त्यन्तरं एकमेव प्रति विशेषश्च ॥५७६॥

चक्षुदर्शन वाले जीवो के गुण स्थान बारह होते है इनके सामान्य से कोई अतर नही पाया जाता है क्योकि चारइन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय सैनी मिथ्यादृष्टी आदि सब के पाये जाते है इन सब की अपेक्षा कोई अतर प्राप्त नही है परन्तु एक जीव की अपेक्षा अन्तर जहा जहा पर कहा गया है वही जानना विशेष है ॥५७६॥

जघन्य पल्यासंख्यभागः द्वेघटिका द्वौसागरसहस्रः
देशोनेऽस यते च चतुरुपशमकाना ब्रजेयुः ॥५७७॥
अक्षववधिकेवल दर्शनेष्वन्तरं तथा।
गुणस्थानेषु सामान्य अवधि केवलज्ञानवत् ॥५७८॥

सासादन सम्यग्दृष्टो तथा मिश्र सम्यग्दृष्टी एक जीव की अपेक्षा अतर जघन्यता से पल्य का असख्यातवा भाग है तथा अतर मुहूर्त अतर होता है। उत्कृष्टता से हजार सागर से कुछ कम अतर है। तथा असयत सम्यग्दृष्टी का जघन्य अतर अतर मुहूर्त और उत्कृष्टता से दो हजार सागर प्रमाण काल से कुछ कम अतर होता है। देश सयत प्रमत्त अप्रमत्त सयतो की अपेक्षा कोई अतर नही परन्तु एक जीव को अपेक्षा से जघन्य दो घड़ी और उत्कृष्टता से दो हजार सागर से कुछ कम है। चारो क्षपको का अन्तर गुणस्थान के समान जानना चाहिये।

अचक्षु अवधि केवल दर्शन का अतर गुण स्थान के समान जानना कोई विशेष नहीं अवधि दर्शन केवल दर्शन का अवधि ज्ञान और केवल दर्शन का केवल ज्ञान के समान अतर जानना चाहिये।५७८।

अशुभलेश्याना नास्ति विरहं जीव मन्तर मुहूर्तं सप्त॥
सप्तदश त्रायंत्रिशत्सागरादेशोनान्तरं च ॥५७९॥
सासादनमिश्रयोश्च सामान्य एक जीवं प्रागुवच्च।
तेजा पद्मयोः नास्त्यंतरमेकान्तर मुहूर्तञ्च ॥५८०॥
उत्कृष्टं द्वे चाष्टादश सागरः सासादन मिश्रयोश्च॥
सातिरेक पल्यस्यासख्येय भागान्तरमेव च ॥५८१॥

अशुभलेश्या कृष्ण नील कापोत होती हैं इन लेश्या वाले जीव मिथ्यादष्टी से लेकर.

असंयत सम्यग्दृष्टी गुण स्थान तक के जीवों में पायी जाती हैं नाना जीवों की अपेक्षा कोई अंतर नही पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा विरह काल अंतर मुहूर्त है और उत्कृष्ट कृष्णलेश्याका काल अंतर तेतीस सागर से कुछ कम है नील लेश्या का सत्रह सागर कापोतलेश्या का सात सागर से कुछ कम अतर पाया जाता है। सासादन मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टी जीवों की अपेक्षा कोई अन्तर नही है। एक जीव की अपेक्षा से पल्य का असंख्यात वां भाग व अंतर मुहूर्त अतर पाया जाता है उत्कृष्टता से तेतीश सागर सत्रह सागर और सात सागर अतर प्राप्त होता है। पीत और पद्म लेश्या वाले अनेक जीवो की अपेक्षा कोई अंतर नही पाया जाता है एक जीव की अपेक्षा अतर्मुहूर्त अंतर होता है। और उत्कृष्ट दो सागर प्रमाण और १८ सागर प्रमाण विरह काल पाया जाता है। सासादन व मिश्र सम्यग्दृष्टी नाना जीवो की अपेक्षा से कोई विरह काल नही है। एक एक जीव की अपेक्षा जघन्यता से पल्य का असंख्यातवा भाग व अतर मुहूर्त विरह काल पाया जाता है। उत्कृष्टता से पहले के समान दो सागर व अठारह सागर प्रमाण काल अतर प्राप्त होता है। देशसयत प्रमत्त अप्रमत्त कासयतो के जघन्य उत्कृष्ट एक जीव व अनेक जीवों की अपेक्षा कोई अंतर नही पाया जाता है।५७९/८०/८१।।

शुक्ललेश्यामेक प्रति कुदृग संयतांल ध्वंतामुहूर्तं च।
उत्कृष्टेनैकत्रिंशत्सागर देशोनमंतरैव ।।५८२।।

शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टी नाना जीवो की अपेक्षा से कोई अंतर नही है एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अतर मुहूर्त है तथा उत्कृष्टता से इकतीश सागर प्रमाण अतर है। यह अन्तर मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टी तक के जीवों का कहा गया है। सासादन मिश्र इनका अतर पल्य का असख्यातवे भाग व अंतर मुहूर्त है। उत्कृष्टता से तेतीश सागर से कुछ कम अतर है।

देश संयत प्रमत्त संयतयोः तेजोलेश्यावदन्तरं ।
अप्रमत्त जीवंप्रति जघन्योत्कृष्टान्तर्मुहूर्तम् ।।५८३।।
त्रयोपशमकान्नां लघुत्कृष्ट चान्तर्मुहूर्तं शेषाणाम्।
गुणस्थान वदतरंच यथा स्थानं नियोजितव्यः ।।५८४।।

देश संयत और प्रमत्त संयत वाले शुक्ल लेश्या के धारक जीवों के पीत पद्म लेश्या के समान ही अन्तर जानना चाहिये अप्रमत्त गुण स्थान वाले जीवो की अपेक्षा अन्तर नही है एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त अन्तर है। तथा तीनो उपशम श्रेणी चढने वालो की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त अन्तर है शेष क्षपक श्रेणी वालो का अन्तर गुण स्थान के समान जानना चाहिये।

विशेष—किसी विवक्षित एक लेश्या को छोड़ कर दूसरी लेश्या को प्राप्त होना और उसको भी छोड़ कर पुनः उस लेश्या को प्राप्त होना इसके बीच के काल को अन्तर कहते है। इस प्रकार कृष्ण लेश्या का जघन्य अन्तर अन्तर मुहूर्त काल अन्तर है उत्कृष्ट अन्तर दश मुहूर्त और आठ वर्ष कम एक कोटि पूर्व वर्ष अधिक तेतीश सागर प्रमाण अतर

है। इसी प्रकार नील लेश्या तथा कापोत लेश्या का भी अंतर जानना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता है कि नील लेश्या के अंतर में आठ अंतर मुहूरत और कापोत लेश्या के अतर में छह अतर मुहूर्त ही अधिक है। तेतीश सागर सत्रह सागर व सात सागर से कुछ अधिक अतर बताया गया है क्योकि इन तीनो लेश्याओ के धारक परिणाम वाले मिथ्यादृष्टी से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टी गुण स्थान तक चारो गति वाले जीव होते है। इन सबका जघन्यता से विरह काल अन्तर मुहूर्त है।

आगे शुभ लेश्याओ का उत्कृष्ट अन्तर दृष्टान्त द्वारा बताते है कोई जीव पीत लेश्या को छोड कर क्रम से एक एक मुहूर्त काल बीतने पर कापोत नील कृष्ण लेश्या को प्राप्त हुआ और एकेन्द्रिय अवस्था मे आवलो के असख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गल द्रव्य परावर्तन का काल उतने काल पर्यन्त भ्रमण कर विकलेन्द्रिय जीवो में उत्पन्न हुआ वहा पर भी उत्कृष्टता से सख्यात हजार वर्ष पर्यन्त भ्रमण किया। पीछे पचेन्द्रिय हुआ और प्रथम समय से एक एक अन्तर मुहूरत मे क्रम से कृष्ण नील कापोत लेश्या को प्राप्त होकर पीत लेश्या को प्राप्त हुआ। इस प्रकार के जीव के पीत लेश्या का छह अन्तर मुहूर्त सख्यात सागर वर्ष अधिक आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गला द्रव्य परावर्तन होता है। पद्मलेश्या का उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार है कि कोई पद्मलेश्या वाला जीव पद्मलेश्या को छोडकर अन्तर मुहूर्त तक पीत लेश्या में रहकर वहा से पल्य के असख्यातवे भाग अधिक दो सागर की आयु से सौ धर्म ईशान स्वर्ग उत्पन्न हुआ चलकर पहले के समान एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न हुआ और एकेन्द्रिय अवस्था मे आवली के असख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गला द्रव्य परावर्तनो के काल का जितना प्रमाण है उतने काल तक भ्रमण किया। पीछे विकलेन्द्रिय होकर असख्यात हजार वर्ष तक भ्रमण किया पीछे पंचेन्द्रिय होकर भव के प्रथम समय से लेकर एक एक अन्तर मुहूरत तक क्रम से कृष्ण नील कापोत पीत लेश्या को प्राप्त होकर पद्मलेश्या को प्राप्त हुआ। इस तरह के जीव के पांच अन्तर मुहूर्त और पल्य के असख्यात भाग अधिक दो सागर तथा असख्यात हजार वर्ष अधिक आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गला परावर्तन मात्र पद्मलेश्या का उत्कृष्ट अन्तर होता है। शुक्ल लेश्या का उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार है कि कोई शुक्ल लेश्या वाला जीव शुक्ल लेश्या को छोड कर क्रम से एक एक अन्तर मुहूर्त पर्यन्त पद्मपीत लेश्या को प्राप्त होकर सौ धर्म ईशान स्वर्ग में उत्पन्न होकर तथा वहा पर पूर्वोक्त प्रमाण काल तक रहकर पीछे एकेन्द्रिय अवस्था मे पूर्वोक्त प्रमाण काल तक भ्रमण करके क्रम से पंचेन्द्रिय होकर प्रथम समय से लेकर एक एक अन्तर मुहूर्त तक क्रम से कृष्ण नील कापोत पीत पद्मलेश्या को प्राप्त होकर शुक्ल लेश्या को प्राप्त हुआ। इस तरह के जीव के सात अन्तर मुहूर्त सख्यात हजार वर्ष और पल्य के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर अधिक आवली के असख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गला परावर्तन मात्र शुक्ल-लेश्या का अन्तर सामान्य विशेष रूप से कहा गया है।

अंतरमभव्यानां न नचैक प्रत्यन्तर प्राग्स्थानम्।
भव्यानां सर्वस्थानमेंद्यन्तेऽभव्या स्तत्रैंव ॥५८५॥

अभव्य जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर नही है। एक अभव्य व अनेक अभव्य जीवों का गुण स्थान एक मिथ्यात्व ही रह जाता है। उनके अन्तर का अभाव है। परन्तु भव्य जीवों की अपेक्षा अन्तर सामान्य और विशेष पाया जाता है। भव्य जीवो में चौदह गुण स्थान पाये जाते है। तथा भव्य जीव मिथ्यात्व को छोड़ कर सासादन मिश्र असंयत देश संयत आदि अयोगी गुण स्थान को प्राप्त होते है। जिस गुण स्थान को छोड़ कर अन्य गुण स्थान को प्राप्त होना पुन: उस गुण स्थान को प्राप्त होना कि जिसको पहले छोड़ दिया या उसके मध्यकाल को विरह या अतर कहते है। मिथ्यात्व से लेकर उपशात मोह तक के जीवों के परिणामों से अन्तर पाया जाता है। भव्य जीवो के गुण स्थान के समान ही अतर जानना चाहिये।

असंयत् सम्यग्दृष्टि भवति च क्षायक गुण।
अभव्यानां सामर्थम भवति कालान्तरगते ॥
तथैवेकं जीवं प्रति भवति वान्तमुहूरतम्।
यदोत्कृष्टं कोटी भवति पूर्वश्च समयः ॥५८६॥

अभव्य जीवो को अनत काल बीत चुका है और अनतानंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल बीत जाने पर भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होगी। भव्य जीव की अपेक्षा क्षायक सम्यक्त्व असयत सम्यग्दृष्टी चौथे गुण स्थान वाले जीवो से लेकर अयोग केवली गुण स्थान तक होते है। एक जीव के सम्यक्त्व होने के पीछे अन्तर मुहूर्त काल बीत जाने पर क्षायक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। अधिक से अधिक करोड़ पूर्व से कुछ समय तक काल बीत जाने पर नियम से क्षायक सम्यग्दृष्टी कोई न कोई जीव होता ही है॥ ५८६॥

देशसयताद्य प्रमत्तोपशमकेषु लघु घटिका द्वे च।
उत्कृष्टान्तरं त्रयत्रिंश दुदधिः सातिरेक च ॥५८७॥
क्षयोपशमिक सम्यक्त्वेऽसंयतस्य द्विघटिकोत्कृष्टं ॥
पूर्वकोटि देशोन संयतासंयतस्य साधिकम् ॥५८८॥
षट्षष्टयुदधिर्देशोन प्रमत्ताप्रमत्तयोः द्विघेटिका ॥
दीर्घेन त्रयत्रिंशत्सागरः सातिरेकं विघेत् ॥५८९॥

असयत सम्यग्दृष्टी से लेकर प्रमत्त अप्रमत्त तथा उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीवों में जघन्यता से दो घड़ी अतर (अंतरमुहूर्त) है। उत्कृष्टता से तैंतीस सागर से कुछ अधिक काल अंतर पडता है। च कार से यहां मध्य अन्तर के बहुत भेदो को रचित किया गया है। क्षयोपशम सम्यक्त्व असयत सम्यग्दृष्टी से लेकर अप्रमत्त गुण स्थान वाले जीवो को उत्पन्न होता है और उसका जघन्य अन्तर काल अतरमुहूर्त है। उत्कृष्टता से करोड़ पूर्व से कुछ अन्तर पड़ता है। देश सयत एक जीव की अपेक्षा अतरमुहूर्त काल अन्तर है। उत्कृष्टता से छयासठ हजार से कुछ कम है। प्रमत्त और अप्रमत्त जीवो की अपेक्षा जघन्यता से अन्तरमुहूर्त है और उत्कृष्टता से उत्कृष्ट अतर छयासठ सागर से कुछ कम अन्तर पाया जाता है प्रमत्त और अप्रमत्त जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तरमुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर तैंतीस

सागर से कुछ अधिक है। इसका कारण कोई क्षायक सम्यग्दृष्टी जीव उपशम श्रेणी चढने को सानिध्य हुआ और उस ही काल में मरण हो गया तब सर्वार्थ सिद्धि विमान मे तैतीश सागर आयु को लेकर जन्मा और वहा की आयु को पूरा कर पुनः मनुष्य भव को प्राप्त कर आठ वर्ष छह महीने के पीछे प्रमत्त व अप्रमत्त गुण स्थान के भावो को प्राप्त हुआ तब तैतीस सागर से कुछ अधिक काल अन्तर प्राप्त होता है। देशव्रती श्रावक अपने व्रत से च्युत होकर पुन. उन व्रतो को ग्रहण कर पहले के समान भाव वन जावे तो अन्तरमुहूर्त का जघन्य अन्तर प्राप्त होना है। उत्कृष्टता से अन्तर पड़े तो छयासठ सागर से कुछ काल पहले देश संयत वन सकता है।

औपशमिक सम्यक्त्वे सर्वस्थानेषु समयोजीवानां
घटिके वा सप्तचतुर्दश पंचदशाहो रात्रि च ॥५९०॥
एकजीवं घटिके च त्रयाणामुपशमकानामनुसमयः।
उत्कृष्टं संवत्सर पृथक्त्वमनुगुरू घटिके ॥५९१॥

उपशम सम्यक्त्व की अपेक्षा अन्तर का विचार करने पर असयत सम्यग्दृष्टी देश सयत प्रमत्त सयत अप्रमत्त सयत इन चारों का जघन्यता से एक समय अन्तर है तथा उत्कृष्टता से असयत सम्यग्दृष्टि का अन्तरमुहूर्त अन्तर है तथा सयतासयत का सात दिन रात अन्तर है प्रमत्त सयत का उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात है अप्रमत्त का पंद्रह दिन रात उत्कृष्ट अन्तर है। जघन्य अन्तरमुहूर्त है। उपशम श्रेणी चढने वाले जीवो की अपेक्षा एक समय अन्तर जघन्य है। और उत्कृष्टता से वर्ष पृथक्त्व है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरमुहूर्त अन्तर है। उपशान्त कषाय वाला नाना जीवो की अपेक्षा गुण स्थान के समान अन्तर है एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नही है।

सासादन मिश्रयोश्च लघु समय उत्कर्षेण पल्या च।
असंख्येया भागान्तरं यथा स्थाने नियोजितव्यः ॥५९२॥

सासादन सम्यग्दृष्टी व मिश्र सम्यग्दृष्टी इन दोनो का अनेक जीवो की अपेक्षा से जघन्य एक समय अन्तर है। उत्कृष्टता से पल्य के असख्यातवा भाग प्रमाण है एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नही है। मिथ्यादृष्टी अनेक जीव व एक जीव की अपेक्षा अन्तर नही है। यहा जिन गुणस्थानो का अन्तर नही कहा गया है वहाँ गुण स्थान की चर्चा के समान अन्तर जानना चाहिए।

समनस्क जीवाना मिथ्यादृष्टे नास्त्यंतरं कदा।
सासादनाद्युपशांत मोहानां एकस्यामुहूर्तम् ॥५९३॥
उत्कृष्टा सर्वेषां सत्सागरोपम पृथक्त्वं सदा।
क्षपकाना सामान्यममनस्काणा नास्त्यंतरम् ॥५९४॥

समनस्क जीव मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह तक होते हैं सामान्य से समनस्क जीव नित्य विद्यमान रहते है इसलिए कोई अन्तर नही है। सासादन और मिश्र असयत सम्यग्दष्टी देश सयत प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तकरण, सूक्ष्म सापराय, उप-

शात मोह और क्षीण मोह इनके सामान्यता से कोई अन्तर नही है परन्तु विशेष की अपेक्षा अन्तर कहा गया है। सासादन वाले एक जीव के जघन्यता से अन्तरमुहूर्त अन्तर काल होता है मिश्र वाले के भी अन्तरमुहूर्त अन्तर पडता है। पल्य का असख्यातवां भाग अन्तर है। उत्कृष्टता से सात सागरोपम पृथकत्व अन्तर है। असंयत सम्यग्दष्टि एक जीव के प्रति जघन्यता से अन्तरमुहूर्त अन्तर है उत्कृष्टता से सौ सागर पृथकत्व और कुछ अधिक काल अन्तर है देश सयत से लेकर उपशांत मोह तक वाले जीवों में से एक-एक जीव के प्रति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए। क्षपक श्रेणी चढ़ने वालो की अपेक्षा कहे गये गुण स्थानो के समान ही अतर है। एक या बहुत जीवों में अन्तर नही है।

आहारक कुदृगानां सामान्यं सासादन मिश्रदृगाम।
एक प्रति लघुघटिके वा पल्यासंख्यभाग: ॥५६५॥
उत्कृष्टमंगुलांसख्येय भागोऽसंख्येयोत्सर्पिण्यवर्सपिणी।
असंयत्सुदृगाद्यप्रमत्तानां नास्त्यंतर च ॥५६६
सासादनवदुत्कृष्टो वा जघन्योपशमकानामंतरम्।
असंख्येयासंख्येय उत्पर्पिणीवर्सपिणी च ॥५६७
शेषाणा सामान्य अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टि नामन।
सासादन सदृष्टे: लघु समय: पल्यासख्येयभाग: ॥५६८
एकप्रत्यंतरं नास्त्य सयतस्यैक समयोत्कृष्टम्।
मासपृथक्त्व सयोगीना समयोत्कृष्ट वर्ष: ॥५६६

आहारक मार्गणा की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि जीवो की अपेक्षा से कोई अन्तर नही है क्योकि एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त चारो गति वाले जीव मिथ्यादृष्टि है। परन्तु एक जीव की अपेक्षा पहले कह आये है। एक प्रति जघन्य अन्तरमुहूर्त अन्तर होता है उत्कृष्ट ३२ सागर से कुछ कम है। सासादन सम्यग्दृष्टी सम्यगमिथ्यादृष्टि नाना जीवो की अपेक्षाकोई अन्तर नही है एक जीव की अपेक्षा अन्तरमुहूर्त काल है और या पल्य का असख्यतवा भाग समय है। असख्यातवे उत्कृष्टता से अगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण तथा असख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल अन्तर है। इसका कारण यह है कि कोई एक जीव आहारक अवस्था मे सासादन को प्राप्त हुआ और एक समय दो समय तीन समय पीछे मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया पुन: उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर अन्तरमुहूर्त के पीछे उपशम की विराधना करके सासादन को प्राप्त हुआ तब अन्तरमुहूर्त अन्तर काल प्राप्त हुआ इसी प्रकार जघन्य और उत्कृष्ट जानना चाहिए। असयत सम्यग्दष्टी देश सयत प्रमत्त सयत अप्रमत्त सयत अपूर्व करण अनिवृत्त करण सूक्ष्म सापराय उपशांत मोह इन चार उपशम श्रेणी चढ़ने वालो आहारक जीवो का जघन्यता से अन्तरमुहूर्त अन्तर काल है अथवा पल्य का असख्यातवा भाग है। और उत्कृष्टता से असख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल अन्तर है चौथे गुणस्थान से लेकर एक-एक जीव की अपेक्षा से यह कथन किया जाता है और ग्यारहवे गुण स्थान तक के जीवो का क्षायक सम्यग्दृष्टी की अपेक्षा गुण स्थान की चर्चा में कह आये है उतना अन्तर यहा भी

समझ लेना चाहिए ।

अनाहारक अवस्था मे मिथ्यादृष्टि अनेक जीवो की अपेक्षा सामान्य में कोई अन्तर नही है सासादन के जघन्यता से एक समय अतर है तथा उत्कृष्टता से एक पल्य का असख्यात वा भाग है ऐसा समझना चाहिए । एक जीव के प्रति कोई अन्तर नही है । नाना असख्यात सम्यग्दृष्टी जीवो के प्रति एक समय अतर है उत्कृष्टता से एक महीना पृथकत्व है । एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नही है । सयोग केवली के प्रति जघन्य एक समय है उत्कृष्टता से छह महीना अतर कहा गया है । एक जीव के प्रति अतर नही है शेष सामान्य विशेष आगम प्रमाण से जान लेना चाहिए ।

इति अन्तर प्ररूपणा

मिथ्यात्वे चौदयिक चतुसासादने पारिणामिक ।
मिश्रेक्षयोपशमिक संयतस्थाने त्रिभावाः ॥

आगे भावो की अपेक्षा कथन करते है ।

असामान्यौदयकमयि मिश्र पुनः देशसंयत् ।
भाव क्षयोपशमिक मिति द्वो प्रमत्ताप्रमत्तौ ॥६००॥

मिथ्यात्व मे औदयिक भाव होते हैं । सासादन गुण स्थान में एक अपेक्षा से पारिणामिक भाव होते है वे इस प्रकार है कि कोई जीव उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व रूपी रत्न शिखर से पतित हुआ और मिथ्यात्व का अभी उदय नही आया है तब तक पारिणामिक भाव होते है । दूसरे क्रोधादि कोई कषाय के उदय होने के कारण को पाकर सम्यक्त्व से च्युत हुआ है । और सासादन को प्राप्त है उस समय अनतानुबधी कषाय औदियक है । मिश्र गुण स्थान मे मिश्र भाव है असयत सम्यग्दृष्टी के तीन भाव है जैसा जिसका सम्यक्त्व है वैसा उसका भाव है । किसी को औपशमिक भाव किसी को क्षयोपशिमक भाव है किसी को क्षायक भाव है तथा औदयिक भाव पाया जाता है । क्योकि कषायें लेश्याये औदयिकी भाव है देशवितर मे क्षयोपशमिक भाव है तथा प्रमत्त अप्रमत्त ये है ।

मिथ्यात्व गुण स्थान मे दर्शन, मोह व चरित्र मोह दोनो की सत्ता व उदय पाया जाता है मिथ्यात्व को सयोगिनी अनतानुबधी क्रोध, मान. माया, लोभ, कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या व ज्ञानावर्णी औदायिक भाव हैं । सासादन गुण स्थान कषाओ के उदय मे ही होता है परन्तु दर्शन मोह का उदय नही होने के कारण पारिणामिक भाव कहे गये हैं । मिश्र गुण स्थान मे उभय प्रकृतियो की सामान्य सत्ता एक साथ पायी जाती है इस लिये उसको मिश्र कहा जाता है । उस जीव को मिथ्यात्व भाव वाला या सम्यक्त्व भाव वाला नही कहा जा सकता है उसके भाव सक्कर और दही के समान मिले हुए परिणाम पाये जाते हैं इस लिये क्षयोपशम भाव है । असयत सम्यग्दृष्टी, गुण स्थान मे तीन भाव होते हैं । औपशमिक क्षायक क्षयोपशमिक सम्यत्क्त्व की अपेक्षा से है । लेश्या अज्ञान कषाय २१ इन्द्रिय औदयिकी भी है । देश विरत व प्रमत्त अप्रमत्त इन मे क्षयोपशमिक भाव हैं । सम्यक्त्व की अपेक्षा से तीनो भाव है परन्तु चरित्र की अपेक्षा से क्षयोपशमिक भाव है ।

चतुरुपशमकेषु चौपशमिक भावः क्षयके क्षायक् ।
सयोगायोगिनां च क्षायक भावः क्षायक् सम्यक्त्वम् ॥६०१॥

अपूर्व करण अनिवृत्त करण सूक्ष्म सापराय इन तीनों गुण स्थान वाले जीवों के दो प्रकार के भाव होते है उपशम श्रेणी वाले के औपशमिक भाव क्षपक श्रेणी चढने वाले के क्षायक भाव होते है। उपशान्त मोह में औशपमिक भाव होता है क्षीण मोह में क्षायक भाव होता है। और क्षायक ही सम्यक्त्व होता है। परन्तु उपशम श्रेणी चढ़ने वालों के औपशमिक सम्यक्त्व व क्षायक सम्यक्त्व दोनो ही पाये जाते है। सयोगी अयोगी गुण स्थानों में भी क्षायक भाव होते है क्योकि जिनके घातिया कर्मो का सर्वथा नाश हो गया है।

सम्यग्दृष्टादि चतुर्गुणस्थानेषू त्रय सम्यक्त्वम् ।
तथैवं भावाः क्षयोपशमःक्षायको भावश्च ॥६०२॥

असयत सम्यग्दृष्टी से लेकर अप्रमत्त तक गुण स्थानों में तीनो ही सम्यक्त्व होते है। जैसा सम्यक्त्व होता है वैसे ही भाव कहे जाते है। उपशम सम्यक्त्व वाले जीव के उपशम भाव क्षायक सम्यक्त्व वाले के क्षायक भाव क्षयोपशमिक भाव होते है। आगे मार्गणाओं में भावों की व्याख्या करते है।

प्राङ्नारकेष्वौदयिकः पारिणामिकमौपशमिक क्षायक् ।
क्षयोपशमिको भावः क्षायक रधोवर्ज्य सम्यक् ॥६०३॥

पहले नरक वाले नारकी मिथ्यादष्टीयो मे औदयिक भाव होता है क्योंकि इनके मिथ्यात्व कषाय और नरक गति औदयिक भाव कहा है। तथा सासादन गुणस्थान में जोवों के पारिणामिक भाव व औदायिक भाव होता है। उपशम सम्यक्त्व वाले के औपशमिक भाव होते है क्षयोपशम सम्यक्त्व और मति श्रुत ज्ञान व कषायों का क्षयोपशम होता है इस लिये क्षयोपशमिक भाव होता है। क्षायक सम्यग्दृष्टो के सम्यक्त्व की अपेक्षा से तो क्षायक भाव होता है अन्य की अपेक्षा से क्षयोपशम व औदायिक होते है। दूसरे तीसरे आदि नरक में क्षायक सम्यक्त्व को छोडकर शेष भाव होते है । छठवी और सातवे नरक में औदयिक भाव है तथा पारिणामिक और औदयिक भाव होते है ॥६०३॥

तिरश्चय मौदयिकश्च क्षायकमौपशमिक क्षयोपशमिकाः ॥
नृणां सर्वभा वाः देवानां च यथाकश्च ॥६०४॥

त्रियच गति मे त्रियचो के औपशमिक भाव क्षायक भाव क्षयोपशमिक औदयिक पारिणामिक भाव होते है। त्रियच एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त मिथ्यादृष्टी जीवो के औदयिक भाव होते है। सासादन की अपेक्षा पारिणामिक भाव तथा औदयिक भाव होते है। मिश्र वाले जीवो के क्षयोपशमिक भाव होते है। असयत सम्यग्यदृष्टी के जो सम्यक्त्व हो वही भाव होता है देश सयत में क्षयोपशमिक भाव होते है त्रयचिनियों के क्षायक सम्यक्त्व नही गुण स्थान पाच होते हैं।

मनुष्यो में मनुष्य गति में गुण स्थान चौदह होते है पहले गुण स्थान मे मिथ्या-

त्व कषायों के उदय में होता है इस लिये औदायिक भाव होता है। सासादन सम्यग्दृष्टी के मिथ्यात्व दर्शन मोह के उदय के अभाव में पारिणामिक भाव होता है। क्योकि मिथ्यात्व दर्शन मोह की प्रकृति के उदय मे आजाने पर मिथ्यात्व औदयिक भाव हो जाता है। किसी आचार्य का यह भी विचार है कि चरित्र मोह की अनतानुवधी कपाय के उदय मे सासादन गुण स्थान होता इस लिये औदयिक भाव है। सम्यगमिथ्यात्व मिले हुए परिणाम होते है इस लिये मिश्र गुण स्थान मे क्षयोपशमिक भाव होते है असयत सम्यग्दृष्टीयो के सम्यक्त्व की अपेक्षा उपशम भाव क्षायक भाव क्षयोपशमिक भाव होते है। परन्तु गुण स्थान सम्यग्प्रकृति उदय पाया जाता है क्षयोपशम सम्यक्त्व में क्षयोपशमिक भाव होते हैं। पाचवे गुण स्थान मे तीनो सम्यक्त्व होतेहै परन्तु चरित्र मोह से सम्बन्ध होने से क्षयोपकषायो के क्षयोपशम से होता है इस लिये क्षयोपशमिक भाव होते है उसी प्रकार प्रमत्त और अप्रमत्त गुण स्थानो मे क्षयोपशमिक भाव होते है। अपूर्व करण मे चरित्र मोह का उपशम करने वालो के औपशमिक भाव होते है यही भाव चारो उपशम श्रेणी वालों के हैं। तथा क्षायक श्रेणी चढनें वालो के होते है सयोग केवली और अयोग केवलीयो के क्षायकभाव ही होते है। मिथ्यात्व से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टी जीवो के दर्शन मोह की मुख्यता कर भाव कहे है पाँचवे से वारहवे तक चरित्र मोह की अपेक्षा भाव कहे गये है तेरहवे चौदहवे गुण स्थान मे क्षायक भाव सर्व घातिया कर्मो के क्षय अपेक्षा से कहे गये है। देव गति में गुण स्थान प्रथम के चार होते है। मिथ्यादृष्टी देवो के औदयिक भाव है सासादन सम्यग्दृष्टी जीवो के पारिणामिक भाव होते है मिश्रवालो के क्षयोपशमिक भाव होते है। असत सम्यग्दृष्टियो के तीनो सम्यक्त्व और उनकी अपेक्षा तीनो भाव होते हैं। भवन वासी व्यन्तर ज्योतिष्क और सौ धर्म ईसान स्वर्ग वाले देवो के क्षायक भाव नही होते इसका कारण यह है कि इनमें क्षायक सम्यक्त्व वाला जीव उत्पन्न नही होता है। नव ग्रीवक के उपर वाले देवो में क्षयोपशमिक व क्षायक दो भाव ही होते है उनके उपशम भाव नही क्योकि वहाँ नियम से क्षयोपशम व क्षायक सम्यक्त्व के धारक जीव उत्पन्न होते है। अनुत्तर विरानो मे क्षायक सम्यक्त्व और क्षायक भाव होते है। यह कथन दर्शन मोह की अपेक्षा से है। चरित्र मोह की अपेक्षा से आगे के गुण स्थान होते है वे देवो के होते ही नही ॥६०४॥

एकेन्द्रियादि सकलेन्द्रियामनस्काणांमौदयिको भावः ॥
सकलेन्द्रियसमनस्काजीवानां पचभावाश्च ॥६०५॥

इन्द्रिय मार्गणा का विचार करते हुए सब भाव होते है क्योकि एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवो के सब ही भाव पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति तथा दोइन्द्रिय शखादि तीन इन्द्रिय चीटी आदि चार इन्द्रिय भोगादि पचेन्द्रिय असेनी सर्पतोतादि इनके सतत एक मिथ्यात्व दर्शन मोह का उदय रहता है इस लिये इनके औदयिक भाव होता है। संभी पचेन्द्रिय मे किसी के दर्शन मोह का उदय होता है उनके औदयिक भाव जिनके दर्शन मोह का उपशम होता है उनके औपशमिक भाव जिनके दर्शन

मोह का क्षयोपशम व चरित्र मोह की अनंतानुबंधी काम होता है उनके क्षयोपशम भाव, जिनके दर्शन मोह और चरित्र मोह की अनंतानुबध कषाय का क्षय होता है उनके क्षायिक भाव होते हैं, जो सम्यक्त्व से पतित हो रहा है उसके पारिणामिक भाव होते हैं। तथा औदयिक भाव होते है ॥६२४॥

स्थावराणामौदयिक त्रशाणां गुणस्थान वद्‌घभावाश्च ॥
त्रियोगीनां खलु सर्वभावाः त्रिवेदाना च तथा ॥६०६॥

वेद मार्ग मे काययोगी जीव औदायिक काय वाले पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति और इतर निगोद तथा नित्य निगोद वाले जीवो के निस्पृही औदयिक भाव रहते है त्रश काय वाले दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय असैनी व सैनी जीवों के औदयिक भाव होता है। तथा सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के पहले मनुष्य गति के समान भाव जानना चाहिये। क्योंकि त्रस काय में सब गुण स्थान होते है।

एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पचेन्द्रिय तक के जीवों के एक नपुंसक ही वेद होता है तथा पचेन्द्रिय तिर्यंच व नारकी जीवो के नपुंसक वेद होता है और देव गति में देवों के स्त्री वेद पुरुष वेद दो वेद होते है पचेन्द्रिय तिर्यच व मनुष्यों के तीनों वेद होते हैं। उनके औदयिक औपशमिक, क्षपोयशमिक व क्षायिक तीनों भाव होते हैं। द्रव्य स्त्री व नपुंसक वेद देश व्रती तक होता है द्रव्य पुरुष वेद अत तक और भाव वेद तीनों ही के अनिवृत्त करण तक होते हैं। द्रव्य वेद की अपेक्षा गुणस्थान के समान भाव समझना चाहिए।

कषाय मार्गणा में क्रोध, मान, माया लोभ कषायों सहित जीव और कषायों से रहित जीवों के गुणस्थान के समान भाव जानना चाहिये। विशेष यह है कि अनतानुबंधी कषाय के उदय में औदयिक भाव होते है आगे की कषायों में अपने अपने गुण स्थान के वासना काल के अनुसार ही भाव होते है। तथाज्ञान की अपेक्षा कुमति, कुश्रुति विभगावधि इन तीनो ज्ञान बाह्य जीवों के औदयिक और क्षयोपशमिक भाव होते हैव पारिणामिक भाव होते है। मतिश्रुत अवधि और मनःपर्यय इन में तीनो भाव होते है तथा सयोग अयोग गुण स्थान केवल ज्ञान में होते हैं इसलिये केवल ज्ञानी के क्षायिक भाव होते है। ६२६ ॥

क्रोध मान माया लोभ कषायाणांमकषायाणा सामान्यम्।
कुमति श्रुतविभग मतिश्रुतावधि मनःपर्ययणां ॥ ६०७ ॥
सामायिकादि संयम श्चदत्वादि दर्शन कृष्णादि लेश्या ॥
भव्यानां सामान्यं अभव्यानां पारिणामकः ॥६०८ ॥

सामायिक संयम की अपेक्षा प्रमत्त अप्रमत्त इन दोनों गुणस्थानों में सम्यक्त्व तीनों होते है परन्तु भाव क्षयोपशमिक होते है और श्रेणी चढ़ने वालों के उपशम वाले के औपशयिक द्वितीय सम्यक्त्व और औपशमिक भाव क्षायिक सम्यक्त्व औपशमिक भाव क्षपक श्रेणी चढने वालों के क्षायिक भाव होते है। ऐसे छेदोपस्थापन वाले जीव के भाव सामायक चारित्र के समान होते है। परिहार विशुद्ध संयम वाले के क्षयोपशमिक भाव होते है परन्तु सम्यक्त्व क्षयोपशम व क्षायिक दो ही होते है उपशम सम्यक्त्व नही। सूक्ष्म सांपराय वाले

के औपशमिक व क्षायिक भाव होते हैं। यथाख्यात सयम वाले उपशात मोह में औपशमिक भाव होते है क्षीण मोह सयोग अयोग केवलियो के एक क्षायिक ही भाव होता है। सयमासयम गुणस्थान वाले जीवो के सब सम्यक्त्व होते है परन्तु भाव क्षयोपशमिक ही होते है। असयत सम्यग्दृष्टि के औपशमिक भाव, किसी के क्षयोपशमिक किसी के क्षायिक भाव होते है। मिश्र मे क्षयोपशमिक भाव सासादन मे पारिणामिक और भाव मिथ्यात्व मे औदयिक भाव होते है।

लेश्या मार्गणा में कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवो के औदयिक भाव होते है। सासादन वाले जीवो के पारिणामिक. मिश्र मे क्षयोपशमिक, असयत में उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तीनो भाव होते है। प्रथम तीन आगे के गुण स्थान में नही होती है देश सयत प्रमत्त में पीत, पद्म शुक्ल लेश्यायें होती है उन में क्षायोपशमिक भाव होता है आगे पीत पद्म लेश्याये नही रह जाती एक शुक्ल लेश्या है सब का गुण स्थान के समान ही कथन है। अभव्य जीवों के पारिणामिक भाव है।

असंयतसम्यग्दृष्टौ भावत्रयः सम्यक्त्वं चौदयिक ॥
देशसंयताद्यप्रमत्तानां क्षायोपशमिकभावः ॥ ६०९ ॥

असयत सम्यग्दृष्टि के तीन भाव होते है। तथा औदयिक भाव भी बताया है। देश सयत अप्रमत्त के भी वही भाव है। उपशम श्रेणी में औपशमिक भाव और क्षपक श्रेणी मे क्षायिक भाव तथा केवली सयोग अयोग के क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक के नौ भाव होते हैं।

चतु.क्षपकाश्चौपशमिक जीवानां क्षायकसम्यक्त्वं च।
उपशम सम्यग्भावः मिश्रेक्षयोपशिमको भावः ॥ ६१० ॥
सासादने प्पारिणामिक मिथ्यात्वे खल्वौदीपकश्च।
सयोगायोगीनां सिद्धानां क्षायको भावः ॥ ६११॥

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि व क्षायिक सम्यग्दृष्टि जब उपशम व क्षायिक श्रेणी चढते है उस समय मे उन दोनों के परिणाम समान ही उज्ज्वल होते हैं। भावो की अपेक्षा कोई अन्तर नही पाया जाता है परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी उपशम श्रेणी चढता है वह चारित्र मोह की २१कषायों का उपशम कर उपशान्त मोह तक औपशमिक भावो का धारक कहा गया है। उपशम सम्यग्दृष्टि दर्शन मोह व चारित्र मोह की सब प्रकृतियों का उपशामक होता है। इन दोनो के वीच यही अन्तर है कि एक पानी के नीचे मिट्टी बैठी हुई है पानी के हिलने पर ऊपर आजायगी परन्तु दूसरे मे से कीचड़ को निकाल कर फेंक दिया है कितने ही निमित्त मिले पर वह पानी निर्मल का निर्मल ही रहेगा। इसी प्रकार भावो का कथन है। मिश्र सम्यग्दृष्टि और देश सयत प्रमत्त संयत और अप्रमत्त सयत इनके क्षायोपशमिक भाव है। सासादन वाले के पारिणामिक भाव व औदयिक भाव हैं। मिथ्यादृष्टियो के औदयिक भाव है। सिद्ध भगवान के क्षायिक और पारिणामिक भाव है। क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक दर्शन ज्ञान वीर्य और जीवत्व ये पांच भाव होते है। ६२९।६३०॥

असंज्ञीनां मोदयिक: संयतानां गुणस्थानवद्भाव ।।
सज्ञाऽसंज्ञा भाव विहीनानां क्षायक भाव: ।।६१२

असंज्ञी जीवों के मिथ्यात्व दर्शन मोह का उदय पाया जाता है इसीलिये औदयिक भाव होते है। सैनी जीवों के सब गुणस्थान कहे गये है। उनके भाव गुणस्थान के समान होते है। सैनी और असैनी भावों से रहित जीवों के क्षायिक भाव होते है। आहार मार्गणा और अनाहारक जीवों के भाव गुण स्थान के समान होते है।

विशेष भाव पाच प्रकार के होते है वे उपशम, क्षायिक, क्षयोपशमिक, औदयिक भाव तथा पारिणमिक उपशम भाव के दो भेद होते है—उपशमिक सम्यक्त्व और उपशमिक चारित्र क्षायिक भाव के नौ भेद होते है क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक चारित्र क्षायिक दर्शन क्षायिक ज्ञान क्षायिक दान लाभ भोग और वीर्य। क्षयोपशम सम्यक्त्व क्षयोपशम चारित्र क्षयोपशम, ज्ञान, मति, श्रुत, अवधि मन:पर्यय कुमति, कुश्रुत, विभगावधि चक्षु अचक्षु अवधि तीन दर्शन दान लाभ भोग उपभोग वीर्यान्तराय और सयमासयम। औदयिक भाव के २१ भेद होते है गति चार कषाये चार, लिग तीन, स्त्री पुरुष नपुंसक लिंग मिथ्यादर्शन एक अज्ञान दर्शनावरण एक असयत १ असिद्धत्व १ छह लेश्याये। पारिणामिक जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व (कर्मोके) मोहकर्म के उपशम होने पर जो भाव होते है उनको औपशमिक भाव कहते है। कर्मो के क्षय होने पर जो भाव होते है उनको क्षायक भाव कहते है। कर्मो के क्षयोपशम होने पर जीव के जो भाव होते है उनको क्षयोपशमिक भाव कहते है। कर्म के उदय में रहने पर जो भाव होते है उनको औदयिक भाव कहते है। जिनमें कर्मो क कारण नही है उन भावों को परिणामिक भाव अथवा स्वाभाविक भाव कहते है।

आगे गुणस्थानो में विभाजन कर कहते है कि मिथ्यात्व में कितने भाव होते है। गुण स्थान मिथ्यात्व में औदयिक भाव के २१ और क्षयोपशम के तीन अज्ञान दो दर्शन पांच लब्धियाँ और तीन पारिणामिक इस प्रकार चौतीस भाव होते है। सासादन गुण स्थान में मिथ्यात्व के विना औदयिक के २०, तीन अज्ञान, दो दर्शन, पाचलब्धि ये क्षयोपशम के तथा पारिणामिक के भव्यत्व और जीवत्व कुल भाव ३२ होते है। मिश्र मे मिथ्यात्व के बिना २० क्षयोपशम के तीन ज्ञान, तीन अज्ञान, दो दर्शन, पांच लब्धियां, भव्यत्व अभव्यत्व कुल ३५ भाव होते है। गुणस्थान असयत में औदयिक के बीस, क्षयोपशमिक के तीन ज्ञान, तीन दर्शन, पाच लब्धिया, एक क्षयोपशमिक, सम्यक्त्व एक औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायक सम्यक्त्व और जीवत्व भव्यत्व कुल भाव मिलकर ३६ भाव होते हैं। देश सयत गुण स्थान तिर्यच व मनुष्यों के ही होता है। मनुष्य गति त्रियंच गति चार, क्रोधादिक कषाये, तीन लिंग, तीन शुभलेश्याये, पीत पद्मशुक्ल असिद्धत्व अज्ञानत्व इस प्रकार औदयिककी चौदह। तीन दर्शन, तीन ज्ञान. पांच लब्धिया सयमासयम, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तीनो सम्यक्त्व भव्यत्व और जीवत्व कुल मिलाकर ३१ भाव होते है। गुणस्थान प्रमत्त मे गति एक, मनुष्य, चार कषाये, तीन लेश्या तीन दर्शन तीनज्ञान, पाच लब्धिया अज्ञान असिद्धत्व तीन लिंग, औदयिक ये तेरह होते है। सराग चारित्र उपशम, क्षयोपशम, क्षायक सम्यक्त्व, जीवत्व, भव्यक्त्व एक मन: पर्यय मिलाने पर

३१भाव होते हैं। गुण स्थान अमप्रत्त में प्रमत्त के समान ही ३१ भाव होते है। अपूर्व करण मे पीत, पद्मलेश्या के बिना क्षयोपशम सम्यक्त्व और सराग चारित्र को घटाने पर सत्ताईस रहे और औपशमिक तथा क्षायक चारित्र मिलाने पर २६ भाव पार्श्व करण और अनिबृत्तकरण मे होते है। सूक्ष्मसापराय मे लोभकषाय एक है वेद तीनो ही नही तव पहले के शेष भाव २३ होते हैं। उपशान्त मोह मे पहले कही गई क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक चरित्र को घटाने पर २१ भाव होते हैं। गुणस्थान क्षीण मोह उपशमचारित्र उपशम सम्यक्त्व घटाने पर तथा क्षायिक सम्यक्त्व क्षायक चारित्र मिलाने पर क्षीण मोह मे २१ भाव होते हैं। सयोग केवली गुणस्थान में गति मनुष्य, लेश्या शुक्ल, असिद्धत्व औदयिक के तीन क्षायक के नो जीवत्व, और भव्यत्व कुल, चौदह भाव होते है सिद्ध भगवान के क्षायक सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन वीर्य और जीवत्व ये पाच भाव सहित सिद्ध भगवान होते है। अयोगी जीवो के लेश्या का अभाव है अत कुल तेरह भाव होते है।

गुणस्थानों में प्रत्येक भाव के भेद

औपशामिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से लेकर सातवे पर्यन्त होते है आठवे से ग्यारहवे तक द्वितीयोपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र। क्षायक भाव क्षायक सम्यक्त्व और क्षायक चारित्र सयोग अयोग केवलियो के क्षायक सम्यक्त्व क्षायक चारित्र क्षायक दर्शन ज्ञान पाचलब्धि सिद्धभगवान के क्षायक चारित्र के बिना चार भाव होते है। क्षयोपशमिक भाव मिथ्याष्टी और सासादन गुणस्थान मे अज्ञान दर्शन लब्धिया और तीन भाव होते है। मिश्रगुण स्थान मे ज्ञान, दर्शन और लब्धिया तीन भाव होते है। असयत सम्यग्दृष्टी गुण स्थान मे ज्ञान, दर्शन क्षयोपशमिक सम्यक्त्व और लब्धि चार भाव होते है देशसयत, प्रमत्त, अप्रमत्त इन तीनों मे ज्ञानदर्शन लब्धिया क्षयोपशम सम्यक्त्व ये चार देशसयत में क्षयोपशमिक चारित्र देश सयत प्रममत्ता प्रमत्तमे सराग चारित्र से पाच पाच भाव होते है।

औदयिक भाव मे मिथ्यात्व, गति, कषाय, लिंग, लेश्या, अज्ञान, असयम, असिद्धत्व इस प्रकारआठ औदयिक भावहै। सासादन मे मिथ्यात्व के बिना सातभाव है। मिश्रगुणस्थान से लेकर ऊपर के गुणस्थानो मे उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्व सराग चारित्र है। अनिवृत्त करण के सवेद भाग तक असयम बिना छह भाव हैं। आगे सूक्ष्म सापराय मे वेद रहित पाच भाव होते है क्षीण मोह मे कषाय बिना चार औदयिकी भाव है सयोगी के अज्ञान बिना तीन औदयिकी भाव होते है अयोगकेवली के लेश्या के बिना दो औदयिकी भावहै। मिथ्यात्व गुणस्थान में और भव्यत्व अभव्यत्व दोपारिणामिक भाव जानना। औपशमिक भाव चौथे गुणस्थान मे उपशम सम्यक्त्व होता है तथा सयतासयत प्रमत्त अप्रमत्त तक अपूर्व करण मे द्वितियोपशम सम्यक्त्व तथा चारित्र होता है वह उपशांत मोह तक होता है। ६३१।

आगे अल्प बहुत्व कहते हैं।

उपशमे प्रविष्ट काले एकं द्वौ त्रिक्षपके संख्यगुणः।
क्षीणमोहोपशांत सयोगायोगेषु तथापि ॥६१३॥
उत्कृष्टोपसमिके चतुः पंचाशत् क्षपके द्विगुणश्च।
वासनाकाले समुदिताः योगे संख्यात गुणितं च ॥६२४॥

उपशम सम्यक्त्व में प्रवेश के समय में एक दो या तीन जीव प्रवेश करते है तथा क्षायक सम्यक्त्व में प्रवेश करते समय एक दो या तीन जीव प्रवेश करते है उत्कृष्टता से चौवन (५४) जीव उपशम सम्यक्त्व को एक साथ एक काल मे प्राप्त हो सकते है इससे अधिक नही क्षायक सम्यक्त्व मे एक समय मे प्रवेश करे तो अधिक से अधिक उपशम वालो की अपेक्षा दूने होते होते है अथवा १०८ होते है। उपशम श्रेणी मे चढ़ने वाले एक काल समय मे एक साथ चढे तो एक दो या तीन जीव चढ़ते है अधिक से अधिक ५४ जीव चढ़ते है। क्षपक श्रेणी मे चढ़ते समय एक या दो या तीन अथवा अधिक से अधिक १०८ जीव एक साथ क्षपक श्रेणी मे चढ़ते है। सयोग केवली अयोग केवली मे प्रवेश के समय मे एक दो या तीन जीव प्रवेश करते है अथवा अधिक से अधिक चढ़े तो १०८ जीव चढ़ सकते है। इससे अधिक जीव नही चढ़ते है। ६३२।६३३।

तत्संख्यातगुणितं सयोगेऽप्रमत्तासख्येय गुणितं।
तत्प्रमत्तसंख्येय संयतासयताः सख्येयाः ॥६१५॥
सासादने च मिश्रेऽसंयत सम्यग्दृष्टेऽसंख्यगुणितम्।
मिथ्यादृष्टेऽनन्तानन्तगुणितं सर्वलोकेषु ॥६१६॥

सयोगी जिनका वासना काल मे अधिक से अधिक ५९८ रह सकते है। और अयोग वाले जीवो से सयोगी जीव संख्यात गुणा है अथवा ८९८५०२ रहते है। अप्रमत्त गुणस्थान वाले सख्यात गुणे है वे इस प्रकार है २९६९९१०३। इतने जीव अप्रमत्त गुणस्थान मे रहा करते है। इससे अधिक सख्या नहीं होती है। प्रमत्त गुणस्थान में रहने वाले जीव अप्रमत्तो से सख्यात गुणे होते है उनकी सख्या इस प्रकार है ५९३९८२०६। सब प्रमत्तो की सख्या विशेष सख्या है इससे अधिक नही होते है। प्रमत्त संयतो से देश सयत सख्यात गुणे है वे १३०००००००० करोड़ जीव होते है। सासादन वाले सयतासयत से सख्यात गुणे होते है उनकी सख्या इस प्रकार है ५२०००००००(बावन करोड़) होते है सासादनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीव सख्यात गुणे होते है १०४०००००००० जीव होते है दस अरब चालीस करोड़ सख्या तीनो लोकों मे रहती है। इनसे भी सम्यग्दृष्टी जीव असख्यात गुणे होते है। सम्यग्दृष्टी जीवों से संयतासयत गुणेमिथ्यादृष्टी होते है। यह क्रम सब कालो को अपेक्षा से है।६३४।६३५।

नारकेषुस्तोकश्च सासादनमिश्रात् विशेषोऽसंयताः।
संख्येय गुणितस्तथाऽसंख्येय गुणितः कुदृष्टिनः ॥६१७॥

सात नरकों में नारकी जीवों मे पहले नरक में सब से थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते है मिश्र सम्यग्दृष्टी सासादन से सख्यात गुणे है सम्यग्दृष्टी जीव मिश्र वालो से असयत सम्याग्दृष्टी जीव संख्यात गुणे सातों नरको मे कहे गये है। प्रथम नरक में क्षायक सम्यग्दृष्टी सबसे थोड़े है उपशम सम्यग्दृष्टी जीव क्षायक सम्यग्दृष्टीयों से सख्यात गुणे अधिक है। उपशम वाले जीव से क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव संख्यात गुणे होते है। इन सबसे असख्यात गुणेमिथ्यादृष्टी जीव होते है।६२६

त्र्यक्षु सर्वात्लोक देशसंयत: सासादन मिश्रौ ।
सुदृष्टिनोऽसंख्येयगुणा मिथ्यादृष्ट्यनंतश्च ॥६१८॥

तिर्यंचगति मे त्रियचो मे सबसे थोडे सयतासयत होते है उससे सासादन वाले सख्यात गुणे है सासादन वालो मे मिश्र विशेष संख्या को लिए हुए है मिश्र वालो से सख्यात गुणे सम्यग्दृष्टी जीव हैं सम्यग्दृष्टी जीवो मे अनतानत गुणे मिथ्यादृष्टी जीव होते है। एकेन्द्रिय नित्यनिगोद और इतर निगोद जो वनस्पति काय के आश्रित व वनस्पति में होते है वे सब अनन्तानन्त जीव होते है चार स्थावर, दो, तीन, चार, सैनी असैंनी पचेन्द्रिय त्रियच सब सख्यातासख्यात ही होतें है।

नारकवद्देवानां मनुष्येषु प्रागुक्तमुपशमकः ।
क्षायकानां प्रमत्ताप्रमत्त संयत संयतासयता संख्येय ॥५१९

देवो के नारकियो के समान सख्या मे अल्पबहुत्व कहा गया है। मनुष्यगति में मनुष्यो की प्रमत्त अप्रमत्त उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी चढने वाले तथा सयोग अयोग की सख्या और अल्प वहुत्व पहले गुण स्थान की चर्चा मे कह आये है। क्योकि ये सब गुण स्थान मनुष्यों मे ही होते हैं अन्य गति वाले जीवो के नही पाये जाते है। विशेष यह है कि उपशम सम्यग्दृष्टी व प्रमत्त अप्रमत्त सयतो से देश सयत वाले जीव विशेष अधिक होते है। अथवा असख्यात गुणे होते है। देश चारित्र वालो से सासादन सम्यक्त्व वाले जीव सख्यात गुणे है सासादन वालो से मिश्रवाले जीव विशेप अधिक होते है। मिश्रवालो से सम्यग्दृष्टि जीव सख्यात गुणे होते है। सम्यदृग्ष्टि जीवो मे सबसे थोड़े उपशम सम्यक्त्व वाले जीव होते है उनसे सख्यात गुणे क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव होते है। क्षायक सम्यग्दृष्टी जीवो से सख्यात गुणे क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव होते है। मिथ्यादृष्टी जीव सबसे सख्यात गुणे जीव होते हैं। इसका कारण यह है इनकी काल की मर्यादा अधिक-अधिक विशेष है। अप्रमत्त के काल से प्रमत्त का काल वहुत विशेप है इसी प्रकार उपशम काल जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त हैपरन्तु क्षायक का तेतीस सागर पूर्वकोटि पृथक्त्व होता है। क्षयोपशम का छयासठ सागर होता है ॥६२०॥

एकेन्द्रियश्च विकलेन्द्रियाऽसज्ञीनां च मिथ्यात्वम् ।
एकैवस्थानेर्न्रासंज्ञीनां न चाल्पबहुत्वम् ॥६२०॥

पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति कायिक एकेन्द्रिय शंख, दोइन्द्रिय, चीटी, खटमल आदि तीन इन्द्रिय, भोरा माखी आदि चौइन्द्रिय तथा देव मनुष्य नारकी व त्रियच जीव पंचेन्द्रिय होते है। पचेन्द्रिय से पहले के सव जीव असैनी ही नियम से होते है पचेन्द्रिय में सैनी असैंनी दो विकल्प होते है। असैनी पंचेन्द्रिय तक के जीवो के एक मिथ्यात्व ही रह जाता है इसलिए उनके अल्प वहुत्व प्राप्त नही होता है। पंचेन्द्रिय जीवों में सव गुणस्थान पाये जाते है इसलिए गुणस्थानो के समान ही अल्प वहुत समझना चाहिए। देश सयम एक ही गुण स्थान है उसमे भी अल्प वहुत्व नही पाया जाता है ॥६२०॥

पचेन्द्रियषुन्यसेत् गुणस्थानोपमस्थावराणाम् च ।
स्तोकाऽग्निकायकेभ्यस्तधिका भूजल वायु भूरुहाः ॥६२१॥

पंचेन्द्रिय जीवों में अल्प बहुत्व गुण स्थान के समान लगा लेना चाहिए । काय की अपेक्षा करके पच स्थावरों में सबसे थोड़े अग्नि कायिक जीव होते है । अग्नि कायक जीवों से विशेष अधिक पृथ्वी कायक असंख्यात गुणे होते है । पृथ्वी कायक जीवों से असख्यात गुणे जल कायक जीव होते है । जल कायक जीवों से असख्यात गुणे वायु कायक जीव होते है वायु कायक जीवो से (असख्यात) अनन्तानन्त गुणे बनस्पति कायक जीव होते है । प्रत्येक वनस्पति से अनन्त गुणे साधारण वनस्पति कायक जीव होते है । ये जीव सब लोक में इस प्रकार भरे हुए है कि जिस प्रकार से तिल में तेल भरा हुआ हो । इन पच स्थावरो व वनस्पति काय साधारण में इतर निगोद से अनन्त गुणे नित्य निगोद वाले जीव होते है । इन पच स्थावरों का गुण स्थान, एक मिथ्यात्व ही होता है ॥६२१॥

त्रशकायक जीवेषु गुणस्थानवदल्प बहुत्वं तथा ।
मनो वाक्काय योगिनाम् कापयोगिना गुणस्थानवत् ॥६२२॥

त्रश कायक जीवों में सब गुण स्थान सामान्य से पाये जाते है इसलिए गुण स्थान के समान ही सारी व्यवस्था अल्प बहुत्व की समझना चाहिए । इसी प्रकार मन वचन का योग वालों की व्यवस्था गुण स्थान के समान ही अल्प बहुत्व जानना चाहिए ॥६२२॥

त्रिवेदेषु सामान्यं क्रोध मान माया लोभ युक्तानाम् ॥
मिथ्यादृष्टेऽनंत गुणितः स्व स्व गुणस्थान वद्भावः ॥६२३ ॥

स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुसक वेद वाले जीवों में कुछ विशेष नही है गुणस्थान के समान ही जानना चाहिए । इन तीनो वेद वाले जीवों में सबसे अधिक नपुसक वेदवाले-मिथ्यादृष्टि अनतानन्त गुणे है । क्योंकि नपुंसक वेद का उदय मिथ्यादृष्टी एकेन्द्रिय से लेकर पचेद्रिय पर्यन्त समूर्छन जन्म वाले व नारकी जीव सब ही में नपुसक वेद पाया जाता है स्त्री वेद पुरुष वेद वाले जीवों से अनंतगुणे कहे गये है स्त्री वेद वाले जीव असख्यात होते हैं उनसे भी सख्यात वे भाग हीन पुरुष वेद वाले जीव होते है । इसका कहने का कारण यह है कि पुरुषों से स्त्री वेद वाली द्रव्य स्त्रीये तिगुनी निरंतर रहती है इससे संख्यात गुणी कही गई है । इनसे भी नपुंसक वेदवाले अनत गुणे होते है । अपने-अपने गुणस्थान के समान जानना चाहिये । सज्वलन लोभ वाले उपशम श्रेणी वाले जीव सबसे थोड़े होते हैं । उससे क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले लोभ कषाय वाले जीव सख्यात गुणे हैं । नव नो कषाय तथा सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ वाले जीव द्वितीयोपशम वाले जीव स्तोक है उससे अधिक क्षपक श्रेणी चढने वाले जीव होते है इनसे संख्यात गुणे अप्रमत्त है अप्रमत्तो से संख्यात गुणे प्रमत्त वाले जीव है । सज्वलन कषाय वालों से सख्यात गुणे प्रत्याख्यान कषाय वाले सयतासयत होते है उससे सख्यात गुणे अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, वाले सम्यग्दृष्टी जीव होते है । अप्रत्याख्यान कषाय की अपेक्षा अनन्तानुबधी कषाय वाले जीव मिथ्यादृष्टी ऐकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय अनंत गुणे है ।६२३

सर्वत: स्तोकोऽयोगिन: संख्येय गुणितोऽधोच:स्थाने ।
मतिश्रुतावधिमन:पर्ययानि सम्यग्दृष्टयान्त: ।। ६२४ ।।

सबसे थोडे केवल ज्ञानी अयोगी होते हैं उससे संख्यात गुणे सयोग केवली भगवान होते हैं उनसे संख्यात गुणे मन.पर्ययज्ञानी होते है क्योंकि प्रमत्त से लेकर क्षीण मोह तक वाले जीव उसके स्वामी होते हैं । मनः पर्यय से सख्यात गुणे अवधि ज्ञानी जीव होते है । तथा अवधि ज्ञान से सख्यात गुणे मति श्रुतज्ञान के धारी जीव होते है क्योकि मति श्रुत ज्ञान के धारी चौथे गुणस्थान से लेकर क्षीणमोह गुणस्थान वाले जीवों के होते है । वे जीव चारो गति वाले होते हैं ।

कुमति श्रुतविभंगावधिर्ज्ञानिनां मिश्रसासादन: ।
संख्यात हीनाधिकान्यनं दृष्टिना: सर्वतो स्तोक: ।। ६२५ ।।

कुमति कुश्रुत विभगावधि वाले सब थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं उनसे बहुत अधिक मिश्र गुणस्थान वाले जीव होते है । उससे असख्यात गुणे विभगावधिवाले होते है । विभंगावधिवालो की अपेक्षा कुमति कुश्रुति वाले अनत गुणे जीव होते हैं ।

विशेष—मतिश्रुतऔर अवधि ज्ञान के धारी उपशम श्रेणी चढ़ने वाले सब से स्तोक (थोड़े) है । उनसे सख्यात गुणे क्षपक श्रेणी से चढने वालो की सख्या होती है । उनसे अप्रमत्त गुणे स्थान वाले जीव सख्यात गुणे अधिक होते है । अप्रमत्तो से सख्यात गुणे (अथवा दुगुने प्रमत्त गुणस्थान वाले जीव होते है) प्रमत्त सयतो से सयतासयत सख्यात गुणे है । देश सयतो से असयत सम्यग्दृष्टी सख्यात गुणे होते हैं । मनः पर्यय ज्ञान मे सबसे स्तोक उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव है उससे अधिक क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव होते है उपशम और क्षपको से सख्यात गुणे अप्रमत्तो से सख्यात गुणे प्रमत्त सयत होते है । केवल ज्ञानी सबसे थोड़े अयोगी जीव है उससे संख्यात गुणे सयोग केवल ज्ञानी जीव होते है । ६२५।।

सामायकक्षेदोपस्थापनयोरुपशम का: स्तोका:
क्षायका द्विगुणा बहु: विशेषोऽप्रमत्ताप्रमत्ता: ।। ६२६

सामायिक और क्षेदोपस्थापना सयत सब से थोड़े उपशम श्रेणी चढने वाले होते है उनसे अधिक क्षपक श्रेणी चढने वाले जीव होते है । क्षपक श्रेणी चढने वालो की अपेक्षा से अप्रमत्त संयत गुणे अधिक होते हैं उनसे प्रमत्त सख्यात गुणे जीव होते है ।६२६।।

परिहारविशुद्धौ च प्रमत्ताप्रमत्ता: सख्येया: लघु
सूक्ष्मसांपराये चोपशमका: स्तोका क्षपकाधिका: ।।६२६

परिहार विशुद्धि में सब से थोड़े अप्रमत्त जीव होते है उनसे सख्यात गुणे प्रमत्त जीव होते है । सूक्ष्म सापराय चारित्र में सबसे स्तोक श्रेणी चढने वाले सम्यग्दृष्टी जीव है तथा उनसे सख्यात गुणे अधिक क्षपक श्रेणी चढने वाले जीव होते है । यथाख्यात सयत मे सब से स्तोक उपशम श्रेणी चढने वाले उपशात मोह वाले जीव थोडे है । उनसे सख्यात गुणे अयोगी जिन है उनसे सख्यात गुणे क्षीण मोह जीव होते है क्षीण मोह से सख्यात गुणे सयोगी जिन होते हैं क्योकि सयोगी जिन का काल बहुत है । ६६।।२

यथाख्यातोपशमकाः पूर्ववद्धक्षपका केवलिनः बहुवः ॥
संयतासंयतैवं विशेषाधिकाः संख्येयास्तथा ॥६२८॥

असयत जीवों मे सब से थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते है उनसे संख्यात गुणे मिश्र गुण स्थान वाले जीव होते है। मिश्र वालों से असयत सम्यग्दृष्टी जीव संख्यात गुणे हैं तथा सबसे अधिक अनतानत जीव मिथ्यात्व गुण स्थान वाले है। इस प्रकार सब काला में व्यवस्था जानना चाहिये। ६२८ ॥

स्तोकाश्च सासादने बहुमिश्रा सयत सम्यग्दृष्टीः।
मिथ्यादृष्टिनोऽनंता समुदिता सर्वकालेषुच ॥६२९॥

चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन वाले जीवों के अल्पबहुत्व गुणस्थानो के समान जानना चाहिये। अवधि दर्शन और केवल दर्शन का अल्पबहुत्व अवधिज्ञान और केवलज्ञान की तरह जानना चाहिये। विशेषयह है कि चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन कुमति कुश्रुत विभंगावधि वाले मिथ्यादृष्टी तथा मति श्रुतज्ञान के धारी सम्यग्दृष्टी असंयत से लेकर क्षीण मोह वाले जीवों तक के होते हैं चक्षु अचक्षु दर्शन वाले जीव उपशम श्रेणी चढ़ने वाले थोड़े है उससे अधिक चारों क्षपक श्रेणी चढने वाले है उन चारो से अप्रमत्त गुणस्थान वाले संख्यात गुणे अधिक है। तथा प्रमत्त उनसे सख्यात गुणे है प्रमत्तों से देश सयत सख्यात गुणे होते है। तथा देश सयतों से सख्यात गुणे सम्यग्दृष्टी असयत जीव होते है इसी प्रकार अवधि दर्शन वालों में अल्प बहुत्व समझना चाहिये ।६२९

चक्ष्वचक्ष्ववधि केवल दर्शनानिमन काय योगिनश्च।
अवधिः केवल ज्ञानैव यथायोग्यं तज्ज्ञातव्यः ॥३३०॥

चक्षु अचक्षु दर्शन वाले का अल्प बहुत्व मन और काययोगियों के समान जानना चाहिये। अवधि दर्शन का अल्पबहुत्व अवधि ज्ञान के समान जानना चाहिये केवल दर्शन में अल्प बहुत्व केवल ज्ञान के समान जानना चाहिये कोई विशेष नही हैं।

कृष्णत्रयोऽसयताः तेज पद्मेऽप्रमत्ताप्रमत्तयोः।
सुक्लायामुपशमकाः स्तोकाः तद्विशेषा क्षपकाः ।६३१॥

कृष्ण नीलकापोत ये अशुभ लेश्याये भव्य और अभव्य सब जोवो के रहती है परन्तु जहा तक मिथ्या दर्शन मोह का सम्बन्ध है वहा तक इनका वल बहुत है। इन तीनों लेश्याओ मे सब से थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते है। सासादन वालो से मिश्र सम्यग्दृष्टी सख्यात गुणे है। मिश्र वालों से संख्यात गुणें सम्यग्दृष्टी जीव होते है। सम्यग्दृष्टी जीवो से अनतानंतगुणे मिथ्यादृष्टी जीव होते है। पीत और पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टो से लेकर प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान तक जीवों के पायी जाती है। उन दोनों लेश्याओ में सबसे थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते है। उनसे संख्यात गुणे मिश्रपरिणाम वाले है। उनसे सख्यात गुणे अप्रमत्त सयत गुण स्थान वाले होते है। उनसे संख्यात गुणे प्रमत्त संयत जीव होते है। प्रमत्तो से सयता सयत गुण स्थान वाले सख्यात गुणे होते है। संयतासयतो से असंख्यात गुणें असंयत सम्यग्दृष्टी जीव होते है। शुक्ल लेश्या में सबसे थोड़े जीव उपशम श्रेणी चढ़ने वाले होते हैं। उनसे अधिक संख्यात गुणें क्षपक श्रेणी

चढने वाले जीव होते है। उपशम सम्यक्त्व वाले जीव सबसे थोड़े हैं। क्षायक सम्यक्त्व वाले संख्यात गुणे है। उनसे संख्यात गुणे सयोग केवली है। उनसे भी सख्यात गुणे सासादन सम्यग्दृष्ठी जीव शुक्ल लेश्या मे होते हैं। सासादन वालो से सख्यात गुणे मिश्र गुण स्थान वाले जीव होते है। मिश्र वालो से संख्यात गुणे अप्रमत्त गुण स्थान वाले जीव होते हैं। अप्रमत्तों से सख्यात गुणे प्रमत्त होते है। प्रमत्तो से असख्यात गुणे देश सयत जीव है। देश सयतो से भी सख्यात गुणे मिथ्यादृष्टी जोव हैं। मिथ्यादृष्टीयो से असख्यात गुणे सम्यग्दृष्टी जीव होते है। लेश्यों की अपेक्षा अल्प वहुत कहा गया हैं।

अल्प बहुत्व नास्ति भव्यानामभव्यानां सामान्यः।
सदृष्टिषु क्षायके च लघु चत्वारोपशमकाश्च ॥६३२॥

अभव्य जीवो की अपेक्षा विचार करने पर कोई अल्प बहुत्व प्राप्त नही होता है। भव्य भी दो प्रकार के होते है एक निकट भव्य दूसरा दूर भव्य। दूर भव्य के कोई अल्प बहुत नहीहै परन्तु निकट भव्यो के अल्प वहुत गुण स्थानो के समान जानना चाहिये। इति भव्य मार्गणा।

सम्यक्त्व मार्गणा क्षायिक सम्यग्दृष्टियो में सब से थोड़े उपशम श्रेणी चढने वाले जीव होते है चारो उपशमक क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टी जीव उनसे सख्यात गुणे हैं चारों क्षपक श्रेणी चढ़ने वालों की अपेक्षा अयोग केवली जीव संख्यात गुणे होते है। उनसे सख्यात गुणे सयोग केवलो जीव होते हैं। सयोग केवलियो से संख्यात गुणे अप्रमत्त जीव होते है उनसे अधि प्रमत्त गुण वाले सख्यात गुणे हैं। प्रमत्तो से संख्यात गुणे देश संयत गुणस्थान वाले जीव होते है। देश सयतो से क्षायक सम्यग्दृष्टी जीव सख्यात गुणे होते हैं। यह क्षायक सम्यक्त्व और श्रेणी का चढना प्रमत्तादि आयोगी पर्यन्त गुण स्थान ये सब एक मनुष्य भव मे ही जीवो को प्राप्त होते है। यह कथन क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा से किया गया। आगे क्षयोपशम की अपेक्षा कथन करते है।६३२॥

इतरेषामप्रमत्ताश्च देश सयता सख्यातोगुणिता,।
सम्यग्दृष्टी स ख्येया औपशमिके चत्वारौपशमिका ॥६३३॥

उपशम सम्यक्त्व वाले व क्षयोपशमिक सम्यक्त्व वाले जीव अप्रमत्त गुण स्थान वाले सबसे थोड़े है। उनसे सख्यात गुणे प्रमत्त सयत होते है। प्रमत्तो से सख्यात गुणे देश सयमी जीव होते है। देश सयतों से संख्यात गुणे क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं। उपशम सम्यक्त्व द्वितीय मे उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव सबसे थोड़े हैं उनसे अधिक अप्रमत्त व प्रमत्त के देश सयत जीव होते है। उन सबसे अधिक असंख्यात गुणे उपशम सम्यक्त्व वाले जीव होतेहैं।

अनाहारके स्तोकोऽयोगे सयोगे संख्येयगुणास्तु।
सख्येय सासादने सम्यक्त्वे मिथ्यात्वेऽ संख्यः ॥६३४॥

आहारक जीवों के अल्प वहुत्व गुण स्थान के समान जानना चाहिये। अनाहारक अवस्था मे सबसे थोड़े अयोग केवली जीव होते हैं उनसे सख्यात गुणे सयोग केवली जीव हैं। सयोग केवलीयो से संख्यात गुणे सासादन सम्यग्दृष्टी जीव है सासादन वालों से

असंख्यात गुणे सम्यग्दृष्टी जीव है सम्यग्दृष्टी जीवो से अनंतानत गुणे मिथ्यादृष्टी जीव होते हैं। सासादन से असख्यात गुणे उपशम सम्यग्यदृष्टी जीव है उपशम सम्यग्यदृष्टियों से असख्यात गुणे क्षायिक सम्यग्यदृष्टी जीव है क्षायिक सम्यदृष्टी जीवो से असंख्यात गुणे क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव अनाहारक होते है तीनों सम्यग्दृष्टी जीवों से मिथ्यादृष्टी अनाहारक जीव असख्यात और अनतानत अधिक जीव है विग्रह गति में अनाहारक होते है।

विशेष--अयोग केवली तो शरीर का त्याग कर अनाहारक विशेष अवस्था को प्राप्त हुए है तथा सिद्ध अनत जीव अनाहारक ही होते है। सयोग केवली गुण स्थान वाले क्वचित् किन्ही के स्वभाव से समुद्घात होता है उस समय में अनाहारक होते है। अनाहारक जीवो के ससार अवस्था में चार गुणस्थानो की प्राप्ति होती है इसका कारण यह है कि मरण मिथ्यात्व सासादन तथा असंयत सम्यग्दष्टी व सयोग केवली इन चारों में ही होता है। यहाँ विशेष यह जानना चाहिये कि बिना विग्रह गति के भी अनाहारक जीव होते है। संसार अवस्था में जीव अपने पूर्व शरीर को छोड़ कर नवीन शरीर ग्रहण करने को जब गमन करते है तब एक मोड़ व दो मोड़ या तीन मोड़ लेते है वे जीव क्रम से एक समय दो समय या तीन समय अनाहारक होते है। मरण नियम से मिथ्यात्व सासादन असयत सम्यग्दष्टी तीन गुण स्थानों में ही होता है इन में ही जीव अनाहारक नियम से होते है। इति अल्प बहुत्व।

मार्गणा गुणस्थानेषु सम्यक्त्वस्य सत्संख्य क्षेत्रं च।
काल प्रमाण भाव स्पर्शान्तिाल्प बहुत्व च ।।६३५।।

चौदह मार्गणाओं में तथा चौदह गुणस्थानों में सम्यक्त्व सत्व तीनोलोक के जीव कौन-कौन से सम्यक्त्व की कहा-कहां पर सत्ता या मौजूदगीरी होती है यह कहा। सम्यग्दृष्टी कितने जीव होते है वे कहाँ किस गति में होते है ऐसी सख्या का कथन किया। सम्यग्दृष्टी जीवो का क्षेत्र कितना है। कहां कौन से सम्यक्त्व की कितनी स्थिति होती है। सम्यग्दृष्टी जीव या अनेक जीव कितने क्षेत्र को स्पर्श करते है। किस सम्यक्त्व के पीछे वह सम्यक्त्व पुनः कितने काल के पीछे उत्पन्न होवेगा यह अन्तर बता दिया, कि सम्यक्त्व वाले के कौन से भाव किस सम्यक्त्व के होनें पर होते है यह भी स्पष्ट कर दिया गया है। कौन कौन से सम्यक्त्व वाले जीव हीन हैं कौन से सम्यक्त्व वाले जीव किस गति में हीन है या अधिक है यह सब कथन कर दिया गया है ।।६३५।।

आगे कोई भव्य प्रश्न करता है कि सम्यक्त्व उच्चकुल वाले जीवो के होता है या नीच कुल वालों के होता है ? प्रश्न किया है उसका उत्तर ।।

नास्त्युत्तम कुलस्यैव नास्ति दुस्कुलस्य धर्म सम्यक्त्वम्
यत्सद्धर्मश्रद्धानमिति जिनवरमुपदिष्ट ऐव ।।६३६।।

यह सम्यक्त्व धर्म है सो किसी उच्चकुल क्षत्री ब्राह्मण वैश्य से सम्बन्ध नही रखता है न यह किसी चमार नाई धोबी चण्डाल भंगी इत्यादि नीच कुलो से ही सम्बन्ध रखता है। देव गति व नरक गति व मनुष्य गति व त्रियंच गति से सम्बन्ध नहीं

रखता है यह सम्यक्त्व तो सच्चे धर्म और धर्म के प्रकाश करने वाले देव शास्त्र गुरुओ से जो रुचि रूप श्रद्धान होता है उसका नाम ही सम्यग्दर्शन धर्म है वह चारो गति वाले भव्य जीवो के होता है। निश्चय नय आत्म विश्वास रूप श्रद्धान का होना सो ही सम्यग्दर्शन है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है।

सम्यक्त्व किसको होता है।

कस्य धर्मं सम्यक्त्वं कस्यनास्ति धर्मं सम्यक्त्वैव ।
समीचीन भव्यस्य धर्मः सम्यक्त्वमुपदिष्टम् ॥६३७॥

यह सम्यक्त्व धर्म कि स प्राणिका है ? किस प्राणी का सम्यक्त्व धर्म नही है। ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर देते है। कि यह सम्यक्त्व उनको ही प्राप्त होता है जो जीव समीचीन निकट भव्य है। इनसे विपरीत दूरानुदूर भव्य व अभव्य जीवो को अनंत काल बीत जाने पर भी उत्पन्न नही हो सकता है। यह सम्यक्त्व रत्न उनको ही प्राप्त होता है कि जिन का ससार कम-से-कम अत कोटाकोटी सागर शेष भ्रमण करना शेष रह गया है अथवा जिनका अर्धपुद्गला परावर्तन काल बाकी रह गया है। इससे अधिक काल जिनका ससार पर्यटन रह गया है उनको सम्यक्त्व धर्म प्राप्त नही हो सकता है। समीचीन भव्य कहने से यह बात सूचित की गई है कि समीचीन धर्म और धर्म के धारको मे भक्ति व भावना का होना व उनके कहे हुए यथार्थ तत्त्वो में रुचि का होना [ऐसा समीचीन का अर्थ होता है। सम्यक्त्व के होते ही ससार मे भ्रमण शान्त हो जाता है। यह देव नारकी त्रियच मनुष्यो के उत्पन्न होता है। यह सेनी पर्याप्तक साकार निराकार उपयोगवाले जीवो के ही होता है अन्य के नही ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है सम्यक्त्व क्षत्री ब्राह्मण व वैश्य शूद्रो से सम्बन्ध नही रखता है। यह सम्यक्त्व राजा या भिखारी से सम्बन्ध नही रखता है यह तो परमागम में कहे गये पदार्थो के श्रद्धान रूप है ऐसा जिन प्रवचन है ॥६३७॥

मिथ्यात्वं वा ऽज्ञानं तिमिरं हन्ति क्षायिक सर्वमगलंलाति
प्रधानं त्रिलोकेषु यत्सम्यक्त्व केतुरिवभाति ॥ ६३८ ॥

(सम्यक्त्व) क्षायिक व क्षयोपशयिक सम्यक्त्व है वह जो मिथ्यात्व और अज्ञान अधकार है उस अंधकार को नाश करता है। तथा पाप मलो को नाश करना ही इनका फल है। क्षायक सम्यक्त्व होने पर अमगल रूप जो दर्शन मोह की मिथ्यात्व तथा अज्ञान मति श्रुत व विभंगावधिज्ञान थे उन सब को नाशकर मगल लाता है मलो को गला देता है। अथवा मिथ्यात्व असयत रूप जो पाप मल थे उन पाप मलो को नाशकर पुण्य रूप मगल (देता है) करता है क्षायक सम्यक्त्व तीनो लोको मे श्रेष्ठ है और इस प्रकार शोभा को पाता है कि जिस प्रकार मन्दिर के शिखर के ऊपर ध्वजा शोभती है। अथवा ध्वजा से मन्दिर की शोभा बढ़ती है इसी प्रकार सम्यक्त्व के होने पर रत्नत्रय की शोभा बढ़ती है। यहां पर श्लोक मे वाशब्द दिया है उससे उपशम और क्षयोपशम दोनो सम्यक्त्वो को ग्रहण कर लेना चाहिए। इसलिए सर्व मगलो में सम्यक्त्व मगल ही प्रधान है ॥६३८॥

वहिरन्तर परमात्मा भेदतः भवेदात्मा त्रिविधश्च।
बहिरात्माः हेयं खलु अन्तर परमात्मोपादेयः ॥६३९॥

आत्मा तीन प्रकार का है प्रथम बहिरात्मा दूसरा अन्तरात्मा तीसरा परमात्मा के भेद वाला है । जिनमें से प्रथम बहिरात्मा त्यागने योग्य है अन्तरात्मा और परमात्मा उपादेय है । जो जीव ससार और शरीर तथा पचेन्द्रिय के विषय भोगो में नित्य रत है तथा परवस्तुये चेतन तथा अचेतन और चेतनाचेतनात्मिक वस्तुओ को अपनी मानते है व परवस्तु की होने वाली पर्यायों को ही अपनी स्वद्रव्य मान उनमें ममत्व बुद्धि रखते है वे सब बहिरात्मा है । मेरा घर है मेरी गाय भैंस है मेरा बड़ा ही प्रभाव है। शरीर के विनाश होने पर यह मानता है कि मेरा मरण हो गया, शरीर के उत्पन्न होने पर मेरा जन्म हो गया । व मैं तो बड़ा ही गरीब हूं, मै तो बड़ा ही राजा हू, मै तो बलवान हूं, मैं तो निर्बल हू, मै भिखारी हू, मै दानी हू, इस प्रकार जो द्रव्य पर की पर्यायो के विनाश उत्पत्ति मे अपनी क्रिया करता रहता है वह बहिरात्मा है । मिथ्यात्व सासादन और मिश्र तीनो गुणस्थान बहिरात्मा के ही होते है क्योकि इन गुण स्थानों में मिथ्यात्व सम्यर्गमिथ्यात्व और सम्यग्प्रकृति व अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान माया लोभ इनका उदय पाया जाता है। जिनके इन प्रकृतियो का उदय रहता है उनके यथार्थ तत्वो की रुचि रूप श्रद्धान नही होता है अथवा आत्मा में रूचि रूप श्रद्धान नही होता है इसलिए बहिरात्मा है । जो बाह्य वस्तुओ को ही अपना आत्मा मानते है वे ही बहिरात्मा है । चौथे असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर बाहरवे क्षीण मोह तक सब जीव अन्तरात्मा ही होते है । चौथे गुण स्थान वाले सम्यग्दृष्टि जीव जघन्य अन्तरात्मा होते है । तथा अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ रूप कषायों का जब उपशम या क्षयोपशम क्षय हो जाने पर विशेष परिणामो में विशुद्धता आती है तब आत्मानुभूति रूप देश सयत प्राप्त होता है वहा पर पाप भीरु होता है । तब त्रशकाय वध रूप हिंसा का त्यागी होता है तब आत्मानुभूति रूप स्व-संवेदन ज्ञान होता है और ससार भ्रमण के कारण पच पापो का त्याग करता है व पंचेन्द्रिय के भोगो का परिमाण करता है तब मध्यम अन्तर आत्मा होता है । जब प्रत्याख्यान कषाय का क्षयोपशम या उपशम होता है या क्षय होता है तब सकल चारित्र होता है उसमें प्रमत्त अप्रमत्त अपूर्व करण अनिवृत्तकरण सूक्ष्म सांपराय ये सब गुण स्थान संज्वलन चारो कषायो के उदय मे होते है यहाँ तक के सब जीव मध्यम अन्तरात्मा होते है । उपशातमोह क्षीण मोह इन दो गुण स्थान वाले जीव उत्तम अन्तरात्मा होते है । इनमें पहले-पहले गुण स्थानो की अपेक्षा परिणामो मे विशुद्धता अधिक-अधिक बढ़ती जाती है । बीतरागता बढ़ती जाती है । आगे-आगे प्रमत्त गुणस्थान वाले मुनियो से अप्रमत्त वाले विशेष विशुद्धि को लिए हुए होते है । अपूर्वकरण में सज्वलन कषायो की मन्दता बढ़ जाती है और सातिशय होकर श्रेणीयो में चढ़ते है। कोई जीव उपशम श्रेणी से कोई जीव क्षपक श्रेणी से, क्षपक श्रेणी वाले तो आगे नौवे गुण स्थान में जाकर बहुत सी प्रकृतियों को क्षय करके अत्यन्त विशुद्धता को प्राप्त होते है । परन्तु उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव उन प्रकृतियों को दबाते जाते है । परन्तु दोनो श्रेणी चढ़ने वालों के परिणामो में निर्मलता एक समान ही होती है। विशेष वीतरागता बढ़ती जाती है और स्व-सवेदन ज्ञान भी उज्ज्वल होता जाता है। तथा सज्वलन क्रोध, मान, माया, तथा नवनो कषाये क्षय होती है या उपशम होती है तब उनके परिणाम अत्यन्त उज्ज्वल होते है और आत्मानुभूति

अपने में आपको स्वय ही अनुभव में प्रत्यक्ष रूप से अनुभव में आने लगती है। क्षायिक सम्यग्दृष्टी क्षपकश्रेणीउपशम श्रेणी में चढते हुए भावो में निर्मलता वीतरागता समान ही होती है। दशवे गुणस्थान मे जो सूक्ष्म लोभ शेष रह गया था उसको दशवे गुणस्थान के अन्त मे क्षय करने वाला जीव योगी वीतराग क्षद्मस्थ क्षीणमोह गुणस्थान को प्राप्त होता है उपशम श्रेणी से चढ़ने वाले उपशान्त मोह गुणस्थान को प्राप्त होता है तब उत्तम अन्तरात्मा दोनों गुणस्थान वाले जीव होते हैं। जब वीतराग क्षद्मस्थ होते हुए सयम तप में लीन श्रमण सुख दुःख मे समभाव का धारक शुद्धोपयोगी होते हैं तब अपने घातिया कर्म जो दर्शनावरण ज्ञानावरण और तीन आयु तथा दान लाभ भोग उपभोग वीर्यान्तराय कर्मो का नाश करके सयोग केवली भगवान बन जाते है तब उनको सकल परमात्मा कहते है वे जीवन युक्त होते है। उनके अब ससार के वृद्धि के हेतुओ का अभाव हो गया है। जब आठो ज्ञानवराणादि कर्मो का नाश करके तथा पंच शरीरो को नाश करके वे सिद्ध भगवान बन जाते है वे निकल परमात्मा हैं वे ही उपादेय है। इसलिए प्रथम मे मिथ्यात्व भावो को हमें छोडने का उपदेश दिया गया है और अन्तरात्मा बनने का उपदेश दिया गया है अन्तरात्मा बनकर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए ॥६३९॥

यन्मन्यन्ते नित्यं परद्रव्याणि स्वद्रव्य स्वामित्वम् ॥
शरीरादिष्वनुरक्तो भवति तदात्माकुदृष्टिः ॥ ६४० ॥

जो अज्ञानी मोही पर द्रव्यों को अपनी मानता है वे परद्रव्ये चेतन और अचेतन व चेतनाचेतन रूप से तीन प्रकार की होती है। चेतन तो स्त्री पुत्र माता पिता भाई बहु नाती पोता बेटी धेवता मामा साला व गाय भैंष हाथी घोड़ा बैल गाय बकरी इत्यादि चेतन असख्यात भेद वाले है उनको अपनी मानते हैं। तथा अचेतन रुपया चादी ताबा लोहा सोना हीरा पन्ना प्रवाल शख मोती मकान हवेली कोट इत्यादि अचेतन असख्यात प्रकार के है उनको अपनी मानता है। चेतनाचेतन ग्राम नगर खेबट कर्वट राज्यपुर इत्यादि चेतना चेतन इन सब को अपनी मानता है और चिन्तवन इनका ही करता है इनके लिए ही राग मोह करता है अपने को उनका स्वामी मानता है। तथा उन चेतन को अपना दाशया सेवक मानता है। यह मानता है कि इस राज्य की स्थापना मैंने ही की है यह मेरा ही राज्य है इस पुर को मैने ही बसाया, मकान बनवाये हैं मै ही इनका स्वामी हूं। यह मकान व किला कोट कूप वापी सरोवर तो मैंने ही निर्माण करवाये है तथा मन्दिर बागीचे उद्यान मठ विद्यालय मैंने बनवाये हैं ये मेरी ही है मैं इन सब का मालिक हूँ। ये आयुध फर्सा कुल्हाड़ी तलवार कुदाली बन्दूक धनुष वाण तोमर त्रसूल कुल्हाड़ शाकल हल मूसल इत्यादि मैंने ही बनवाए है मैं इनका स्वामी हू मैं नही रक्षा करूंगा तो कौन इनकी रक्षा करेगा। मैं ही एक ऐसा हू कि इनकी व्यवस्था बना रहा हू बिना मेरे कौन इनकी व रक्षा सम्हाल कर सकता है। मैं इन स्त्री पुत्र मित्रादि भव्य सेवक इत्यादि का मैं ही पालन करता हू मेरे बिना ये कोई भी जीवित नही रह सकते है। ये कभी यह विचारते है कि ये मेरे मालिक है यही मेरे उपकारी है यदि ये न होते तो मेरा मरण जरूर ही हो जाता। इनका ही यह सब वैभव है कि जिसे मैं देख रहा हूँ ये ही बड़े महान हैं इनके समान और कोई नही है।

शरीर और शरीर से सम्बंध रखने वाली वस्तुये है इनमें विशेष राग करता है। उनकी प्राप्ति में अपने को सुख की छटा दिखाता है, कि मैं बड़ा ही सुखी हूं उनके वियोग में अपने को अनुभव करता है कि मैं बडा दुःखी हूँ मेरे समान कोई दुःखी नही है। इत्यादि प्रकार से पर वस्तुओं में राग कर अपनी मानते है। तथा राग के कारण ही दुःखी होते है पुनः उनकी प्राप्ति करने की इच्छा करते हैं उनके लिए इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग वेदना अनुभव और निदान बध कर ससार में दीर्घ काल तक भ्रमण करते है ऐसे अनन्त संसारी बहिरात्मा जीव है। वह द्रव्यों को होने वाली पर्यायों को ही द्रव्य मानते है ऐसा मिथ्यादृष्टि बहिरातमाओं का लक्षण कहा है। ६४०

यद्धन धान्येऽनुबक्ताः कामिनीनांवि षयाशक्ता सदा।
मोहमूढित चिन्तेन भ्रमति संसार कान्तारे ॥६४१॥

जो अज्ञानी मोही प्राणी जगत का पालन करने में लगा रहता है और विचार करता है कि मै जगत का पालन कर रहा हूं। यह बात कहा तक सत्य है यह हम नही जान पाते ? तथा कोई मोहान्ध प्राणी अपना धन गौरव मान कर गाय बैल और घोड़ा हाथी, भैस, भैसा, इत्यादि का पालन पोषण करता है और उनमें ही आशक्त रहता हुआ मरण को प्राप्त होता है। कोई ज्वार, बाजरा, गेहू, मूग, उड़द, मटर इत्यादि धान्यो को उपार्जन करने मे तथा उनके संरक्षण करने में अपने अमूल्य समय को व्यतीत कर देता है। तथा स्त्रीयो के सहवास व आलिंगन करने में अपने को सुखी मान रत हो रहा है नित्य जिसका ऐसा मोही उन विषयो की सामिग्री जुटाने में दिनों दिन चिंतित रहता है। कभी उनके पोषण करने के लिये हिसा करता है, झूठ बोलता है, तथा चोरी भी करता है मायाचारी छल कर पर द्रव्य व प्राणों का हरण भी करता है। क्षण में विनाश होने वाली स्त्री पुत्र दासी दास परिग्रह का संचय करने में लवलीन रह कर उनसे सुख की इच्छा करता। तथा उस सब परिग्रह को प्राप्त करने के लिए दीन हीन अचार विचार वाले नीच पुरुषों की सेवा चाकरी करता है और जूठा भोजन भी खाता है, और परिग्रह को संचय करता है। कुछ यदि भाग्य का उदय से परिग्रह मिल गया तब उसके संरक्षण का प्रयत्न निरन्तर करता रहता है सोते समय स्वपन में भी वही दिखाई देता है। कभी नवयोवन सुन्दर कामनियों के रूप रंग को देखकर कामाशक्त होता है तथा स्त्रीयो के हाव भाव शरीर और शरीर की कान्ति देखकर विचार करता है कि ऐसी ही स्त्री मुझे मिले तब तो मेरा जीवन का सार है। तब ही मै अपने जीवन को सार मानूंगा। जब कही मिल जाय तो आलिंगन व विषयों का अनुभव कर अपने को सुखी मानता है कहता है कि बस यही सुख सबसे श्रेष्ठ है। यह मोही प्राणी सुखाभाष को ही सुख मानता है। जब स्त्री के साथ सयोग करता है तब अपना वीर्य पतन होने तक ही यह सुख प्रतीत होता है कि स्त्री भोग में बड़ा सुख है परन्तु वीर्य के पतन होने के पीछे तो दुर्दशा ही होती है फिर वह सुख कहां गया ? सो कहो। स्त्रियों के विषयों में आशक्त मनुष्य अपना तन धन ऐश्वर्य कीर्ति यश यौवन को बरबाद कर डालता है कामी पुरुष को भोजन पान भी अच्छा नहीं लगता है वह और की तो बात ही क्या है वह अपने जीवन को भी नष्ट कर देता है। ऐसा

मोही विषयाशक्त जीव ससार रूपी महा भयानक जंगल में भ्रमण कर जन्म मरण के दुःखों को निरन्तर प्राप्त होता है आचार्य कहते है कि जिनके मनको मोह रूपी मूढता ने मढ लिया है इसी कारण उसको विषय भोग अच्छे लगते हैं अन्य भोग उपभोग व आत्म वैभव से विमुख ही निरतर रहता है ।।६४१।।

नृपालोऽहं सूढो ममशरणमाजीवनं सुखं,
मर्यादाषोयूय किमपि न दुःखं निरगुणाः ।।
धनं धान्यं दासी सुतपरिजनाः स्वविमुखा।
गजागोवस्त्रं यासि न मरण काले च वसुधा. ।।६४२।

संसारी बहिरात्मा अज्ञानी जीव अपने को सबका स्वामी मानता हुआ विचार करता है कि ये सब जन मेरी शरण में आये हुए है। मैं अब इनको जीवन पर्यन्त निरतर सुख दूगा और इनके दुःखों को नाश कर डालूगा। तथा विचार करता है कि मेरे समान ससार मे और कौन है कि जिसके पास इतना वैभव राज्य सपदा हाथी, घोडे, सेना, और गाय भैष हो। मैं ही सब राजाओ में प्रधान हूं मेरे समान ससार में कोई धनाड्य नही है। मेरी जैसी सुन्दर गुणवान आज्ञाकारिणी शीलवन्त व रूपवान धर्मात्मा कोई स्त्री नही। मेरे मंत्री पुरोहित सेनापति इत्यादि व राजा लोग मेरी सेवा में व आज्ञा पालन करने को आगे खड़े रहते है। इत्यादि राजमद में मत्त पुरुप की तरह मूछों पर ताव देता हुआ बैठा रहता है। सबको कहता है कि तुम सब मेरे सेवक हो मैं तुम्हारा स्वामी हूं मेरा धन है धान्य है मेरी यह रानी व दासी सेविका है मेरा पुत्र व सेवक जन है मेरे परिवार के लोग हैं मुझे यहा रंच मात्र भी दु.ख नही है इत्यादि कल्पना प्रथम मे करता है जब पाप कर्म का उदय काल प्राप्त होता है तब वे ही सब अपने से विमुख हो जाते है। तथा पुत्र मारने को सम्मुख आता है सेवक है वे भी आज्ञा को नही मानते स्त्री भी अब सेवा नही करती है, इतने सव होने पर भी मोही अज्ञानी उनसे राग को नही छोड़ता है। अब मरण काल नजदीक आ पहुंचा तब रोता है कि हाय मेरी पृथ्वी राजधनी व राज्य वैभव सब रह चला, हाय मेरे हाथो घोडा गाय खच्चर इत्यादि व कोट कुर्ता पाजामा धोती दुपट्टा मुकुट करोधनी बाजूबन्द ककण इत्यादि सब मेरे साथ नही जावेगे इत्यादि प्रकार से रुदन कर प्राण छोड़ देता हैं पर वस्तु मे अपनापन मान उनके प्रति आर्त ध्यान व रोद्रध्यान कर मरण करता है जिससे संसार के चारो गतियो में दुःख भोगता है ऐसा बहिरात्मा है।

विशेप—अज्ञान मोही प्राणी आप सबका स्वामी बन कर बैठा और कहता है कि तुम सब मेरी आज्ञा का पालन करो तुम सब मेरे सेवक हो। मैं ही तुमको सुख देता हू मैं ही तुम्हारी सब प्रकार से रक्षा करता हूं। जिन पुत्रादि को व अश्वादि बाहनो को व पुत्रादि को अपना मानता है वे ही पुत्र मित्र भाई आदि जिसको मारने को सन्मुख होते है। आचार्य कहते है कि अरे भाई यह राज्य वैभव या पृथ्वी हाथो घोड़ गाय कपड़ गहने क्या मरण समय में तेरे साथ जायगें जिन मे तू राग कर रहा है। परन्तु मोहो प्राणी जानता हुआ भी पर में हो रमण करता है और ससार मे भ्रमण करता हैं।

जन्मंगात्रं मम जननन्ष्टे च मत्यु वियोगे
दुःखं मूढानुभवति तदा रोदनं हाय्र जन्ति ।
चित्ते खिद्यन्ति निशदिन माक्रन्दनं स्त्रीष्टनष्टे ।
अन्यान्यवा मत सकल मीशोऽप्यहं सेवकोवा ॥६४३॥

अज्ञानी मोही मूढ मती इस शरीर के उत्पत्ति होने पर अपनी उत्पत्ति तथा विनाश होने पर अपना मरण मानता है तथा इष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर अपने को सुखी व अनिष्ट वस्तु के मिलने पर अपने को दुखी मान कर रोदन मचाता है तथा इष्ट वस्तु के विनाश होने पर होता है कि हाय मेरा पुत्र मर गया हाय मेरी स्त्री का मरण हो गया इस प्रकार अज्ञानी मोही प्राणी दुःखों का अनुभव करते है। तथा वे अपने मन में अत्यन्त खेद खिन्ना व शोक करते है। व गत दिन रो रो कर अस्रुपात करते रहते है। और कहते है कि हम पर तो भगवान ही रूठ गये है इस लिये हमको इष्ट वियोग और अनिष्ट सयोग रूप अनेक दुख भोगने पड़ रहे हैं। कभी एक दूसरों का आप मालिक बनता है कभी आप एक दूसरों का सेवक बनता है। तथा अपने आपको सेवक मानता है इस प्रकार मिथ्यादृष्टी जीव की मान्यता है सो ही ससार वृद्धि का कारण है।६४३॥

विषयाशक्तोमुञ्चन्ति न पुनः पुनः इच्छति विषयानि तथा ।
पावति दारूण दुःखम्मनंन्त पुद्गला परावर्त्ता ॥६४४॥

जो प्राणी अनादि काल से पंचेन्द्रियों के विषय वासनाओं में आशक्त हो रहा है। अपने हिताहित के विचार से शून्य मोहो पुनः पुनः उन ही विषयों की अभिलाषा करता है। उन विषयों को सेवन कर पाप उपार्जन करके दारुण दुःख पाता है। तथा अनन्त पुद्गला परावर्तन काल तक संसार में ही भ्रमण करता है।

विशेष—जब यह प्राणी पंचेन्द्रियों के विषय सुखों की अभिलाषा करता है और विषयों के पोषण करने के लिये नाना प्रकार से हिंसा कता है जिसको करके नरक गति में चला जाता है यहा पर नरक भूमि से ऊपर पाचसौ धनुष पर उपपाद शैया हैं वहां पर जन्म लेकर नीचे की ओर गिरता है। उस उपपाद शैया के नीचे प्रथम नरक में छत्तीश आयुध बने हुए है उनके ऊपर आकर गिरता है जिससे सारा शरीर जर जर हो जाता है। जिससे उसके अग मे इतनी वेदना होती हैं कि वह नारकी प्राणी पाच सौ धनुष ऊपर को छलांग मारकर उसमें से निकलने का प्रयत्न करता है। परन्तु आयु कर्म बड़ा ही बलवान होने से वही रोक देता है। वह नरक में जाता है तब पुराने नारकी नवीन नारकी के पीछे लग जाते है और उसको पकड़ कर मार लगाते है। कोई नरकी उस नवीन नारकी को की मार लगता है तो कोई अग्नि में पकाते है तो कोई करोत लेकर उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालते है। कोई-कोई नारकी पक्षी का रूप धारण कर नवीन नारकी के शरीर में से मास नोचकर खाता है। ज्यादा क्यो कहना वहा की भूमि को छूने मात्र से इतना दुःख होता है कि हजार विच्छुओ के द्वारा एक बार डक मारने चित्राभूमि पर जितनी वेदना होती है उससे भी अधिक वहा नरक में नारकी जीव के वेदना होती है। कोई नारकी नवीन नारकी

को लोहे की पुतली बनाकर उसको अग्नि में तपाकर उसको शरीर से चिपटा देते है और कहते है कि तूने पर स्त्री के साथ बहुत आलिंगन भोग विलास किया था अब इसके साथ कर कोई नारकी लोहे को तपाकर पानी के समान बना लेते हैं और उस नारकी के मुख को फाडकर उसके मुख मे डालते हैं और कहते है कि तूने मनुष्य भव में बहुत शराब पियी थी अब इस शराब को पी ? कभी कभी अबावरीस नाम के असुर कुमार जाति के देवनरक में जाकर उनको याद दिलाते है कि इसने तेरे भाई को मारा था इसने तेरी बेटी के शील को भंग किया था। कोई कहता कि इसने तेरे धन माल को अपहरण किया था व क्षेत्र को राज्य को छीन लिया था। यह सुन कर नारकी बडे ही क्रोधित होकर एक दूसरे से लड़ने लग जाते हैं वे इस प्रकार लड़ते हैं कि जिस प्रकार मुरगा व तीतर लडते हैं। वे एक दूसरे नारकी के शरीर के तिल तिल के बराबर टुकडे कर डालते हैं इस प्रकार वे नारकी परस्पर लडते है। उन नारकियो को भूख इस प्रकार की तीव्र लगती है कि तीन लोक का सब अनाज खा जाऊ पर एक दाना भी उपलब्ध नही होता है। प्यास भी इतनी तीव्र लगती है कि यदि मध्य लोक स्थित जितने समुन्द्र है उन सब समुद्रों का पानी पी जाऊँ तो भी प्यास नही बुझगी परन्तु एक बूद भी पानी नही मिलता है। इतना कष्ट व दुःख प्राप्त होने पर भी मरण नही होता है क्योकि इनके अपमृत्यु का अभाव है। पहले दूसरे तीसरे चौथे अथवा पांचवें नरक के ऊपरी भाग मे गर्मी है नीचले भाग से लेकर सातवे नरक तक शीत का दुःख है। पहले पहले नरको से आगे आगे के नरको मे दूने दूने आयुष बढते जाते है तथा वेदना भी बढती जाती है आयु भी बढती जाती है तथा काया भी बढती जाती है उन नरको मे स्वभाव से ही दुर्गन्ध आती है कि जम्बूद्वीप के एक कोने पर रख देने पर जम्बू द्वीप में रहने वाले जीव दुर्गन्ध से व्याकुल हो जावेगे। उन नरकों में रक्त और पीप के आकार को धारण करने वाली वैतरणी नदी बहती है जो नारको जीवो को पीडा का हो कारण होती है। उन नरको मे सेमर तरु के ऐसी तीक्ष्णा धार वाले पत्तो से होते हैं कि शरीर पर पडते ही शरीर के टुकडे कर डालते है। इन पहले के नरको मे इतनी गर्मी पडती है कि मेरु के बराबर लोह का गोला भी एक क्षण मात्र में पानी की तरह बहके चल देता है। और नीचे के नरको मे शीत की इतनी विशेषता है कि लवणोदधि का पानी एक क्षण में जम कर पत्थर हो जावे। इस क्षेत्र मे जिस प्रकार कोई अन्य क्षेत्र का कुत्ता आ जाता है तब इस क्षेत्र वाले कुत्तें उसके पीछे पड़ जाते है उसको मार खाते है और गुर्राते है यह अवस्था उन नारकी जीवो की होती है। वे नारकी स्वभाव से ही क्रूर क्रोधी होते है तथा कृष्ण नील कापोत लेश्या के धारक होते है। तथा तीव्र सक्लिष्ट परिणाम वाले होते है। वहाँ के दुःखो को भोग कर त्रियच गति मे जन्म लेते है। जब त्रियच गति को प्राप्त हो जाते है तब अपने से दीन हीन निर्बल पशुओ को मार कर खाते है जब आप निर्बल हो जाते है तब अपने से बलवालो के द्वारा मारे जाते है तथा शरीर का छेदन भेदन और नोच नोच कर मास भक्षण करने पर तीव्र वेदना को परवश होकर सहन करते है। अथवा भूख प्यास का दु.ख व बध बन्धन का दुःख व अधिक को अपने रहने

रूप दु ख अन्न पान निरोध रूप दु.ख व नाक कान छेदने व पूछ काटने व अन्डकोश को फोडने छेद कर निकालने रूप दु:ख प्राप्त होते है, सीग उखड़ाने व जारने तवावने रूप अनेक प्रकार से दु:खो को जीव त्रियच गति में पाता है। तथा पराधीनता से शीत का दु:ख का उष्णता दु.ख योग्य क्षेत्र न मिलने रूप दु:ख योग्य चारा घासादि न मिलने रूप त्रियच गति में भी हजारो प्रकार के दु:ख है। गाड़ी व रहट खीचने पर जब तक ताकत से बाहर हो जाता है तव बैरी पोतो व कोमल स्थानो मे और छेद कर मारता है जिससे सर्वांग के रोम खड़े हो जाते है परन्तु बोल ही नही सकता ऐसे दु:ख त्रियच गति में जीव ने निरंतर प्राप्त किये। और कुछ पुण्य का उदय पाया तब मनुष्यों में उत्पन्न हुये।

मनुष्य गति के दु.ख—जीव जब मनुष्य गति में उत्पन्न हुआ तब प्रथम गर्भावस्था में अग के सिकुड़ने व अधोमुख झूलने का यहाँ दु:ख उससे भी अधिक दु:ख माता के गर्भ से बाहर आने पर होता है जिस प्रकार जती में सुनार तार खीचता है उसी प्रकार माता के योनि में से निकलते समय प्राप्त होते और जन्म लेते ही इतनी भूख की वेदना हुई कि झूर झूर कर रोया। बाल अवस्था में माता के मरण हो जाने पर दूसरो का उच्छिष्ठ भोजन माग कर खाया व जगह-जगह पर दुत्कार फटकार भी खाई। कभी धन हानि कभी मान हानि कभी धन क्षय के होने का दु ख कभी पुत्र मित्र स्त्री वियोग रूप अनेक दु:ख मनुष्य पर्याय मे इस जीव ने इस एक मिथ्यात्व के ही कारण सहन किये। इस प्रकार मनुष्य गति को पूर्ण कर कभी अकाम निर्जरा व बाल तप कर देव गति को प्राप्त हो अन्त मे ये तीव्र सक्लिष्ट परिणामो से मुक्त हो मारा और एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न हो अनन्त पुद्गल परावर्तन जीव किये है।

इस प्रकार चारों गतियो में पचेन्द्रिय जीवो ने दु:ख सहे है।

अहोरात्रिचिन्तयति संचिनोति परिग्रहं च नित्यम्।
भ्रमति च विदेशेषु वा दीनोवाचोवदति बहुधैव ॥६४५

अज्ञानी मोही विषयाशक्त प्राणी दिन और रात्रि में यही चितवन करता रहता है कि पंचेन्द्रिय विषयक भोग और उपभोग की जितनी अधिक वस्तुए एकत्र की जाये उतना अधिक सुख भोगोपभोग का प्राप्त होवेगा। परन्तु जितना-जितना परिग्रह बढ़ता जाता है उतनी-उतनी साथ ही साथ आकुलतायें बढ़ती जाती है। जितना परिग्रह बढ़ता जाता है उतनी उतनी इच्छायें अधिकाधिक बढ़ती जाती है जितनी-जितनी इच्छाये बढती जाती है उतनी उतनी आकुलता और चिन्ताये भी बढ़ती जाती है। मानव परिग्रह की प्राप्ति करने की इच्छा से विदेशो में जाता है। जहां पर अपने परिचितव धर्मवाला भी नही होता है वहां जाकर धन की इच्छाकर नीच कुलो की सेवा चाकरी करता है उच्छिष्ठ भोजन करता है तथा मालिक के लिए रसोई की व्यवस्था करता है रसोई बनाता है वस्त्र धोता है शरीर का मर्दन कर मालिक को प्रसन्न कर धन की इच्छा करता है। प्रथम तो धन मिलता नही यदि कुछ मिल भी जावे तो इच्छाओ की पूर्ति नही होती है तब दीन वचन बोलता है और परिग्रह को

सचय करता है। यह परिग्रह भी पुण्य के बिना प्राप्त नहीं होता यदि हो जावे तो दु.ख का ही कारण है प्रथम तो उसके उपार्जन करने में दुःख है उपार्जन किये हुए की रक्षण करने में दुःख और जब विनाश हो जाता है तब भी दुःख का कारण है इस कारण यह पचेन्द्रिय भोग और परिग्रह ये दोनों ही आर्त ध्यान के मूल कारण है ग्रन्थकार कहते है कि मोही बहिरात्मा के निरन्तर आर्त रोद्र ध्यान ही होते रहते है ।६५॥

वस्त्राभूषणानिवा वेस्मनि बहुक्षेत्रश्च मा स वासः ।
सयोगवियोगयोः विनाशे वोत्पादे चार्तः ॥६४६

अज्ञानी बहिरात्मा दिन रात चिन्तातुर रहता है कि मेरे वस्त्र जीर्ण हो गये वस्त्र उनके समान सुन्दर नही है उनके जैसे वस्त्र मेरे पास नही मिले उनको मिल गये इस प्रकार वस्त्रो के विषय मे दिन रात आर्त ध्यान करता है। कभी विचार करता है कि उसके यहा पर रेशमी व अच्छे वस्त्र है ऊनी साल दुसाले सरज के वस्त्र है परन्तु मेरे पास एक भी नही अगर मेरे वस्त्र जीर्ण और गले हुए वहा के लोग देखेगे तो वे मेरा आदर विनय नही कर घृणा की दृष्टि से देखेंगे तब मुझको नीची दृष्टी करनी होगी इस प्रकार वस्त्रो के विषय में आर्त ध्यान करता है। तथा मेरे घर मे सुवर्ण के व हीरा मोती पन्ना पुखराज के हार नही कठा व गुलीवन्द, हमेल, मोहन माला, मटर माला इत्यादि नही है कण्डा, लड़ वेशर, दुलरी, कर्ण फूल, करोधनी, बाजूवद तथा हाथ शंकर, नही है उस मेला में व विवाह मे तो सब स्त्री पुरुष बच्चे अपने-अपने आभूषण पहन कर आवेगे तब वहा मुझको उनके सामने नीचा देखना पड़ेगा यदि वहा नही जाऊगा तो भी मुझे नीचा देखना होगा। यदि नही जाऊं तो लोग मेरी हसी करेंगे और कहेगे कि वहतो बड़ा ही कजूसहै। अब कैसे जाऊ किससे माँग कर लाऊ कौन इतनी कीमती वस्तुए देगा किससे कहू और कौन सुनेगा ? इस प्रकार आभूषण न होने के कारण आर्त ध्यान करता ही रहता है। जिनके पास है वे भी विचार करते है कि यदि किसी चोर डाकू को पता लग जायेगा तो जबरन छुडाकर ले जायेगा। यदि किसी को मागे दे दी और उसने लोटा करनही दी तब मैं उनका क्या करूंगा। उनसे यदि कुछ कहूगा तब लोग मुझे ही पागल कहेगे। यदिनही देता हूं तो कहेगे कि हमारा विश्वास ही नही यही जेवर वाला हो गया, इत्यादि दुर्भावना करता है। कभी विचार करता है कि ये पुत्र स्त्री आभूषणो को पहन लेवेगे तो घिस जायेगे वजन कम हो जायगा। वे जरूर ही मांगेगे तो देने होगे वह दिन रात आभूषणो के होने न होने पर आर्त ध्यान करता रहता है। तीसरे प्रकार का आर्त ध्यान मेरे पास मकान नही है घर भी अच्छा नही है वह घास फूस की बनी हुई झोपड़ी है, उनका बगला व हवेली कितनी सुन्दर देखने योग्य इन्द्र के भवन के समान सुन्दर है। जब मेरे पास द्रव्य हो जायेगा तब मैं भी उनके बगला से भी सुन्दर एक भवन निर्माण कराऊगा जिसमे नाना प्रकार के चित्र व रग रगीले नक्शा निकलवाऊगा। कभी विचार करता है कि ये मकान तो पुराना हो गया है और पुरानी टाइप का है अब नई डिजाइन का हवादार बनवाऊगा। जब कभी पैसे की कमी हो जाती है तब व्यापार मे पैसा लगाने के लिए व गृहस्थी का पालन करने के लिए मकान को गिरवी रख दिया और मकान के ऊपर ऋण ले लिया और ऋण का व्याज नही

दिया गया तब डूबने की आशंका उत्पन्न हो जाने पर चितवन करता है कि अब हाय मकान मेरे हाथ से गया, हाय मेरे पूर्वजों की निशानी भी निकल चली अब क्या करूं। उसको मिलाने का प्रयत्न भी करता है पर पास में कोड़ी भी नही दिखाती। तब दूसरों से भी कहता है इधर उधर भटकता है परन्तु एक पैसा प्राप्त नही होने से अब मेरा मकान गया। कोई विचार करता है कि अपने पास जैसा छोटा या बड़ा मकान है परन्तु बहुत पुराना हो गया उसका जीर्णोद्धार करना चाहिए। मेरे पास तो जीर्णोद्धार करने के लिए एक भी पैसा नही अब पुराना मकान होने के कारण गिर जाता है तब उसको बनवाने के लिए दिन रात आर्त ध्यान करता है कभी विचार करता है कि मेरे पास तो एक एकड़ जमीन है उनके पास तो पचासो एकड़ जमीन है परन्तु अब मैं क्या करूं जिससे मेरे पास सभी जमीन हो जावे। इष्ट वस्तु जैसे पुत्र से मिलन होने पर अत्यन्त हर्ष होता है तथा स्त्री का सयोग होने पर आनन्द मानता है, जब इनका वियोग हो जाता है, तब दिन रात रो-रो कर नेत्रो को सुखा लेता है तथा इष्ट वियोग नाम का आर्त ध्यान करता है।

ग्रन्थकार कहते है कि यह जीव खोटे कार्यो को तो तन मन से करता है करता चला आ रहा है जिससे चारो गतियो मे जन्म मरण जरा रोग के दुःखो को अनन्त काल से भोगता हुआ चला आ रहा है। इसलिये ससारी जीवों के दुःख का कारण यह आर्त ध्यान ही है तथा अनर्थो का कारण भी यह आर्त ध्यान ही है। इसलिए भव्य जीवों को चाहिए कि वे सम्यक्त्व उपार्जन करे कि जिसके प्राप्त होते ही आर्त व रौद्र ध्यान सब क्षय हो जाते हैं सम्यक्त्व होने पर सवेग भाव उत्पन्न होता है और धर्म ध्यान का क्रम चालू हो जाता है वह धर्म ध्यान व सम्यक्त्व ही मगलकारी है तथा दुर्भावनाओ का नाश करता है। क्योकि सम्यग्दृष्टी के अनिष्ट संयोग व इष्ट वियोग तथा निदान बध नाम का आर्त ध्यान नही होता है। निदान बंध नाम का ध्यान तो बहिरात्मा के ही हुआ करता है क्योकि मिथ्यादृष्टी ही वैर विरोध सुखाभिलाषा रूप निदान बांधता है। अग्निभूति की भावज वायुभूति की धर्मपत्नी ने निदान किया था यह कथा पुराणों में लिखी है। तथा विश्वामित्र मुनि ने निदान किया था वह हरिवश पुराण में कथा लिखी है वहां से जान लेना चाहिए।६५४॥

मिथ्यादृष्टी के सुखो को बताने के लिए कहते है।

प्रविश्याऽरण्येवाञ्छति शिव सुख कंटक पथे।
बहुव्याबासिहो विषय विवधोलोलुपजना:॥
कथं निर्भीतं याति तदनुदिनौकोप कपटः।
सदावृद्धिश्चित्तेऽशुभकलहकार्यं च बहुधाः॥ ६४७॥

कोई अज्ञानी प्राणी घनघोर जंगल में प्रवेश करने के लिए मार्ग में चलता है जिस में सब जगह पत्थर फैले हुए है ऐसे मार्ग में चलता है यदि दृष्टि चूक जाती है तब पैरों में काटे चुभ जाते है या पत्थर की ठोकर लगने से पैर घायल हो जाता है अथवा पैर में ठोकर लगने से पैर फट जाता है। जिससे रक्त बहने लग जाता है। तथा कांटे चुभ जाने से अत्यन्त वेदना भी होती है उस वेदना को सहन करता हुआ आगे बढ़ता जाता है, तो वहां पर

एक तरफ शेर चीते दहाड रहे है दूसरी तरफ को देखता है तो अजगर अपना मुख फाड़ रहेहै अथवा सर्पफुंकार रहे है यह प्रतीत होता है किअजगर स्वासके सहारे खीच कर खा न जाये। सिंह बाघ दहाडरहे है तो यहप्रतीत होता है किक्षण भरमे मार कर खा न लेवे । ऐसे भयानक जगल मे प्रवेश होकर धन की कामना करता है अथवा कहा तक वह भाग दौड़ कर सफलता प्राप्त कर सकता है ? कभी भी निर्भय नही हो सकता है न सुख की ही प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार यह मनुष्य पचेन्द्रिय के विषयों को भोग कर उनसे सुखो की इच्छा करता है। जब कही विषयो मे बाधा आती है तब उनकी पूर्ति करने के लिए नाना प्रकार की चिन्ताऐं करता है व आशाये करता है, फिर भी कोई कारण से पूर्ती नही हो पाती है तब क्रोधादि कषायो को कर वे वैर द्वेष करता है तथा आर्त ध्यान रौद्र ध्यान करता है, मायाचारी करता है तथा मन मे अशुभ भावो की वृद्धि होती रहती है तथा नाना प्रकार से कलह करता है।

विशेषार्थः-जिस प्रकार कोई अज्ञानी जीव ससार रूपी भयानक अटवी मे मोक्ष फल प्राप्त करने के लिए खोटे मार्ग से प्रवेश करके सत्य मार्ग मे सन्मुख होता है। उस मार्ग में नाना प्रकार के नुकीले पत्थर व ककड़ काटे बिछे हुए है जहाँ पर रज नही दिखाई देती है ऐसे पथ में चलने वाले पथिक को कितना आराम व शान्ति मिल सकती है ? नही मिल सकती। इसके अलावा बडे-बडे अजगर सर्प फुंकार मार रहे है तथा अनेक देह धारियो को अपनी स्वाश से खीच कर खा जाते है। दूसरी तरफ जब दृष्टि डाल कर पथिक देखता है तो भयानक भालू व बाघ व चीता सिंह अष्टापद इत्यादि जगली जानवर दहाड़ रहे हैं और देह धारियो को यत्र तत्र मार-मार कर खा रहे है। ऐसी अवस्था को प्राप्त हुआ प्राणी विचार करे कि अब मुझको मोक्ष सुख मिल जावेगा। यह कदापि नही हो सकता है। प्राणी सर्पो से भयभीत होकर दौडता है कभी रीछ बाघ व सिह के भय के कारण इधर उधर दौड़े तो पैरो मे काटे चुभ जाने से वेदना होती है यदि दृष्टि चूक जाती है तो पत्थर की ठोकर लगती है जिससे सारा पैर जर जर व भग हुआ जाता है ऐसी अवस्था मे कौन सा सुख ? दुःख ही प्राप्त होता है। इस ही प्रकार पचेन्द्रियो के विषय सुखों में आशक्त जीवो की गति समझना चाहिए। यह ससार रूपी भयानक विशाल जगल है इसमे इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग राग द्वेष मोह माया निदानबध सत्बर ये काटे व पत्थर फैले हुए है मिथ्यात्व ही मार्ग है। उसके दोनों ओर क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय रूपी सिंह बाघ आदि मुख फार कर दहाड़ रहे है। तथा आशा रूपी व चिन्ता रूपी अजगर सर्प सर्पिणी है जो फुकार मार रहे हैं तथा डस रहे है। जिनका जहर सर्वांग मे फैल रहा है। इस प्रकार ससार रूपी जगल में जन्म मरण जरा । दुःख निरतर लगा हुआ है और ससारी प्राणी दुःखो का अनुभव दिन रात करता रहता है पचेन्द्रिय के विषय रूपी विषफलो को भोगकर शिव सुख को चाहता है सो किस प्रकार ः सकता है परन्तु आर्त रौद्र ध्यान कर मरण करता है जिससे चारों गतियो मे दुःख भो" रहता है ॥ ६४७ ॥

पूजा दानं बहुविध तपोनेच्छति भ्राम्यचित्ते।
आर्तध्याने विचरति च सर्वत्रलोके गृहीत्वा॥
आशापासं त्यजति न कदा कीर्तिसौख्ये च धर्मः।
मारोचन्ते विमल सुकृतःषड् मुनीनां च कर्मः॥ ६४८॥

यह अज्ञानी मोही बहिरात्मा जिसका चित्त भ्रम में पड़ गया है उसको देव पूजा और अतिथियों के (दिया गया दान) लिए दान देना अच्छा नही लगता है वह विचार करता है कि देव पूजा करना व मुनी यती योगी और अनगारों के लिए व चार प्रकार के सघ के लिए दान देनें पर पुण्य का आस्रव और बंध होता है सो वह पुण्य भी संसार का ही कारण है ऐसा मानकर पुण्य और पाप की समान तुलना करता है। तथा यह बारह प्रकार का तप है सो भी मोक्ष का कारण नही ये तो सब व्यवहार धर्म है इस प्रकार अपने मन में धारण करता है परन्तु अपने आर्त व रौद्र ध्यान को नही छोड़ता हुआ तीनों लोक में भ्रमण करता है फिर भी आशा रूपी फांसी पर झूलता ही रहता है, परन्तु कभी भी अपनी इच्छाओ की रोक थाम नहीं करता है, आशाओं को न छोडता हुआ अपनी यश कीर्ति और सुख के देने वाले धर्म को तिलाजलि अवश्य ही दे देता है। और श्रावक की षट् कर्म क्रियाये जो नित्य क्रियाये है उनमें रुचि नही रखता है न उन क्रियायों को करता ही है देव पूजा गुरु की उपासना पूजा आहार-दान औषधी दान अभयदान दान इत्यादि अर्पण नही करता है, न देश संयम या सकल संयम के ही सन्मुख होता है, न कभी जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे गये आगम का ही स्वाध्याय करता है, तथा जो कर्मो का नाश करने वाला है जिसके करते ही कर्म रूपी दृढ बधन ढीले पड़ जाते है अथवा खुल जाते है, ऐसे तप को भी स्वीकार नही करता है न जो इस लोक में यश कीर्ति को प्रदान करता है व परम्परा से मोक्षका कारण होता है ऐसे दान को नहीं करता है। न मुनीश्वरों के छह कर्म हैं उनका ही पालन करता है। वे षट् कर्म इस प्रकार है सामायिक ध्यान, स्तुति, वन्दना, प्रति क्रमण, प्रत्याख्यान, और कायोत्सर्ग ये षट् कर्म साक्षात रूप मोक्ष सुख को प्रदान करने वाले है तथा ससार के सुखों को देने वाले है उनकी तरफ दृष्टि नही डालता है परन्तु अपने सहयोगी आर्तध्यान को नही छोड़ता है। न उन आशा रूपी पिशाचिनी को ही छोडता है, जो अपनी विमल कीर्ति यश और धर्म का नाश करने सन्मुख खड़ी है। हे भव्य अब तू इस आशा रूपी पिशाचनी को छोड़ इसको बिना छोड़े तेरे को सुख नही मिलेगा॥ ६४८॥

स्वर्गे देवान् न सौख्यं मनसि विकल महा च दीर्घ दिशाद्धिः
आज्ञावश्यं शिरोधारणकरमतिर्वाचंनीयं वराकः॥
मग्न यच्छोक सिन्ध्वौ गमयति समयं सोऽहि संक्लिष्ठचित्तेः।
दृष्ट्वामंदारमालां च विगलति वयकालषठ्मासशेषः॥ ६४९॥

अज्ञानी मोही प्राणी यह मानता है कि देवगति में जीवो को हमेशा सुख भोगनें को मिलते रहते है, यह बात सत्य नहीं है क्योकि हीनऋद्धि के धारक देव बड़े ऋद्धि के धारक

देवों के वैभव को देख कर मन ही मन में खेद खिन्न होते रहते हैं। और अपने को हीन समझते हुए अपनी निन्दा करते है मन में बड़े ही आकुलित होते हुए विचार करते हैं कि अब हमको इन महा ऋद्धियो के धारक देवों की आज्ञा का पालन करनी पड़ेगी। तथा इनकी सवारी का काम हमको ही करना पड़ेगा हम तो वाहन जाति के देव हुए है सो हमको अब हाथी घोड़ा ऊंट बैल बकरा सूकर इत्यादि रूप धारण करने पड़ेंगे महार्द्धिक देव हमारे ऊपर बैठ कर चलेगे। किल्विष नाम के देव विचार करते रहते है कि हम बडे ही अभागे है क्योंकि राजा के हमको दर्शन करने व इन्द्र की सौधर्मादि सभाओ मे भी जाने को अधिकार नही है। सब देवो को जाने दिया जाता है, परन्तु हमको नही जाने दिया जाता है। हमको तो दरवाजे पर ही बाजे बजाने को रोक दिया जाता है कोई देव विचार किया करते है कि हमको किसी भी उत्सव या महोत्सव में शामिल नही करते अपितु और डाट लगाते हैं। उन परिषद तथा आत्मरक्षा तथा सामानिक देवों के वैभव को देखो कि प्रथम तो इन्द्र की सभा मे इन्द्र के बराबर वैभव सहित बैठना दूसरे हम जिन्हे जन्म कल्याणादि व अष्टाह्निकादि पर्वों में भी जाने नही दिया जाता है, उनके कितनी सुन्दर और सुख साधन रूप देवागनाये है हमारे तो उनकी देवा-गनाओं की अपेक्षा पैर का धोवन भी नही है ये देव अनेकानेक ऋद्धि अणिमा गरिमा आदि महाऋद्धियों के स्वामी है। इनकी अपेक्षा हमारे पास तो ऐसी कोई ऋद्धि नही है। अब मैं क्या करूँ मैं तो इनका नियोगी वाहन जाति का देव हुआ हू ये पुण्यवान है मै नीच हूं इसलिए मुझको इनकी सेवा करनी पड़ती है। देखो ये तो वैभव मे इन्द्र के समान है इनके देवागनाये बहुत है और वैभव भी बहुत है मेरे पास तो कुछ भी वैभव नही। अथवा देवागनाओ का जब-२ विनाश होता तब सोचते है कि हाय अब मेरी देवी मर गई अब क्या करूं ? इस प्रकार दिन रात आर्त ध्यान में लवलीन रहते है ? हाय मेरे सहकारी मेरे साथ में रहने वाले देवों का विनाश हो गया अब क्या करू ? भवन वासी व्यन्तर ज्योतिष्क और कल्पवासी देवों में उत्पन्न होकर मानसिक दु:ख रूपी शोक समुद्र मे डूबे रहते है तथा देवगति को पाकर दिन रात अपना आर्त ध्यान मे व्यय कर देते है। तथा तीव्र आर्त ध्यान करके देव एकेन्द्रिय का आस्रव और वधकर लेते है भरण कर तिर्यंच व निगोदो मे भी चले जाते है। जब देवो की आयु छह महीना शेष रह जाती है तब मदार माला मुरझाने लग जाती है तब देव देवागनाये यह समझ लेती है कि अब हमारी आयु क्षीण हो गई है तब वे मिथ्यादृष्टि देव हाय-हाय कर अत्यन्त दु:खी होते है कि मेरी देवागनाये अब यहां ही रह जायेगी, अब आयु समाप्त हो चली और यह विमान छूट जायेगा हाय मेरा सारा वैभव छूटा जावेगा, हाय इच्छित फल देने वाली ऋद्धियां है वे भी यही पर छूट जायेंगी अब क्या करूँ। इस प्रकार दुर्ध्यान तथा शोक रूपी समुद्र में गोता खाने लग गये हैं और मरण को प्राप्त हो एकेन्द्रिय जीवो मे जाकर उत्पन्न होते है, यह सब बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि की महिमा है। देवगति से च्युत हुआ देव कोई तो पचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्यों में उत्पन्न होते है कोई मनुष्यो में उत्पन्न होते है तथा अग्निकाय और वायुकाय को छोड़ कर सब स्थावरो मे देव मर कर उत्पन्न होते है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि देवो के मानसिक दु:ख होता है मानसिक वेदना

सहित संक्लिष्ट परिणामी देव एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हो कर संसार में भ्रमण करते है ॥६४८॥ –

गृहीत्वा मिथ्यात्वं भरति भव दुःखं च विपुलम् ।
नसम्यक्त्व शीलं विलसति च मूढो बहुसुखम् ॥
इदानीमाश्चर्यं स्वगुण विमुखः स्वादनिफलम् ।
व्यतीतकालोऽनंतखलुगमतारोऽशिव सुखम् ॥ ६४९ ॥

अज्ञानी बहिरात्मा जो (शील) सम्यक्त्व स्वभाव वाले आत्मा के अनत दर्शन ज्ञान क्षायिक सम्यक्त्व के सुख को तरफ दृष्टि नही डालता हुआ मिथ्यात्व को ग्रहण करके संसार के महान दुःखो का भोग करता है। इस समय बडा ही आश्चर्य है कि विपरीत मार्ग के फल को न जानता हुआ अनन्त काल व्यतीत कर दिया परन्तु मोक्ष सुख जो सुख महान और अलौकिक है अनुपम है उसकी तरफ को दृष्टि ही नही डालता है। अपने स्वभाविक उत्तम सुख जो अतीन्द्रिय है उसको न जानता न अनुभव में लाता हुआ पर द्रव्य के सयोग सम्बन्ध को ही सुख का साधन मानकर विपुल दुःखो को ही प्राप्त होता चला आ रहा है। इसलिए हे भव्य अब इस सयोग सम्बन्ध से होने वाले सुख का त्याग कर अपने स्वभाव रूप सुख की तरफ दृष्टि डाल कर देखे तब तेरे को यथार्थ सुख की प्राप्ति हो ॥६४९॥

स्वासोच्छ्वासे जनममरणेऽष्टादश प्राप्तजीवः
माणिक्यलभ्य तदुपममालभ्यतेयत्र शैलम् ॥
पुण्यैलाभो भवति खलु चित्त विनायन्तिरक्ष्
भव्ये पुण्योदय समान सुत्वं मालभन्ते कदापि ॥६५०॥

मिथ्यात्व मोह रूपी मदिरा का पान कर अपने स्वरूप को भूल कर पर में महत बुद्धि कर रहा है जिसके कारण ही एक स्वास्वोच्छवास में अठारह बार जन्म मरण करता है परन्तु स्थावर निगोद पर्याय को छोड़ कर प्रत्येक वनस्पति को प्राप्त नहीं हुआ जिस प्रकार मणिक्य रत्न बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है उसी प्रकार प्रत्येक गति को प्राप्त किया। परन्तु त्रस कायक जीवो में उत्पन्न नही हुआ। जब कभी पुण्य कर्म का स्वभाव से ही लाभ हुआ तब दो इन्द्रियादि जीवो में उत्पन्न हुआ परन्तु पचेन्द्रिय नही हुआ। जब कुछ पाप का क्षयोपशम हुआ तब यह जीव पचेन्द्रिय जीवो में उत्पन्न हुआ परन्तु मनके अभाव मे कोरा मूर्ख ही रहा परन्तु सेनी पचेन्द्रिय नही हुआ। और कोई पुण्य के उदय में आने पर सैनी पचेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न हुआ परन्तु क्रूर वक्र परिणामी होकर अपने से निर्बल पशुओ को बहुत बार मार कर खाया कभी आप स्वयम निर्बल हो गया तब दूसरे जीवो बलवान् प्राणियों के द्वारा मारे जानें व शरीर के विदारने काटने छेदने अगोपॉग भिन्न भिन्न करने रूप अनेक दुःसह दुःखों का त्रियचों में उत्पन्न होकर अनुभव किये। इसका कारण एक दर्शन मोह ही है।

सदेवोमिथ्यात्वो दय भवति चैकेन्द्रियरितिः।
महादु:खंतत्रापि मरण मिवाष्टादशविधः
विहायं सौख्य दिव्यपरमगति कालेऽनुभवति ।।
सदा सक्लिष्टस्तत्र विरमति मानिस्सर तियत् ।।६५१।।

यह मिथ्यात्व कर्म के उदय में आने के कारण ही देव मर कर ऐकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है वहा सूक्ष्म एकेन्द्रिय होकर जब लब्ध पर्याप्तक अवस्था में स्वास के अठारहवे भाग मे जन्म लेकर मरण करता है इस प्रकार दीर्घ काल तब दुःखो का अनुभव करता है। हे भव्य प्राणियो वह देव देवगती के दिव्य सुखो को त्याग कर तीव्र आर्त्त ध्यान सक्लिष्ट परिणामो वाला होता हुआ मरण कर एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होता है। वह एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होकर अनन्त काल तक उसमे ही निवास करता हुआ दुःखी होता है मिथ्यात्व और अनतानुबधी कषायो का उदय निरंतर बना रहता है जिसके कारण सूक्ष्म लब्ध पर्याप्तक चतुर गति ससार निगोद मे भ्रमण करता रहता है अथवा जन्म मरण के दुःखो का अनुभव करता ही रहता है।

विशेष—जब दीर्घ काल तक देव तीव्र मिथ्यात्व और अनतानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इनका तीव्र उदय व कृष्णादि चार लेश्याओं के उदय में रहने के कारण ही देव आर्त ध्यान कर एकेन्द्रिय जीवो की आयु अत समय मे बांध कर मरण करता है जिससे पंचस्थावर एकेन्द्रिय जीवो में उत्पन्न होता है और एक श्वास के अठारहवे भाग आयु का धारक लब्ध पर्याप्तक अवस्था में रहता हुआ जीव अनंत काल उस निगोद में बिता दिये एकेन्द्रिय पर्याप्तकपना उसी प्रकार दुर्लभ है कि किस प्रकार बालू के ढेर में रत्न का कण गिर जाने पर फिर मिलना कठिन है उसी प्रकार समझना चाहिये।

पृथ्वी कायक जीवो के दुःख

एकेन्द्रियणां भूकायके कृषने भंगे रोदने च।
उत्कीर्ण संग्रहणे प्रसारणे कुट्टने दु खम् ।।६५२।।

एकेन्द्रिय स्थावर कायक जीवों में से पृथ्वी कायक जीवो को नाना प्रकार के दु ख होते है। प्रथम तो पृथ्वी की खोदने पर यथा खोदकर फोरने व फैलाने फावडा कुदाली व हल से जोतने पर खोदकर फेकने पर अथवा इकट्ठी करने पर पानो डालकर रोदने पर व टांकी घन हथोडादि से कूटने पर पृथ्वी कषाय जीवो को दु.ख होता है। पृथ्वी के ऊपर मे आग जलाने पर अत्यन्त दु ख होता है। बिजली के पडने पर तथा आगो मे तपने पर दु ख होता है। भट्टी धमनी इत्यादि मे डालकर पकाने पर दु ख होता है तथा फोरने पीसने पटकने रोदने पर अत्यन्त दु ख होता है। क्षुद्रभाव धारण करने पर जन्म मरण की बेदना होती है। ओले पड़ने पर इत्यादि अनेकानेक दु.ख हैं ।। ६६।।

जल कायक जीवो के दु ख।

प्रच्छालने तापने पादयोरून्धने तीक्ष्ण वस्तु मिश्रणे।
कुट्टने प्रसारणेष पतने पातने दुख ञ्च ।६५३।।

धारणोच्छालन हिमकर्केषु गलने तुहिने षोषणे
जलकाये बहुदुःखं आघाते पावन्ति जन्मे च ।।६५४।।

जल कायक जीवों को भी अनेक प्रकार के दुःखों को सहन करना पड़ता है जैसे तालाब नदी बावडी समुन्द्र इनमें कपड़ों के धोने पर उनको दु.ख होता है। पानी को इधर उधर फेंकना व सीचना कपड़े कूटना व मकान दीवालो पर फैंकना अग्नि के ऊपर रख कर तपाने पर अत्यन्त दुःख होता है। पानी में कूदने पर व अग्नि बुझाने के लिये अग्नि के ऊपर डालने पर भी अत्यन्त दुःख होता है। नमक मिर्चा व अन्य तीखी वस्तुओं के संयोग होने पर अत्यन्त वेदना होती है। पानी में पत्थर ईटा फेकने पर पहाड़ से गिरने पर ठोकरे लगने पर जो जल कायक जीवों को दुःख होता है वह कहा नही जा सकता है। घड़ा में भरने पर तथा भरकर फेकने पर दुःख होता है। बरफ जमाने पर पाला पड़ने और सूखने पर गलने पर अत्यन्त दुःख होता है। तथा ओला और बरफ के गलने पर तुषार के पड़ने पर जो वेदना होती है वह वेदना केवली भगवान ही कह सकते है। पानी को सुखाने सोडा साबुन लगाने पर तथा दुर्गन्धमय वस्तुओ के सयोग होने अत्यन्त दुःख होता है। पहाड़ के ऊपर से गिरने पर अघात होने पर दु ख होता है। अग्नि से तपाये हुए गोला को पानो मे डाल बुझाने पर सूर्य की उष्णता लगने पर ओस के पड़ने और सूख जाने पर जल कायक एकेन्द्रिय जीवों को जो तीव्र दुःख होता है। और उनकी कषाये इतनी बढ़ जाती है कि यदि हम मनुष्य होते तो इनकी परंपरा को नाश कर डालते।

अग्नि कायक जीवो के दु.ख।

प्रज्वलनेऽच्छादने च पयात्प्रच्छालने ताडनघनेन।
धोकनेन धमन्यार्वा दु खमग्नि काये बहुवः ।।६५५।।

एकेन्द्रिय अग्नि कायक जीवो को स्थावर काय में अनेक प्रकार के दुःखों निरतर भोगने पड़ते है। प्रथम तो जलने से दुःख दूसरे गीले ईधन के कारण से दुःख होता है। जलती हुई अग्नि के ऊपर माटी डालकर दबाने से दुःख होता है, इधर उधर फेकने से दुःख होता है तथा लोहे को अग्नि मे तपाने और घन लेकर कूटने पर घन की चोट खाते समय अत्यन्त अग्नि कायक देह धारीयो को दुःख होता है। धौकनी से धोकने पर तथा जलती हुई अग्नि को पत्थर लकड़ी छड़ी चीमटी आदि से कूटने पर तथा अगार के फोड़ने से अगार के अन्दर में लकड़ी चिमटा आदि के द्वारा छिद्र करने से अत्यन्त दुःख होता है। जोर की हवा लगने से व इधर उधर उड़ने से व तिलगा रूप होना से अत्यन्त दुःख होता है। लकडी द्वारा कूटने व बुझाने पर उन अग्नि कायक जीवों को अत्यन्त क्रोध कषाय उत्पन्न होता है कि यदि उनकी सामर्थ्य होती तो छेदन भेदन करने वालों को घानी मे पेलकर मार डालते। जिसके कारण वे अनन्त काल तक अग्नि कायक जीवों में दुःखों का भोग करते हैं।

वायु कायक के दु.ख।

वायुकायकजीवानां संसार भ्रमरे दुःखं।
वंधने घातने निरोधे विच्छेपन वानित्यम् ।।६६६।।

एकेन्द्रिय वायु कायक जीवो को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते है। उनमें से

कुछ सक्षेप से कहते है धीमी वायु के लगने से वृक्षो के हिलने व उनसे टक्कर लगने पर दुःख होता है। दूसरे पर्वतो की चपेट लगने रूप अघात होने पर दुःख होता है। पखा वीजना चलने से व चलाने से दुःख होता हैं। शीत पड़ने व बरफ पाला पड़ने पर जीवो को दु.ख होता है। सूर्य की गर्मी लगने से व अग्नि की गर्मी लगने से दुःख होता है। अग्नि की जलती हुई भट्टी को धोकने से व धोकनी से धमकने पर जीवो को अत्यन्त दु.ख होता है मेघो के तड़फने व विद्यु त के पडने पर ओले वर्षने पर वायु कायक जीवो को महान दु.ख होता है। तीक्ष्ण हवा के चलने और दीवाल पहाड़ो की व वृक्षो की चोट लगने पर वायु कायक जीवो को दुःख होता है। तथा वायु कायक जीवो को मकान या टायर मे फूकना मे भरने बदकर ने पर तथा जलती हुई अग्नि मे पानी डालने पर उसकी भभक उष्णता की लहरे उठने से तथा कडुआ व दुर्गन्ध मय धु आ के उठने और लगने पर दु.ख होता है। उबलते हुए पानी की भाप के उठने और लगने से वायु कायक जीवो को दु ख होता है। बरफ पाला ओला व शीत पड़ने के कारणो से सूर्य के ताप पड़ने से भी अत्यन्त दुःख होता है। तथा ग्रीष्म ऋतु मे लू चलने व भोर्घेर पड़ने हर तथा चपेट लगने रूप अनेक प्रकार से वेदना होतो है।

वनस्पति कायक जीवो के दुःखो का कथन

छेदने भेदने वा पाके पाचने रुन्धनोऽघाते।
मोचने मिश्रणे च शीतोष्णयोः कर्षणेषु वा-॥६५७॥
रोदने खण्ड खण्डे दहने दाहने चर्वन भङ्गनेषु॥
पेलनमूलोत्कीणे पादप जीवाना बहुदुखम्॥६५८॥

वनस्पति कायक जीवो के भी अनेक प्रकार के दुःख है प्रथम तो यह दुख है कि बढई जन वनस्पति वृक्षो को कुल्हाड़ी गेती गडासा व अन्य औजारो से काटते है व वृक्ष से डाली शाखा पत्त फलो को तोड़कर फेंकने के कारण से दु.ख होता है। अग्नि मे भू जने व हाडी मे डाल पकाने जड़ सहित उखाड़ कर फेंकने पर तथा एक दूसरी मे मिला देने व नमक मिरचादि तीखी वस्तुओ को लगाने पर अत्यन्त असह्य दु ख होता है। टुकड़ा करके रसोई म कूटकर उबालने व टुकडे करने मरोड़ने तथा एक वृक्ष के ऊपर दूसरे वृक्ष के गिर जाने पर भग होने से अत्यन्त दुःख होता है। पत्त शाखाये तोड़ने व छाल को छीलने तथा मुख काट नमक आदि वस्तुओ के मिलाने से दु.ख होता है। गर्मी के पड़ने वा पानी के नमिलने जमीन के सूख जाने के कारण अत्यधिक दु ख होता है। शीतल वायु के चलने पर भी अत्यन्त वेदना होती है। पाला व ओला बरफ के पड़ने पर शीत के कारण से पत्ते डाली आदि जल गये है जिससे अत्यन्त वेदना होती है। जड सहित उखाड़ कर फेक देने पर तथा खेत आदि स्थानो मे गाय भैंष बकरा बकरी मेष आदि के द्वारा खोट चोटकर चवाने पर वेदना होती है। इधर उधर दौड़ने चलने खुरो से उत्कीडने व मुख के अग्र भाग से खोदकर जड़ सहित खोद निकाल कर चवाने पर अत्यन्त दुःख होता है। और जगलादिको मे स्वाभाविक वृक्षो से वृक्षो टहनिया रगड़ने पर अग्नि की उत्पत्ति हो जाने से जगल मे आग लग जाने जिससे वहां पर स्थित वनस्पतिया है उनके स्कध शाखा छाल पत्ते कोपलों को जल जाने से अत्यन्त

वेदना होती है। तथा किसी भीलादिक के द्वारा आग लगा देने व हवा के ओट में आकर टूट जाने जड से उखड़कर गिर जाने पर बिजुली के आघा होने से जंगल में अग्नि लग जाने के कारण भी दुःख होता है। तथा एक वृक्ष के ऊपर वृक्ष व लताओ के लड़ जाने के कारण से अत्यन्त दुःख होता है। कोल्हू में पेरने व चरखी मे पेरने तथा जड़ो व डाली पत्तो फूलो व छाल को तोड़कर निकाल कर पीसने के कारणों के मिलने पर अत्यन्त दुःख होता है। वनस्पति कायक जीवो को प्रति समय दुख होता है। एक वृक्ष के ऊपर उसके आधार से लताओ के लिपट कर चढ जाने पर भी दुःख होता है। कुण्डादिक में वृक्षारोपड़ करने पर हल व वखर से क्षेत्र को जोतने पर जड़ मे से कट जाने व जड़ के कट जाने पर अत्यन्त दुःख होता है और भी अनेक प्रकार के दुःख वनस्पति कायक जीवो को होते ही रहते है। जैसे नदी के किनारे पर खडे हुए वृक्षों को सजड़ उखार कर बहा ले जाने से भी अत्यन्त दुःख होता है। इन स्थावरों के स्पर्श इन्द्रिय जनित दुःख है। खाद न मिलने यदि अधिक खाद मिल गया तब पानी न मिलने यदि पानी मिला और खाद नही मिला या अधिक मात्रा में पानी ही पानी मिलने के कारण से भी दुःख होता है।

त्रस कायक जीवो के दुःख।

छेदन वधन पीडन क्षुत्पिपासा शीतोष्णान्न पानैः।
वधवंधन विदारणैः निरूध्याति भाररोपणैः ॥६५९॥
हस्तपादादिचर्वणैः तिरश्चां बहुविधैदृश्यते दुख।
निर्णयतुं कोऽपिक्षमः केवली विना नत्रिलोके ॥६६०॥
परस्परविरोधैर्वा वनाकुशवतीक्ष्ण चचुना च।
खड्गत्रशूल कक्षतोमर सूलादि भेदनैश्च ॥६६१॥

त्रस पर्याय में दोइन्द्रिय जीवों को अनेक प्रकार के दुःख है प्रथम तो जन्म लेते समय एक जीव को दूसरे जीव पकड़ खीचकर चल देता है इससे पानी की वर्षा होने पर पानी के साथ में बहकर मरने का दुख है। तथा कौआ चिडिया आदि पक्षियों के द्वारा पकड़ कर बज्र के समान कठोर नुकीली चौच से दबाने पीसने टुकडे कर भक्षण करने पर दुःख होता है। तथा अन्य जीवो के द्वारा पकड़ कर खेचने पर तथा शरीर के विदारने पर दुःख होता है। तथा शीत केपड़ने व गर्मी के अधिक पड़ने पर नीचे रेत व माटी के गरम होना और ऊपर से धूप की गर्मी होने से गात्र शुष्क होने से वेदना होती है। हाथी, ऊट, वैल, गाय आदि अनेक जानवरों के पैरों के नीचे कट जाने दव जाने रुंद जाने टुकड़े हो जाने व रगड़ जाने रूप दुःख है। तीन इन्द्रिय जीवो के भी इसी प्रकार अनेक दुःख है डक के मारने पैरो को तोड़कर खाने पर दुःख होता है तथा रोदने दवाने व रोकने रूप दुःख हैं। खाने को दौड़ते समय दूसरे के द्वारा पकड़ लिए जाने पर अग्नि मे जल जाने पानी में बहकर मरने के कारण अत्यन्त दुःख होते हैं। वृक्षादिक से गिर कर चोट लगना प्राण घात होने पर अत्यन्त वेदना होती है—कौवा बाज गोरैया चातक आदि पक्षियो के द्वारा भक्षण करने पर व दबकर प्राण जाने पर व लब्ध पर्याप्तक होने पर जन्म मरण के अत्यन्त दु.सह दुःख तीन इन्द्रिय जीवों को प्राप्त होते है।

चार इन्द्रिय जीवो को पहले के समान ही दुःख होते है विशेष दुःख होता है कि

चार इन्द्रिय जीवो के पर होते है जब कभी प्रकाश देख लेते हैं तब वे प्रकाश की तरफ दौड़ लगाते है और दीपक की लौ (ज्योति) के ऊपर पड जाते है जिससे उनका गात्र व पंख जल जाते है जिससे मरण का भयकर दुःख भोगना पडता है। तथा अग्नि की ज्वाला में जलकर मर जाते हैं। जब बार-बार उडते है तब उनके पर टूट जाते है जिससे उनको जमीन पर चलते हुए बहुत वेदना होती है। जब उडने लगते है तब चिडिया कौआ बाजादि पक्षी पकड़कर पख तोडकर वज्र के समान चचु के बीच मे दबाकर शरीर के टूकडे कर खालेते है तव उनको अत्यन्त वेदना होतो है जब कभी उड़ते-उड़ते पानी के बहाव में बह जाते हैं तब मरने रूप दु.ख है पक्षियो के द्वारा बार-बार चेचु की चोट मारने पर जो वेदना होती है वह मुख से नही कही जा सकती है इस प्रकार चार इन्द्रिय जीवो को अनेकानेक दु.खो का अनुभव करना पड़ता है। वे अपने वचन के द्वारा किसी को भी कुछ कह नही सकते है। माटी के नीचे दबने पर तथा पत्थर व दीवाल की चोट लगने पर वायु के चलने पर उनके बीच मे आ जाने पर व मरण होने पर दु.ख होता है तथा आधी लू चलने पर कल्प काल की हवा चलने पर यत्र तत्र हवा मे उड़ते समय पख टूट जाने से दुस्सह दुःख उत्पन्न होता है। इस प्रकार चार इन्द्रिय जीवो के दु ख होता है तथा क्षुद्र भवो मे जन्म मरण का दुःख होता है।

पचन्द्रिय त्रियच जो असेनी है बिना मन के कुछ कर नही सकते है हलन चलन भी करने के चेष्टा नही होती है वे जीव दूसरे प्राणियो के द्वारा मार दिये जाते हैं तथा जिनका गात्र स्वभाव से ही क्रम-क्रम से गलने लग जाता है तब महा वेदना को भोगते हुए मरण को प्राप्त होते है। अथवा दूसरो के द्वारा मारने छेदने रोदने पेलने सघर्षण करने रूप अनेक दु ख है।

सेनी पचेन्द्रिय जीवो के भी असंख्यात कारणो के मिलने से निरन्तर दु ख होते ही रहते है। कभी शरीर में रोग की वेदना व घाव हो जाने से दिन रात वेदना के कारण बैठा उठा भी नही जाता है। दूसरे वृद्धावस्था आ जाने के कारण चारा घास न चबने के कारण क्षुधा की तीव्र वेदना होने पर दुःख होता है। एक प्राणी के शरीर को दूसरे प्राणी द्वारा छेदन करने पर तथा शरीर के खण्ड-खण्ड हो जाने पर अत्यन्त गम्भीर दु ख होता है जो असह्य है। किसी के द्वारा रस्सी व साकल से बघन मे डाल देने पर लाठी चाबुक के मारने पर अथवा सूली के समान तीक्ष्ण नोक वाली आर को नाजुक स्थान में छेदने पर अत्यन्त दुःख होता है। तथा मरम स्थानो मे मारने का दु ख है। जिन पक्षियो के चचु वज्र के समान कठोर है वे पक्षी मास के लोलुपी दीन निर्बल पक्षियों को व चूहा गिलहरी मेढ़क मछली इत्यादिक जीवो को पकड़ कर मार कर खा जाते हैं व कठोर चोच से उनके शरीर के अनेक टुकडेकर खा जाते है तथा नोच-नोच कर खाते है जिससे उनको अत्यन्त घोर वेदना होती है। भूख के लगने पर घास पत्ते नही मिलते है और पेट खाली होने के कारण इधर उधर देखता परन्तु दाना घास न मिलने पर क्षुधा की वेदना का दुःख होता है। पानी के न मिलने से कण्ठ सूख गया है वचन का भी उच्चारण नही किया जा सकता है प्राण निकलने का भी आशका उत्पन्न हो गई परन्तु थोड़ा भी पानी नही मिलने रूप दुःख है। जहा पर शीतल

वायु बह रही है और तुहिन भी पड रहा है (पाला) जहाँ पर वृक्ष लतादि पाले के पड़ने से सूख गये है ऐसे काल में शीत के लगने का बहुत दु:ख त्रियंच गति में होता है। जहा पर वृक्षों की छाया भी नही है जहां पर मीलों तक पीने को पानी का साधन नही है और सूर्य घाम की ऊपर से गर्मी नीचे से जमीन गरम हो गई है जिससे नीचे से शरीर दग्ध हुआ जाता है और हवा भी उष्ण चल रही है ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर जगलो में विचरने वाले दीन हीन पशु पक्षियों को उष्णता से वेदना होती है। घास पानी आदि खुराक के न मिलने से अथवा रोक देने से दु:ख होता है। पर के द्वारा रस्सी मे फँसाकर के बाँध देने पर पराधीन होने के कारण से दु:ख त्रियंच गति में जीवो को होता है। अपने से बलवान जीवो के द्वारा मारने विदारने व नाक कान छेदने काटने व तीक्ष्ण दात दाढ व पैर के नखो से सर्वांग को नोच-नोच कर खाने के कारण अत्यन्त वेदना त्रियंच गति में जीवो को होनी है। शरीर की अतड़ियो को खीचकर खाने व मास रक्त को खाने पर तीव्र वेदना होती है। बैरी विरोधी जीवो के मिलने जैसे सर्प व नेवला व मोर के मिल जाने पर सर्प को दु:ख होता है व बिल्ली और चूहा के मिलने व सिह और हरिणो के मिलने पर मार कर खा जाते है मार डालते है जिससे उनको बहुत दु:ख होता है। निर्दयी दुष्ट मास भोजी दुराचारी मनुष्यो के द्वारा त्रियंच गाय भैंस बकरा बकरी हरिण भैंस इत्यादि पशुओ की गर्दन पर तलवार कटारी छरी चलने पर तथा शरीर मे से मांस निकालने पर अत्यन्न भयकर दु:ख होता है। जीते जी कढाई व बटलोई आदि में हीग जीरा मिर्चादि डालकर वघार देने पर व राधने पर जो दु:ख होता है वह दु ख दुस्सह भयंकर होता है तथा जलती हुई अग्नि में पटक देने पर सारा गात्र जिसका दग्ध हो गया है और जिसके चारो पैर बाध दिये गए है और मुख को भी बाध दिया गया है ऐसी अवस्था मे जीव को जो दु:ख होता है उस दु ख का कौन कथन करने में समर्थ है। कसाई खटीक भील आदि नीच जन चाडालादि मास खाने के लपटी गर्दन को काट डालते है तथा अग्नि में जोवित होम देते है तत्काल में अग्नि में जीवित जलते हुए प्राणियो को कितनी वेदना होती होगी यह कहा नही जा सकता है (तथापि) गाड़ी में वजन बहुत ज्यादा भर दिया है कि जितनी बैलो की खेचने की ताकत नही है जब उनसे खीचा नही जाता है और जमीन पर गिर जाते है तो भी निर्दयी लाठी चाबुक लेकर ऊपर से मारता हुआ कटुक कठोर वचन भी बोलता जाता है और नाजुक स्थानों में आर छेदता है तब दु खित होकर खीचने का प्रयत्न करता है। और जमीन पर गिर जाता है तब भी बैरी लाठी मारता है तथा चाबुक चलाता है आर छेदता है। जिससे सारा शरीर कापने लगता है तथा जिह्वा भी मुख से बाहर निकल आती है। इस प्रकार अत्यन्त दु:ख होता है। गाड़ी व हल मे जोत दिया है पानी की प्यास अत्यन्त जोर से लग रही है भूख लगने से सारा गात्र कुम्हिला गया है पैर आगे चलते नही है लगड़ाकर जमीन पर गिर जाता है तब बैरी सोटाओं की मार लगाता है और खड़ा करके पुन: गाडी में जोत देता है। फिर भी चारा पानी नही मिलने से घोरअत्यन्त वेदना त्रियच गति में होती है कभी कोई पीठ पर बोझ लाद कर ऊपर से आप भी बैठ लेता है और पीठ में कोड़ा मारता जाता है ऐसा निर्दयता का व्यवहार करता है जिससे वेदना होती है। पैर पूंछ कानों के काटने व चबाने पर अत्यन्त दु:ख होता

है। (इस प्रकार) कभी आप भी निर्बल हो जाता है तब दूसरे सबल प्राणियों के द्वारा मार कर खाये जाने से बहुत दु ख होता है छेदन भेदन करने से भूख प्यास के लगने बोझा ढोने से व लादने से ठण्डी गर्मी के पडने के कारणो से त्रशकायक जीवो को महान दु.ख ससार में भोगने पड़ते है। त्रिर्यञ्च गति के दु खो का पूर्णरूप से कथन करने मे कौन समर्थ है इनका कथन तो केवली भगवान ही जानते होगे कि कितना कितने प्रकार के दु·ख है ये सब दु.ख एक सम्यक्त्व विना ही संसारी जीवो को प्राप्त हुए है।

विशेष—यह है ससार अवस्था में ससारी जीवो को दु ख का मूल कारण मिथ्यात्व और कषाये ही हैं। इन मिथ्यात्व और अनतानुबधी, क्रोध, मान, माया, लोभ का तीव्र वा मन्द उदय रहता है तब तक जीव त्रियचगति में नाना प्रकार के दुखो का अनुभव करता है। दु:खो का अनुभव करता हुआ अपने परिणामो को सक्लिष्ट कर पुनः कर्मो का आस्रव और कर्मो का तीव्र बंध कर लेना है। इन मिथ्यात्व और कषायो के कारण ही एक जीव अनतानन्त काल से नित्यनिगोद मे चला आ रहा है। वहां से भी निकल आया तो इतरनिगोद रूपी समुद्र मे गोते लगाने लग जाता है। जब कषायों का क्षयोपशम हो तब नित्यनिगोद व इतर निगोद में से तथा पंचस्थावर काय मे से निकल कर विकलेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न हुआ। जब और अधिक ज्ञानावर्णादिक का क्षयोपशम हुआ तब पचेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न हुआ। जब दो इन्द्रिय का शरीर धारण किया तब पक्षियो की चोच के बीच आ गया जिससे उसके शरीर को पूरा ही निगल लिया किसी के शरीर के टुकड़े कर निगल लिये। तीन इन्द्रिय हुआ तब दीमक मकोड़ा कानखजूरा विच्छू इत्यादि मे उत्पन्न हुआ तब पक्षियो मे तथा मेढक करकोटा सर्प छिपकली इत्यादि जीवो ने अपना मुख का ग्रास बना लिया। तथा चोच से टुकड़े-टुकडे कर खा लिये जिससे अत्यन्त दु ख प्राप्त हुआ। जब जीव चार इन्द्रिय हुआ तब अनजान होने के कारण अग्नि की शिखाओ व दोपक की ज्योति के ऊपर जा गिरा और अंग उपर के जल जाने से पख भस्म हो जाने से तथा दूसरे जीवों के द्वारा खाये जाने से व पख तोड फेकने व पखो के टूट जाने के कारणो से विकलेन्द्रिय जीवो की पर्याय मे घोर दु·ख प्राप्त होते है। पचेन्द्रिय त्रियचो के भी अनेक प्रकार से दुःख जाने जाते है व दृष्टीगोचर होते, रोग होने पर तथा छेदन भेदन मारण ताड़न अन्न पान निरोधन व रस्सी साकर आदि से बधन मे रखने से दु ख होता है। किसी के बिच्छू सर्प के काटने रूप दु ख है। किसी के शरीर को दूसरे मासाहारी जीवो के द्वारा शरीर को विदारण कर रक्त मास के खाने अवयवो के छेदने व घानी खेत व बैलगाड़ी आदि में जोतने के कारणो से वह दुःख पचेन्द्रिय त्रियचो को त्रियच पर्याय में होते है वे दु ख केवली भगवान के बिना पूर्ण रूप से कहे नही जा सकते। ऐसे दु·ख जीव ने एक मिथ्यात्व व कषायो के ही उदय में प्राप्त किये है इनके दुःखो का कथन आगम से विशेष जानना चाहिए।६५९। ६६०।६६१।

सुतस्त्री वित्तैर्विना प्राग्दुखंप्रभवति सदानृणांच।
तेषां बहुवियोगे वा संयोगे विघ्नोगेषुवात्र ॥६६२॥

कर्कषाव्यभिचारिणी स्वेचारिणीस्त्री सुतोव्यसनीश्च ।।
गात्रेव्याधिरूभूत बहुवित्तकोषं किमहि न सौख्य ।। ६६३।।

मनुष्य गति में मनुष्यों को अनेक प्रकार के दु:ख है। प्रथम तो पुत्र नहीं होने के कारण से दु:ख हैं तथा स्त्री के न होने मे दु:ख व धन की प्राप्ति न होने के कारण दु:ख होता है। यदि कुछ पुण्य कर्म का उदय आ जावे तब पुत्र भी हो जावे व स्त्री की व धन की प्राप्ति हो जाय परन्तु होकर नष्ट हो जाने के कारण से अत्यन्त दु:ख होता है। प्रथम तो दरिद्रता के होने से दु:ख होता ही था अब उस धन की इच्छाकर धन प्राप्त करने के लिए नर परदेश में जाता है और दीन वचन बोलता है। तथा वीयावान भयानक जगल में भी निडर होकर प्रवेश करता हुआ यह नही विचारता है कि इस जगल में मुझको शेर चीता बाघ भालू इत्यादि क्रूर प्राणी मारकर खा जावेगे वह तो आगे बढता ही जाता है। और गिरि कन्दरा नदी आदि में प्रवेश करता है और धन की इच्छा करता है। परदेश में जाकर बिना जाने हुए जनों की नौकरी करता है तथा उच्छिष्ट थाली आदि बर्तनों को सफाई करता है तथा वस्त्रों को धोता है उनके यहाँ पर बचे हुए भोजन को खाकर अपना जीवन निर्वाह करता है उनका अहसान मानकर धन की प्राप्ति करने में लगा रहता है वह अपने जीवन को जीवन न मानता हुआ धन की प्राप्ति करने के प्रयत्न में लगा रहता है। पापानुबन्धी पुण्य का जब कुछ उदय प्रारम्भ हुआ जिससे कुछ धन का लाभ हुआ तब उसकी रखवाली करने की चिन्ता उत्पन्न हो गई। यह एक नई प्रकार की व्याधि लग गई जिससे उस धन के रक्षण करने के लिये उसको अलमारी में रखता है कभी जमीन के अन्दर गाड़ देता है कभी बैंक में रखता है कभी अन्य अन्य स्थानों मे अलमारी व पेटी में रखकर उसकी रक्षा करता है। उस धन के उपार्जन करने में भी दु:ख सहा और अब जब प्राप्त हो गया तब रक्षा करने का दु:ख। जब कभी राजा को पता लगा कि इसने इनकम टैक्स नही दिया व चुंगी टैक्स नही दिया राज्य कष्टम डयूटी नही दी है तब वह कोपकर उस धन को जबरन छीन लेता है व चोर जारो के द्वारा हरण कर लिया जाता है तब अत्यन्त दुख होता है या कोई कारण से माल दुकान व्यापार में घाटा दिखाई देता है तब अत्यन्त अधीर होकर रोता है तथा दुखी होता हे। कथंचित मरण भी हो जाता है इस प्रकार धन के न होने पर दु:ख होने पर दु:ख और नाश होने पर भी दु:ख होता है। जब अपने योग्य स्त्री नही थी तब दु:ख था अब विवाह भी हो गया परन्तु एक पुत्र नही हुआ तब मनुष्य खोटे देव देवियो की पूजा करता है व पशुओ की बलि चढाता है और पूड़ी पापड़ी घी गुण इत्यादि चढ़ाकर देवी की पूजा भक्ति करता है और मस्तक नवा कर दण्डवत करता है। भैरव भूमिया काली शीतला केला देवी आदि अनेक प्रकार के कुदेवों की पूजा करता है परन्तु पुत्र एक नही होता है तब वे दम्पत्ति अत्यन्त दुखी होते है। कदाचित पुण्य संयोग से पुत्र हो गया और बाल अवस्था में मरण को प्राप्त हुआ तब माता पिता परिवार के सब जनों को दु:ख होता है क्वचित किसी के पुत्र हो गया और यौवन को प्राप्त हुआ तब व्यभिचारी व्यसनी बन गया और दुराचारी जनो की संगति में बैठने लग गया और धन को भी खर्च करने लग गया तब माता पिता को उस पुत्र के कारण से ही अत्यन्त दु:ख हुआ

कभी जुआ खेलता है उसमे धन को वरवाद करता है कभी मद्यपान करता है मास खाता है कभी चोरी करता है। जब कभी चोरी करते हुए पकड लिया जाता है तब राजकर्मचारी उसके घर पर आकर माता-पिता व परिवार के लोगो की घर की सब वस्तुओ को खोज करते है तथा बहाना बनाकर घर के आभूषणो को ले जाते है जिससे माता-पिता को अत्यन्त दुःख होता है। तथा पुत्र आज्ञा नही मानता है तब माता पिता को दु ख होता है। पहले तो विवाह नही हुआ था तब यह दुःख था कि मेरा विवाह नही हुआ किससे कहूं कि जिससे मेरी शादी हो जावे। जव कभी शादी हो गई तब स्त्री कर्कसा मिलने से दुःख और व्यभिचारिणी मिल गई तब अत्यन्त दुःख अज्ञान मानने वाली स्वाचरिणी मिल जाने के कारण से पति को और भी अधिक दु.ख हुआ। वह घर मे आ ही कलह होने लग गई व सास स्वसुर देवर ज्येष्ठ आदि की आज्ञा का विरोध करने लग गई, तथा पति की आज्ञा का उलघन करने वाली मिलने से अत्यन्त दुःख हुआ। धर्म की मर्यादा भग कर शील रहित हो अन्य पुरुषो के साथ व्यभिचार करने में तत्पर हुई जिससे अत्यन्त दुःख होता है। कि इसने हमारे कुल व धर्म को डुबा दिया जिससे दुःख होता है। शरीर मे मूल, व्याधि भगन्दर, खिसर, राजक्षमा, कुष्ट, जलोदर भस्म व्याधि आदि भयकर रोग हो जाने के कारण से अत्यन्त दु.ख होता है। धन के खजाने भरे हुए परन्तु शरीर मे रोग हो जानें के कारण भोगने मे नही आता है। भोग और उपभोग में की सामग्री घर मे भरी है सुन्दर नव यौवन स्त्री भी है परन्तु रोगी होनें के कारण उसके साथ सभाषण करनें का भी भाव नही होता है। इस प्रकार रोग के कारण अत्यन्त मनुष्य पर्याय मे प्राणियो को दुःख है। वैद्य, डाक्टर, हकीमो को आज्ञानुसार कडवी दवाई का सेवन करता है, और दाल के धोवन का पानी मात्र पीता है स्त्री के साथ विषय भोग नही कर सकता है इस प्रकार दु ख है। व स्त्री के मर जाने व बाल अवस्था मे माता-पिता के मर जानें पर अत्यन्त दुःख होता है। दूसरो को उच्छिष्ट भोजन करना व दीनता दिखाना अन्य की सेवा करनें रूप अनेक मनुष्य पर्याय मे जोवो को दु ख होते हैं।

यदि किसी के पुण्य का उदय प्राप्त हो तब स्त्री पुत्र माता-पिता निरोग शरीर व धन धान्य यथा योग्य पुत्र आज्ञाकारी व स्त्री आज्ञाकारी शीलवान धर्म परायण विवेकवान साध्वी मिलने पर भी मनुष्य को सुख नही। भोग और उपभोग की सर्व वस्तुये उपलब्ध होते हुए भी इच्छाये दिन प्रतिदिन वढती जाती है जिससे उसको दु ख ही बढता जाता है। जिसके पास खाने के लिए एक मुठ्ठी चावल के दाने नही वह पैसा मागता है कि मुझे पैसा मिल जावे जिसके पास एक पैसा है वह दस की इच्छा करता है। जिसके पास मे दस पैसा है वह सौ पैसा की इच्छा करता है जिसके पास एक रुपया है वह दश को दस वाला है वह सौ रुपये की, जिसके पास सौ है वह हजार की इच्छा करता है। जिसके पास मे हजार रुपया है वह दस हजार की, जिसके पास दस हजार है वह लाख को जिसके पास में लाख है वह दश लाख की इच्छा करता है। इस प्रकार इच्छाओ का अन्त नही आता है जब धन धान्य स्त्री पुत्रादि सब योग्य मिले तब भी यह चिन्तित ही रहता है कि अभी मै राजा नही हुआ हू, इस प्रकार तृष्णा बढ जाने के कारण दुःखी होता है जब राजा भी हो गया तब

दूसरों की नव यौवन सुन्दर गात्र वाली 'स्त्रियों को देख उन पर कामासक्त हो व्यभिचार 'करने के सन्मुख होता है इस प्रकार मनुष्य गति में दुःख है।

वालावस्थायां च जननी जनकाभ्यां वियोगात्तदा।
भरति च दुःखादुर्द्धरं दीनतादृश् णाञ्चःवृत्तिः ॥६६४
आक्रन्दनशोकमग्नः भोसुत मां मुञ्चत्वं कुतोगतः॥
तव जननी जनकौ मुखं दर्शदार्थं लोलुपौ ॥६६५

जब बाल बय में अज्ञान अवस्था में माता पिता के मर जाने के कारण से बड़े दुःख के साथ भेट करता है व दीनता पूर्वक से भीख माँगकर का खाता है। व झूठा भोजन खाता है भोजन न मिलने से भी दुःखी होता है। कभी पुत्र का वियोग या मरण हो जाता है तब माता पिता बालक के वियोग मे अत्यन्त व्याकुल होकर रूदन करते है जमीन पर मूर्छित होकर पड़ जाते है। जब मूर्छा जाग उठती है तब पुनः हाय बेटा तुम अपनी माता को अपना खेल दिखाओ तुम्हारी माता तुम्हारे वियोग मे रो रही है। तुम हम सरीखे माता पिता को छोड़ कर कहा चले गये, कहां जा छिपे हो, अपनी माता को जरा मुख तो दिखाओ माता तेरे दशन करने को लोलुप है। आप के माता पिता आपके मुख की तरफ देख रहे है कुछ तो अपनी तोतली वाणी का शब्द सुनाओ, इस प्रकार सुतवियोग का दुःख माता पिता परिवार के लोगो को होता है।

भावार्थ—आचार्य कहते है कि ससार अवस्था मे सब प्रकार सुख किसी प्राणी को निरतर नही होता हुआ देखा जाता है। जब कभी जन्म देने वाली माता का मरण रूप वियोग हो जाता है तब पराश्रित होकर जैसा उच्छिष्ठ व अनउच्छिष्ट खाकर अपना पेट का भरण पोषण करता है। तथा यत्र तत्र पड़ी हुई रोटियों को खाकर बड़े दुःख के साथ अपने जीवन को व्यतीत करता है। माता का वियोग कभी माता पिता का वियोग हो जाने से पराधीन हो जाने से दुःख भोगता है और दीनता दिखाता हुआ इधर उधर भ्रमण कर दीनतामय वचन बोलता हुआ याचना करता है। याचना कर अपनी आजीविका चलाता है। जब कभी पूत्र का मरण रूप वियोग हो जाता है तब उसके वियोग में माता पिता अत्यन्त अधीर होकर रूदन करते है, और कहते है, हाय बेटा तुम हमको छोड़ कर चल बसे तुम्हारी माता तुमको बार बार याद करती है उनको जरा आख उठा कर देखो और अपनी माता के सामने कूदो खेलो इस प्रकार पुत्र वियोग का मनुष्य गति मे दुःख है।

कस्यापिपतिर्वियोगात् वनितयाः वियोगातक्ष वित्तये ॥
मानापमाने कदापि जन्म मृत्युयोः सदा दुःखं ॥६६६॥

मनुष्यो मे अनेक प्रकार के दुःख किसी को वैरी का सयोग होने रूप दुःख जिससे दिन आकुलता मे ही व्यतीत होते है। किसी के पुत्र और पिता में परस्पर वैर विरोध होने के कारण एक दूसरे को देख नही सकते है तथा एक दूसरे को मारने के लिये सन्मुख तुले हुए होने से दुःख है। किसी के भाई, भाई के साथ लड़ता है धन वैभव को लेने के लिये व जबरन छुड़ाने को प्रयत्न शील है व कही बाप लोभ कषाय के कारण बेटा को मार डालता है जिससे

अत्यन्त दु ख होता है। कही कही चोर डाकुओ के भय के कारण इधर उधर छिपकर निवास करता है [जिससे अत्यन्त दु ख होता है। शेर चीता आदि जीवो के द्वारा पकड़ कर खाने अग उपागो को चबाने व खीच खीच कर खाने से मनुष्य गति मे मनुष्यो को दु.ख होता है। कभी राजा के द्वारा सूली को सजा देने रूप विशेष दुःख होता है। कि उस समय अन्न पान व भोग और उपभोग की वस्तुये भी उसको अच्छी नही लगती है। किसी दुष्ट के द्वारा बन्दूक की गोली मारने पर जो दु.ख होता है किसी को तलवार से वैरी के द्वारा शरीर के टुक्डे टुकड़े करने पर वेदना होती है उस वेदना का उस काल मे होने वालादुख कोन कहने मे समर्थ होगा। वृक्ष पर से गिर जाने पर हाथ पैर भग होने व टूट जाने के कारण से अत्यन्त वेदना होती है। जिससे. दिन रात रोदन करता है। कभी नदी या तालाब मे किसी वैरी के द्वारा डाल देने पर या अकस्मात मे पानी का बहाव आने से बहने पर अत्यन्त दु ख का अनुभव होता है। कभी किसी के द्वारा अपमान होने पर भी दु.ख पूर्वक नदी या तालाब मे गिर कर पूर्वक मरण के सन्मुख होने से अत्यन्त दु'ख मनुष्य भव मे होता है। कही पर मान भग होने के कारण हाय वहां पर इतनी जनता के मध्य मेरा अपमान किया गया जिससे दु'खी होता है। तथा कभी अपने योग्य इष्ट वस्तु के प्राप्त न होने से दु.खी होता है। कभी अशुभ कर्म के उदय में आ जाने पर सर्वाग मे वेदना होती है। जिससे दिन रात चैन नही पड़ता है और कोई धैर्य भी बधाने वाला नही है सुन्दर भोजन भी रूचता नही है। और हाय हाय चिल्लाते हुए समय व्यतीत करता है। इस प्रकार मनुष्य पर्याय मे जीवो को अनेक दु.ख तो बाहरी चिन्हो से देखने व जानने मे आ जाते है। परन्तु दूसरे के बाहर से जानने व देखने मे नही आते है उनके भीतर ही भीतर शोक मे मगन रहता। कही मकान के गिर जाने के कारण दबने व चोट के लगने व उल्कापात होने के कारण कुछ शरीर का भाग टूट गया है व जल गया है जिससे शरीर मे वेदना हो रही है, व कुछ शरीर का हिस्सा दागी होगया है। जिससे अत्यन्त वेदना रूप दु.ख होता रहता है। और भी अनेक प्रकार दुःख मनुष्य गति मे जीवो के होते रहते है। जिनसे मनुष्य व्याकुल रहते है इन का मुख्य कारण वास्तविक एक मिथ्यात्व कर्म ही है तथा मिथ्यात्व दर्शन मोह के साथ बाधी गई वेदनीय अशुभ कर्म का ही उदय है इस लिये भव्य जीवो यदि दु खो से मुक्ति चाहते हो तो निश्चय कर सम्यक्त्व को प्राप्त करो।

जिनका हाल ही मे विवाह सम्बध हुआ है तथा पति का मुख मात्र ही देखा है पति का मरण रूप वियोग जब हो जाता है तब सब परिवार वाले रोते है। व जिसका वियोग सम्बध हुआ है उसको पति वियोग का महा दु.ख होता है। किसी की सुन्दर युवती के साथ विवाह हुआ है और प्रेम का फासा भी फसा हुआ है उसके मरण रूप वियोग होने से पुरुष को भी अत्यन्त दु.ख होता है कि हाय मेरी जैसी स्त्री दूसरी कोई नही थी अब मैं क्या करूँ इस प्रकार दु.ख होता है। तथा स्त्री के वियोग मे अन्न पान सब त्याग करता है तथा भोगोप भोग की सुन्दर वस्तुयें भी उसको अच्छी नही लगती है वह तो उसके वियोग होने पर अपने जीवन को ही शून्य मानता है। और अपने को नष्ट करने का प्रयास करता है इस प्रकार इष्ट

वियोग रूप मनुष्य गति में दुख है। जो धन पूर्व मे बड़े ही कष्ट से कमाया था जब कमाया हुआ धन को चोर व राजा ले लेता है तब अत्यन्त दुःख होता है। और भी सबसे बड़े दुःख तो जन्म और मृत्यु का है तथा वृद्धावस्था का है उस प्रकार मनुष्य गति में मनुष्यों को नाना प्रकार के दु.ख हमेशा से ही होते चले आ रहे है उन दुःखों का अन्त नही है इस प्रकार चारों गतियों में क्रम से, मिथ्यात्व, दर्शन चारित्र मोह के कारण जीव प्राप्त करते है।

दुःखान मिथ्यात्वं हेतुश्चतुर्गतिषु खलु जीवेभ्यः।
नित्य रात्यविद्याञ्च च विषयाशक्त चित्तानामेवम् :।६६७।।

चारो गतियो मे चारो गति वाले जीवो को दुःखो का मूल कारण एक दर्शन मोह की मिथ्यात्व प्रकृति ही है। उस मिथ्यात्व के कारण ही ससारी प्राणी दुःखी होते रहते हैं। जिसके कारण ही जीवात्मा आत्म ज्ञान को भी अज्ञानमय बना देता है। जो आत्मा दर्शनोपयोग, और ज्ञानोपयोगमय मे शुद्ध है वही आत्मा इस मोह के कारण मिथ्या ज्ञान हो जाता है, जिस प्रकार पानी को जैसी सगत मिल जाती है वैसा ही पानी हो जाता है। जब कभी ईख में जाता है तब मीठा हो जाता है जब चिरायता मे जाता है तब वही कडुवा हो जाता है जब वही पानी शीप के मुख मे जमा है तब मोती की उत्पत्ती हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान भी मिथ्यात्व की सगत के कारण ही मिथ्याज्ञान मिथ्यादर्शन कहा जाता है। जिनका मन पंचेन्द्रियो के विषयों में आसक्त है जिससे पचेन्द्रियो के विषय सुखों की इच्छाये बढ़ती जाती है जिसके कारण ही जीवों को दुःखो की प्राप्ति होती है। जिसका कारण अनादि अज्ञान और मिथ्यात्व ही है जिसके कारण जीवों को दुःख भोगने पड़ते है।

विषयाशक्त चित्तानाम् को गुणो न विनश्यति।
नसम्यक्त्वं न वैदुष्यं न च पूजा न दानादि ।।६६८।।

जिसका चित्त पचेन्द्रियों के विषयो में आशक्त हो रहा है उनके सर्व गुण नष्ट हो जाते है देवशास्त्र गुरु के ऊपर मे श्रद्धान नही रह जाती है तब सम्यक्त्व गुण का भी नाश हो जाता है। तथा मिथ्यात्व रूपी दुर्गुणो की वृद्धि होने लग जाती है। मति भी भ्रष्ट हो जाती चली जाती है, विचार करने की शक्ति भी नष्ट हो जाती है, और आकुलताये बढ़ती जाती है। देव पूजा गुरुपास्ती सयम धारण करने के भाव भी नही होते है और असयत भाव (बढ़ते जाते है) वृद्धि को प्राप्त होते है। देव पूजा शास्त्र का स्वाध्याय मन्दिर में जाकर देव दर्शन करने के भाव भी नहीं होते है। तब युवतियो के मर्म स्थान व मुख को तरफ देखने को दृष्टि लगाता है स्पर्श करने के सन्मुख होता है तथा स्पर्श कर अपने को आनन्दित मानता है। विद्वान होकर भी वह मूर्ख के समान आचरण करता है वह अपनी कीर्ति को नष्ट कर डालता है। और अपयश को अपने साथ ले जाने वाला होता है। अपनी मान्यता को नष्ट कर देता है, अथवा मान्यता नष्ट हो जाती है यश कीर्ति आदि सब नष्ट हो जाते है। वह दानादि शुभ भाव रूप गुण आदि उनको भी नष्ट कर देता है ऐसा मोही मिथ्यादृष्टि छाणिक विषयो में आशक्त होकर पाप उपार्जनकर बध करता है। हे भव्य इन पंचेन्द्रियो के विषयो को मन वचन काय से त्याग कर अपनी आत्मिक गुणों के प्राप्त करने का प्रयत्न कर जिससे अविनाशी सुख की सामग्री प्राप्त होगी।।६६८।।

संयमो न शीलानि न तपो न क्रिया नोत्तय क्षमा ॥
'कामार्मामुंचन्ति सम्यग्ज्ञानचारित्राणि ॥ ६६९ ॥

कामासक्त जीवो के सयम गुण नही रहता है न उनके सात प्रकार के शील ही रह जाते है। ससारी जीवो को ससार के दु खो से निकालने वाला सम्यक्त्व भी नही रह जाता है। और क्रिया भी नही पाली जा सकती न उत्तमक्षमादि दश धर्म ही रह जाते है और की बात ही क्या कहे उसके अपने हित रूप विवेक-व ज्ञान भी नष्ट हो जाता है तथा चारित्र को भी धारण कर वह विषय सक्त मोही जीव छोड़ देता है।

दृष्टांत—एक समय की बात थी कि एक जगल में विचित्र गति मुनि थे उनके पास मे श्रवण नामक मुनिराज थे वे मुनि चर्या के निमित्त ग्राम की ओर जा रहे थे कि एक वेश्या मार्ग रोक कर खडी हो गई और बोली श्री मुनि प्रवर-आप हमको धर्म का उपदेश दीजिए ? यह प्रश्न सुनकर मुनिराज ने मौन खोला और श्रावक धर्म का उपदेश दिया जिससे उस वेश्या ने पापो का त्याग कर श्रावक के व्रत लिए और अपने घर को प्रसन्न होती हुई चली गई। श्रवण मुनिराज के साथ मे जो वार्तालाप हुआ था वह सब विचित्र गति को उन्होने सुनाया। उस वेश्या का जैसा रूप रग था वह सब ही कह सुनाया तब विचित्र गति मुनिराज उस वेश्या के घर पर जा पहुंचे और वेश्या से वार्तालाप किया तब उस वेश्या ने उन विचित्र गति मुनिराज को डांट फटकार कर वापस भेज दिया, तो भी उनका मन उस वेश्या मे रत रहा और उस वेश्या को प्राप्त करने के प्रयत्न मे लग गये। वह राजा की सेवा चाकरो करने लगा तब राजा प्रसन्न हो गया और पूछने लगा कि आप क्या चाहते हो सो कहो ? तब विचित्र गति बोला कि राजन मुझे वह राज वेश्या चाहिए। यह श्रवण कर राजा ने राज वेश्या को विचित्र गति के सुपुर्द कर दिया। विचित्र गति राजवेश्या के साथ रमण करने लग गए। अन्त समय मे मरण करके हाथी हुए इस कथा का सार यह है कि पचेन्द्रियो के विषय मे आसक्त जीव अपने धन वैभव मान्यता धर्म सयम तप चारित्र इत्यादि गुणो की परवाह नही करता है जिससे मरण कर विचित्र गति के समान दुर्गति का पात्र बन जाता है। वह अपने पद का भी ध्यान नही रखता है त्रिलोक पूज्य ऐसे जिन लिंग व चारित्र जो तीनो लोक मे जीवो के द्वारा पूजने योग्य है उस चारित्र का नाश कर हाथी हुआ। मिथ्यादृष्टो अज्ञानी हिता हित के विवेक से सून्य हो कर आप अपने गुणो का घात करता है ॥६६९॥

मुञ्चन्त्ये व मिष्ठान्नमवहरति वरहारिव खलु विष्ठाम् ॥
विषयासक्तानां च सम्यक्त्वादि नरुच्यते ॥६७०॥

जिसका मन पचेन्द्रियो के विषय भोगो मे आसक्त है उन जीवो को सद्गुण अच्छे नही लगते है सद्गुणो से घृणा करते है। उसको सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन और चारित्र तपवीर्यादि इन गुणो मे रुचि नही लगती है अथवा ये गुण रुचिकर नही लगते है। भिष्टा के खाने वालेसूकर के सामने यदि सुगधित जिसमे घी केशर लवगादि मशाले डाले गए है और घृत दूध पिस्ता छुहारे काजू इत्यादि डालें गये है ऐसी खीर उनको अच्छी नही लगती है दे तो उसकी सुगंध को सूंघकर छोड़कर चले जाते हैं और भिष्टा को खाने में ही अनान्द मानते है। तथा भिष्टा

खाकर दुर्गन्धमय व गंदले पानी को पीने में ही आनन्द मानते हैं। उसी प्रकार विषय सुखों में रत रहने वाले अविनाशी सुख सम्पत्ति के देने वाले सम्यक्त्वादि गुणों का घात कर ससार सागर में गोता खाते है ॥६७८॥

विषयेषुयदाशक्तिः क्रोध मान माया लोभादीनाम् ॥
वर्धन्तेऽसंयमं वा तदा न स्थितिः सम्यक्त्वादीनाम् ॥६७९॥

जिस समय प्राणी पचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियों के विषय वासनाओं में तथा भोग और उपभोगो में रत रहते है वैसे ही भोगो की इच्छायें बढ़ने लग जाती है। उन विषयो की पूर्ति करने के निमित्त अनेक साधन जुटाते है। आज इस विकट पचम काल में मनुष्यों के भोगो की अभिलाषाये नित प्रति वढ़ती जा रही है। तथा पचेन्द्रियों के योग्य अनेक नये-नये आविष्कार तैयार होते जा रहे है उन आविष्कारों को प्राप्त करने का सदा चिन्तवन किया करता है। जैसे कोई मनुष्य धूप में चलकर एक ग्राम से दूसरे ग्राम में पहुँचा नार्ग में धूप लगने से उसको वड़ जोर से प्यास लग रही थी कण्ठ सूख गया था और धूप से अत्यन्त घबड़ाया हुआ था और एक गृहस्थ के घर पानी पीने को गया और बोला माँ जी मुझे प्यास जोर की लगी हुई है पानी पिला दो ? जब वह भीतर पानी लेने जाती है उस बगला में टेलीवीजन कूलर रेडियो पखा लगे हुए थे। नाना प्रकार के चित्र भी दीवालो पर लिखे हुए थे। तब वह बोला कि यह कूलर चालू करो गर्मी वहुत लग रही, है कूलर चालू किया गया तव बोला कि इस रेडियो की स्वीच तो जरा खोलो इसमें क्या न्यूज आ रही है रेडियो खोल दिया न्यूज सुनने लगा। इतने मे पानी लेकर वृद्ध माता आ जाती है तब बोला कि इसमें शर्वत और होता तो अच्छा होता। यह सुनकर वृद्ध माता ने शर्वत लाकर दे दिया तब उसने कहा कि इसमें क्रीम का रग और होता तो अच्छा होता ? तब वृद्धा ने क्रीम का रग भी लाकर पानी के लोटा में डाल दिया। अब कहने लगा कि यदि इसमे इत्र और होता तो मजा आ जाता, यह सुनकर वृद्धा माता ने केवड़े की चार बूदें डाल दी तब उसने पानी को पीकर प्यास को बुझाया। विचार कीजिए कि कहा तो प्यास से घबराकर पानी पीने, गया था कहा वह अपने कानो को प्रसन्न करने को रेडियो की न्यूज सुनता है शरीर स्पर्शन इन्द्रिय का स्वाद लेने को कूलर का उपभोग करता है, रसना के विषय को पुष्ट करने के लिए शर्वत की इच्छा तो है। घृणा इन्द्रिय को प्रसन्न करने के लिए इत्र का प्रयोग किया। नेत्रेन्द्रिय के विपय को पुष्ट करने के लिए क्रीम का रग डालवाया इस प्रकार एक प्यास के बुझाते समय में पाचो इन्द्रियों का भोग भोगता है। जितना पचेन्द्रियो के विषयों में आशक्ति वृद्धि को प्राप्ति हो जाती है, उतना ही क्रोध मान माया लोभ कपाये भी वढ़ती जाती है जिससे अपने परिणामों में संक्लिष्टता वढती जाती है। जैसे कपाये वढती जाती है वैसा ही असयम भी वढता जाता है। तथा परस्पर में विरोध भी वढने लग जाता है जिससे भाई-भाई को मार डालता है व बहिष्कार करता है घर से भी निकाल देता है। पिता और पुत्र के साथ मे झगड़ा होने लग जाता है पिता पुत्र को नही चाहता है पुत्र पिता को नहीं चाहता है। सास वहू को नही चाहती, वहू सास को देखना ही नहीं चाहती, इस वर विरोध का मूल कारण एक मात्र पंचेन्द्रियो के विषय

है । इस पंचम काल मे पचेन्द्रिय विषयो के पोषण करने वाले अनेक नये-नये साधन बन गये है व आविष्कार होते चले जा रहे है गाना सुनने के लिए ट्रांजिस्टर टेलीवीजन जिसमें रूप रंग हाव भाव सव ही दिखाये जाते है । गाना सुनने व नाच रंग देखने के लिए सिनेमा घर चल चित्र घर जगह-जगह नये-नये निर्माण होते जा रहे है तथा टेलीवीजन भी चल चित्र बताता है कि जिसमे नृत्य और गाने दिखाये जाते है । ठण्डी न लगने के लिए अनेक प्रकार के हीटर बनने लग गये है । गर्मी न लग जाये इसलिए एयरकण्डीशन की मशीन है । व कूलर सदुपयोग करने को लगे हुए हैं । खाने के लिए अनेक प्रकार के अभक्ष्य वस्तुओं से युक्त ढावा व लाज होटल इत्यादि खुले हुए है जिनमें जाकर मनुष्य पापाचार से न भय-भीत होता हुआ रसना इन्द्रिय को पोषण करने के लिए होटलो में जाकर मांसाहार कर रसना को तृप्त करता है । इस प्रकार पचेन्द्रियो के विषयो का प्रचार बहुत बढ रहा है उतने ही हमारे परिणामो मे क्रूरता बढती जाती है और क्रोधादि कषाये भी बढती जा रही हैं जिससे हम दूसरो के जीवन और जीविका को तुच्छ समझ कर प्राण और जीविका को नष्ट करने को सन्मुख होते रहते है । कषायो की वृद्धि होने पर बैर विरोध अधिक बढता जाता है जैसा बैर विरोध बढता जाता है वैसा ही असयम भाव भी बढ़ता जाता है । इसलिए इस पचम दु:खम काल मे सम्यक्त्व गुण लोप सा होता जा रहा और मिथ्यात्व और असयम का प्रचार परिपूर्ण रूप से होता चला जा रहा है । मिथ्यात्व असयम रूप भावनाये बढती चली जा रही हैं । इन पचेन्द्रियो के विषयो की आशक्ति के ही कारण जीवों को अनेक प्रकार की आकुलताये विशेष रूपसे बढती जा रही हैं विषयो को सब वस्तु यथायोग्य मिलने पर भी संतोष की प्राप्ति नही होती है । असतोष ही बढता जाता है ॥६७१॥

इन्द्रियाणां विषया रोचन्ते सुलभायिन भव्यानाम् ॥
वोधन्ति सुखाभाष आस्रवबधहेतुर्नित्यम् ॥७७२॥

जो निकट भव्य है सम्यग्दृष्टि है उनको अनेक प्रकार के पंचेन्द्रियो के विषय पोषक भोग और उपभोगो की अनेक प्रकार की वस्तुये सुलभता से प्राप्त होते हुए भी उनको तरफ दृष्टि डालकर नही देखता है और इच्छा भी नही करते हैं । वे यह जानते है कि ये पचेन्द्रियो के विषय सेवन करने पर जो कुछ सुख होता है वह सुख नही है अपितु सुखाभाष है । दु:ख रूप ही है जिस प्रकार सूर्य के अस्त होते समय पर आकाश मे होने वाली लाली के प्रकाश के पीछे तुरन्त रात्रि का अन्धकार अपना अधिकार जमा लेता है और प्रकाश नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय विषय के सेवन से होने वाले सुख की स्थिति है । सेवन करते समय तो विषय सुख अच्छे लगते है परन्तु वे पीछे महा पाप बध का कारण होते है । जिनका फल वहुत दिन तक दुःख भोगना हमको ही पड़ेगा इस प्रकार विचार कर उनकी तरफ दृष्टि नही डालते है ।

सम्यग्दृष्टि भव्यात्मा जीव पचेन्द्रियो के विषयो को सुलभता पूर्वक प्राप्त होने पर भी नही भोगता है और भोगते हुए भी यही विचार करता है कि ये भोग और उपभोग जो मिल रहे हैं वे सब कर्मो के उदय के कारण से ही प्राप्त हुऐ और मुझे भोगने पड़ रहे हैं । इस

तरह भोगता हुआ भी इनसे विरक्त रहता है उनमें आशक्त नहीं होता है। सम्यग्दृष्टि बाह्य इन्द्रिय विषयो को सुलभता से प्राप्त होने पर प्रीति नही कर अपने शुद्धात्मा में अन्तरंग रुचि कर श्रद्धान रूप से परिणत होता है यह जानता है कि ये पंचेन्द्रिय विषय तो आस्रव बंध रूप होते हुए संसार-वृद्धि के कारण हैं ॥६८०॥

सम्यक्त्वे भवति यथा सुलभोऽपि विषयान्न रोचन्ते।
इच्छानां निरोधने जाग्रति भव्यात्मगोचरे ॥६७३॥

जब जिस काल में भव्य जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है तब पंचेन्द्रियों के विपयो की सब योग्य वस्तुयें मिल जाने पर भी उनमें मगन नही होते है वे उनको विरक्त भावो से ही देखते है। उनसे बहुत दूर रहते है तथा पचेन्द्रियो के विपयों का भी त्याग करते है। और अपने स्वभाव की ओर दृष्टि होती है। तब पंचेन्द्रियों के विषयो को विभाव जान कर छोड़ते है वे उनको अच्छे नही लगते है तब आत्मा में अधिक रुचि पूर्वकश्रद्धान बढ़ता है।

जब तक जीव के दर्शन मोह का सत्व व उदय रहता है तब तक ही पचेन्द्रिय विषय सुखों को भोगने में अशक्त रहता है। भोग भोगने की इच्छा करते है। यदि भाग्य बस मिल भी जाते है तो भी पूरण जैसे चाहिए वैसे नही मिलते तब उनकी प्राप्ति करने को सन्मुख होते हैं अथवा प्राप्ति करने का उपाय विचारा करते है इस प्रकार अज्ञानी मिथ्यात्व युक्त प्राणी तीव्र कर्मो का आस्रव बंध कर लेता है। कभी राज्य वैभव स्त्री पुत्र इत्यादि की प्राप्ति न होनें पर भी विषयाशक्त होने के कारण न भोगता हुआ भी भोग करता है परन्तु विषय वासनाओं से रहित सम्यग्दृष्टि जीव भोग भोगते हुए भी अनासक्ता के कारण कर्म बंधक नही होता है वह तो अपने आत्मा के स्वरूप का बार-बार विचार करने लग जाता है वह तो पर से रहित आत्म स्वभाव मे जाग्रत होता है सब इच्छाओ का त्याग कर निराकुल होता है ऐसा सम्यग्दृष्टी का स्वभाव है ॥६७३॥

अब आगे आस्रवों के भेदों को कहते हैं।

आस्रवस्य चतुर्भेदः मिथ्यात्वासंयम कषाय योगाः।
पचद्वादश पंचविंशति पंचदश सन्त्यैवम् ॥६७४॥

आस्रव के चार कारण है इनसे ही आस्रव होता है। आस्रव के मूल में चार भेद है मिथ्यात्व असंयत कषाय और योग। इनमें से मिथ्यात्व के पांच भेद हैं सशय विपरीत एकात विनय और अज्ञान असयम के बारह भेद है स्पर्श इन्द्रिय सयम नही रसना इन्द्रिय सयम नही, घ्राण इन्द्रिय संयम नही, चक्षु इन्द्रिय सयम नही, कर्ण इन्द्रिय सयम नहीं, अनिन्द्रिय (मन) सयम नहीं। पृथ्वी काय, जलकाय, अग्नि काय, वायु काय व वनस्पति काय और त्रश काय, असयम है इस प्रकार असंयम बारह प्रकार का है। कषायें सोलह है नव नो कषाय जिनमे अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ अप्रत्याख्यान क्रोध मानमाया लोभ प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ संज्वलन क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पुरुष नपुंसक वेद ये कषायों के भेद है। योग पन्द्रह होते है मनोयोग के चार सत्य मनोयोग असत्य उभय, अनुभय मनोयोग। तथा वचन योग के भी चार भेद होते है सत्य वचन योग असत्य

वचन योग उभय वचन योग अनुभय वचन योग काय योग के सात भेद है औदारिक काय योग औदारिक मिश्र काययोग वैक्रियककाय योग वैक्रियक मिश्र काय योग आहारक काययोग आहारक मिश्र काय योग कार्माण काय योग इन आस्रवो का विशेष कथन आस्रव तत्व के स्थान मे कर आये है इसलिए यहा भेद मात्र कहे गये है ।।६८३।।

जीवसमासानि सन्ति चतुर्दशत्रियक्षु त्रियग्गतौ च ।
देवनरक मनुज गतिषु देव नारक नृणां द्वौ द्वौ ।।६७७।।

जीव समास सामान्य से चौदह होते है त्रियच जीवो के त्रियचगति में चौदह जीव समास होते है वे इस प्रकार है एकेन्द्रिय बादर और सूक्ष्म होते है वे पर्याप्तक और अपर्याप्तक होने से चार जीव समासहोते है विकलेन्द्रिय व पचेन्द्रिय सेनी व असेनी पर्याप्तक अपर्याप्तक होते हैं तब दश जीव समास होते है। देव नारकी और मनुष्य गतियो में देक नारकी और मनुष्यो के दो ही समास होते है क्योकि इनमें सेनी पचेन्द्रिय ही होते है वे पर्याप्तक और अपर्याप्तक दो प्रकार के ही होते हैं इसलिए उनके दो दो जीव समास होते हैं ।।६७७।।

मनोवाग्योगसप्तेषु एकोऽनभयवाग्योगे पंचैव ।
औदारिकमिश्रयोश्च सप्तैवाष्टौकेवलिनः ।।६७८।।

सत्यमनोयोग असत्यमनोयोग उभयमनोयोग अनुभय मनोयोग सत्यवचन योग असत्य वचन योग तथा उभय वचन योग इस यौग वाले जीवो के सात जीव समास होते है। क्योकि ये सब योग एक पर्याप्त अवस्था में ही होते हैं इसलिए प्रत्येक मे एक जीव समास होता है। सेनी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवो के ही ये सात योग होते हैं इसलिए इन सात योगों में एक पर्याप्तक जीव समास होता है। प्रत्येक योग के मिलकर सात जीव समास होते है। अनुभव वचन मे पाँच जीव समास होते है दो इन्द्रियादि पर्याप्तक 'असेनी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवो के होते है इसलिए प्रत्येक का एक-एक ग्रहण करने पर पाच जीव समास होते है। औदारिक काय योग और औदारिक मिश्र काय योग वाले जीवो के सात-सात योग होते है। ऐकेन्द्रिय बादर और सूक्ष्म दो तीन चार पाँच इन्द्रिय सेनी और असेनी पर्याप्तक के सात योग होते है उसी प्रकार औदारिक मिश्र काय योग मे अपर्याप्तक सूक्ष्म और बादर दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय सेनी असेनि पच इन्द्रिय मिलकर कुल सात जीव समास होते है।' एक सेनी अपर्याप्तक अवस्था मे समुद्घात काल में होता है ।।६७८।।

वैक्रियक मिश्रयोश्च आहारक मिश्रयो एक समनस्कः।
कार्माणयोगे तथा औदारिक मिश्र वत्समासं ।।६७९।।
स्त्री पुस वेदयोश्चतुः नपुंसक वेद कषाय युक्तेषु ।
कुमति श्रुतयोः सर्वे विभगावधे पंचेन्द्रिय ।।६८०।।

वैक्रियक काय योग मे और वैक्रियक मिश्रकाय योग में एक पचेन्द्रिय सज्ञी जीव समास है। आहारक आहारक मिश्र मे भी एक सेनी पचेन्द्रिय जीव समास होता है। वक्रियक मिश्र काय योग मे अपर्याप्तक सेनी पचेन्द्रिय जीवसमास होता है। आहारकमिश्र मे पचेन्द्रिय सज्ञी पर्याप्तक एक जीव समास होता है। आहारक मिश्र में अपर्याप्तक सेनी पचेन्द्रिय जीव

समास होता है। कार्माण योग में औदारिक मिश्र के समान सात जीव समास होते हैं। स्त्री वेद में चार जीव समास होते है सेनी पचेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त तथा असेनी पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार होते है। पुरुष वेद में भी चार जीव समास होते है। असेनी पंचेन्द्रिय गर्भज पर्याप्त और अपर्याप्त सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार होने है। नपुंसक वेद में चौदह समास होते है क्योकि नपुंसक वेद वाले जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय सम्मूर्छन जन्म लेने वाले पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पती शख चीटी भोंरा व पचेन्द्रिय मेंढ़क मछली ये सब जीव सम्मूर्छन गार्भ वाले होते है तथा नारकी पंचेन्द्रिय सेनी इन सब के चौदह जीव समास होते है तथा मनुष्यो मे भी नपुसक वेद के धारी होते है। क्रोध मान माया लोभ आदि सव कषायो मे चौदह जीव समास होते है। क्योकि एकेन्द्रिय लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त सब जीवो के कषाये निश्चित रूप से पाई जाती है। कुमति कुश्रुति इन दोनो कुज्ञानो में भी चौदह जीव समास होते है। विभंगावधि में एक सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव समास होता है ॥६८५॥६८६॥ पु०

पर्याप्ता-पर्याप्तौ सन्तिमतिश्रुतावधि ज्ञानेषु ॥
मनः पर्यय केवलज्ञानयोः एक संज्ञिनः पंचेन्द्रिय ॥६८१॥

मति श्रुत और अवधिज्ञान इन तीनो में पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त दो जीव समास होते है मनः पर्ययज्ञान में सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक एक जीव समास होता है केवलीज्ञानी के भी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक सेनी एक ही जीव समास होता है। क्योंकि मनः पर्ययज्ञान सेनी पचेन्द्रिय सयमी मनुष्य के उत्पन्न होता है तथा केवलज्ञान सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त एक जीव समास होता है तथा समुद्घात अवस्था मे सेनी पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त दो जीव समास होते है ॥६८७॥

संयमेषु पर्याप्त समनस्क पंचेन्द्रियार्जीवाइति।
सर्व समासासंयमेऽचक्षुर्चक्षु दर्शने षडेवम् ॥६८२॥
अवधौ केवलेकं कुलेश्या चतुर्दश सुलेश्यासु द्वौ।
भव्याभव्येषु सन्ति सर्व जीव समासानि च ॥६८१॥

संयमासयम और सामायिक सयम क्षेदोपस्थापना संयम परिहार विशुद्धी सयम सूक्ष्म सापराय सयम और यथाख्यात सयम में सेनी पचेन्द्रिय पर्याप्तक एक जीव समास होता है। और असयम में चौदह जीव समास होते है। क्योकि सूक्ष्म वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक तथा दो तीन चार इन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो प्रकार होते है पचेन्द्रिय सेनी और असेनी पचेन्द्रिय जीव पर्याप्त और अपर्याप्त क भेद से सब जीव समास होते है क्योंकि ये सब जीव असयमी ही होते है। अचक्षुदर्शन में चौदह जीव समास होत है चक्षुदर्शन में छह जीव समास होते है चार इन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त पाच इन्द्रिय सेनी और असेनी ये पर्याप्त और अपर्याप्तक के भेद से छह जीव समास होते है। भव्य और अभव्य जीवों में सब जीव समास होते है। अवधिदर्शन और केवल दर्शन में एक सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक एक जीव समास होता है। पहले को तीन कुलेश्या कृष्ण नील कापोत लेश्या वाले

जीवों के सब जीव समास होते है शुक्ल पद्म पीत लेश्याओं में दो जीव समास होते है सेनी पचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक में दो जीव समास होते हैं ॥६८२॥६८३॥

क्षायिक क्षयोपशमे औपशमिके द्वौ समास प्रस्तूयते ।
मिश्रे पर्याप्तकंव पंचेन्द्रिय समनस्कंकं ॥६८४॥
सासादने समासा मिथ्यात्वे चतुर्दश समनस्के द्वौ ।
असंज्ञि द्वौ पंचेन्द्रियाहारके चतुर्दशाष्टौ च ॥६८५॥

क्षायिक सम्यक्त्व मे और क्षयोपशम व उपशम सम्यक्त्व मे पचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक समनस्क दो जीव समास होते हैं। उपशम सम्यक्त्व में सेनी पचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव समास होते है। विशेष सेनी पर्याप्तक मनुष्य व तिर्यच नारक जीवों के व देव गति मे प्रथमोपशमसम्यक्त्व होता है इस नियम से एक ही जीव समास होता है। परन्तु क्षायक और क्षयोपशम दोनो ही सम्यक्त्व पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो ही अवस्थाओं मे सेनी पचेन्द्रिय के दो जीवसमास होते है। मिश्र सम्यक्त्व में एक सेनी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव समास होता है। सासादन में अपर्याप्त सात और एक पंचेन्द्रिय सेनी पर्याप्त समास मिलकर कुल आठ जीव समास होते हैं मिथ्यात्व में चौदह जीव समास होते हैं। सेनी जीवो में पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त दो जीव समास होते है। असेनी जीवो मे पर्याप्त और अपर्याप्त दो जीव समास होते है। आहारक अवस्था मे चौदह जीव समास होते है क्योंकि आहारक जीव सब एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त सब जीवो के होता है। अनाहारक अवस्था मे सात अपर्याप्तक होते है एक सेनी पचेन्द्रिय अनाहारकपना सेनीपने मे ही होता है। ससारी जीव विग्रह गति मे अनाहारक होते है। केवली समुद्घात को मिलाने पर आठ जीव समास होते है ॥६८४॥६८५॥ (इति जीव समास।)

आगे मार्गणाओ मे गुण स्थान को कहते है।

नरक त्रियंनरामर गतिषु चतुः पंच चतुर्दश चतुः ।
पृथ्वी कायादिविकल त्रयाऽसज्ञानाम् मिथ्यात्वैकम् ॥६८६॥
पचेन्द्रिय सज्ञानाम् गुणस्थान चतुर्दश भवति सदा ।
द्रव्यस्त्रीणाम् पंच संज्ञानाम् भावेषु नवैव ॥६८७॥

नरक गति मे आगे के चार गुण स्थान होते है मिथ्यात्व सासादन मिश्र असयत सम्यग्दृष्टि ये चार गुण स्थान होते हैं। तिर्यच गति मे तिर्यंचो के मिथ्यात्व सासादन मिश्र असयत सम्यग्दृष्टि तथा सयतासयत ये पाच होते है। मनुष्यो मे चौदह गुण स्थान होते है। वे इस प्रकार है पहले से पाचवे तक कहे गये है उनसे प्रमत्त अप्रमत्त अपूर्व करण अनिवृत्ति करण सूक्ष्म सांपराय उपशांत मोह क्षीण मोह सयोग केवली और अयोग केवली ये चौदह होते हैं देव गति मे चार पहले नरक के समान ही गुण स्थान होते है। पृथ्वी जल वायु अग्नि और वनस्पति काय तथा दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय असेनी पचेन्द्रिय इन जीवों के एक पहला मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। सेनी पंचेन्द्रिय जीवो के चौदह गुण स्थान होते है। द्रव्य स्त्री और द्रव्य नपुसक वेद वाले जीवों के पहले के पाच गुण स्थान होते है परन्तु

भाव वेद वाले जीवों के नौ गुण स्थान होते है मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्ति करण पर्यन्त होते है पुरुष वेद और द्रव्य पुरुष वेद वाले जीवों के पहले से नौ गुण स्थान तक होते हैं। परन्तु द्रव्य पुरुष के तेरह गुण स्थान होते है।

विशेष यह है कि एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय जीवों के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है परन्तु अपर्याप्त अवस्था में सासादन गुण स्थान उपपाद योग मे पाया जाता है इस तरह एकेन्द्रिय से लेकर चारइंद्रिय तक के दो गुण स्थान होते है। त्रश कायक जीवो के काय में चौदह गुण स्थान होते है। प्रश्न—एकेन्द्रिय जीवों के सासादन गुण स्थान कैसे सम्भव है? समाधान—जो देव संक्लिष्ट परिणामों से युक्त देव उपशम सम्यक्त्व की विराधना कर सासादन का स्वामी हुआ और एकेन्द्रिय जीवो में उत्पन्न हुआ तब उपपाद योग मे सासादन गुण स्थान होता है और वृद्धि योग में मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। मिथ्यादृष्टि सक्लिष्ट परिणामी जीव जिसने छह महिने शेष आयु के रहने पर एकेन्द्रिय जीव की आयु का बध किया है और अन्तर्मुहूर्त शेष आयु के रहने पर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और कषाय के उदय आ जाने के कारण सम्यक्त्व की विराधना कर सासादन मरण काल में किया पाणि मुक्ता गति से निग्रह गति को प्राप्त हो एक समय या दो समय में एकेन्द्रिय जीव के उपपाद स्थन को प्राप्त हुआ उस काल में सासादन गुण स्थान स्थावर एकेन्द्रिय जीवो के पाया जाता है। अग्निकाय वायु कायक जीवों के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है॥

सत्यानुभय मन वचनोः संयोगान्ताश्चाऽसत्योभयोश्च।
द्वादश गुणस्थानान्यौदारिकयोगे सयोगान्ताः॥६८८॥
औदारिकमिश्रे च एक द्वि चतुस्त्रयश्च केवली च।
वैक्रियके चतुः मिश्रयोगे त्रयाहारकयुगलैकम्॥६८९॥
कार्माणे चतु नवत्रिवेदनोकषाय त्रिकषायेषु।
लोभेदश कुमति श्रुत ज्ञानयो द्वे गुण स्थाने॥६९०॥
विभंगावधेप्रग्द्वे त्रय सम्यग्ज्ञाने नवस्थानं।
मनः पर्यये सप्त केवलज्ञाने द्वेस्थाने च॥६९१॥

आगे कहते हैं कि कौन-कौन से योग मे कौन-कौन से गुण स्थान होते है।

सत्यमनोयोग अनुभय मनोयोग सत्य वचन योग और अनुभय वचन योग वाले जीवों में तेरह गुण स्थान होते है। असत्य और उभय मनोयोग और वचन योग में मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर क्षीण कषाय पर्यन्त बारह गुण स्थान होते हैं। औदारिक काय योग में तेरह गुण स्थान होते है। औदारिक मिश्रकाय-योग में पहला दूसरा चौथा ये तीन गुण स्थान होते है क्योकि इन तीन गुण स्थानो में ही संसारी जीव का मरण होता है मरण के पीछे विग्रह गति करके नवीन जन्म लेने के स्थान पर अपने शरीर के योग्य नौ कर्म वर्गणाओ को ग्रहण करता है उस काल में औदारिक नो कर्मवर्गणाओ को पूर्ण ग्रहण करता है तव तक औदारिक मिश्र काय योग होता है। चौथा औदारिक मिश्र केवली समुद्घात अवस्था मे होता

है वैक्रियक काय योग में चार गुण स्थान होते है और वैक्रियक मिश्र योग पहला दूसरा व चौथा गुणस्थान होते है। आहारक और आहारक मिश्र वाले जीवों के एक प्रमत्त ही गुणस्थान होता है। कार्माण योग मे भी औदारिक मिश्र के समान ही जान लेना चाहिए। स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुसक वेद वाले जीवो के मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्त करण तक नौ गुण स्थान होते है नव नो कषायो मे व क्रोध मान माया इन तीन कषायो मे मिथ्यात्व से लेकर अनिवृत्त करण गुण स्थान तक नो गुण स्थान होते हैं लोभ कषाय में दश गुण स्थान तक (सूक्ष्म सापराय) होते है। कुमति कुश्रुत ज्ञानी जीवो के दो गुण स्थान होते है मति श्रुतावधि ज्ञान वाले जीवो के असयत के लेकर क्षीण मोह गुण स्थान तक नो गुण स्थान होते हैं मन. पर्यय ज्ञानी जीवो के प्रमत्त से लेकर क्षीण मोह तक सात गुण स्थान होते है। केवल ज्ञान में दो गुण स्थान होते हैं एक सयोगी दूसरा अयोगी चकार से सिद्ध भगवान के केवल ज्ञान ही होता है।

सामायिकयुगलयोर्नव परिहारे द्वे सूक्ष्मे सूक्ष्मम्॥
यथाख्याते चतुर्दश सयते स्वेऽसयततेश्चतुः॥६९२॥

चक्ष्वचक्षु दर्शनयो द्वादशावधौ नव केवले द्वे च।
प्रश्निन्नलेष्यासु चतुः पीतपद्मे सप्त शुक्लेसा॥६९३॥

भवोसर्वेऽभव्ये मिथ्यात्वैव क्षयिकयेकादश।
क्षायोपशमिके चतु औपशमिक सम्यक्त्वे अष्ट॥६९४॥

मिथ्यात्वे सासादन मिश्रे स्वक्स्वक् स्थानम् संज्ञिनो।
द्वादशा मनस्के द्वे चाहारके सर्वेऽनेपंच॥६९५॥

सामायिक छेदोपस्थापना वाले जीव प्रमत्त गुण स्थान से लेकर अनिवृत्तकरण गुण स्थान तक चार गुण स्थान होते हैं परिहार विशुद्धी मे प्रमत्त अप्रमत्त दो ही होते है सूक्ष्म सापराय सयत मे एक सूक्ष्म सापराय गुणस्थान होता है यथाख्यात सयत मे उपशात मोह क्षीण मोह सयोग, अयोग केवली चार गुणस्थान होते है। देश सयत का एक देश सयत ही गुण स्थान होता है असयत सम्यग्दृष्टी एक असयत दृष्टी गुलस्थान होता है अथवा नीचे के भी असयत गुणस्थान के नाम को ही पाते हैं। चक्षु, अचक्षु दर्शन वाले जीवो के बारह गुण स्थान होते हैं क्योकि मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह गुणस्थान तक जीव होते है। अवधि दर्शन मे असयत सम्यग्दृष्टी से लेकर क्षीण मोह बारहवें गुण स्थान तक होता है केवल दर्शन मे दो गुणस्थान होते है सयोग केवली अयोगी जिन सिद्ध भगवान गुणस्थानातीत है। आगे की तीन अशुभ लेश्याये कृष्ण नील कापोत इनमें चार गुणस्थान होते हैं पतिपद्म लेश्याओं से मिथ्यात्व से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक सात गुणस्थान होते है। शुक्ल लेश्याये मिथ्यात्व से लेकर सयोग केवली पर्यन्त तेरह गुणस्थान होते है। भव्यजीवो के सब चौदह जीव समास होते है व चौदहगुणस्थान होते है अभव्य जीवो के एक मिथ्यात्व ही गुणस्थानहोता है। क्षायकसम्यक्त्व में चौथे असंयत क्षायक सम्यग्दृष्टी से लेकर ग्यारह गुण स्थान होते है क्षयोपशमिक मे चार गणस्थान होते है। उपशय क्षयोपशम में चार गुणस्थान होता है द्वितीयोपशम में आठ गुणस्थान

होते है। मिथ्यात्व सासादन सम्यग्दृष्टी व मिश्र सम्यग्दष्टी अपने-अपने गुणस्थान में ही रहते हैं। सेनी पचेन्द्रिय जीवों के बारह गुण स्थान होते है तथा अनाहारकों के पांच गुणस्थान होते है मिथ्यात्व सासादन असंयत सम्यग्दृष्टी संयोग केवली अयोग केवली भगवान अनाहारक होते हैं सिद्ध जीव नित्य ही अनाहारक होते हैं ६९२ से ॥६९५॥ तक

आगे मार्गणा स्थानो में योगों का कथन करते है।

नारक देवगतयोञ्च त्रियश्चैकादश त्रयोदश नरौ।
एकेन्द्रियो त्रिविकले चतु सकले सर्व योगाः ॥६९६॥
त्रशकाये सर्ववेद स्त्री संढयोस्त्रयोदश सर्वे पुंवे।
क्रोधादि चतुस्के सर्व कुज्ञानयो त्रयोदशयोगः ॥६९७॥

नरक गति में आहारक, आहारकमिश्र औदारिक, औदारिकमिश्र विना ग्यारह योग होते है। वे सब इस प्रकार है सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग सत्य-वचन योग, असत्य वचन योग, उभय वचन योग, अनुभय वचन योग, (औदारिक, औदारिक मिश्र वैंक्रियक, वैक्रियक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र)और कर्माणयोग ये काय के तीन कुल ग्यारह है। सत्यमन असत्यमन उभयमन सत्य वचन असत्य वचन उभय वचन अनुभय वचन औदारिक मिश्र और कार्माण ये ग्यारह योग होते हैं। मनुष्य गति मे वेक्रियक, वैक्रियक मिश्र विना तेरह योग होते हैं एकेन्द्रिय जीवो के औदारिक, औदारिक मिश्र और कर्माण ये तीन योग होते है। विकलेन्द्रिय जीवो के औदारिक, औदारिक मिश्र और अनुभय वचन योग तथा कर्माण योग ये चार योग होते है। असेनी पचेन्द्रिय में सत्य वचन असत्य वचन अनुभय वचन ये चार औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्माण ये सात योग होते है। सेनी पचेन्द्रिय जीवों के पन्द्रह योग सब ही होते हैं। काय की अपेक्षा स्थावर काय में तीन योग होते है वे औदा· रिक, औदारिक मिश्र और कार्माण। त्रशकाय मे पन्द्रह योग सब होते है। स्त्री वेदवाले जीवो के आहारक, आहारक मिश्र विना तेरह योग होते हैं नपुंसक वेद मे भी स्त्री के समान ही तेरह योग होते है चार मन चार वचन औदारिक, औदारिक मिश्र वैक्रियक और वैक्रियक श्रिम कार्माण ये तेरह होते हैं। पुरुप वेद में सब योग होते है क्रोध, मान, माया, लोभ, चारों कपायों मे सब योग होते है।

विशेप यह है कि पर्याप्त अवस्था मे नरक गति में नारकी जीवों के चार मन के चार वचन के एक वैंक्रियक काय योग ये नौ होते है अर्पाप्त अवस्था में वैक्रियक मिश्र और कार्माण ये दो ही योग होते हैं। सामान्य से ग्यारह होते है इसी प्रकार देवगति में योगों का क्रम है। त्रियच गति में पर्याप्त काल में एकेन्द्रिय के पर्याप्त अवस्था में एक औदारिक काय योग होता है अर्पाप्त अवस्था में औदारिक मिश्र और कार्माण योग होते है नारक देव पचे-न्द्रिय सेनी त्रियंच व मनुष्य के पर्याप्त काल मे नौ योग होते है परन्तु मनुष्य सयमी प्रमत्त के ग्यारह योग होते है यहां पर आहारक और आहारक मिश्र ये दो मिल जाते है अर्पाप्त अवस्था मे औदारिक मिश्र और कर्माण ये दो ही योग होते हैं देवों के कहे प्रमाण हैं। दो इन्द्रिय जीवो के पर्याप्त काल में औदारिक काय योग और अनुभय वचक योग तथा तीन चार

इन्द्रिय में भी समझना चाहिए अपर्याप्त अवस्था में औदारिक मिश्र और कार्माण ये दो योग होते हैं ।

कुमति कुश्रुत ज्ञान मे आहारक, आहारक मिश्र के विना तेरह योग होते हैं विभंगावधि में औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र आहारक मिश्र और कार्माण योग विना दश योग होते है । मति श्रुतावधि ज्ञान इन तीनो ज्ञानो में सब योग होते है । मनः पर्यय ज्ञान मे वैक्रियक वैक्रियक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र औदारिक मिश्र और कार्माण योग विना चार मन के चार वचन के एक औदारिक काय योग कुल नौ योग होते है । केवल ज्ञान में सात योग होते है सत्य मनोयोग अनुभय मनोयोग सत्य वचन योग अनुभव वचन योग औदारिक काय योग औदारिक मिश्र काय योग कार्माण योग औदारिक मिश्र और कार्माण योग केवली समुद्घात की अपेक्षा से हैं ।

विशेष—अनतानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो में तेरह योग होते है क्योंकि आहारक और आहारक मिश्र नही होते है । अप्रत्याख्यान, क्रोध, मान, माया, लोभ इनमे सामान्य से तेरह योग होते हैं प्रत्याख्यान कषाय में वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र औदारिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण योग नही होते हैं शेष ९ नो योग होते है । सज्वलन व नो कषायो में वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र औदारिक मिश्र कार्माण योग विना ग्यारह योग होते है ।

स्तः सामायिक युगले एकादश नवयुगले देशविरते ।
यथाख्याते वैक्रियक आहारक युगले नवैकादश ॥६९८

सामायिक क्षेदोपस्थापना इन दो सयमो मे ग्यारह योग होते है । चार मन के चार वचन के औदारिक काय योग आहारक, आहारक मिश्र ये ग्यारह होते है । परिहार विशुद्धि और सूक्ष्म-सापराय ये दोनो सयम युगल के जो श्लोक में दिया है इससे दोनो का ही ग्रहण किया गया है क्योकि यहा सयम का विषय है । इन दोनो मे नौ-नौ योग होते है यथाख्यात चरित्र में आहारक, आहारक मिश्र वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र विना शेष ग्यारह योग होते है । देश सयत में भी नो योग होते है क्योकि यह त्रियंच व मनुष्यों के होता है वह पर्याप्त अवस्था प्राप्त होने पर होता है इस गुण स्थान मे नौ योग होते है औदारिक काय योग और चार मन के चार वचन के चार कुल नो योग होते है । असयम मे तेरह योग होते है इसमे आहारक, आहारक, मिश्र दो विना तेरह योग होते है । भव्य जीवो के सब योग होते है तथा अभव्य के तेहर योग होते है आहारक आहारक मिश्र के बिना ।६९८॥

चक्ष्वचक्ष्ववधि केवल दर्शनेषु द्वादशपंचदशे च ।
सप्तैव त्रिकृष्णादिषु त्रयोदश पीतादिषु सर्वः ॥६९९॥

चक्षु दर्शन वाले जीवों के बारह योग होते है औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र चार मन के चार वचन के कुल बारह होते है । अचक्षुदर्शन चार मन योग के चार वचन योग के साव काय के सब योग होते है । अवधि दर्शन मे सब योग होते है । अवधि केवल दर्शन में सात योग होते है केवल ज्ञान के समान है ।

कृष्ण नील कापोत तीनों लेश्यायों में चार मन चार वचन औदारिक, औदारिक मिश्र वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र और कार्माण ये तेरह योग होते है। पीत और पद्म लेश्यायों में सब ही योग होते है। तथा शुक्ल लेश्या मे भी सब योग होते है (अभव्य जीवों के तेरह योग होते है आहारक, आहारक मिश्र विना भव्य में सब ही योग होते है श्लोक में काय से ग्रहण किया गया है।

अभव्येषु त्रयोदश भव्ये क्षायिके वेदके सर्वे ॥
उपशमिक त्रयोदश सासादन मिथ्यात्वेषु तथा ॥७००।
मिश्रे च दश सज्ञिने सर्वेऽसंज्ञिने चतुश्चर्दशनं ॥
आहारके च वर्ज्यं कार्माण मनाहारकेष्वेकम् ॥७०१

अभव्य जीवों के आहारक, आहारक मिश्र को छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं। भव्य जीवो में पन्द्रह योग होते है। क्षायिक सम्यक्त्व और क्षयोपशम सम्यक्त्व में सब योग होते है उपशम सम्यक्त्व मे आहारक, आहारक मिश्र को छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं। सासादन मिथ्यात्व में भी तेरह योग होते है मिश्र में दश योग होते है औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र कार्माण योग रहित होते है। सेनी जीवों के सब ही योग होते है अनाहारक जीवो के एक कार्माण योग होता है। असेनी जीव के चार योग होते है औदारिक, औदारिक मिश्र कार्माण अनुभय योग ये चार होते हैं आहारक मार्गणा में कार्माण योग को छोडकर शेष चौदह योग होते है। इस प्रकार सक्षेप से मार्गणा स्थानों में कथन किया है। विशेष आगम से जान लेना चाहिये ।७००।७०१॥

आगे उपयोगो का कथन करते है।

देव नारकत्रयक्षु नव-नव मनुजे द्वादशोपयोगाः।
एक द्वि त्रि चतु पचाक्षेषु त्रि द्वादश भवन्ति ॥७०२॥
स्थावरेषु त्रय त्रइकाये द्वादश मन वच योगेषु।
सत्योऽष्ुयये द्वादशाऽसत्योभययेदश भवन्ति ॥७०३॥
औदारिक द्वादश वैक्रियके युग्मे नव सप्तोपयोग।
आहारकयोगेषट नवौदारिक कार्माणयोश्च ॥७०४॥

देव नारक तथा त्रियंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टियों के पाच उपयोग होते है कुमति कुश्रति विभगावधि और चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन ये पाच होते है ये भी पचेन्द्रिय जावा की अपेक्षा से कहे गये हैं। सम्यग्दृष्टी देव नारक और त्रियच जीवो के मति श्रुति अवधि ये छह उपयोग होते हैं। कुल मिल नौ-नौ उपयोग होते है सम्यग्दृष्टी मनुष्यो के चार दर्शन के चक्षु अचक्षु अवधि और केवल दर्शन। ज्ञान के मति श्रुतावधि मनः पर्यय और केवल ज्ञान कुमति कुश्रुत विभगावधि कुल बारह मिथ्यादृष्टी और सम्यग्दृष्टी दो प्रकार के पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति काय इन पाचो स्थावरो में कुमति कुश्रुत और अचक्षु दशन ये तीन उपयोग नियम से होते है। दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय जीवो के कुमति कुश्रत और अचक्षु दर्शन ये तीन उपयोग होते है। चारइन्द्रिय के चार उपयोग होते है

कुमति कुश्रुति और चक्षुदर्शन अचक्षु दर्शन ये चार है। पचेन्द्रिय में मिथ्यादृष्टी के पांच उपयोग होत हैं कुमति कुश्रुत विभगावधि व चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन ये पाच उपयोग होते है परन्तु सम्यग्दृष्टी जीवो के चार दर्शन और पाँच ज्ञान होतें हैं दोनों को मिलकर वारह उपयोग पचेन्द्रिय जीवों के होते है। काय की अपेक्षा से स्थावर काय मे तीन उपयोग होते है कुमति कुश्रुत और अचक्षुदर्शन ये तीन होते है। त्रश काय मे वारह उपयोग होते हैं। अनुभय मनोयोग सत्य बचन और अनुभय वचन योगो मे कुमति कुश्रुत विभंगावधि मति श्रुतावधि मनः पर्यय और केवल ज्ञान व चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन केवल दर्शन ये वारह होते हैं। उभय मनोयोग और असत्य मनोयोग तथा असत्य उभय वचन योगो में दश उपयोग होतें है कुमति कुश्रुत विभगावधि मति श्रुतावधि मनः पर्यय ज्ञान तथा चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन ये दस उपयोग होते है।

औदारिक काययोग मे चार दर्शनोपयोग आठ ज्ञानोपयोग ये वारह उपयोग होतें है औदारिक मिश्र योग में कुमति कुश्रुत विभंगावधि मति श्रुतावधि चक्षु अचक्षु अवधि ये नौ उपयोग होते हैं केवली के समुद्घात अवस्था में दो ही उपयोग होते है। औदारिक मिश्र काययोग में मन पर्यय ज्ञान नही होता है और विभंगावधि तथा चक्षु दर्शन नही होते हैं शेष नौ ही उपयोग होते है। वैक्रियक काययोग में कुमति कुश्रुत विभंगावधि ये तीन तथा मति श्रुतावधि ये तीन चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन ये नो उपयोग होते है। वैक्रियक मिश्र मे अचक्षु दर्शन अवधि दर्शन कुमति कुश्रुत मति श्रुतावधि सात उपयोग होते है। आहारक, आहारक मिश्र योग मे मति श्रुतावधि तथा चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन छह योग होते है। कार्माण योग मे कुमति कुश्रुत मति श्रुतावधि और केवल ज्ञान तथा अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन केवल दर्शन ये नौ उपयोग होते है।

विशेष—यह है कि औदारिक मिश्र और वैक्रियक मिश्र अपर्याप्त काल में चक्षु दर्शन और विभगावधि व मन. पर्यय ज्ञान ये तीनों नहीं होतें है ये नियम से पर्याप्त अवस्था में ही जीवो के होते है देव मनुष्य और त्रियच नारकी जीवों में होते है। मनः पर्यय ज्ञान नियम से प्रमत्त संयत छठवे गुणस्थान वाले किसी ऋधि धारी मुनि के ही उत्पन्न होता है। विभगावधि ज्ञान देव नारकी मनुष्य त्रियंच गतियों मे होता है वह पर्याप्तियोके पूर्ण हो जाने व अन्तरमुहूर्त जन्म लेने के पीछे होता है और चक्षुदर्शन का भी यह नियम है कि पर्याप्तियाये जब पूर्ण हो जाती है तब चक्षुदर्शन होता है ।७०८।७०९।७१०।

स्त्री नपुंसक वेद कषायेषु

स्त्री नपुंसक पुवेद कषाय कुत्रिज्ञान सुज्ञानेषु ॥
नव नव दश पंच सप्तोपयोगाः भंवन्त्येवम् ॥७०५॥
केवले सामायक युग्मे सूक्ष्मे परिहार विशुद्धिषु ॥
द्वौ सप्त सप्त षट् च यथाख्यातिदेशे नव षट् ॥७०६॥
असंयत चक्ष्वचक्ष्ववधिः केवल दर्शन कुलेश्याश्वेव ॥
नव दश सप्त द्वौ च नव पीतपद्मे दश शुक्लेद्वादश ॥७०७॥

स्त्री वेद और नपुंसक वेद में कुमति कुश्रुत विभंगावधि तथा मति ज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान ये छह ज्ञानोपयोग तथा चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन ये नो होते है। पुरुष वेद में केवल दर्शन और केवलज्ञान के विना कुमति आदि तीन मतिश्रुतादि चार चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन होते है। काषायों में सामान्य से केवल ज्ञान और केवल दर्शन को छोड़कर शेष दश उपयोग होते है।

विशेष यह है कि स्त्री वेद और नपुंसक वेद मिथ्यादृष्टि गुण स्थान से लेकर नौवे गुण स्थान तक वाले जीव के होते है। जहां तक मिथ्यात्व के साथ वेदों का सबन्ध रहता है जहां तक पाच ही उपयोगी होते है कुमति कुश्रुति विभगावधि तथा चक्षु दर्श और अचक्षुदर्श जब सम्यक्त्व हो जाता है तब उस अवस्था मे छह उपयोग होते है मति श्रुत अवधिज्ञान ये तीन तथा चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन होते है सब मिलकर नौ होते है। पुरुष वेद में तीन कुज्ञान चार सुज्ञान तीन दर्शन ये दश होते है। मिथ्यात्व का सम्बन्ध जब तक पाच हो उपयोग होते है सम्यक्त्व और सयम की वृद्धि होने पर सात उपयोग होते है मति श्रुत अवधि यह असयत के भी होते है परन्तु मनः पर्ययज्ञान सयम की वृद्धि से युक्त साधू के ही होता है अवधि दर्शन भी सम्यग्दृष्टि के ही होता है। अनन्तानुबन्धी कषाय मे पाँच उपयोग होते है कुमति कुश्रुति विभगावधि तथा चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन अप्रत्याख्यान मे छह उपयोग होते है मति श्रुति अवधि चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन ये छह होते है। प्रत्याख्यान में भो ये ही छह होते है संज्वलन कषाय और छह नो कषायों में दो भेद है मिथ्यात्व के साथ होवें तब पाच उपयोग होते है सम्यक्त्व के साथ हो वे तब सात उपयोग होते है ये ही सज्वलन कषायो में होते है क्योकि संज्वलन कषाय मे एक मनः पर्यय ज्ञान बढ जाता है। कुल दश होते है।

कुमति कुश्रुत विभंगावधि में पांच उपयोग होते है तीन कुज्ञान और चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन इस प्रकार पाँच उपयोग होते है मति श्रुत अवधि मनः पर्यय इन चारों ज्ञानों में सात उपयोग होते है। असयत गुण स्थान देश संयत वाले जीवों के ६ छह उपयोग होते हैं तथा जहाँ पर अवधिज्ञान नही होता है वहा पर चार उपयोग होते है सयत प्रमत्त गुण स्थान से क्षीण मोह पर्यन्त सात उपयोग होते है। केवल ज्ञान में दो उपयोग होते है एक केवल ज्ञान दूसरा केवल दर्शन। सामायक और छेदोपस्थापना इन दोनो सयमे में सात उपयोग होते है। मति श्रुत अवधि मनः पर्यय ये चार ज्ञान के तथा चक्षु दर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन ये सात उपयोग होते है। सूक्ष्मसांपराय में भी सात उपयोग होते है परिहार विशुद्धि में मति सब श्रुतावधि ये तीन ज्ञान चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन में छह उपयोग होते है। यथाख्यात चारित्र में नो उपयोग होते है। मति श्रुत अवधि मनः पर्यय और केवल ज्ञान तथा चारदर्शन ये सब नौ उपयोग होते है। देश सयत मे तीन पहले के मति श्रुतावधि तथा तीन दर्शन ये छह होते है। असयतो मे नौ उपयोग होते है, तीन कुज्ञान तीन सुज्ञान तीन दर्शन ये नौ होते हैं। असयत सम्यग्दृष्टि के छह ६ उपयोग होते हैं मति श्रुतावधि और चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन होते हैं। मिथ्यात्व में पांच उपयोग सासादन में तथैव मिश्र में तीन कुज्ञान तीन सुज्ञान तीन दर्शन ये नव उपयोग होते हैं। चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन अवधि दर्शन में चक्षु अचक्षु

दर्शन इन दोनो में दस उपयोग होते है क्योंकि मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह तक सब जीवो के पाए जाते है इन दोनो में केवल ज्ञान और केवल दर्शन दो उपयोग नही होते है। अवधि दर्शन में सात उपयोग होते है मति श्रुतावधि और मनः पर्यय ये चार ज्ञान तथा चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन। केवल दर्शन में दो उपयोग होते है केवल ज्ञान केवल दर्शन होते है।

कृष्ण नील कापोत इन लेश्याओ में कुमति श्रुतविभंगावधि व चक्षु अचक्षु अवधि मतिश्रुत अवधि ये नौ होते है। पीत पद्म लेश्याओ में तीन कुज्ञान चार सुज्ञान और तीन दर्शन पहले के सब होते है केवल दर्शन ज्ञान बिना। शुक्ल लेश्या में सब ही उपयोग होते है। कृष्णादि छहो लेश्याये मिथ्यादृष्टि जीव से लेकर क्रम से सयोग केवली तक पायी जाती है। इनकी व्याख्या गुण स्थानो की चर्चा में कर आये है ॥७११॥७१२॥७१३॥

सर्वभव्येऽभव्ये पंच च नव क्षायिकसम्तक्त्वे ॥
क्षायोपशमिके सप्तौपशमिक सम्यक्त्वे च एकं ॥७०८॥
मिश्रे षट् सासादन सम्यक्त्वे पच च मिथ्यात्वे वा ॥
समनस्के अमनस्के दश चतु राहारके सर्वः ॥७०९॥

भव्य जीवो मे तीन मिथ्याज्ञान पाच सम्यग्ज्ञान चार दर्शन सब उपयोग होते है। परन्तु अभव्य जीवो मे कुमति कुश्रतविभगावधि ये तीन चक्षु दर्शन अचक्ष दर्शन कुल पाच उपयोग होते है। क्षायिक सम्यक्त्व में कुमति कुश्रुत ।विभगावधि को छोड़कर शेष उपयोग होते है क्षयोपशम सम्यक्त्व मे कुमति आदि तीन केवल दर्शन केवल ज्ञान इन पाच के बिना शेष सात उपयोग होते है उपस मसम्यक्त्व मे भी येही उपयोग होते हैं। मिश्र सम्यक्त्व मे छह उपयोग होते हैं कुमति कुश्रुत विभगावधि मति श्रुतावधि ये सब मिश्र।मिश्र होते है। सासादन सम्यक्त्व मे पाच होते है कुमति आदि तीग और चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन पाच ही होते है तथा मिथ्यात्व मे येही पाच होते है। सेनी पचेन्द्रिय जीवो मे दश उपयोग होते है। कुमति कुश्रुत विभगावधि तथा मति श्रुत अवधि मन पर्यय तथा चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन कुल दश उपयोग होते है। अमनस्क जीवो मे चार उपयोग होते है कुमति कुश्रुत चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन। आहारक जीवों में सब ही उपयोग होते है। परन्तु अनाहारक मे दश ही उपयोग होते है। विभगावधि और मनः पर्यय को छोड़कर शेष होते है। इसका कारण यह है कि विभगावधि पर्याप्त अवस्था मे ही होती है मनः पर्यय ज्ञान भी छठवें गुण स्थाग से लेकर वारह वे गुण स्थान वाले जीवो के होता है वह भी आहारक अवस्था मे ही होता अनाहारक अवस्था में नही होता है। ,दूसरी बात यह है ससारी जीव विग्रह गति मे ही अनाहारक होते है विग्रह गति में विभगाबधि ,और मन. पर्यय दोनो ज्ञान नही होते है ॥७१६॥

नव जीव समासेषु चतुष्वेकं प्रत्येक द्वौ द्वादश।
सप्तेष्वेक सप्त्वेषु द्वौ द्वादश नव सप्त ॥७१०॥

नव जीव समासो में एक योग होता है चार जीव समासो में दो योग होते है एक

जीव समास में बारह योग होते है सात जीव समासों में एक योग होता है सात जीव समासों में दो योग एक समास में बारह योग तथा सात योग होते है। ये किस प्रकार होते है ? एकेन्द्रिय अपर्याप्तक सूक्ष्म दोइन्द्रिय नो जीव समासो में एक योग कैसे होता है ? एकेन्द्रिय अपर्याप्त सूक्ष्म में एक औदारिक मिश्र काय योग होता है एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त में औदारिक काय योग एक होता है एकेन्द्रिय वादर अपर्याप्तक जीवो के एक औदारिक मिश्र काय योग होता है। एकेन्द्रिय वादर पर्याप्तक जीवों के एक औदारिक काय योग होता है दोइन्द्रिय अपर्याप्त में एक औदारिक मिश्र काय योग है तीन इन्द्रिय अपर्याप्तक में औदारिक मिश्र काय योग एक होता है चारीन्द्रि अपर्याप्तक में औदारिक मिश्र काय योग एक ही होता है असेनी पंचेन्द्रिय जीव में एक अपर्याप्तक मे औदारिक मिश्र सेनी पचेन्द्रिय के एक औदारिक मिश्र काय योग होता है। इस प्रकार नव जीव समासों में एक काय योग होता है। आगे चार जीव समासो मे दो कोन से योग होते है ? दोइन्द्रिय पर्याप्त के औदारिक काय योग और अनुभय वचनयोय होता है तीन इन्द्रिय के औदारिककाय योग और अनुभय वचन योग होता है। चारइन्द्रिय पर्याप्तक के औदारिक काय योग तथा अनुभय वचन योग होता है असेनी पंचेन्द्रिय के अनुभय वचन योग तथा औदारिक काय योग ये दो प्रकार के होते है इस चार जीव समासो मे दो योग होते है एक पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव समासो में बारह योग होते है। सत्य असत्य उभय अनुभय मन के चार वचन के चार तथा औदारिक वैक्रियक आहारक-आहारक मिश्र ये बारह योग होते है। सात स्थानों में एक कार्माण योग होता है एकेन्द्रिय वादर सूक्ष्म दोइन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय पांच इन्द्रिय असेनी पांच इन्द्रिय सेनी पूर्व शरोर को छोड़कर विग्रह गति में एक कार्माण योग होता है अपर्याप्त अवस्था विग्रह गति में।• सात पर्याप्त स्थानो में एक औदारिक योग होता है तथा एकेन्द्रिय अपर्याप्त सूत्र्म एकेन्द्रिय वादर अपर्याप्त दोइन्द्रिय अपर्याप्त तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय अपर्याप्त पचेन्द्रिय असेनी अपर्याप्तक सेनी पंचेन्द्रिय अप-र्याप्तक इन सातो मे एक औदारिक मिश्र काय योग होता है। दोइन्द्रिय से लेकर असेनी पचेन्द्रिय तक पर्याप्तक जीवों के दो योग होते है औदारिक काय और अनुभय वचन योग। पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के बारह योग होते है चार मन के चार वचन के चार काय के औदारिक वैक्रियक आहारक-आहारक मिश्र काय योग होते है। पचेन्द्रिय पर्याप्तक के एक साथ औदारिक व वैक्रियक के पर्याप्त पचेन्द्रिय गति की अपेक्षा से नौ योग एक साथ होते है। पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य के चार मन के चार वचन के एक औदारिक काय योग नौ योग होते है देवो के चार मन के चार बचन के एक वैक्रियक काय योग ये नौ होते है एक पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव समास होता है ।।७१६।।

सिद्धान्त सार मे भी कहा है।

णवसु चउक्के इक्के जोगा इगि दो हवन्ति वारसया ।।
तब्भव गईसु एदे भवंतर गईसु कम्मईयो ।।४३।।
सत्तसु पुण्येसु हवे औरालिप मिस्सयं अपण्णेसु ।।
इगि इग जोग विहीणा जीव समासेसु तेणेया ।।४४।।

आयरुपयोगा दशतूभय समासयोश्चतुः सप्त सन्ति ।।
अपर्याप्त पर्याप्ते दश सञ्ज्ञिषु व द्वादश ।।७११।।

दश जीव समासो मे तीन उपयोग होते है वे कौन-कौन से होते है ? एकेन्द्रिय सूक्ष्म और वादर पर्याप्त अपर्याप्त दोइन्द्रिय तीन इन्द्रिय चारिद्रय अपर्याप्त पचेन्द्रय अपर्याप्त इन दश स्थानो मे कुमति कुश्रुति और एक चक्षुदर्शन ये तीन उपयोग होते हैं। चारिन्द्रिय पर्याप्त तथा असेनी पर्याप्त जीवो मे चार जीव समास होते है वे ये है कुमति कुश्रुत तथा चक्षुदर्शन ये चार उपयोग होते है। सेनी पचेन्द्रिय अपर्याप्तक के सात उपयोग होते है वे कौन से है ? कुमति कुश्रुत तथा मति श्रुतावधि ये पॉच तथा अचक्षुदर्शन और अवधि दर्शन ये कुल सात उपयोग होते है। पर्याप्तक जीवो के दश उपयोग होते है वे इस प्रकार है कुमति कुश्रुति कुअवधि और मति श्रुत अवधि मन पर्यय ये सात चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन ये कुल दश उपयोग होते हैं। कुल उपयोग बारह होते है मनुष्य पचेन्द्रिय केवली के दो उपयोग होते है यहा अधिक से अधिक जीवों मे उपयोग कितने होते हैं यह स्पष्ट कर दिया गया है ।।७११।।

आहारौ वच्चैव त्रिदश योगार्भवन्त्य संयमत्रिषु ।।
एकादश सतमे नव सप्त सप्त दश मिश्रेषु ।।७१२।।

मिथ्यात्व सासादन असयत सम्यग्दृष्टि इन तीन गुण स्थानो मे सत्य असत्य उभय अनुभय ये चार मन के चार वचन के औदारिक-औदारिक मिश्र वैक्रियक-वैक्रियक मिश्र और कार्माण ये कुल तेरह होते है छठवे प्रमत्त सयतो मे आहारकाय योग आहारक मिश्र दो होते है मन वचन के आठ औदारिक काय योग तथा आहारक-आहारक मिश्र ये एकादश योगहोते है। मिश्र गुणस्थान मे दश योग होते है चार मत के चार वचन के औदारिक वैक्रियक काय योग ये दश होते है क्योकि इस गुणस्थान मे मरण नही होता है। देश सयत अप्रमत्त अपूर्वकरण अनिवृत्तकरण सूक्ष्म साप्राय उपशात मोह क्षीण मोह इन सब गुण स्थानो मे नौ-नौ योग होते है। चार मनो योग चार वचन योग एक औदारिक काय योग होते है। सयोग केवलो के सात योग होते है सत्य मनोयेग अनुभय मनोयोग सत्य वचन अनुभय वचन योग औदारिक-औदारिक मिश्र तथा कार्माण ये सात योग होते है। अयोग केवली के योगो का अभाव है ऐसा जानना चाहिए ।।७१२।।

आद्येद्वे पच मिश्रेऽसंयतदेशेषु षड्सप्त ।
प्रमत्तादिक्षीणान्ते सयोगेऽयोगे भवन्तिदौ ।।७१३।।

मिथ्यात्व व सासादनइनदोनो गुणस्थानोमे कुमति कुश्रुति विभगावधि ये तीन ज्ञान तथाचक्षुदर्शन और अ चक्षुदशनये पांच उपयोगहोते है। मिश्र मे कुमति, कुश्रुति, विभगावधि ये तीनो मिश्र चक्षु अचक्षु ये दो दर्शन कुल पाँच उपयोग होते है। असयत सम्यग्दृष्टि व देश सयतो मे मति, श्रुतावधि ये तीन ज्ञान चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन ये छ उपयोग होते। प्रमत्त सयत अप्रमत्त सयत अपूर्वकरण, अनिवृत्तकरण सूक्ष्मसापराय उपशात मोह, क्षीणमोह, इन सब गुणस्थानो मे सात उपयोग होते है। मतिश्रुतावधि मन पर्यय ये चार ज्ञानोपयोग तथा चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन ये तीन दर्शनोपयोग कुल सात होते है। सयोग अयोग केवलियो के

दो उपयोग होते हैं।

विशेष—मिथ्यात्व गुणस्थान में एकेन्द्रीय जीवों के तीन उपयोग होते हैं यद्यपि मिथ्यात्वगुण स्थान में पाँच उपयोग होते है वे सब देव नारकी त्रियच मनुष्यो की अपेक्षा से कहे गए है। एकेन्दय दो इन्द्रीय तीन चार असैनी पचेन्द्रीय जीव सब ही मिथ्यादृष्टि है। अपर्याप्त अवस्था में उनके तीन उपयोग पाये जाते है। परन्तु पाँच उपयोग पर्याप्त अवस्था में ही पाये जाते है। परन्तु पाँच उपयोग पर्याप्त अवस्था में अपर्याप्त में तीन ही होते हैं ये कुमति कुश्रुति अचक्षुदर्शन ते तीन ही होते है।

जिनं पश्यति भक्तितां भावनया च निर्वाञ्छा।
प्रहित्वा च स्व कर्माणि यत्सम्यग्दृष्टि र्भवति ॥७१४॥
रथयात्रा महोत्सवैः या नन्दीश्वरादि पर्वणि।
जिनगृहे यजन्ति ये श्रावकश्शुद्ध धी नित्यम् ॥७१५॥

जो प्रभात में सुबह की शौचादि क्रियायों से निवृत्त होकर स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर अपने घर से अच्छत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फलादि सब सामाग्री द्रव्यों को भाव भक्ति से अपनी दिन चर्या का कर्त्तव्य मानकर घर से मन्दिर की ओर गमन करता है। और मन्दिर के तोरण द्वार में जब प्रवेश करता है तब प्रथम ही यह उच्चारण करता है जयश्री, जयश्री, जयश्री कहने के पीछे निस्सही, निस्सही, निस्सही इतना कहकर मन्दिर मे प्रवेश करता है वहां जाकर मन्दिर की तीन प्रदक्षिणा देकर अपने माथे पर दोनो हाथो को स्थावना करके धीरे-धीरे मध्यम ध्वनि से आकुलता रहित होता हुआ अच्छर यात्रा की हीनाधिकता से रहित भक्ति में विभोर होकर भगवान अरहत देव व गुरु शास्त्र की भक्ति पूजा आराधना करता है। वह पूजा अपने दिनोदिन की क्रियामान करता है अथवा अपना नित्य कर्म मानकर करता है। उसके बदले मे कोई प्रकार की इष्ट अनिष्ट को विषय में इच्छा या निदान नहीं करता है। परन्तु अज्ञानी मोही जीव भगवान की भक्ति पूजा करता है मन में यह भी साथ ही भावना या इच्छा करता है कि ये भगवान मुझको पुत्र, धन, दारा दे देवेंगे, या इन भगवान की पूजा करूगा तो भगवान के प्रसाद से मै मुकद्मा जीत जाऊँगा। पूजा करने के प्रभाव से मेरी शादी हो जावेगी, मेरे पुत्र हो जावेगा। में धनवान बन जाऊँगा, भगवान मेरे पर प्रसन्न हो जाएगे और मेरी इच्छाओ की पूर्ती कर देवेंगे। इस प्रकार अनेक कोटी की इच्छाये कर के जो भगवान की भक्ति पूजा व तीर्थयात्रा आरती करता वह तो ऐसा समझना चाहिए कि जेसी जंगल में रहनेवाली भिल्लिनी अमूल्य गजमुक्ताओ के ऊपर पैर रखकर अथवा पैरों को ठोकर मारकर चली जाती है और लाल गोगचियो को एकत्र कर हार बनाकर अपने गले में पहनती है। उसी प्रकार समझना चाहिए कि जिस देव शास्त्र गुरु की पूजा करने का फल तो तीर्थकर पद व मोक्ष पद की प्राप्ति का होना है। उसको फेककर धूल एकत्र करना है। इसलिए जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते समय पूजा के फल की इच्छा नही करनी चाहिए। अपनी प्रातः काल की क्रिया मान कर ही देव दर्शन व गुरु के दर्शन व पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने से अपने आप में भव्य सम्यकत्वादि गुणो की वृद्धि अवश्य ही होती है। भगवान अरहत अठारह

दोषों से रहित है ये ही बीतराग हो सकते हैं। अन्यन ही उनकी बीतराग मुद्रा को देखकर उनके गुणों में जब अनुराग होता है, और उनके गुणो का चिन्तन करता है तव अपने आत्मिक गुणों को सब पर द्रब्यानि से रहित अनुभव करने वाले के सम्यक्त्व की उज्ज्वलता होती है। कि भगवान ने जिन जिनकर्मों दुःख के कारण मानकर उन कर्मो को समूल नष्ट कर बीतरागता को प्राप्त हुए थे परन्तु हम उन कर्मो के भोग-भोगकर दुःखों का अनुभव कर रहे है। यह बडे ही दु ख की वात है जान कर भव्या को संसार और शरीर के प्रति विरक्त भाव उत्पन्न होता है। और भोगों से भी अरुचि पैदा होती है और खोटी बुद्धि उस समय में दूर हो जाती है। और सद्भावनाएं सद्बुद्धि की प्राप्ति और संसार से अरुचि जिनेन्द्र भगवान के गुणो में अनुराग होता है। तत्काल में भगवानकी पूजा करनें परजो मिथ्यात्व रूप शत्रु अपनें अनेकगुणगणो का नाश कर रहे थे वे कर्म भगवान के देखनें व दर्शन करनें या पूजा करने पर देखनें मात्र ही से जिस प्रकार भाग जाते हैं कि जिस प्रकार मालिक को देखकर चोर अपना माल असबाब छोड़ कर भाग जाते है। इसलिए हमको हमेशा अपनें भावों को शुभ बनानें के लिए भगवान बीत राग की पूजा [करना चाहिए। भगवान की पूजा के विधान अनेक प्रकार के होते है एक नन्दीश्वर द्वीप की पूजा अष्टाह्निकाओं से की जाती है। दूसरे सिद्ध चक्रमंडल, तीसरे चौवीश तीर्थंकर व अकृत्रिम चैत्यालयो की पूजा। भगवान के जन्मदिन में जलयात्रा पूर्वक कलाशाभिषेक तथा अष्ट द्रव्यो से या इक्षुरस, घी, दूध, दही, चन्दन और जल सर्वौषधी से अभिषेक करना भी पूजा है। निर्वाणकल्याणक व इन्द्रध्वज इत्यादि एक तीर्थकर व देवशास्त्र गुरु की पूजा करना व निर्वाण दिन में भगवान नें आज के दिन अपनें सर्व दु खों का नाश कर अविनाशी मोक्ष सुख जो सुख अनुपम है उसको.प्राप्त किया था। कोई पचमेरु स्थापना कर भगवान की पूजा करते हैं। कोई अपनि भक्ति सहित् अपनी शक्ति के अनुसार गणधर वलय या शान्ति विधान की पूजा करते है। कोई प्रभावनापूर्वक रथयात्रा व ;जलयात्रा महोत्सवादि सहित प्रभावना कर इन्द्रध्वज पूजाविधान करते है कोई नित्य पूजा करने है कोई तीनो लोक मे जितनें अकृतिम चैत्यालय है जहाँ पर पाँच सौ धनुष प्रमाण ऊँचा पद्मासन से विराजमान है जिन सिद्ध अकृत्रम प्रति माओ की पूजा कर उत्सव कर प्रभावना वाँटते है इन पूजाओ के करनें से-सम्यग दृष्टि के गुणो की विशुद्धी होती है मिथ्यात्वादि पाप, मल सब धुल जाते है। अथवा सम्यत्व की प्राप्ति होती है जिससे ससार के दु.खो का अन्त व थाह् मिल जाती है ॥७२०।८२१॥

भावैरष्टैर्द्रव्यैः जिनमर्चन्ति तेषां सागरोपमम्।
याति पुण्य विषकणं च दोषाऽऽरम्भादि किं दूषयन्ति ॥७१६॥
एको निंदति नित्यं नन्दत्येकोऽभ्यन्तर भावैः।
नहरति नददाति किंचिदपि वीतमोहोजिनाश्चः ॥७१७॥

जो भव्य भगवान अरहंत जिनेश्वर की पूजा भाव सहित अष्टद्रव्यो से करते है। वे द्रव्ये पानी सुगन्ध, चन्दन, केशर, कपूर, अक्षत, फूल, नवेद्य, दीप, धूप फल इनसे पूजा करते है उसको पूण्य समुद्र के बरावर प्राप्त होता है। पूजा के निमित्त लगाये गए जल, फूल, नैंवेद्य दीप, धूप, फल आदि तोड़नें अग्नि जलानें दीप जलानें व नैवेद्य बनाते समय व फूल, फल वृक्षों

पर सेतोडनें व धूप अग्नि में खेवने पर आरम्भ होता है अथवा पानी कुआ में से लानें पर छाननें गरम करनें में आरम्भ होता है तथा पूड़ी, पापड़ी, बर्फी, घेवर पापर इत्यादि बनानें है आरम्भ अवश्य होता ही है परन्तु इस आरम्भ से होने वाली हिसा एक पानी के बूंद के समान है। यदि एकजहरकी बिन्दु पानी के समुद्र में ढाल दी जाय तो वह भी पानी के समान ही हो जाती है परन्तु पानी जहरीला नही होता है उसी प्रकार जहाँ पुण्यानुबंधी पुण्य और आरम्भ से होनेवाली हिसा भी समझना चाहिए। इसलिए भव्य जीवों को चाहिए कि वे प्रभात में उठ कर गृह सम्बन्धी सब कार्यो को विहाय मन्दिर में जाकर भाव भक्ति से भगवान की पूजन करना चाहिए। कोई भव्य भगवान की पूजा कर अपने भावों से पुण्यानुबन्धी पुण्य उपार्जनकर लेता है दूसरा है वह भगवान की बिम्ब की निन्दा करता है, हंसी करता है, अपमान करता है। वह भी अपने भाव के अनुसार विशेष रूप से पपानुबन्धी पाप उपार्जन करलेता है। दोनों ही अपने अपने भाव के अनुसार पुण्य और पाप उपार्जन करते है। परन्तु भगवान पुजारी से प्रेम कर धन-धान्य पुत्र-पौत्रादि व जायदादनही देते है, न निन्दा करनें वाले के धन-धान्य पुत्र-पौत्रादि को हरण ही करता है क्योकि भगवानने उस राग और द्वेष का कारण मोहनीय कर्म था। उसका भगवान ने क्षय कर दिया है इसलिए वे तो वीतराग है उनके राग व द्वेष नही होते है। परन्तु पूजक और निदक अपने-अपने भाव के अनुसार फल प्राप्त करते है। निन्दक पाप उपार्जन करता है पूजक पुण्य उपार्जन करता है।

दृष्टान्त—उपाख्यानम्।

एक निर्जन बन में दिगम्बर जैनाचार्य विराजमान थे, वहाँ एक दयालू भव्य ब्राह्मण मार्ग से निकला वह मुनिराज को देखकर विचार करने लगा कि अरे बेचारा नग्न दिगम्बर यह साधू यहाँ जगल में ऐसी शीतकाल में मर जाएगा। ऐसा विचार कर अपने घर आया और बाजार में से एक सुन्दर कम्बल खरीदकर जगल में ले गया और मुनिराज को नमस्कार कम्बल पास में रख दिया। मुनिराज नें भी आशीर्वाद दिया। वह ब्राह्मण उस कम्बल को मुनिराज पास के रखकर दूसरे नगर के प्रति गमन कर गया। इधर मुनिराज के पास कम्बल को देखकर चोर विचार करने लगा कि यह अहो कितना सुन्दर नया कम्बल है। इसको मुझे ले लेना चाहिए। यह विचार कर पुनः विचार करने लगा कि यदि यह साधू खड़ा होगा तो मेरे पास दण्डा है सो मार लगाऊँगा यह विचार कर वह उस कम्बल को अपनें हाथ में लेकर चल दिया। उधर ब्राह्मण चलते-चलते सौ कोस चला गया तब वहां क्या देखा कि उस नगरी का राजा मर चुका था और वह निपुत्री था। उसके कोई सन्तान नहीं थी तब मन्त्रियों ने विचार किया कि राजा जबतक गद्दी पर नही बैठेगा तब तक राजा का शव दहन नहीं किया जा सकता है। तब मन्त्रियो ने मत्रणा दी कि राजा का हाथी चतुर है, वह जिसको माला पहनायेगा वही राजा बनाया जाएगा। हाथी की सूढ में माला दे दी हाथी उस माला को लेकर चारों ओर नगर में भ्रमण करता हुआ वही आ पहुँचा जहां वह ब्राह्मण नगर की तरफ जा रहा था। हाथी की दृष्टि उस ब्राह्मण की तरफ जाती है और वह हाथी ब्राह्मण के पास पहुंचा और उसके गले में माला पहना दी। महावत ने ब्राह्मण को हाथी के ऊपर बिठा लिया और राज दाबार में ले गया और वहां राज्या भिषेक हुआ और पूर्व राजा का शव दहन किया-

उधर चोर उस कम्बल को लेकर चल दिया और मुनिराज को नमस्कार किया तब मुनिराज ने धर्मवृद्धि आशीर्वाद कहा। वहा से कम्बल को लेकर जा रहा था कि उसको दिखाई दिया कि मेरे पीछे राजा की फौज आ रही है और मेरे को शीघ्र ही पकड़ लेगी यह देखकर आगे को दौड़ता है। पीछे को देखता जाता है इस प्रकार दौड लगाता हुआ जा रहा था कि कोई पुराना बिना पानी का कुआ था उसमें गिर जाता है जिससे हाथ पैर सब टूट जाते है। इसमें विचार करो कि उसको राज्य किसने दिया ? उसको कूए में किसने पटका ? इसमे दोनों के अपने अपने भाव ही फल देने वाले थे। वे मुनि नही ! अपने भावो के प्रमाण ही दोनों को पुण्य और पाप का फल प्राप्त होता है।

नंदन्ति च देवेन्द्रार्वस्त्राभूषणं स्रंगारादिभिः।
क्रीड़ा नृत्य नाटकैर्जिन भक्ताश्चैव बहुविधैः ॥७१८॥

भक्त देवेन्द्र सौधर्मेन्द्र भगवान की भक्ति से पूजा करते है जब भगवान का जन्म होता है उस काल में सौधर्मादि इन्द्र स्वर्ग से चलकर मनुष्य लोक में आते है। तथा चतुर निकाय के देवों के सहित होकर नगर में आते है और नगरी की प्रदक्षिण देकर राज महल में जाते है और शची इन्द्राणी माता जहा पर सोती है उस प्रसुती गृह मे जाती है और बालक को अपनी गोद में ले आती है। तब देवेन्द्र उस बालक को अपने गोदी में हाथो मे लेकर उसके मुख को व सर्वांग को देखते हुए त्रप्त नही होता है तब हजार नेत्रों से भगवान के शरीर को देखता है। उधर अनेक देव ताडव नृत्य करनें लग जाते हैं। भक्ति में मग्न हो नाना प्रकार से उत्सव मनाते हुए मेरु पर्वत पर पाडुक शिला पर जाकर भगवान का अभिषेक करते है और तत्पश्चात भगवान की पूजा वस्त्राभूषणों से बाजूबंध मुकुट हार कुण्डल करधनी आदि पहना कर पूजा करते है तथा इन्द्रानी भगवान के आंखों में काजल लगाती है इसप्रकार जन्मकल्याणक के समय इन्द्रो नें भगवान की पूजा की थी ॥७१८॥

पूज्यपाद देवनन्दो आचार्य नें भी शान्ति भक्ति में कहा है।

ये ऽभ्यचिता मुकुट कुंडल हाररत्नैः सक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत पादपद्माः।

जिन शान्तिनाथ भगवान की पूजा इन्द्रादिक देवो के द्वारा की गई थी अथवा अर्घ उतार कर वस्त्र आभूषण अपनें हाथो से भगवान को पहनाए थे। तथा आभूषणों से पूजा करते हैं। जब भगवान दीक्षा ले लेते है तब इन्द्र उनके केशो को सुवर्ण की डिबिया में रखकर क्षीर समुद्र मे क्षेपण करनें को ले जाता है और गुणो का गान करता है।

देवेन्द्रारिन्द्रानियोऽनेन पुण्येनलब्ध्वा मनुजभवम्।
मुक्तियान्ति न भक्ता: संसरन्ति दीर्घं संसारे ॥७१९॥

जब भगवान जिनेन्द्र देव के गर्भजन्म तप और ज्ञान कल्याण तथा मोक्ष कल्याणक होते है। उन सब में सौधर्मादि इन्द्र ही अग्रसर हो-होकर उत्सव मनाते है। तथा गर्भ से लेकर निर्वाण कल्याणक तक की पूजा करते है। और भक्ति में विभोर होनें के कारण ही वे एक मनुष्य भव प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। जिनेन्द्र भगवान के भक्त जन ससार में भ्रमण नही करते है। वे चार प्रकार के बंधनों को तोड़कर मुक्ति को प्राप्त होते है। वहा वे भक्त

अनन्त अविनाशी सुखों के धाम अक्षय अनन्त सुख को प्राप्त होते है। आचार्य कहते है कि जो जिनेन्द्र भगवान की भाव सहित भक्ति करता है पूजा आराधना करता है वह नियम से स्वर्गों के सुखों को भोग कर मनुष्य भव प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है। इन्द्रों व इन्द्राणियो के मोक्ष जो कहा है वह दक्षिण इन्द्र और इन्द्रानियो का नियम है।

यक्षार्जनमजन्ति पृष्ठिं न कदापिराति भक्तिभिः।
नीत्वाधर्मचक्रंव मनुज भव ग्रहित्वा मुक्तिम् ॥७२०॥

जो सर्वान् यक्ष व्यन्तर जाति का देव होता है भगवान की भक्ति में तल्लीन रहता है जब भगवान अरहन्त देव के समवसरण का विहार होता है उस काल में वह धर्मचक्र को अपने मस्तक पर लेकर चलता है और चलते समय वह भगवान की तरफ अपना मुख ही रखता है वह भगवान को किसी भी अवस्था में अपनी पीठ नही दिखाता हुआ ही गमन करता है। वह उलटा ही चलता है जिससे वह अतिशय पुण्य का संचय कर लेता है जिससे वह देव व्यन्तर जाति का होते हुए भी मनुष्य का एक भव धारण कर नियम से मोक्ष को प्राप्त होता है यह शक्ति एक भक्ति मे ही है। इसलिए भव्यात्माओ जब तुम भी मन्दिर में जाओ तो वेदी में विराजमान भगवान को अपनी पीठ मत दिखाओ पीठ दिखाने वाले का पुण्य नाश हो जाता है और पापास्रव का वध होता है। तथा भगवान के बिम्ब की अविनय होती है। मन्दिर में से इस हिसाब से निकलना चाहिए कि जिससे भगवान को पीठ न लगे दाये या बाये हाथ की ओर मुख कर निकलना चाहिए उस यक्ष की भक्ति का व भक्ति से अपने को भी यह शिक्षा लेनी चाहिए कि अपन भी कभी-भी देवशास्त्र गुरु को पीठ देकर न चलै यही पुण्यानुबन्धी पुण्य का कारण है ॥७२६॥

श्रीपाल मैनादिभिश्च चक्रुर्जिनार्चाऽष्टद्रव्यैस्तदा।
कुष्टमहाव्याध्यभूत् भाव भक्तिभिः कुष्टं क्षयं ॥७२१॥
तदाऽप्रक्षद् भोदेवमम सुकृतं किं न भवति।
विना कुष्ट व्याधिं क्षपयति च मैना सविनयं ॥
तदाऽन्नूत् भो मैना तव पति लघुं याति विमलम्।
करो पूजा सिद्धान् समूदयइ भक्तिः सतिहशम् ॥७२२॥

एक दिन श्रीपाल महाराज चम्पापुरी में सुख पूर्वक राज्य करते थे उनके पूर्व पाप कर्म के उदय में आने के कारण श्रीपाल के बालावस्था में ही कुष्ट का रोग हो गया था जब यौवन अवस्था को प्राप्त हुए तब उनके साथ मे रहने वाले सात सौ वीरों के भी कुष्ट रोग हो गया था उस काल में सब शहर में कुष्ट के कारण दुर्गंध फैल रही थी। उस काल में प्रजाजन श्रीपाल महाराज के पास आकर कहने लगे थे कि हे राजराजेश्वर आपके प्रशाद से प्रजा में सब प्रकार आनन्द है परन्तु यह बड़े ही दुःख की बात है कि आप तथा आप के साथ में रहने वाले वीरों के सब शरीरो कुष्ट की वेदना हो गई है जिससे प्रजाजन आप से आरदाश लेकर उपस्थित हुए है कि यदि आप की आज्ञा होवे तो हम लोग इस देश को विहाय अन्यत्र देश में चले जावे यहां पर अब हम लोग दुर्गंध के कारण रह नहीं सकते है हम सब

दुःखी है प्रजाजन हमको आज्ञा दीजिए ? ताकि हम अन्य देश में जाकर रहे। यह सुनकर श्रीपाल महाराज ने कहा आप लोग इतने न घबड़ाये हम आज या कल मे सब इन्तजाम किग देते है। यह कह कर प्रजाजनो को बिदा कर दिया और अपने काका बीर दयन को बुलवाया और कहा कि काका जब तक मेरे कुष्ट रोग की वेदना शात नही होगी तब तक आप प्रजा का पालन करो प्रजाजनो को अपने पुत्रो के समान समझाकर पालन करो इस प्रजा के कारण ही मे इस राज्य वैभव को त्याग कर वन मे ही बिश्राम करूँगा। बीर दयन को राज्य भार सौपकर श्रीपाल महाराज जगल की ओर चल दिए। और अपनी माता व सब परिजन पुरजन से आज्ञा लेकर जगल की तरफ को चल दिए। भ्रमण करते-करते मालव देश मे जा पहुचे जहाँ पर छिप्रा नदी बहती थी उसके जगल मे सात सो वीरो सहित विराज मान हुए थे। कि उज्जयनी नगरी के राजा पहुपाल की पुत्री मैना सुन्दरी एक आर्यका के पास पढ़कर आई थी उसने जिनमन्दिर मे जाकर भगवान का अभिषेक कर गधोदक लेकर राज दरबार में आई थी और गदोदक राजा को दिया। राजा ने गदोदक का महात्म्प पूछा तब मैना सुन्दरो उसका महात्म्य प्रकट कर कहा कि इस गधोदक को जो रोगी लगाता है वह निरोगी हो जाता है वधिर सुनने लग जाता है अधा देखने लग जाता है यह भगवान का नवन का गधो दक सर्व पापो का नाश करने वाला है। तत्पश्चात राजा ने मैना सुन्दरी को अपनी गोद मे ले लिया और मस्तक पर हाथ फेर कर पुचकारा और कहने लगा बेटी तेरा किस राजकुमार के साथ विवाह कर दूँ सो कह कौन सा राजकुमार तेरे को पसन्द है। यह सुनकर मैना सुन्दरी बोली पिता जी आप यह अपसगुन क्या कह रहे है वही कन्याये वर खोजती फिरती हे ? यह तो माता-पिता परिवार वालो का फर्ज है कि वे अपनी पुत्रो के योग्य वर देखकर देवे पीछे पुत्री का जैसा भाग्य। जैसा उसके भाग्य मे होगा वही होगा। यह सुनकर राजा कहने लगा कि मैंने तेरे को इतनी सुख की सामग्री दी और मेरा दिया हुआ क्या निरर्थक हो गया ? यह सुनकर मैना सुन्दरी ने कहा कि हे पिता जी मेरे भाग्य से ही आप मुझे राजा मिले हे यदि मेरा भाग्य नही होता तो तुम्हारे यहा पुत्री कैसे होती। यह सुनकर राजा को और अधिक गुस्सा आ जाता है और कहने लगा कि अरे बेटी तेरी बड़ी बहन सुर सुन्दरी ने भी तो कोशाम्बो नगरी राजा को अपना पति चुन लिया था अप तू क्यो तकरार करती है। यह सुनकर मैना सुन्दरी कहने लगी कि हे पिता जी यह दोष सुर सुन्दरी का नही है यह दोष उसकी पढ़ाई का है उसने कुगुरु के पास विद्या अध्ययन किया है। तब राजा कहने लगा कि देख अभी मै कह रहा हूँ कि जो कोई राजा को बतलाओ उसके साथ तेरी सादी कर दु नही तो तेरे को पछताना होगा ? फिर भी मैना सुन्दरी ने कहा कि आप चाहे जैसे पुरुष को दे दो वही घर वर मुझे स्वीकार होगा। पीछे हमारा कर्म है जो हमारे भाग्य मे लिखा होगा वही मिलेगा। इस पर राजा गुस्सा हो गया और एक दिन जगल को हवा खाने के लिए छिप्रा नदी के किनारे पर जगल की सैर करने को गया और वहाँ पर श्रोपाल और उनके सात सौ वीरो को कुष्ट से युक्त देखकर कहने लगा कि तुम्हारा सब का सरदार कौन है ? ऐसा पूछे जाने पर एक कुष्टो वीर बोला कि देखिए उस आम के वृक्ष के नीचे बैठा है वही हम सब का अधिपति है। तब राजा पहुपाल

पहुँचा कि जहाँ पर श्रीपाल, महाराज कुमार कुष्टा के भेष में बैठे थे। वहाँ जाकर राजा ने पूछा आप लोग कहां से यहाँ पर आए हुए हैं ? यह सुनकर श्रीपाल ने उत्तर में कहा राजन् कौन देश कौन ग्राम न कोई देश है न कोई ग्राम हम तो अपने विपदा के दिन विताने को तुम्हारे देश में आए हुए हैं। चम्पापुर में राजा अरीदमन कोटी भट राज्य करते थे उनका मैं पुत्र हूं जब पिता का स्वर्गवास होगया तब राज्य कार्य हमने सभाला पुनः हमारे भाग्य ने पलटा मारा जिसके कारण शरीर ने जो पूर्व कर्म किए थे उनके अनुसार यह कुष्ट रोग हमारे शरीर में उत्पन्न हो गया और प्रजाजनों को दुर्गंध आने लगी तब उन्होने आकर हमारे से कहा तब हमने राज्य भार अपने काका वीरदमन को सौपकर जगल की तरफ को विहार किया राजन न जाने ये कर्मफल कितने दिन तक हमे और दुःख भोगने पड़ेगे। तब पहुपाल राजा कहने लगा कि घबड़ाओ मत इस देश को तुम अपना ही देश मानों जब हम आपको बुलवावे तब तुम नगरी मे आना हम तुमको अपनी लाडली पुत्री को देवेंगे। इतना कहकर पहुपाल नगर की ओर चला गया और मैंना सुन्दरी व मैंना सुन्दरी की माता को बुलाकर कहा कि बेटी अब भी अपनी जिद्द को छोड़ नहो तो तेरा विवाह देख आ जगल में बैठे हुए कोड़ी के साथ किए देता हूँ तू पाछे पछतावेगी ? जो आप की इच्छा वैसा कीजिए। मत्री बोला राजन अपनी पुत्री पर ऐसा अन्याय मत ढाइये यह पुत्री क्या उस कोडी के योग्य है कि जिसको तुम देना चाहते हो। अरे मत्री मुख बन्द करो मैं तुम्हारी एक भी नही सुनूगा मै तो उस हठीली लड़की की जिद्द को देखूगा। राजा ने उसी दिन पण्डितो को बुलवाया और कहा कि मैना सुन्दरी का विवाह आज करना है कुष्टी के साथ मे। पण्डितो ने पचाँग खोलकर देखे और महूरत बनाया जब आप आज ही करना चाहते है फिर तो आप महूर्त बनाकर ही बैठे है तब आज का ही शुभ मुहूर्त है। इतना कहकर राजा ने कहा कि पण्डितो को भेट दे दो ? तब पण्डित बोले कि हम एस समय मे दक्षिणा नही लेवेंगे। सब ज्योतिषी गण खड़े होकर राज दरबार से बाहर चल गये। तब राजा ने एक दूत को बुलाकर कहा कि जाओ जगल मे जहाँ कोढ़ियो का समूह बैठा है उनका सरदार श्रीपाल है उनको बुलाकर ले आओ। ऐसी आज्ञा पाकर वह द्वारपाल तुरन्त ही श्रीपालादि कुष्टियो को बुला कर ले आया और राजा ने भी मैंना सुन्दरी की शादी श्रीपाल के साथ मे कर दी। जब विदा होकर श्रीपाल के साथ मे मैंना सुन्दरी जा रही था तब सब परिजन पुरुजन तथा कुटम्ब के सब लोग रो रहे थे यह देख राजा को भी यह खेद हुआ कि हाय मैंने मैंना सुन्दरी के साथ मे कैसा अन्याय ढा दिया है मेरी मति मारी गई जो कि मैंने इतनी नाजुक बाला को एक दरिद्री कुष्टी के साथ विवाह दी। मैना सुन्दरी सबसे क्षमा कराती हुई श्रीपाल के साथ जगल में चली गई। वहां श्रीपाल की सेवा करती थी तब श्रीपाल कहते थे कि आप हमसे दूर रहो क्योंकि यह उड़ना रोग है हम तो दुःखी है ही तुमको हम क्यो दुःखी करे ? एक दिन की वात थी कि मैंना सुन्दरी एक चैत्यालय मे दर्शन करने को गई हुई थी कि वहाँ पर एक मुनिराज आये हुए थे भगवान के दर्शन करने के पीछे मुनि महाराज के दर्शन किए और दर्शन कर पास में बैठी-बैठी अपने पूर्व कर्मो को बार-बार

व्यतीत कर रही थी। मुनि महाराज को विनय पूर्वक नमस्कार किया और पूछा भगवन हमारा कष्ट कब और कैसे दूर होगा। किस पाप के उदय से हमको कोढी पति मिला है सो सब कृपा कर कहो ? यह सुनकर मुनिराज बोले बेटी धैर्य धरो और सिद्ध चक्र का पाठ अष्टाहिका पर्व आने पर भक्ति भाव सहित पूजन विधान करो ? पूजन करने से कुष्ट की वेदना नष्ट हो जायेगी। यह श्रवण कर मैना सुन्दरी के भाव सिद्ध पूजा करने के हो गये और फाल्गुण मास मे अष्टान्हिका पख आने पर भक्ति भाव से पूजा विधान करवाया जब पूजा पूर्ण हो गयी तव अन्तिम दिन मे भगवान का अभिषेक किया और सात सौ वीरो पर गधोदक छिडका जिसके प्रभाव से सात सौ बीरो सहित श्रीपाल महाराज का कुष्ट रोग दूर हो गया और श्रीपाल का (स्वरूप) शरीर कचन के समान सुन्दर निर्मल वन गया। जेसा मुनिराज ने कहा था वैसही किया। मुनिराज के कहे अनुसार ही श्रीपाल का रोग दूर हो गया यह भगवान की भक्ति भाव पूजा करने का महात्म्य है। जिस प्रकार श्रीपालादि सात सौ का कुष्ट रोग दूर हो गया। यश भी फैल गया कि आज तक गायन किया जाता है कि भगवान की पूजा मैना सुन्दरी ने की थी जिससे श्रीपाल का शरीर अत्यन्त शोभायमान सुन्दर वन गया था। हे भव्य जीव भगवान की भक्ति करो यह भक्ति दुःखो का नाशकर सुख देने वाली है।

श्लोकार्थ

मैना सुन्दरी के पति श्रीपाल राजा के शरीर में कुष्ट की वेदना हो गई थी और जिससे मैना सुन्दरी अतयत दु ख मे दिन व्यतीत कर रही थी एक दिन वह मन्दिर मे ऋद्धि के धारक चार ज्ञान के जानने वाले मुनराज के दर्शन कि और विनय सहित मुनिराज के दर्शन किये। और अपने कर्मो को पुन. पुनः निन्दा कर वैठो और मुनिराज से सविनय मस्तक होकर पुछने लगी कि भगवान हमने ऐसा कौन सा पाप किया है कि जिससे पति कोढि मिला है और और यह कुष्ट का रोग उनका दूर होगा भी कि नही तब मुनिराज कहने लगे कि धैर्य धरो तुम्हारा पति कामदेव के समान निर्मल काया का धनी होगा तुम अष्टान्हिका मे सिद्धचक्र को अष्ट द्रव्य लेकर आराधना करो जिससे तेरे पति व सात-सौ कुष्ट से व्यस्त वीरो का भी रोग ठीक हो जायेगा। यह सुनकर मैना सुन्दरी सिद्धचक्र की पूजा बड़े ठाठ के साथ की जिसका गदोदक सब कोढियो के ऊपर डाल दिया जिससे सब का कुष्ट रोग दूर हो गया। जैसा मुनि महाराज ने कहा वैसा ही हुआ यह भगवान भक्ति कुष्ट आदि भयकर रोगो को भी गला देती है। यह पूजा सम्यक्त्व की वृद्धि का कारण है।

शुक वर्षा भुवो मिल्ल वृषभ स्वानैः कृतंपूजा. ।
किं न आसरत् स्वर्गं त्रियश्चोऽपि भावंयु क्तैश्च ॥७२३॥
मूवेन्द्रशचिवो भक्त्या शस्त्रे कृततोयं किं न श्रुत स्मः ।
जोधपुरे रूण्ठनृपोऽर क्षत्रार्थं कृतोद्यमश्च ॥७२४॥

भक्ति मे विभोर होकर एक तोता आम का फल भगवान के चरणो में चढ़ाया

जिससे वह मर कर देव गति को प्राप्त हुआ। एक बावड़ी में एक वर्षाभु (मेढ़क रहता था) उसने अपने कानों से सुना कि भगवान वीर प्रभु का समवोसरण विपुलाचल पर्वत पर आया हुआ है यह समाचार जानकर विचार करने लगा कि भगवान की पूजा अवश्य ही करनी चाहिए। यह विचार कर वह बावड़ी में स्थित कमलों को तोड़कर भगवान की पूजा के लिये ले जाने का विचार कर ऊपर को उछला परन्तु कमल नही टूटा तब एक कमल की पाखुड़ी को लेकर मुखं में चल दिया और भक्ति के वसीभूत होकर उछलता हुआ जा रहा था कि मार्ग में श्रेणिक महाराज के हाथी के पैर के नीचे आ गया जिससे मरण को प्राप्त हो गया। और मरण कर देवगति को प्राप्त होकर अन्तर मुहूर्त के पीछे अवधि ज्ञान से पूर्व भव का विचार किया और सारा समाचार जानकर पुनः पूजा करने के लिये स्वर्ग से आया और भगवान की पूजा बड़ी भाव भक्ति से की। राजा श्रेणिक भी भगवान महावीर के समवसरण जो विपुलाचल पर था वहाँ पहुंच गया और तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान के सन्मुख जाकर पूजा की, पूजा करने के तत्पश्चात मनुष्यों की सभा में जा बैठा और सब तरफ को दृष्टि डाल कर देखा तब देव के मुकुट में विपरीत लाँछन था जबकि सब देवो के मुकुटों में अरहंत भगवान की मूर्तियां थी यह देखकर भगवान से राजा श्रेणिक ने प्रश्न किया कि भगवान एक देव के मुकट विपरीत ही चिन्ह देख रहा हू यह क्या वात है? तब भगवान की दिव्य ध्वनि खिरने लगी कि हे राजा श्रेणिक यह एक त्रियंच गति में मेढ़क का जीव था और महावीर भगवान की पूजा करने को कमल की पांखुड़ी मुख में दबा कर चल रहा था तब तेरे हाथी के पैर के नीचे दबकर मर गया जिससे यह देवगति को प्राप्त हुआ है। अवधि ज्ञान से पूर्व भाव को जान कर पूजा करने को आया हुआ आप को यह वताने के लिये इसने अपने मुकुट में मेढ़क का चिन्ह बनाया है। एक भील जगल में गाये चरा रहा था जब देखा कि एक मुनि महाराज दिगम्बर वेष के धारी मुनिराज को देख कर आनद में मगन होकर रात्रि में मुनिराज की भक्ति करो, पूजा करो जिसके प्रभाव से मरकर एक महान ऋद्धि का धारी देव हुआ! एक बैल मरण के सन्मुख हुआ स्वासे ही कुछ वाकी रह गई थी कि किसी भव्य ने उसको अरहंत भक्ति का उपदेश दिया और कहाकि णमो अरहंताणं इत्यादि स्मरण कर प्राण छोड़े जिससे देवगति को प्राप्त किया। कुत्ता ने भगवान के नाम की पूजा की भाव भक्ति से जिससे वह मर कर अमर हुआ। क्या इतने जीव भगवान की भक्ति करके क्या देवगति व स्वर्ग को प्राप्त नही हुए? जोधपुर राजा का दीवान था किन्ही दुराचारी लोगों ने राजा के पास झूठा दोषारोपण करके उसको मरवाने की चेष्टा की थी। राजा नें दीवान को पकड़वाकर मगवाया मार्ग में श्री वीरनाथ की प्रतिमा निकली हुई थी उस प्रतिमा की भक्ति भाव सहित की। अथवा भगवान महावीर चाँदनपुर वाले की तसवीर बना कर अपने हृदय में स्थापना की थी। जब दीवान को जोधपुर ले जाया गया और राजाज्ञा से एक लोहे के खम्भा से बांध दिया और तोप के गोले छोड़े गये परन्तु भक्ति के प्रभाव से वे गोला शान्त होकर चरणो से कुछ ही दूरी पर जा गिरे व एक गोला तोप के अन्दर ही रह गया यह भक्ति व पूजा

क्षात फल है।

एकस्मिन् वेलायां त्रिसमाचारं ज्ञात्वा भूपालः।
श्री जिनस्य केवलं चक्रायुधपुत्रो बभूवुः ॥७२५॥
चित्तेऽ चिन्तयन् तदा प्रथमे जिनार्चा तदनतरमन्यम।
पुत्रजन्मोत्सवतदा चक्ररत्नार्चा विधानं च ॥७२६॥

एक दिन एक समय में तीन समाचार श्री भरत राज को प्राप्त हुए उनको जानकर मन मे विचार करने लगा कि एक तो श्री आदिनाथ भगवान को केवल ज्ञान दूसरा पुत्र-जन्म तीसरा आयुधशाला मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है ये तीनो मे से प्रथम में कौनसा कार्य करना चाहिये ? पुन विचार करता है कि पुत्र और आयुध तो जीव को अनेक वार मिल चुके परन्तु यह भगवान के केवल ज्ञान की पूजा करना चाहिये यही सब वैभवों की देने वाली है यही जगत में जीवो को दुर्लभ है। इसलिये प्रथम में श्री वृषभ देव की पूजा करने के लिये कैलाश पर्वत पर भगवान के समोसरण मे सपरिवार जाकर पूजा की तदनतर पुत्र का जन्मोत्सव मनाया और चक्ररत्न की पूजा की जिसके प्रभाव से अभ्यन्तर उनके परिणाम इतने निर्मल होगये थे कि दीक्षा धारण करते ही अतरमुहूर्त मे केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। इसलिये सबसे प्रथम मे जितेन्द्र भगवान को पूजा करना चाहिये तदनतर दूसरे गृह सम्बधी कार्य करना चाहिये।

विशेष—एक काल मे चक्रवर्ती के पास तीन समाचार आये, समाचार पाया कि भगवान श्री आदि नाथ को केवल ज्ञान हो गया है यह सुनकर शीघ्र ही सिंहासन से उतर जमोनपर आकर सात पेंड़ चल कर आदिनाथ भगवान को परोक्ष नमस्कार किया तत्पश्चात समाचार देनें वाले को अमूल्य रत्नो के हारादि बहुत सा द्रव्य परितोषक दिया। तत्पश्चात समाचार लेकर द्वारपाल आया कि श्री महाराज की जै हो बडी पटरानी महारानी के पुत्र उत्पन्न हुआ है यह समाचार पाकर राजा ने दूत को बहुत सा इनाम देकर सन्तुष्ट किया तत्पश्चात भडारी आकर समाचार देता है कि महाराज आपकी आयुधशाला मे चकरत्न उत्पन्न हुआ है। ऐसा समाचार पाया और समाचार देने वाले को इच्छित वस्तुये व बहुधन परितोषिक देकर विदा कर दिया। इसके पश्चात चक्रवर्ती विचार करने लगा कि सबसे पहले भगवान के केवल ज्ञान की पूजा करना चाहिये क्योकि भगवान की पूजा सब अमगलो को नाश करने वाली है ऐसा निश्चय किया और सब नगर वासियो को सूचनार्थ डोडी पिटवा दी जिससे नगर के नर नारी व सब परिजन सब भरत महाराज के साथ साथ ही सब लोग पूजा को सामग्री ले लेकर चल दिये और जहा पहुचे जहा पर श्री ऋषभदेव केवली भगवान समवसरण मे विराज रहे थे वहा पहुच गये। सबने भगवान के समव सरण को तीन प्रदिक्षिणादी और समवसरण में प्रवेश किया और अष्ट द्रव्यो से भगवान की पूजा बडे वैभव के साथ की तथा नृत्य कर गुणो को गान कर मनुष्यो की सभा मे विराज मान हुए और भगवान की दिव्य ध्वनि खिरी और धर्म धर्म का स्वरूप और फल भी सुना और जव दिव्य ध्वनि का समय समाप्त होनें पर भरत चक्रवर्ती नगरी में आकर पुत्र-

जन्म का उत्सव मनाया नगर सजाया व याचक जनों को दान दिया वदो जनों को मुक्त किया था इन सव का कहने का तात्पर्य यह है कि सबसे प्रधान भगवान की पूजा है यह सम्यक्त्व की वृद्धि का हेतु है।'

किमिच्छकेन दानेन जगदा शाप्रपूर्यय: ॥
चक्रिभि: क्रियतेयज्ञं स यत्कल्पद्रुमोमतम् ॥७२७॥

चक्रवर्तीयों के द्वारा जो पूजा की जाती है वह कल्पद्रुम है पूजा हैं जो कोई जो कुछ इच्छा करता है उसको वहो द्रव्य दी जाती है जिससे चक्रवर्ती के समय मे छह खण्ड मे कोई दोन दरिद्री नही रह जात है सब इच्छाओ को पूर्ती चक्रवर्ती के द्वारा कर दी जाती है।

सर्व मंगलेषूत्तमं जिनपूजा भक्ति: स्फुरायमान: ॥
पातिविमल सम्यक्त्वं चतुचत्वारिंश मलंविना ॥७२८॥

अरहत व सिद्ध व आचार्य उपाध्याय साधुओ की पचपरमेष्टीयों की जो पूजा है वह सर्व विघ्नों का क्षय कर सब मंगलो में प्रथम श्रेष्ठ मगल है। पच परमेष्टी को (विहाय) छोड़कर अन्य कोई भी इस ससार में मंगल नही है। भगवान अरहत व सिद्धों के स्मरण मात्र से सब विघन दूर होजाते हैं तथा पापो का नाश हो जाता है। और पुण्य की प्राप्ति हो जाती है। मलगालयति स मगल विघ्नो का नाश करती है अथवा विघ्नों का नाश करती है उसको मगल कहते है। पुण्यलाति इति मगलं। जो जीवो को पुण्य प्राप्त कराने में समरथ है उसको मगल कहते है। जो भगवान को पूजा भक्ति भाव से तथा मन में आनंद प्रसन्न और उत्साह पूर्वक करते है जिससे सम्यक्त्व गुण अत्यन्त निर्मल हो जाता है। भगवान की पूजा करने से सम्यक्त्व के ४४ दोष नष्ट हो जाते है तब सम्यक्त्व शुद्ध हो जाता है।

सर्वस्थानेमगलंरूपं श्रद्धानं परमेष्ठीनां ॥
सुखं भुञ्जन्ति भव्या: माकिंचिदपि सुखं च मिथ्यात्वे ॥७२९॥

यह भगवान पच परमेष्ठीयों की कीगई भक्ति पूजा या की जाने वाली पूजा सब स्थानो में मगलकारी है क्योकि यह पूजा स्वयम मगल रूप है। जब भगवान अरहंतादि परमेष्टियों मे भक्ति बढती जाती है वैसे वैसे ही पाप मलो का क्षय होने लग जाती है। जब भव्य जिन पचपरमेष्टीओ व एक अरहत की पूजा आरती करता है व दीप जलाकर भगवान के गुणो का पुन: पुन. चिन्तवन करता है वैसा ही दु:ख उसका साथ छोड़कर भागने लग जाते है। ससार अवस्था मे पंचपरमेष्ठियों की पूजा करने वाला भव्य सब प्रकार के अमगलों से मुक्त हो जाता है। जो अरहत सिद्ध भगवान की पूजा करता है वह कोई भी अवस्था में रहे परन्तु उसके ऊपर उपसर्ग कदापि नही आ सकता है न दु.ख ही उसके पास आसकते है तव सुखी ही रहता है। तृष्णा रूपी नागिन भी उसको नही डसती है वह दूर भाग जाती है जैसे घर के मालिक को आता देखकर चोर बहुत दूर भाग जाते है ये मालिक को आता देखकर वहां ठहर नही सकते है उसी प्रकार मिथ्यात्व और कषाये व आर्तध्यान व रोद्र-

आत्म स्थिर नही रह सकते है। भव्य भगवान के गुणों को श्रद्धान पूर्वक अपने हृदय मे उतार लेता है जिससे पर को पर जानने लग जाता है स्व को स्व जानता है तब आत्मा मे जाग्रति होने के कारण से पर को अपनी नही मानता है पर विनाश होने पर भी दुःख को प्राप्ति नही होती है। सम्यग्दृष्टी जानता है कि ये पर वस्तुये हैं वे मेरे से पर हैं वे सब पुण्य के योग से मिली है और पाप के योग होने पर वियोग को प्राप्त हुई इस लिये इनके वियोग या सयोग से क्या प्रयोजन है। इष्ट के वियोग व अनिष्ट के सयोग रूप दुःख सुख रूप कोई नही है यदि ऐसा नही होता तो महापुरुष क्यों इन से ममता का त्याग करते हैं। भगवान को पूजा करने वाले का शरीर भी निरोग होता है। मिथ्यादेव और गुरुओं की उपासना करने वालो को कही भी जावे वहा दुःखो की ही प्राप्ति होती है तथा जहा दृष्टि डालता है वही अमगल ही अमगल होते है। कुदेव पूजा करने वालो को सिवाय आकुलता और पापो के और दूसरा कुछ नही मिलता है। जिस मिथ्या देवो की पूजा अराधना को करके भी अत में नरक गति मे जाकर अनेकानेक दुःखो का निरतर भोग करता है। इस लिये भव्य जीवो को चाहिये कि कुदेव की पूजा को त्याग कर सच्चे देव अरहत की पूजा श्रद्धान और विधिपूर्वक करें।

नारकेष्वमित दुःख जिनपूजकानां किंचित् काले च।
तत्रैवसुखानुभूतिन दुःखं तत्रैव दृश्यते ॥७३०

सम्यग्दृष्टी जिन भक्त जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने वाले भव्य जीवों के नरक निवास में रहने पर भी दुःख नही होता है वहा पर भी सुख का ही अनुभव करते है। वहा पर मिथ्यादृष्टी जीव निरतर दुःख में मग्न रहते हैं परन्तु यह बात सम्यग्दृष्टी जोवो के नही पाई जाती है। यद्यपि वहाँ पर दुःख सब जीवो को ही होता है परन्तु जिन भक्त उस दुःख को अपने किये हुए पाप कर्म का फल मान भोग करते है जिससे उनके मन में आकुलता नही प्राप्त होती है। और वे कर्मो के फल को भोगकर निर्जीव करने वाले ही होते हैं। प्रथम तो जिनेन्द्र भक्त नरक गति मे जा ही नही सकता है यदि किसी अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टा जीव ने मिथ्यात्व मे ही (त्रियच व मनुष्य) नरक गति और नरक आयु का बध कर लिया है और पीछे जिनेन्द्र भगवान की पूजा का अतिशय देखकर भगवान को भक्ति व पूजा करने मे लवलीन हुआ तब मिथ्यादेव मिथ्याधर्म मिथ्यागुरुओ को प्रलोपकर जान कर त्याग दिया और तव अपनी आतम जाग्रति हुई और आप निजपर के विवेक का पाकर सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और अन्त मे सम्यक्त्व सहित मरण किया और प्रथम नरक मे उत्पन्न हुआ और मर्याद से रहित दुःखो को प्राप्त होता है परन्तु सम्यक्त्व के कारण जिन भक्त दुःखो का भोग भी कर रहा है उस काल मे उसके यह भावना जाग्रत होती है कि हे आत्मन मैंने मोह का अवलम्बन लेकर जो पाप उपार्जन किये हैं उनका अब विपाक आ गया है वे ही कर्मो का फल तेरे को भोगना पड़ रहा है यह भी सास्वत नही रहने वाला है यह भी चन्द दिन का है। यह कर्मो का विपाक फल है सो इनका फल तेरे को अनिवार्य रूप से भोगना पड़ेगा। स्वयम भोग दूसरो को वेदना मत दे जैसे ये नारकी क्रूर परिणामी हो रहे है वैसा तू मत वन। ऐसी अन्तरग भावना होने से भव्य जिन पूजक को

नरक में रहते हुए भी दुःख नही अनुभव में आता है। नरक में भी मगलकारी होती है। वहा पर शारीरिक दुःख है मानसिक दुःख नही है वे नारकी उन नरको मे रहते हुए रत नही होते है वे चाहते है कि वह कौन सा काल आवेगा कि जिसमें हम निकल कर मनुष्य नोके में उत्पन्न होकर भगवान की भक्ति व संयम प्राप्त करेगे इस लिए जिनेन्द्र भगवान की भक्ति अवश्य ही करो ॥३५७

मग्नं जिनपूजायां नगरोज्जयन्ते धनंजयस्योल्येन।
सुत जघास मूर्छितः गधोदकेन विषविनष्टः ॥७३१

उज्जयंत नगर में धनंजय नाम का सेठ था वह नित्य ही प्रातः में उठकर जिन मन्दिर में जाकर भगवान की पूजा जल इक्षु रस घी दूध दही चन्दन इत्यादि द्रव्यों से भगवान के बिम्ब का अभिषेक करता था। तत्पश्चात आठ द्रव्ये लेकर अष्ट कर्मो नाश करने के भाव से भगवान की पूजा करता था। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक मैं भगवान जिनेन्द्र की पूजा करूगा तब तक मेरे सब घर दुकान खेती का त्याग है तथा धन धान्य स्त्री पुत्र इत्यादि का त्याग है। सब परिग्रह से निवृत्त होकर पूजा करता था। उसकी परीक्षा करने की इच्छा करके एक देव उज्जयनी नगर मे आ पहुँचा और जहा धनजय का पुत्र क्रीड़ाकर रहा था वहा गया और ›स बालक को सर्प बनकर काट खाया जिससे बालक के सर्वांग में जहर फैल गया था और मूर्छा खाकर जमीन पर पड़ गया था। उसको माता उठाकर मन्दिर में ले गई और धनजय ने बालक के ऊपर गधौदक के छिड़कते ही जहर की वेदना दूर हो गई थी।

इसकी सक्षिप्त कथा

एक दिन उज्जयनी नगरी में धनंजय नाम के एक श्रेष्ठी रहते थे वे प्रभात ही सब प्रकार के परिग्रह के सकल्प का त्याग कर जिन मन्दिर में नित्य पूजा किया करते थे। उनकी पूजा की प्रशसा चारों तरह फैल चुकी थी सब यही कहते थे कि पूजा करने मे धनञ्जय नाम का श्रावक भगवान की पूजा बड़े ही भाव पूर्वक करते है। एक दिन सौधर्म की सभा में जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने मे मध्य लोक मे मालवा देश के मध्य उज्जयनो नगरी में धनञ्जय श्रावक है उसके समान कोई भक्त व पूजा करने वाला नही है। यह सुनकर एक देव परीक्षा करने के निमित्त उज्जयनी नगरी में पहुँचा और एक काले सर्प का रूप धारण कर धनञ्जय के बालक को काट लिया जिससे बालक मूर्छाखाकर भूमि पर पड़ गया साथ में खेलने वाले बालकों ने उनकी माता से जाकर समाचार कह सुनाया कि तुम्हारे बच्चे को सर्प ने काट खाया है। यह सुनते ही वह माता भी बच्चे के पास शीघ्र ही पहुच गई। और बच्चे को अपनी गोदो मे लेकर अपने घर में ले आई। उसके पश्चात धनञ्जय के पास समाचार दिया कि बच्चे को सर्प ने काट खाया है इसलिए आप शीघही घर आओ और बच्चे का इलाज करवाओ बच्चा मूर्छित होकर सोया हुआ है जहर का वेग वढ़ता ही जा रहा है हलकारा या सेवक ने जाकर बच्चे की सब दशा हुई यह कथा कह सुनाई परन्तु धनञ्जय अपनी पूजा को न छोड़कर पूजा करने में ही लवलीन रहे उन्होने बच्चे की तरफ दृष्टी तक नही डाली। अब क्या था कि सेठानी ने दूसरा आदमी भेज दिया कि अब आप पूजा को समाप्ति करके

प्र ही घर आओ और विष वैद्य को बुलाकर जल्दी ही इलाज करवाओ। यह अबकी बार भी नही सुनी और भगवान की पूजा मे और दृढ रूप से स्थिति होते गये। धनञ्जय तो भगवानकी पूजा करने ही लगे थे कि स्त्री को एक दम गुस्सा आ गया और कहने लगी कि इतनी देर हो गई परन्तु अभी तक उनकी पूजा की समाप्ति नही हुई। इस प्रकार गुस्सा मे आकर भण्ड वचन बोलती हुई मन्दिर मे बालक को लेकर जा पहुँची और कुछ भण्ड वचन बोलती हुई कहने लगी कि अब तो तुम्हारी पूजा पूरी हो गई न ये कुल का दीपक बुझ गया। करो पूजा कितनी करते हो ? इतना कहने पर भी धनञ्जय ने एक बात पर भी दृष्टी नही डाली और वे पूजा हमेशा की भाति करते रहे जब पूजा समाप्त हो जाती है तब बच्चे के ऊपर दृष्टि डालते है और विषापहार स्त्रोत पढ कर मत्र का उच्चारण कर बालक के ऊपर गधोदक छिड़कते है कि बालक का जहर एकदम उतर जाता है और बच्चा खड़ा होकर इस प्रकार दौड़ने लग जाता है कि जिसे सेज पर से सोकर ही उठा हो। ग्रन्थकार कहते है कि भक्ति के प्रभाव से विष की वेदना शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। इस प्रकार जानकर भव्य जीवो को भगवान की पूजा भक्ति निरन्तर करते रहना चाहिए।७३१

सर्वपरिग्रहेभ्यः रागंमुक्त्वा गच्छेर्युजिनगृहे।
निस्सही त्रिवारोच्चार्ंः प्रविसितव्यश्चैत्यालये ।७३२॥
त्रिपरीत्येतिभक्त्या स्थित्वा गत्वा निसद्योचरण सनै।
हस्तयुग्मं भालेऽपि सस्थाप्य त्रिकरणशुद्धये ॥७३३

भव्य जिन भक्त सब ससार सम्बन्धी घर मकान स्त्री पुत्र माता पिता व गाय भैंष घोड़ा हाथी बैल आदि चेतन व अचेतन दोनो प्रकार के परिग्रह से ममत्व छोड़कर निराकुल होकर गमन करना चाहिए। तथा यह प्रतिज्ञा करना चाहिए कि जब तक मैं भगवान जिनेन्द्र देव के चैत्यालय के दर्शन व पूजा करने जा रहा हू तब तक मेरे सब परिग्रह का त्याग है। तथा अन्तरग परिग्रह कषायें व नो कषाये व मिथ्यात्व इनका भी मुझे त्याग है। इस प्रकार प्रतिज्ञा कर चलता है मार्ग मे कोई मित्र व इष्ट सम्बन्धी के भी मिलने पर अपते उपयोग से रच मात्र भी चलायमान नंही होता है वह उनकी तरफ दृष्टि उठाकर भी नही देखता हुआ ईर्या पथ से गमन क्रिया करता है और जब मन्दिर के निकट पहुँच जाता है तब अपने पैरो के उज्जवल स्वच्छ पानी से धोकर प्रवेश करता है। प्रवेश करते समय मे नि.स्सही तीन-तीन वार उच्चातण कर आगे जाता है प्रश्न—निस्सही क्यो करनी चाहिए ? नि:स्सही उच्चारण करने का तात्पर्य यह है कि मन्दिरो मे चतुर निकाय देव लोग व देवियां ये दर्शन करने को आती है व भव्य मनुष्य पुरुष व स्त्रियायें आती है उनके पूजा भजन भक्ति मे कोई बाधा न आ जावे और अपने पैरो से कुचिल न जावे व ठोकर नही लग जाये। नि:स्सही सुनते ही वे दर्शन पूजन भजन करने वाले जीव भी सावधान होकर मार्ग को व स्थान को छोड़कर इधर उधर हो जाते है इसलिए नि:स्सही-नि.स्सही-नि:स्सही तीन बार उच्चारण करके ही प्रवेश करना चाहिए। आते समय फिर क्या कहना चाहिए ? मन्दिर में दर्शन के पीछे निकलते समय भी पहले के समान ही आसही-आसही इस प्रकार उच्चारण कर निकलना चाहिए।

यहां निःस्सही त्रिबार क्यों ? इसका भी कारण यह है कि किसी ने एक बार कहने पर पूजा, भक्ति में तल्लीन होने के कारण से नही सुन पावा तो दूसरी व तीसरी बार उनको अवश्य ज्ञात हो जाएगा कि कोई आ रहा है वे मार्ग छोड़ देवेंगे। मन्दिर में प्रवेश कर क्या करे ? मन्दिर में प्रवेश कर भगवान की वेदिका की तीनप्र दक्षिणा देकर दोनो हाथो को मस्तक पर सस्थापन करके भगवान की वेदिका के दाहिनी तरफ या बाई तरफ खडे होकर एकाग्रचित होकर धीरे धीरे आकुलता रहित होकर भगवान की स्तुति स्तवन स्त्रोत मद-मन्द स्वर से बोलते हुए व शुद्ध उच्चारण करना चाहिए जोर सोर करते हुये नही बोलना चाहिए ताकि दूसरो के पाट करने में कोई प्रकार की बाधा उत्पन्न न होवे। अपने दोनों हाथों को कमलाकार बनाकर) बार-बार जिनेन्द्र भगवान के बिम्ब की तरफ दष्टि डालते रहना चाहिए। मन को सम्पूर्ण आकुलताओ व घर सम्बन्धी व देश ग्राम व नगर सम्बन्धी क्रियाओं का चिन्तवन नही करना चाहिए। बचन से शुद्ध उच्चारण करते हुए काय की शुद्धि इधर-उधर को अपनी दष्टी नही डालना चाहिए। न हाथ पैरो को ही चलाना चाहिए स्वस्त खड़े होकर व बैठकर पूजा व स्तवन करना चाहिए। कहे प्रमाण करने मे पुण्य लाभ विशेष होता है और आत्म जाग्रति होती है जो सम्यक्त्व की बृद्धि का हेतु है।

निवृत्त विभोरन्ति को शौचादि क्रियानां व्रजेन्मन्दिरे।
मार्गं संशोध्य निष्प्रोहस्त युग्ममवलोक्य मार्गे ॥७३४
नोर्ध्वंनाधोऽतर्यंड न दिग्दिगान्तर पश्येयुः भंव्याः।
सन्मुखेवालोक्य सनैन धावयतं न विस्मय तदा ॥७३५

सुबह के समय उठकर शौचादि क्रियाओ से निवृत्त होकर व स्नानादिक क्रियाओ से निबृत्त होकर शुद्ध स्वच्छ वस्त्र धारण कर अपने घर से पूजन की सामग्री जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दोप धूप फलादि व अभिषेक की वस्तुयें जल चन्दन इक्षु रस दूध घी दही सर्वोषधि इत्यादि लेकर जिन मन्दिर मे जाना चाहिये। तथा चलते समय मार्ग मे भूमि को देखकर चलना चाहिए। क्योकि मार्ग मे विष्टा चर्म हड्डी व मृतक अश शरारादि दुर्गन्धमय वस्तुये पड़ी रहती है उनसे स्पर्श न हो जावे। यदि प्रमाद सहित जूता खड़ाऊ चप्पल पादुकादि पहन कर चलेगे तो उन वस्तुओ का स्पर्श हो जाने पर पुनः स्नान करना पड़ेगा।

दूसरीबात यह है कि मार्ग मे अनेक लघु काय के धारक देहधारी विचरते रहते है उनके ऊपर पैर पड़जायगा तब उनका मरण हो जावेगा। वे जीव लट चेटी मकोड़ा खटमल माखी मच्छर व अन्य पचेन्द्रिय जीव निरन्तर विचरते रहते है उनका विनाश होगा। उन जीवो को बाधा भी पहुचेगी। इसलिए मार्ग मे गमन करते समय ऊपर व नीचे व तिरछा नही देखते हुए चलना चाहिए क्योकिस रलता पूर्वक गमन करना चाहिए। तथा दिशा विदिशा औकी तरफ मत देखो न कुछ भी चिन्तल करो इन सबसे राग छोड़ कर स्वतन्त्रता पूर्व चार हाथ भूका सोधन कर भली प्रकार से गमन करो। चलते समय अत्यन्त धीरे व अत्यंत वेग से भीगत चलो मध्यम चाल से चलाना चाहिये। सामने पास की जमीन को आकुलता रहित हो कर चलने पर जीवो की हिसा व विराधना नही होती है। जहा से भगवान के मन्दिर की

शिखर दिखाई देने लगे वही से खडे होकर नमस्कार कर आगे मन्दिर की तरफ गमन करना चाहिए दृष्टाष्टक स्तोत्र पढना चाहिए। मन्दिरके दरवाजे के निकट पहुचकर अपने दोनों पैरो को स्वच्छ पानी से धोलेना चाहिए क्योकिबाहरकी लगी हुई पैरो मे धूल वहमन्दिरकी सफाई का नाश कर डालेगी वह मन्दिर पवित्र स्थान है कलह भीत से रहित निर्विघ्न स्थान है। मार्ग मे चलते समय ससार व शरीर व पचेन्द्रियो के विषय भोग वासनाओ का चिन्तवन नही करना चाहिए। व मोन व्रत धारणकर चलना चाहिए यदि कोई अपना इष्ट मित्र मिलजावेतो भी बोलना नही चाहिए क्योकि जो अपनी भावना भगवान के दर्शन पूजन की थी उन भावनाओ की क्षति हो जाती है और उपयोग मन्दिर की तरफ लगा था वह उपयोग हट जाता है जिससे अपने ही परिणामो मे विकृता उत्पन्न हो जाती है। व की गई प्रतिज्ञा का ह्रास हो जाता है जिस समय हम मन्दिर को चलते हैं तब कहते है कि अब हम मन्दिर मे दर्शन व पूजन करने के लिए जा रहा हू ऐसा जो प्रतिज्ञा की थी वह दूर हो गई जिससे अपनी ही प्रतिज्ञा भग हुई तब पापास्रव ही हुआ। यदि मन मे खदे खिन्न होकर चलेंगे तो कही हमारी दृष्टि होगी कही हमारी शरीर का गमन क्रिया होगी तब प्रमाद भी वृद्धि होगी इसलिए खेद खिन्न होकर भी मन्दिर को नही चलना चाहिए, प्रसन्न चित्त हो कर चलना चाहिए ॥७३४।७३५॥

ईर्यापथ पठेपु: गात्रेऽलंकृते नर्वातिलकैश्च।
कृत्वासर्वाङ्गशुध्यैः भवताऽर्चयेंज्जिनर्वास्वस्य ॥७३६

मन्दिर मे जाकर प्रथम मे ईर्यापथ पढ़ना चाहिए पीछे अपने मुख शुद्धि व शरीर शुद्धि वस्त्र शुद्धि कर यज्ञो पवीत (जनेऊ) धारण कर अपने अगो मे नव स्थानो मे तिलक करना चाहिए प्रथम उत्तमागमें व शिर मे दोनो कानो मे दोनो भुजाओ मे कण्ठ मे हृदय स्थान व नाभि स्थान मे तिलक कर पुजारी अपने शरीर को अलकृत करे व णमो कार मन्त्र की नोवार जाप सत्ताईस स्वासोच्छवास पूर्वक देना चाहिये।

मन्त्र पढ़ कर द्रव्यो की शुद्धि करन के पश्चात भगवान जहा जिस चौकी पर विराजमान करते हो उसको स्वच्छ जल से धोना चाहिए। पश्चात पीठ को धोना चाहिए और श्री लिखना चाहिये और भगवान की आरती सहित अर्घ चढाकर जिनविम्ब को वेदिका मे से लाकर जहा श्रीकार लिखा गया है उसके ऊपर जिनबिम्ब को विराजमानकर अभिषेक करना चाहिए ।७३६॥

प्राग्नीरेक्षु घृ तैर्दुग्धदधिमृदुरसै.सर्वगोशीरगन्धैः।
वार्गोशीरैश्चमिश्रैश्च सुरभिशुभगंधाक्षतेन्दीवरैर्वा॥
नैवेद्यैर्दीप धूपेन वहुविधफलैर्ये पजन्ति प्रथक्त्वम्।
स्वशक्तितस्तोऽपिनित्य लभतशिवपदमांप्रत भव्यजीवा: ॥७३७॥

जो भव्य जीव इस पचम् दु.सम काल मे जिनेन्द्रभगवान की भक्ति पूजा आराधना करते हैं वे शीघ्र ही मोक्ष पद को प्राप्त होते है। जो प्रथम में पानी से भगवान के बिम्ब की पूजा अभिषेक करते है। तत्पश्चात् इक्षुरस की धारा से भगवान का अभिषेक करते है व शुद्ध गाय भैष के घृत से भगवान का अभिषेक करते है वे कालान्तर मे शुद्ध पद है उसको

प्राप्त होते है। दूध और दही से भगवान का अभिषेक करते है उनकी धवल कीर्ति अनन्त काल तक बिमान रहती है एसे पद को प्राप्त होतें है जो दूध व दही में मीठा रस मिलाकर व गोसीर (चन्दन कपूर केशर) इत्यादि गधों को मिश्रकर सर्व औषध से भगवान का अभिषेक करते है वे निरोग अथवा जन्म मरण से रहित एसी अवस्थाको प्राप्त होते है। जो चन्दन केशर कपूर आदि धिसकर भगवान के बिम्ब्र के ऊपर लेपकर गध से अभिषेक करते है वे जीव सुगधित सुन्दर शरीर को प्राप्त होते है अथवा परम औदारिक शरीर को प्राप्त होते है। जो जल चढ़ा कर भगवान की भक्ति करते हैं वे निर्मल चारित्र व सम्यत्क्व को प्राप्त होते हैं। जो गंध से भगवान की पूजा करते है वे चार सज्ञा रूपी ज्वर से मुक्त हो जाते है अथवा चार आहारभय मैथुन और परिग्रह रूपी संज्ञाये नष्ट हो जाती है। जो भव्य अक्षत लेकर उनसे भगवान की पूजा करता है व अक्षय अभिनाशी पद को प्राप्त होता है। जो पुण्यों से भगवान की पूजा करता है वह मदन के दर्प से रहित लोकान्तिक व सर्वार्थ सिद्ध में उत्पन्न होता है तथा कामदेव के मान को मर्दन कर सिद्धरामा के साथ में विवाह करता है। जो नैवेध लेकर भक्ति लाल से, जिनेश्वर की पूजा करता है वह अविनाशी सुख को प्राप्त होता है अथवा भूख की वेदना से मुक्त हो जाता है। जो दीपक लेकर भगवान की पूजा करता है वह केवल ज्ञान रूपी ज्योति को अपने में प्रकाशित करता है। को धूप से भगवान की पूजा करता है अथवा सुगन्ध फैलाता है उसी प्रकार पूजक की कीर्ति सब जगह फैलजाती है जो भगवान की पूजा मीठे सुन्दर निर्दोष फलों से प्रभात मध्यन और शाम के समय में करता है वह अविनाशी मोक्षफल को प्राप्त होता है जे जीव एक एक द्रव्य भिन्न-भिन्न से करते है वे सब सुखों की प्राप्त होते है जो नित्य ही आठ द्रव्यो से भगवान की पूजा अपनी शक्ति के अनुसार करते है वे ही मोक्ष को नियम कर प्राप्त होते है।७४४॥

सम्मत भद्रा चार्य नें स्वयभू स्तोत्र में वासु पूज्य भगवान की स्तुति करते हुए कहा है।

शियासु पूज्योऽभ्युदय कियासु त्वबासुपूज्य त्रिदशेन्द्र पूज्य ॥
मयाऽपि पूज्योऽल्पधियामुनीन्द्र दीपार्चिषा कितपनी न पूज्य ॥१॥

हे पासुपूज्य भगवान आपकी पूजा तो तीनो लोकों में श्रेष्ठ सौइन्द्रों ने की है। वे इन्द्र भवन वासियों के चालीश व्यन्तर देवो के वत्तीस होते है। कल्पवासी देवो के चौबीस एक चन्द्रमा एक सूर्य ये दोइन्द्र ज्योतिसियो के तथा एक मनुष्यो का राजा चक्रवर्ती व त्रिर्यचो का स्वामी के हरी सब सौइन्द्र आपकी सेवा पूजा करते है। गणधर देव जो ग्यारह अग चौदह पूर्व के धारी मुनिराज है उनके द्वारा आपकी पूजा की गई है। अर्थात आपके जन्म होनें के पहले गर्भ मे जब आये थे तब से ही इन्द्रो नें आपकी पूजा की दृष्टि से सर्व नगरी की शोला की व छप्पन कुमारियों ने आपकी माता की सेवा पूजा का व जन्न होते ही इन्द्र आपको हाथी पर सवार कर सुमेर के ऊपर पाडुक शिला पर ले जाकर अभिषेक एक हजार आठ कलशो से किया था और स्तवन नृत्य किया व वस्त्राभूषण से आपकी पूजा की थी। तत्पश्चात जब आपको विराग हुआ तब आपके निस्क्रमण कल्याण की पूजा की व

केवलज्ञान होने पर समव सरण की रचना कर पूजा की थी। अन्ति में निर्वाण कल्याणक की पूजाकी थी। मुझ अल्प बुद्धि के द्वारा भी आपके अभ्युदय की पूजाकी जाती है क्योकि आप मे जो अभ्युदय व क्रियायोमें है वह हेमुनीन्द्र वासुपूज्य वह क्रिया और अभ्युदय अन्य मे नही है। इसलिए मै अल्प बुद्धि भी आपकी पूजा करता हू। क्योकि यह व्यवहार भी देखा जाता है कि सूर्य की आरती दीपक से की जाती है। जबकि सूर्य के प्रकाश से सब भूमण्डल प्रकासित हो रहा है।

न पूजपार्थस्त्वीय वीतरागे न निन्दया नाथ ! विवान्त वैरे ॥
तथापि ते पुज्य गुणस्मृतिर्न पुनाति चित्तं दुरितांजनेभ्यः ।२।

हे नाथ पूजा करने से या आपका गुणगान करने से आपको कोई प्रयोजन नहीं है क्योकि आप वीतराग हैं। क्योकि आपकी आत्मा से मोह राग था उसका अत्यन्त अभाव हो गया है अथवा मोह क्षय हो गया है। इसलिए किसी के द्वारा पूजा या वन्दना करने न करने पर आप प्रसन्न नही होते हैं। अथवा कोई आप के गुणो का गान व पूजा वन्दना न करते हुए निन्दा ही करता है अथवा अपशद्व रूप गालियायें देता है तो भी आप उस पर कुपित नही होते है आपको क्षोभ नही आता है क्योकि आपके यहा पर द्वेष वैर भाव नही रह गया है इसलिए वैर भाव नही होता है। एसी अवस्थाये पूजक और निन्दक दोनो ही समान होते है। न पूजा करने वाले को मन्त्र यन्त्र तन्त्र धन धान्य स्त्री पुत्र भूमि इत्यादि दृष्ट पदार्थ ही देते है। न निन्दा या गाली देने वाले के द्रव्यो छीन ही लेते है। फिर भी जो आप को भक्ति भाव सहित करता है व आपके गुणो का बारबार चिनतवन् करता है तब पापो का नाश हो जाता है और मगल मय वन जाता है तथा सब विघ्नो का नाश हो जाता। जो निन्दाकरता है वह भी अपने भावो के अनुसार पापो को उपार्जन कर अनर्थो का घर बन जाता है। जो हमारे भावो मे आर्त व रोद्र रूप ध्यान निरन्तर चलता था जो अमगल रूप था जब भगवान के गुणो मे अनुराग हुआ तब बारबार गुणो का चित्तवन स्मरण किया तब आप भी वैसा ही वन जाने से आर्त रौद्र रूप दुर्ध्यान नष्ट हो जाते है इनका नष्ट होना ही मगल है और पापो से रक्षा करता है। जो इनसे बिपरित है आर्त रोद्र ध्यान को प्राप्त होते हुए पापो का सचय कर लेते है।

हे प्रभु आपके राग भाव का अंगभी विद्यमान नही है कि जिसके कारण किसे के द्वारा पूजा की जाय बदना की जाय तब आप आनन्दित हो यह बात नही है। यदि आप को कोई गालियायें देवे तो भी आप उससे कभी रूष्ठ नही होते है क्योकि आपके आत्मा में वैर द्वेष खेत का कारण जो मोह था वह समूलक्षय हो गया है जिससे आपके कोप या खिन्नता का अभाव है इस प्रकार मोह के अभाव मे किसी के द्वारा पूजने या गाली देने पर कोई प्रयोजन नही दोनो ही समान है। इससे आपका कुछ भी विगड़ता नही है। परन्तु हमारे भाव तो आपके गुणो का चिन्तवन हमारे भावो को तो अवश्य ही विषय करते है। इसलिए हम भी आप को पूजा भक्ति स्वतन आदि करते है। यह स्तवन आपके लिये नही है। पूजाके द्वारा आपको कुछ लाभ हुआ होता सो भी नही है या निन्दा करने से कोई

हानि हो गई हो सो भी नही है। यह देखा जाता है पूजक पूजा का फल आप स्वभाव से ही प्राप्त हो जाता है। आपके पुण्य गुणों का स्मरण करने मात्र से ही पाप मल धुलजाते हैं। विशेष-विशेष यह रागी मोही जो देव हैं वे अपनी निन्दा को देख कर निन्दा करने वाले का नाश करने का विचार करते है तथा पूजा करने वाले को धन धान्य आदि देने को चेष्टा करते है। परन्तु यह बात आप में नहीं है।

पूज्यजिनंत्वाऽर्चयतोजनस्य सावद्यलेशो वहु पुण्य राशौ ॥
दोषाय नालंकणिकावितस्य नदूंषिकांशीयि शिवाम्वु राशौ ॥३॥

हे वासुपूज्यजिन आपकी पूजा करते समय यद्यपि आरम्भ होता है वह आरम्भ पाच भेद वाला है। प्रथम में कोमल झाड़ू या वस्त्र से वेदो व सिहासन बिम्ब का प्रमार्जन करना। दूसरा नदी कुआ वावडी आदि में से पानी लेने रूप आरम्भ है तथा पानी को प्रासुक करने रूप आरम्भ है चौथे पुष्प तोड़ने रूप पांचवे धूप खेहने व फल तोड़ने रूप आरंभ होता है। व दीपक जलाने पर आरम्भ होता है यह सत्य है। इन आरम्भों से होने वाला पाप बहुत कम है परन्तु पूजन करने पर पुण्य का संचय समुद्र के पानी की राशि के बराबर होता है वह पुण्यानुबंधी पुण्य है यदि एक बूंद जहर की समुद्र में डाल दी जाय तो क्या वह समुद्र का पानी जहरीला हो जायगा क्या ? नहीं हो सकता है वह जहर की कणिका भी पानी रूप ही हाजायगी। अथवा शीतल सुगन्धित जल में यदि एक जहर की बूंद डाल दी जाये तो वह भी पानी रूप ही परिणमन वश्व ही कर जाएगी ॥३॥

यदस्तु वाह्यं गुणदोष सूते निमित्त मभ्यन्तर मूल हेतोः
अध्यात्म वृत्तस्य न दग भूतमभ्यन्तरं केवलमप्यल न ॥४॥

वाह्य में अनेक कारण मिलने पर भी कार्य की उत्पत्ति होती हुई नहीं देखी जाती है परन्तु बाह्य निमित्त के साथ अपने परिणामों में भी मिथ्यात्व कषायों का तथा ज्ञानावरणादिकों का क्षयोपशम होते व अपने परिणाम पूजा का निमत्ति पाकर शुभ रूप होते हैं तव पुण्य की उत्पत्ति हो जाती है। यदि अपने परिणामो में कलुषता रूप मिथ्यात्व कषायों का उदय अन्तरग में कारण वाह्य में अनेक वैसे ही निमित्त मिलने पर जो परिणाम होते है वे ही परिणाम पाप बंध के कारण होते है। जव जीव के भक्ति पूजा दान व सयम के भाव होते है तब वह पुण्योपार्जन कर लेता है। जब जीव के भाव अशुभ होते है तब पापों का संचय कर लेता है निन्दा करना राग करना द्वेष करना हिसा प्राणियों के घात करने के भाव होना इत्यादि है असत्य बोलना चोरी करना वेश्या के साथ व परस्त्री में रत होना परिग्रह मे आसक्ति का होना। बाह्य निमित्त कारण कुछ कार्य करने में समर्थ नहीं होता है। गुण और दोषो का उत्पन्न करने वाला जो जीव का स्वपरिणाम है। ४॥

'वाह्ये 'तरोपाधि समग्रतेयं कार्यं ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवान्यथा मोक्ष विधिश्च पुसां तेना भिवन्द्यस्त्वमृषिवुधानां ॥५॥

वाह्य अनेकानेक कारण मिले और अतरग में योग्यता हो तव तो कारण से कार्य हो सकता है यदि कारण की हीनता हो तब भी कार्य नही बन सकता है यदि उपादान में

हीनता होवे तो वाह्य निमित्त कुछ भी कार्य करने में समर्थ नही हो सकता यह आपके मत में द्रव्य गत स्वभाव है तथा क्रिया और कार्य स्वरूप है द्रव्यगत स्वभाव के बिना अन्य प्रकार से मोक्ष प्राप्त करने का विधान नही बन सकेगा। इसलिये अनेक ऋद्धियों के धारक ऋषिजन आपके चरणों की पूजा करते है।

विशेष यह है कि इन पाच काव्यों के अतर्गत यह स्पष्टी करण किया गया है कि कारण दो प्रकार के होते है एक तो वाह्य निमित्त कारण दूसरा अभ्यन्तर निमित्त कारण वाह्य में कारण तो देव पूजा व देव दर्शन गुरुओ का उपदेश श्रवण करना व मिलना व जिन बिम्ब और पच कल्याण आदि महोत्सव आदि देखने पर शुभ भाव होने मे कारण है ये सब वाह्य कारण मिलने पर भी जीव के शुभ भाव नही हो पाते है। जब वाह्य कारण मिले अतरग में मिथ्यात्व और कषायो का उपशम या क्षय या क्षयोपशम हो। अथवा मति ज्ञानावरण श्रुतज्ञान वरण वीर्यान्तराय इन कर्मो का क्षयोपशम हो तब वाह्य और अभ्यन्तर उभय निमित्त मिलने पर भव्य जीव के जाग्रति होती है इनके मिलने पर भी यदि अन्तरग भावो में जाग्रति नही हो तो कोई कार्य नही बन सकता है। जिस प्रकार के निमित्त मिले उसी प्रकार के भाव भी बन जावें तब तो जीव के पुण्य और पाप का आस्रव होता है। वाह्य कारण देव गुरु का उपदेश अतरग सम्यक्त्व पूर्वक सयम शीलो का पालन करने के व धारण करने के भाव होवें। यह जाग्रता आगई कि ये शील सयमादि ही मेरे कल्याण के हेतु हैं इनको निरतर ही पालन करना चाहिये। ऐसे भाव अहिंसामय बन गये जो भाव अहिंसा रूप हो जाते है तब जीव को पुण्य काल लाभ होता है इन से विपरीत भावों की प्रवृत्ति होती है तब पापोपार्जन होता है जब इन दोनो से रहित हो जाता है तब भाव ही शुद्धोपयोग रूप होते है जिससे जीव मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेता है। इस लिये भाव से की गई भगवान की पूजा स्तवन भक्ति मोक्ष का कारण होती है भाव शून्य के कोई क्रिया फलित नही होती है। इसलिये अनेक ऋधियो के धारक ऋषि हे वासु पूज्य जिन आपकी पूजा भक्ति भाव से करके मोक्ष को प्राप्त करते है ॥५॥

पूजा भवति द्विविधं द्रव्य भावौ वींराक्षव गंधादिभिः।
वाच रूच्चारणै स्तथा स्तोत्र स्तवनै भवित द्रंव्यम् ॥७३८॥
जिन सिद्ध गुणानां चैवानु चिन्तनं वा तद्रूपं यान्ति।
ध्यानानुभूतिःक्रिया भावपूजा जिनोपदिष्टैः ॥७३९॥

पूजा दो प्रकार की भगवान जिनेन्द्र ने कही है। प्रथम द्रव्य पूजा दूसरी भाव पूजा। जो गृह स्थ जल गध अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल लेकर भगवान की पूजा करते है व स्तवन स्तोत्र पढ़ते है वह द्रव्य पूजा है। जो अष्ट द्रव्ये है वे मन ब वचन काय की होने वाली अशुभ क्रियाओ व चचलता को रोकने के निमित्त है। द्रव्य पूजा के साथ जो मन वचन काय रूप योगो में परिस्पन्द में लघुता होती है यह ही द्रव्य पूजा के साथ भाव पूजा शुभ परिणमन रूप होती है। दूसरी भाव पूजा वह है कि श्री अरहत सिद्ध साधुओ के गुणो का मन ही मन चिन्तवन करना व उनके गुणों को अपने मे उतार लेना व अपने स्वरूप

में अनुभव में आते है। उनके गुणों का बार बार चिन्तवन करना तद्रूप परिणाम मन में करना यह पूजा भाव पूजा है। यह भाव पूजा निश्चय कर उन्ही योगियो को प्राप्त होती है जो सर्व प्रकार के परिग्रह रूपी जाल को तोड़ कर बीतराग छद्मस्थ हो गये हैं क्यो कि वे तद्रूप में अपने को अनुभव करते है। तथा क्रिया में परिणमन करते है। यह भाव पूजा निराकुल है तथा आत्मानुभूति रूप है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है। जब जैसा गुण चिन्तन होता है गुण के चिन्तवन के अनुरूप भावो की क्रिया होती है व अनुभूति प्राप्त होती है इस प्रकार ध्यान रूप भाव पूजा का सक्षेप से कथन किया है।

येऽर्चन्ति गुरून्भक्त्या पावन्ति देवेन्द्रचक्रे सौख्यम् ।
ध्यानेलीनास्तुद्गुणे भावकस्द्रूपोतऽभूतिः ॥७४०॥

जो भव्यात्मा जिन अरहत और सिद्ध भगवान के गुणों की पूजा करते है वे जीव स्वर्ग में जाकर इन्द्रपद को प्राप्त होते है। वहा देवों की परिषद के अधिपति होते हैं। वहा पर बहुत काल तक देव गति के सुखो का बहुत काल तक अनुभव करते है। जो भगवान के गुणो का ध्यान करता है वह शीघ्र ही अरहत सिद्ध शुद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है। अथवा अपने को अपने मे ही शुद्धोपयोग करता है तब वह पूजक ही जिन सिद्ध स्वरूप आप ही हो जाता है।

जिन सिद्ध विम्वानां च प्रत्यक्षं मन्यतें साक्षातमेव ।
याग विधानं भक्ताः प्राप्तं च जिनसिद्ध स्वरूपं ॥७४१॥

जो भव्य अरहत सिद्ध के विम्व की (प्रतिमा की) पूजा करते है व साक्षात रूप से अरहत सिद्ध मूर्ति को मानकर पूजा भक्ति करता है वह भव्य जीव अपने आत्मा में प्रत्यक्ष रूप से जिन सिद्ध भगवान के समान आप अपने को अपने अत्मा में प्रत्यक्ष कर देखते है अरहत सिद्ध स्वरूप अपने को ही अनुभव करते है। जो जैसी भावना कर पूजा करता है उस भाव रूप आप अपने मे परिणमन करता है अनुभव करता है। जिन सिद्ध पद को प्राप्त हो जाता है ७४१॥

यथा कोऽपि महिषगुणान् अर्चत्येकाग्र मनसि चंकान्ते ॥
भक्ति खलु महिषेव ऐधंते विषाणौ च तदा ॥७४२॥

जब कोई व्यक्ति एकान्त कमरा में बैठ कर भैष का ध्यान करता है कि मेरी भैष इतनी मोटी है हाथी के समान शरीर वाली है यथा उसके सीग बहुत लम्बे हैं भैष के गुणों का बार बार चिन्तवन कर रहा था। तथा भैष का ध्यान करता था तब मनुष्य पने को भूल और भैष रूप भाव में परिणमन हो जाता है तव अपने को भैष रूप से ही अनुभव करता है। भाव में ही भैष के सीग बहुत लम्बे हो गये थे व सीग उस छोटे कमरा के दरवाजे में से निकल नही सकते थे। समय पाकर कोई मित्र मिलने के लिये आया और उसने अपने मित्र को आवाज लगाई तब वह मित्र कोठा के भीतर से बोलता है कि हे मित्र मैं कोठा में भीतर बैठा हू यह सुनकर मित्र वोला भाई तुम शीघ्र ही कोठे से बाहर आजाओ। यह सुनकर भीतर से आवाज आती है कि हे मित्र मेरे सीग बहुत बड़े हो गये

हुवे छोटे से दरवाजे में होकर निकलते नही है क्योंकि दरवाजा छोटा और सीग- बड़े लम्बे हैं वे दरवाजे मे अटक जाते हैं। यह सुनकर मित्र जाकर उसके महिष-के ध्यान व उपयोग को छुड़ाने की चेष्टा करता है तब वह उस भैष के ध्यान को छोडदेता है तब अपने को मनुष्य रुप से देखने लग जाता है। इसी प्रकार एकान्त स्थान व एकान्त चित्त-होकर जब अरहत सिद्ध का ध्यान करता है तदरूप अपने भाव करता है और तदरूप परिणमन करता है तब वह भी प्राप्ति उन परमेष्ठियो के प्रसाद से ही होती है, उन से हो हमको मोक्ष मार्ग का उपदेश मिलाता है। इस कलिकाल में अरहत केवली व श्रुत केवली मन: पर्यय ज्ञान के धारक व अवधिज्ञान के धारक आचार्य उपाध्याय व साधू नही है परन्तु वर्तमान मे उनका उपदेश भी नही प्राप्य है। तो भी इस दुष्षम काल मे हमको आचार्य उपाध्याय साधूओ के दर्शन व उपदेश मिल रहा है ये ही हमारे अरहत सिद्ध है इसलिए इनकी ही भक्ति पूजा करना चाहिए। जो इनकी भक्ति पूजा करते है वे अरहतो की पूजा करते हैं।।७४५।।

अपशूनारम्भैर्विना यजय सप्तगुण समाहितेन शुद्धेन ।।
नवधाभक्तियुक्ताराचार्याणामिश्यतेवादनं ।।७४६।।

अपशून्य के पाच भेद है प्रथम अपशून-अतिथि के घर आ जाने पर झाडू लेकर घर की सफाई करना। दूसरा जब मुनिराज घर पर आ जावे उस ही काल में गेहूँ आदि धान्य लेकर चक्की से पीसनें की तैयारी करना या पीसना। तीसरा मुनिराज जब घर पर आ जावें तब कुआ वावडी या नदी आदि में से पानी भरने को जाना या निकलना चौथा जब कोई अतिथी घर पर आ जावें उसी ही काल में चूल्हे में अग्नि का जलाना या रसोई चढ़ाना पकाना। जब घर पर अतिथि आ जावे तब सालि जौ बाजरा आदि का कूटना चालू करना ये पच सून्य आरम्भ हिंसा के कारण है। इनको अतिथि के आने के पीछे नही करना चाहिए। अग्नि जलाना भू खोदना पानी से जमीन को गीली कर देना झाडू देना अग्नि को पानी डालकर बुझा देना तथा वृक्षो से फूल पत्ते शाखाओ का तोड़ना भी अपसून है। दाता के सात गुण प्रथम सतोषी; दूसरे निर्लोभी; तीसरे विनयवान; चौथे भक्तिवान, पांचवे श्रद्धालू, छठवे विवेकवान, सातवा क्षमा दयावान ये सात श्रावक के गुण है। नवधा भक्ति प्रथम द्वारापेक्षण व पड़गाहन करना दूसरी भक्ति उच्चासन देना तीसरा भक्ति पाद प्रक्षालन करना चौथी भक्ति अष्ट द्रव्य लेकर पूजा करना. विनय पूर्वक नमस्कार करना पाचवी छठवी सातवी मन शुद्धि वचन शुद्धि काय शुद्धि आठवी नोवी आहार पानी शुद्ध है ये नौ भक्तिये है इनको नवकोटि शुद्धि कहते है। अथवा नवधा भक्ति कहते है। इन भक्तियो सहित मुनिराजो को श्रावक आहार दान देने से ही श्रावक श्रेष्ठ माना जाता है तथा सम्यक्त्वादि गुणो को वृद्धि होती है।।७४६।।

वैयावृत्ति के विषयो मे कुछ विशेष है वह कहते हैं।

द्रव्यं क्षेत्रं कालं सविवेकेन ज्ञात्वऽतिथीनाम्।।
अन्न पानं स्वाद्यं खाद्यं निराकुलं क्षेत्रं च ।।७४७।।
यथाकाले च माता स्वगर्भोपपन्न पालकस्यपाति।
तथैवानगामाणाम् पूजावैयावृत्तिनिष्प्रमादात् ।।७४८।।

प्रथम आहार देने वाले श्रावक व श्राविका विवेकवान होना चाहिए क्योंकि अतिथि के शरीर की अवस्था विशेष बाल है या युवक या वृद्ध या रोगी है कौन सी वस्तु इनको सुगमता पूर्वक हजम होगी। यदि वृद्ध मुनि है उनको गरिष्ट भोजन दिया गया तो उनको निद्रा आवेगी प्रमाद व आलस बढ़ेगा सुस्ती आवेगी या जभाई अधिक आवेगी या शरीर अकड़ायेगा जिससे धर्म ध्यान स्वाध्याय में बाधा उत्पन्न होगी। यदि रोगी शरीर होगा और उसको गरिष्ट भोजन दिया गया तो उसके रोग की और विशेष वृद्धि हो जायगी जिससे स्वाध्याय सामायिकादि कृति कर्म करने में बाधा होगी व स्वध्याय में आलस आवेगा। व शरीर में वेदना और बढ़ जाने के कारण आकुलता होगी ? काल का विचार शीत काल मे जो आहार दिया है वही आहार यदि उष्ण काल मे दिया जाय उष्ण काल में दिया जाने वाला आहार शीत काल में दिया जानें पर हानिकारी होगा। अथवा वर्षा काल में किस प्रकार का आहार देना किस अतिथि को क्या देना यह काल विवेक अवश्य होना चाहिए। नही तो अनर्थ होने की सम्भावना है। आहार दाता को क्षेत्र का विचार भी करके आहार देना चाहिए कि यह क्षेत्र शीत है या उष्ण है मध्यम है जहा न विशेष शीत ही होती है न अधिक गर्मी ही होती है इस प्रकार क्षेत्र का विचार कर देना चाहिए। वह आहार चार प्रकार का होता है खाद्य दाल रोटी लाडू इत्यादि खाद्य लवग इलाइची लेय जिव्हा से चाटने चटनी आदि पेय पानी दूध रसादि देना चाहिए। बस्ति का जहाँ पर स्त्री व बच्चो का व नीच मिथ्याचारी जीवों का सड जीवों का सचार न हो। जहाँ पर दंश मषक न हो ऐसी वस्तुका दान देना चाहिए कि जैसे माता अपने गर्भ से उत्पन्न बालक की सेवा करती है यदि बालक पेशाब कर लेता है तब माता बालक को गीले में से उठाकर सूखे वस्त्रो में सुलाती है और आप गीले वस्त्रों पर सोती है। तथा उनके शरीर में होने वाली वेदना का पूर्ण रूप से ध्यान रखती है क्योकि बालक मुख से कुछ भी नही कहता है तो भी माता उसकी वेदना को जानकर दूर करने का प्रत्यन्न करती है। उसी प्रकार निराकुल होकर मुनियों की वैयावृत्ति करना चाहिए।

कथन मात्रं वगुणाः जिनाना षट चत्वारिंषदनवा।
सन्त्यनतगुणो स्त्वेव अरहंताणं नहीनाऽधिकम् ।।७४६।।

कोई अज्ञानी कहता है कि भगवान अरहत प्रभु के ४६ गुण ही होते है।

अरहत भगवान के छयालीस गुण कहे गये हैं वे गण कहने मात्र के होते है परन्तु भगबान के अनन्त गुण होते है। अन्तरहित अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त सुख क्षायक सम्यक्त्व अनन्त दान अनन्त लाभ अनन्त भोग अनन्त उपभोग अनन्त बीर्य ये सब अनन्त ही होते है। कहने के लिए जन्म होते समय में दश अतिशय, केवल ज्ञान होते समय दश अतिशय देव कृत चौदह अतिशय व आठ प्रातिहार्यो का होना, अनन्त चतुष्ट के होने से छयालीश गुण कहे जाते है यह सब व्यवहार मात्र की जिन सिद्ध स्वरूप हो जाता है इस भाव पूजा का विधान भक्ति पूर्वक विनय युक्त कहा गया है, इसलिए, द्रव्य पूजा है, वह भी भाव पूजा का कारण होती है। द्रव्य पूजन करने वाले को पुण्यानुबंधी पुण्य की प्राप्ति होती है और परंपरा से भी वो प्राप्त होता है। जो भाव पूजा करने वाले योगी मुनी यती अनगार है वे भाव पूजा को

करके तद्भव से मोक्ष प्राप्त करते है। ये दोनो ही पूजा अमगल का नाशकर मगल प्रदान करती है। तथा दु खो के समुद्र में से निकालकर उत्तम सुख मे ले जाती है द्रव्य पूजा और भाव पूजा का कथन किया है। इसलिए भव्य जीवो को चाहिए कि वे भाव सहित आठ द्रव्य लेकर अरहतादि परमेष्ठियो की पूजा करें पूजा करने से गृहस्थी में होने वाले आरम्भादिक पाप नष्ट हो जाते है और पुण्य का विशेष लाभ होता है ।।७४९।।

यजेयु:श्रुतभक्त्या द्रव्याष्टकैः शुभ्रवस्त्रादिभिश्च ।
आकर्षयते मार्गे सर्वदु:खक्षयस्थानेधर् ।।७५०।।
श्रुतेंनदृश्यते खलु शुभसन्मार्ग लभते श्रुतविना मुक्ति वौख्यम् ।
किंचिदप्यंतर माहुररहतश्रुतदेवयोर्न ।।७५१।।

पूर्व मे जैसे अरहत जिन सिद्ध भगवान की पूजा भक्ति की उसी प्रकार जिनवाणी की पूजा करनी चाहिए अरहत सिद्ध और जिनवाणी मे वहुधा कोई अन्तर नही है। यह श्रुत भगवान वीतराग के मुख से दिव्य ध्वनि से निकली हुई है यह जिनवाणी है। जिनवाणी की भक्ति करने से व अष्ट द्रव्यो से पूजा करके सफेद वस्त्र का वैष्ठन चढाना चाहिए पश्चात आरती उतारना चाहिए। प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करना चाहिए पश्चात में एक उच्चासन पर विराजमान कर भक्ति पूर्वक विनय सहित विराजमान कर पुन:-पुन: भक्ति पूर्वक नमस्कार करने से श्रद्धा भक्ति बढ़ती है और पुण्य लाभ होता है तथा अज्ञानाधकार नष्ट हो जा ा है। जिनवाणी जीवो को दुर्गम मार्ग से निकाल कर शुभ सन्मार्ग में ले जाती है विना श्रुतज्ञान के कोई भी जीव मुक्ति पद को कदापि नही प्राप्त हो सकता है। यह जिनवाणी एक महौषधि है जो इसकी भक्ति भाव से पूजा करता है उसके पचेन्द्रियो के विषयों से अरूचि हो जाती है तथा यह वाणी अमृत स्वरूप है जिस प्रकार अमृत पान करनेवाले अमर बन जाते है उसी प्रकार जिनवाणी की पूजा मनन करते है उनको अविनाशी बना देती है तथा जन्म मरण व्याधि के दु:खो का नाश करती है व सब ससारी अवस्था में होने वाले दु खो का सहसा नाश कर डालती है और मोक्ष सुख मे पहुँचा देती है। क्योकि तत्त्वातत्त्व का विवेक जिनवाणी श्रुत से ही प्राप्त होता है श्रुत की पूजा अनेक नामो कर दी गई है। जिनश्रुताभ्यास करने से आत्मा मे श्रद्धान ध्यान सयम में श्रद्धान मे दृढता आ जाती है जिनवाणी के पढ़ने सुनने से आत्मज्ञान होता है आत्मज्ञान से घ्यान होता है ध्यान से कर्मो की निर्जरा होती है कर्मो के समूल क्षय होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आचार्योपाध्याय साधूनां नदति द्रव्याष्टकै ।
वैयावर्न्तः भक्तिश्च वैः वृद्धिर्भवति सम्यक्त्वे ।।७५२।।

जो भव्य सम्यग्दृष्टि भाव भक्ति पूर्वक आचार्य उपाध्याय और साधुओ की जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फलादि अष्ट द्रव्यो से पूजा करता है व स्तवन विनय वन्दना करता है। निरालस होकर उनकी वैयावृत्ति करता है उसका सम्यक्त्व व सयम चारित्र वृद्धि को प्राप्त होता है और निर्मल हो जाता है। आचार्य उपाध्याय और मुनि है वे किसी से कोई वस्तु की याचना नही करते है न वे ही कहते है कि तुम हमारे पैर छुओ या पैर

दवाओ ? जो इतने निस्प्रह होते हैं कि पानी की भी याचना नही करते है। वे अपने ज्ञान ध्यान करने में लवलीन रहते है और वे निर्दोष चारित्र का पालन करते हुए कर्म रूपी ईंधन को ध्यान रूपी जलती हुई अग्नि मे झोकने को समर्थ होते है। वे सब ही परमगभीर और आरम्भ परिग्रह से बहुत दूर रहते है और इच्छाओ के विजयी (जिजीविसु) भट करते है। इच्छाओं को त्याग कर ससार शरीर और भोग रूपी परिग्रह से अत्यन्त भिन्न रहते है। तथा ससार के दुःखों से अत्यन्त भयातुर रहते है वे कोई भी अवस्था में ससार को भोगों का चिन्तवन व इच्छा नही करते है। यदि शरीर मे कोई पूर्वोपर्जित वेदनीय कर्म के उदय में आने के कारण शरीर में रोग या वेदना के हो जाने पर इसकी वेदना को दूसरों को न कहते हुए आप स्वयम ही सहन कर देते है पर दीनता मय वचन नही बोलते कि हमारे रोग हो गया है हमको औषधी लाओ या वैद्य बुलाओ ? फिर भी सम्यदृष्टि धर्मात्मा उनके गुण व धर्मायतन जानकर उनकी भक्ति से पूजा करते है व उनकी शारीरिक वेदना को दूर करने के लिए उपचार व वैयावृत्ति करते है। भव्य सा धर्मी अपने हित का इच्छुक उनके गुणों को देखकर व गुणो में अनुराग कर उनकी सेवा वैयावृत्ति करते है। वैयावृत्ति के अनेक प्रकार होते है जैसे यदि साधू रोगी अवस्था को प्राप्त हुआ हो उस काल में शास्त्र पढकर सुनाना व हाथ पैर मलना दबाना व शरीर पर तैल मर्दन करना या औषधी की यथा योग्य व्यवस्था करना व आहार पानी की यथा काल योग्य व्यवस्था कर ना पास फलक चटाई इत्यादि को स्वच्छ कर जमीन को देखकर बिछा देना और समेट देना यथा योग्य स्थान पर रख देना। शोचादि क्रिया करने को जब जावे तब उनका कमण्डल लेकर साथ-साथ जाना व कमण्डल में गरम पानी करवा कर भर देना ये सब वैयावृत्ति के ही प्रकार (भेद) है। उनके गुणो में अनुराग का होना तथा उनकी वैराग्य की छटा को अपने हृदय में और उतारना और बारबार उसका विचार करने कि यह ही पदार्थ का स्वरूप है। इस प्रकार अपने अन्तरग में विरक्त भावों की वृद्धि होती है तथा पाप दोषों से घृणा उत्पन्न होती है जिससे सम्यक्त्व निर्मल हो जाता है और पाप वृद्धि नष्ट हो जाती है और पुण्य की प्राप्ति व विनयादि करने से कहना है। इन ४६ गुणों से अरहंत भगवान का महात्म्य प्रकट नही होता है क्योकि वे सर्वज्ञ सर्व दर्शी होते है। और उनके अनन्त गुण होते है जिनका वर्णन चार ज्ञान के धारी गणधर भी नही कर सकते अथवा वचन असख्यात होते है गुण अनन्त होते है इसलिए भी वचन वर्गणाओ से कथन नही किया जा सकता है ॥७५२॥

श्री जिनवीरायनमः मोहध्वान्तविनाशकाय नित्यम् ।
सम्यक्त्वाधिकस्य परिसमाप्ति करोम्यत्यहम् ॥७५३॥
अज्ञानात्प्रमादादर्थमात्रापद वाक्यविमुक्तश्चैव ।
शंसोध्येय बंहु गुणैः श्रुतपारगैः विद्बद्वरैः ॥७५४॥

मै ग्रन्थ कर्ता उन वीर अन्तिम वीर प्रभू को नमस्कार करता हूँ कि जिन्होंने सर्व अमगलो का नाश कर सब मंगलों को प्राप्त कर लिया है। अमंगल जो मोह दर्शन मोह और चारित्र मोह ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय इनका नाश कर दिया है। तथा अठारह

को नाश कर दिया है वीर अंतरंग लक्ष्मी बाह्य लक्ष्मी से विभूषित है जो जिन है कर्म रूपा वैरियो को जिन्होने जीत लिया है उन जिन वीर प्रभु को नमस्कार करके सम्यक्त्व विचार की समाप्ति करता हूं। जो मेरे प्रमाद व अज्ञान से अर्थ व मात्रा व पद वाक्य समास और छन्द मे जो कुछ गलतिया रह गई होगी उन गलतियों को श्रुत के जानने वाले शोध कर पढ़े। क्योंकि हमको इस विषय का पूर्ण परिज्ञान भी नही है। काव्य व्याकरण अलंकार छन्द का भी वोध नही है परन्तु अपने मन को वहलाने के लिए भक्तिवश यह शास्त्र लिखा है। इसलिये इस सम्यक्त्वाधिकार में जो कुछ गलती रह गई होगी उसको शोधकर शुद्ध करें।

॥इति प्रबोधसार तत्त्व दर्शनम् ॥